ओशो – गीता-दर्शन – भाग एक

प्रवचन १: विचारवान अर्जुन और युद्ध का धर्मसंकट

ओशो – गीता-दर्शन – भाग एक

अध्याय—१-२ – प्रवचन १ : विचारवान अर्जुन और युद्ध का धर्मसंकट

श्रीमद्भगवद्गीता प्रथमोउध्यायः

धृतराष्ट्र उवाच

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः ।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत संजय ॥१॥

धृतराष्ट्र बोले : हे संजय धर्मभूमि कुरुक्षेत्र में इकट्ठे हुए युद्ध की इच्छा वाले मेरे और पांडु के पुत्रों ने क्या किया?

धृतराष्ट्र आंख से अंधे हैं। **लेकिन आंख के न होने से वासना—नहीं मिट जाती; आंख के न होने से कामना नहीं मिट जाती।** काश! सूरदास ने धृतराष्ट्र का खयाल कर लिया होता, तो आंखें फोड़ने की कोई जरूरत न होती। सूरदास ने आंखें फोड़ ली थीं; **इसलिए कि न रहेंगी आंखें, न मन में उठेगी कामना! न उठेगी वासना! पर आंखों से कामना नहीं उठती, कामना उठती है मन से। आंखें फूट भी जाएं, फोड़ भी डाली जाएं, तो भी वासना का कोई अंत नहीं है।**

गीता की यह अदभुत कथा एक अंधे आदमी की जिज्ञासा से शुरू होती है। असल में इस ‘**जगत में सारी कथाएं बंद हो जाएं, अगर अंधा आदमी न हो। इस जीवन की सारी कथाएं अंधे आदमी की जिज्ञासा से शुरू होती हैं। अंधा आदमी भी देखना चाहता है उसे, जो उसे दिखाई नहीं पड़ता; बहरा भी सुनना चाहता है उसे, जो उसे सुनाई नहीं पड़ता। सारी इंद्रिया भी खो जाएं, तो भी मन के भीतर छिपी हुई वृत्तियों का कोई विनाश नहीं होता है।**

तो पहली बात तो आपसे यह कहना चाहूंगा कि स्मरण रखें, धृतराष्ट्र अंधे हैं, लेकिन युद्ध के मैदान पर क्या हो रहा है, मीलों दूर बैठे उनका मन उसके लिए उत्सुक, जानने को पीड़ित, जानने को आतुर है। दूसरी बात यह भी स्मरण रखें कि अंधे धृतराष्ट्र के सौ पुत्र हैं, लेकिन अंधे व्यक्तित्व की संतति आंख वाली नहीं हो सकती है; भला ऊपर से आंखें दिखाई पड़ती हों। अंधे व्यक्ति से जो जन्म पाता है—और शायद अंधे व्यक्तियों से ही लोग जन्म पाते है—तो भला ऊपर की आंख हो, भीतर की आंख पानी कठिन है।

यह दूसरी बात भी समझ लेनी जरूरी है। धृतराष्ट्र से जन्मे हुए सौ पुत्र सब तरह से अंधा व्यवहार कर रहे थे। आंखें उनके पास थीं, **लेकिन भीतर की आंख नहीं थी।** अंधे से अंधापन ही पैदा हो सकता है। फिर भी यह पिता, क्या हुआ, यह जानने को उत्सुक है।

तीसरी बात यह भी ध्यान रख लेनी जरूरी है। धृतराष्ट्र कहते हैं, धर्म के उस कुरुक्षेत्र में युद्ध के लिए इकट्ठे हुए...।

जिस दिन धर्म के क्षेत्र में युद्ध के लिए इकट्ठा होना पड़े, उस दिन धर्मक्षेत्र धर्मक्षेत्र बचता नहीं है। और जिस दिन धर्म के क्षेत्र में भी लड़ना पड़े, उस दिन धर्म के भी बचने की संभावना समाप्त हो जाती है। रहा होगा वह धर्मक्षेत्र, था नहीं! रहा होगा कभी, पर आज तो वहा एक—दूसरे को काटने को आतुर सब लोग इकट्ठे हुए थे।

यह प्रारंभ भी अदभुत है। यह इसलिए भी अदभुत है कि अधर्मक्षेत्रों में क्या होता होगा, उसका हिसाब लगाना मुश्किल है। धर्मक्षेत्र में क्या होता है? वह धृतराष्ट्र संजय से पूछते हैं कि वहा युद्ध के लिए आतुर मेरे पुत्र और उनके विरोधियों ने क्या किया है, क्या कर रहे हैं, वह मैं जानना चाहता हूं।

धर्म का क्षेत्र पृथ्वी पर शायद बन नहीं पाया अब तक, क्योंकि धर्मक्षेत्र बनेगा तो युद्ध की संभावना समाप्त हो जानी चाहिए। युद्ध की संभावना बनी ही है और धर्मक्षेत्र भी युद्धरत हो जाता है, तो हम अधर्म को क्या दोष दें, क्या निंदा करें! सच तो यह है कि अधर्म के क्षेत्रों में शायद कम युद्ध हुए हैं, धर्म के क्षेत्रों में ज्यादा युद्ध हुए हैं। और अगर युद्ध और रक्तपात के हिसाब से हम विचार करने चलें, तो धर्मक्षेत्र ज्यादा अधर्मक्षेत्र मालूम पड़ेंगे, बजाय अधर्मक्षेत्रों के।

यह व्यंग्य भी समझ लेने जैसा है कि **धर्मक्षेत्र पर अब तक युद्ध होता रहा है। और आज ही होने लगा है, ऐसा भी न समझ लेना; कि आज ही मंदिर और मस्जिद युद्ध के अड्डे बन गए हों।** हजारों साल पहले, जब हम कहें कि बहुत भले लोग थे पृथ्वी पर, और कृष्ण जैसा अदभुत आदमी मौजूद था, तब भी कुरुक्षेत्र के धर्मक्षेत्र पर लोग लड़ने को ही

इकट्ठे हुए थे! **यह मनुष्य की गहरे में जो युद्ध की पिपासा है, यह मनुष्य की गहरे में विनाश की जो आकांक्षा है, यह मनुष्य के गहरे में जो पशु छिपा है, वह धर्मक्षेत्र में भी छूट नहीं जाता, वह वहा भी युद्ध के लिए तैयारियां कर लेता है।**
इसे स्मरण रख लेना उपयोगी है। **और यह भी कि जब धर्म की आड़ मिल जाए लड़ने को, तो लड़ना और भी खतरनाक हो जाता है।** क्योंकि तब जस्टीफाइड, न्याययुक्त भी मालूम होने लगता है।
यह अंधे धृतराष्ट्र ने जो जिज्ञासा की है, उससे यह धर्मग्रंथ शुरू होता है। **सभी धर्मग्रंथ अंधे आदमी की जिज्ञासा से शुरू होते हैं। जिस दिन दुनिया में अंधे आदमी न होंगे, उस दिन धर्मग्रंथ की कोई जरूरत भी नहीं रह जाती है। वह अंधा ही जिज्ञासा कर रहा है।**
प्रश्न : भगवान श्री, अंधे धृतराष्ट्र को युद्ध की रिपोर्ताज निवेदित करने वाले संजय की गीता में क्या भूमिका है? संजय क्या क्लेअरवायन्स, दूर—दृष्टि या क्लेअरआडियन्स, दूर— श्रवण की शक्ति रखता था? संजय की चित्—शक्ति की गंगोत्री कहा पर है? क्या वह स्वयंभू भी हो सकती है?
संजय पर निरंतर संदेह उठता रहा है; स्वाभाविक है। संजय बहुत दूर बैठकर, कुरुक्षेत्र में क्या हो रहा है, उसकी खबर धृतराष्ट्र को देता है। योग निरंतर से मानता रहा है कि जो आंखें हमें दिखाई पड़ती हैं, वे ही आंखें नहीं हैं। और भी आंख है मनुष्य के पास, जो समय और क्षेत्र की सीमाओं को लांघकर देख सकती है। लेकिन योग क्या कहता है, इससे जो कहता है वह सही भी होगा, ऐसा नहीं है। संदेह होता है मन को, इतने दूर संजय कैसे देख पाता है? क्या वह सर्वज्ञ है? नहीं। पहली तो बात यह कि दूर—दृष्टि, क्लेअरवायन्स कोई बहुत बड़ी शक्ति नहीं है। सर्वज्ञ से उसका कोई संबंध नहीं है। बड़ी छोटी शक्ति है। और कोई भी व्यक्ति चाहे तो थोड़े ही श्रम से विकसित कर सकता है। और कभी तो ऐसा भी होता है कि प्रकृति की किसी भूल—चूक से वह शक्ति किसी व्यक्ति को सहज भी विकसित हो जाती है।

एक व्यक्ति है अमेरिका में अभी मौजूद, नाम है, टेड सीरियो। उसके संबंध में दो बातें कहना पसंद करूंगा, तो संजय को समझना आसान हो जाएगा। क्योंकि संजय बहुत दूर है समय में हमसे और न मालूम किस दुर्भाग्य के क्षण में हमने अपने समस्त पुराने ग्रंथों को कपोलकल्पना समझना शुरू कर दिया है। इसलिए संजय को छोड़े। अमेरिका में अध्व जिंदा आदमी है एक, टेड सीरियो, जो कि कितने ही हजार मील की दूरी पर कुछ भी देखने में समर्थ है; न केवल देखने में, बल्कि उसकी आंख उस चित्र को पकड़ने में भी समर्थ है।

हम यहां बैठकर यह जो चर्चा कर रहे हैं, न्यूयार्क में बैठे हुए टेड सीरियो को अगर कहा जाए कि अहमदाबाद में इस मैदान पर क्या हो रहा है; तो वह पाच मिनट आंख बंद करके बैठा रहेगा, फिर आंख खोलेगा, और उसकी आंख में आप सबकी—बैठी हुई—तस्वीर दूसरे देख सकते हैं। और उसकी आंख में जो तस्वीर बन रही है, उसका कैमरा फोटो भी ले सकता है। हजारों फोटो लिए गए हैं, हजारों चित्र लिए गए हैं और टेड सीरियो की आंख कितनी ही दूरी पर, किसी भी तरह के चित्र को पकड़ने में समर्थ है; न केवल देखने में, बल्कि चित्र को पकड़ने में भी।

टेड सीरियो की घटना ने दो बातें साफ कर दी हैं। एक तो संजय कोई सर्वश नहीं है, क्योंकि टेड सीरियो बहुत साधारण आदमी है, कोई आत्मज्ञानी नहीं है। टेड सीरियो को आत्मा का कोई भी पता नहीं है। टेड सीरियो की जिंदगी में साधुता का कोई भी नाम नहीं है, लेकिन टेड सीरियो के पास एक शक्ति है—वह दूर देखने की। विशेष है शक्ति।

कुछ दिनों पहले स्कैंडिनेविया में एक व्यक्ति किसी दुर्घटना में जमीन पर गिर गया कार से। उसके सिर को चोट लग गई। और अस्पताल में जब वह होश में आया तो बहुत मुश्किल में पड़ा। उसके कान में कोई जैसे गीत गा रहा हो, ऐसा सुनाई पड़ने लगा। उसने समझा कि शायद मेरा दिमाग खराब तो नहीं हो गया! लेकिन एक या दो दिन के भीतर स्पष्ट, सब साफ होने लगा। और तब तो यह भी साफ हुआ कि दस मील के भीतर जो रेडियो स्टेशन था, उसके कान ने उस रेडियो स्टेशन को पकड़ना शुरू कर दिया है। फिर उसके कान का सारा अध्ययन किया गया और पता चला कि उसके कान में कोई भी विशेषता नहीं है, लेकिन चोट लगने से कान में छिपी कोई शक्ति सक्रिय हो गई है। आपरेशन करना पड़ा, क्योंकि अगर चौबीस घंटे—आन—आफ करने का तो कोई उपाय नहीं था—अगर उसे कोई स्टेशन सुनाई पड़ने लगे, तो वह आदमी पागल ही हो जाए।

पिछले दो वर्ष पहले इंग्लैंड मे एक महिला को दिन में ही आकाश के तारे दिखाई पड़ने शुरू हो गए। वह भी एक दुर्घटना में ही हुआ। छत से गिर पड़ी और दिन में आकाश के तारे दिखाई पड़ने शुरू हो गए। तारे तो दिन में भी आकाश में होते हैं, कहीं चले नहीं जाते; सिर्फ सूर्य के प्रकाश के कारण ढंक जाते हैं। रात फिर उघड़ जाते हैं, प्रकाश

हट जाने से। लेकिन आंखें अगर सूर्य के प्रकाश को पार करके देख पाएं, तो दिन में भी तारों को देख सकती हैं। उस स्त्री की भी आंख का आपरेशन ही करना पड़ा।

यह मैं इसलिए कह रहा हूं कि आंख में भी शक्तियां छिपी हैं, जो दिन में आकाश के तारों को देख लें। कान में भी शक्तियां छिपी हैं, जो दूर के रेडियो स्टेशन से विस्तारित ध्वनियों को पकड़ लें। आंख में भी शक्तियां छिपी हैं, जो समय और क्षेत्र की सीमाओं को पार करके देख लें। लेकिन अध्यात्म से इनका कोई संबंध नहीं है।

तो संजय कोई बहुत आध्यात्मिक व्यक्ति हो, ऐसा नहीं है; संजय विशिष्ट व्यक्ति जरूर है। वह दूर युद्ध के मैदान पर जो हो रहा है, उसे देख पा रहा है। और संजय को इस शक्ति के कारण, कोई परमात्मा, कोई सत्य की उपलब्धि हो गई हो, ऐसा भी नहीं है। संभावना तो यही है कि संजय इस शक्ति का उपयोग करके ही समाप्त हो गया हो।

अक्सर ऐसा होता है। विशेष शक्तियां व्यक्ति को बुरी तरह भटका देती हैं। इसलिए योग निरंतर कहता है कि चाहे शरीर की सामान्य शक्तियां हों और चाहे मन की—साइकिक पावर की—विशेष शक्तियां हों, शक्तियों में जो उलझता है वह सत्य तक नहीं पहुंच पाता।

पर, यह संभव है। और इधर पिछले सौ वर्षों में पश्चिम में साइकिक रिसर्च ने बहुत काम किया है। और अब किसी आदमी को संजय पर संदेह करने का कोई कारण वैज्ञानिक आधार पर भी नहीं रह गया है। और ऐसा ही नही कि अमेरिका जैसे धर्म को स्वीकार करने वाले देश में ऐसा हो रहा हो; रूस के भी मनोवैज्ञानिक मनुष्य की अनंत शक्तियों का स्वीकार निरंतर करते चले जा रहे हैं।

और अभी चांद पर जाने की घटना के कारण रूस और अमेरिका के सारे मनोवैज्ञानिकों पर एक नया काम आ गया है। और वह यह है कि यंत्रों पैर बहुत भरोसा नहीं किया जा सकता। और जब हम अंतरिक्ष की यात्रा पर पृथ्वी के वासियों को भेजेंगे, तो हम उन्हें गहन खतरे में भेज रहे हैं। और अगर यंत्र जरा भी बिगड़ जाएं तो उनसे हमारे संबंध सदा के लिए टूट जाएंगे; और फिर हम कभी पता भी नहीं लगा सकेंगे कि वे यात्री कहा खो गए। वे जीवित हैं, जीवित नहीं हैं, वे किस अनंत में भटक गए—हम उनका कोई भी पता न लगा सकेंगे। इसलिए एक सब्स्ईटयूट, एक परिपूरक व्यवस्था की तरह, दूर से बिना यंत्र के देखा जा सके, सुना जा सके, खबर भेजी जा सके, इसके लिए रूस और अमेरिका दोनों की वैज्ञानिक प्रयोगशालाएं अति आतुर हैं। और बहुत देर न होगी कि रूस और अमेरिका दोनों के पास संजय होंगे। हमारे पास नहीं होंगे।

संजय कोई बहुत आध्यात्मिक व्यक्ति नहीं है। लेकिन संजय के पास एक विशेष शक्ति है, जो हम सबके पास भी है, और विकसित हो सकती है।

संजय उवाच
दृष्ट्वा तु पाण्डवानीकं व्यूढं दुर्योधनस्तदा ।
आचार्यमुपसंगम्य राजा वचनमब्रवीत् ॥२॥

इस पर संजय बोला : उस समय राजा दुर्योधन ने व्यूहरचनायुक्त पांडवों की सेना को देखकर और द्रोणाचार्य के पास जाकर, यह वचन कहा।

पश्यैतां पाण्डुपुत्राणामाचार्य महतीं चमूम् ।
व्यूढां द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता ॥३॥
अत्र शूरा महेष्वासा भीमार्जुनसमा युधि ।
युयुधानो विराटश्च द्रुपदश्च महारथः ॥४॥
हे आचार्य, आपके बुद्धिमान शिष्य द्रुयदयुत्र धृष्टदयुम्न द्वारा व्यूहाकार खड़ी की हुई पांडुपुत्रों की इस भारी सेना को देखिए। हम सेना में बड़े—बड़े धनुषों वाले, युद्ध में भीम और अर्जुन के समान बहुत मे शूरवीर हैं। जैसे सात्यकि और विराट तथा महारथी राजा द्रुपद।

धृष्टकेतुश्चेकितानः काशिराजश्च वीर्यवान् ।
पुरुजित्कुन्तिभोजश्च शैब्यश्च नरपुङवः ॥५॥
और धृष्टकेतु चेकितान तथा बलवान काशिराज पुरुजित कुंतिभोज और मनुष्यों में श्रेष्ठ शैब्य।

युधामन्युश्च विक्रान्त उत्तमौजाश्च वीर्यवान् ।
सौभद्रो द्रौपदेयाश्च सर्व एव महारथाः ॥६॥
अस्माकं तु विशिष्टा ये तान्निबोध द्विजोत्तम ।
नायका मम सैन्यस्य सञ्ज्ञार्थं तान्ब्रवीमि ते ॥७॥
और पराक्रमी युधामन्यु तथा बलवान उत्तमौजा, सुभद्रापुत्र अभिमन्यु और द्रौपदी के पांचों पुत्र, यह सब ही महारथी हैं। हे ब्रह्मण श्रेष्ठ, हमारे पक्ष में भी जो—जो प्रधान है, उनको आप समझ लीजिस। आपके जानने के लिए मेरी सेना के जो— जो सेनापति है, उनको कहता हूं।

मनुष्य का मन जब हीनता की ग्रंथि से, इनफीरिआरिटी काप्लेक्स से पीड़ित होता है, जब मनुष्य का मन अपने को भीतर हीन समझता है, तब सदा ही अपनी श्रेष्ठता की चर्चा से शुरू करता है। लेकिन जब हीन व्यक्ति नहीं होते, तब सदा ही दूसरे की श्रेष्ठता से चर्चा शुरू होती है। यह दुर्योधन कह रहा है द्रोणाचार्य से, पांडवों की सेना में कौन—कौन महारथी, कौन—कौन महायोद्धा इकट्ठे हैं। इससे वह शुरू कर रहा है। यह बड़ी प्रतीक की, बड़ी सिम्बालिक बात है। साधारणत: शत्रु की प्रशंसा से बात शुरू नहीं होती। साधारणत: शत्रु की निंदा से बात शुरू होती है। साधारणत: शत्रु के साथ अपनी प्रशंसा से बात शुरू होती है। शत्रु की सेना में कौन—कौन महावीर इकट्ठे हैं, दुर्योधन उनसे बात शुरू कर रहा है।

दुर्योधन कैसा भी व्यक्ति हो, इनफीरिआरिटी काप्लेक्स से पीड़ित व्यक्ति नहीं है, हीनता की ग्रंथि से पीड़ित व्यक्ति नहीं है। और यह बड़े मजे की बात है कि अच्छा आदमी भी अगर हीनता की ग्रंथि से पीड़ित हो तो उस बुरे आदमी से बदतर होता है, जो हीनता की ग्रंथि से पीड़ित नहीं है। दूसरे की प्रशंसा से केवल वही शुरू कर सकता है, जो अपने प्रति बिलकुल आश्वस्त है।

यह एक बुनियादी अंतर सदियों में पड़ा है। बुरे आदमी पहले भी थे, अच्छे आदमी पहले भी थे। ऐसा नहीं है कि आज बुरे आदमी बढ़ गए हैं और अच्छे आदमी कम हो गए हैं। आज भी बुरे आदमी उतने ही हैं, अच्छे आदमी उतने ही हैं। अंतर क्या पड़ा है?

निरंतर धर्म का विचार करने वाले लोग ऐसा प्रचार करते रहते हैं कि पहले लोग अच्छे थे और अब लोग बुरे हो गए हैं। ऐसी उनकी धारणा, मेरे खयाल में बुनियादी रूप से गलत है। बुरे आदमी सदा थे, अच्छे आदमी सदा थे। अंतर इतना ऊपरी नहीं है, अंतर; बहुत भीतरी पड़ा है। बुरा आदमी भी पहले हीनता की ग्रंथि से पीड़ित नहीं था। आज अच्छा आदमी भी हीनता की ग्रंथि से पीड़ित है। यह गहरे में अंतर पड़ा है।

आज अच्छे से अच्छा आदमी भी बाहर से ही अच्छा—अच्छा है, भीतर स्वयं भी आश्वस्त नहीं है। और ध्यान रहे, जिस आदमी का आश्वासन स्वयं पर नहीं है, उसकी अच्छाई टिकने वाली अच्छाई नहीं हो सकती। बस, स्किनडीप होगी, चमड़ी के बराबर गहरी होगी। जरा—सा खरोंच दो और उसकी बुराई बाहर आ जाएगी। और जो बुरा आदमी अपनी बुराई के होते हुए भी आश्वस्त है, उसकी बुराई भी किसी दिन बदली जा सकती है, क्योंकि बहुत गहरी अच्छाई बुनियाद में खड़ी है—वह स्वयं का आश्वासन।

इस बात को मैं महत्वपूर्ण मानता हूं कि दुर्योधन जैसा बुरा आदमी एक बहुत ही शुभ ढंग से चर्चा को शुरू कर रहा है। वह विरोधी के गुणों का पहले उल्लेख कर रहा है, फिर पीछे अपनी सेना के महारथियों का उल्लेख कर रहा है।

भवान्भीष्मश्च कर्णश्च कृपश्च समितिञ्जयः ।
अश्वत्थामा विकर्णश्च सौमदत्तिस्तथैव च ॥८॥
अन्ये च बहवः शूरा मदर्थे त्यक्तजीविताः ।
नानाशस्त्रप्रहरणाः सर्वे युद्धविशारदाः ॥९॥

एक तो स्वयं आप और पितामह भीष्म तथा कर्ण और संग्रामीवजयी कृपाचार्य तथा वैसे ही अश्वत्थामा, विकर्ण और सोमदत्त का पुत्र भूरिश्रवा, और भी बहुत से शूरवीर अनेक प्रकार के शस्त्र—अस्त्रों से युक्त मेरे लिए जीवन की आशा को त्यागने वाले सबके सब युद्ध में चतुर हैं।
अपर्याप्तं तदस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितम् ।
पर्याप्तं त्विदमेतेषां बलं भीमाभिरक्षितम् ॥१०॥
अयनेषु च सर्वेषु यथाभागमवस्थिताः ।
भीष्ममेवाभिरक्षन्तु भवन्तः सर्व एव हि ॥११॥
और भीष्म पितामह द्वारा रक्षित हमारी वह सेना सब प्रकार से अजेय है और भीम द्वारा रक्षित इन लोगों की यह सेना जीतने में सुगम है। इसलिए सब मोर्चों पर अपनी—अपनी जगह स्थित रहते हुए आप लोग सब के सब ही निःसंदेह भीष्म पितामह की ही सब ओर से रक्षा करें।
प्रश्न : भगवान श्री, श्रीमद्भगवद्गीता में सारा भार अर्जुन पर है और यहां गीता में दुर्योधन कहता है, पांडवों की सेना भीम—अभिरक्षित और कौरवों की भीष्म.....। तो भीष्म के सामने भीम को रखने का खयाल क्या यह नहीं हो सकता कि दुर्योधन अपने प्रतिस्पर्धी के रूप में भीम को ही देखता है?
यह बिंदु विचारणीय है। सारा युद्ध अर्जुन की धुरी पर है, लेकिन यह पीछे से सोची गई बात है—युद्ध के बाद, युद्ध की निष्पत्ति पर। जो युद्ध के पूरे फल को जानते हैं, वे कहेंगे कि सारा युद्ध अर्जुन की धुरी पर घूमा है। लेकिन जो युद्ध के प्रारंभ में खड़े थे, वे ऐसा नहीं सोच सकते थे। दुर्योधन के लिए युद्ध की सारी संभावना भीम से ही पैदा होती थी। उसके कारण थे। अर्जुन जैसे भले व्यक्ति पर युद्ध का भरोसा दुर्योधन भी नहीं कर सकता था। अर्जुन डावाडोल हो सकता है, इसकी संभावना दुर्योधन के मन में भी है। अर्जुन युद्ध से भाग सकता है, इसकी कोई गहरी अचेतन प्रतीति दुर्योधन के मन में भी है। अगर युद्ध टिकेगा, तो भीम पर टिकेगा। युद्ध के लिए भीम जैसे कम बुद्धि के, लेकिन ज्यादा शक्तिशाली लोगों पर भरोसा किया जा सकता है।

अर्जुन बुद्धिमान है। और जहा बुद्धि है, वहा संशय है। और जहा संशय है, वहा द्वंद्व है। अर्जुन विचारशील है। और जहा विचारशीलता है, वहा पूरे पर्सपेक्टिव, पूरे परिप्रेक्ष्य को सोचने की क्षमता है; वहा युद्ध जैसी भयंकर स्थिति में आंख बंद करके उतरना कठिन है। दुर्योधन भरोसा कर सकता है—युद्ध के लिए—भीम का।

भीम और दुर्योधन के बीच गहरा सामंजस्य है। भीम और दुर्योधन एक ही प्रकृति के, बहुत गहरे में एक ही सोच के, एक ही ढंग के व्यक्ति हैं। इसलिए अगर दुर्योधन ने ऐसा देखा कि भीम केंद्र है दूसरी तरफ, तो गलत नहीं देखा, ठीक ही देखा। और गीता भी पीछे सिद्ध करती है कि अर्जुन भागा— भागा हो गया है। अर्जुन पलायनवादी दिखाई पड़ा है, वह एस्केपिस्ट मालूम पड़ा है। अर्जुन जैसे व्यक्ति की संभावना यही है। अर्जुन के लिए यह युद्ध भारी पड़ा है। युद्ध में जाना, अर्जुन के लिए अपने को रूपांतरित करके ही संभव हो सका है। अर्जुन एक नए तल पर पहुंचकर ही युद्ध के लिए राजी हो सका है।

भीम जैसा था, उसी तल पर युद्ध के लिए तैयार था। भीम के लिए युद्ध सहजता है, जैसे दुर्योधन के लिए सहजता है। इसलिए दुर्योधन भीम को केंद्र में देखता है, तो आकस्मिक नहीं है। लेकिन यह युद्ध के प्रारंभ की बात है। युद्ध की निष्पत्ति क्या होगी, अंत क्या होगा, यह दुर्योधन को पता नहीं है। हमें पता है।

और ध्यान रहे, अक्सर ही जीवन जैसा प्रारंभ होता है, वैसा अंत नहीं होता। अक्सर अंत सदा ही अनिर्णीत है, अंत सदा ही अद्दश्य है। अक्सर ही जो हम सोचकर चलते हैं, वह नहीं होता। अक्सर ही जो हम मानकर चलते हैं, वह नहीं होता। जीवन एक अशात यात्रा है। इसलिए जीवन के प्रारंभिक क्षणों में—किसी भी घटना के प्रारंभिक क्षणों मे—जो सोचा जाता है, वह अंतिम निष्पत्ति नहीं बनती। और हम भाग्य के निर्माण की चेष्टा में रत हो सकते हैं, लेकिन भाग्य के निर्णायक नहीं हो पाते हैं; निष्पत्ति कुछ और होती है।

खयाल तो दुर्योधन का यही था कि भीम केंद्र पर रहेगा। और अगर भीम केंद्र पर रहता, तो शायद दुर्योधन जो कहता है कि हम विजयी हो सकेंगे, हो सकता था। लेकिन दुर्योधन की द्दष्टि सही सिद्ध नहीं हुई। और आकस्मिक तत्व बीच में उतर आया। वह भी सोच लेने जैसा है।

कृष्ण का खयाल ही न था। कि अर्जुन अगर भागने लगे, तो कृष्ण उसे युद्ध में रत करवा सकते हैं। हम सबको भी खयाल नहीं होता। जब हम जिंदगी में चलते हैं, तो एक अज्ञात परमात्मा की तरफ से भी बीच में कुछ होगा, इसका

हमें कभी खयाल नहीं होता। हम जो भी हिसाब लगाते हैं, वह दृश्य का होता है। अदृश्य भी बीच में इंटरपेनिटूएट कर जाएगा, अदृश्य भी बीच में उतर आएगा, इसका हमें भी कोई खयाल नहीं होता।

कृष्ण के रूप में अदृश्य बीच में उतर आया है और सारी कथा बदल गई है। जो होता, वह नहीं हुआ; और जो नहीं होने की संभावना मालूम होती थी, वह हुआ है। और अशात जब उतरता है तो उसके प्रिडिक्यान नहीं हो सकते, उसकी कोई भविष्यवाणी नहीं हो सकती। इसलिए जब कृष्ण भागते हुए अर्जुन को युद्ध में धक्का देने लगे, तो जो भी इस कथा को पहली बार पढ़ता है, वह शॉक खाए बिना नहीं रह सकता; उसको धक्का लगता है।

जब इमर्सन ने पहली बार पढ़ा, तो उसने किताब बंद कर दी; वह घबड़ा गया। क्योंकि अर्जुन जो कह रहा था, वह सभी तथाकथित धार्मिक लोगों को ठीक मालूम पड़ेगा। वह ठीक तथाकथित धार्मिक आदमी का तर्क दे रहा था। जब हेनरी थारो ने इस जगह आकर देखा कि कृष्ण उसे युद्ध में जाने की सलाह देते हैं, तो वह भी घबड़ा गया। हेनरी थारो ने भी लिखा है कि मुझे ऐसा भरोसा नहीं था, खयाल भी नहीं था कि कहानी ऐसा मोड़ लेगी कि कृष्ण और युद्ध में जाने की सलाह देंगे! गांधी को भी वहीं तकलीफ थी, उनकी पीड़ा भी वहीं थी।

लेकिन जिंदगी किन्हीं सिद्धातों के हिसाब से नहीं चलती। जिंदगी बहुत अनूठी है। जिंदगी रेल की पटरियों पर दौड़ती नहीं, गंगा की धारा की तरह बहती है; उसके रास्ते पहले से तय नहीं हैं। और जब परमात्मा बीच में आता है, तो सब डिस्टर्ब कर देता है जो भी तैयार था, जो भी आदमी ने निर्मित किया था, जो आदमी की बुद्धि सोचती थी, सब उलट—फेर हो जाता है।

इसलिए बीच में परमात्मा भी उतर आएगा इस युद्ध में, इसकी दुर्योधन को कभी कल्पना न थी। इसलिए वह जो कह रहा है, प्रारंभिक वक्तव्य है। जैसा कि हम सब आदमी जिंदगी के प्रारंभ में जो वक्तव्य देते हैं, ऐसे ही होते हैं। बीच में अशात उतरता चलता है और सब कहानी बदलती चलती है। अगर हम जिंदगी को पीछे से लौटकर देखें, तो हम कहेंगे, जो भी हमने सोचा था, वह सब गलत हुआ : जहा सफलता सोची थी, वहा असफलता मिली; जो पाना चाहता था, वह नहीं पाया जा सका; जिसके मिलने से सुख सोचा था, वह मिल गया और दुख पाया; और जिसके मिलने की कभी कामना भी न की थी, उसकी झलक मिली और आनंद के झरने फूटे। सब उलटा हो जाता है।

लेकिन इतने बुद्धिमान आदमी इस जगत में कम हैं, जो निष्पत्ति को पहले ध्यान में लें। हम सब प्रारंभ को ही पहले ध्यान में लेते हैं। काश! हम अंत को पहले ध्यान में लें तो जिंदगी की कथा बिलकुल और हो सकती है। लेकिन अगर दुर्योधन अंत को पहले ध्यान में ले लें, तो युद्ध नहीं हो सकता। दुर्योधन अंत को ध्यान में नहीं ले सकता; अंत को मानकर चलेगा कि ऐसा होगा। इसलिए वह कह रहा है बार—बार कि यद्यपि सेनाएं उस तरफ महान हैं, लेकिन जीत हमारी ही होगी। मेरे योद्धा जीवन देकर भी मुझे जिताने के लिए आतुर हैं।

लेकिन हम अपनी सारी शक्ति भी लगा दें, तो भी असत्य जीत नहीं सकता। हम सारा जीवन भी लगा दें, तो भी असत्य जीत नहीं सकता; इस निष्पत्ति का दुर्योधन को कोई भी बोध नहीं हो सकता है। और सत्य, जो कि हारता हुआ भी मालूम पड़ता हो, अंत में जीत जाता है। असत्य प्रारंभ में जीतता हुआ मालूम पड़ता है, अंत में हार जाता है। सत्य प्रारंभ में हारता हुआ मालूम पड़ता है, अंत में जीत जाता है। लेकिन प्रारंभ से अंत को देख पाना कहा संभव है! जो देख पाता है, वह धार्मिक हो जाता है। जो नहीं देख पाता है, वह दुर्योधन की तरह अंधे युद्ध में उतरता चला जाता है।

प्रश्न : भगवान श्री, एक तो अज्ञात का विल होता है, एक व्यक्ति का अपना विल होता है। दोनों में कांफ्लिक्ट होते हैं। तो व्यक्ति कैसे जान पाए कि अज्ञात का क्या विल है, अज्ञात की क्या इच्छा है?
पूछते हैं, व्यक्ति कैसे जान पाए कि अशात की क्या इच्छा है? व्यक्ति कभी नहीं जान पाता। हा, व्यक्ति अपने को छोड़ दे, मिटा दे, तो तत्काल जान लेता है; अशात के साथ एक हो जाता है। बूंद नहीं जान सकती कि सागर क्या है, जब तक कि बूंद सागर के साथ खो न जाए। व्यक्ति नहीं जान सकता कि परमात्मा की इच्छा क्या है। जब तक व्यक्ति अपने को व्यक्ति बनाए है, तब तक नहीं जान सकता है। व्यक्ति अपने को खो दे, तो फिर परमात्मा की इच्छा ही शेष रह जाती है, क्योंकि व्यक्ति की कोई इच्छा शेष नहीं रह जाती। तब जानने का सवाल ही नहीं उठता। तब व्यक्ति वैसे ही जीता है, जैसे अज्ञात उसे जिलाता है। तब व्यक्ति की कोई आकांक्षा, तब व्यक्ति की कोई फलाकांक्षा, तब व्यक्ति

की कोई अपनी अभीप्सा, तब व्यक्ति की समग्र की आकांक्षा के ऊपर अपनी थोपने की कोई वृत्ति शेष नहीं रह जाती, क्योंकि व्यक्ति शेष नहीं रह जाता।

जब तक व्यक्ति है, तब तक अज्ञात क्या चाहता है, नहीं जाना जा सकता। और जब व्यक्ति नहीं है, तब जानने की कोई जरूरत नहीं; जो भी होता है, वह अज्ञात ही करवाता है। तब व्यक्ति एक इंस्ट्रूमेंट हो जाता है, तब व्यक्ति एक साधनमात्र हो जाता है।

कृष्ण पूरी गीता में आगे अर्जुन को यही समझाते हैं कि वह अपने को छोड़ दे अज्ञात के हाथों में, समर्पित कर दे। क्योंकि वह जिन्हें सोच रहा है कि ये मर जाएंगे, वे अशात के द्वारा पहले ही मारे जा चुके हैं। कि वह जिन्हें सोचता है कि इनकी मृत्यु के लिए मैं जिम्मेवार हो जाऊंगा, उनके लिए वह बिलकुल भी जिम्मेवार नहीं होगा। अगर वह अपने को बचाता है, तो जिम्मेवार हो जाएगा। अगर अपने को छोड़कर साधनवत, साक्षीवत लड़ सकता है, तो : उसकी कोई जिम्मेवारी नहीं रह जाती है।

'व्यक्ति अपने को खो दे समष्टि में, व्यक्ति अपने को समर्पित कर दे, छोड़ दे अहंकार को, तो ब्रह्म की इच्छा ही फलित होती है। अभी भी वही फलित हो रही है। ऐसा नहीं कि हम उससे भिन्न फलित करा लेंगे। लेकिन हम भिन्न फलित कराने में लड़ेंगे, टूटेंगे, नष्ट होंगे।

एक छोटी—सी कहानी मैं निरंतर कहता रहा हूं। मैं कहता रहा हूं कि एक नदी में बहुत बाढ़ आई है और दो छोटे—से तिनके उस नदी में बह रहे हैं। एक तिनका नदी में आड़ा पड़ गया है और नदी की बाढ़ को रोकने की कोशिश कर रहा है। और वह चिल्ला रहा है बहुत जोर से कि नहीं बढ़ने देंगे नदी को, यद्यपि नदी बढ़ी जा रही है। वह चिल्ला रहा है कि रोककर रहेंगे, यद्यपि रोक नहीं पा रहा है। वह चिल्ला रहा है कि नदी को हर हालत में रोककर ही रहूंगा, जीऊं या मरूं! लेकिन बहा जा रहा है। नदी को न उसकी आवाज सुनाई पड़ती है, न उसके संघर्ष का पता चलता है। एक छोटा—सा तिनका! नदी को उसका कोई भी पता नहीं है। नदी को कोई फर्क नहीं पड़ता। लेकिन तिनके को बहुत फर्क पड़ रहा है। उसकी जिंदगी बड़ी मुसीबत में पड़ गई है, बहा जा रहा है। नहीं लड़ेगा तो जहा पहुंचेगा, वहीं पहुंचेगा लड़कर भी। लेकिन यह बीच का क्षण, यह बीच का काल, दुख, पीड़ा, द्वंद्व और चिंता का काल हो जाएगा।

उसके पड़ोस में एक दूसरे तिनके ने छोड़ दिया है अपने को। वह नदी में आड़ा नहीं पड़ा है, सीधा पड़ा है, नदी जिस तरफ बह रही है उसी तरफ, और सोच रहा है कि मैं नदी को बहने में सहायता दे रहा हूं। उसका भी नदी को कोई पता नहीं है। वह सोच रहा है, मैं नदी को सागर तक पहुंचा ही दूंगा; मेरे साथ है तो पहुंच ही जाएगी। नदी को उसकी सहायता का भी कोई पता नहीं है।

लेकिन नदी को कोई फर्क नहीं पड़ता, उन दोनों तिनकों को बहुत फर्क पड़ रहा है। जो नदी को साथ बहा रहा है, वह बड़े आनंद में है, वह बड़ी मौज में नाच रहा है; और जो नदी से लड़ रहा है, वह बड़ी पीड़ा में है। उसका नाच, नाच नहीं है, एक दुखस्वप्न है। उसका नाच उसके अंगों की टूटन है; वह तकलीफ में पड़ा है, हार रहा है। और जो नदी को बहा रहा है, वह जीत रहा है।

व्यक्ति ब्रह्म की इच्छा के अतिरिक्त कुछ कभी कर नहीं पाता है, लेकिन लड सकता है, इतनी स्वतंत्रता है। और लड़कर अपने को चिंतित कर सकता है, इतनी स्वतंत्रता है।

सार्त्र का एक वचन है, जो बड़ा कीमती है। वचन है, ह्युमैनिटी इज कंडेम्ड टु बी फ्री—आदमी स्वतंत्र होने के लिए मजबूर है; विवश है, कंडेम्ड है, निंदित है—स्वतंत्र होने के लिए।

लेकिन आदमी अपनी स्वतंत्रता के दो उपयोग कर सकता है। अपनी स्वतंत्रता को वह ब्रह्म की इच्छा से संघर्ष बना सकता है। और तब उसका जीवन दुख, पीड़ा, एंग्विश, संताप का जीवन होगा। और अंततः पराजय फल होगी। और कोई व्यक्ति अपनी स्वतंत्रता को ब्रह्म के प्रति समर्पण बना सकता है, तब जीवन आनंद का, ब्लिस का, नृत्य का, गीत का जीवन होगा। और अंत? अंत में विजय के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है। वह जो तिनका सोच रहा है कि नदी

को साथ दे रहा हूं, वह विजयी ही होने वाला है। उसकी हार का कोई उपाय नहीं है। और जो नदी को रोक रहा है, वह हारने ही वाला है, उसकी जीत का कोई उपाय नहीं है।

ब्रह्म की इच्छा को नहीं जाना जा सकता है, लेकिन ब्रह्म के साथ एक हुआ जा सकता है। और तब, अपनी इच्छा खो जाती है, उसकी इच्छा ही शेष रह जाती है।

प्रश्न : भगवान श्री, वैज्ञानिक—सिद्धि में व्यक्ति का अपना कुछ होता है। और अज्ञात इस वैज्ञानिक— सिद्धि में कैसे उतरता होगा, यह तकलीफ की बात बन जाती है!
ऐसा साधारणत: लगता है कि वैज्ञानिक खोज में व्यक्ति की अपनी इच्छा काम करती है; ऐसा बहुत ऊपर से देखने पर लगता है; बहुत भीतर से देखने पर ऐसा नहीं लगेगा। अगर जगत के बड़े से बड़े वैज्ञानिकों को हम देखें तो हम बहुत हैरान हो जाएंगे। जगत के सभी बड़े वैज्ञानिकों के अनुभव बहुत और हैं। कालेज, युनिवर्सिटीज में विज्ञान की जो धारणा पैदा होती है, वैसा अनुभव उनका नहीं है।

मैडम क्यूरी ने लिखा है कि मुझे एक सवाल दिनों से पीड़ित किए हुए है। उसे हल करती हूं और हल नहीं होता है। थक गई हूं परेशान हो गई हूं, आखिर हल करने की बात छोड़ दी है। और एक रात दो बजे वैसे ही कागजात टेबल पर अधूरे छोड़कर सो गई हूं और सोच लिया कि अब इस सवाल को छोड़ ही देना है।

थक गया व्यक्ति। लेकिन सुबह उठकर देखा है कि आधा सवाल जहा छोड़ा था, वह सुबह पूरा हो गया है। कमरे में तो कोई आया नहीं, द्वार बंद थे। और कमरे में भी कोई आकर उसको हल कर सकता था, जिसको मैडम क्यूरी हल नहीं कर सकती थी, इसकी भी संभावना नहीं है। नोबल—प्राइज—विनर थी वह महिला। घर में नौकर—चाकर ही थे, उनसे तो कोई आशा नहीं है। वह तो और बड़ा मिरेकल होगा कि घर में नौकर—चाकर आकर हल कर दें। लेकिन हल तो हो गया है। और आधा ही छोड़ा था और आधा पूरा है। तब बड़ी मुश्किल मे पड़ गई। सब द्वार—दरवाजे देखे। कोई परमात्मा उतर आए, इसकी भी आस्था उसे नहीं हो सकती। कोई परमात्मा ऐसे ऊपर से उतर भी नहीं आया था।

लेकिन गौर से देखा तो पाया कि बाकी अक्षर भी उसके ही हैं। तब उसे खयाल आना शुरू हुआ कि रात वह नींद में सपने में उठी। सपने का उसे याद आ गया कि वह सपने में उठी है। उसने सपना देखा कि वह सवाल हल कर रही है। वह नींद में उठी है रात में और उसने सवाल हल किया है। फिर तो यह उसकी व्यवस्थित विधि हो गई कि जब कोई सवाल हल न हो, तब वह उसे तकिए के नीचे दबाकर सो जाए; रात उठकर हल कर ले।

दिनभर तो मैडम क्यूरी इंडिविजुअल थी, व्यक्ति थी। रात नींद में अहं खो जाता है, बूंद सागर से मिल जाती है। और जो सवाल हमारा चेतन मन नहीं खोज पाया, वह हमारा अचेतन, गहरे में जो परमात्मा से जुड़ा है, खोज पाता है।

आर्किमिडीज एक सवाल हल कर रहा था, वह हल नहीं होता था। वह बड़ी मुश्किल में पड़ गया था। सम्राट ने कहा था, हल करके ही लाओ। आर्किमिडीज की सारी प्रतिष्ठा हल करने पर ही निर्भर' थी, लेकिन थक गया। रोज सम्राट का संदेश आता है कि कब तक हल करोगे?

सम्राट को किसी ने एक सोने का बहुत कीमती आभूषण भेंट किया था। लेकिन सम्राट को शक था कि धोखा दिया गया है, और सोने में कुछ मिला है। लेकिन बिना आभूषण को मिटाए पता लगाना है कि उसमें कोई और धातु तो नहीं मिली है! अब उस वक्त तक कोई उपाय नहीं था जानने का। और बड़ा था आभूषण। उसमें कहीं बीच में अगर अंदर कोई चीज डाल दी गई हो, तो वजन तो बढ़ ही जाएगा।

आर्किमिडीज थक गया, परेशान हो गया। फिर एक दिन सुबह अपने टब में लेटा हुआ है, पड़ा हुआ है! बस, अचानक, नंगा ही था, सवाल हल हो गया। भागा! भूल गया—आर्किमिडीज अगर होता, तो कभी न भूलता कि मैं नंगा हूं—सड़क पर आ गया! और चिल्लाने लगा, इरेका, इरेका, मिल गया। और भागा राजमहल की तरफ। लोगों ने पकड़ा कि क्या कर रहे हो? राजा के सामने नंगे पहुंच जाओगे? उसने कहा, लेकिन यह तो मुझे खयाल ही न रहा! घर वापिस आया।

यह जो आदमी सड़क पर पहुंच गया था नग्न, यह आर्किमिडीज नहीं था। आर्किमिडीज सड़क पर नहीं पहुंच सकता था। यह व्यक्ति नहीं था। और यह जो हल हुआ था सवाल, यह व्यक्ति की चेतना में हल नहीं हुआ था। यह निर्व्यक्ति—चेतना में हल हुआ था। वह बाथरूम में पड़ा था अपने टब में—रिलैक्स, शिथिल। ध्यान घट गया, भीतर उतर गया—सवाल हल हो गया। जो सवाल स्वयं से हल न हुआ था, वह टब ने हल कर दिया? टब हल करेगा सवाल को? जो स्वयं से हल नहीं हुआ था, वह पानी में लेटने से हल हो जाएगा? पानी में लेटने से कोई बुद्धि बढ़ जाती है? जो कपड़े पहने हल नहीं हुआ था, वह नंगे होने से हल हो जाएगा?

नहीं, कुछ और घटना घट गई है। यह व्यक्ति नहीं रहा कुछ देर के लिए, अव्यक्ति हो गया। यह कुछ देर के लिए ब्रह्म के स्रोत में खो गया।

अगर हम जगत के सारे बड़े वैज्ञानिकों के—आइस्टीन के, मैक्स प्लाक के या एडिंग्टन के या एडीसन के—इनके अगर हम अनुभव पढ़ें, तो इन सब का अनुभव यह है कि जो भी हमने जाना, वह हमने नहीं जाना। निरंतर ही ऐसा हुआ है कि जब हमने जाना, तब हम न थे और जानना घटित हुआ है। यही उपनिषद के ऋषि कहते हैं, यही वेद के ऋषि कहते हैं, यही मोहम्मद कहते हैं, यही जीसस कहते हैं।

अगर हम कहते हैं कि वेद अपौरुषेय हैं, तो उसका और कोई मतलब नहीं। उसका यह मतलब नहीं कि ईश्वर उतरा और उसने किताब लिखी। ऐसी पागलपन की बातें करने की कोई जरूरत नहीं है। अपौरुषेय का इतना ही मतलब है कि जिस पुरुष पर यह घटना घटी, उस वक्त वह मौजूद नहीं था; उस वक्त मैं मौजूद नहीं था। जब यह घटना घटी, जब यह उपनिषद का वचन उतरा किसी पर और जब यह मोहम्मद पर कुरान उतरी और जब ये बाइबिल के वचन जीसस पर उतरे, तो वे मौजूद नहीं थे।

धर्म और विज्ञान के अनुभव भिन्न—भिन्न नहीं हैं; हो नहीं सकते; क्योंकि अगर विज्ञान में कोई सत्य उतरता है, तो उसके उतरने का भी मार्ग वही है जो धर्म में उतरता है, जो धर्म के उतरने का मार्ग है। सत्य के उतरने का एक ही मार्ग है, जब व्यक्ति नहीं होता तो परमात्मा से सत्य उतरता है; हमारे भीतर जगह खाली हो जाती है, उस खाली जगह में सत्य प्रवेश करता है।

दुनिया में कोई भी ढंग से—चाहे कोई संगीतज्ञ, चाहे कोई चित्रकार, चाहे कोई कवि, चाहे कोई वैज्ञानिक, चाहे कोई धार्मिक, चाहे कोई मिस्टिक—दुनिया में जिन्होंने भी सत्य की कोई किरण पाई है, उन्होंने तभी पाई है, जब वे स्वयं नहीं थे। यह धर्म को तो बहुत पहले से खयाल में आ गया। लेकिन धर्म का अनुभव दस हजार साल पुराना है। दस हजार साल में धार्मिक—फकीर को, धार्मिक—संत को, धार्मिक—योगी को यह अनुभव हुआ कि यह मैं नहीं हूं।

यह बड़ी मुश्किल बात है। जब पहली दफा आपके भीतर परमात्मा से कुछ आता है, तब डिस्टिक्यान करना बहुत मुश्किल होता है कि यह आपका है कि परमात्मा का है। जब पहली दफा आता है तो डावाडोल होता है मन कि मेरा ही होगा और अहंकार की इच्छा भी होती है कि मेरा ही हो। लेकिन धीरे—धीरे, धीरे—धीरे जब दोनों चीजें साफ होती हैं और पता चलता है कि आप और इस सत्य में कहीं कोई तालमेल नहीं बनता, तब फासला दिखाई पड़ता है, डिस्टेंस दिखाई पड़ता है।

विज्ञान की उम्र नई है अभी—दो—तीन सौ साल। लेकिन दो—तीन सौ साल में वैज्ञानिक विनम्र हुआ है। आज से पचास साल पहले वैज्ञानिक कहता था, जो खोजा, वह हमने खोजा। आज नहीं कहता। आज वह कहता है, हमारी सामर्थ्य के बाहर मालूम पड़ता है सब। आज का वैज्ञानिक उतनी ही मिस्टिसिज्म की भाषा में बोल रहा है, उतने ही रहस्य की भाषा में, जितना संत बोले थे।

इसलिए जल्दी न करें! और सौ साल, और वैज्ञानिक ठीक वही भाषा बोलेगा, जो उपनिषद बोलते हैं। बोलनी ही पड़ेगी वही भाषा, जो बुद्ध बोलते हैं। बोलनी ही पड़ेगी वही भाषा, जो अगस्तीन और फ्रांसिस बोलते हैं। बोलनी ही पड़ेगी। बोलनी पड़ेगी इसलिए कि जितना—जितना सत्य का गहरा अनुभव होगा, उतना—उतना व्यक्ति का अनुभव क्षीण होता है। और जितना सत्य प्रगट होता है, उतना ही अहंकार लीन होता है। और एक दिन पता चलता है कि जो भी जाना गया है, वह प्रसाद है; वह ग्रेस है; वह उतरा है; उसमें मैं नहीं हूं। और जो—जो मैंने नहीं जाना, उसकी

जिम्मेवारी मेरी है, क्योंकि मैं इतना मजबूत था कि जान नहीं सकता था। मैं इतना गहन था कि सत्य नहीं उतर सकता था। सत्य उतरता है खाली चित्त में, शून्य. चित्त में। और असत्य उतारना हो, तो मैं की मौजूदगी जरूरी है।

विज्ञान की खोज को बाधा नहीं पड़ेगी। जो खोज हुई है, वह भी अशात के संबंध से ही हुई है; समर्पण से हुई है। और जो खोज होगी आगे, वह भी समर्पण से ही होगी। समर्पण के द्वार के अतिरिक्त सत्य कभी किसी और द्वार से न आया है, न आ सकता है।

प्रश्न : भगवान श्री, आपका यह स्टेटमेंट बड़ी दिक्कत में डाल देता है कि अचेतन मन भगवान से जुड़ा हुआ होता है। यह तो जुंग ने पीछे से बताया, मिथोलाजी का कलेक्टिव अनकाशंस से संबंध जोड़कर। मगर फ्रायड कहता है कि वह शैतान से भी जुड़ा होता है, तो तकलीफ बढ़ जाती है।
फ्रायड का ऐसा जरूर खयाल है कि वह जो अचेतन मन है हमारा, वह भगवान से ही नहीं, शैतान से भी जुड़ा होता है। असल में भगवान और शैतान हमारे शब्द है। जब किसी चीज को हम पसंद नहीं करते, तो हम कहते हैं, शैतान से जुड़ा है; और किसी चीज को जब हम पसंद करते हैं, तो हम कहते हैं, भगवान से जुड़ा है। लेकिन मैं इतना ही कह रहा हूं कि अज्ञात से जुड़ा है। और अज्ञात मेरे लिए भगवान है। और भगवान में मेरे लिए शैतान समाविष्ट है, उससे अलग नहीं है।

असल में जो हमें पसंद नहीं है, मन होता है कि वह शैतान ने किया होगा। जो गलत, असंगत नहीं है, वह भगवान ने किया होगा। ऐसा हमने सोच रखा है कि हम केंद्र पर हैं जीवन के, और जो हमारे पसंद पड़ता है, वह भगवान का किया हुआ है, भगवान हमारी सेवा कर रहा है। जो पसंद नहीं पड़ता, वह शैतान का किया हुआ है; शैतान हमसे दुश्मनी कर रहा है। यह मनुष्य का अहंकार है, जिसने शैतान और भगवान को भी अपनी सेवा में लगा रखा है।

भगवान के अतिरिक्त कुछ है ही नहीं। जिसे हम शैतान कहते हैं, वह सिर्फ हमारी अस्वीकृति है। जिसे हम बुरा कहते हैं, वह सिर्फ हमारी अस्वीकृति है। और अगर हम बुरे में भी गहरे देख पाएं, तो फौरन हम पाएंगे कि बुरे में भला छिपा होता है। दुख में भी गहरे देख पाएं, तो पाएंगे कि सुख छिपा होता है। अभिशाप में भी गहरे देख पाएं, तो पाएंगे कि वरदान छिपा होता है। असल में बुरा और भला एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। शैतान के खिलाफ। जो भगवान है, उसे मैं अज्ञात नहीं कह रहा; मैं अज्ञात उसे कह रहा हूं? जो हम सबके जीवन की भूमि है, जो अस्तित्व का आधार है। उस अस्तित्व के आधार से ही रावण भी निकलता है, उस अस्तित्व के आधार से ही राम भी निकलते हैं। उस अस्तित्व से अंधकार भी निकलता है, उस अस्तित्व से प्रकाश भी निकलता है।

हमें अंधकार में डर लगता है, तो मन होता है, अंधकार शैतान पैदा करता होगा। हमें रोशनी अच्छी लगती है, तो मन होता है कि भगवान पैदा करता होगा। लेकिन अंधकार में कुछ भी बुरा नहीं है, रोशनी में कुछ भी भला नहीं है। और जो अस्तित्व को प्रेम करता है, वह अंधकार में भी परमात्मा को पाएगा और प्रकाश में भी परमात्मा को पाएगा।

सच तो यह है कि अंधकार को भय के कारण हम कभी—उसके सौंदर्य को—जान ही नहीं पाते, उसके रस को, उसके रहस्य को हम कभी जान ही नहीं पाते। हमारा भय मनुष्य निर्मित भय है। कंदराओं से आ रहे हैं हम, जंगली कंदराओं से होकर गुजरे हैं हम। अंधेरा बड़ा खतरनाक था। जंगली जानवर हमला कर देता; रात डराती थी। इसलिए अग्नि जब पहली दफा प्रकट हो सकी, तो हमने उसे देवता बनाया। क्योंकि रात निश्चित हो गई; आग जलाकर हम निर्भय हुए। अंधेरा हमारे अनुभव में भय से जुड़ गया है। रोशनी हमारे हृदय में अभय से जुड़ गई है।

लेकिन अंधेरे का अपना रहस्य है, रोशनी का अपना रहस्य है। और इस जीवन में जो भी महत्वपूर्ण घटित होता है, वह अंधेरे और रोशनी दोनों के सहयोग से घटित होता है। एक बीज हम गड़ाते हैं अंधेरे में, फूल आता है रोशनी में। बीज हम गड़ाते हैं अंधेरे में, जमीन में, जड़ें फैलती हैं अंधेरे में, जमीन में। फूल खिलते हैं आकाश में, रोशनी में। एक बीज को रोशनी में रख दें, फिर फूल कभी न आएंगे। एक फूल को अंधेरे में गड़ा दें, फिर बीज कभी पैदा न होंगे। एक बच्चा पैदा होता है मा के पेट के गहन अंधकार में, जहा रोशनी की एक किरण नहीं पहुंचती। फिर जब बड़ा होता है, तो आता है प्रकाश में। अंधेरा और प्रकाश एक ही जीवन—शक्ति के लिए आधार हैं। जीवन में विभाजन, विरोध, पोलेरिटी मनुष्य की है।

फ्रायड जो कहता है कि शैतान से जुड़ा है……। फ्रायड यहूदी—चिंतन से जुड़ा था। फ्रायड यहूदी घर में पैदा हुआ था। बचपन से ही शैतान और परमात्मा के विरोध को उसने सुन रखा था। यहूदियों ने दो हिस्से तोड़ रखे हैं—एक शैतान है, एक 'भगवान है। वह आदमी के ही मन के दो हिस्से हैं। तो फ्रायड को लगा कि जहा—जहा से बुरी चीजें उठती हैं अचेतन से, वे बुरी—बुरी चीजें शैतान डाल रहा होगा।

नहीं, कोई शैतान नहीं है। और अगर शैतान हमें दिखाई पड़ता है, तो कहीं न कहीं हमारी बुनियादी भूल है। धार्मिक व्यक्ति शैतान को देखने में असमर्थ है। परमात्मा ही है। और अचेतन—जहा से वैज्ञानिक सत्य को पाता है या धार्मिक सत्य को पाता है—वह परमात्मा का द्वार है। धीरे—धीरे हम उसकी गहराई में उतरेंगे, तो खयाल में निश्चित आ सकता है।

तस्य सञ्जनयन्हर्षं कुरुवृद्धः पितामहः ।
सिंहनादं विनद्योच्चैः शंख दध्मो प्रतापवान् ॥१२॥
ततः शंखाश्च भेर्यश्च पणवानकगोमुखाः ।
सहसैवाभ्यहन्यन्त स शब्दस्तुमुलोऽभवत् ॥१३॥
इस प्रकार द्रोणाचार्य से कहते हुए दुर्याधन के वचनों की सुनकर, कौरवों में वृद्धु के प्रतापी पितामह भीष्म ने उसके हृदय में हर्ष उत्पन्न करते हुए उच्च स्वर में सिहनाद के समान गर्जकर शंख बजाया। उसके उपरांत शंख और नगाड़े तथा ढोल, मृदंग और नृसिंहादि बाजे एक साथ ही बजे। उनका वह शब्द बड़ा भयंकर हुआ।

ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यन्दने स्थितौ ।
माधवः पाण्डवश्चैव दिव्यौ शंखौ प्रदध्मतुः ॥१४॥
पाञ्चजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनञ्जयः ।
पौण्ड्रं दध्मौ महाशंख भीमकर्मा वृकोदरः ॥१५॥
अनन्तविजयं राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ ॥१६॥
इसके अनंतर सफेद घोड़ों से युक्त उत्तम रथ में बैठे हुए श्रीकृष्ण और अर्जुन ने भी अलौकिक शंख बजाए। उनमें श्रीकृष्ण ने पांचजन्य नामक शंख और अर्जुन ने देवदत्त नामक शंख बजाया। भयानक कर्म वाले भीमसेन ने पौण्ड्र नामक महाशंख बजाया। कुंतीपुत्र राजा युधिष्ठिर ने अनंतविजय नामक और नकुल तथा सहदेव ने सुधोष और मणिपुष्पक नाम वाले शंख बजाए।

प्रश्न : भगवान श्री, भीष्म के गगनभेदी शंखनाद के प्रतिशब्द में कृष्ण शंखनाद करते हैं। तो क्या उनकी शंखध्वनि एक्शन के बजाय रिएक्शन, प्रत्याघात कही जा सकती है? भगवद्गीता के इस प्रथम अध्याय में कृष्ण का पांचजन्य शंख या अर्जुन का देवदत्त शंख बजाना—यह उदघोषणा के बजाय कोई और तात्पर्य रखता है?
कृष्ण का शंखनाद, भीष्म के शंखनाद की प्रतिक्रिया, रिएकशन है? ऐसा पूछा है।

नहीं, सिर्फ रिस्पांस है, प्रतिसंवेदन है। और शंखनाद से केवल प्रत्युत्तर है—युद्ध का नहीं, लड़ने का नहीं—शंखनाद से सिर्फ स्वीकृति है चुनौती की। वह चुनौती जो भी लाए, वह चुनौती जो भी दिखाए, वह चुनौती जहां भी ले जाए, उसकी स्वीकृति है। इस स्वीकृति को थोड़ा समझना उपयोगी है।

जीवन प्रतिपल चुनौती है। और जो उसे स्वीकार नहीं करता, वह जीते जी ही मर जाता है। बहुत लोग जीते जी ही मर जाते हैं। बर्नार्ड शा कहा करता था कि लोग मरते तो हैं बहुत पहले, दफनाए बहुत बाद में जाते हैं। मरने और दफनाने में कोई चालीस साल का अक्सर फर्क हो जाता है। जिस क्षण से व्यक्ति जीवन की चुनौती का स्वीकार बंद करता है, उसी क्षण से मर जाता है। जीवन है प्रतिपल चुनौती की स्वीकृति।

लेकिन चुनौती की स्वीकृति भी दो तरह की हो सकती है। चुनौती की स्वीकृति भी क्रोधजन्य हो सकती है : और तब प्रतिक्रिया हो जाती है, रिएकशन हो जाती है। और चुनौती की स्वीकृति भी प्रसन्नता, उत्फुल्लता से मुदितापूर्ण हो सकती है; और तब ' प्रतिसंवेदन हो जाती है।

ध्यान देने योग्य है कि भीष्म ने जब शंख बजाया तो वचन है कि प्रसन्नता से और वीरों को प्रसन्नचित्त करते हुए...। आह्लाद फैल गया उनके शंखनाद से। उस शंखनाद से प्रसन्नता फैल गई। वह एक स्वीकार है। जीवन जो दिखा रहा है, अगर युद्ध भी, तो युद्ध का भी स्वीकार है। जीवन जहा ले जा रहा है, अगर युद्ध में भी, तो इस युद्ध का भी स्वीकार है। निश्चित ही इसे प्रत्युत्तर मिलना चाहिए। और पीछे गा और पांडव अपने—अपने शंखनाद करते है।

यहां भी सोचने जैसी बात है कि पहला शंखनाद कौरवों की तरफ से होता है। युद्ध के प्रारंभ का दायित्व कौरवों का है; कृष्ण सिर्फ प्रत्युत्तर दे रहे हैं। पांडवों की तरफ से प्रतिसंवेदन है, रिस्पास है। अगर युद्ध ही है, तो उसके उत्तर के लिए वे तैयार हैं। ऐसे युद्ध की वृत्ति नहीं है। पांडव भी पहले बजा सकते हैं। नहीं लेकिन इतना दायित्व—युद्ध में घसीटने का दायित्व—कौरव ही लेंगे।

युद्ध का यह प्रारंभ बड़ा प्रतीकात्मक है। इसमें एक बात और ध्यान देने जैसी है कि प्रत्युत्तर कृष्ण शुरू करते हैं। अगर भीष्म ने शुरू किया था, तो कृष्ण को उत्तर देने के लिए तैयार करना उचित नहीं है। उचित तो है कि जो युद्ध के लिए तत्पर योद्धा हैं.। कृष्ण तो केवल सारथी की तरह वहा मौजूद हैं; वे योद्धा भी नहीं हैं, वे युद्ध करने भी नहीं आए है। लड़ने की कोई बात ही नहीं है। पांडवों की तरफ से जो सेनापति है, उसे शंखनाद करके उत्तर देना चाहिए। लेकिन नहीं, यह बहुत महत्वपूर्ण है कि शंखनाद का उत्तर कृष्ण से शुरू करवाया गया है। यह इस बात का प्रतीक है कि पांडव इस युद्ध को केवल परमात्मा की तरफ से डाले गए दायित्व से ज्यादा मानने को तैयार नहीं हैं। परमात्मा की तरफ से आई हुई पुकार के लिए वे तैयार हैं। वे केवल परमात्मा के साधन भर होकर लड़ने के लिए तैयार हैं। इसलिए यह जो प्रत्युतर है युद्ध की स्वीकृति का, वह गा से दिलवाया गया है।

उचित है। उचित है, परमात्मा के साथ लड़कर हारना भी उचित है; और परमात्मा के खिलाफ लड़कर जीतना भी उचित नहीं है। अब हार भी आनंद होगी। अब हार भी आनंद हो सकती है। क्योंकि यह लड़ाई अब पांडवों की अपनी नहीं है; अगर है तो परमात्मा की है। लेकिन यह रिएकशन नहीं है, रिस्पांस है। इसमें कोई क्रोध नहीं है।

अगर भीम इसको बजाता, तो रिएकशन हो सकता था। अगर भीम इसका उत्तर देता, तो वह क्रोध में ही दिया गया होता। अगर कृष्ण की तरफ से यह उत्तर आया है, तो यह बड़ी आनंद की स्वीकृति है, कि ठीक है। अगर जीवन वहा ले आया है, जहा युद्ध ही फलित हो, तो हम परमात्मा के हाथों में अपने को छोड़ते हैं।

काश्यश्च परमेष्वासः शिखण्डी च महारथः ।
धृष्टद्‌युम्नो विराटश्च सात्यकिश्चापराजितः ॥१७॥
द्रुपदो द्रौपदेयाश्च सर्वशः पृथिवीपते ।
सौभद्रश्च महाबाहुः शंखान्दध्मुः पृथक्पृथक् ॥१८॥
स घोषो धार्तराष्ट्राणां हृदयानि व्यदारयत् ।
नभश्च पृथिवीं चैव तुमुलो व्यनुनादयन् ॥१९॥
श्रेष्ठ धनुष वाला काशिराज और महारथी शिखंडी और धृष्टद्‌युम्न तथा राजा विरड और अजेय सात्यकि, राजा द्रुपद और द्रौपदी के पांचों पुत्र और बड़ी भुजा वाला सुभद्रापुत्र अभिमन्यु इन सबने, हे राजन। अलग—अलग शंख बजाए। और उस भयानक शब्द ने आकाश और पृथ्वी की थी शब्दायमान करते हुए धृतराष्ट्र—पुत्रों के हृदय विदीर्ण कर दिए।

अथ व्यवस्थितान्द्दष्ट्वा धार्तराष्ट्रान् कपिध्वजः ।
प्रवृत्ते शस्त्रसम्पाते धनुरुद्यम्य पाण्डवः ॥२०॥

अर्जन उवाच:

हृषीकेशं तदा वाक्यमिदमाह महीपते ।
सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत ॥२१॥
यावदेतान्निरीक्षेऽहं योद्‌धुकामानवस्थितान् ।
कैर्मया सह योद्धव्यमस्मिन् रणसमुद्यमे ॥२२॥

हे राजन् ! उसके उपरांत कीपध्वज अर्जुन ने खड़े हुए धृतराष्ट्र—पुत्रों को देखकर उस शस्त्र चलने की तैयारी के समय धनुष उठाकर हृषीकेश श्रीकृष्ण से यह वचन कहा, हई अच्युत मेरे रथ की दोनों सेनाओं के बीच में खड़ा करिए। जब तक मैं इन स्थित हुए युद्ध की कामना वालों की अच्छी प्रकार देख लूं कि इस युद्ध रूप व्यापार में मुझे किन—किन के साथ युद्ध करना योग्य है।

अर्जुन, जिनके साथ युद्ध करना है, उन्हें देखने की कृष्ण से प्रार्थना करता है। इसमें दो—तीन बातें आज की सुबह के लिए आखिरी समझ लेनी उचित हैं, फिर हम साझ बात करेंगे।

एक तो, अर्जुन का यह कहना कि किनके साथ मुझे युद्ध करना है, उन्हें मै देखूं, ऐसी जगह मुझे ले चलकर खड़ा कर दें—एक बात का सूचक है कि युद्ध अर्जुन के लिए ऊपर से आया हुआ दायित्व है, भीतर से आई हुई पुकार नहीं है; ऊपर से आई हुई मजबूरी है, भीतर से आई हुई वृत्ति नहीं है। युद्ध एक विवशता है, मजबूरी है। लड़ना पड़ेगा, इसलिए किससे लड़ना है, इसे वह पूछ। रहा है, उनको मैं देख लूं। कौन—कौन लड़ने को आतुर होकर आ गए हैं, कौन—कौन युद्ध के लिए तत्पर हैं, उन्हें मैं देख लूं।

जो आदमी स्वयं युद्ध के लिए तत्पर है, उसे इसकी फिक्र नहीं होती कि दूसरा युद्ध के लिए तत्पर है या नहीं। जो आदमी स्वयं युद्ध के लिए तत्पर है, वह अंधा होता है। वह दुश्मन को देखता नहीं, वह दुश्मन को प्रोजेक्ट करता है। वह दुश्मन को देखना नहीं चाहता, उसे तो जो दिखाई पड़ता है, वह दुश्मन होता है। उसे दुश्मन को देखने की जरूरत नहीं, वह दुश्मन निर्मित करता है, वह दुश्मनी आरोपित करता है। जब युद्ध भीतर होता है, तो बाहर दुश्मन पैदा हो जाता है।

जब भीतर युद्ध नहीं होता, तब जांच—पड़ताल करनी पड़ती है कि कौन लड़ने को आतुर है, कौन लड़ने को उत्सुक है! तो अर्जुन गा को कहता है कि मुझे ऐसी जगह, ऐसे परिप्रेक्ष्य के बिंदु पर खड़ा कर दें, जहा से मैं उन्हें देख लूं? जो लड़ने के लिए आतुर यहां इकट्ठे हो गए हैं।

दूसरी बात, जिससे लड़ना है, उसे ठीक से पहचान लेना युद्ध का पहला नियम है। जिससे भी लड़ना हो; उसे ठीक से पहचान लेना, युद्ध का पहला नियम है। समस्त युद्धों का, कैसे भी युद्ध हों जीवन के—भीतरी या बाहरी—शत्रु की पहचान, युद्ध का पहला नियम है। और युद्ध में केवल वे ही जीत सकते हैं, जो शत्रु को ठीक से पहचानते हैं।

इसलिए आमतौर से जो युद्ध—पिपासु है, वह नहीं जीत पाता, क्योंकि युद्ध—पिपासा के धुएं में इतना घिरा होता है कि शत्रु को पहचानना मुश्किल हो जाता है। लड़ने की आतुरता इतनी होती है कि किससे लड़ रहा है, उसे पहचानना मुश्किल हो जाता है। और जिससे हम लड़ रहे हैं, उसे न पहचानते हों, तो हार पहले से ही निश्चित है।

इसलिए युद्ध के क्षण में जितनी शाति चाहिए विजय के लिए, उतनी शाति किसी और क्षण में नहीं चाहिए। युद्ध के क्षण में जितना साक्षी का भाव चाहिए विजय के लिए, उतना किसी और क्षण में नहीं चाहिए। यह अर्जुन यह कह रहा है कि अब मैं साक्षी होकर देख लूं कि कौन—कौन लड़ने को है। उनका निरीक्षण कर लूं? उनको आब्जर्व कर लूं।

यह थोड़ा विचारणीय है। जब आप क्रोध में होते हैं, तब आब्जवेंशन कम से कम रह जाता है। जब आप क्रोध में होते हैं, तब निरीक्षण की क्षमता बिलकुल खो जाती है। और जब क्रोध में होते हैं, तब सर्वाधिक निरीक्षण की जरूरत है। लेकिन बड़े मजे की बात है, अगर निरीक्षण हो, तो क्रोध नहीं होता; और अगर क्रोध हो, तो निरीक्षण नहीं होता। ये दोनों एक साथ नहीं हो सकते हैं। अगर एक व्यक्ति क्रोध में निरीक्षण को उत्सुक हो जाए तो क्रोध खो जाएगा। यह अर्जुन क्रोध में नहीं है, इसलिए निरीक्षण की बात कह पा रहा है। यह क्रोध की बात नहीं है। जैसे युद्ध बाहर—बाहर है, छू नहीं रहा है कहीं; साक्षी होकर देख लेना चाहता है, कौन—कौन लड़ने आए हैं; कौन—कौन आतुर हैं।

यह निरीक्षण की बात कीमती है। और जब भी कोई व्यक्ति किसी भी युद्ध में जाए—चाहे बाहर के शत्रुओं से और चाहे भीतर के शत्रुओं से—तो निरीक्षण पहला सूत्र है, राइट आब्जर्वेशन पहला सूत्र है। अगर भीतर के शत्रुओं से भी लड़ना हो, तो राइट आब्जवेंशन पहला सूत्र है। ठीक से पहले देख लेना, किससे लड़ना है! क्रोध से लड़ना है तो क्रोध को देख लेना, काम से लड़ना है तो काम को देख लेना, लोभ से लड़ना है तो लोभ को देख लेना। बाहर भी लड़ने जाए तो

पहले बहुत ठीक से देख लेना कि किससे लड़ पहले मित्र तो बनाना जरूरी होता ही है। बिना मित्र बनाए शत्रु रहे हैं? वह कौन है? इसका पूरा निरीक्षण तभी संभव है, जब साक्षी बनाना मुश्किल है। विचारहीन चित्त मित्रता भी बनाता है, तो शत्रुता होने की क्षमता हो, अन्यथा संभव नहीं है। ही निकलती है। युद्ध स्वाभाविक है।

इसलिए गीता अब शुरू होने के करीब आ रही है। उसका रंगमंच तैयार हो गया है। लेकिन इस सूत्र को देखकर लगता है कि अगर आगे की गीता का पता भी न हो, तो जो आदमी निरीक्षण को समझता है, वह इतने सूत्र पर भी कह सकता है कि अर्जुन को लड़ना मुश्किल पड़ेगा। यह आदमी लड़ न सकेगा। इसको लड़ने में कठिनाई आने ही वाली है।

क्योंकि जो आदमी निरीक्षण को उत्सुक है, वह आदमी लड़ने में मुश्किल पाएगा। वह जब देखेगा तो लड़ न पाएगा। लड़ने के लिए आंखें बंद चाहिए। लड़ने के लिए जूझ जाना चाहिए निरीक्षण की सुविधा नहीं होनी चाहिए। गीता न भी पता हो आगे, तो जो आदमी। निरीक्षण के तत्व को समझेगा, वह इसी सूत्र पर कह सकेगा कि यह आदमी भरोसे का नहीं है। यह आदमी युद्ध में काम नहीं पड़ेगा। यह आदमी युद्ध से हट सकता है। क्योंकि जब देखेगा, तो सब इतना व्यर्थ मालूम पड़ेगा। जो भी निरीक्षण करेगा, तो सब इतना फ्युटाइल, इतना व्यर्थ मालूम पड़ेगा कि वह कहेगा कि हट जाऊं।

यह अर्जुन जो बात कह रहा है, वह बात इसके चित्त की बड़ी प्रतीक है। यह अपने चित्त को इस सूत्र में साफ किए दे रहा है। यह यह नहीं कह रहा है कि मैं युद्ध को आतुर हूं। मेरे सारथी ! मुझे उस जगह ले चलो, जहा से मैं दुश्मनों का विनाश ठीक से कर सकूं। यह यह नहीं कह रहा है। कहना यही चाहिए। यह यह कह रहा है कि मुझे उस जगह ले चलो, जहां से मैं देख सकूं कि कौन-कौन। लड़ने आए हैं, कितने आतुर हैं; मैं निरीक्षण कर सकूं। यह निरीक्षण बता रहा है कि यह आदमी विचार का आदमी है। और विचार का आदमी दुविधा में पड़ेगा।

या तो युद्ध वे लोग कर सकते हैं, जो विचारहीन हैं- भीम की तरह, दुर्योधन की तरह। या युद्ध वे लोग कर सकते हैं, जो निर्विचार है कृष्ण की तरह। विचार है बीच में।

ये तीन बातें हैं। विचारहीनता विचार के पहले की अवस्था है। सुद्ध बहुत आसान है। युद्ध के लिए कुछ करने की जरूरत नहीं है, ऐसी चित दशा में आदमी युद्ध में होता ही है। वह प्रेम भी करता है, तो प्रेम उसका युद्ध ही सिद्ध होता है। वह प्रेम भी करता है, तो अंततः घृणा ही सिद्ध होती है। वह मित्रता भी बनाता है, तो सिर्फ शत्रुता की एक सीढ़ी सिद्ध होती है। क्योंकि शत्रु बनाने के लिए पहले मित्र तो बनाना जरूरी होता ही है। बिना मित्र बनाए शत्रु बनाना मुश्किल है। विचारहीन चित्त मित्रता भी बनाता है, तो शत्रुता ही निकलती है। युद्ध स्वाभाविक है।

दूसरी सीढ़ी विचार की है। विचार सदा डावाडोल है। विचार सदा कंपित है। विचार सदा वेवरिंग है। दूसरी सीढ़ी पर अर्जुन है। वह कहता है, निरीक्षण कर लूं? देख लूं समझ लूं? फिर युद्ध में उतरूं। कभी कोई दुनिया में देख-समझकर युद्ध में उतरा है? देख-समझकर तो युद्ध से भागा जा सकता है। देख-समझकर युद्ध में उतरा नहीं जा सकता।

और तीसरी सीढ़ी पर कृष्ण हैं। वह निर्विचार की स्थिति है। वहा भी विचार नहीं हैं; लेकिन वह विचारहीनता नहीं है। थाटलेसनेस और नो थाट, विचारहीनता और निर्विचार एक से मालूम पड़ते हैं। लेकिन उनमें बुनियादी फर्क है। निर्विचार वह है, जो विचार की व्यर्थता को जानकर ट्रांसेंड कर गया, पार चला गया।

विचार सब चीजों की व्यर्थता बतलाता है-जीवन की भी, प्रेम। की भी, परिवार की भी, धन की भी, संसार की भी, युद्ध की भी-विचार सब चीजों की व्यर्थता बतलाता है। लेकिन अगर कोई विचार करता ही चला जाए, तो अंत में विचार विचार की भी व्यर्थता बतला देता है। और तब आदमी निर्विचार हो जाता है। फिर निर्विचार में सब ठीक वैसा ही हो जाता है संभव, जैसा विचारहीन ! को संभव था। लेकिन क्वालिटी, गुण बिलकुल बदल जाता है।

एक छोटा बच्चा जैसे होता है। जब कोई संतत्व को उपलब्ध। होता है बुढ़ापे तक, तब फिर छोटे बच्चे जैसा हो जाता है। लेकिन। छोटे बच्चे और संतत्व में ऊपरी ही समानता होती है। संत की आंखें। भी छोटे बच्चे की तरह भोली हो जाती हैं। लेकिन छोटे बच्चे में अभी सब दबा पड़ा है। अभी सब निकलेगा। इसलिए छोटा बच्चा तो एक वॉल्केनो है,

एक ज्वालामुखी है। अभी फूटा नहीं है, बस , इतना ही है। उसकी निर्दोषता, उसकी इनोसेंस ऊपर-ऊपर है, भीतर तो सब तैयार है; बीज बन रहे हैं, फूट रहे हैं। अभी काम आएगा, क्रोध आएगा, शत्रुता आएगी-सब आएगा। अभी सबकी तैयारी। चल रही है। छोटा बच्चा तो सिर्फ टाइम बम है। अभी समय लेगा और फूट पड़ेगा। लेकिन संत पार जा चुका है। वह सब जो भीतर बीज फूटने थे, फूट गए, और व्यर्थ हो गए, और गिर गए। अब कुछ भी भीतर शेष नहीं बचा; अब आंखें फिर सरल हो गई हैं, अब फिर सब निर्दोष हो गया है।

इसलिए जीसस ने कहा है-किसी ने पूछा जीसस से कि कौन तुम्हारे स्वर्ग के राज्य का अधिकारी होगा? तो जीसस ने कहा कि वे जो बच्चों की भाति हैं। जीसस ने नहीं कहा कि जो बच्चे हैं। क्योंकि बच्चे नहीं प्रवेश कर सकते। जो बच्चों की भाति हैं, अर्थात जो बच्चे नहीं हैं। एक बात तो पक्की हो गई, जो बच्चे नहीं हैं, लेकिन बच्चों की भांति हैं। बच्चे प्रवेश करें, तब तो कोई कठिनाई ही नहीं है, सभी प्रवेश कर जाएंगे। नहीं; बच्चे प्रवेश नहीं करेंगे। लेकिन जो बच्चों की भाति हैं, जो पार हो गए हैं।

इसलिए अज्ञानी और परमज्ञानी में बड़ी समानता है। अज्ञानी जैसा ही सरल हो जाता है परमज्ञानी। लेकिन अज्ञानी की सरलता के भीतर जटिलता पूरी छिपी रहती है, कभी भी प्रकट होती रहती है। परमज्ञानी की सब जटिलता खो गई होती है।

जो विचारहीन है, उसमें विचार की शक्ति पड़ी रहती है, वह विचार कर सकता है, करेगा। जो निर्विचार है, वह विचार के अतिक्रमण में हो गया; वह ध्यान में पहुंच गया, समाधि में पहुंच गया।

जो कठिनाई पूरी गीता में उपस्थित होगी, यह जो पूरा भीतर का अंतर्द्वंद्व उपस्थित होगा..... अर्जुन दो तरह से युद्ध में जा सकता है। या तो वह विचारहीन हो जाए, नीचे उतर आए, वहा खड़ा हो जाए जहा दुर्योधन और भीम खड़े हैं, तो युद्ध में जा सकता है। और या फिर वह वहा पहुंच जाए जहा गा खड़े हैं, निर्विचार हो जाए, तो युद्ध में जा सकता है। अगर अर्जुन अर्जुन ही रहे, मध्य में ही रहे, विचार में ही रहे, तो वह जंगल जा सकता है, युद्ध में नहीं जा सकता है। वह पलायन करेगा, वह भागेगा।

प्रवचन 2 : अर्जुन के विषाद का मनोविश्लेषण

ओशो – गीता-दर्शन – भाग एक

अध्याय—1-2 – प्रवचन 2 : अर्जुन के विषाद का मनोविश्लेषण

योत्स्यमानानवेक्षेध्हं य एतेध्त्र समागता:।
धार्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेर्युद्धे प्रियचिकर्षिव :।। 23।।

संजय उवाच

एवमुक्तो हृषीकेशो गुडाकेशेन भारत।
सेनयोरुभयोर्मध्ये स्थापयित्वा रथोत्तमम ।। 24।।

भीष्मद्रोणप्रमुखत : सर्वेषां च महीक्षितामे ।
उवाच पार्थ पश्यैतान्समवेतान्कुरू।त्राह ।। 25।।

तत्रापश्यत्स्थितान्पार्थ : पितृनथ पितामहान।
ओघ्नघ्नभ्रातृन्पुत्रान्पौत्रान्सखींस्तथा ।। 25।।

श्वशरान्सुहृद सेनयोरुभयोरपि।
तान्समीक्ष्य स कौन्तेय : सर्वान्बन्धूनवस्थितान् ।। 26।।

अर्जुन उवाच

कृपया परयाविष्टो विषीदन्निदमब्रवीत्।
दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण युयुत्सु समूपस्थितान् ।। २८।।

सीदेन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति।
वेपथुश्च शरीरे में रोहर्षश्च जायते ।। २९।।

और दुर्बुद्धि दुर्योधन का युद्ध में कल्याण चाहने वाले जो— ये राजा लोग सेना में आए हैं, उन युद्ध करने वालों को देखुंगा।

संजय बोला : हे धृतराष्ट्, अर्जुन द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर ने दोनों सेनाओं के बीच में ले जाकर भीष्म और द्रोणाचार्य सामने और संपूर्ण राजाओं के, उत्तम रथ को खड़ा करके ऐसे कहा कि हे पार्थ, इन इकट्ठे हुए कौरवों को देख।

उसके उपरांत पृथापुत्र अर्जुन ने उन दोनों ही सेनाओं में स्थित पिता के भाइयों को पितामहों को आचार्यों को, मामा को, भाइयों को, पुत्रों को, पौत्रों को तथा मित्रों को, ससुरों को और सुहृदों को भी देखा।

इस प्रकार उन खड़े हुए संपूर्ण बंधुओं को देखकर वह अत्यंत करुणा से युक्त हुआ कुंतीपुत्र अर्जुन शोक करता हुआ यह बोला : हे कृष्ण! इस युद्ध की इच्छा वाले खड़े हुए स्वजन सब को देखकर मेरे अंग शिथिल हुए जाते हैं और मुख भी सूखा जाता है। और मेरे शरीर मे कंप तथा रोमांच होता है।

अर्जुन युद्ध से पीड़ित नहीं है, युद्ध—विरोधी भी नहीं है। हिंसा के संबंध में उसकी कोई अरुचि भी नहीं है। सारे जीवन का शिक्षण उसके सारे जीवन का संस्कार हिंसा और युद्ध के लिए है। लेकिन यह समझने जैसी बात है कि जितना ही हिंसक चित्त हो उतना ही ममत्व से भरा हुआ चित्त भी होता है। हिंसा और ममत्व साथ ही साथ जीते हैं। अहिंसक चित्त ममत्व के बाहर हो जाता है।

असल में जिसे अहिंसक होना हो, उसे मेरे का भाव ही छोड़ देना पड़ता है। मेरे का भाव ही हिंसा है। क्योंकि जैसे ही मैं कहता हूं मेरा वैसे ही जो मेरा नहीं है वह पृथक होना शुरू हो जाता है। जैसे ही किसी को मैं कहता हू मित्र, वैसे ही किसी को मैं शत्रु निर्मित करना शुरू कर देता हूं। जैसे ही मैं सीमा खींचता हूं अपनों की वैसे ही मैं परायों की सीमा भी खींच लेता हूं। समस्त हिंसा, अपने और पराए के बीच खींची गई सीमा से पैदा होती है।

इसलिए अर्जुन शिथिल—गात हो गया। उसके अंग—अंग शिथिल गए। इसलिए नहीं कि वह युद्ध से विरक्त हुआ. नहीं कि उसे होने वाली हिंसा में कुछ बुरा पड़ा. इसलिए नहीं कि अहिंसा का कोई आकस्मिक आकर्षण उसके मन में जन्म गया. बल्कि इसलिए कि हिंसा के ही दूसरे ने उसके भीतर से हिंसा के ही गहरे पहलू ने, हिंसा के ही बुनियादी आधार ने, उसके चित्त को पकड़ लिया — ममत्व ने उसके चित्त को पकड़ लिया।

ममत्व हिंसा ही है। इसे न समझेंगे तो फिर पूरी गीता को समझना कठिन हो जाएगा। जो इसे नहीं समझ सके, उन्हें ऐसा प्रतीत होता है कि अर्जुन अंहिसा की तरफ खता था, कृष्ण ने उसे हिंसा की तरफ झुकाया था। जो अहिंसा की तरफ हो उसे कृष्ण हिंसा तरफ झुकाना नहीं चाहेंगे। जो अहिंसा की तरफ झुकता हो, उसे कृष्ण चाहे भी हिंसा की तरफ झुकाना, तो भी न झुका पाएंगे।

लेकिन अर्जुन आहिंस की तरफ रत्तीभर नहीं झुक गया है। अर्जुन का चित हिंसा के गहरे आधार पर जाकर अटक गया है। वह हिंसा का ही आधार है। उस? दिखाई पड़े अपने ही लोग— — प्रियजन, संबंधी। काश! वहां प्रियजन और संबंधी न होते, तो भेड़—बकरियों की तरह लोगों को काट सकता था। अपने थे, इसलिए काटने में कठिनाई मालूम पड़ी। पराए होते, तो काटने में कोई कठिनाई न मालूम पड़ती।

और अहिंसा केवल उसके ही चित्त में पैदा होती है, जिसका अपना — पराया मिट गया हो। अर्जुन, यह जो संकटग्रस्त हुआ उसका चित्त, यह अहिंसा की तरफ आकर्षण से नहीं, हिंसा के ही मूल आधार पर पहुंचने के कारण है। स्वभावत:, इतने संकट के क्षण में, इतने क्राइसिस के मोमेंट में हिंसा की जो बुनियादी आधारशिला थी, वह अर्जुन के सामने प्रकट हुई। अगर पराए होते तो अर्जुन को पता भी न चलता कि वह हिंसक है; उसे पता भी न चलता कि उसने कुछ बुरा किया; उसे पता भी न चलता कि युद्ध अधार्मिक है। उसके गात शिथिल न होते, बल्कि परायों को देखकर उसके गात और तन जाते। उसके धनुष पर बाण आ जाता; उसके हाथ पर तलवार आ जाती। वह बड़ा प्रफुल्लित होता।

लेकिन वह एकदम उदास हो गया। इस उदासी में उसे अपने चित्त की हिंसा का मूल आधार दिखाई पड़ा। उसे दिखाई पड़ा, इस संकट के क्षण में उसे ममत्व दिखाई पड़ा!

यह बड़े आश्चर्य की बात है कि अक्सर हम अपने चित्त की गहराइयों को केवल संकट के क्षणों में ही देख पाते हैं। साधारण क्षणों में हम चित्त की गहराइयों को नहीं देख पाते। साधारण क्षणों में हम साधारण जीते हैं। असाधारण क्षणों में, जो हमारे गहरे से गहरे में छिपा है, वह प्रकट होना शुरू हो जाता है।

अर्जुन को दिखाई पड़ा, मेरे लोग! युद्ध की वीभत्सता ने, युद्ध की सन्निकटता ने, बस अब युद्ध शुरू होने को है, तब उसे दिखाई पड़ा, मेरे लोग!

काश! अर्जुन ने कहा होता, युद्ध व्यर्थ है, हिंसा व्यर्थ है, तो गीता की किताब निर्मित न होती। लेकिन उसने कहा, अपने ही लोग इकट्ठे हैं; उनको काटने के विचार से ही मेरे अंग शिथिल हुए जाते हैं। असल में जिसने अपने जीवन के भवन को अपनों के ऊपर बनाया है, उन्हें काटते क्षण में उसके अंग शिथिल हों, यह बिलकुल स्वाभाविक है।

मृत्यु होती है पड़ोस में, छूती नहीं मन को! कहते हैं, बेचारा मर गया। घर में होती है, तब इतना कहकर नहीं निपट पाते। तब छूती है। क्योंकि जब घर में होती है, अपना कोई मरता है, तो हम भी मरते हैं। हमारा भी एक हिस्सा मरता है। हमारा भी इनवेस्टमेंट था उस आदमी में। हम भी उसमें कुछ लगाए थे। उसकी जिंदगी से हमें भी कुछ मिलता था। हमारे मन के भी किसी कोने को उस आदमी। ने भरा था।

पत्नी मरती है, तो पत्नी ही नहीं मरती, पति भी मरता है। सच तो यह है कि पत्नी के साथ ही पति पैदा हुआ था, उसके पहले पति नहीं था। पत्नी मरती है तो पति भी मरता है। बेटा मरता है, तो मां भी मरती है; क्योंकि मा बेटे के पहले मा नहीं थी, मा बेटे के जन्म के साथ ही हुई है। जब बेटा जन्मता है, तो एक तरफ बेटा जन्मता है, दूसरी तरफ मा भी जन्मती है। और जब बेटा मरता है, तो एक तरफ बेटा मरता है, दूसरी तरफ मा भी मरती है। जिसे हमने अपना कहा है, उससे हम जुड़े हैं, हम भी मरते हैं।

अर्जुन ने जब देखा कि अपने ही सब इकट्ठे हैं, तो अर्जुन को अगर अपना ही आत्मघात, स्युसाइड दिखाई पड़ा हो तो आश्चर्य नहीं है। अर्जुन घबड़ाया नहीं दूसरों की मृत्यु से; अर्जुन घबड़ाया आत्मघात की संभावना से। उसे लगा, सब अपने मर जाएं, तो मैं बचूंगा कहा!

यह थोड़ा सोचने जैसा है। हमारा मैं, हमारे अपनों के जोड़ का नाम है। जिसे हम मै कहते हैं, वह मेरी के जोड़ का नाम है। अगर मेरे सब मेरे विदा हो जाएं, तो मैं खो जाऊंगा। मैं बच नहीं सकता। यह मेरा मैं, कुछ मेरे पिता से, कुछ मेरी मा से, कुछ मेरे बेटे से, कुछ मेरे मित्र से—इन सबसे जुड़ा है।

आश्चर्य तो यह है कि जिन्हें हम अपने कहते हैं, उनसे ही नहीं जुड़ा है, जिन्हें हम पराए कहते हैं, उनसे भी जुड़ा है—परिधि के बाहर—लेकिन उनसे भी जुड़ा है। तो जब मेरा शत्रु मरता है, तब भी थोड़ा मैं मरता हूं। क्योंकि मैं फिर वही नहीं हो सकूंगा, जो मेरे शत्रु के होने पर मैं था। शत्रु भी मेरी जिंदगी को कुछ देता था। मेरा शत्रु था, होगा शत्रु, पर मेरा शत्रु था। उससे भी मेरे मैं का संबंध ! था। उसके बिना मैं फिर अधूरा और खाली हो जाऊंगा।

अर्जुन को, दूसरों का घात होगा, ऐसा दिखाई पड़ता, तो बात और थी। अर्जुन को बहुत गहरे में दिखाई पड़ा कि यह तो मैं अपनी ही आत्महत्या करने को उत्सुक हुआ हूं; यह तो मैं ही मरूंगा। मेरे मर जाएंगे, तो मेरे होने का क्या अर्थ है! जब मेरे ही न होंगे, तो मुझे सब मिल जाए तो भी व्यर्थ है।

यह भी थोड़ा सोचने जैसा है। हम अपने लिए जो कुछ इकट्ठा करते हैं, वह अपने लिए कम, अपनों के लिए ज्यादा होता है। जो मकान हम बनाते हैं, वह अपने लिए कम, अपनों के लिए ज्यादा होता है। उन अपनों के लिए भी जो साथ रहेंगे, और उन अपनों के लिए भी जो देखेंगे और प्रशंसा करेंगे, और उन पराए—अपनों के लिए भी, जो जलेंगे और ईर्ष्या से भरेंगे।

अगर इस पृथ्वी पर सबसे श्रेष्ठ भवन भी मेरे पास रह जाए और अपने न रह जाएं—मित्र भी नहीं, शत्रु भी नहीं—तो अचानक मैं पाऊंगा, वह भवन झोपड़ी से भी बदतर हो गया है। क्योंकि वह भवन एक फसाड, एक दिखावा था। उस भवन के माध्यम से अपनों को, परायों को मै प्रभावित कर रहा था। वह भवन तो सिर्फ प्रभावित करने की एक व्यवस्था थी। अब मैं किसे प्रभावित करूं!

आप जो कपड़े पहनते है, वह अपने शरीर को ढंकने को कम, दूसरे की आंखों को झपने को ज्यादा है। अकेले में सब बेमानी हो जाता है। आप जो सिंहासनों पर चढ़ते हैं, वह सिंहासनों पर बैठने के आनंद के लिए कम—क्योंकि कोई सिंहासन पर बैठकर कभी किसी आनंद को उपलब्ध नहीं हुआ है—पर अपनों और परायों में जो हम सिंहासन पर चढ़कर, जो करिश्मा, जो चमत्कार पैदा कर पाते हैं, उसके लिए ज्यादा है। सिंहासन पर बैठे आप रह जाएं और नीचे से लोग खो जाएं, अचानक आप पाएंगे, सिंहासन पर बैठे होना हास्यास्पद हो गया। उतर आएंगे; फिर शायद दुबारा नहीं चढ़ेंगे।

अर्जुन को लगा उस क्षण में कि अपने ही इकट्ठे हैं दोनों तरफ। मरेंगे अपने ही। अगर जीत भी गया, तो जीत का प्रयोजन क्या है? जीत के लिए जीत नहीं चाही जाती। जीत रस है, अपनों और परायों के बीच जो अहंकार भरेगा, उसका! साम्राज्य मिलेगा, क्या होगा अर्थ? कोई अर्थ न होगा।

यह जो अर्जुन के मन में विषाद घिर गया, इसे ठीक से समझ लेना चाहिए। यह विषाद ममत्व का है। यह विषाद हिंसक चित्त का है। और इस विषाद के कारण ही कृष्ण को इतने धक्के देने पड़े अर्जुन को। अर्जुन की जगह अगर महावीर जैसा व्यक्ति होता, तो बात उसी वक्त खत्म हो गई होती। यह बात आगे नहीं चल सकती थी। अगर महावीर जैसा व्यक्ति होता, तो शायद यह बात उठ भी नहीं सकती थी। शायद महावीर जैसा व्यक्ति होता, तो कृष्ण एक शब्द भी उस व्यक्ति से न बोले होते। बोलने का कोई अर्थ न था। बात समाप्त ही हो गई होती।

यह गीता गा ने कही कम, अर्जुन ने कहलवाई ज्यादा है। इसका असली ऑथर, लेखक कृज्ञा नहीं हैं; इसका असली लेखक अर्जुन है। अर्जुन की यह चित्त—दशा आधार बनी है। और कृष्ण को साफ दिखाई पड़ रहा है कि एक हिंसक अपनी हिंसा के पूरे दर्शन को उपलब्ध हो गया है। और अब हिंसा से भागने की जो बातें कर रहा है, उनका कारण भी हिंसक चित्त है। अर्जुन की दुविधा अहिंसक की हिंसा से भागने की दुविधा नहीं है। अर्जुन की दुविधा हिंसक की हिंसा से ही भागने की दुविधा है।

इस सत्य को ठीक से समझ लेना जरूरी है। यह ममत्व हिंसा ही है, लेकिन गहरी हिंसा है, दिखाई नहीं पड़ती। जब मैं किसी को कहता हूं मेरा, तो पजेशन शुरू हो गया, मालकियत शुरू हो गई। मालकियत हिंसा का एक रूप है। पति पत्नी से कहता है, मेरी। मालकियत शुरू हो गई। पत्नी पति से कहती है, मेरे। मालकियत शुरू हो गई। और जब भी हम किसी व्यक्ति के मालिक हो जाते हैं, तभी हम उस व्यक्ति की आत्मा का हनन कर देते हैं। हमने मार डाला उसे। हमने तोड़ डाला उसे। असल में हम उस व्यक्ति के साथ व्यक्ति की तरह नहीं, वस्तु की तरह व्यवहार कर रहे हैं। अब कुर्सी मेरी जिस अर्थ में होती है, उसी अर्थ में पत्नी मेरी हो जाती है। मकान मेरा जिस अर्थ में होता है, उसी अर्थ में पति मेरा हो जाता है।

स्वभावत:, इसलिए जहां—जहां मेरे का संबंध है, वहा—वहा प्रेम फलित नहीं होता, सिर्फ कलह ही फलित होती है। इसलिए दुनिया में जब तक पति—पत्नी मेरे का दावा करेंगे, बाप—बेटे मेरे का दावा करेंगे, तब तक दुनिया में बाप—बेटे, पति—पत्नी के बीच कलह ही चल सकती है, मैत्री नहीं हो सकती। मेरे का दावा, मैत्री का विनाश है। मेरे का दावा, चीजों को उलटा ही कर देता है। सब हिंसा हो जाती है।

मैंने सुना है, एक आदमी ने शादी की है, लेकिन पत्नी बहुत पढ़ी—लिखी नहीं है। मन में बड़ी इच्छा है कि पत्नी कभी पत्र लिखे। घर से बाहर पति गया है, तो उसे समझाकर गया है। थोड़ा लिख लेती है। समझाकर गया है, क्या—क्या लिखना। सभी पति—पत्नी एक—दूसरे को समझा रहे हैं, क्या—क्या लिखना!

उसने बताया था, ऊपर लिखना, प्राणों से प्यारे—कभी ऐसा होता नहीं है—नीचे लिखना, चरणों की दासी। पत्नी का पत्र तो मिला, लेकिन कुछ भूल हो गई। उसने ऊपर लिखा, चरणों के दास। और नीचे लिखा, प्राणों की प्यासी।

जो नहीं लिखते हैं, उनकी स्थिति भी ऐसी ही है। जो बिलकुल ठीक—ठीक लिखते हैं, उनकी स्थिति भी ऐसी ही है। जहां आग्रह है मालकियत का, वहा हम सिर्फ घृणा ही पैदा करते हैं। और जहां घृणा है, वहा हिंसा आएगी। इसलिए हमारे सब संबंध हिंसा के संबंध हो गए हैं। हमारा परिवार हिंसा का संबंध होकर रह गया है।

यह जो अर्जुन को दिखाई पड़ा, मेरे सब मिट जाएंगे तो मैं कहा! और मेरों को मिटाकर जीत का, साम्राज्य का क्या अर्थ है! इससे वह अहिंसक नहीं हो गया है, अन्यथा कृष्ण आशीर्वाद देते और कहते, विदा हो जा, बात समाप्त हो गई। लेकिन कृष्ण देखू रहे हैं कि हिंसक वह पूरा है। मैं और ममत्व की बात कर रहा है, इसलिए अहिंसा झूठी है।

जो मैं की बात कर रहा हो और अहिंसा की बात कर रहा हो, तो जानना कि अहिंसा झूठी है। क्योंकि मैं के आधार पर अहिंसा का फूल खिलता ही नहीं। मेरे के आधार पर अहिंसा के जीवन का कोई विकास ही नहीं होता।

प्रश्न :

भगवान श्री, अर्जुन युद्धभूमि पर गया। उसने स्वजन, गुरुजन और मित्रों को देखा तो शोक से भर गया; विषाद हुआ उसको। उसका चित्त हिंसक था। युद्धभूमि पर दुर्योधन भी था, युधिष्ठिर भी था, द्रोणाचार्य भी थे और भी जो बहुत से थे, उनके भी स्वजन—मित्र थे। उनका भी चित्त हिंसा तथा ममत्व से भरा हुआ था, तो अर्जुन को ही सिर्फ विषाद क्यों हुआ?

निश्चय ही, दुर्योधन भी वहा था, और भी योद्धा वहा थे, उन्हें क्यों विषाद न हुआ?

वे भी ममत्व से भरे लोग थे। वे भी हिंसा से भरे लोग थे। नहीं हुआ; कारण है। हिंसा भी अंधी हो सकती है, विचारहीन हो सकती है। ममत्व भी अंधा हो सकता है, विचारहीन हो सकता है। हिंसा भी आंख वाली हो सकती है, विचारपूर्ण हो सकती है। ममत्व भी आंख वाला हो सकता है और विचारपूर्ण हो सकता है।

सुबह मैंने कहा था कि अर्जुन की कठिनाई यही है कि वह विचारहीन नहीं है। विचार है। और विचार दुविधा में डालता है। विचार ने दुविधा में डाला उसे। दुर्योधन को भी दिखाई पड़ रहा है, लेकिन हिंसा इतनी अंधी है कि यह नहीं देख पाएगा दुर्योधन कि इस हिंसा के पीछे मैं उन सबको मार डालूंगा, जिनके बिना हिंसा भी व्यर्थ हो जाती है। अंधेपन में यह दिखाई नहीं पड़ेगा। अर्जुन उतना अंधा नहीं है। इसलिए अर्जुन उस युद्ध के स्थल पर विशेष है। विशेष इन अर्थों में है कि जीवन की तैयारी उसकी वही है, जो दुर्योधन की है; जीवन की तैयारी उसकी वही है, जो दुर्योधन की है, लेकिन मन की तैयारी उसकी भिन्न है। मन में उसके विचार है, संदेह है, डाउट है। मन में उसके शक है। वह पूछ सकता है, वह प्रश्न उठा सकता है। और जिज्ञासा का बुनियादी सूत्र उसके पास है।

और सबसे बड़े प्रश्न वे नहीं हैं, जो हम जगत के संबंध में उठाते हैं। सबसे बड़े प्रश्न वे नहीं हैं, जो हम पूछते हैं कि किसने जगत बनाया? सबसे बड़े प्रश्न वे नहीं हैं, जो हम पूछते हैं कि ईश्वर है या नहीं? सबसे बड़े प्रश्न वे हैं, जो हमारे मन के ही कांफ्लिक्ट, मन के ही द्वंद्व से जन्मते हैं। लेकिन अपने ही मन के द्वंद्व को देख पाने के लिए विचार चाहिए, चिंतन चाहिए, मनन चाहिए।

अर्जुन सोच पा रहा है, देख पा रहा है कि मैं जो हिंसा करने जा रहा हूं, उसमें वे ही लोग मर जाएंगे, जिनके लिए हिंसा करने का कुछ अर्थ हो सकता है। अंधा नहीं है। और यह अंधा न होना ही उसका कष्ट भी है, उसका सौभाग्य भी है।

इसे समझ लेना उचित है। अंधा नहीं है, यह उसका कष्ट है। दुर्योधन कष्ट में नहीं है। दुर्योधन के लिए युद्ध एक रस है। अर्जुन के लिए युद्ध एक संकट और कष्ट हो गया। सौभाग्य भी यही है। यदि वह इस कष्ट को पार हो जाता है, तो निर्विचार में पहुंच सकेगा। अगर वह इस कष्ट को पार हो जाता है, तो परमात्मा में समर्पण को पहुंच सकेगा। अगर वह इस कष्ट को पार हो जाता है, तो ममत्व को छोड़ने में पहुंच सकेगा। अगर इस कष्ट को पार नहीं हो पाता, तो निश्चित ही यह युद्ध उसके लिए विकट संकट होगा, जिसमें वह स्किजोफ्रेनिक हो जाएगा, जिसमें उसका व्यक्तित्व दो खंडों में टूट जाएगा। या तो भाग जाएगा, या लड़ेगा बेमन से और हार जाएगा।

जो लड़ाई बेमन से लड़ी जाए, वह हारी ही जाने वाली है। क्योंकि बेमन से लड़ने का मतलब है, आधा मन भाग रहा है, आधा मन लड़ रहा है। और जो आदमी अपने भीतर ही विपरीत दिशाओं में गति करता हो, उसकी पराजय निश्चित है। दुर्योधन जीतेगा फिर। पूरे मन से लड़ रहा है। कुएं में भी गिर रहा है, तो पूरे मन से गिर रहा है; अंधकार में भी जा रहा है, तो पूरे मन से जा रहा है।

असल में अंधकार में दो ही व्यक्ति पूरे मन से जा सकते हैं, एक तो वह, जो अंधा है। क्योंकि उसे अंधकार और प्रकाश से कोई अंतर नहीं पड़ता। एक वह, जिसके पास आत्मिक प्रकाश है। क्योंकि तब अंधकार को, उसका होना ही अंधकार को मिटा देता है।

अर्जुन या तो दुर्योधन जैसा हो जाए, नीचे गिर जाए, विचार से विचारहीनता में गिर जाए, तो युद्ध में चला जाएगा। और या कृष्ण जैसा हो जाए, विचार से निर्विचार में पहुंच जाए, इतना ज्योतिर्मय हो जाए, इतना ज्योति से भर जाए भीतरी कि देख पाए कि कौन मरता है, कौन मारा जाता है! देख पाए कि यह जो सब हो रहा है, स्वप्न से ज्यादा नहीं है। या

तो इतने बड़े सत्य को देख पाए तो युद्ध में जा सकता है, या इतने बड़े असत्य को देख पाए कि हम उनको ही मारकर आनंद को उपलब्ध हो जाएंगे, जिनके लिए मारने की चेष्टा कर रहे हैं! या तो दुर्योधन के असत्य में उतर जाए, तो अर्जुन निश्चित हो जाएगा; या कृष्ण के सत्य में पहुंच जाए, तो अर्जुन निश्चित हो जाएगा।

अर्जुन एक तनाव है।

नीत्से ने कहीं कहा है कि आदमी एक सेतु है, ए ब्रिज, दो अलग—अलग पारो को जोड़ता हुआ। आदमी एक तनाव है। या तो पशु हो जाए, तो सुख को पा ले; या परमात्मा हो जाए, तो आनंद को पा ले। लेकिन जब तक आदमी है, तब तक सुख भी नहीं पा सकता; तब तक आनंद भी नहीं पा सकता; तब तक सुख और आनंद के बीच सिर्फ खिंच सकता है; एंग्जाइटी और तनाव भर हो सकता है।

इसीलिए हम दोनों काम करते हैं जीवन में। शराब पीकर पशु हो जाते हैं, थोड़ा सुख मिलता है। सेक्स में थोड़ा सुख मिलता है; पशु में वापस उतर जाते हैं। नीचे गिर जाते हैं विचार से, तो थोड़ा सुख मिलता है।

दुनिया में शराब का इतना आकर्षण किसी और कारण से नहीं है। शराब हमें वापस पशु में पहुंचा देने की सुविधा बन जाती है; नशा करके हम वहीं हो जाते हैं, जहां सभी पशु हैं। फिर हम पशु जैसे निश्चित हैं, क्योंकि पशु कोई चिंता नहीं करता। कोई पशु पागल नहीं होता। सिर्फ सर्कस के पशु पागल होते हैं। क्योंकि सर्कस का पशु करीब—करीब आदमी की हालत में आ जाता है। आदमी करीब—करीब सर्कस के पशु की हालत में है। कोई पशु पागल नहीं होता। और किसी पशु के लिए विक्षिप्तता, चिंता, अनिद्रा, इनसोमेनिया—ऐसी बीमारिया नहीं आतीं। कोई पशु आत्मघात नहीं करता; स्युसाइड नहीं करता। क्योंकि आत्मघात के लिए बहुत चिंता इकट्ठी हो जानी जरूरी है।

बड़े मजे की बात है कि कोई पशु बोर्डम अनुभव नहीं करता; वह कभी ऊबता नहीं है। एक भैंस है; वह रोज वही घास चर रही है, चरती रहेगी; वह कभी नहीं ऊबती। ऊबने का कोई सवाल नहीं है। ऊबने के लिए विचार चाहिए। बोर्डम के लिए, ऊब के लिए विचार चाहिए। इसलिए मनुष्यों में जो जितना ज्यादा विचारशील है, उतना ऊबेगा। मनुष्यों में जो जितना ज्यादा विचारशील है, उतना चिंता से भर जाएगा। मनुष्यों में जो जितना ज्यादा विचारशील है, वह पागल हो सकता है। मनुष्य में जो जितना ज्यादा विचारशील है, वह विक्षिप्त हो सकता है। लेकिन यह एक ही पहलू है।

दूसरा पहलू यह है कि जो विक्षिप्त होने की स्थिति को पार कर जाए, वह विमुक्त भी हो सकता है। और जो चिंता को पार कर जाए, वह निश्चितता के सजग आनंद को उपलब्ध हो सकता है। और जो तनाव को पार कर जाए, वह विश्रांति के उस अनुभव को पा सकता है, जो सिर्फ परमात्मा में विश्राम से उपलब्ध होती है।

अर्जुन मनुष्य का प्रतीक है; दुर्योधन पशु का प्रतीक है; कृष्ण परमात्मा के प्रतीक हैं। वहा तीन प्रतीक हैं उस युद्ध—स्थल पर।

अर्जुन डावाडोल है। वह दुर्योधन और कृष्ण के बीच डावाडोल है। उसे निश्चितता मिल सकती है, ही कैन बी ऐट ईजू, अगर वह दुर्योधन हो जाए अगर वह गा हो जाए। अर्जुन रहते कोई सुविधा नहीं है। अर्जुन रहते तनाव है। अर्जुन रहते मुश्किल है। उसकी मुश्किल यही है कि दुर्योधन हो नहीं सकता; कृष्ण होना समझ में नहीं आता; और जो है, वहा टिक नहीं सकता। क्योंकि वह बीच की तरंग भर है, वहा टिका नहीं जा सकता। कोई भी सेतु मकान बनाने के लिए नहीं होता।

अकबर ने फतेहपुर सीकरी बनाई, तो वहा एक पुल पर, एक ब्रिज पर उसने वाक्य लिखवाया—सेतु पार करने को है, सेतु निवास के लिए नहीं है।

ठीक ही है। जो भी आदमी सेतु पर निवास बनाएगा, वह मुश्किल में पड़ेगा। कहीं भी लौट जाएं—पशु हो जाएं कि परमात्मा हो जाएं—आदमी नियति नहीं है। आदमी होना संकट है, क्राइसिस है। आदमी अंत नहीं है। आदमी, अगर ठीक से हम समझें तो, न तो पशु है और न परमात्मा है। न तो वह पशु हो पाता है, क्योंकि पशु को पार कर चुका।

और न वह परमात्मा हो पाता है, 'क्योंकि परमात्मा को पहुंचना है। मनुष्य सिर्फ परमात्मा और पशु के बीच डोलता हुआ अस्तित्व है।

हम चौबीस घंटे में कई बार दोनों कोनों पर पहुंच जाते हैं। क्रोध में वही आदमी पशु के निकट आ जाता है, शाति में वही आदमी परमात्मा के निकट पहुंच जाता है। हम दिन में चौबीस घंटे में बहुत बार नर्क और स्वर्ग की यात्रा कर लेते हैं—बहुत बार। क्षण में स्वर्ग में होते हैं, क्षण में नर्क में उतर जाते हैं। नर्क में पछताते हैं, फिर स्वर्ग की चेष्टा शुरू हो जाती है। स्वर्ग में पैर जमा नहीं पाते, फिर नर्क में पहुंचना शुरू हो जाता है।

और तनाव का एक नियम है कि तनाव सदा विपरीत में आकर्षण पैदा कर देता है। जैसे घड़ी का पेंडुलम होता है। वह बाईं तरफ जाता है। जब बाईं तरफ जाता है, तब हमें लगता है कि बाईं तरफ जा रहा है। लेकिन जो घड़ी के विज्ञान को समझते हैं, वे यह भी जानते हैं कि वह बाई तरफ जाते समय दाईं तरफ जाने की शक्ति इकट्ठी कर रहा है, मोमेंटम इकट्ठा कर रहा है। वह जितनी दूर बाईं तरफ जाएगा, उतनी ही दूर दाईं तरफ जाने की ताकत इकट्ठी कर रहा है। असल में वह बाईं तरफ इसीलिए जा रहा है कि दाईं तरफ जा सके। और दाईं तरफ जाते वक्त इसीलिए जा रहा है कि बाईं तरफ जा सके।

आदमी पूरे समय पशु और परमात्मा के बीच पेंडुलम की तरह घूम रहा है। अर्जुन आदमी का प्रतीक है। और आज के आदमी का तो और भी ज्यादा है। आज के आदमी की चेतना ठीक अर्जुन की चेतना है। इसलिए दुनिया में दोनों बातें एक साथ हैं, एक ओर मनुष्य अपनी चेतना को समाधि तक ले जाने के लिए आतुर है; और दूसरी तरफ आदमी एल एस डी से, मैस्कलीन से, मारिजुआना से, शराब से, सेक्स से पशु की तरफ ले जाने को आतुर है।

और अक्सर ऐसा होगा कि एक ही आदमी ये दोनों काम करता हुआ मालूम पड़ेगा। वही आदमी भारत की यात्रा पर आएगा, वही आदमी अमेरिका में एल एस डी लेता रहेगा 1 वह दोनों एक साथ कर रहा है।

मनुष्य बेहोश हो जाए तो पशु हो सकता है। लेकिन बेहोश ज्यादा देर नहीं रहा जा सकता। बेहोशी के सुख भी होश में ही अनुभव हो पाते हैं। बेहोशी में बेहोशी का सुख भी अनुभव नहीं होता। शराब का भी मजा, जब शराब पीए होता है आदमी, तब पता नहीं चलता। पता तो तभी चलता है, जब शराब का नशा उतर जाता है। नींद में जब आप होते हैं, तब नींद का कोई मजा पता नहीं चलता। वह सुबह जागकर पता चलता है कि बड़ी आनंदपूर्ण निद्रा थी। बेहोशी के सुख के लिए होश में आना जरूरी है। और होश में कोई सुख नहीं मालूम पड़ता, इसलिए फिर बेहोशी में उतरना पडता है।

अर्जुन मनुष्य की चेतना है, इसलिए अदभुत है। गीता इसीलिए अदभुत है कि वह मनुष्य की बहुत आंतरिक मनःस्थिति का आधार है। मनुष्य की आंतरिक मनःस्थिति अर्जुन के साथ कृष्ण का जो संघर्ष है पूरे समय, वह जो अर्जुन के साथ गा का संवाद है या विवाद है, वह जो अर्जुन को खींच—खींचकर परमात्मा की तरफ लाने की चेष्टा है, और अर्जुन वापस शिथिल—गात होकर बैठ जाता है; वह फिर पशु में गिरना चाहता है; यह जो संघर्ष है, वह अर्जुन के लिए है, दुर्योधन के लिए नहीं। दुर्योधन निश्चित है। अर्जुन भी वैसा हो तो निश्चित हो सकता है। वैसा नहीं है।

हममें भी जो दुर्योधन की तरह हैं, वे निश्चित हैं; वे मकान बना रहे हैं; वे दिल्ली में, राजधानियों के सिंहासन चढ़ रहे हैं; वे धन कमा रहे हैं 1 हममें भी जो अर्जुन की तरह हैं, वे बेचैन और परेशान हैं। वे बेचैन हैं इसलिए कि जहां हैं, वह जगह घर बनाने योग्य नहीं मालूम पड़ती। जहां से आ गए हैं, वहा से आगे बढ़ गए हैं, पीछे लौटना संभव नहीं है। जहां पहुंचे नहीं हैं, उसका कोई पता नहीं है कि वह कहा है मार्ग, वह मंदिर कहा है! उसका कोई पता नहीं है।

धार्मिक आदमी स्वभावत: संकटग्रस्त होता है, क्राइसिस में होता है। अधार्मिक आदमी क्राइसिस में नहीं होता। इसलिए मंदिरों में ' बैठा आदमी ज्यादा चिंतित दिखाई पड़ेगा, बजाय कारागृहों में बैठे . आदमी के। कारागृह में बैठा आदमी इतना चिंतित नहीं मालूम पड़ता है, निश्चित है। एक किनारे पर वह है, वह सेतु पर नहीं है। एक अर्थों में वह सौभाग्यशाली मालूम पड़ सकता है, ईर्ष्या—योग्य, कितना निश्चित है! लेकिन उसका सौभाग्य बड़े गहरे अभिशाप को छिपाए है। वह इसी तट पर रह जाएगा। उसमें अभी मनुष्य की किरण भी पैदा नहीं हुई।

मनुष्य के साथ ही उपद्रव शुरू होता है, मनुष्य के साथ ही संताप शुरू होता है, क्योंकि मनुष्य के साथ ही परमात्मा होने की संभावना, पोटेंशियलिटी के द्वार खुलते हैं।

वह अर्जुन पशु होना नहीं चाहता; स्थिति पशु होने की है; परमात्मा होने का उसे पता नहीं है। बहुत गहरी अनजान में आकांक्षा परमात्मा होने की ही है, इसीलिए वह पूछ रहा है; इसीलिए प्रश्न उठा रहा है; इसीलिए जिज्ञासा जगा रहा है। जिसके जीवन में भी प्रश्न हैं, जिसके जीवन में भी जिज्ञासा है, जिसके जीवन में भी असंतोष है—उसके जीवन में धर्म आ सकता है। जिसके जीवन में नहीं है चिंता, नहीं है प्रश्न, नहीं है संदेह, नहीं है जिज्ञासा, नहीं है असंतोष—उसके जीवन में धर्म के आने की कोई सुविधा नहीं है।

जो बीज टूटेगा अंकुरित होने को, चिंता में पड़ेगा। बीज बहुत मजबूत चीज है, अंकुर बहुत कमजोर होता है! बीज बड़ा निश्चित होता है, अंकुर बड़ी चिंता में पड़ जाता है। अंकुर निकलता है जमीन से पत्थरों को तोड़कर। अंकुर जैसी कमजोर चीज पत्थरों को तोड़कर, मिट्टी को काटकर बाहर निकलती है, अशात, अनजाने जगत में, जिसका कोई परिचय नहीं, कोई पहचान नहीं। कोई बच्चा तोड़ डालेगा; कोई पशु चर जाएगा; किसी के पैर के नीचे दबेगा! क्या होगा, क्या नहीं होगा! बीज अपने में रहे, तो बहुत निश्चित। है। न किसी बच्चे के पैर के नीचे दबेगा, न कोई अज्ञात के खतरे है; अपने में बंद है। उपलब्ध नहीं हो सकता है। और जिसने संदेह नहीं किया, उसकी

दुर्योधन बीज में बंद जैसा व्यक्ति है, निश्चित है। अर्जुन श्रद्धा दो कौड़ी की है। लेकिन जिसने संदेह किया और जो संदेह है; अंकुर चिंतित है, अंकुर बेचैन है। क्या होगा? फूल आएंगे की नहीं?बीज होना छोड़ दिया, अब फूल आएंगे कि नही? फूल के लिए, बढ़ने के लिए आतुरता है। वह आतुरता उसे कृष्ण से निरंतर प्रश्न पुछवाए चली जाती है। इसलिए अर्जुन के मन में चिंता है, प्रश्न हैं, दुर्योधन के मन में नहीं।

प्रश्न :

भगवान श्री, कृपया यह बताइए कि मनुष्य के सामने द्वंद्वात्मक दशा बार—बार आती रहती है, तो इस द्वंद्व भरी दशा को पार करने के लिए मूल आधार कौन—सा होना चाहिए? और द्वंद्व भरी दशा को हम विकासोन्मुख किस तरह बना सकें? और यह जो द्वंद्व दशा होती है, उसमें से हमने जो अपना संकल्प कर लिया या निश्चय कर लिया, तो उसमें मूल चीज कौन सी होती है हमारे सामने?

अर्जुन के लिए भी यही सवाल है। इस सवाल को आमतौर से आदमी जैसा हल करता है, वैसा ही अर्जुन भी करना चाहता है। द्वंद्व मनुष्य का स्वभाव है—मनुष्य का, आत्मा का नहीं, शरीर का नहीं—मनुष्य का द्वंद्व स्वभाव है। द्वंद्व को अगर जल्दबाजी से हल करने की कोशिश की, तो पशु की तरफ वापस लौट जाना रास्ता है। शीघ्रता की, तो पीछे लौट जाएंगे। वह परिचित रास्ता है; वहा वापस जाया जा सकता है। द्वंद्व से गुजरना ही तपश्चर्या है; धैर्य से द्वंद्व को झेलना ही! तपश्चर्या है। और द्वंद्व को झेलकर ही व्यक्ति द्वंद्व के पार होता है। इसलिए कोई जल्दी से निश्चय कर ले, सिर्फ द्वंद्व को मिटाने के लिए, तो उसका निश्चय काम का नहीं है, वह नीचे गिर जाएगा; वह वापस गिर रहा है।

पशु बहुत निश्चयात्मक है; पशुओं में डाउट नहीं है। बड़े निश्चय में जी रहे हैं; बड़े विश्वासी हैं; बड़े आस्तिक मालूम होते हैं! पर उनकी आस्तिकता आस्तिकता नहीं है। क्योंकि जिसने नास्तिकता नहीं जानी, उसकी आस्तिकता का अर्थ कितना है? और जिसने नहीं कहने का कष्ट नही जाना वह हा कहने के आनंद को उपलब्ध नहीं हो सकता। और जिसने संदेह नहीं किया, उसकी श्रद्धा दो कौड़ा की है। लेकिन जिसने संदेह किसा और जो संदेह में जिया और संदेह के पार हुआ। उसकी श्रद्धा का कुछ बल हे। उसकी श्रद्धा की कोई प्रामाणिकता है।

तो एक तो रास्ता है कि जल्दी कोई निश्चय कर लें। और निश्चय करने के बहुत रास्ते आदमी पकड़ लेता है। किसी शास्त्र को पकड़ ले, तो निश्चय हो जाएगा। शास्त्र निश्चय की भाषा में बोल देगा कि ऐसा—ऐसा करो और विश्वास करो। जिसने शास्त्र पकड़कर निश्चय किया, उस आदमी ने अपने मनुष्य होने से इनकार कर दिया। उसे एक अवसर मिला था विकास का, उसने खो दिया। गुरु को पकड़ लो! जिसने गुरु को पकड़ लिया, उसने अवसर खो दिया। एक संकट था, जिसमें बेसहारा गुजरने के लिए परमात्मा ने उसे छोड़ा था, उसने उस संकट से बचाव कर लिया। वह संकट से

बिना गुजरे रह गया। और आग में गुजरता, तो सोना निखरता। वह आग में गुजरा ही नहीं, वह गुरु की आड़ू में हो गया, तो सोना निखरेगा भी नहीं।

निश्चय करने को आपसे नहीं कहता। आप निश्चय करोगे कैसे? जो आदमी द्वंद्व में है, उसका निश्चय भी द्वंद्व से भरा होगा। जब द्वंद्व में हैं, तो निश्चय करेंगे कैसे? द्वंद्व से भरा आदमी निश्चय नहीं कर सकता; करना भी नहीं चाहिए।

द्वंद्व को जीएं, द्वंद्व में तपें, द्वंद्व में मरें और खपें, द्वंद्व को भोगें, द्वंद्व की आग से भागें मत। क्योंकि जो आग दिखाई पड़ रही है, उसी में कचरा जलेगा और सोना बचेगा। द्वंद्व से गुजरें; द्वंद्व को नियति समझें। वह मनुष्य की डेस्टिनी है, वह उसका भाग्य है। उससे गुजरना ही होगा। उसे जीएं। जल्दी न करें। निश्चय जल्दी न करें।

हां, द्वंद्व से गुजरें, तो निश्चय आएगा। द्वंद्व से गुजरें, तो श्रद्धा आएगी, लानी नहीं पड़ेगी। लाई गई श्रद्धा का कोई भी मूल्य नहीं है। क्योंकि जो श्रद्धा लानी पड़ी है, उसका मतलब ही है कि अभी आने के योग्य मन न बना था; जल्दी ले आए। जो श्रद्धा बनानी पड़ी है, उसका अर्थ ही है कि पीछे द्वंद्वग्रस्त मन है। वह भीतर जिंदा रहेगा, ऊपर से पर्त श्रद्धा की हो जाएगी। वह ऊपर—ऊपर काम देगी, समय पर काम नहीं देगी।

जब कठिन समय होगा, मौत सामने खड़ी होगी। तो बहुत पक्का विश्वास कर लिया था कि आत्मा अमर है; जब गीता पढ़ते थे, तब पक्का विश्वास रहा था। जब रोज सुबह मंदिर जाते थे, तब पक्का था कि आत्मा अमर है। और जब डाक्टर पास खड़ा हो जाएगा, और उसका चेहरा उदास दिखाई पड़ेगा, और घर के लोग भागने दौड़ने लगेंगे, और नाड़ी की गति गिरने लगेगी, तब अचानक पता चलेगा कि पता नहीं, आत्मा अमर है या नहीं!

क्योंकि लाख कहें गीताएं, उनके कहने से आत्मा अमर नहीं हो सकती। आत्मा अमर है, इसलिए वे कहती हैं, यह दूसरी बात है। । लेकिन उनके कहने से आत्मा अमर नहीं हो सकती। और आप किसी को मान लें, इससे कुछ होने वाला नहीं है। ही, द्वंद्व से गुजरें, पीड़ा को झेलें, वह अवसर है उससे बचने की कोशिश मत करें। अर्जुन भी बचने की कोशिश कर रहा है। लेकिन कृष्ण उसे बचाने की कोशिश नहीं कर रहे; वे पूरे द्वंद्व को खींचते हैं। अन्यथा गा कहते कि बेफिक्र रहो, मैं सब जानता हूं। बेकार की बातचीत मत कर। मुझ पर श्रद्धा रख और कूद जा, ऐसा भी कह सकते थे। इतनी लंबी गीता कहने की जरूरत न थी।

इतनी लंबी गीता अर्जुन के द्वंद्व के प्रति बड़ा सम्मान है। और मजा है कि अर्जुन बार—बार वही पूछता है। और कृष्ण हैं कि यह नहीं कहते कि यह तो तू पूछ चुका! फिर वही पूछता है। फिर वही पूछता है। सारे के सारे, पूरे के पूरे प्रश्न अर्जुन के अलग—अलग नहीं हैं। सिर्फ शब्दावली अलग है। बात वह वही पूछ रहा है। उसका द्वंद्व बार—बार लौट आ रहा है। कृष्ण उससे यह नहीं कहते कि चुप, अश्रद्धा करता है! चुप, अविश्वास करता है! अर्जुन पूछता है वही—वही दोहरा—दोहराकर। उसका द्वंद्व ही बार—बार नए—नए रूप लेकर खड़ा हो जाता है।

कृष्ण उसे विश्वास दिलाने को उत्सुक नहीं हैं। गा उसे श्रद्धा तक पहुंचाने को जरूर उत्सुक हैं। और विश्वास और श्रद्धा में बड़ा फर्क है। विश्वास वह है, जो हम संदेह को हल किए बिना ऊपर से आरोपित कर लेते हैं। श्रद्धा वह है, जो संदेह के गिर जाने से फलित होती है। श्रद्धा, संदेह की ही यात्रा से मिली मंजिल है। विश्वास, संदेह के भय से पकड़ लिए गए अंधे आधार हैं।

तो मैं कहूंगा, जीएं द्वंद्व को, तीव्रता से जीएं, इंटेंसिटी से जीएं। धीरे—धीरे जीएंगे, तो बहुत समय लगेगा। कुनकुनी आंच में डाल देंगे सोने को, तो निखरने में जन्म लग सकते हैं। तीव्रता से जीएं।

द्वंद्व मनुष्य का अनिवार्य परीक्षण है, जिससे वह परमात्मा तक पहुंचने की योग्यता का निर्णय दे पाता है। जीएं, भागें मत। एस्केप न करें, कंसोलेशंस मत खोजें, सांत्वनाएं मत बनाएं। जानें कि यही है नियति; द्वंद्व है। लड़े, तीव्रता से उतरें इस द्वंद्व में। क्या होगा इसका परिणाम?

इसके दो परिणाम होंगे। जैसे ही कोई व्यक्ति अपने चित्त के द्वंद्व में पूरी तरह उतरने को राजी हो जाता है, वैसे ही उस व्यक्ति के भीतर एक तीसरा बिंदु भी पैदा हो जाता है, दो के अलावा तीसरी ताकत भी पैदा हो जाती है। जैसे ही कोई

व्यक्ति अपने द्वंद्व को जीने के लिए राजी होता है, वैसे ही उसके भीतर दो नहीं, तीन शुरू हो जाते हैं। दि थर्ड फोर्स, वह जो निर्णय करती है कि जीएंगे द्वंद्व को, वह द्वंद्व के बाहर है; वह द्वंद्व के भीतर नहीं है।

मैंने सूना है, सेंट थेरेसा एक ईसाई फकीर औरत हुई है। उसके। पास तीन पैसे थे। और एक दिन सुबह उसने गांव में कहा कि मैं एक बड़ा चर्च बनाना चाहती हूं। मेरे पास काफी पैसे आ गए हैं। लोग हैरान हुए, क्योंकि कल भी उसको लोगों ने भीख मागते देखा था। लोगों ने पूछा कि इतने पैसे अचानक कहा से आ गए, जिससे बड़ा चर्च बनाने का खयाल है? उसने अपना भिक्षापात्र दिखाया, उसमें तीन पैसे थे। लोगों ने कहा, पागल तो नहीं हो गई थेरेसा! वैसे हम पहले ही सोचते थे कि तेरा दिमाग कुछ गड़बड़ है!

असल में भगवान की तरफ जो लोग जाते हैं, उनका दिमाग उनको थोड़ा गड़बड़ दिखाई पड़ता ही है, जो नहीं जाते हैं।

हम पहले ही सोचते थे कि तेरा दिमाग कुछ न कुछ ढीला है। तीन पैसे से चर्च बनाएगी? थेरेसा ने कहा, मैं हूं, तीन पैसे हैं और परमात्मा भी है। थेरेसा + तीन पैसे? परमात्मा। उन सबने कहा,। वह परमात्मा कहा है? तो थेरेसा ने कहा कि वह थर्ड फोर्स है, वह। तीसरी शक्ति है; वह तुम्हें दिखाई नहीं पड़ेगी; क्योंकि अभी तुम अपने भीतर तीसरी शक्ति को नहीं खोज सके हो।

जो व्यक्ति अपने भीतर तीसरी शक्ति को खोज लेता है, वह इस सारे जगत में भी तीसरी शक्ति को तत्काल देखने में समर्थ हो जाता है। आप द्वंद्व को ही देख रहे हैं, लेकिन यह खयाल नहीं है कि जो द्वंद्व को देख रहा है और समझ रहा है, वह द्वंद्व में नहीं हो सकता; वह द्वंद्व के बाहर ही होगा। अगर दो लड़ रहे हैं आपके भीतर, तो निश्चित ही आप उन दोनों के बाहर हैं, अन्यथा देखेंगे कैसे? अगर उन दोनों में से एक से जुड़े होते, तब तो एक से आपका तादात्म्य हो गया होता और दूसरे से आप अलग हो गए होते।

लेकिन आप कहते है, द्वंद्व हो रहा है, मेरे बाएं और दाएं हाथ लड़ रहे हैं। मेरे बाएं और दाएं हाथ लड़ पाते हैं, क्योंकि इन बाएं और दाएं हाथ के पीछे मै एक तीसरी ताकत हूं। अगर मैं बायां हाथ हूं तो दाएं हाथ से मेरा क्या आंतरिक द्वंद्व है? वह पराया हो गया। अगर मैं दाया हाथ नहीं बायां हाथ हूं तो दाया हाथ पराया हो गया, आंतरिक द्वंद्व कहा है?

आंतरिक द्वंद्व इसीलिए है कि एक तीसरा भी है, जो देख रहा है। जो कह रहा है कि मन में बड़ा द्वंद्व है। मन कभी यह कहता है, मन कभी वह कहता है। लेकिन जो मन के द्वंद्व के संबंध में कह रहा है, यह कौन है?

द्वंद्व में उतरें और इस तीसरे को पहचानते जाएं। जैसे—जैसे द्वंद्व में उतरेंगे, यह तीसरा साक्षी, यह विटनेस दिखाई पड़ना शुरू हो जाएगा। और जिस दिन यह तीसरा दिखाई पड़ा, उसी दिन से द्वंद्व विदा होने शुरू हो जाएंगे। तीसरा नहीं दिखाई पड़ता, इसलिए द्वंद्व है। तीसरा दिखाई पड़ता है, तो जोड़ शुरू हो जाता है।

पर द्वंद्व से भागें मत। द्वंद्व की प्रक्रिया अनिवार्य है। उससे ही गुजरकर, वह जो द्वंद्व के पार है, ट्रांसेंडेंटल है, उसे पाया जाता है।

पूरी गीता उस तीसरे बिंदु पर ही खींचने की कोशिश है अर्जुन को, पूरे समय अर्जुन को खींचने की चेष्टा कृष्ण की यही है कि वह तीसरे को पहचान ले। वह तीसरे को पहचान ले, तीसरे की पहचान के लिए सारा श्रम है। वह तीसरा सबके भीतर है और सबके बाहर भी है। लेकिन जब तक भीतर न दिखाई पड़े, तब तक बाहर दिखाई नहीं पड़ सकता है। भीतर दिखाई पड़े, तो बाहर वही—वही दिखाई पड़ने लगता है।

प्रश्न :

भगवान श्री, आपने धनंजय को सिंबल आफ ह्यूमन एट्रिव्यूट, मानवीय गुणों का प्रतीक बताया है। और सार्त्र के कथन से, ही इज कंडेम्ड टु बी एंग्जाहटी रिडेन। तो स्वजनों की हत्या के खयाल से धनंजय का कंप जाना क्या मानवीय नहीं

था? युद्धनिवृत्ति का उसका विचार मोहवशात भी क्या प्रकृति—संगत नहीं था? शेक्सपियर के हेमलेट की तरह अर्जुन का विषाद भी, टु किल आर नाट टु किल, मारना या न मारना प्रकार का था। तिलक ने गीता—रहस्य में अर्जुन की विषाद दशा का साम्य हेमलेट की मनःस्थिति में ढूंढ निकाला क्या यह उचित है?

सार्त्र जो कहता है, वह अर्जुन लिए बिलकुल ठीक ही कहता है। अर्जुन की भी संकट—अवस्था

एक्झिस्टेंशियल ही थी। सार्त्र, कामू या उनामुनो या जेस्पर या हाइडेगर, पश्चिम में जो भी अस्तित्ववादी विचारक हैं, वे ठीक अर्जुन की मनःस्थिति में हैं। इसलिए सावधान रहना, पश्चिम में कृष्ण पैदा हो सकते हैं। क्योंकि जहां अर्जुन की मनःस्थिति हो, वहा कृष्ण के पैदा होने की संभावना हो जाती है। पूरा पश्चिम एक्झिस्टेंशियल क्राइसिस में है। पूरे पश्चिम के सामने मनुष्य की चिंतातुरता एकमात्र सत्य होकर खड़ी हो गई है। क्या करें और क्या न करें? ईदर ऑर, यह या वह? क्या चुनें, क्या न चुनें? कौन—सा मूल्य चुनने योग्य है, कौन—सा मूल्य चुनने योग्य नहीं है—सब संदिग्ध हो गया है।

और ध्यान रहे कि पश्चिम में भी यह जो अस्तित्ववादी चिंतन पैदा हुआ, यह दो युद्धों के बीच में पैदा हुआ है। सार्त्र या कामू या उनामुनो पिछले दो महायुद्धों की परिणति हैं। पिछले दो महायुद्धों ने पश्चिम के चित्त में भी वह स्थिति खड़ी कर दी है, जो अर्जुन के चित्त में महाभारत के सामने खड़ी हो गई थी। विगत दो युद्धों ने पश्चिम के सारे मूल्य डगमगा दिए हैं। और अब सवाल यह है कि लड़ना कि नहीं लड़ना? लड़ने से क्या होगा? और ठीक स्थिति वैसी है कि अपने सब मर जाएंगे, तो लड़ने का क्या अर्थ है! और जब युद्ध की इतनी विकट स्थिति खड़ी हो जाए, तो शाति के समय में बनाए गए सब नियम संदिग्ध हो जाएं तो आश्चर्य नहीं है। यह ठीक सवाल उठाया है।

सार्त्र ठीक अर्जुन की मनःस्थिति में है। खतरा दूसरा है। सार्त्र की मनःस्थिति से खतरा नहीं है। सार्त्र अर्जुन की मनःस्थिति में है, लेकिन समझ रहा है, कृष्ण की मनःस्थिति में है। खतरा वहा है। है अर्जुन की मनःस्थिति में। जिज्ञासा करे, ठीक है। प्रश्न पूंछे, ठीक है। वह उत्तर दे रहा है। खतरा वहा है। खतरा यहां है कि सार्त्र जिज्ञासा नहीं कर रहा है। सार्त्र पूछ नहीं रहा कि क्या है ठीक। सार्त्र उत्तर दे रहा है कि कुछ भी ठीक नहीं है। सार्त्र उत्तर दे रहा है कि कुछ भी ठीक नहीं है, कोई मूल्य नहीं है। अस्तित्व अर्थहीन है, मीनिंगलेस है।

यह जो उत्तर दे रहा है कि ईश्वर नहीं है जगत में, आत्मा नहीं है जगत में, मृत्यु के बाद बचना नहीं है जगत में, सारा का सारा अस्तित्व एक अव्यवस्था है, एक अनार्की है, एक संयोग—जन्य घटना है, इसमें कोई सार नहीं है कहीं भी। यह उत्तर दे रहा है। यहां खतरा है।

अर्जुन भी उत्तर दे सकता था। लेकिन अर्जुन सिर्फ जिज्ञासा कर रहा है। अगर अर्जुन उत्तर दे, तो खतरे पैदा होंगे। लेकिन अर्जुन जिज्ञासा कर रहा है। और मैं मानता हूं कि जिसे दिखाई पड़ता हो—जैसा सार्त्र को दिखाई पड़ता है कि कोई मूल्य नहीं है, एक वैल्युलेसनेस है—जिसे दिखाई पड़ता है कि कोई अर्थ नहीं, कोई प्रयोजन नहीं। अगर सच में ही ऐसा दिखाई पड़ता है, तब तो सार्त्र को कुछ कहने का भी अर्थ नहीं है। चुप हो जाना चाहिए। ऐसी स्थिति में मौन ही सार्थक मालूम पड़ सकता है। व्यर्थ है सारी बात। ' नहीं, लेकिन सार्त्र मौन नहीं है। आतुर है कहने को, समझाने को, जो कह रहा है उससे दूसरों को राजी करने को। तब डर होता है। तब डर यह होता है कि सार्त्र भी भीतर असंदिग्ध नहीं है कि जो कह रहा है वह ठीक है। शायद सार्त्र दूसरों को समझाकर दूसरों के चेहदूएपर यह देखने को उत्सुक है कि कहीं उनको अगर ठीक लगती हो यह बात, तो ठीक होगी। मैं भी फिर ठीक मान लूं।

सार्त्र जिज्ञासा करे, वहा तक ठीक है। लेकिन पश्चिम में एब्सिस्टेंशियलिस्ट विचारक जिज्ञासा को उत्तर बना रहे हैं। और जब जिज्ञासा उत्तर बनती है, और जब शिष्य गुरु हो जाता है, और जब पूछना ही बताना बन जाता है, तब एक क्राइसिस आफ वैल्यूज पैदा होती है, जो कि पश्चिम में पैदा हुई है। सब अस्तव्यस्त हो गया है। सब अस्तव्यस्त हो गया है। उस अस्तव्यस्तता में कहीं कोई राह नहीं दिखाई पड़ती। नहीं दिखाई पड़ती, इसलिए नहीं कि राह नहीं है, राह तो सदा है। लेकिन अगर हम यह मान ही लें कि राह है ही नहीं, यही हमारा उत्तर बन जाए तो फिर राह दिखाई पड़नी असंभव है।

अर्जुन यह नहीं मानता। अर्जुन बड़ी जिज्ञासा कर रहा है कि राह। होगी। मैं खोजता हूं, मैं पूछता हूं आप मुझे बताएं। वह कृष्ण को कह रहा है, आप मुझे बताएं, आप मुझे समझाएं। मैं अशानी हूं मुझे कुछ पता नहीं है। विनम्र है। अर्जुन का अज्ञान विनम्र है, सार्त्र का अज्ञान विनम्र नहीं है। सार्त्र का अज्ञान बहुत असार्टिव है। खतरा है। और जब अज्ञान असार्टिव होता है, जब अज्ञान मुखर होता है, तो जितने खतरे होते हैं, उतने खतरे और किसी बात से नहीं होते। लेकिन अक्सर ऐसा होता है कि अज्ञान मुखर होता है।

अर्जुन पूछ रहा है। वह कहता है, मुझे पता नहीं है। मैं संदेह में पड़ गया हूं। मैं डूबा जा रहा हूं संकट में, मुझे कोई मार्ग दें। लेकिन मार्ग हो सकता है, इसकी उसकी खोज जारी है।

मैं मानता हूं कि अर्जुन सार्त्र से ज्यादा साहसी है। क्योंकि इतनी गहन निराशा में भी मार्ग की खोज बड़े साहस की बात है। सार्त्र उतना साहसी नहीं है। उसके वक्तव्य बहुत साहसी मालूम पड़ते हैं, उतना साहसी नहीं है। असल में कई बार ऐसा होता है कि अंधेरी गली में आदमी निकलता है, तो सीटी बजाता हुआ निकलता है। सीटी बड़ी साहसी मालूम पड़ती है आस—पास सोए हुए लोगों को। लेकिन सीटी बजाने से साहस पता नहीं चलता, उससे सिर्फ इतना ही पता चलता है कि आदमी डर रहा है। वह सीटी साहस का सबूत नहीं होती। वह सिर्फ भय को छिपाने की चेष्टा होती है।

वह जो केआस, जो अराजकता पश्चिम के सामने दो महायुद्धों ने प्रकट कर दी है, वह जो नीचे से एक बवंडर प्रकट हुआ है और भूमि फट गई है, और एक ज्वालामुखी ने मुंह बा दिया है पश्चिम के सामने, उस ज्वालामुखी को झुठलाने की कोशिश चल रही है। है ही नहीं जीवन में कोई अर्थ, इसलिए अनर्थ से डरने की जरूरत क्या है! है ही नहीं कोई मूल्य, इसलिए मूल्य की खोज की चिंता भी क्या करनी है! है ही नहीं कोई परमात्मा, तो प्रार्थना करने से क्या फायदा है! है ही नहीं कोई आशा, इसलिए निराशा में भी चिंतित होने की कोई जरूरत नहीं है!

निराशा में भी निश्चितता खोजने की चेष्टा, सिर्फ इस बात की सूचक है कि हृदय बहुत कमजोर है और साहस कम है। असल में आशा जब तीव्र निराशा में पड़ती है, तभी पता चलता है कि है या नहीं। और जब गहन अंधकार में ज्योति को खोजने की चेष्टा चलती है, तभी पता चलता है कि प्रकाश की कोई आकांक्षा, गहरा साहस, गहरी लगन और गहरे संकल्प से जुड़ी है या नहीं जुड़ी है।

पश्चिम की सार्त्रवादी चिंतना निराशा को स्वीकार कर लेने की है। निराशा है। इससे पश्चिम उबरेगा नहीं। इसलिए एक्झिस्टेंशियलिज्म, और उस तरह के विचारक सिर्फ एक फैशन से ज्यादा नहीं हैं। और फैशन मरनी शुरू हो गई है, फैशन मर रही है। अब अस्तित्ववाद कोई बहुत जीवित धारणा नहीं है। बच्चे पश्चिम के उसको भी इनकार, कर रहे हैं, वह भी ओल्ड फैशन हो गई है। छोड़ो यह बकवास भी !

लेकिन सार्त्र की पीढ़ी ने जो निराशा दी है, उसका दुष्परिणाम आने वाली पीढ़ी पर दिखाई पड़ रहा है। वह पीढ़ी कहती है कि ठीक है, हम सड़क पर नंगे नाचेंगे, क्योंकि तुम्हीं ने तो कहा कि कोई अर्थ नहीं है, तो फिर कपड़े पहनने में ही कौन—सा अर्थ है! तो हम फिर किसी भी तरह के काम—संबंध निर्मित करेंगे; क्योंकि तुम्हीं ने तो कहा है कि कोई अर्थ नहीं है, तो परिवार का भी क्या अर्थ है! फिर हम किसी को आदर नहीं देंगे; क्योंकि तुम्हीं ने तो कहा है कि जब ईश्वर ही नहीं है, तो आदर का क्या अर्थ है! और हम कल की चिंता न करेंगे।

आज अमेरिका और यूरोप की युनिवर्सिटीज लड़के खाली करके भाग रहे हैं। उनसे कहते हैं उनके मां — बाप कि पढ़ो, तो वे कहते है, कल का क्या भरोसा? तुम्हीं ने तो कहा है कि सब अनिश्चित है तो पढ़ —लिखकर भी क्या होगा? और वे लड़के पूछते हैं ‘कि हिरोशिमा में भी लड़के पढ़ रहे थे कालेज में फिर एटम गिर गया और सब समाप्त हो गया। हम भी पढ़ेंगे तुम एटम तैयार कर रहे हो किस दिन गिरा दोगे कुछ पता नहीं है। तो हमें जी लेने दो जो दो —चार क्षण हमें मिले हैं हमें जी लेने दो।

तो पश्चिम में जो जीवन का एक विस्तार है टाइम में समय में जो एक जीवन की यात्रा है वह एकदम खंडित हो गई है। क्षण पर टिक गया है; अभी जो है कर लो. अगले क्षण का कोई भरोसा नहीं है। और अगले क्षण के भरोसे को करोगे भी क्या? अंतत : तो मृत्यु ही है; अगला क्षण मृत्यु है। टाइम जो है वह डेथ का पर्यायवाची हो गया पश्चिम में; समय और मृत्यु एक ही अर्थ के हो गए। अभी जो है, है; और कोई मूल्य नहीं है।

अभी एक व्यक्ति ने कई हत्याएं कीं। और जब अदालत ने उससे तो उसने कहा, क्या हर्ज है! जब सभी को मर ही जाना है तो मैंने मरने में सहायता की है। और तो मर ही जाते. उनको मारने से मुझे थोड़ा आनंद मिला है! उसके ले लेने में हर्ज क्या है क् जब कोई मूल्य ही नहीं है तो ठीक है।

सार्त्र की पीढ़ी पश्चिम को एक खोखलेपन से, एक हालोनेस से भर गई। क्योंकि उसके पास उत्तर नहीं थे, सिर्फ प्रश्न थे। और उसने प्रश्नों को ही उत्तर बता दिया।

अगर अर्जुन जीत जाए, तो इस मुल्क में भी हालोनेस पैदा हो जाए। अर्जुन नहीं जीता और कृष्ण जीत गए। वह एक संघर्ष था बड़ा अर्जुन और कृष्ण के बीच। अगर अर्जुन को शक सवार हो जाए और धुन सवार हो जाए गुरु होने की, और वह अपनी जिज्ञासाओं को उत्तर बना दे, और अपने प्रश्नों को उत्तर बना दे, और अपने अज्ञान को ज्ञान मान ले, तो इस मुल्क में भी वही स्थिति पैदा हो जाती, जो पश्चिम में अस्तित्ववादी चिंतन के कारण पैदा हुई है। स्थिति वही है, लेकिन पश्चिम के पास अभी भी कृष्ण नहीं हैं। लेकिन इस सिचुएशन में कृष्ण पश्चिम में पैदा हो सकते हैं।

और इसलिए बहुत आश्चर्य की बात नहीं है कि कृष्ण— कांशसनेस जैसे आंदोलन पश्चिम के मन को पकड़ रहे हैं। कोई आश्चर्य नही है कि पश्चिम की सड़कों पर लड़के और लड़कियां ढोल पीटकर और कृष्य का भजन कर रहे है। यह कोई आश्चर्य नहीं होता। इस जगत में फूल भी खिलता है, तो लंबे कारण होते हैं। अगर लंदन की सड़क पर कोई हरेकृष्ण का भजन ढोल पर पीटता हुआ घूमता है, तो यह आकस्मिक नहीं है। यह पश्चिम के चित्त में कही कोई गहरी पीड़ा है।

अर्जुन तो मौजूद हो गया कृष्ण कहा हैं? प्रश्न तो खड़ा हो गया, उत्तर कहा है? उत्तर की तलाश है; उत्तर की तलाश पैदा हुई है। इसलिए ठीक सवाल था यह।

लेकिन मैं को मनुष्य का प्रतीक कहता हूं। और अर्जुन को जो ममत्व पकड़ा, वह भी मनुष्य की मनुष्यता है। नीत्से का एक वचन आपस? कहूं। नीत्से ने कहा है, अभागा होगा वह दिन, जिस दिन. मनुष्य—मनुष्य से पार होने की आकांक्षा छोड़ देगा। अभागा होगा वह दिन, जिस दिन मनुष्य की प्रत्यंचा पर मनुष्य को पार करने वाला तीर न खिंचेगा। अभागा होगा वह दिन, जिस दिन मनुष्य मनुष्य होने से तृप्त हो जाएगा। मनुष्य मंजिल नहीं है, पड़ाव है। उसे पार होना ही है। अर्जुन मंजिल नहीं है, पड़ाव है।

स्वाभाविक आदमी के लिए, अपनों को चाहे। स्वाभाविक है आदमी के लिए, अपनों को मारने से डरे। स्वाभाविक आदमी के लिए, ईदर — ऑर पकड़े—यह या वह करू या न करूं —चिंता आए। लेकिन जो के लिए स्वाभाविक है जीवन का अंत नहीं है। और मनुष्य के लिए जो स्वाभाविक है, वह सिर्फ मनुष्य के लिए स्वाभाविक है। और उस स्वभाव में चिंता और पीड़ा और तनाव भी जुड़े हैं; अशांति, दुख और विक्षिप्तता भी जुड़ी है।

मनुष्य को अगर हम स्वाभाविक समझें, तो वह स्वाभाविकता वैसी ही है, जैसे कैसर स्वाभाविक है, टी बी. स्वाभाविक है। । लेकिन टी बी के स्वभाव के साथ पीड़ा भी जुड़ी है। ऐसे ही मनुष्य को अगर हम पशु की तरफ से देखें, तो मनुष्य एक एवोल्यूशन है, एक विकास है; और अगर परमात्मा की तरफ से देखें, तो एक। डिसीज है, एक बीमारी है। अगर हम पशु की तरफ से देखें, तो। मनुष्य एक विकास है; और अगर परमात्मा की तरफ से देखें, तो मनुष्य एक बीमारी है, एक डिसीज है।

यह अंग्रेजी का शब्द डिसीज बहुत अच्छा है। यह दो शब्दों से बना है—डिस, ईज। उसका सिर्फ मतलब होता है बेचैनी, नाट ऐट ईज। तो आदमी एक डिसीज है, एक बेचैनी है, अगर परमात्मा की तरफ से देखें।

और अगर पशु भी हमारे संबंध में सोचते होंगे, तो वे भी नहीं सोचते होंगे कि हम विकास हैं। वे भी सोचते होंगे कि हमारे बीच से कुछ लोग गड़बड़ हो गए हैं, विक्षिप्त हो गए हैं; इनका दिमाग खराब हो गया है। सिवाय परेशानी के क्योंकि जब कोई पशु देखता होगा कि आदमी साइकियाट्रिस्ट के दफ्तर में जाता है, आदमी मनोवैज्ञानिक के पास अपने मन की जांच के लिए जाता है; जब देखते होंगे आदमी पागलखाने खड़े करता है; और जब देखते होंगे कि यह आदमी दिन—रात चिंता में जीता है, तो पशु भी कभी सोचते होंगे। कभी न कभी उनकी जमात बैठती होगी और वे

सोचते होंगे कि इन बेचारों को कितना समझाया था कि मत आदमी बनो। नहीं माने हैं, और फल भोग रहे हैं! जैसा कि पिता अक्सर बेटों के संबंध में सोचते हैं।

पशु पिता है, हम उसी यात्रा से आते हैं। जरूर सोचते होंगे कि कितना समझाया, लेकिन बिगड़ गई है यह जेनरेशन, यह पीढ़ी भटक गई। लेकिन उन्हें पता नहीं कि इस भटकाव से संभावनाएं खुल गई हैं। इस भटकाव से एक बड़ी यात्रा खुली है।

स्वभावत:, जो घर बैठा है, वह उतना परेशान नहीं होता। जो यात्रा पर निकला है, वह परेशान होता है। राह की धूल भी है, राह के गड्ढे भी हैं, राह की भूलें भी हैं, राह पर भटकन भी है। अनजान रास्ता है, पास कोई नक्शा नहीं। अनचार्टर्ड है, खोजना है और चलना है; चलना है और रास्ता बनाना है। लेकिन जो चलेंगे, भूलेंगे, भटकेंगे, गिरेंगे, दुखी होंगे, वे ही पहुंचते भी हैं।

अर्जुन स्वाभाविक है मनुष्य के लिए। लेकिन अर्जुन खुद पीड़ा से भरा है। वह भी मनुष्य होने की इच्छा में नहीं है। वह कहता है या तो दुर्योधन हो जाए, या तो कोई समझा दे कि जो हो रहा है, सब ठीक है। या कोई ऊपर उठा दे अर्जुन होने से। उसकी चिंता, उसका दुख, उसकी पीड़ा वही है।

गाण्डीवं स्त्रंसते हस्तात्त्वक्चैव पीरदह्यते ।
न च शङ्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मन: ।।30।।

निमित्तानि च यश्यामि विपरीतानि केशव ।
न च श्रेयोउनुयश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे ।।31।।

न कांक्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च
कीं नो शज्येन गोविन्द किं भोगैर्जीवितेन वा ।।32।।

तथा हाथ से गांडीव धनुष गिरता है और त्वचा भी बहुत जलती है तथा मेरा मन भ्रमित— सा हो रहा है। इसलिए मैं खड़ा रहने को भी समर्थ नहीं हूं। और है केशव! लक्षणों को भी विपरीत ही देखता हूं तथा युद्ध में अपने कुल को मारकर कल्याण भी नहीं देखता। हे कृष्ण ! मैं विजय को नहीं चाहता और राज्य तथा सुखों को भी नहीं चाहता। हे गोविंद! हमें राज्य से क्या प्रयोजन है, अथवा भोगों मे और जीवन से भी क्या प्रयोजन है।

अर्जुन के अंग शिथिल हो गए हैं। मन साथ छोड़ दिया है। धनुष छूट गया है। वह इतना कमजोर मालूम पड़ रहा है कि कहता है, रथ पर मैं बैठ भी सकूंगा या नहीं, इतनी भी सामर्थ्य नहीं है। यहां दो—तीन बातें समझनी जरूरी हैं।

एक तो यह कि शरीर केवल हमारे चित्त का प्रतिफलन है। गहरे में मन में जो घटित होता है, वह शरीर के रोएं—रोएं तक फलित हो जाता है। यह अर्जुन बलशाली इतना, अचानक ऐसा बलहीन हो गया कि रथ पर बैठना उसे कठिन मालूम पड़ रहा है! क्षणभर पहले ऐसा नहीं था। इस क्षणभर में वह बीमार नहीं हो गया। इस क्षणभर में उसके शरीर में कोई अशक्ति नहीं आ गई। इस क्षणभर में वह वृद्ध नहीं हो गया। इस क्षणभर में क्या हुआ है?

इस क्षण में एक ही घटना घटी है, उसका मन क्षीण हो गया; उसका मन दुर्बल हो गया. उसका मन स्व—विरोधी खंडों में विभाजित हो गया। जहां मन विभाजित होता है विरोधी खंडों में, तत्काल शरीर रुग्ण, दीन हो जाता है। जहां मन संयुक्त होता है एक संगीतपूर्ण स्वर में, वहा शरीर तत्काल स्वस्थ और अविभाजित हो जाता है। उसके धनुष का गिर जाना, उसके हाथ—पैर का कंपना, उसके रोओं का खड़ा हो जाना, सूचक है। इस बात का सूचक है कि शरीर हमारे मन की छाया से ज्यादा नहीं है।

नहीं, पहले ऐसा खयाल नहीं था। वैज्ञानिक कहते रहे हैं कि मन हमारा शरीर की छाया से ज्यादा नहीं है। जो इस भ्रांत—चिंतन को मानकर सोचते रहे, वे लोग भी यही कहते रहे हैं। बृहस्पति भी यही कहेंगे, एपिकुरस भी यही

कहेगा, कार्ल मार्क्स और एंजिल्स भी यही कहेंगे, कि वह जो चेतना है, वह केवल बाई—प्राडक्ट है। वह जो भीतर मन है, वह केवल हमारे शरीर की उप—उत्पत्ति है; वह केवल शरीर की छाया है।

अभी अमेरिका में दो मनोवैज्ञानिक थे, जेम्स और लेंगे। उन्होंने एक बहुत अदभुत सिद्धांत प्रतिपादित किया था, और वर्षों तक स्वीकार किया जाता रहा। जेम्स—लेंगे थियरी उनके सिद्धांत का नाम था। बड़ी मजे की बात उन्होंने कही थी। उन दोनों ने यह सिद्ध करने की कोशिश की थी कि सदा से हम ऐसा समझते रहे हैं कि आदमी भयभीत होता है, इसलिए भागता है। उन्होंने कहा, नहीं, यह गलत है। क्योंकि अगर शरीर प्रमुख है और मन केवल उप—उत्पत्ति है, तो सच्चाई उलटी होनी चाहिए। उन्होंने कहा, मनुष्य चूंकि भागता है, इसलिए भय अनुभव करता है।

हम सोचते रहे हैं सदा से कि आदमी क्रोधित होता है, इसलिए मुट्ठिया भिंच जाती हैं; क्रोधित होता है, इसलिए दात भिंच जाते है; क्रोधित होता है इसलिए आंखों में खून दौड़ जाता है; क्रोधित होता है, इसलिए श्वास तेजी से चलने लगती है और हमले की तैयारी हो जाती है।

जेम्स—लेंगे ने कहा, गलत है यह बात। क्योंकि शरीर प्रमुख है, इसलिए घटना पहले शरीर पर घटेगी, मन में केवल प्रतिफलन होगा। मन सिर्फ एक मिरर है, एक दर्पण! इससे ज्यादा नहीं। इसलिए उन्होंने कहा कि नहीं, बात उलटी है। आदमी चूंकि मुट्ठिया भींच लेता है और आदमी चूंकि दात कस लेता है और चूंकि शरीर में खून तेजी से दौड़ता है, श्वास तेज चलती है, इसलिए क्रोध पैदा होता है।

फिर उन्होंने सिद्ध करने के लिए. और यहां तर्क का बहुत मजेदार मामला है। और तर्क कभी—कभी कैसे गलत रास्तों पर ले जाता है, वह देखने जैसा है। उन्होंने कहा, तो मैं यह कहता हूं कि एक आदमी बिना भागे हुए और बिना शरीर पर भागने का कोई प्रभाव हुए भयभीत होकर बता दे। या एक आदमी बिना आंखें लाल किए, मुट्ठिया बाधे, दात भींचे, क्रोध करके बता दे।

मुश्किल है बात! कैसे बताइएगा क्रोध करके। तब उन दोनों ने कहा कि तब ठीक है, जब इसके बिना क्रोध नहीं हो सकता, तो क्रोध इनका ही जोड़ है। इससे ज्यादा कुछ भी नहीं है।

लेकिन पता नहीं, जेम्स—लेंगे को किसी ने क्यों नहीं कहा कि इससे उलटा होता है। एक अभिनेता क्रोध करके बता सकता है, ' आंखें लाल करके बता सकता है, दात भींच सकता है, मुट्ठी भींच सकता है, फिर भी भीतर उसके कोई क्रोध नहीं होता। और एक अभिनेता प्रेम करके बता सकता है—और जितना अभिनेता बता सकता है, उतना शायद कोई भी नहीं बता सकता—भीतर उसके कोई प्रेम नहीं होता है।

यह अर्जुन, जेम्स—लेंगे सिद्धांत के बिलकुल विपरीत काम कर रहा है; बिलकुल उलटा काम कर रहा है। जेम्स—लेंगे इसको बिलकुल मानने को राजी नहीं होंगे; कहेंगे, बिलकुल उलटी बातें कर रहा है। इसे कहना चाहिए कि चूंकि मेरा धनुष गिरा जाता है, चूंकि मेरे रोएं खड़े हुए जाते हैं, चूंकि मेरा शरीर शिथिल हुआ जाता है, क्योंकि मेरे अंग निढाल हुए जाते हैं, इसलिए हे केशव! मेरे मन में बड़ी चिंता पैदा हो रही है।

लेकिन यह ऐसा नहीं कह रहा है। चिंता इसे पहले पैदा हो गई है। क्योंकि इसके शरीर के शिथिल होने और इसके रोएं खड़े होने का और कोई भी कारण नहीं है; बाहर कोई भी कारण नहीं है। एक क्षण में बाहर कुछ भी नहीं बदला है। बाहर सब वही है; लेकिन भीतर सब बदल गया है। भीतर सब बदल गया है।

तिब्बत में ल्हासा युनिवर्सिटी में विद्यार्थियों का भी शिक्षण जो होता था, उसमें भी योग का कुछ वर्ग अनिवार्य था। और एक योग का नियमित प्रयोग ल्हासा युनिवर्सिटी में चलता था। उसमें भी विद्यार्थियों को उत्तीर्ण होना जरूरी था। और वह था हीट—योग। वह है शरीर में भीतर से मन के कारण गर्मी पैदा करने की प्रक्रिया। अजीब! सिर्फ मन से! सिर्फ मन से। बाहर बर्फ पड़ रही है; और आदमी नग्न खड़ा है, और उसके शरीर से पसीना चू रहा है।

और इतने पर राजी नहीं होते थे वे। और जब पश्चिम से आए हुए डाक्टरों ने भी इसका परीक्षण किया, तो बहुत हैरान हो गए। क्योंकि जब विद्यार्थियों की परीक्षा होती थी, तो रात में खुले मैदान में, बर्फ के पास, झील के किनारे उन्हें नग्न

खड़ा किया जाता और उनके पास कपड़े, कोट, कमीज गीले करके रखे जाते, पानी में डुबाकर। और वे नग्न खड़े हैं। और उस लड़के को सर्वाधिक अंक मिलेंगे, जो रात अपने शरीर से इतनी गर्मी पैदा करे कि अनेक कपड़े सुखा दे शरीर पर पहनकर! जितने ज्यादा कपड़े रातभर में वह सुखा देगा, उतने ज्यादा अंक उसको मिलने वाले हैं!

और जब पश्चिम से आए डाक्टरों के एक दल ने यह देखा, तो वे दंग रह गए। उन्होंने कहा, जेम्स—लेंगे थियरी का क्या हुआ ' क्योंकि बाहर तो बर्फ पड रही है और वे डाक्टर तो लबादे पर लबादे पहनकर भी भीतर कंपे जा रहे हैं। और ये नग्न खड़े लड़के क्या कर रहे हैं? क्योंकि इनके शरीर पर जो होना चाहिए वह हो रहा है। लेकिन मन इनकार कर रहा है। और मन कहे चला जा रहा है कोई बर्फ नहीं है। और मन कहे चला जा रहा है कि धूप है, तेज गर्मी है। और मन कहे जा रहा है कि शरीर में आग तप रही है। इसलिए। शरीर को पसीना छोड़ना पड़ रहा है।

यह जो अर्जुन के साथ हुआ, वह उसके मन में पैदा हुए भंवर का शरीर तक पहुंचा हुआ परिणाम है। और हमारी जिंदगी में शरीर से बहुत कम भंवर मन तक पहुंचते हैं। मन से ही अधिकतम भंवर शरीर तक पहुंचते हैं। लेकिन हम जिंदगीभर शरीर की ही फिक्र किए चले जाते हैं।

अगर कृष्ण को थोड़ी भी—जिसको तथाकथित वैज्ञानिक बुद्धि कहें—होती, तो वे अर्जुन को कहते कि मालूम होता है, तुझे फ्लू हो गया है! अगर उन्होंने मार्क्स को पढ़ा होता, तो वे कहते, मालूम होता है, तेरे शरीर में किसी हार्मोन की कोई कमी हो गई है। वे कहते, तू चल और किसी जनरल अस्पताल में भर्ती हो जा। लेकिन उन्होंने यह बिलकुल नहीं कहा। वे शिथिल—गात होते अर्जुन को कुछ और समझाने लगे, वे उसके मन को कुछ और समझाने लगे; वे उसके मन को बदलने की कोशिश करने लगे।

जगत में दो ही प्रक्रियाएं हैं, या तो आदमी के शरीर को बदलने की प्रक्रिया और या आदमी की चेतना को बदलने की प्रक्रिया। विज्ञान आदमी के शरीर को बदलने की प्रक्रिया पर ध्यान देता है, धर्म मनुष्य की चेतना को बदलने की प्रक्रिया पर ध्यान देता है। वहीं भेद है। और इसलिए मैं कहता हूं, धर्म विज्ञान से ज्यादा गहरा विज्ञान है, धर्म विज्ञान से ज्यादा महान विज्ञान है। वह सुप्रीम साइंस है, वह परम विज्ञान है। क्योंकि वह केंद्र से शुरू करता है। और वैज्ञानिक बुद्धि निश्चित ही केंद्र से शुरू करेगी। परिधि पर की गई चोटें जरूरी नहीं कि केंद्र पर पहुंचें, लेकिन केंद्र पर की गई चोटें जरूरी रूप से परिधि पर पहुंचती हैं।

एक पत्ते को पहुंचाया गया नुकसान जरूरी नहीं है कि जड़ों तक पहुंचे। अक्सर तो नहीं पहुंचेगा। पहुंचने की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन जड़ों को पहुंचाया गया नुकसान पत्तों तक जरूर पहुंच जाएगा; पहुंचना ही पड़ेगा; पहुंचने के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं है।

इसलिए अर्जुन की इस स्थिति को देखकर, गा उसे कहा से पकड़ते हैं? अगर वे शरीर से पकड़ते, तो गीता फिजियोलाजी की एक किताब होती। वह भौतिक—शास्त्र होती। वे उसे चेतना से पकड़ते हैं, इसलिए गीता एक मनस—शास्त्र बन गई। गीता के मनस—शास्त्र बनने का प्रारंभ—अर्जुन के शरीर की घटना पर कृष्ण बिलकुल ध्यान ही नहीं देते। वे न उसकी नाड़ी देखते हैं, न थर्मामीटर लगाते हैं 1 वे उसकी फिक्र ही नहीं करते कि उसके शरीर को क्या हो रहा है। वे फिक्र करते हैं कि उसकी चेतना को क्या हो रहा है। यह थोड़ा विचारणीय है।

जैसा मैंने कहा, आज भी मनुष्य जाति करीब—करीब अर्जुन की चेतना से ग्रस्त है। उसके शरीर पर भी वे परिणाम हो रहे हैं। लेकिन हम जो इलाज कर रहे हैं, वे शरीर से शुरू करने वाले हैं। इसलिए सब इलाज हो जाते हैं, और बीमार बीमार ही बना रहता है। उसकी चेतना से कोई इलाज शुरू नहीं हो पाता है।

यह अर्जुन कहता है, मेरा मन साथ छोड़े दे रहा है। मैं बिलकुल निर्वीर्य हो गया, बलहीन हो गया।

बल क्या है? एक तो बल है जो शरीर की मास—पेशियों, मसल्स में होता है। उसमें तो कोई भी फर्क नही पड़ गया है। लेकिन इस क्षण अर्जुन को एक छोटा—सा बच्चा भी धक्का दे दे, तो वह गिर जाएगा। इस क्षण अर्जुन की मसल्स कुछ भी काम नहीं करेंगी। एक छोटा—सा बच्चा उसे हरा सकता है। यह मस्कुलर ताकत कुछ अर्थ की नहीं मालूम होती है। एक और बल है, जो संकल्प से, विल से पैदा होता है। सच तो यह है कि वही बल है, जो संकल्प से पैदा होता है।

वह जो संकल्प से पैदा होने वाला बल है, वह बिलकुल ही खो गया है। क्योंकि संकल्प कहा से आए? मन दुविधा में पड़ गया, तो संकल्प खंडित हो जाता है। मन एकाग्र हो, तो संकल्प संगठित हो जाता है। मन दुविधा में द्वंद्वग्रसा हो जाए, कांफ्लिक्ट में पड़ जाए, तो संकल्प खो जाता है। हम सब भी निर्बल हैं, संकल्प नहीं है। वही संकल्प खो गया है। क्या करूं, क्या न करूं? करना क्या उचित होगा, क्या उचित नहीं होगा? सब आधार खो गए पैर के नीचे से। अर्जुन अधर में लटका रह गया है; वह त्रिशंकु हो गया है।

यह प्रत्येक मनुष्य की स्थिति है। और इसलिए अदभुत सत्य हैं कुरान में, और अदभुत सत्य हैं बाइबिल में, और अदभुत सत्य हैं जेन्दअवेस्ता में, और अदभुत सत्य हैं ताओ—तेह—किंग में, और दुनिया के अनेक—अनेक ग्रंथों में अदभुत सत्य हैं, लेकिन गीता फिर भी विशिष्ट है, और उसका कुल कारण इतना है कि वह धर्मशास्त्र कम, मनस—शास्त्र, साइकोलाजी ज्यादा है। उसमें कोरे स्टेटमेंट्स नहीं हैं कि ईश्वर है और आत्मा है। उसमें कोई दार्शनिक वक्तव्य नहीं हैं; कोई दार्शनिक तर्क नहीं हैं। गीता मनुष्य जाति का पहला मनोविज्ञान है; वह पहली साइकोलाजी है। इसलिए उसके मूल्य की बात ही और है।

अगर मेरा वश चले, तो कृष्ण को मनोविज्ञान का पिता मैं कहना चाहूंगा। वे पहले व्यक्ति हैं, जो दुविधाग्रस्त चित्त, माइंड इन

काफ्लिक्ट, संतापग्रस्त मन, खंड—खंड टूटे हुए संकल्प को अखंड और इंटिग्रेट करने की... कहें कि वे पहले आदमी हैं, जो साइको—एनालिसिस का, मनस—विश्लेषण का उपयोग करते हैं। सिर्फ मनस—विश्लेषण का ही नहीं, बल्कि साथ ही एक और दूसरी बात का भी, मनस—संश्लेषण का भी, साइको—सिंथीसिस का भी। तो कृष्ण सिर्फ फ्रायड की तरह मनोविश्लेषक नहीं हैं; वे संश्लेषक भी हैं। वे मन की खोज ही नहीं करते कि क्या—क्या खंड हैं उसके! वे इसकी भी खोज करते हैं कि वह कैसे अखंड, इंडिविजुएशन को उपलब्ध हो; अर्जुन कैसे अखंड हो जाए!

और यह अर्जुन की चित्त—दशा, हम सबकी चित्त—दशा है। लेकिन, शायद संकट के इतने तीव्र क्षण में हम कभी नहीं होते। हमारा संकट भी कुनकुना, ल्यूक—वार्म होता है, इसलिए हम उसको सहते चले जाते हैं। इतना ड्रामैटिक, इतना त्वरा से भरा, इतना नाटकीय संकट हो, तो शायद हम भी अखंड होने के लिए आतुर हो जाएं।

मैंने सुना है कि एक मनोवैज्ञानिक ने एक उबलते हुए पानी की बाल्टी में एक मेंढक को डाल दिया। वह मेंढक तत्काल छलांग ?? लगाकर बाहर हो गया। वह मेंढक अर्जुन की हालत में पड़ गया था। उबलता हुआ पानी, मेंढक कैसे एडजस्ट करे! छलांग लगाकर बाहर हो गया। फिर उसी मनोवैज्ञानिक ने उसी मेंढक को एक दूसरी बाल्टी में डाला और उसके पानी को धीरे— धीरे गरम किया, चौबीस घंटे में उबलने तक लाया वह। करता रहा धीरे—धीरे गरम। वह जो मेंढक था, हम जैसा, राजी होता गया। थोड़ा पानी गरम हुआ, मेंढक भी थोड़ा गरम हुआ। उस मेंढक ने कहा, अभी ऐसी कोई छलांग लगाने की खास बात नहीं है; चलेगा। वह एडजस्टमेंट करता चला गया, जैसा हम सब करते चले जाते हैं। चौबीस घंटे में वह एडजस्टेड हो गया। जब पानी उबला, तब एडजस्टेड रहा, क्योंकि अभी उसे कोई फर्क नहीं मालूम पड़ा। रत्ती—रत्ती बढ़ा। एक रत्ती से दूसरी रत्ती में कोई छलांग लगाने जैसी बात नहीं थी। उसने कहा कि इतने से राजी हो गए, तो इतने से और सही। वह मर गया। पानी उबलता रहा, वह उसी में उबल गया, छलांग न लगाई। मेंढक छलांग लगा सकता था। अब मेंढक को छलांग लगाने से ज्यादा स्वाभाविक और कुछ भी नहीं है, मगर वह भी न हो सका।

अर्जुन उबलते हुए पानी में एकदम पड़ गया है। इसलिए सिचुएशन ड्रामैटिक है, सिचुएशन एक्सट्रीम है। वह ठीक स्थिति पूरी उबलती हुई है। इसलिए अर्जुन एकदम धनुषबाण छोड़ दिया।

हम अपनी तराजू भी नहीं छोड़ सकते इस तरह, हम अपना गज भी नहीं छोड़ सकते इस तरह, हम अपनी कलम भी नहीं छोड़ सकते इस तरह। और रथ पर ही बैठने में एकदम इतना कमजोर हो गया! क्या हुआ? संकट से, इतनी तीव्रता से राजी होना, एडजस्ट होना मुश्किल हो गया।

मैं आपसे कहना चाहूंगा कि राजी मत होते चले जाना। नहीं सबको ऐसे मौके नहीं आते कि महाभारत हो हरेक की जिंदगी में। और बड़ी कृपा है भगवान की, ऐसा हरेक आदमी को महाभारत का मौका लाना पड़े, तो कठिनाई होगी बहुत।

लेकिन जिंदगी महाभारत है, पर लंबे फैलाव पर है! त्वरा नहीं है उतनी। तीव्रता नहीं है उतनी। सघनता नहीं है उतनी। धीमे—धीमे सब होता रहता है। मौत आ जाती है और हम एडजस्ट होते चले जाते हैं; हम समायोजित हो जाते हैं। और तब जिंदगी में क्रांति नहीं हो पाती है।

अर्जुन की जिदगी में क्रांति निश्चित है। इधर या उधर, उसे क्रांति . से गुजरना ही पड़ेगा। पानी उबलता हुआ है। ऐसी जगह है, जहां उसे कुछ न कुछ करना ही होगा। या तो वह भाग जाए, जैसा कि बहुत लोग भाग जाते हैं। सरल वही होगा। शार्ट कट वही है। निकटतम यही मालूम पड़ता है, भाग जाए।

इसलिए अधिक लोग जीवन के संकट में से भागने वाला संन्यास निकाल लेते हैं। अधिक लोग जीवन के संकट में से एस्केपिस्ट रिनसिएशन निकाल लेते हैं, एकदम जंगल भाग जाते हैं। वे कहते हैं, नहीं, अहमदाबाद नहीं, हरिद्वार जा रहे हैं। अर्जुन भी वैसी स्थिति में था। हालाकि गीता वे अपने साथ ले जाते हैं। तब बड़ी हैरानी होती है। हरिद्वार में गीता पढ़ते हैं। अर्जुन भी पढ़। सकता था। हरिद्वार वह भी जाना चाहता था। लेकिन वह उसको। एक गलत आदमी मिल गया, कृष्य मिल गया। उसने कहा कि रुक; भाग मत!

क्योंकि भगोड़े परमात्मा तक पहुंच सकते हैं? भगोड़े परमात्मा तक नहीं पहुंच सकते। जो जीवन के सत्य से भागते हैं, वे परमात्मा तक नहीं पहुंच सकते हैं। जो जीवन का ही साक्षात्कार करने में असमर्थ हैं, वे परमात्मा का साक्षात्कार नहीं कर सकते हैं। क्योंकि जो जीवन को ही देखकर शिथिल—गात हो जाते हैं, जिनके गांडीव छूट जाते है हाथ से, जिनके रोएं कंपने लगते हैं और जिनके प्राण थरथराने लगते हैं—जीवन को ही देखकर—नहीं, परमात्मा के समक्ष वे खड़े नहीं हो सकेंगे।

जीवन तैयारी है जीवन कदम — कदम तैयारी है उस विराट सत्य के साक्षात्कार की एनकाउंटर की। और अर्जुन तो जीवन के एक छोटे से तथ्य से ही भागा चला जा रहा है! लेकिन भागने की तैयारी उसकी पूरी हो गई है।

अब यह बड़े मजे की बात है कि वह रथ पर नहीं चढ़ पाता। वह कहता है, रथ पर चढ़ने की भी शक्ति नहीं है। लेकिन अगर उससे कहो कि भाग जाओ जंगल की तरफ तो बड़ी शक्ति पाएगा. अभी भाग जाएगा। एकदम इतनी तेजी से दौड़ेगा, जितनी तेजी से कभी नहीं दौड़ा है। जो आदमी जिंदगी से लड़ने की सामर्थ्य नहीं जुटा पा रहा है वह भागने की जुटा लेता है। सामर्थ्य की तो कमी नहीं मालूम पड़ती, शक्ति की तो कमी नहीं मालूम पड़ती, शक्ति तो है। अगर कृष्ण उसे कहें छोड़ सब, तो वह बड़ा प्रफुल्ल हो जाएगा। लेकिन यह प्रफुल्लता ज्यादा देर टिकेगी नहीं। और अगर अर्जुन जंगल चला जाए, तो थोड़ी देर में ही उदास हो जाएगा। बैठ भी जाए वह संन्यासी के वेश में एक वृक्ष के नीचे, तो थोड़ी देर में जंगल से ही लकडी वगैरह बटोरकर वह तीर — कमान बना लेगा। वह आदमी वही है।

क्योंकि हम अपने से भागकर कहीं भी नहीं जा सकते हैं। हम सबसे भाग सकते हैं, अपने से नहीं भाग सकते हैं। मैं तो अपने साथ ही पहुंच जाऊंगा। तो थोड़ी देर में जब वह देखेगा कि देखने वाला नहीं है, तो पशु—पक्षियों का शिकार शुरू कर देगा। अर्जुन ही तो भागेगा न! और पशु — पक्षियों तो अपने नहीं हैं; वे तो स्वजन— प्रियजन नहीं हैं। उन्हें तो मारने मे कोई कठिनाई आएगी नहीं। वह मजे से मारेगा।

अर्जुन संन्यासी हो नहीं सकता। क्योंकि जो संसारी होने की भी हिम्मत नहीं दिखा पा रहा है, उसके संन्यासी होने का कोई उपाय नहीं है। असल में संन्यास संसार से भागने का नाम नहीं है, संसार को पार कर जाने का नाम है।

संन्यास, संसार की जलन और आग का अतिक्रमण है। और जो उसे पूरा पार कर लेता है, वही अधिकारी हो पाता है। संन्यास संसार से विरोध नहीं संन्यास ससार की संपूर्ण समझ और संघर्ष का फल है।

सन्यास की स्थिति में आ गया है वह। पलायनवादी हो तब तो अभी रास्ता है उसके सामने। अगर संघर्ष में जाए, तो है। अब पूरी गीता उसके गात की शिथिलता को मिटाने के लिए है; उसे वापस संकल्पवान होने के है; उसे वापस शक्ति, संकल्प, वापस व्यक्तित्व और आत्मवान बनाने की पूरी चेष्टा है।

और इसलिए मैं जो सारी चर्चा करूंगा, वह इसी दृष्टि से चर्चा करूंगा कि वह आपके मनस के भी काम की है। और अगर आपके भीतर न हो तो आप मत आएं वह आपके काम की बात नहीं है। वह बेमानी है। आपके भीतर धा न आपके भीतर संघर्ष न हो' आपके भीतर बेचैनी न हो तो आप मत। उससे कोई सब नहीं है। आपके भीतर दुविधा हो बेचैनी हो तनाव हो आपके भीतर निर्णय में हो आपके भीतर खंड—खंड आदमी हो और आप भी भीतर से टूट गए हो, डिसइंटिग्रेटेड हों, तो ही वाली बात आपके अर्थ की हो सकती है।

प्रवचन 3 : विषाद और संताप से आत्म-क्रांति की ओर ओशो – गीता-दर्शन – भाग एक अध्याय—1-2 – प्रवचन 3 : विषाद और संताप से आत्म-क्रांति की ओर

गाण्डीव स्रंसते हस्तात्त्वफ्चैव परिदह्यते। न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मन: ।।30।। निमित्तानि च पश्यामि वियरीतानि केशव। न च श्रेयोऽनुयश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे ।।31।। न कांक्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च । कीं नो राज्येन गोविन्द कीं भोगैजीवितेन वा ।।32।।

तथा हाथ से गांडीव धनुष गिरता है। और ऋचा थी बहुत जलती है तथा मेरा मन भ्रमित—सा हो रहा है। इसलिए मैं खड़ा रहने को भी समर्थ नहीं हूं। और हे केशव! लक्षणों को भी विपरीत ही देखता हूं तथा युद्ध में अपने कुल को मारकर कल्याण भी नहीं देखता। हे कृष्ण ! मैं विजय को नहीं चाहता और राज्य तथा सुखों को भी नहीं चाहता। हे गोविंद! हमें राज्य से कृया प्रयोजन। अथवा भोगों से और जीवन से भी क्या प्रयोजन है। अर्जुन बड़ी सशर्त बात कह रहा है; बहुत कंडीशनल, शर्त से बंधा उसका व्यक्तव्य है। सुख के भ्रम से वह मुक्त नहीं हुआ है। लेकिन वह कह रहा है कि अपनों को मारकर जो सुख मिलेगा, ऐसे सुख से क्या प्रयोजन? अपनों को मारकर जो राज्य मिलेगा, ऐसे राज्य से क्या प्रयोजन? अगर अपनों को बिना मारे राज्य मिल जाए, और अपनों को बिना मारे सुख मिल जाए, तो अर्जुन लेने को तैयार है। सुख मिल सकता है, इसमें उसे कोई संदेह नहीं है। कल्याण हो सकता है, इसमें उसे कोई संदेह नहीं है। अपनों को मारने में उसे संदेह है। इस मनोदशा को समझ लेना उपयोगी है। हम सब भी ऐसे ही शर्तों में सोचते हैं। वेहेंगर ने एक किताब लिखी है, दि फिलासफी आफ ऐज इफ। जैसे सारा जीवन ही यदि पर खड़ा है। यदि ऐसा हो तो सुख मिल सकेगा, यदि ऐसा न हो तो सुख नहीं मिल सकेगा। यदि ऐसा हो तो कल्याण हो सकेगा, यदि ऐसा न हो तो कल्याण नहीं हो सकेगा। लेकिन एक बात निश्चित है कि सुख मिल सकता है, शर्त पूरी होनी चाहिए। और मजे की बात यही है कि जिसकी शर्त है, उसे सुख कभी नहीं मिल सकता है। क्यों ? क्योंकि जिसे सुख का भ्रम नहीं टूटा, डिसइलूजनमेंट नहीं हुआ, जिसका सुख का मोह भंग नहीं हुआ, उसे सुख नहीं मिल सकता है। सुख मिलता है केवल उसे, जो इस सत्य को जान लेता है। कि सुख इस जगत में संभव नहीं है। बड़ा पैराडाक्सिकल, बड़ा उलटा दिखाई पड़ता है। जो सोचता है, इस जगत में सुख मिल सकता है, कुछ शर्तें भर पूरी हो जाएं, वह केवल नए—नए दुख खोजता चला जाता है। असल में हर दुख को खोजना हो तो सुख बनाकर ही खोजना पड़ता है। दुख के खोजने की तरकीब ही यही है कि उसे सुख मानकर खोजना पड़ता है। जब तक खोजते हैं तब तक सुख मालूम पड़ता है, जब मिल जाता है तब दुख मालूम पड़ता है। लेकिन मिल जाने के बाद कोई उपाय नहीं है। अर्जुन अगर कहे कि सुख संभव कहा है? संसार में कल्याण संभव कहा है? राज्य में प्रयोजन कहा है? अगर वह ऐसा कहे तो उसका प्रश्न बेशर्त है, अनकडीशनल है। तब उत्तर बिलकुल और होता। लेकिन वह यह कह रहा है, अपनों को मारकर सुख कैसे मिलेगा? सुख तो मिल सकता है, अपने न मारे जाएं तो सुख लेने को वह तैयार है। कल्याण तो हो सकता है, राज्य में प्रयोजन भी हो सकता है, लेकिन अपने न मारे जाएं तो ही राज्य में प्रयोजन हो सकता है। राज्य व्यर्थ है, सुख व्यर्थ है, महावीर या बुद्ध को जैसा खयाल हुआ, अर्जुन को वैसा खयाल नहीं है। अर्जुन के सारे वक्तव्य उसकी विरोधी मनोदशा की सूचना देते हैं। वह जिस चीज को कह रहा है, बेकार है, उस चीज को बेकार जान नहीं रहा है। वह जिस चीज को कह रहा है, क्या प्रयोजन? क्या फायदा? वह पूरे वक्त मन में जान रहा है कि फायदा है, प्रयोजन है, सिर्फ उसकी शर्त पूरी होनी चाहिए। उसका यदि अगर पूरा हो जाए, इफ अगर पूरी हो जाए, तो सुख मिलेगा, इसमें उसे कोई भी संदेह नहीं है। मैने एक मजाक सुनी है। मैंने सुना है कि बर्ट्रेंड रसेल मर रहा है। मजाक ही है। एक पादरी यह खबर सुनकर कि बर्ट्रेंड रसेल मर रहा है, भागा हुआ पहुंच गया कि हो सकता है यह जीवनभर का निष्णात नास्तिक, शायद मरते वक्त मौत से डर जाए और भगवान को स्मरण कर ले। पर उस पादरी की मरते हुए बर्ट्रेड रसेल के पास भी जाने की सामने हिम्मत नहीं पड़ती है। वह भीड़ में, जो मित्रों की इकट्ठी हो गई थी, पीछे डरा हुआ खड़ा है कि कोई मौका अगर मिल जाए, तो वह बर्ट्रेंड रसेल को कह दे कि अभी भी माफी माग लो। और तभी बर्टूएड रसेल ने करवट बदली और कहा, हे परमात्मा! तो उसने सोचा, यह ठीक मौका है। इसके मुंह से भी परमात्मा का नाम निकला है! तो वह पास गया और उसने कहा कि ठीक अवसर है, अभी भी क्षमा मांग लो परमात्मा से। तो बर्ट्रेड रसेल ने आँख खोली और उसने कहा, हे परमात्मा! यदि कोई परमात्मा हो, तो बर्ट्रेंड रसेल क्षमा मांगता है; यदि कोई बर्ट्रेड रसेल की आत्मा हो; क्षमा मांगता है, यदि कोई पाप किए गए हों; क्षमा मांगता है, यदि क्षमा संभव हो। सारा जीवन हमारा यदि से घिरा है। बर्ट्रेड रसेल साफ है, ईमानदार है। हम इतने साफ नहीं है। अर्जुन भी साफ नहीं है, बहुत कनफ्यूज्ड है, बहुत उलझा हुआ है। चित्त की गांठ उसकी बहुत इरछी—तिरछी है। वह कह रहा है, सुख तो

मिल सकता है, लेकिन यदि अपने न मरें। वह कहता है, राज्य कल्याणकारी है मिल जाए तो, यदि अपने न मरें। यह यदि ही उसकी गांठ है। और जो आदमी ऐसा कहता है, उसे—सुख, राज्य..धन, यश—उनका मोह नहीं टूट गया है; उनकी आकांक्षा नहीं टूट गई है; उनकी अभीप्सा नहीं टूट गई है। पीछे वह बहुत तैयार है, सब मिल जाए, लेकिन उसके यदि भी पूरे होने चाहिए। इसीलिए कृष्ण को निरंतर पूरे समय उसके साथ श्रम करना पड़ रहा है। वह श्रम उसके सेल्फ—कंट्राडिक्टरी, उसके आत्म—विरोधी चिंतन के लिए करना पड़ रहा है। क्योंकि पूरे समय यह दिखाई पड़ रहा है कि वह जो कह रहा है, वही चाह रहा है। जिससे भाग रहा है, उसी को माग रहा है। जिससे बचना चाह रहा है, उसी को आलिंगन कर रहा है। अर्जुन की यह दशा ठीक से समझ लेनी चाहिए। ऐसा अर्जुन हम सबके भीतर है। जिसे हम एक हाथ से धकाते हैं, उसे दूसरे हाथ से खींचते रहते हैं। जिसे हम एक हाथ से खींचते हैं, उसे दूसरे से धकाते रहते हैं। एक कदम बाएं चलते हैं, तो तत्काल एक कदम दाएं चल लेते हैं। एक कदम परमात्मा की तरफ जाते हैं, तो एक कदम तत्काल संसार की तरफ उठा लेते हैं। यह जो अर्जुन है, ऐसी बैलगाड़ी की तरह है, जिसमें दोनों तरफ बैल जुते हैं। वह दोनों तरफ खिंच रहा है। वह कह रहा है, सुख तो है, इसलिए मन भागता है। वह कह रहा है, लेकिन अपनों को मारना पड़ेगा, इसलिए मन लौटता है। यह स्व—विरोध है, स्मरण रखने योग्य है, क्योंकि अर्जुन की पूरी चित्त—दशा इसी स्व—विरोध। का फैलाव है।

प्रश्न : भगवान श्री, विषादग्रस्त अर्जुन के चित्त की दशा हमने देखी। अब विषाद होने से व्यक्ति स्वभाव से यानी आत्मभाव से दूर हो जाता है, स्वभाव से वियोग होता है। तो गीता के प्रथम अध्याय को अर्जुन—विषादयोग कहा गया है, वह कैसे? विषाद का योग से क्या संबंध है ? या गीता में योग शब्द किस अर्थ में प्रयुक्त किया गया है?

विषादयोग! योग के बहुत अर्थ हैं। और योग के ऐसे भी अर्थ हैं, जो साधारणत: योग से हमारी धारणा है, उसके ठीक विपरीत हैं। यह ठीक ही सवाल है कि विषाद कैसे योग हो सकता है? आनंद योग हो सकता है; विषाद कैसे योग हो सकता है? लेकिन विषाद इसलिए योग हो सकता है कि वह आनंद का ही शीर्षासन करता हुआ रूप है, वह आनंद ही सिर के बल खड़ा है। आप अपने पैर के बल खड़े हों, तो भी आदमी हैं, और सिर के बल खड़े हो जाएं, तो भी आदमी हैं। जिसको हम स्वभाव से विपरीत जाना कहते हैं, वह भी स्वभाव का उलटा खड़ा हो जाना है, इनवर्शन है। जिसको हम विक्षिप्तता कहते हैं, वह भी स्वभाव का विकृत हो जाना है, परवर्शन है। लेकिन है स्वभाव ही। सोने में मिट्टी मिल जाए, तो अशुद्ध सोना ही कहना पड़ता है। अशुद्ध है, इसलिए पूछा जा सकता है कि जो अशुद्ध है, उसे सोना क्यों कह रहे हैं? लेकिन सोना ही कहना पड़ेगा। अशुद्ध होकर भी सोना है। और इसलिए भी सोना कहना पड़ेगा कि अशुद्धि जल सकती है और सोना वापस सोना हो सकता है। विषादयोग इसलिए कह रहे हैं कि विषाद है, विषाद जल सकता है, योग बच सकता है। आनंद की यात्रा हो सकती है। कोई भी इतने विषाद को उपलब्ध नहीं हो गया कि स्वरूप को वापस लौट न सके। विषाद की गहरी से गहरी अवस्था में भी स्वरूप तक लौटने की पगडंडी शेष है। उस पगडंडी के स्मरण के लिए ही योग कह रहे हैं। और वह जो विषाद है, वह भी इसीलिए हो रहा है। विषाद क्यों हो रहा है? एक पत्थर को विषाद नहीं होता। नहीं होता, इसलिए कि उसे आनंद भी नहीं हो सकता है। विषाद हो इसलिए रहा है, वह भी एक गहरे अर्थ में आनंद का स्मरण है। इसलिए विषाद हो रहा है। वह भी इस बात का स्मरण है, गहरे में चेतना कहीं जान रही है कि जो मैं हो सकता हूं, वह नहीं हो पा रहा हूं; जो मैं पा सकता हूं वह मैं नहीं पा रहा हूं। जो संभव है, वह संभव नहीं हो पा रहा है, इसलिए विषाद हो रहा है। इसलिए जितना ही प्रतिभाशाली व्यक्तित्व होगा, उतने ही गहरे विषाद में उतरेगा। सिर्फ जड़—बुद्धि विषाद को उपलब्ध नहीं होते हैं। क्योंकि जड़—बुद्धि को तुलना का उपाय भी नहीं होता; उसे यह भी खयाल नहीं होता कि मैं क्या हो सकता हूं। जिसे यह खयाल है कि मैं क्या हो सकता हूं जिसे यह खयाल है कि आनंद संभव है, उसके विषाद की कालिमा बढ़ जाएगी; उसे विषाद ज्यादा गहरा दिखाई पड़ेगा। जिसे सुबह का पता है, उसे रात के अंधकार में बहुत अंधकार दिखाई पड़ेगा। जिसे सुबह का कोई पता नहीं है, उसे रात भी सुबह हो सकती है; और रात भी उसे लग सकती है कि ठीक है। अर्जुन की इस विषाद की स्थिति को भी योग ही कहा जा रहा है, क्योंकि यह विषाद का बोध भी स्वरूप के विपरीत, कंट्रास्ट में दिखाई पड़ता है, अन्यथा नहीं दिखाई पड़ेगा। ऐसा विषादयोग और किसी को भी उस युद्ध के स्थल पर नहीं हो रहा है। ऐसा दुर्योधन को नहीं हो रहा है। कल रास्ते में जाता था तो एक मित्र ने पूछा कि आपने दुर्योधन की तो बात की, युधिष्ठिर के संबंध में क्या खयाल है? क्योंकि दुर्योधन को नहीं हो रहा है, माना, आदमी भला नहीं है। पर युधिष्ठिर तो भला आदमी है, धर्मराज है, उसे क्यों नहीं हो रहा है? तो यह भी थोड़ा विचारणीय है। आशा तो करनी चाहिए कि युधिष्ठिर को हो; लेकिन युधिष्ठिर को नहीं हो रहा है। युधिष्ठिर तथाकथित धार्मिक आदमी है, सोकाल्ड रिलीजस है। और बुरा आदमी भी तथाकथित धार्मिक आदमी से बेहतर होता है। क्योंकि बुरे आदमी को आज नहीं कल, बुरे की पीड़ा और बुरे का कांटा. चुभने लगेगा। लेकिन तथाकथित धार्मिक आदमी को वह पीड़ा भी नहीं चुभती, क्योंकि वह मानकर ही चलता है कि धार्मिक है। विषाद कैसे हो? युधिष्ठिर अपने धार्मिक होने में आश्वस्त है। आश्वासन बड़ा झूठा है। लेकिन आश्वस्त है। असल में युधिष्ठिर रूढ़िग्रस्त धार्मिक आदमी की प्रतिमा है। दो तरह के धार्मिक आदमी होते हैं। एक तो उधार धार्मिक आदमी होते है, बारोड, जिनका धर्म अतीत की उधारी से आता है। और एक वे धार्मिक आदमी होते हैं,

जिनका धर्म उनकी आंतरिक क्रांति से आता है। तो अर्जुन आंतरिक क्रांति के द्वार पर खड़ा हुआ धार्मिक आदमी दै। धार्मिक है नहीं, लेकिन क्रांति के द्वार पर खड़ा हुआ है। उस पीड़ा से गुजर रहा है, जिससे धर्म पैदा हो सकता है। युधिष्ठिर तृप्त है; अतीत से जो धर्म मिला है, उससे राजी है। इसलिए धार्मिक भी हो सकते हैं, जुआ भी खेल सकते हैं, तब भी कोई संदेह मन में पैदा नहीं होता। धार्मिक भी हो सकते हैं, राज्य के लिए युद्ध पर भी जा सकते हैं, तब भी कोई संदेह मन में पैदा नहीं होता। धार्मिक भी हैं और तथाकथित धर्म के आस—पास सब अधर्म पूरी तरह चलता है; कोई पीड़ा उससे नहीं होती। आमतौर से मंदिर में, मस्जिद में, गुरुद्वारा में, चर्च में जाने वाला आदमी युधिष्ठिर से तालमेल रखता है। तृप्त है। गीता रोज पढ़ता है; धार्मिक आदमी है—बात समाप्त हो गई। गीता कंठस्थ है, पक्का धार्मिक आदमी है—बात समाप्त हो गई। सब उसे मालूम है, जो मालूम करने योग्य है—बात समाप्त हो गई। ऐसा आदमी चली हुई कारतूस जैसा होता है, उसमें कुछ चलने को नहीं होता। खाली कारतूस होता है, उसमें बारूद नहीं होती। खाली कारतूस अच्छी भी मालूम पड़ती है, क्योंकि उससे बहुत खतरा भी नहीं होता। युधिष्ठिर इन अर्थों में धर्मराज हैं। अतीत से जो धर्म मिला है, उसकी धरोहर है। अतीत से, परंपरा से, रूढ़ि से जो धर्म मिला है, वे उसके प्रतीक, प्रतिमा—पुरुष हैं। उन्हें कोई अड़चन नहीं होती! तथाकथित धार्मिक आदमी कंप्रोमाइजिंग होता है, समझौतावादी होता है। वह हर स्थिति में धर्म और अधर्म के बीच समझौते खोज लेता है। तथाकथित धार्मिक आदमी हिपोक्रेट होता है, पाखंडी होता है। उसके दो चेहरे होते हैं। एक उसका धार्मिक चेहरा होता है, जो वह दिखाने के लिए रखता है। एक उसका असली चेहरा होता है, जो वह काम चलाने के लिए रखता है। और इन दोनों के बीच कभी कांफ्लिक्ट पैदा नहीं होती। यही हिपोक्रेसी का सूत्र है, राज है। इनके बीच कभी द्वंद्व पैदा नहीं होता, कभी उसे ऐसा नहीं लगता कि मैं दो हूं। वह बड़ा लिक्विड होता है, बड़ा तरल होता है। वह इधर से उधर बड़ी आसानी से हो जाता है। उसे कोई अड़चन नहीं आती। वह अभिनेता की तरह है। पात्र अभिनय बदल लेता है, उसे अड़चन नहीं होती। कल वह राम बना था, आज उसे रावण बना दें, उसे कोई अड़चन नहीं आती। वह रावण की वेशभूषा पहनकर खड़ा हो जाता है; रावण की भाषा बोलने लगता है। यह जो तथाकथित धार्मिक आदमी है, यह अधार्मिक से भी बदतर है, ऐसा मैं कहता हूं। ऐसा इसलिए कहता हूं कि अधार्मिक अपनी पीड़ा को ज्यादा दिन नहीं झेल सकेगा; आज नहीं कल कांटा चूभेगा। लेकिन जो आदमी समझौते कर लिया है, वह पीड़ा को अनंतकाल तक झेल सकता है। इसलिए युधिष्ठिर को पीड़ा नहीं आती। युधिष्ठिर बिलकुल राजी है। अब यह बड़े मजे की बात है, अधार्मिक आदमी बिलकुल राजी हूं। उस युद्ध में धार्मिक आदमी बिलकुल राजी है उस युद्ध में; और यह अर्जुन, जो न तो अधार्मिक होने से राजी है, न अभी तथाकथित धर्म से राजी है, यह चिंतित है। अर्जुन बहुत आथेंटिक, प्रामाणिक मनुष्य है। उसकी प्रामाणिकता इसमें है कि चिंता है उसे। उसकी प्रामाणिकता इसमें है कि प्रश्न हैं ठसके पास। उसकी प्रामाणिकता इसमें है कि जो स्थिति है, उसमें वह राजी नहीं हो पा रहा है। यही उसकी बेचैनी, यही उसकी पीड़ा उसक़ा विकास बनती है। विषादयोग इसलिए ही कहा है कि अर्जुन विषाद को उपलब्ध हुआ। धन्य हैं वे, जो विषाद को उपलब्ध हो जाएं। क्योंकि जो को उपलब्ध होंगे, उन्हें मार्ग खोजना पड़ता है। अभागे हैं वे, जिनको विषाद भी नहीं मिला, उनको आनंद तो कभी मिलेगा ही नहीं। धन्य हैं वे, जो विरह को उपलब्ध हो जाएं, क्योंकि विरह मिलन की आकांक्षा है। इसलिए विरह भी योग है; मिलन की आकांक्षा है। वह मिलन के लिए खोजता हुआ मार्ग है। योग तो मिलन ही है; लेकिन विरह भी योग है; क्योंकि विरह भी मिलन की। पुकार और प्यास है। विषाद भी योग है। योग तो आनंद ही है। लेकिन विषाद भी योग है, क्योंकि विषाद आनंद के लिए जन्मने की प्रक्रिया है। इसलिए विषादयोग कहा है।

प्रश्न : भगवान श्री, आपने अभी बर्ट्रेंड रसेल का नाम लिया। वेद मेहता ने टिलिक से बर्ट्रेंड रसेल की आत्मतुष्ट अनास्तिकता के पहलू प्रकट करके पूछा कि रसेल को नास्तिक होते हुए भी जीवन में एंपटीनेस, खालीपन का अनुभव नहीं हुआ! तब पाल टिलिक ने बताया कि ऐसे लोग आत्मवंचक हो सकते हैं। कितने लोग बस यूं ही हरे रंग को, ग्रीन रंग को नहीं देख पाते। क्या रसेल उनमें से एक होगा? अर्जुन इस चर्मचक्षु से विराट—रूप का भव्य—दर्शन नहीं कर सकता था। और दूसरी बात यह कि पाल टिलिक अल्बर्ट कामू की नैराश्य, डिस्पेअर पर वार्त्तिक देते हुए एक जगह कहते हैं कि डिस्पेअर इन इटसेल्क हज रिलीजस। तो गीता की दृष्टि से तो आप जो कहते हैं, उससे यह मालूम होता है कि अर्जुन का विषाद अधार्मिक था! कुछ वार्त्तिक दें।

अर्जुन का विषाद यदि विषाद में ही तृप्त हो जाए और बंद हो जाए, तो अधार्मिक है; क्लोज्ड हो जाए, तो अधार्मिक है। और अगर विषाद यात्रा बन जाए, गंगोत्री बने और विषाद से गंगा निकले और आनंद के सागर तक पहुंच जाए, तो धार्मिक है। विषाद अपने में न तो अधार्मिक है, न धार्मिक है। अगर विषाद बंद करता है व्यक्तित्व को, तो आत्मघाती हो जाएगा। और अगर विषाद व्यक्तित्व को बहाव देता है, तो आत्म—परिवर्तनकारी हो जाएगा। पाल टिलिक जो कहते हैं कि डिस्पेअर इन इटसेल्फ इज रिलीजस—वह जो विषाद है, दुख है, वह अपने आप में धार्मिक है—यह अधूरा सत्य है। पाल टिलिक पूरा सत्य नहीं बोल रहे हैं। यह अधूरा सत्य है, आधा सत्य है। विषाद धार्मिक बन सकता है। उसकी पासिबिलिटी है, उसकी संभावना है धार्मिक बनने की, अगर विषाद बहाव बन जाए। लेकिन अगर विषाद

वर्तुल बन जाए, सर्कुलर हो जाए, अपने में ही घूमने लगे, तो सिर्फ आत्मघाती हो सकता है, धार्मिक नहीं हो सकता। यह बड़े मजे की बात है कि आत्मघाती व्यक्तित्व उस जगह पहुंच जाता है, जहा से या तो उसे आत्मा परिवर्तन करनी पड़ेगी या आत्मघात करना पड़ेगा। एक बात तय है कि पुरानी आत्मा से नहीं चलेगा। तो हम ऐसा भी कह सकते हैं कि स्युसाइड इन इटसेल्फ इज रिलीजस, आत्महत्या अपने आप में धार्मिक है। लेकिन यह अधूरा सत्य होगा, वैसा ही जैसा पाल टिलिक ने कहा। हा, आत्महत्या की स्थिति में आए व्यक्ति के सामने दो विकल्प है, दो आल्टरनेटिव हैं, या तो वह अपने को मार डाले, जो कि बिलकुल अधार्मिक होगा; और या वह अपने को बदल डाले, जो कि मारने की और भी गहरी कीमिया है, तब वह धार्मिक होगा। बुद्ध उस जगह आ जाते हैं, जहा या तो आत्महत्या करें या आत्म—रूपातरण करें। महावीर उस जगह आ जाते हैं, या तो आत्महत्या करें या आत्म—रूपातरण करें। अर्जुन भी उस जगह खड़ा है, जहा या तो वह मिट जाए, मर जाए, अपने को समाप्त कर ले और या अपने को बदले और नए तलों पर चेतना को ले जाए। पाल टिलिक का वक्तव्य अधूरा है। और पाल टिलिक के वक्तव्य के अधूरे होने का कारण है। क्रिश्चियनिटी का बुनियादी सत्य अधूरा है। ईसाइयत का बुनियादी सत्य अधूरा है। और इसलिए ईसाइयत ने डिस्पेअर को... और पाल टिलिक जो है, आधुनिक युग में ईसाइयत का बड़ा व्याख्याकार है। उसके पास पैनी दृष्टि है, लेकिन पैनी दृष्टि जरूरी नहीं है कि पूरी हो। ईसाइयत ने जीसस की जो शकल पकड़ी है, वह डिस्पेअर की है। ईसाइयत ने जीसस की और कोई शकल नहीं पकड़ी। ईसाइयत के पास जीसस की हंसती हुई कोई तस्वीर नहीं है। ईसाइयत के पास जीसस का नाचता हुआ, प्रसन्न कोई व्यक्तित्व नहीं है। ईसाइयत के पास सत—चित—आनंद की घोषणा करने वाले जीसस की कोई धारणा नहीं है, कोई प्रतिमा नहीं है। उनके पास प्रतिमा है जीसस की—सूली पर लटके हुए, कंधे पर टिका हुआ सिर, आंखें उदास, मरने की घड़ी! और क्रास इसलिए ईसाइयत का प्रतीक बन गया—सूली। यह जो डिस्पेअर और सूली है, यह अपने आप में धार्मिक नही है। हो सकती है धार्मिक, नहीं भी हो सकती है। और पाल टिलिक बर्ट्रेंड रसेल के संबंध में गलत बात कहते हैं, पूरी ही तरह गलत कहते हैं, अगर वे यह कहते हैं कि बर्ट्रेड रसेल— जैसे लोग आत्मवंचक हैं। क्योंकि बर्ट्रेड रसेल नास्तिक है, ईश्वर पर उसकी कोई आस्था नहीं है। इसलिए अगर कोई पूछता है पाल टिलिक से कि बर्ट्रेड रसेल को ईश्वर पर कोई आस्था नहीं है, फिर भी बर्ट्रेड रसेल को अर्थहीनता, एंपटीनेस, खालीपन का कोई बोध नहीं होता है, जैसा सार्त्र को होता है या कामू को या किसी और को होता है। बर्ट्रेड रसेल को क्यों नहीं होता? अगर वे नास्तिक हैं, तो उन्हें खालीपन का अनुभव होना चाहिए। जरूरी नहीं है। क्योंकि नास्तिकता भी मेरी दृष्टि में दो तरह की होती है, अपने में बंद, और बाहर बहती हुई। जो नास्तिक अपने में बंद हो जाएगा—जैसा विषाद अपने में बंद हो जाएगा—तो वह खाली हो जाएगा। क्योंकि जो आदमी नहीं के ऊपर जिंदगी खड़ी करेगा, वह एंप्टी हो जाएगा। जो आदमी कहेगा कि नहीं मेरे जीवन का आधार हें, वह खाली नहीं होगा तो और क्या होगा! क्योंकि नहीं के बीज से कोई अंकुर नहीं निकलता। नहीं के बीज से कोई फूल नहीं खिलते। नहीं के बीज से कोई जीवन विकसित नहीं होता। जीवन में कहीं न कहीं हा अगर न हो तो जीवन खाली हो जाएगा। लेकिन जरूरी नहीं है कि नास्तिकता नहीं पर ही खड़ी हो। नास्तिकता भी हा पर खड़ी हो सकती है। और बर्ट्रेड रसेल की नास्तिकता हा पर खड़ी है। ईश्वर को इनकार करता है, लेकिन प्रेम को इनकार नहीं करता। और जो आदमी प्रेम को इनकार नहीं करता, उसको नास्तिक केवल नासमझ आस्तिक ही कह सकते हैं। क्योंकि जो आदमी प्रेम को इनकार नहीं करता, वह बहुत गहरे में परमात्मा को स्वीकार कर रहा है। फार्मल नहीं है उसकी स्वीकृति। वह भगवान की मूर्ति रखकर मंदिर में घंटी नहीं बजाता। लेकिन जो बजाते हैं, वे कोई आस्तिक हैं, ऐसा मानने का कोई भी कारण नहीं है। क्योंकि घंटी बजाने से आस्तिकता का क्या लेना—देना है? प्रेम का स्वर जिसके जीवन में हो, उसके जीवन में प्रार्थना ज्यादा दूर नहीं है। प्रेम का स्वर जिसके जीवन में हो, उसके जीवन में परमात्मा ज्यादा दूर नहीं है। और प्रेम इनकार करने वाला सूत्र नहीं है, प्रेम स्वीकार करने वाला सूत्र है। प्रेम बड़ी गहरी हा है पूरे अस्तित्व के प्रति। तो मैं बर्ट्रेड रसेल को नास्तिक सिर्फ औपचारिक अर्थों में कहता हूं। औपचारिक अर्थों में बर्ट्रेंड रसेल नास्तिक है। जिस तरह औपचारिक अर्थों में बहुत से लोग आस्तिक हैं। लेकिन बर्ट्रेंड रसेल की नास्तिकता आस्तिकता की तरफ बहती हुई है; बहती हुई है, उसमें बहाव है; वह खुल रही है। वह फूलों में भी आनंद ले पाता है। हमारा आस्तिक मंदिर में जाकर फूल तो चढ़ा देता है, लेकिन फूल में कोई आनंद नहीं ले पाता। फूल तोड़ते वक्त उसे ऐसा नहीं लगता कि परमात्मा को तोड़ रहा है। पत्थर की एक मूर्ति के लिए एक जिंदा फूल को तोड़कर चढ़ा देता है। यह आदमी गहरे में नास्तिक है। मैं इसका अस्तित्व के प्रति कोई स्वीकार—भाव नहीं है। और न अस्तित्व में इसे परमात्मा की कोई प्रतीति है। इसे कोई प्रतीति नहीं है। इसकी पत्थर की मुर्ति को कोई तोड़ दे, तो यह हत्या पर उतारू हो जाता है, जिंदा मूर्तियों को तोड़ देता है। इसके मन में आस्तिकता का कोई संबंध नहीं है। इसकी आस्तिकता आत्मवंचना है। और बर्ट्रेड रसेल की नास्तिकता भी आत्मवंचना नहीं है। क्योंकि मुझे ऐसा दिखाई पड़ता है कि रसेल सिंसियर, ईमानदार आदमी है। और ईमानदार आदमी जल्दी आस्तिक नहीं हो सकता। सिर्फ बेईमान आदमी ही जल्दी आस्तिक हो सकते हैं। क्योंकि जिस आदमी ने ईश्वर को भी बिना खोजे हा भर दी, उससे बड़ा बेईमान आदमी मिल सकता है! जिस आदमी ने ईश्वर जैसे महत तत्व को किताब में पढ़कर स्वीकार कर लिया, उस आदमी से ज्यादा आत्मवंचक आदमी, सेल्फ डिसेप्टिव आदमी मिल सकता है! ईश्वर बच्चों का खेल नहीं है। ईश्वर किताबों में पढ़े हुए पाठ से संबंधित नहीं है। ईश्वर

का मा—बाप द्वारा सिखाए गए सिद्धातों से क्या वास्ता है? ईश्वर तो जीवन की बड़ी प्राणवंत खोज और पीड़ा है; बड़ी एंग्विश है। बड़े विषाद से उपलब्ध होगा। बड़े श्रम से, बढ़ी तपश्चर्या से, बड़े इनकार से गुजरने पर, बड़ी पीड़ा, बड़े खालीपन से गुजरने पर, बड़ी मुश्किल से, शायद जन्मों की यात्रा, जन्मों—जन्मों की यात्रा और खोज और जन्मों की भटकन और जन्मों की असफलता और विफलता, तब शायद इस सारी प्रसव—पीडा के बाद, वह अनुभव आता है, जो व्यक्तित्व को आस्तिकता देता है ——तब। लेकिन मैं मानता हूं कि बर्ट्रेड रसेल वैसी यात्रा पर है। इसलिए रब्राली नहीं है। सार्त्र खाली है, उसकी नास्तिकता क्लोज्ड हैं; एनसर्किल्ड इन वनसेल्फ, अपने भीतर ही वर्तुल बनाकर घूम रही झै। तो अपने भीतर तो आदमी फिर खाली हो जाएगा। और नहीं पर, नथिंगनेस पर जिसने आधार रखे—जिंदगी में कैसे फूल खिलें! उसने मरुस्थल में जिंदगी बोने की कोशिश की है। वहा फूल नहीं खिल सकते। नहीं से बड़ा कोई मरुस्थल नहीं है। और जमीन पर जो मरुस्थल होते हैं, वहा तो ओएसिस भी होते हैं, वहा तो कुछ मरूद्यान भी होते हैं। लेकिन नहीं के मरुस्थल में कोई ओएसिस, कोई मरूद्यान नहीं होता। वहा कोई हरियाली नहीं खिलती। हरियाली तो हा में ही है। आस्तिक ही पूरा हरा हो सकता है। आस्तिक ही पूरा भरा हो सकता है। आस्तिक ही फूलों को उपलब्ध हो सकता है, नास्तिक नहीं। लेकिन नास्तिकता दो तरह की हो सकती है और आस्तिकता भी दो तरह की हो सकती है। नास्तिकता तब खतरनाक हो जाती है, जब अपने में बंद हो जाए। और आस्तिकता तब खतरनाक होती है, जब उधार और बारोड होती है। आस्तिकता का खतरा उधारी में है, नास्तिकता का खतरा अपने में बंद हो जाने में है। सब उधार आस्तिक हैं पृथ्वी पर! नास्तिक तक होने की ईमानदारी नहीं है, तो आस्तिक होने का बहुत विराट कदम बिलकुल असंभव है। मैं तो मानता हूं कि नास्तिकता पहली सीढ़ी है आस्तिक होने के लिए। शिक्षण है नास्तिकता। नहीं कहने का अभ्यास, हा कहने की तैयारी है। और जिसने कभी नहीं नहीं कहा, उसके हा में कितना बल होगा? और जिसने कभी नहीं कहने की हिम्मत नहीं जुटाई, उसकी हा में कितना प्राण, कितनी आत्मा हो सकती है? बर्ट्रेड रसेल, मैं मानता हूं कि नास्तिकता के उस दौर से गुजरता हुआ व्यक्ति है, जो खोज रहा है। और बिना खोजे हा नहीं भर ! सकता। उचित है; ठीक है; धार्मिक है। रसेल को मैं नास्तिक कहता हूं? लेकिन धार्मिक। धार्मिक नास्तिक। और तथाकथित आस्तिकों को मैं आस्तिक कहता हूं, लेकिन अधार्मिक। अधार्मिक आस्तिक। ये शब्द उलटे मालूम पड़ते हैं। लेकिन उलटे नहीं हैं। अर्जुन का विषाद बहुत धार्मिक है, उसमें गति है। अगर वह चाहे, तो कृष्ण जैसे कीमती आदमी को पास पाकर. कह सकता है कि गुरु, तुम जो कहते हो, ठीक है, हम लड़ते हैं! नहीं कहता, कृष्ण से जूझता है। कृष्ण से जूझने की हिम्मत साधारण नहीं है। कृष्ण जैसे व्यक्तित्व के पास हा करने का मन होता है। कृष्ण जैसे व्यक्तित्व को न कहने में पीड़ा होती है। कृष्ण जैसे व्यक्तित्व से प्रश्न उठाने में भी दुख होता है। लेकिन अर्जुन है कि पूछे चला जाता है, पूछे चला जाता है। वह कृष्ण के व्यक्तित्व को आड़ में रख देता है; अपने प्रश्न को छोड़ता नहीं। इसका भय नहीं लेता मन में कि क्या कहेगा कोई, अश्रद्धालु हूं? संदेह करता हूं? शक उठाता हूं, आस्थावान नहीं हूं। कृष्ण जैसा व्यक्ति मिला हो, मान लो गुरु और। स्वीकार करो। तब आस्तिकता उधार हो जाती है। लेकिन नहीं, वह प्रामाणिक आस्तिकता की खोज में है। इसलिए इतनी बड़ी गीता की लंबी यात्रा हुई। पूछता चला जाता है, पूछता चला जाता है, पूछता चला जाता है। कृष्ण भी अदभुत हैं। अपनी महिमा का जोर डाल सकते थे। अगर गुरुडम का जरा भी मोह होता, तो जरूर डाल देते। लेकिन जो भी आस्तिक है, उसे गुरु होने की आकांक्षा नहीं होती। परमात्मा ही है, तो और व्यक्ति को गुरु होने की कोई जरूरत नहीं रह जाती। और जिसे परमात्मा पर भरोसा है, वह प्रश्नों को संदेह की दृष्टि से नहीं देखता, निंदा की दृष्टि से भी नहीं देखता। क्योंकि वह जानता है, परमात्मा है। और यह व्यक्ति पूछ रहा है, तो यात्रा कर रहा है, पहुंच जाएगा। इसे पहुंचने दें सहज ही। गंगा बह चली है, तो सागर तक पहुंच जाएगी। अभी उसे पता नहीं कि सागर है; लेकिन बह रही है, तो बेफिक्र रहें, पहुंच जाएगी। वह कहता नहीं कि रुक जाओ और मान लो। और गंगा अगर रुक जाए और मान ले कि सागर है, तो कभी जान नहीं पाएगी कि सागर है। रुक जाएगी, एक डबरा बन जाएगी सड़ा—गला; फिर उसी को सागर समझेगी। ऐसा आस्तिक अर्जुन नहीं है। अगर ठीक से समझें तो अर्जुन और बर्ट्रेड रसेल के व्यक्तित्व में कुछ मेल है। जैसा मैंने कल कहा कि सार्त्र और अर्जुन के व्यक्तित्व में कुछ मेल है। वह मेल इतना है कि जैसा सार्त्र चिंतित है, वैसा अर्जुन चिंतित है, लेकिन यहां मेल टूट जाता है इसके आगे। सार्त्र अपनी चिंता को सिद्धांत बना लेता है, अर्जुन अपनी चिंता को सिर्फ प्रश्न बनाता है। यहां उसका बर्ट्रेड रसेल से मेल है। बर्ट्रेड रसेल एगनॉस्टिक है, जिंदगी के अंतिम क्षण तक पूछ रहा है। यह दूसरी बात है कि कोई कृष्ण नहीं मिला। कोई हर्जा भी नहीं है; आगे कभी मिल जाएगा। कोई हर्जा नहीं है। लेकिन पूछना वहा है। यात्रा जारी है। मैं मानता हूं कि इस पृथ्वी पर बर्ट्रेड रसेल के आस—पास पाल टिलिक जैसे जो आस्तिक हैं, ये इनसिंसियर हैं। पाल टिलिक आत्मवंचक हो सकते है, रसेल नहीं है। और इस पृथ्वी पर पाल टिलिक और रसेल जैसे व्यक्ति साथ—साथ रहे है। मेरी अपनी समझ है कि बर्ट्रेड रसेल आस्तिकता की तरफ ज्यादा बढ़ा है, पाल टिलिक नहीं बढ़े; थियॉलाजिस्ट हैं। और बड़े मजे की बात है कि दुनिया में धर्म का सबसे बडा शत्रु अगर कोई है, तो अधर्म नहीं है, थियॉलाजी है, धर्म—शास्त्र है। धर्म की सबसे बड़ी शत्रुता शास्त्रीयता में है। तो जो लोग भी शास्त्रीयता में जीते हैं, वे कभी धार्मिक नहीं हो पाते। उसके कारण है, क्योंकि धर्म बुद्धि से ऊपर की बात है और शास्त्र सदा बुद्धि से नीचे की बात है। शास्त्र बुद्धि के ऊपर नहीं जाता और बुद्धि धर्म तक नहीं जाती। पाल टिलिक सिर्फ बुद्धि से जी रहे हैं। ऐसा नहीं है कि बर्ट्रेड रसेल

बुद्धि को इनकार कर रहा है; पूरी तरह बुद्धि से जी रहा है। लेकिन बुद्धि की स्वीकृति नहीं है। बुद्धि पर भी बर्ट्रेंड रसेल को संदेह है, वह स्केप्टिक है बुद्धि के बाबत भी। यह उसे लगता है कि बुद्धि की भी सीमाएं हैं। अर्जुन में बड़ा गहरा समन्वय है। रसेल और सार्त्र जैसे इकट्ठे हैं। उसका विषाद धार्मिक है, क्योंकि उसका विषाद श्रद्धा पर ले जाने वाला है।

येषामर्थे कांक्षितं नो राज्यं भोगा: सुखानि च। त इमेsवास्थिता युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च ।।33।।

हमें जिनके लिए राज्य, भोग और सुखादिक हच्छित है, वे ही यह सब धन और जीवन की आशा को त्यागकर युद्ध में खड़े हैं। पग—पग पर अर्जुन की भ्रातिया जुड़ी हैं। कह रहा है अर्जुन कि जिन पिता, पुत्र, मित्र, प्रियजन के लिए हम राज्य—सुख चाहते हैं..। झूठ कह रहा है। कोई चाहता नहीं। सब अपने लिए चाहते हैं। और अगर पिता—पुत्र के लिए चाहते हैं, तो सिर्फ इसलिए कि वे अपने पिता हैं, अपना पुत्र है। वह जितना अपना उसमें जुड़ा है, उतना ही; इससे ज्यादा नहीं। ही, यह बात जरूर है कि उनके बिना सुख भी बड़ा विरस हो जाएगा। क्योंकि सुख तो मिलता कम है, दूसरों को दिखाई पड़े, यह ज्यादा होता है। सुख मिलता तो न के बराबर है। बड़े से बड़ा राज्य मिल जाए, तो भी राज्य के मिलने में उतना सुख नहीं मिलता, जितना राज्य मुझे मिल गया है, यह मैं अपने लोगों के सामने सिद्ध कर पाऊं, तो सुख मिलता है। और आदमी की चिंतना की सीमाएं हैं। अगर एक महारानी रास्ते से निकलती हो—स्वर्ण आभूषणों से लदी, हीरे—जवाहरातों से लदी—तो गांव की मेहतरानी को कोई ईर्ष्या पैदा नहीं होती। क्योंकि महारानी रेंज के बाहर पड़ती है। मेहतरानी की चिंतना की रेंज नहीं है वह, वह सीमा नहीं है उसकी। महारानी से कोई ईर्ष्या पैदा नहीं होती, लेकिन पड़ोस की मेहतरानी अगर एक नकली काच का टुकड़ा भी लटकाकर निकल जाए, तो प्राण में तीर चुभ जाता है। वह रेंज के भीतर है। आदमी की ईर्ष्याएं, आदमी की महत्वाकाक्षाएं निरंतर एक सीमा में बंधकर चलती हैं। अगर आप यश पाना चाहते हैं, तो यह यश जो अपरिचित हैं, स्ट्रेंजर्स हैं, उनके सामने आपको मजा न देगा। जो अपने हैं, परिचित हैं, उनके सामने ही आपको मजा देगा। क्योंकि जो अपरिचित हैं, उनके सामने अहंकार को सिद्ध करने में कोई सुख नहीं है। जो अपने हैं, उन्हीं को हराने का मजा है। जो अपने हैं, उन्हीं को दिखाने का मजा है कि देखो, मैं क्या हो गया और तुम नहीं हो पाए! जीसस ने कहीं कहा है कि पैगंबर या तीर्थंकर अपने ही गांव में कभी आद्दत नहीं होते। यद्यपि चाहेंगे अपने ही गांव में आद्दत होना; लेकिन हो नहीं सकते। अगर जीसस अपने ही गांव में गए हों, तो लोग कहेंगे, बढ़ई का लड़का है। वही न जोसफ बढ़ई का लड़का! कहा से ज्ञान पा लेगा? अभी कल तक लकड़ी काटता था, ज्ञान पा लिया? लोग हंसेंगे। इस हंसने में भी बढ़ई के लड़के को इतनी ऊंचाई पर स्वीकार करने की कठिनाई है। रेंज के भीतर है। बहुत कठिन है। कोई प्रोफेट अपने गांव में पुज जाए, बड़ी कठिन बात है। क्योंकि गांव की ईर्ष्या की सीमा के भीतर है। विवेकानंद को जितना आदर अमेरिका में मिलता था, उतना कलकत्ता में कभी नहीं मिला। दो—चार—दस दिन कलकत्ता लौटकर स्वागत—समारोह हुआ, फिर सब समाप्त हो गया। फिर कलकत्ता में लोग कहेंगे कि अरे, वही न, कायस्थ का लड़का है, कितना शान हो जाएगा! रामतीर्थ को अमेरिका में भारी सम्मान मिला, काशी में नहीं मिला। काशी में एक पंडित ने खड़े होकर कहा कि संस्कृत का अ ब स नहीं आता और ब्रह्मज्ञान की बातें कर रहे हो? पहले संस्कृत सीखो! और बेचारे रामतीर्थ संस्कृत सीखने गए। रेंज है, एक सीमा, एक वर्तुल है। लेकिन शायद रामतीर्थ को भी इतना मजा न्यूयार्क में सम्मान मिलने से नहीं आ सकता था, जितना काशी में मिलता, तो आता। इसलिए रामतीर्थ भी कभी नाराज नहीं हुए, अमेरिका में जब तक थे। कभी दुखी और चिंतित नहीं हुए। काशी में दुखी और चिंतित हो गए। निरंतर ब्रह्मज्ञान की बात करते थे, काशी में इतनी हिम्मत न जुटा पाए कि कह देते कि ब्रह्मज्ञान का संस्कृत से क्या लेना—देना! भाड़ में जाए तुम्हारी संस्कृत। इतनी हिम्मत न जुटा पाए। बल्कि एक ट्यूटर लगाकर संस्कृत सीखने बैठ गए। यह पीड़ा समझते हैं? वह जो अर्जुन कह रहा है निरंतर, सरासर झूठ कह रहा है। उसे पता नहीं है। क्योंकि झूठ भी आदमी में ऐसा खून में मिला हुआ है कि उसका पता भी मुश्किल से चलता है। असल में असली झूठ वे ही हैं, जो हमारे खून में मिल गए हैं। जिन झूठों का हमें पता चलता है, उनकी बहुत गहराई नहीं है। जिन झूठों का हमें पता नहीं चलता, जिनके लिए हम कांशस भी नहीं होते, चेतन भी नहीं होते, वे ही झूठ हमारी हड्डी—मांस—मज्जा बन गए हैं। अर्जुन वैसा ही झूठ बोल रहा है, जो हम सब बोलते हैं। पति अपनी पत्नी से कहता है कि तेरे लिए ही सब कर रहा हूं। पत्नी अपने पति से कहती है कि तुम्हारे लिए ही सब कर रही हूं! कोई किसी के लिए नहीं कर रहा है। हम सब अहंकार—केंद्रित होकर जीते है। अहंकार की सीमा—रेखा में जो—जो अपने मालूम पड़ते हैं, उनके लिए भी हम उतना ही करते हैं, जितने से हमारा अपना भरता है। वह जो अपनापन भरता है, जितना वे मेरे ईगो और मेरे अहंकार के हिस्से होते हैं, उतना ही हम उनके लिए करते हैं। वही पत्नी कल अपनी पत्नी न रह जाए, डाइवोर्स का विचार करने लगे, बस फिर सब करना बंद हो जाता है। जिस मित्र के लिए हम जान देने को तैयार थे, कल उसी की जान भी ले सकते हैं। सब भूल जाता है। क्यों भूल जाता है? जब तक वह मैं को मजबूत करता था, तब तक अपना था। और जब मैं को मजबूत नहीं करता, तब अपना नहीं रह जाता। नहीं, अर्जुन गलत कह रहा है। उसे पता नहीं है। उसे पता हो, तब तो बात और हो जाए। उसे पता पड़ेगा धीरे—धीरे। गलत कह

रहा है कि जिनके लिए हम राज्य चाहते हैं.। नहीं, उसे कहना चाहिए कि जिनके बिना राज्य चाहने में मजा न रह जाएगा..। चाहते तो अपने ही लिए है, लेकिन जिनकी आंखों के सामने चाहने में मजा आएगा कि मिले, जब वे ही न होंगे, तो अपरिचित, अनजान लोगों के बीच राज्य लेकर भी क्या करेंगे! अहंकार का मजा भी क्या होगा उनके बीच, जो जानते ही नहीं कि तुम कौन हो! जो जानते हैं कि तुम कौन हो, उन्हीं के बीच आकाश छूने पर पता चलेगा कि देखो! ध्यान रहे, हम अपने दुश्मनों से ही प्रतियोगिता नहीं कर रहे हैं, अपने मित्रों से हमारी और भी गहरी प्रतियोगिता है। अपरिचितों से हमारी कोई प्रतिस्पर्धा नहीं है, परिचितों से हमारी असली प्रतिस्पर्धा है। इसलिए दो अपरिचित कभी इतने बड़े दुश्मन नहीं हो सकते, जितने दो सगे भाई हो सकते हैं। उन्हीं से हमारी प्रतिस्पर्धा है, उन्हीं के सामने सिद्ध करना है कि मैं कुछ हूं। वह अर्जुन गलत कह रहा है। लेकिन उसे साफ नहीं है स्वयं को, वह जानकर नहीं कह रहा है। जानकर जो हम झूठ बोलते हैं, बहुत ऊपरी हैं। न—जाने जो झूठ हमसे बोले जाते हैं, वे बहुत गहरे हैं। और जन्मों—जन्मों में हमने उन्हें अपने खून के साथ आत्मसात कर लिया है, एक कर लिया है। वैसा ही एक झूठ अर्जुन बोल रहा है कि जिनके लिए राज्य चाहा जाता है, वे ही न होंगे तो राज्य का क्या करूंगा...। नहीं। उचित, सही तो यह है कि वह कहे, राज्य तो अपने लिए चाहा जाता है, लेकिन जिनकी आंखों को चकाचौंध करना चाहूंगा, जब वे आंखें ही न होंगी, तो अपने लिए भी चाहकर क्या करूंगा! लेकिन वह अभी यह नहीं कह सकता। इतना ही वह कह सके, तो जगह—जगह गीता का गा चुप होने को तैयार है। लेकिन वह जो भी कहता है, उससे पता चलता है कि वह बातें उलटी कह रहा है। अगर वह एक जगह भी सीधी और सच्ची बात कह दे, एक भी असर्शन उसका आथेंटिक हो, तो गीता का कृष्ण तत्काल चुप हो जाए। कहे, बात खतम हो गई। चलो, वापस लौटा लेते हैं रथ को। लेकिन वह बात खतम नहीं होती, क्योंकि अर्जुन पूरे समय दोहरे वक्तव्य बोल रहा है। डबल, दोहरे वक्तव्य बोल रहा है। बोल कुछ और रहा है, चाह कुछ और रहा है। है कुछ और, कह कुछ और रहा है। उसकी दुविधा कहीं और गहरे में है, प्रकट कहीं और कर रहा है। इसे हमें समझकर चलना है, तभी हम कृष्ण के उत्तरों को समझ सकेंगे। जब तक हम अर्जुन के प्रश्नों की दुविधा और अर्जुन के प्रश्नों का उलझाव न समझ लें, तब तक कृष्ण के उत्तरों की गहराई और कृष्ण के उत्तरों के सुलझाव को समझना मुश्किल है।

प्रश्न : भगवान श्री, स्वजनों की हत्या में अर्जुन ने जो न च श्रेयोऽनुपश्यामि कहा, वहा वह प्रेयस से स्पष्टत: दूर ही रहता है। क्या केवल भौतिक उपयोग का संदर्भ है? और यदि ऐसा है, तो वह सच्चा आस्तिक कैसे बनेगा?

अर्जुन जहा है, वहा भौतिक सुख से ही संबंध हो सकता है। आस्तिक का भौतिक सुख से संबंध नहीं होता, ऐसा नहीं है। आस्तिक का भौतिक सुख से संबंध होता है, लेकिन जितना ही वह खोजता है, उतना ही पाता है कि भौतिक सुख असंभावना है। भौतिक सुख की खोज असंभव होती है, तभी आध्यात्मिक सुख की खोज शुरू होती है। तो भौतिक सुख का भी आध्यात्मिक सुख की खोज में महत्वपूर्ण कांट्रिब्यूशन है, उसका बहुत महत्वपूर्ण दान है। सबसे महत्वपूर्ण दान भौतिक सुख का यही है कि वह अनिवार्य रूप से विषाद में और फ्रस्ट्रेशन में ले जाता है। अब यह बड़े मजे की बात है कि जिंदगी में वे ही सीढ़िया हमें परमात्मा के मंदिर तक नहीं पहुंचाती, जो परमात्मा के मंदिर से ही जुड़ी हैं। वे सीढ़िया भी परमात्मा के मंदिर की सीढ़ियों तक पहुंचाती हैं, जो परमात्मा के मंदिर से नहीं जुड़ी हैं। अब यह बड़ी उलटी—सी बात मालूम पड़ेगी। स्वर्ग तक पहुंचने में वही सीढ़ी काम नहीं आती, जो स्वर्ग से जुड़ी है। उससे भी ज्यादा और उससे भी पहले, वह सीढ़ी काम आती है, जो नर्क से जुड़ी है। असल में जब तक नर्क की तरफ की यात्रा पूरी तरह से व्यर्थ न हो जाए, तब तक स्वर्ग की तरफ की कोई यात्रा प्रारंभ नहीं होती। जब तक बहुत स्पष्ट रूप से यह साफ न हो जाए कि यह—यह नर्क का मार्ग है, तब तक यह साफ नहीं हो पाता है कि स्वर्ग का मार्ग क्या है। भौतिक सुख, आध्यात्मिक सुख तक पहुंचाने में एक निषेधात्मक चेतावनी का, निगेटिव चेतावनी का काम करते हैं। बार—बार हम खोजते हैं भौतिक सुख को और बार—बार असफल होते हैं। बार—बार चाहते हैं और बार—बार नहीं पाते हैं। बार—बार आकांक्षा करते हैं और बार—बार वापस गिर जाते हैं। यूनानी कथाओं में सिसिफस की कथा है। कामू ने उस पर एक किताब लिखी है, दि मिथ आफ सिसिफस। सिसिफस को सजा दी है देवताओं ने कि वह एक पत्थर को खींचकर पहाड़ के शिखर तक ले जाए। और सजा का दूसरा हिस्सा यह है कि जैसे ही वह शिखर पर पहुंचेगा—पसीने से लथपथ, हांफता, थका, पत्थर को घसीटता—वैसे ही पत्थर उसके हाथ से छूटकर वापस ख? में गिर जाएगा। फिर वह नीचे जाए, फिर पत्थर को खींचे और चोटी तक ले जाए। और फिर यही होगा, और फिर—फिर यही होता रहेगा। अब यह सजा है। और यह इटरनिटी तक होता रहेगा। यह अंत तक होता रहेगा। अनंत तक होता रहेगा। अब वह सिसिफस है कि फिर जाता है खाई में, फिर उठाता है पत्थर को। जब वह पत्थर को उठाता है, तो फिर इसी आशा से कि इस बार सफल हो जाएगा। अब की बार तो पहुंचा ही देगा शिखर पर। बता ही देगा देवताओं को कि बड़ी भूल में थे। देखो, सिसिफस ने पत्थर पहुंचा ही दिया। फिर खींचता है। महीनों का अथक श्रम; किसी तरह टूटता, मरता ऊपर शिखर पर पहुंचता है। पहुंच नहीं पाता कि पत्थर हाथ से छूट जाता है और फिर खाई में गिर जाता है। फिर सिसिफस उतर आता है। आप कहेंगे, बड़ा पागल है। खाई में क्यों नहीं बैठ जाता? अगर इतना आपको पता चल गया, तो आपकी जिंदगी में धर्म की शुरुआत हो जाएगी। क्योंकि हम सब सिसिफस हैं। कहानी अलग—अलग होगी, पहाड़

अलग—अलग होंगे, पत्थर अलग— अलग होंगे, लेकिन सिसिफस हम सब हैं। हम वही काम बार—बार किए चले जाते हैं, बार—बार शिखर से छूटता है पत्थर और खाई में गिर जाता है। लेकिन बड़ा मजेदार है आदमी का मन, वह बार—बार अपने को समझा लेता है कि कुछ भूल—चूक हो गई इस बार मालूम होता है। अगली बार सब ठीक कर लेंगे। फिर शुरू कर देता है। और ऐसी भूल—चूक अगर एक—दो जन्म में होती हो तो भी ठीक है। जो जानते हैं, वे कहेंगे, अनंत जन्मों में ऐसा ही, ऐसा ही, ऐसा ही होता रहा है। भौतिक सुख की चाह आध्यात्मिक खोज का अनिवार्य हिस्सा है। क्योंकि उसकी विफलता, उसकी पूर्ण विफलता आध्यात्मिक आनंद की खोज का पहला चरण है। इसलिए जो भौतिक सुख खोज रहा है, उसको मैं अधार्मिक नहीं कहता। वह भी धर्म को ही गलत दिशा से खोज रहा है। वह भी आनंद को ही वहा खोज रहा है, जहा। आनंद नहीं मिल सकता है। लेकिन इतना तो पता चले पहले कि नहीं मिल सकता है, तो किसी और दिशा में खोजे। लाओत्से से किसी ने पूछा कि तुम कहते हो, शास्त्रों से कुछ भी नहीं मिला, लेकिन हमने सुना है कि तुमने शास्त्र पढ़े! तो लाओत्से ने कहा कि नहीं, शास्त्रों से बहुत कुछ मिला। सबसे बड़ी बात तो च्छ मिली शास्त्र पढ़कर कि शास्त्रों से कुछ भी नहीं मिल सकता है। यह कोई कम मिलना है! नहीं कुछ मिल सकता है, लेकिन बिना पढ़े यह पता नहीं चल सकता था। पढ़ा बहुत, खोजा बहुत, नहीं मिल सकता है, यह जाना। यह कोई कम दाम नहीं है। निगेटिव है, इसलिए हमें खयाल में नहीं आता। लेकिन एक बार यह खयाल में आ जाए कि शब्द से, शास्त्र से नहीं मिल सकता है, तो शायद हम अस्तित्व में, जीवन में खोजने निकलें। सुख में नहीं मिल सकता है सुख, तो फिर शायद हम शाति में खोजने निकलें। बाहर नहीं मिल सकता है सुख, तो शायद हम भीतर खोजने निकलें। पदार्थ में नहीं मिल सकता है सुख, तो शायद हम परमात्मा में खोजने निकलें। लेकिन वह जो दूसरी खोज है, इस पहली खोज की विफलता से ही शुरू होती है। तो अर्जुन अभी जो बात कर रहा है, वह तो भौतिक सुख की ही! कर रहा है कि राज्य से क्या मिलेगा? प्रियजन नहीं रहेंगे, तो क्या मिलेगा? सुख से क्या मिलेगा? लेकिन आध्यात्मिक खोज का पहला चरण उठाया जा रहा है। इसलिए मैं उसे धार्मिक व्यक्ति ही कहूंगा। धर्म को उपलब्ध हो गया है, ऐसा नहीं; धर्म को उपलब्ध होने के लिए जो आतुर है, ऐसा।

प्रश्न : भगवान श्री, आपने कल बताया कि भगवद्गीता मानस—शास्त्र है और आधुनिक मानस—शास्त्र के करीब आ जाता है। तो क्या आप साइक का अर्थ माइंड करके उसको सीमित करते हैं? क्योंकि साइक का जो मूल अर्थ है, वह है सोल। तो गीता को सिर्फ मानस—शास्त्र कहकर आप रूक जाएंगे कि अध्यात्म—शास्त्र भी कहेंगे? स्पष्ट करें।

मैं गीता को मनोविज्ञान ही कहूंगा। और मन से मेरा अर्थ आत्मा नहीं है। मन से मेरा मतलब मन ही, माइंड ही है। कई को दिक्कत और कठिनाई होगी। वे कहेंगे, यह तो मैं गीता को नीचे गिरा रहा हूं। अध्यात्म—शास्त्र कहना चाहिए। लेकिन आपसे कहना चाहूंगा कि अध्यात्म का कोई शास्त्र ' होता नहीं। ज्यादा से ज्यादा शास्त्र मन का हो सकता है। हा, मन का शास्त्र वहा तक पहुंचा दे, जहा से अध्यात्म शुरू होता है, इतना ही हो सकता है। अध्यात्म—शास्त्र होता ही नहीं; हो नहीं सकता। अध्यात्म—जीवन होता है, शास्त्र नहीं। अधिक से अधिक जो शब्द कर सकता है, वह यह है कि वह मन की आखिरी ऊंचाइयों और गहराइयों को छूने में समर्थ बना दे। इसलिए मैं गीता को अध्यात्म—शास्त्र कहकर व्यर्थ न करूंगा। वैसा कोई शास्त्र होता नहीं। और जो—जो शास्त्र आध्यात्मिक होने का दावा करते हैं—शास्त्र तो क्या करते हैं, शास्त्र को मानने वाले। दावा कर देते हैं। वे—वे अपने शास्त्रों को व्यर्थ ही, व्यर्थ ही मनुष्य की सारी उपयोगिता के बाहर कर देते हैं। अध्यात्म है अनुभव और जो अनिर्वचनीय है, और जो अवर्णनीय है, और जो व्याख्या के पार है, और जो शब्दों के अतीत है, और शास्त्र ही जिसे चिल्ला—चिल्लाकर कहते हैं कि मन से नहीं मिलेगा, मन के आगे मिलेगा—जो मन के आगे मिलेगा, वह शब्दों में नहीं लिखा जा सकता है। इसलिए शास्त्र की आखिरी से आखिरी पहुंच मनस है, मन है। उतना पहुंचा दे तो परम शास्त्र है। और उसके पार जो छलांग लगेगी, वहा अध्यात्म शुरू होगा। गीता को मैं मनस—शास्त्र कहता हूं क्योंकि गीता में वहा तक पहुंचाने के सूत्र हैं उसमें, जहा से छलांग, दि जंप, जहा से छलांग लग सकती है। लेकिन अध्यात्म—शास्त्र कोई शास्त्र होता नहीं। ही, आध्यात्मिक वक्तव्य हो सकते हैं; जैसे उपनिषद हैं। उपनिषद आध्यात्मिक वक्तव्य हैं। लेकिन उनमें कोई विज्ञान नहीं है। इसलिए मनुष्य के बहुत काम के नहीं हैं। गीता बहुत काम की है। वक्तव्य है कि ब्रह्म है; ठीक है। एक वक्तव्य है कि ब्रह्म है ठीक है। हमें पता नहीं है। जो जानता है, वह कहता है, है। जो नहीं जानता है, वह कहता है, होगा। बेयर स्टेटमेंट है। तो उपनिषद काम में आ सकता है जब आपको अध्यात्म का अनुभव हो जाए। तब आप उपनिषद में पढ़कर कह सकते हैं कि ठीक है, ऐसा मैंने भी जाना है। तो उपनिषद जो है, वह गवाही बन सकता है, विटनेस हो सकता है। लेकिन जब आप जान लें, तब। और मजा यह है कि जब आप जान लें तो उपनिषद की गवाही की कोई जरूरत नहीं होती। आप ही जानते हैं, तो आप जो कहते हैं, वही उपनिषद हो जाता है। तो उपनिषद जो है, वह ज्यादा से ज्यादा गवाही बन सकता है सिद्ध के लिए। और सिद्ध के लिए कोई गवाही की जरूरत नहीं है। गीता साधक के लिए उपयोगी हो सकती है। सिद्ध के किसी काम की गीता नहीं है। लेकिन असली सवाल तो साधक के लिए है। और साधक का असली सवाल आध्यात्मिक नहीं है। अर्जुन का असली सवाल आध्यात्मिक नहीं है। अर्जुन का असली सवाल मानसिक है

साइकोलाजिकल है। उसकी समस्या ही मानसिक है। इसलिए अगर कोई यह कहे कि उसकी समस्या तो मानसिक है और कृष्ण उसका आध्यात्मिक हल कर रहे हैं, तो उन दोनों के बीच फिर कोई कम्युनिकेशन नहीं हो सकता। जहां समस्या है, वहीं समाधान को होना चाहिए, तभी सार्थक होगा। अर्जुन की समस्या मानसिक है, उसकी समस्या आध्यात्मिक नहीं है। उसका उलझाव मानसिक है। अब यह बड़े मजे की बात है आध्यात्मिक समस्या होती ही नहीं। जहां अध्यात्म है, वहां समस्या नहीं है। और जहां तक समस्या है, वहा तक अध्यात्म नहीं है। मामला ठीक ऐसा ही है, जैसे कि मेरे घर में अंधेरा है और मैं आप से कहूं, अंधेरा है। आप कहें कि मैं दीया ले जाकर देखता हूं कहां है? और आप दीया ले जाएं और अंधेरे को मैं न बता पाऊं। आप कहें, बताओ, कहां है अब मैं दीया ले आया, अंधेरा कहां है? अब मैं मुश्किल में पड़ जाऊंगा, तो मैं आपसे कहूं कि कृपा कर दीया बाहर रखकर आइए। आप कहें कि दीया बाहर रख आऊंगा, तो अंधेरे को देखूंगा कैसे? क्योंकि रोशनी चाहिए देखने के लिए! तो फिर एक ही बात मैं आप से कहूंगा कि फिर अंधेरा नहीं देखा जा सकता, क्योंकि जहां रोशनी है, वहां अंधेरा नहीं है और जहां अंधेरा है, वहा रोशनी नहीं है। और इन दोनों के बीच कोई कम्युनिकेशन नहीं है। आध्यात्मिक समस्या जैसी कोई समस्या होती ही नहीं। सब। समस्याएं मानसिक हैं। अध्यात्म समस्या नहीं, समाधान है। जहां अध्यात्म है, वहां कोई समस्या नहीं है। और जहा कोई समस्या नहीं है, वहां किसी समाधान की क्या जरूरत है? अध्यात्म स्वयं समाधान है। इसलिए अध्यात्म के द्वार का नाम हमने रखा है समाधि। समाधि का मतलब है, यहां से समाधान शुरू होता है, यहां से अब समस्याएं नहीं होंगी। समाधि का मतलब है, यहां से अब समाधान शुरू होता है, अब समस्या नहीं, अब आगे प्रश्न नहीं होंगे अब आगे प्रश्न का कोई उपाय नहीं है। दरवाजे का नाम समाधि रखा हैं। इसका मतलब यह है कि दरवाजे पर आ गए, अब इसके पार समाधान का जगत है। वहा समाधान ही समाधान होंगे, वहा अब कोई समस्या नहीं होगी। लेकिन समाधि के द्वार तक बडी समस्याएं होंगी। और वे सब समस्याएं मानसिक हैं। अगर ठीक से समझें, तो मतलब है, दि माइंड इज दि प्राब्लम, मन ही समस्या है। जिस दिन मन नहीं है, उस दिन कोई समस्या नहीं है। और अध्यात्म का मतलब है, वह अनुभव, जहां मन नहीं है। इसलिए मैं जब गीता को मनस-शास्त्र कहता हूं, तो अधिकतम जो शास्त्र के संबंध में कहा जा सकता है, दि मैग्जिमम, वह मैं कह रहा हूं। उससे आगे कहा नहीं जा सकता। और जो लोग उसे आध्यात्मिक बनाएंगे, वे पिटवा देंगे, वे उसे फिंकवा देंगे। क्योंकि अध्यात्म की कोई समस्या नहीं है किसी की, सबकी समस्या मन की है। और जब मैं कहता हूं कृष्ण को मैं कहता हूं मनोविज्ञान का पहला उदघोषक, तो अधिकतम जो कहा जा सकता है, वह मैं कह रहा हूं। ही! मनःसंश्लेषक, आत्मा का कोई संश्लेषण नहीं होता। सारा खेल मन का है। सारा उपद्रव मन का है, मन के कुर न कोई उपद्रव है, न कोई समस्या है। इसलिए मन के पार कोई शास्त्र नहीं है। सब गुरु-शिष्य मन तक हैं, मन के पार कोई गुरु-शिष्य नहीं है। मन के पार न अर्जुन है, न कृष्ण हैं। मन के पार जो है, उसका कोई नाम नहीं है। सब मन के भीतर की सारी बात है। और इसलिए गीता बहुत विशिष्ट है। आध्यात्मिक वक्तव्य बहुत हैं, कीमती हैं। लेकिन वक्तव्य हैं, बेयर स्टेटमेंट्स हैं। एक आदमी कहता है, ऐसा है। लेकिन इससे कोई हल नहीं होता। हमारी समस्याएं किसी और तल पर हैं। हमारी मुसीबतें किसी और तल पर हैं। उस तल पर ही बात होनी चाहिए। कृष्ण ने ठीक उस तल से बात की है, जहा अर्जुन है। अगर कृष्ण अपने तल से बात करें, तो गीता अध्यात्म-शास्त्र होती। लेकिन तब अर्जुन को नहीं समझाया जा सकता था। अर्जुन कहता, माफ करें होगा। मेरा कोई संबंध नहीं है इससे। तब उन दोनों के बीच कोई संवाद नहीं हो सकता था। तब एक आदमी आकाश में और एक आदमी पाताल में होता। अर्जुन के सिर पर से बातें निकल जातीं। कुछ पकड़ में अर्जुन को नहीं आने वाला था। लेकिन कृष्ण, ठीक अर्जुन जहा है, वहां से उसका हाथ पकड़ते हैं। और वहीं से सारी समस्याओं को सुलझाना शुरू करते हैं। इसलिए गीता एक बहुत साइकिक, एक बहुत मनस की गतिमान व्यवस्था है। एक-एक कदम अर्जुन ऊपर उठता है, तो गीता ऊपर उठती है। अर्जुन नीचे गिरता है, तो गीता नीचे गिरती है। अर्जुन जमीन पर गिर जाता है, तो कृष्ण नीचे झूकते हैं। अर्जुन खड़ा हो जाता है, तो कृष्ण खड़े हो जाते हैं। पूरे समय अर्जुन केंद्र पर है, कृष्ण नहीं हैं केंद्र पर। उपनिषद का ऋषि केंद्र पर है, वह अपने वक्तव्य दे रहा है। वह कह रहा है, जो मैंने जाना, वह मैं कहता हूं। उसकी आपसे कोई संबंध नहीं है। इसलिए मैं गीता को एक शिक्षक के द्वारा कही हुई बातें कह रहा हूं। कृष्ण सिर्फ ब्रह्मज्ञानी की तरह बोलें, तो अर्जुन से कोई नाता नहीं रह जाएगा। वे बहुत नीचे झुककर अर्जुन के साथ खड़े होकर बोलते हैं। और धीरे- धीरे जैसे अर्जुन ऊपर उठता है, वैसे ही वे ऊपर उठते हैं। और वहा छोड़ते हैं गीता के आखिरी सूत्रों को, जहां से मनस समाप्त हो जाता है और अध्यात्म शुरू हो जाता है। उसके बाद चर्चा बंद हो जाती है। उसके बाद चर्चा का कोई मतलब नहीं है। इसलिए मैंने बहुत जानकर, कंसीडर्ड-मेरा जो वक्तव्य है, ऐसे ही नहीं कह देता हूं? कुछ भी नहीं ऐसे कह देता हूं-बहुत जानकर कहा कि गीता एक साइकोलाजी है। और भविष्य सिर्फ उन्हीं ग्रंथों का है, जो साइकोलाजी हैं। भविष्य उन ग्रंथों का नहीं है, जो मेटाफिजिक्स हैं। मेटाफिजिक्स मर गई, अब उसकी कोई जगह नहीं है। अब आदमी कहता है, हमारी समस्याएं हैं, इन्हें हल करिए। और जो इन्हें हल करेगा, उसकी जगह होगी। अब फ्रायड, जुंग, एडलर और फ्रोम और सलीवान, इनकी दुनियां है, अब यह कपिल, कणाद की दुनिया नहीं है। और आने वाले भविष्य में कृष्ण अगर फ्रायड और जुंग और एडलर की पंक्ति में खड़े होने का साहस दिखलाते हैं, तो ही गीता का भविष्य है, अन्यथा कोई भविष्य नहीं है। मैंने बहुत सोचकर कहा है, बहुत जानकर कहा है। बाइबिल को

मैं नहीं कह सकता कि वह मनस-शास्त्र है, नहीं कह सकता। कुछ वक्तव्य हैं जो मानसिक हैं, लेकिन बहुत गहरे में वे अध्यात्म हैं। अध्यात्म का मतलब, जो जाना है जीसस ने, वह वक्तव्य दे रहे हैं। वही तकलीफ हुई। क्योंकि जीसस आकाश की बातें कर रहे हैं। सुनने वाले जमीन की बातें समझ रहे हैं, इसलिए सूली पर लटकाए गए। सूली पर लटकाने का कारण है। और बहुत-सा कारण जीसस के ऊपर है। जीसस कह रहे हैं, दि किंग्डम आफ गॉड, मैं तुम्हें परमात्मा के राज्य का मालिक बना दूंगा। लोग समझ रहे हैं कि वे जमीन के राज्य का मालिक बनाने वाले हैं। यहूदियों ने रिपोर्ट कर दी उनकी कि यह आदमी खतरनाक है, रिबेलियस है। यह कुछ राज्य हड़पने की कोशिश कर रहा है। और जब उनसे पूछा पायलट ने कि क्या तुम राज्य हड़पने की कोशिश कर रहे हो? उन्होंने कहा कि हम राज्य पर हमला बोल रहे हैं! मगर वह दूसरे राज्य की बात कर रहे हैं, किंग्डम आफ गॉड। वह राज्य कहीं किसी को पता नहीं है। उन्होंने कहा, यह आदमी खतरनाक है। इस आदमी को सूली पर लटकाना चाहिए। जीसस जहा से बोल रहे हैं, वहां सुनने वाले लोग नहीं हैं। और जहां जीसस बोल रहे हैं, वहां उनको सुनने वाला एक भी आदमी नहीं है। इसलिए जीसस और उनके सुनने वाले में कोई तालमेल नहीं है। **कृष्ण अदभुत शिक्षक हैं। वे अर्जुन को प्रायमरी क्लास से लेकर ठीक युनिवर्सिटी के आखिरी दरवाजे तक पहुंचाते हैं।** बहुत लंबी यात्रा है। बहुत लंबी यात्रा है और बडी सूक्ष्म यात्रा है। और मैं वैसे ही चाहूंगा कि हम वैसे ही यात्रा करें।
प्रश्न : भगवान श्री, आपने बताया कि मनुष्य जन्मों -जन्मों का पुनरावर्तन करता रहता है। तो क्या पुनर्जीवन पाने के लिए वह पुनरावर्तन जरूरी नहीं है? यदि न हो, तो उसमें से अतिक्रमण कब होता है? और उसमें क्या गुरु या ग्रंथ कुछ मदद नहीं कर सकते? कृपया बताइए।

जीवन का अनंत पुनरावर्तन है, उपयोगिता है उसकी; उससे प्रौढ़ता आती है। खतरा भी है उसका; उससे जड़ता भी आ सकती है। एक ही चीज से दुबारा गुजरने में दो संभावनाएं हैं। या तो दुबारा गुजरते वक्त आप उस चीज को ज्यादा जान लेंगे; और यह भी संभावना है कि दोबारा गुजरते वक्त आप उतना भी न जान पाएंगे, जितना आपने पहली बार जाना था। दोनों ही बातें है। आपके घर के सामने जो वृक्ष लगा है, आप उसको शायद ही देखते हों, क्योंकि इतनी बार देखा है कि देखने की कोई जरूरत नहीं रह गई है। पति—पत्नी शायद ही एक—दूसरे को देखते हों। तीस—तीस साल साथ रहते हो गए। देख लिया था बहुत पहले, जब शादी हुई थी। फिर देखने का कोई मौका नहीं आया। असल में देखने की कोई जरूरत नहीं आई। अपरिचित स्त्री सड़क से निकलती है, तो दिखाई पड़ती है। **असल में अपरिचित दिखाई पड़ता है, परिचित के प्रति हम अंधे हो जाते हैं; ब्लाइंड स्पाट हो जाता है।**उसे देखने की कोई जरूरत नहीं होती। कभी आंख बंद करके सोचें कि आपकी मा का चेहरा कैसा है, तो आप बड़ी मुश्किल में पड़ जाएंगे। फिल्म एक्ट्रेस का चेहरा याद आ सकता है; मा का चेहरा आंख बंद करके देखेंगे, तो एकदम खोने लगेगा। थोड़ी देर में रूप—रेखा गड्ड—मुड हो जाएगी। मा का चेहरा पकड़ में नहीं आता! इतना देखा है, इतने पास से देखा। है, कि कभी गौर से नहीं देखा। निकटता अपरिचय बन जाती है। निकटता अपरिचय बन जाती है। तो अनंत जीवन में एक से ही अनुभव से बार—बार गुजरने पर दो संभावनाएं हैं। और चुनाव आप पर है कि आप क्या करेंगे; स्वतंत्रता आपकी है। आप यह भी कर सकते हैं कि आप बिलकुल जड़, मेकेनिकल हो जाएं, जैसा कि हम अधिक लोग हो गए हैं। एक यंत्रवत घूमते रहें, बस वही रोज—रोज करते रहें। **कल भी क्रोध किया था, परसों भी क्रोध किया था, उसके पहले भी, पिछले वर्ष भी, उसके पहले वर्ष भी। इस जन्म का ही हिसाब रखें, तो भी काफी है। अगर पचास साल जीए हैं, तो कितनी बार क्रोध किया है! और हर बार क्रोध करके कितनी बार पश्चात्ताप किया है! और हर बार पश्चात्ताप करके फिर दुबारा क्रोध किया है, फिर दुबारा पश्चात्ताप किया है!। फिर धीरे—धीरे एक रूटीन, एक व्यवस्था बन गई है। और आदमी को देखकर आप कह सकते हैं कि यह अभी क्रोध कर रहा है, थोड़ी देर बाद पश्चात्ताप करेगा।** क्रोध में क्या कह रहा दे, यह भी बता सकते हैं, क्या कहेगा, यह भी बता सकते है —अगर दो—चार दफे उसको क्रोध करते देखा है। और बाद में भी प्रिडिक्ट कर सकते है कि क्रोध के बाद पश्चात्ताप में ये—**ये बातें यह कहेगा। कसम खाएगा कि अब क्रोध कभी नहीं करूंगा। हालाकि ये कसमें इसने पहले भी खाई हैं, इसका कोई मतलब नहीं है। यह जड़ व्यवस्था हो गई है। लेकिन अगर कोई आदमी होशपूर्वक क्रोध किया है, तो हर बार क्रोध का अनुभव उसे क्रोध से मुक्त कराने में सहयोगी होगा।** और अगर बेहोशी से क्रोध किया है, तो हर क्रोध का अनुभव उसे और भी क्रोध की जड़ मूर्च्छा में ले जाने में सहयोगी होता है। जीवन का पुनरावर्तन दोनों संभावनाएं खोलता है। हम कैसा उपयोग करेंगे, हम पर निर्भर है। जीवन सिर्फ संभावनाएं देता है। हम उन संभावनाओं को क्या रूपातरण देंगे, यह हम पर निर्भर है। **एक आदमी चाहे तो क्रोध करके और गहरे क्रोध का अभ्यासी बन सकता है। और एक आदमी चाहे तो क्रोध करके, क्रोध की मूर्खता को देखकर, व्यर्थता को देखकर, क्रोध की अग्नि और विक्षिप्तता को देखकर, क्रोध से मुक्त हो सकता है। जो आदमी जड़ होता चला जाता है, वह अधार्मिक होता चला जाता है; वह और संसारी होता चला जाता है।** जो आदमी चेतन होता चला जाता है, वह धार्मिक होता चला जाता है, उसके जीवन में एक क्रांति होती चली जाती है। प्रत्येक पर निर्भर है कि जीवन का आप क्या करेंगे। जीवन निर्भर नहीं है, जीवन अवसर है। उसमें क्या करेंगे, यह

आप पर निर्भर है। यह निर्भरता ही आपके आत्मवान होने का प्रमाण है। यह निर्भरता ही आपके आत्मा होने का गौरव है। आपके पास आत्मा है, अर्थात चुनाव की शक्ति है कि आप चुनें कि क्या करेंगे। और मजे की बात यह है कि आपने हजारों चक्कर लगाए हों, अगर आज भी आप निर्णय कर लें, तो सारे चक्कर इसी—क्षण छोड़ सकते हैं, तोड़ सकते हैं। लेकिन मन लीस्ट रेसिस्टेंस की तरफ बहता है। घर में एक लोटा पानी गिरा दें। फर्श से बह जाए, सूख जाए, पानी उड़ जाए; लेकिन एक सूखी रेखा फर्श पर छूट जाती है। पानी नहीं है जरा भी। कुछ भी नहीं है, सिर्फ एक सूखी रेखा। और सूखी रेखा का मतलब क्या है? कुछ भी मतलब नहीं है। वहा पानी बहा था। बस, इतनी एक रेखा छूट जाती है। फिर दुबारा पानी उस कमरे में डोल दें, सौ में से निन्यानबे मौके यह हैं कि वह उसी सूखी रेखा को पकड़कर फिर बहेगा। क्योंकि लीस्ट रेसिस्टेंस है। उस सूखी रेखा पर धूल कम है। कमरे के दूसरे हिस्सों में धूल ज्यादा है। वहा जगह जरा आसानी से बहने की है। पानी वहीं से बहेगा। हम बहुत बार जो किए हैं, वहा—वहा सूखी रेखाएं बन गई हैं। उन सूखी रेखाओं को ही मनस—शास्त्र संस्कार कहता है। वह हमारी कंडीशनिंग है। उन सूखी रेखाओं पर फिर वही काम, फिर शक्ति का जन्म, फिर पानी का बहना, लीस्ट रेसिस्टेंस, फिर हम वहीं से बहना शुरू कर देते हैं। लेकिन सूखी रेखा कहती नहीं कि यहां से बहो। सूखी रेखा। बांधती नहीं कि यहां से नहीं बहे, तो अदालत में मुकदमा चलेगा। सूखी रेखा कहती नहीं कि कोई नियम है ऐसा कि यहीं से बहना पड़ेगा, कि परमात्मा की आज्ञा है कि यहीं से बहो। सूखी रेखा सिर्फ एक खुला अवसर है, चुनाव सदा आपका है। और पानी अगर तय। करे कि नहीं बहना है सूखी रेखा से, तो नई रेखा बना ले और बह जाए। फिर नई सूखी रेखा बन जाएगी। फिर नया संस्कार बन जाएगा। धर्म निर्णय और संकल्प है; जो होता रहा है, उससे अन्यथा होने की चेष्टा है; जो कल तक हुआ है, उसकी समझ से वैसा दुबारा न हो, इसका संकल्पपूर्वक चुनाव है। इसे ही हम साधना कहें, योग कहें, जो भी नाम देना चाहें, दे सकते हैं। एक आखिरी सूत्र और, फिर साझ को बात करेंगे।

आचार्या: पितर पुन्नास्तथैंव च यितामहा:। मातुला: श्वशुरा: पौत्रा: श्याला: संबन्धिनतस्था ।।34।। एतान्न हन्तुमिच्छामि ध्नतोऽपि मधुसूदन। अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतो: किं नु महीकृते।।35।।

गुरुजन ताऊ? चाचे, लड़के, और वैसे ही दादा, मामा, ससुर, पीते, साले तथा और भी संबंधी लोग हैं। इसलिए है मधुसूदन, मुझे मारने पर भी अथवा तीन लोक के राज्य के लिए भी मैं इन सबको मारना नहीं चाहता, फिर पृथ्वी के लिए तो कहना ही क्या है?

निहत्य धार्तराष्ट्रान्न: का प्रीति: स्याज्जनार्दन। पापमेवाश्रयेदस्मान्हन्वैतानाततायिन: ।।36।।

हे जनार्दन। धृतराष्ट्र के पुत्रों को मारकर भी हमें क्या प्रसन्नता होगी! इन आततायियों को मारकर तो हमें पाप ही लगेगा। बार—बार, फिर—फिर अर्जुन जो कह रहा है, वह बहुत विचार योग्य है। दो—तीन बातें खयाल में ले लेनी जरूरी है। वह कह रहा है कि ये अपने स्वजनों को मारकर अगर? तीनों लोक का राज्य भी मिलता हो, तो भी मैं लेने को तैयार नहीं हूं इसलिए इस पृथ्वी के राज्य की तो बात ही क्या! देखने में ऐसा !' लगेगा, बड़े त्याग की बात कह रहा है। ऐसा है नहीं। मैं एक वृद्ध संन्यासी से मिलने गया था। उन वृद्ध संन्यासी ने मुझे एक गीत पढ़कर सुनाया। उनका लिखा हुआ गीत। उस गीत में उन्होंने कहा कि सम्राटो, तुम अपने स्वर्ण—सिंहासन पर होओगे सुख में, मैं अपनी धूल में ही मजे में हूं। मैं लात मारता हूं तुम्हारे स्वर्ण—सिंहासनों पर। तुम्हारे स्वर्ण—सिंहासनों में कुछ भी नहीं रखा है। मैं अपनी धूल में ही मजे में हूं। ऐसा ही गीत था। पूरे गीत में यही बात थी। सुनने वाले बड़े मंत्रमुग्ध हो गए। हमारे मुल्क में मंत्रमुग्ध होना इतना आसान है कि और कोई चीज आसान नहीं है। सिर हिलाने लगे। मैं बहुत हैरान हुआ। उनका सिर हिलता देखकर संन्यासी भी बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने मुझसे पूछा, आप क्या कहते हैं? मैंने कहा, मुझे मुश्किल में डाल दिया है आपने। आप मुझसे पूछिए ही मत। उन्होंने कहा, नहीं, कुछ तो कहिए ' मैंने कहा कि मैं सदा सोचता हूं कि अब तक किसी सम्राट ने ऐसा नहीं कहा कि संन्यासियो, अपनी धूल में रहो मजे में, हम तुम्हारी धूल को लात मारते हैं। हम अपने सिंहासन पर ही मजे में हैं। किसी सम्राट ने अब तक ऐसा गीत नहीं लिखा। संन्यासी जरूर १, सैकड़ों वर्ष से ऐसे गीत लिखते रहे हैं। कारण खोजना पड़ेगा। असल में संन्यासी के मन में सुख तो सोने के सिंहासन में ही दिखाई पड़ रहा है। अपने को समझा रहा है। कसोलेटरी है उसकी बात। '— वह कह रहा है, रहे आओ अपने सिंहासन पर, हम अपनी धूल में ही बहुत मजे में हैं। लेकिन तुम से कह कौन रहा है कि तुम सिंहासन पर रहो। तुम धूल में मजे में हो, तो मजे में रहो। सिंहासन वाले को ईर्ष्या करने दो तुम्हारे मजे की। लेकिन सिंहासन वाला कभी गीत नहीं लिखता है कि तुम अपने मजे में हो, तो रहे आओ। उसको कसोलेशन की कोई जरूरत नहीं है। वह अपने सिंहासन पर तुम्हारी धूल से कोई ईर्ष्या नहीं कर रहा है। लेकिन तुम धूल में पड़े हुए, उसके सिंहासन से जरूर ईर्ष्यारत हो। ईर्ष्या गहरी है। अब अर्जुन अपने को समझा रहा है। मन तो उसका होता है कि राज्य मिल जाए, लेकिन वह यह कह रहा है, इन सबको मारकर , अगर तीनों लोक का राज्य भी मिलता हो—हालाकि कहीं कुछ मिल नहीं रहा है; कोई देने वाला नहीं है—तीनों लोक का राज्य भी मिलता हो, तो भी बेकार है। ऐसे बड़े राज्य की बात करके, फिर वह उसका दूसरा निष्कर्ष निकालता है कि तब पृथ्वी के राज्य का तो प्रयोजन ही क्या है! ऐसा बड़ा खयाल मन में पैदा करके कि

मैं तीनों लोक का राज्य भी छोड़ सकता हूं तो फिर पृथ्वी का राज्य तो छोड़ ही सकता हूं। लेकिन न उसको पृथ्वी का राज्य छोड़ने की इच्छा है। और अगर कहीं गा उससे कहें कि देख, तुझे तीनों लोक का राज्य दिए देते हैं, तो वह बड़ी बिगूचन में पड़ जाएगा। वह कह रहा है, अपने को समझा रहा है। अब यह बड़े मजे की बात है कि बहुत बार जब हम अपने को समझाते होते हैं, तो हमारे खयाल में नहीं होता है कि हम किन—किन तरकीबों से अपने को समझाते हैं। बड़ा मकान देखकर पड़ोसी का हम कहते हैं, क्या रखा है बड़े मकान में! लेकिन जब कोई आदमी कहता है, क्या रखा है बड़े मकान में! तो उस आदमी को बहुत कुछ रखा है, निश्चित ही रखा है। अन्यथा बड़ा मकान दिखता नहीं। वह अपने को समझा रहा है, वह अपने मन को सांत्वना दे रहा है कि कुछ रखा ही नहीं है, इसलिए हम पाने की कोशिश नहीं करते। अगर कुछ होता, तो हम तत्काल पा लेते। लेकिन कुछ है ही नहीं, इसलिए हम पाने की कोई कोशिश नहीं करते। यह अर्जुन कह रहा है, तीन लोक के राज्य में भी क्या रखा है, इसलिए पृथ्वी के राज्य में तो कुछ भी नहीं रखा है। और इतने छोटे से राज्य की बात के लिए इतने प्रियजनों को मारना.! यह प्रियजनों को मारना उसके लिए सर्वाधिक कष्टपूर्ण मालूम पड़ रहा है, न कि मारना कष्टपूर्ण मालूम पड़ रहा है। प्रियजनों को मारना कष्टपूर्ण मालूम पड़ रहा है। स्वभावत: सारा परिवार वहा लड़ने को खड़ा है। ऐसे युद्ध के मौके कम आते हैं। यह युद्ध भी विशेष है। और युद्ध की तीक्ष्णता यही है महाभारत की कि एक ही परिवार कटकर खड़ा है। उस कटाव में भी सब दुश्मन नहीं हैं। कहना चाहिए कि जो फर्क है—यह थोड़ा सोचने जैसा है—जो फर्क है, वह दुश्मन और मित्र का कम है; जो फर्क है, वह कम मित्र और ज्यादा मित्र का ही है। जो बंटवारा है, वह बंटवारा ऐसा नहीं है कि उस तरफ दुश्मन हैं और इस तरफ मित्र हैं। इतना भी साफ होता कि उस तरफ पराए हैं और इस तरफ अपने हैं, तो कटाव बहुत आसानी से हो जाता। अर्जुन ठीक से मार पाता। लेकिन बंटवारा बहुत अजीब है। और वह अजीब बड़ा अर्थपूर्ण है। वह अजीब बंटवारा ऐसा है कि इस तरफ अपने थोड़े जो ज्यादा मित्र थे, वे इकट्ठे हो गए हैं; जो थोड़े कम मित्र थे, वे उस तरफ इकट्ठे हो गए हैं। मित्र वे भी हैं, प्रियजन वे भी हैं, गुरु उस तरफ हैं। यह मैं कह रहा हूं, महत्वपूर्ण है। और ऐसी सिचुएशन इसलिए महत्वपूर्ण है कि जिंदगी में चीजें वाटर टाइट कंपार्टमेंट में बंटी हुई नहीं होती हैं। जिंदगी में चीजें काले और सफेद में बंटी हुई नहीं होतीं। जिंदगी ग्रे का फैलाव है। उसके एक कोने पर काला होता है, दूसरे कोने पर सफेद होता है, लेकिन जिंदगी के बड़े फैलाव में काला और सफेद मिश्रित होता है। यहां फला आदमी शत्रु और फलां आदमी मित्र, ऐसा बंटाव नहीं है। फला आदमी कम मित्र, फला आदमी ज्यादा मित्र; फला आदमी कम शत्रु, फला आदमी ज्यादा शत्रु—ऐसा बंटाव है। यहां जिंदगी में एब्सोल्युट टर्म्स नहीं हैं। यहां कोई चीज पूरी कटी हुई नहीं है। यही उलझाव है। यहां सब चीजें कम—ज्यादा में बंटी हैं। हम कहते हैं, यह गरम है और यह ठंडा है। लेकिन ठंडे का क्या मतलब होता है, थोड़ा कम गरम। गरम का क्या मतलब होता है, थोड़ा कम ठंडा। कभी ऐसा करें कि एक हाथ को स्टोव पर जरा गरम कर लें और एक हाथ को बरफ पर रखकर जरा ठंडा कर लें और फिर दोनों हाथों को एक ही बाल्टी के पानी में डाल दें, तब आप बड़ी मुश्किल में पड़ जाएंगे। तब ठीक अर्जुन की हालत में पड़ जाएंगे। तब आपका एक हाथ कहेगा पानी ठंडा है और एक हाथ कहेगा पानी गरम है। और एक ही पानी है। दोनों तो नहीं हो सकता एक साथ—ठंडा और गरम! जीवन में सब कुछ सापेक्ष है, रिलेटिव है। जिंदगी में कुछ भी निरपेक्ष नहीं है। यहां सब कम—ज्यादा का बंटाव है। अर्जुनकी बही तकलीफ है। और जो आदमी भी जिंदगी को देखेगा ठीक से, उसकी यही तकलीफ हो जाएगी। यहां सब कम—ज्यादा का बंटाव है। कोई थोड़ा अपना ज्यादा, कोई अपना कम। कोई थोड़ा ज्यादा निकट, कोई थोड़ा जरा दूर। कोई सौ प्रतिशत, कोई नब्बे प्रतिशत, कोई अस्सी प्रतिशत अपना है। और कोई नब्बे प्रतिशत, कोई अस्सी प्रतिशत, कोई सत्तर प्रतिशत पराया है। लेकिन जो पराया है, उसमें भी अपना एक प्रतिशत का हिस्सा है। और जो अपना है, उसमें भी पराए के प्रतिशत का हिस्सा है। इसलिए जिंदगी उलझाव है। यह कट जाए ठीक शत्रु—मित्र में, अच्छे—बुरे में, तो बड़ा आसान हो जाए। इतना आसान नहीं हो पाता। राम के भीतर भी थोड़ा रावण है और रावण के भीतर भी थोड़ा राम है। इसलिए तो रावण को भी कोई प्रेम कर पाता है, नहीं तो रावण को कोई प्रेम न कर पाए। रावण को कोई प्रेम कर पाता है। रावण में भी कहीं न कहीं राम किसी न किसी को दिखाई पड़ता है। रावण को भी कोई प्रेम करता है। राम से भी कोई शत्रुता कर पाता है, तो राम की शत्रुता में भी कहीं न कहीं रावण थोड़ा दिखाई पड़ता है। यहां बड़े से बड़े संत में भी थोड़ा पापी है, और यहां बड़े से बड़े पापी में भी थोड़ा संत है। जिंदगी सिर्फ सापेक्ष विभाजन है। यह अर्जुन की तकलीफ है कि सब अपने ही खड़े हैं। एक ही परिवार है, बीच में से रेखा खींच दी है। उस तरफ अपने हैं, इस तरफ अपने हैं। हर हालत में अपने ही मरेंगे। यह पीड़ा पूरे जीवन की पीड़ा है। और यह स्थिति, यह सिचुएशन पूरे जीवन की स्थिति है। इसलिए अर्जुन के लिए जो प्रश्न है, वह सिर्फ किसी एक युद्ध-स्थल पर पैदा हुआ प्रश्न नहीं है, वह जीवन के समस्त स्थलों पर पैदा हुआ प्रश्न है। अब वह घबड़ा गया है। उधर द्रोण खड़े हैं, उन्हीं से सीखा है। अब उन्हीं पर तीर खींचना है। उन्हीं से धनुर्विद्या सीखी है। वह उनका सबसे पट्ट शिष्य है। सबसे ज्यादा जीवन में उसके लिए ही द्रोण ने किया है। एकलव्य का अंगूठा काट लाए थे इसी शिष्य के लिए। वही शिष्य आज उन्हीं की हत्या करने को तैयार हो गया है! इसी शिष्य को उन्होंने बडा किया है खून-पसीना देकर, सारी कला इसमें उंडेल दी है। आज इसी के खिलाफ वे धनुष-बाण खींचेंगे। बड़ा अदभुत युद्ध है। यछ एक ही परिवार है, जिसमें बड़े तालमेल हैं, बड़े जोड़ हैं, बड़ी निकटताए हैं, कटकर खड़ा हो गया है। लेकिन

अगर हम जिंदगी को देखें, बहुत गहरे से देखें, तो जिंदगी के सब युद्ध अपनों के ही युद्ध हैं, क्योंकि पृथ्वी एक परिवार से ज्यादा नहीं है। अगर हिंदुस्तान पाकिस्तान से लड़ेगा, तो एक परिवार ही लड़ेगा। कल जिन बच्चों को हमने पढ़ाया, लिखाया, बड़ा किया था, वे वहा हैं। कल जिस जमीन को हम अपना कहते थे, वह वहा है। कल जिस ताजमहल को वे अपना कहते थे और जिसके लिए मर जाते, वह यहां है। यहां सब जुडा है। अगर हम कल चीन से लडेंगे, तो हिंदुस्तान ने चीन को सब कुछ दिया है। और हिंदुस्तान की सबसे बड़ी धरोहर, बुद्ध को, चीन ने बचाया है। और कोई बचाता नहीं। कल उनसे हम लड़ने खड़े हो जाएं। सारी जिंदगी, सारी पृथ्वी, ठीक से देखें तो एक बड़ा परिवार है। उसमें सारे युद्ध पारिवारिक हैं। और सब युद्ध इसी स्थिति को पैदा कर देते, जो अर्जुन के मन में पैदा हो गई है। उसकी दुविधा एकदम स्वाभाविक है; उसकी चिंता एकदम स्वाभाविक है। वह थरथर कांप गया है, यह बिलकुल स्वाभाविक है। इस दुविधा से क्या निस्तार है? या तो आख बंद करे और युद्ध में कूद जाए; या आख बंद करे और भाग जाए। ये दो ही उपाय दिखाई पड़ते हैं। तो आख बंद करे और कहे, होगा कोई; जो अपनी तरफ नहीं है, अपना नहीं है। मरना है, मरे। आख बंद करे, युद्ध में कूद जाए-सीधा है। या आख बंद करे और भाग जाए-सीधा है। लेकिन कृष्ण जो उपाय सुझाते हैं, वह सीधा नहीं है। वह लीस्ट रेसिस्टेंस का नहीं है। ये दोनों लीस्ट रेसिस्टेंस के हैं। ये दोनों सूखी रेखाएं हैं। इन दोनों में वह कहीं भी चला जाए, बड़ी सरल है बात। शायद अनंत जन्मों में इन दो में से कहीं न कहीं वह गया होगा। ये सहज विकल्प हैं। लेकिन कृष्ण एक तीसरा ही विकल्प सुझाते हैं, जिस पर वह कभी नहीं गया है। वह तीसरा विकल्प ही कीमती है। और जिंदगी में जब भी आपको दो विकल्प आएं, तो निर्णय करने के पहले तीसरे के संबंध में सोच लेना। क्योंकि वह तीसरा सदा ही महत्वपूर्ण है, वे दो हमेशा वही हैं, जो आपने बार-बार चुने हैं। कभी इसको, इससे थक गए हैं तो विपरीत को, कभी विपरीत से थक गए तो इसको -उनको आप चुनते रहे हैं। दि थर्ड, वह तीसरा ही महत्वपूर्ण है, जो खयाल में नहीं आता है। उस तीसरे को ही कृष्ण प्रस्तावित करेंगे, उस पर हम सांझ बात करेंगे।
Audio Player

प्रवचन 4 : दलीलों के पीछे छिपा ममत्व और हिंसा

ओशो – गीता-दर्शन – भाग एक

अध्याय—1-2 – प्रवचन 4 : दलीलों के पीछे छिपा ममत्व और हिंसा

प्रश्न : भगवान श्री, आज सुबह आपने बताया कि "गीता अध्यात्म—शास्त्र नहीं है, मानस—शास्त्र है।" मगर आपने यह भी बताया कि राम में रावण का अंश होता है और रावण में राम का होता है। वैसे ही गीता में भी क्या ऐसा नहीं हो सकता कि शास्त्र में भी अध्यात्म का कुछ अंश आ गया हो?

मैं अध्यात्म को ऐसी अनुभूति कहता हूं, जो अभिव्यक्त नहीं हो सकती। इशारे दिए जा सकते हैं, लेकिन इशारे अभिव्यक्तिया नहीं हैं। चांद को अंगुली से बताया जा सकता है, लेकिन अंगुली चांद नहीं है।

गीता को जब मैंने कहा कि मनोविज्ञान है, तो मेरा अर्थ ऐसा नहीं है, जैसे कि फ्रायड का मनोविज्ञान है। फ्रायड का मनोविज्ञान मन पर समाप्त हो जाता है; उसका कोई इशारा मन के पार नहीं है। मन ही इति है, उसके आगे और कोई अस्तित्व नहीं है। गीता ऐसा मनोविज्ञान है, जो इशारा आगे के लिए करता है। लेकिन इशारा आगे की स्थिति नहीं है।

गीता तो मनोविज्ञान ही है, लेकिन आत्मा की तरफ, अध्यात्म की तरफ, परम अस्तित्व की तरफ, उस मनोविज्ञान से इशारे गए हैं। लेकिन अध्यात्म नहीं है। मील का पत्थर है; तीर का निशान बना है; मंजिल की तरफ इशारा है। लेकिन मील का पत्थर मील का पत्थर ही है, वह मंजिल नहीं है।

कोई भी शास्त्र अध्यात्म नहीं हैं। हा, ऐसे शास्त्र हैं, जो अध्यात्म की तरफ इशारे हैं। लेकिन सब इशारे मनोवैज्ञानिक हैं। इशारे अध्यात्म नहीं हैं। अध्यात्म तो वह है जो इशारे को पाकर उपलब्ध होगा। और वैसे अध्यात्म की कोई अभिव्यक्ति संभव नहीं है; आशिक भी संभव नहीं है। उसका प्रतिफलन भी संभव नहीं है। उसके कारण हैं। संक्षिप्त में दो—तीन कारण खयाल में ले लेने जरूरी हैं।

एक तो जब अध्यात्म का अनुभव होता है, तो कोई विचार चित्त में नहीं होता। और जिस अनुभव में विचार मौजूद न हो, उस अनुभव को विचार प्रकट कैसे करे! विचार प्रकट कर सकता है उस अनुभव को, जिसमें वह मौजूद रहा हो, गवाह रहा हो। लेकिन जिस अनुभव में वह मौजूद ही न रहा हो, उसको विचार प्रकट नहीं कर पाता। अध्यात्म का अनुभव निर्विचार अनुभव है। विचार मौजूद नहीं होता, इसलिए विचार कोई खबर नहीं ला पाता।

इसलिए तो उपनिषद कह—कहकर थक जाते हैं, नेति—नेति। कहते हैं, यह भी नहीं, वह भी नहीं। पूछें कि क्या है? तो कहते हैं, यह भी नहीं है, वह भी नहीं है। जो भी मनुष्य कह सकता है, वह कुछ भी नहीं है। फिर क्या है वह अनुभव, जो सब कहने के बाहर शेष रह जाता है?

बुद्ध तो ग्यारह प्रश्नों को पूछने की मनाही ही कर दिए थे, कि इनको पूछना ही मत। क्योंकि इनको तुम पूछोगे तो खतरे हैं। अगर मै उत्तर न दूं तो कठोर मालूम पडूंगा तुम्हारे प्रति, और अगर उत्तर दूं तो सत्य के साथ अन्याय होगा, क्योंकि इन प्रश्नों का उत्तर नहीं दिया जा सकता। इसलिए पूछना ही मत, मुझे मुश्किल में मत डालना। तो जिस गांव में बुद्ध जाते, खबर कर दी जाती कि ये ग्यारह सवाल कोई भी न पूछे। वे ग्यारह सवाल अध्यात्म के सवाल हैं।

लाओत्से पर जब लोगों ने जोर डाला कि वह अपने अनुभव लिख दे, तो उसने कहा, मुझे मुश्किल में मत डालो। क्योंकि जो मैं लिखूंगा, वह मेरा अनुभव नहीं होगा। और जो मेरा अनुभव है, जो मैं लिखना चाहता हूं? उसे लिखने का कोई उपाय नहीं है। फिर भी दबाव में, मित्रों के आग्रह में, प्रियजनों के दबाव में—नहीं माने लोग, तो उसने अपनी किताब लिखी। लेकिन किताब के पहले ही लिखा कि जो कहा जा सकता है, वह सत्य नहीं है। और सत्य वही है, जो नहीं कहा जा सकता है। इस शर्त को ध्यान में रखकर मेरी किताब पढ़ना।

दुनिया में जिनका भी आध्यात्मिक अनुभव है, उनका यह भी अनुभव है कि वह प्रकट करने जैसा नहीं है। वह प्रक्ट नहीं हो सकता। निरंतर फकीर उसे गूंगे का गुड़ कहते रहे हैं। ऐसा नहीं कि गूंगा नहीं जान लेता है कि गुड़ का स्वाद कैसा है, बिलकुल जान लेता है। लेकिन गूंगा उस स्वाद को कह नहीं पाता। आप सोचते होंगे, आप कह पाते हैं, तो बड़ी गलती में हैं। आप भी गुड़ के स्वाद को अब तक कह नहीं पाए। गूंगा ही नहीं कह पाया, बोलने वाले भी नहीं कह पाए। और अगर मैं जिद्द करूं कि समझाइए कैसा होता है स्वाद, तो ज्यादा से ज्यादा गुड़ आप मेरे हाथ में दे सकते हैं कि चखिए। इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है। लेकिन गुड़ तो हाथ में दिया जा सकता है, अध्यात्म हाथ में भी नहीं दिया जा सकता कि चखिए।

दुनिया का कोई शास्त्र आध्यात्मिक नहीं है। हां, दुनिया में ऐसे शास्त्र हैं, जिनके इशारे अध्यात्म की तरफ हैं। गीता भी उनमें से एक है। लेकिन वे इशारे मन के भीतर हैं। मन के पार दिखाने वाले हैं, लेकिन मन के भीतर हैं। और उनका विज्ञान तो मनोविज्ञान है; उनका आधार तो मनोविज्ञान है। शास्त्र की ऊंची से ऊंची ऊंचाई मनस है। शब्द की ऊंची से ऊंची संभावना मनस है। अभिव्यक्ति की आखिरी सीमा मनस है। जहां तक मन है, वहां तक प्रकट हो सकता है। जहा मन नहीं है, वहां सब अप्रकट रह जाता है।

तो जब मैंने गीता को मनोविज्ञान कहा, तो मेरा अर्थ नहीं है कि वाटसन के मनोविज्ञान जैसा मनोविज्ञान, कोई बिहेवियरिज्म, कोई व्यवहारवाद। या पावलोव का विज्ञान, कोई कंडीशंड रिफ्लेक्स। ये सारे के सारे मनोविज्ञान अपने में बंद हैं और मन के आगे किसी सत्ता को स्वीकार करने को राजी नहीं हैं। कुछ तो मन की भी सत्ता स्वीकार करने को राजी नहीं हैं। वे तो कहते हैं, मन सिर्फ शरीर का ही हिस्सा है। मन यानी मस्तिष्क। मन कहीं कुछ और नहीं है। यह हड्डी—मास—पेशी, इन सबका ही विकसित हिस्सा है। मन भी शरीर से अलग कुछ नहीं है।

गीता ऐसा मनोविज्ञान नहीं है। गीता ऐसा मनोविज्ञान है, जो मन के पार इशारा करता है। लेकिन है मनोविशान ही। अध्यात्म—शास्त्र उसे मैं नहीं कहूंगा। और इसलिए नहीं कि कोई और अध्यात्म—शास्त्र है। कहीं कोई शास्त्र अध्यात्म का नहीं है। अध्यात्म की घोषणा ही यही है कि शास्त्र में संभव नहीं है मेरा होना, शब्द में मैं नहीं समाऊंगा, कोई बुद्धि की सीमा—रेखा में नहीं मुझे बांधा जा सकता। जो सब सीमाओं का अतिक्रमण कर जाता है, और सब शब्दों को व्यर्थ कर जाता है, और सब अभिव्यक्तियों को शून्य कर जाता है—वैसी जो अनुभूति है, उसका नाम अध्यात्म है।

प्रश्न : भगवान श्री, कहीं ऐसा मनु—वचन है कि जहां आततायी को मारने के लिए उन्होंने निर्देश दिया है, आततायिनम् आयन्तं अन्यादेवडविचारत:। शास्त्राज्ञा तो है ऐसी और अर्जुन यह भी जानता है कि दुर्योधन आदि सब आततायी हैं, और तब भी उनको मारने से उसका जी हिचकिचाता है। तो इसका कारण क्या है?

एक तो मनु जो कहते हैं, वह सिर्फ सामाजिक नीति है, सोशल इथिक्स है। मनु जो कहते हैं, वह केवल सामाजिक चितना है, सोशल कोड है। मनु का वचन अध्यात्म नहीं है। मनु का वचन तो मनस भी नहीं है, मनोविज्ञान भी नहीं है। मनु का वचन तो सामाजिक रीति—व्यवहार की व्यवस्था है। इसलिए मनु को जोडना हो अगर, तो उसे जोडना पड़ेगा मार्क्स से, उसे जोड़ना पड़ेगा दुर्खीम से, इस तरह के लोगों के साथ। मनु का कोई बहुत गहरा सवाल नहीं है।

मनु सामाजिक व्यवस्थापक हैं। और समाज की कोई भी व्यवस्था चरम नहीं है। समाज की सभी व्यवस्थाएं सामयिक हैं। जो व्यक्ति भी थोड़ा चिंतन करेगा, उसका चिंतन निरंतर समाज की व्यवस्था के ऊपर चला जाएगा। क्योंकि समाज की व्यवस्था अंतिम व्यक्ति को ध्यान में रखकर बनाई गई होती है।

जैसे कहा जाता है कि योग्य शिक्षक वही है, जो अपनी कक्षा में अंतिम विद्यार्थी को ध्यान में रखकर बोलता हो। निश्चित ही योग्य शिक्षक वही है, जो कक्षा में अंतिम व्यक्ति को ध्यान में रखकर बोलता हो। लेकिन तब जो कक्षा में प्रथम व्यक्ति है, उसके लिए शिक्षक तत्काल बेकार हो जाता है।

समाज की व्यवस्था में तो अंतिम व्यक्ति को ध्यान में रखा जाता है और जड़ नियम स्थापित किए जाते हैं। अर्जुन साधारण व्यक्ति नहीं है, मीडियाकर माइंड नहीं है, अर्जुन चिंतनशील है, मेधावी है, असाधारण प्रतिभाशाली है, जिंदगी उसके लिए सोच —विचार बन जाती है।

अब मनु कहते हैं कि जो आततायी है, उसे तो मार देने में कोई बुराई नहीं है। विचारशील को इतना आसान नहीं है मामला। कौन आततायी है? और आततायी हो भी, तब भी मारना उचित है या नहीं उचित है? फिर आततायी अपना है, मनु को उसका खयाल भी नहीं है। आततायी में मानकर चला गया है कि वह दुश्मन है। यहां आततायी अपना है। और एक व्यक्ति नहीं है, लाखों व्यक्ति हैं। और उन लाखों से लाखों तरह के निकट संबंध हैं।

इसलिए अर्जुन की स्थिति बहुत भिन्न है। वह साधारण आततायी की, हमलावर की, और जिसके ऊपर हमला हुआ है, उसकी नहीं है। वही तो वह चिंतन कर रहा है, वही तो वह कह रहा है कि अगर इन सब को मारकर राज्य को भी पा लें, तो क्या यह सौदा उचित है? वह वही पूछ रहा है। इन सबको मारकर राज्य को पा लेना, क्या सौदा उचित है? क्या इतनी कीमत पर राज्य को ले लेना कुछ सार्थकता रखता है? वह यही पूछ रहा है।

यह जो अर्जुन की मनोदशा है, मनु के जो नियम हैं, उन नियमों से बहुत ऊपर चिंतन की है।

असल में नियम तो सदा जड़ होते हैं। जड़ नियम कामचलाऊ होते हैं और विशेष संकट की स्थितियों में अर्थहीन हो जाते हैं। और अर्जुन की संकट की स्थिति बहुत विशेष है। विशेषता तीन प्रकार की है। एक तो यह है कि यह तय करना बहुत मुश्किल है कि आततायी कौन है?

सदा ही मुश्किल है। हमें बहुत आसानी लगती है पीछे से तय करने में कि आततायी कौन है। अगर कौरव जीत गए होते, तो आपको पता चलता कि आततायी कौन है? क्योंकि तब कथा और ढंग से लिखी गई होती, क्योंकि तब कथाकार और होते। और कथाकार तो जो विजेता है, उसके आस—पास इकट्ठे होते हैं, हारे हुओं के आस—पास तो इकट्ठे नहीं होते।

दूसरे महायुद्ध में हिटलर हार गया, तो अब हम जानते हैं कि बुरा कौन था। लेकिन अगर हिटलर जीत जाता और चर्चिल और रूजवेल्ट और स्टैलिन हारते, तो हम बिलकुल पक्का जानते कि बुरा कोई दूसरा था। स्थितियां गुजर जाने पर पीछे से जो हम सोच पाते हैं, वह ठीक स्थितियों के बीच में इतना तय नहीं होता है। आमतौर से इतिहास लिखने वाला आदमी विजेताओं का इतिहास लिखता है। और आमतौर से इतिहास विजेताओं के आस—पास क्रिस्टलाइज होता है।

तो आज हम जानते हैं कि कौरव आततायी थे। लेकिन ठीक युद्ध के क्षण में, कौन आततायी है, किसने बुरा किया है, यह मामला इतना दो और दो चार जैसा साफ नहीं होता। कभी साफ नहीं होता। चीन कहे चला जाता है कि हमला हिंदुस्तान ने उस पर किया था। हिंदुस्तान कहे चला जाता है कि चीन ने हमला उस पर किया था। कभी यह तय नहीं होगा कि किसने हमला किया था। आज तक कभी तय नहीं हो पाया कि कौन हमलावर है। ही, जो जीत जाता है, वह इतिहास लिख लेता है। हारा हुआ हमलावर तय हो जाता है। जो हार जाता है, वह इतिहास नहीं लिख पाता है।

क्या हार जाना ही हमलावर होने का सबूत है? पीछे से तय करना सदा आसान है, क्योंकि तब रेखाएं बंध गई होती हैं। लेकिन ठीक परिस्थिति के बीच इतना आसान नहीं है।

भूल—चूक सदा दोनों तरफ होती है, मात्राओं में फर्क हो सकते हैं, लेकिन इकतरफा नहीं होती। ऐसा नहीं है कि कौरव ही एकदम जिम्मेवार हैं सारे पाप के लिए, और पांडव बिलकुल नहीं हैं। ऐसा नहीं है। मात्राओं के फर्क होते हैं। यह हो सकता है, कौरव ज्यादा जिम्मेवार हैं। लेकिन यह भी बहुत पीछे से जब पर्सपेक्टिव मिलता है, दूरी मिलती है, तब तय होता है।

ठीक युद्ध के घने क्षण में अर्जुन का मन बहुत चिंतित हो उठा है। कुछ साफ नहीं है, क्या हो रहा है, वह कहा तक ठीक हो रहा है। और फिर अगर यह भी तय हो कि आततायी वही हैं, तो भी उस तरफ सारे प्रियजन खड़े हैं। होगा, दुर्योधन आततायी होगा! लेकिन द्रोण? द्रोण आततायी नहीं हैं। दुर्योधन आततायी होगा, लेकिन भीष्म? भीष्म आततायी नहीं हैं, उनकी गोद में ये सब बच्चे बड़े हुए हैं। दुश्मन एक नहीं है, दुश्मन एक बड़ी जमात है। उस जमात में तय करना कठिन है। यही चिंता का कारण है।

मनु जो नियम बना रहे हैं, वे बहुत साधारण हैं, साधारणतया उपयोगी हैं। लेकिन इस विशेष स्थिति में मनु काम नहीं करेंगे। कर भी सकते थे, कर सकते थे एक ही हालत में कि अर्जुन इस स्थिति को झुठलाना चाहता, तो कहता, मनु का हवाला देता, कि ठीक है मनु ने कहा है, आततायी को मारो, मारते हैं। लेकिन वह कोई बहुत बड़ा विचारपूर्ण कदम न होता। और एक तो बात पक्की थी कि विचारपूर्ण इसलिए भी न होता कि यह गीता आपको उपलब्ध न होती। यह गीता उपलब्ध हो सकी है अर्जुन के मंथन से, मनन से, उसकी विचारणा से, उसकी जिज्ञासा से। चीजों को सीधा स्वीकार कर लिया होता, तो ठीक था, युद्ध होता, कोई जीतता, कोई हारता। युद्ध होता है तो कोई जीतता है, कोई हारता है। कहानी बनती है, कथा बनती है।

महाभारत उतना महत्वपूर्ण सिद्ध नहीं हुआ है, जितनी गीता महत्वपूर्ण सिद्ध हुई है। महाभारत तो हुआ और समाप्त हो गया। गीता का समाप्त होना मुश्किल है। महाभारत तो एक घटना रह गई है। और समय बीतता जाता है और भूलता चला जाता है। बल्कि सच तो यह है कि महाभारत याद ही इसलिए रह गया कि उसमें गीता भी घटी, नहीं तो महाभारत याद रहने जैसा भी नहीं था।

हजारों युद्ध हुए हैं। आदमी ने तीन हजार साल में चौदह हजार युद्ध किए हैं। लेकिन युद्ध, ठीक है, एक छोटा—सा फुटनोट बन जाता है इतिहास में। लेकिन युद्ध से भी बड़ी घटना गीता बन गई है। वह महाभारत का जो युद्ध था, उससे भी महत्वपूर्ण घटना गीता बन गई है। आज अगर महाभारत याद है, तो गीता के कारण याद है; गीता महाभारत के कारण याद नहीं है।

और इसलिए यह भी आपसे कहना चाहूंगा, इस जगत में घटनाओं का मूल्य नहीं, इस जगत में विचारणाओं का मूल्य है।

इस जगत में इवेंट्स, घटनाएं घटती हैं और राख हो जाती हैं। और विचार शाश्वत यात्रा पर निकल जाते हैं। घटनाएं मर जाती हैं, उन घटनाओं के बीच अगर किसी विचार का, किसी आत्मवान विचार का जन्म हुआ, तो वह अनंत की यात्रा पर निकल जाता है।

महाभारत महत्वपूर्ण नहीं है। न भी हुआ हो तो क्या फर्क पड़ता है! लेकिन गीता न हुई हो तो बहुत फर्क पड़ता है। महाभारत एक छोटी—सी घटना हो गई। और जैसे समय आगे बढ़ता जाएगा, छोटी होती जाएगी। एक परिवार के भाइयों का, चचेरे भाइयों का झगडा था। हो गया, निपट गया। उनकी बात थी, समाप्त हो गई। लेकिन गीता रोज—रोज महत्वपूर्ण होती चली गई है। यह हो सकी महत्वपूर्ण इसलिए कि अर्जुन के पास मनु को मान लेने जैसी साधारण बुद्धि नहीं थी। अर्जुन के पास एक प्रतिभा थी, जो पूछती है, जो संकट में सवाल उठाती है।

आमतौर से संकट में सवाल उठाना बहुत कठिन है। घर में बैठकर गीता पढना और सवाल उठाना बहुत आसान है। अर्जुन की स्थिति में सवाल उठाना बहुत जोखम से भरा काम है। वह स्थिति सवाल की नहीं है। वह स्थिति कोई ब्रह्म—जिज्ञासा की नहीं है, वह स्थिति कोई गुरु—शिष्य वृक्ष के नीचे बैठकर चिंतन—मनन करें, इसकी नहीं है। युद्ध द्वार पर खड़ा है। हुंकारे हो गई हैं, शंख बज गए हैं और इस क्षण में उस आदमी के मन में कंपन हैं। हिम्मतवर आदमी है। कंपन को उस युद्ध के बीच स्थल में प्रकट करता है और वहा भी सोच—विचार करता है। इतने संकट में जो सोच—विचार करता है, वह साधारण प्रतिभा नहीं है। मनु से काम न चलेगा, उसे कृष्ण जैसा आदमी। मनु वहा होते तो वे कहते कि पढ़ लो मेरी मनुस्मृति, उसमें लिखा कि आततायी को मारो, कर्तव्य स्पष्ट है।

कर्तव्य सिर्फ नासमझों को सदा स्पष्ट रहा है, समझदारों को कभी स्पष्ट नहीं रहा। समझदार सदा संदिग्ध रहे हैं। क्योंकि समझदार इतना सोचता है और अक्सर दोनों पहलुओं पर सोचता है कि मुश्किल में पड़ जाता है कि कौन सही है, कौन गलत है! गलत और सही की स्पष्टता अज्ञानियों को जितनी होती है, उतनी लोगों को नहीं होती।

अज्ञानी के लिए सब साफ होता है, यह गलत है, वह सही है। यह हिंदू है, वह मुसलमान है। यह अपना है, वह पराया है। लेकिन जितना चिंतन आगे बढ़ता है, उतना ही संदेह खड़ा होता है। कौन अपना, कौन पराया? क्या ठीक, क्या गलत? और इस जगत में जो भी मूल्यवान पैदा हुआ है, वह इस चिंतन की पीड़ा के प्रसव को जिन्होंने सहा है, उनसे पैदा हुआ है। अर्जुन ने कष्ट सहा है उस घड़ी में, उस कष्ट के परिणाम में गीता प्रतिसंवेदित हुई है।

नहीं, मनु से काम नहीं चल सकता। उतने जड़ नियम सड़क पर टैरफिक के नियम जैसे हैं कि बाएं चलना चाहिए। बिलकुल ठीक है। इसमें कोई अड़चन नहीं है। उलटा कर लें कि दाएं चलना चाहिए, तो भी कोई तकलीफ नहीं है। अमेरिका में उलटा चलते हैं, लिखा है दाएं चलना चाहिए, तो आदमी दाएं चल रहा है। बाएं चलें, दाएं चलें, तय कर लेने से काम चल जाता है।

लेकिन ये कोई जीवन के परम आधार नहीं हैं। और अगर कोई आदमी सवाल उठाए कि बाएं चलने में ऐसी कौन—सी खूबी है, दाएं क्यों न चला जाए! तो दुनिया में कोई नहीं समझा पाएगा। यह सिर्फ व्यवस्थागत है। और अगर कोई बहुत विचारशील आदमी हो और सवाल उठाए कि बाएं क्या है और दाएं क्या है, तो मुश्किल खड़ी हो जाएगी। कामचलाऊ है।

मनु की जो व्यवस्था है, अत्यंत कामचलाऊ है। कामचलाऊ व्यवस्था के ऊपर प्रश्न उठ रहे हैं अर्जुन के मन में। उसके प्रश्न परम हैं। वह यह पूछ रहा है कि मिल जाएगा राज्य इतनों को मारकर, अपनों को मारकर—क्या होगा अर्थ? क्या होगा प्रयोजन? माना कि जीत जाऊंगा, क्या होगा? माना कि वे आततायी हैं, काट डालेंगे उन्हें, बदला पूरा हो जाएगा—फिर क्या होगा? बदले का क्या अर्थ है? और न मालूम कितने निहत्थे मर जाएंगे, न मालूम कितने निर्दोष मर जाएंगे, जिनका कोई संबंध नहीं है, जो युद्ध में घसीटकर ले आए गए हैं, क्योंकि उनका कहीं कोई संबंध है—उन सबका क्या होगा?

नहीं, उसके प्रश्न ज्यादा कीमती हैं, मनु से काम नहीं चल सकता है।

तस्मान्नार्हा वयं हन्तुं धार्तराष्ट्रान्स्पबान्धवान्।
स्वजनं हि कथं हत्या सुखिन: स्याम माधव ।।37।।

यद्यप्येते न पश्यन्ति लोभोयहतचेतस: ।
कुलक्षक्कृतं दोषं मित्रदोहे च यातकम् ।।38।।

इससे हे माधव अपने बांधव धृतराष्ट्र के पुत्रों को मारने के लिए हम योग्य नहीं है, क्योंकि अपने कुटुंब की मारकर हम कैसे सुखी होंगे? यद्यीय लोभ से भ्रष्टचित्त हुए ये लोग कुल के नाशकृत दोष को और मित्रों के साथ विरोध करने में पाप को नहीं देखते हैं।

कथं न ज्ञेयमस्माभिः पापादस्मान्निवर्तितुम् ।
कुलक्षयकृतं दोषं प्रपश्यीद्धर्जनार्दन ।।39।।

कलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्मा: सनातन ।
धर्म नष्टे कृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्यत ।।40।।

परंतु हे जनार्दन कुल के नाश करने से होते हुए दोष को जानने वाले हम लोगों को इस पाप से हटने के लिए क्यों नहीं विचार करना चाहिए? क्योंकि कुल के नाश होने से सनातन कुलधर्म नष्ट हो जाते हैं। धर्म के नाश होने से संपूर्ण कुल को पाय भी बहुत दबा लेता है।

अर्जुन कह रहा है कि वे विचारहीन हैं, हम भी विचारहीन होकर जो करेंगे, वह कैसे शुभ होगा! माना कि वे गलत हैं, लेकिन गलत के प्रत्युत्तर में हम भी गलत करेंगे, तो क्या वह ठीक होगा! क्या एक गलत का प्रत्युत्तर दूसरे गलत से दिए जाने पर सही का निर्माण करता है! वह यह पूछ रहा है कि भूल है उनकी, तो हम भी भूल करेंगे, तो दो भूलें मिलकर ठीक हो जाती हैं कि दुगुनी हो जाती हैं! माना कि उनका चित्त भ्रमित हो गया है, माना कि उनकी बुद्धि नष्ट हुई है, तो क्या हम भी अपनी बुद्धि नष्ट कर लें! और जो मिलेगा, क्या वह इस योग्य है! क्या उसकी इतनी उपादेयता है! क्या उसका इतना मूल्य है!

ध्यान रखें, इसमें अर्जुन के मन में दोहरी बात चल रही है। एक ओर वह कह रहा है कि क्या इसका कोई मूल्य है! इसमें दो बातें हैं। हो सकता है कोई मूल्य हो और कृष्ण उसे मूल्य बता पाएं, तो वह लड़ने के लिए रेशनलाइज कर ले। हो सकता है, कृष्ण समझा पाएं कि ही मूल्य है, हो सकता है, कृष्ण समझा पाएं कि लाभ है, कल्याण है, हो सकता है, कृष्ण समझा पाएं कि बुराई को बुराई से काट दिया जाएगा, और तब जो शेष बचेगा वह शुभ होगा—तो वह लड़ने के लिए अपने को तैयार कर ले। आदमी अपने को तैयार करने के लिए बुद्धिगत कारण खोजना चाहता है।

अर्जुन के मन में दोनों बातें हैं। वह जिस तरह से प्रश्न को मौजूद कर रहा है, वह यह है कि या तो मुझे भाग जाने के लिए स्वीकृति दें, या तो मैं एस्केप कर जाऊं. और या फिर मैं युद्ध में उतरूं तो मुझे प्रयोजन स्पष्ट करा दें। वह अपने मन को साफ कर लेना चाहता है। युद्ध में उतरे, तो यह जानकर निश्चितमना, कि जो हो रहा है, वह शुभ हो रहा है। या फिर युद्ध से भाग जाए। ये दो विकल्प उसे दिखाई पड़ रहे हैं। वह दोनों के लिए राजी दिखाई पड़ता है, दो में से कोई भी एक हो जाए।

इसे थोड़ा समझ लेने जैसा है। आदमी सदा से अपने को बुद्धिमान, विचारशील, रेशनल समझता रहा है। अरस्तु ने तो आदमी को रेशनल एनिमल ही कहा है; कहा है कि बुद्धिमान प्राणी है। लेकिन जैसे —जैसे आदमी के संबंध में समझ हमारी बढ़ी है, वैसे—वैसे पता चला है कि उसकी बुद्धिमानी सिर्फ अपनी अबुद्धिमानियों को बुद्धिमानी सिद्ध करने से ज्यादा नहीं है। आदमी का रीजन, सिर्फ उसके भीतर जो इर्रेशनल है, जो बिलकुल अबौद्धिक है, उसको जस्टिफाई करने की कोशिश में लगा रहा है।

अगर उसे युद्ध करना है, तो पहले वह सिद्ध कर लेना चाहेगा कि युद्ध से मंगल होगा, कल्याण होगा, फिर युद्ध में उतर जाएगा। अगर उसे किसी की गर्दन काटनी है, तो वह पहले सिद्ध कर लेना चाहेगा कि जिसकी गर्दन कट रही है, उसके ही हित में यह कार्य हो रहा है, तब फिर वह गर्दन आसानी से काट सकेगा। अगर उसे आग लगानी है तो वह तय कर लेना चाहेगा कि इस आग लगाने से धर्म की रक्षा होगी, तो वह आग लगाने के लिए तैयार हो जाएगा। आदमी ने, उसके भीतर जो बिलकुल अबौद्धिक तत्व हैं, उनको भी बुद्धिमानी से सिद्ध कर लेने की निरंतर चेष्टा की है।

अर्जुन भी वैसी ही स्थिति में है। उसके भीतर लड़ने की तैयारी तो है, अन्यथा इस युद्ध के मैदान तक आने की कोई जरूरत न थी। उसके मन के भीतर युद्ध का आग्रह तो है। राज्य वह लेना चाहता है। जो हुआ है उसके साथ, उसका बदला भी चुकाना चाहता है। इसीलिए तो युद्ध के इस आखिरी क्षण तक आ गया है। लेकिन वैसी तैयारी नहीं है, जैसी दुर्योधन की है, जैसी भीम की है। पूरा नहीं है। मन बंटा हुआ है, स्प्लिट है, टूटा हुआ है। कहीं भीतर लग भी रहा है कि गलत है, व्यर्थ है, और कहीं लग भी रहा है कि करना ही पड़ेगा, प्रतिष्ठा का, अहंकार का, कुल का, हजार बातों का सवाल है। दोनों बातें उसके भीतर चल रही हैं। दोहरा उसका मन है, डबल बाइंड है।

और ध्यान रहे, विचारशील आदमी में सदा ही दोहरा मन होता है। विचारहीन में दोहरा मन नहीं होता। निर्विचार में भी दोहरा मन नहीं होता, लेकिन विचारशील आदमी में दोहरा मन होता है। विचारशील आदमी का मतलब है, जो अपने भीतर ही निरंतर डायलाग में और डिसकशन में लगा है, जो अपने भीतर ही विवाद में लगा है। अपने को ही दो हिस्सों में करके, क्या ठीक, क्या ठीक नहीं, इसका उत्तर—प्रत्युत्तर कर रहा है। विचारशील आदमी चौबीस घंटे अपने भीतर चर्चा कर रहा है स्वयं से ही।

वह चर्चा अर्जुन के भीतर चलती रही होगी। समझा—बुझाकर वह अपने को युद्ध के मैदान पर ले आया है कि नहीं, लड़ना उचित है। लेकिन युद्ध की पूरी स्थिति का उसे पता नहीं था।

पिछले महायुद्ध में जिस आदमी ने हिरोशिमा पर एटम बम गिराया, उसे कुछ भी पता नहीं है कि क्या होगा! उसे इतना ही पता है कि एक बटन दबा देनी है और नीचे एटम गिर जाएगा। उसे यह भी पता नहीं है कि इस एटम से एक लाख आदमी मरेंगे। उसे कुछ भी पता नहीं है। उसे सिर्फ एक आर्डर है, एक आता है, जो उसे पूरी करनी है। और आज्ञा यह है कि उसे जाकर हवाई जहाज से एक बटन दबा देनी है। हिरोशिमा के ऊपर वह बटन दबाकर लौट आया।

जैसे सारी दुनिया को पता चला, ऐसे ही उसको भी पता चला कि एक लाख आदमी मर गए हैं। फिर उसकी नींद हराम हो गई। फिर वह आदमी रात—दिन लाखों मुर्दे देखने लगा। उसके प्राण थरथराने लगे, कंपने लगे। उसके हाथ—पैर में कंपन होने लगा। फिर तो अंततः उसने हमले करने शुरू कर दिए अपने पर, नाड़ी काट डाली एक दिन, सिर पर हथौड़ी मार ली। फिर तो उसे पागलखाने में रखना पड़ा। फिर तो उसने दूसरों पर भी हमले शुरू कर दिए। फिर तो उसे जंजीरों में रखना पड़ा। उसकी नींद बिलकुल चली गई। और वह आदमी एक ही अपराध की ग्लानि से भर गया, गिल्ट एक ही उसको पकड़ गई कि मैंने लाख आदमी मारे हैं। लेकिन उसे कोई पता नहीं था।

अब जो हमारी युद्ध की व्यवस्था है, बिलकुल इनह्यूमन है। अब उसमें पता नहीं चलता, मारने वाले को भी पता नहीं चलता कि वह लाख आदमियों की मौत का बटन दबा रहा है। लेकिन महाभारत में स्थिति और थी, सब चीजें सामने थीं। युद्ध सीधा मानवीय था, लूमन था। आमने—सामने सब खड़े थे। अर्जुन देख सकता था रथ पर खड़ा होकर कि क्या होगा परिणाम! उसे दिखाई पड़ने लगा, इनमें फलां मित्र है, वह मरेगा, उसके छोटे बच्चे हैं घर पर।

ध्यान रहे, युद्ध अब जो है, वह इनह्युमन हो गया है, अमानवीय हो गया है। इसलिए अब बड़ा ख़तरा है। क्योंकि लड़ने वाले को भी साफ पता नहीं चलता कि क्या होगा! जो हो रहा है, बिलकुल अंधेरे में हो रहा है। और जो आदमी तय करते हैं उसको, उनके पास भी फिगर होते हैं, आदमी नहीं होते हैं, आकड़े होते हैं। उनके पास होता है, एक लाख आदमी मरेंगे। एक लाख आदमी मरेरो, यह सुनकर कुछ भी पता नहीं चलता। एक लाख आदमियों को सामने खडा करिए, खड़े हो जाइए मंच पर, देखिए कि ये एक लाख आदमी मरेंगे! तब इनकी एक लाख पत्नियां भी दिखाई पड़ती हैं, इनके 'लाखों बच्चे भी दिएखाई पड़ते हैं। इनकी की मां भी होंगी, इनके पिता भी होंगे। इनकी न मालूम क्या—क्या जिम्मेवारियां होंगी। इन एक लाख को मारने की जिम्मेवारी अगर हिरोशिमा पर बम डालने वाले को सामने होती, तो मैं भी सोचता हूं कि वह आदमी कहता, इससे मैं मर जाना पसंद करूंगा, यह आज्ञा मैं नहीं मानता। उसके सामने भी सवाल उठता, इनको मारना है, क्या नौकरी के लिए?

अर्जुन को सवाल उठा, सामने था सब चित्र। उसे सब दिखाई पड़ने लगा, ये विधवाएं रोती—बिलखती दिखाई पड़ने लगीं। इनमें न मालूम कितने उसके प्रियजन थे, उनकी विधवाएं होंगी, उनके बच्चे तड़फेंगे, रोके। यह सब लाशों से भर जाएगा मैदान। यह इतना साफ उसे दिखाई पड़ा कि अपने को समझा—बुझाकर लाया था कि लड़ना उचित है, वह सब डावाडोल हो गया। उसके दूसरे मन ने कहना शुरू किया कि यह तू क्या करने जा रहा है! यह तो पाप होगा। इससे बड़ा पाप और क्या हो सकता है? और इसलिए कि राज्य मिल जाए, और इसलिए कि धन मिल जाए, और इसलिए कि थोड़ा सुख मिल जाए, इन सबको मारने की तेरी तैयारी है?

निश्चित ही वह विचारशील आदमी रहा होगा। उसके मन ने इनकार करना शुरू कर दिया। लेकिन इनकार में दूसरा मन भीतर बैठा हुआ है। और वह दूसरा मन भी बोल रहा है कि अगर कोई रेशनलाइजेशन मिल जाए, अगर मिल जाए कि नहीं, इसमें कोई हर्ज नहीं है, यह उचित है बिलकुल, यह औचित्य मालूम पड़ जाए, तो वह अपने को इकट्ठा कर ले, एकजुट कर ले, युद्ध में उतर जाए। कृष्ण से पूछते वक्त अर्जुन को भी पता नहीं है कि उत्तर क्या मिलेगा? और कृष्ण से पूछते वक्त अर्जुन को भी साफ नहीं है कि स्थिति बाद में क्या बनेगी? कृष्ण जैसे आदमी प्रिडिक्टेबल नहीं होते। कृष्ण जैसे आदमियों के उत्तर निश्चित नहीं होते, रेडीमेड नहीं होते। कृष्ण जैसे आदमी के साथ पक्का नहीं है कि वे क्या कहेंगे! लेकिन अर्जुन के साथ पक्का है कि वह दो बातें चाह रहा है। या तो यह सिद्ध हो जाए कि यह युद्ध उचित है, नीतिसम्मत है, धार्मिक है, लाभ होगा, कल्याण होगा, श्रेयस मिलेगा, इस लोक में, परलोक में सुख मिलेगा, तो वह युद्ध में कूद जाएगा। और अगर यह सिद्ध हो जाए कि नहीं हो सकता, तो युद्ध से भाग जाए। उसके सामने दो विकल्प स्पष्ट हैं। और उन दोनों के बीच उसका मन डोल रहा है, और दोनों के बीच उसके भीतर मन का बंटाव है। लड़ना भी चाहता है! अगर उसका मन लड़ना ही न चाहता हो, तो कृष्ण से पूछने की कोई भी जरूरत नहीं है।

अभी मैं एक गांव में था। एक युवक मेरे पास आए और उन्होंने मुझ से पूछा कि मैं संन्यास लेना चाहता हूं। आपकी क्या सलाह है? मैंने कहा, जब तक मेरी सलाह की जरूरत हो, तब तक तुम संन्यास मत लेना। क्योंकि संन्यास कोई ऐसी बात नहीं है कि मेरी सलाह से लिया जा सके। जिस दिन तुम्हें ऐसा लगे कि सारी दुनिया भी कहे कि संन्यास मत लो, तब भी तुम्हें लेने जैसा लगे, तभी तुम लेना। तो ही संन्यास के फूल में आनंद की सुगंध आ सकेगी, अन्यथा नहीं आ सकेगी।

वह अर्जुन सलाह नहीं मांगता, अगर उसको साफ एक मन हो जाता कि गलत है, चला गया होता। उसने कृष्ण से कहा होता कि सम्हालो इस रथ को, ले जाओ इन घोड़ों को जहां ले जाना हो, और जो करना हो करो, मैं जाता हूं। और कृष्ण कहते कि मैं कोई सलाह देता हूं तो वह कहता कि बिना मांगी सलाह न दुनिया में कभी मानी गई न मानी जाती है। अपनी सलाह अपने पास रखें।

नहीं, लेकिन वह सलाह मांग रहा है। सलाह मांग रहा है, वही बता रहा है कि उसका दोहरा मन है। अभी उसको भी भरोसा है कि कोई सलाह मिल जाए तो युद्ध कर ले, यह भरोसा है उसके भीतर। इसलिए कृष्ण से पूछ रहा है। अगर यह भी पक्का होता कि युद्ध करना उचित है, तब कृष्ण से कोई सलाह लेने की जरूरत न थी, युद्ध की सब तैयारी हो गई थी।

अर्जुन डांवाडोल है, अर्जुन बंटा है, इसलिए वह सारे सवाल उठा रहा है। उसके सवाल महत्वपूर्ण हैं। और जो आदमी भी थोड़ा विचार करते हैं, उन सबकी जिंदगी में ऐसे सवाल रोज ही उठते हैं—जब मन बंट जाता है, और दोहरे उत्तर एक साथ आने लगते हैं, और सब निर्णय खो जाते हैं। अर्जुन संशय की अवस्था में है, डिसीसिवनेस खो गई है।

जब भी आप किसी से सलाह मांगते हैं, तब वह सदा ही इस बात की खबर होती है कि अपने पर भरोसा खो गया है, सेल्फ कांफिडेंस खो गया है। अब अपने से कोई आशा नहीं उत्तर की। क्योंकि अपने से दो उत्तर एक—से बलपूर्वक आ रहे हैं, एक—सी एम्फेसिस लेकर ला रहे हैं। दोनों में तय करना मुश्किल है। कभी एक ठीक, कभी दूसरा ठीक मालूम पड़ता है। तभी आदमी सलाह मांगने जाता है। जब भी कोई आदमी सलाह मागने जाता है, तब जानना चाहिए, वह भीतर से इतना बंट गया है कि अब उसके भीतर से उसे उत्तर नहीं मालूम पड़ रहा है। ऐसी उसकी दशा है। वह अपनी उसी दशा का वर्णन कर रहा है।

प्रश्न : भगवान श्री, आपने अभी संन्यास के बारे में कुछ कहा। तो यहां जीवन जागृति केंद्र के बुक स्टील पर अभिनव संन्यास योजना नामक एक पुस्तिका भी बिक रही है, तो उसमें कहीं लिखा है कि आप गुरु नहीं गवाह बनते हैं, तो वह भी स्पष्ट करें। और साथ में और भी एक सवाल है। अर्जुन और कृष्ण दोनों युद्ध में खड़े हैं, युद्धारंभ में ही गीता के अठारह अध्याय सुनने में अर्जुन कैसे प्रवृत्त हो सकता है और कृष्ण कैसे गीता—प्रवचन सुनाने को व्यस्त हो सकते हैं? सारी सेनाएं भी वहां मौजूद थीं। तो क्या सब कृष्णार्जुन संवाद, प्रश्नोत्तर सुनने में ही व्यस्त थे २ क्या वह टाइम साइकोलाजिकल टाइम था या कोई दूसरा था?

कृष्ण से इतनी लंबी चर्चा निश्चित ही प्रश्नवाची है। निश्चय ही प्रश्न उठता है। युद्ध के मैदान पर, जहा कि योद्धा तैयार हों लड़ने को, जूझने को, वहां ये अठारह अध्याय, यह इतनी लंबी किताब, अगर कृष्ण ने बिलकुल उस तरह से कही हो, जैसे कि गीता— भक्त दोहराते हैं, तो भी काफी समय लग गया होगा। अगर बिना रुके और बिना अर्जुन की तरफ देखे, आख बंद करके बोलते ही चले गए हों, तब भी काफी वक्त लग जाएगा। यह कैसे संभव हुआ होगा?

दो बातें इस संबंध में। निरंतर यह सवाल गूंजता रहा है। इसलिए कुछ लोगों ने तो यह कह दिया कि गीता महाभारत में प्रक्षिप्त है, वह बाद में डाल दी गई है, यह हो नहीं सकता। कुछ लोगों ने कहा कि वहा संक्षिप्त में बात हुई होगी, फिर उसको विस्तार से बाद में कवि ने फैला दिया है।

दोनों ही बातें मेरे लिए सही नहीं हैं। मेरे लिए तो गीता घटी है, और वैसी ही घटी है जैसी सामने है। लेकिन घटने के क्रम को थोड़ा समझना जरूरी है। यह सारी बातचीत आमने—सामने हुई हो, यह सारी बातचीत जैसे हम और आप बोल रहे हैं, ऐसी हुई हो, तो इसमें कृष्ण और अर्जुन ही भागीदार न रह जाते। इसमें बहुत लोग थे, बड़ी भीड़ थी चारों तरफ। इसमें और लोग भी भागीदार हो गए होते। इसमें और लोगों ने भी सवाल उठाए होते। इसमें और सारे लोग बिलकुल चुप ही खड़े हैं! इस तरफ भी योद्धा हैं, उस तरफ भी योद्धा हैं। यह बात दोनों की चलती है घंटों। इसमें कोई बोला नहीं बीच में! किसी ने इतना भी न कहा कि यह बातचीत का समय नहीं है, युद्ध का समय है, शंख बज चुके हैं, अब यह चर्चा नहीं चलनी चाहिए!

नहीं, कोई नहीं बोला। मेरे देखे, यह चर्चा टेलीपैथिक है, यह चर्चा सीधी आमने—सामने नहीं हुई है। टेलीपैथी थोड़ी समझनी पड़े, तो खयाल में आए, अन्यथा खयाल में नहीं आ पाएगी। एक दो—तीन उदाहरण से समझाने की कोशिश करूंगा।

एक फकीर था अभी यूनान में जार्ज गुरजिएफ। तीन महीने के लिए रूस के एक बहुत बड़े गणितज्ञ आस्पेंस्की और उसके तीस और शिष्यों को लेकर वह तिफलिस के एक छोटे से गांव में जाकर बैठ गया था। इन तीस लोगों को एक बड़े बंगले में उसने कैद कर रखा था। कैद, क्योंकि बाहर निकलने की कोई आज्ञा न थी। और इन तीस लोगों को कहा था कि कोई एक भी शब्द तीन महीने बोलेगा नहीं। न केवल शब्द नहीं बोलेगा, इशारे से भी नहीं बोलेगा, आख से भी नहीं बोलेगा, हाथ से भी नहीं बोलेगा। कहा था कि ये तीस लोग जो इस मकान में रहेंगे तीन महीने, प्रत्येक को पै रहना है, जैसे वह अकेला ही हो, कोई दूसरा मौजूद ही नहीं है। दूसरे को रिकग्नाइज भी नहीं करना है— आख से भी, इशारे से भी। दूसरा आस—पास से निकल जाए, तो देखना भी नहीं है। और गुरजिएफ ने कहा कि जिसको भी मैं पकड़ लूंगा जरा —सा इशारा करते हुए भी, दूसरे को स्वीकार करते हुए भी पकड़ लूंगा कि दूसरा निकल रहा था और तुम बचकर निकले, तो भी मैं बाहर कर दूंगा। क्योंकि तुमने दूसरे को स्वीकार कर लिया कि दूसरा यहां है, बातचीत हो गई, तुम बचकर निकले, इशारा हो गया।

पंद्रह दिन में सत्ताइस आदमी बाहर कर दिए गए।

बड़ा मुश्किल मामला था। जहा तीस आदमी मौजूद हों, एक कमरे में दस—दस, बारह—बारह लोग बैठे हों, वहा दूसरों को बिलकुल भूल ही जाना कि वे हैं ही नहीं, अकेले जीने लगना, कठिन था। इतना कठिन नहीं जितना हम सोचते हैं, क्योंकि तीन आदमी बच ही गए, तीन भी छोटी संख्या नहीं है। इतना कठिन नहीं है, क्योंकि एक आदमी जंगल में बैठकर आख बंद करके भीड़ में हो जाता है, तो भीड़ में बैठकर अकेला क्यों नहीं हो सकता! मन की सभी क्रियाएं रिवर्सिबल हैं। मन की सभी क्रियाएं उलटी हो सकती हैं। अगर जंगल में बैठकर आदमी अपनी पत्नी से बातचीत कर सकता है, तो अपनी पत्नी के पास बैठकर बिलकुल अकेला हो सकता है। इसमें कोई अड़चन नहीं है।

तीन आदमी बच गए, उनमें गणितज्ञ आस्पेंस्की भी था। वह खुद भी एक वैज्ञानिक चिंतक था। और इधर सौ वर्षों में गणित पर शायद सर्वाधिक गहरी किताब उसने लिखी है, टर्शियम आर्गानम। कहते हैं कि यूरोप में तीन बड़ी किताबें लिखी गई हैं अब तक। एक अरस्तू का आर्गानम, फिर बैकन का नोवम आर्गानम, और फिर आस्पेंस्की का टर्शियम आर्गानम। यह बड़ा वैज्ञानिक चिंतक था, यह भी उन तीन में एक बच गया था।

तीन महीने बीत गए। तीन महीने वह ऐसे वहा रहा, जैसे अकेला है। वे कमरों में जो लोग थे, वे तो भूल ही गए; बाहर जो दुनिया थी, वह भी भूल गई। और जो आदमी दूसरों को भूल जाए, वह अपने को भी भूल जाता है, स्मरण रखें। अगर अपने को याद रखना हो, तो दूसरी को याद रखना जरूरी है। क्योंकि मैं और तू एक ही डंडे के दो छोर हैं। इनमें से एक गया कि दूसरा फौरन गया। ये दोनों बचते हैं, या दोनों चले जाते हैं। कोई कहे कि मैं मैं को बचा लूं और तू को : भूल जाऊं, तो असंभव है। क्योंकि मैं जो है, वह तू की ही चोट है, वह तू का ही उत्तर है। अगर तू भूल जाए तो मैं बिखर जाता है। अगर मैं भूल जाए तो तू विदा हो जाता है। वे दो एक साथ बचते हैं, अन्यथा नहीं बचते। वे एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

दूसरे भूल गए, यह तो ठीक था, आस्पेंस्की खुद को भी भूल गया। फिर बचा सिर्फ अस्तित्व। तीन महीने बाद, गुरजिएफ सामने बैठा है और आस्पेंस्की भी सामने बैठा है। अचानक आस्पेंस्की को सुनाई पड़ा कि किसी ने बुलाया है और कहा, आस्पेंस्की, सुनो! उसने चौंककर चारों तरफ देखा, कौन है? लेकिन कोई बोल नहीं रहा है। सामने गुरजिएफ बैठा है। उसने गुरजिएफ को गौर से देखा इन तीन महीनों में। गुरजिएफ हंसने लगा। फिर भीतर से आवाज आई, पहचान नहीं रहे हो मेरी आवाज? मैं गुरजिएफ बोल रहा हूं। सामने ओंठ बंद हैं, वह आदमी चुप बैठा है। आस्पेंस्की बहुत हैरान हुआ। उसने कहा कि मैं यह क्या अनुभव कर रहा हूं? वह पहली दफे तीन महीने में बोला।

गुरजिएफ ने कहा कि अब तुम उस जगह आ गए हो मौन की, जहा बिना शब्द के बातचीत की जा सकती है। अब मैं तुमसे सीधे बोल सकता हूं, शब्दों की अब कोई जरूरत नहीं है।

अभी रूस के एक दूसरे वैज्ञानिक फयादोव ने एक हजार मील दूर बिना किसी माध्यम के संदेश भेजने के प्रयोग में सफलता पाई है। आप भी पा सकते हैं, बहुत कठिन मामला नहीं है। कभी एक छोटा—सा प्रयोग घर में कर लें। छोटे बच्चे को चुन लें। अंधेरा कर।, लें कमरे में, दूसरे कोने में उसे बैठा दें, एक कोने में आप बैठ जाएं। और उस बच्चे से कह दें कि तू आख बंद कर ले और ध्यान मेरी तरफ रख। और सुनने की कोशिश कर कि मैं कुछ बोल तो नहीं रहा हूं। और एक ही शब्द अपने भीतर बार—बार दोहराए चले जाएं गुलाब, गुलाब, गुलाब। बोलें मत, भीतर दोहराए चले जाएं। घंटे, आधा घंटे में वह बच्चा बोलने लगेगा कि आप गुलाब बोल रहे हैं। और आप भीतर ही बोलें, आप बाहर मत बोलें।

इससे उलटा भी हो सकता है, लेकिन जरा देर लगेगी। अगर बच्चा वहा बैठकर अपने मन में एक शब्द सोचे और आप पकड़ना चाहें, तो शायद दो—तीन दिन लग जाएंगे। बच्चा जल्दी पकड़ लेगा। आदमी, जिसको हम जिंदगी कहते हैं, उसमें बिगड़ने के सिवाय और कुछ भी नहीं करता। बूढ़े बिगड़े हुए बच्चों से अतिरिक्त और कुछ भी नहीं होते। लेकिन बच्चा घंटे, आधा घंटे में पकड़ना शुरू कर देगा। एक ही शब्द दोहराएं, और अगर एक पकड लिया जाए तो फिर अभ्यास से पूरा वाक्य पकड़ा जा सकता है।

कृष्ण और अर्जुन के लिए ध्यान में रखना जरूरी है कि यह चर्चा, बाहर हुई चर्चा नहीं है। यह चर्चा गहरी है और यह चर्चा बिलकुल भीतरी है। इसलिए इसमें युद्ध के आसपास खड़े लोग भी गवाह नहीं थे। और इसलिए हो सकता है यह भी कि जिन्होंने महाभारत लिखा, उन्होंने पहले गीता उसमें न जोड़ी हो। यह हो सकता है। यह हो सकता है कि इतिहासकार ने, जिसने लिखी है, उसने न जोड़ी हो, लेकिन संजय सुन पा रहा है। क्योंकि संजय, जो देख पाता है इतनी दूर, वह सुन भी पा सकता है। असल में दुनिया को संजय से पहली दफा गीता सुनने को मिली है, कृष्ण से सुनने को पहली दफा नहीं मिली। पहली दफा अर्जुन ने सुनी है, वह सुनना बहुत भीतरी है। उस सुनने का बाहरी कोई प्रमाण नहीं था।

और दूसरी बात आपसे कहना चाहूंगा कि यह टेलीपैथिक कम्युनिकेशन है। गीता एक अंतर्सवाद है, जिसमें शब्दों का ऊपर प्रयोग नहीं हुआ है। महावीर के संबंध में कहा जाता है कि वे कभी नहीं बोले। और जितने उनके शब्द हैं, वे उन्होंने नहीं बोले।? पास लोग खड़े रहते थे, महावीर उनसे बोलते—ऊपर से क्योंकि हजारों लोग सुनने आए होते, उनको कुछ सुनाई पड़ता—फिर वह आदमी जोर से बोलता कि महावीर ऐसा कहते हैं।

इसलिए महावीर की वाणी को शून्य वाणी, शब्दहीन वाणी? गया है। उन्होंने सीधा कभी नहीं बोला। किसी से भीतर से बोला और किसी ने उसे बाहर प्रकट किया। करीब—करीब ऐसे ही इस माइक से मैं बोल रहा हूं और आप सुन रहे हैं। माइक की एक आदमी का भी उपयोग हो सकता है। कृष्ण और अर्जुन के बीच जो बात हुई थी, अगर संजय ने सुनी होती तो खो गई होती। बहुत—सी और बातें भी बहुत बार हैं और खो गई हैं। महावीर के बहुत वचन उपलब्ध नहीं हैं।

बुद्ध ने एक दिन अपने सारे भिक्षुओं को इकट्ठा किया। और हा में एक कमल का फूल लेकर वे वहा आए। फिर बैठ गए और कमल के फूल को देखने लगे और देखते रहे। लोग हैरान हो

थोड़ी देर में बेचैनी शुरू हो गई, कोई खासा होगा, किसी ने करवट बदली होगी, क्योंकि बहुत देर हो गई। वे चुप क्यों बैठे हैं! बोलें! बोलें, बोलें। फिर आखिर आधा घंटा बीतने लगा, तो बेचैनी बहुत बढ़ गई। किसी ने खड़े होकर कहा, आप क्या कर रहे हैं? आपको सुनने आए हैं। आप बोलते नहीं! बुद्ध ने कहा, मैं? रहा हूं, सुनो, सुनो। लेकिन लोगों ने कहा, आप कुछ बोलते क्या क्या सुनें?

तभी एक भिक्षु, जिसका नाम था महाकाश्यप, वह हंसने लगा तो बुद्ध ने उसे बुलाकर वह फूल दे दिया। और कहा कि सुनो, शब्द से बोला जा सकता था, वह मैं तुमसे कह चुका, और शब्द से नहीं बोला जा सकता था, भीतर ही बोला जा सकता था, वह मैंने महाकाश्यप से कह दिया है। अब तुम्हें पूछना हो महाकाश्यप से पूछ लेना।

महाकाश्यप से बुद्ध ने क्या कहा, यह अब तक बुद्ध के भिक्षु पूछते हैं एक—दूसरे से। क्योंकि वह महाकाश्यप से जब भी? ने पूछा, तो वह हंसने लगा और उसने कहा, जब बुद्ध न कह सके, तो मैं क्यों उपद्रव में पड़ूं! उसने कहा कि कहना होता तो बुद्ध तुम से कह देते। और जब वे भूल—चूक नहीं किए, तो मैं करने वाला नहीं हूं।

फिर महाकाश्यप ने किसी को फिर मौन से कहा, फिर आदमी ने भी किसी से नहीं कहा—और ऐसे छ: आदमियों की परंपरा। और तब छठवां आदमी था बोधिधर्म, उसने पहली दफा उस बात को कहा। इस बीच कोई नौ सौ वर्ष बीत गए। बोधिधर्म ने पहली दफे वह कहा, जो बुद्ध ने महाकाश्यप से कहा था। और उसने क्यों कहा? क्योंकि जब बोधिधर्म ने चीन में पहली दफे जाकर कहा कि अब मैं वह कहता हूं जो बुद्ध ने महाकाश्यप से कहा था, तो लोगों ने कहा, अब तक किसी ने नहीं कहा, तुम क्यों कहते हो! तो उसने कहा कि अब चुपचाप सुनने वाला कोई भी उपलब्ध नहीं है। इसलिए मजबूरी है और मैं मरने के करीब हूं। वह बात खो जाएगी जो बुद्ध ने महाकाश्यप से कही थी। अब जितनी भी गलत—सही मुझसे बन सकती है, मैं कहे देता हूं।

यह एक घटना है। इसलिए पहली बात आपसे कहूं, गीता कृष्ण और अर्जुन के बीच मौन—संवाद में घटी है। दूसरी बात आप से कहूं कि मौन—संवाद का टाइम—स्केल अलग है। इसे समझना भी जरूरी होगा। नहीं तो आप कहेंगे कि मौन—संवाद में भी तो कम से कम घंटे, डेढ़ घंटे, दो घंटे तो लगते ही। क्योंकि इससे क्या फर्क पड़ता है कि मैं आपसे ऊपर से कहूं कि भीतर से कहूं; समय तो लगेगा! तब आपको थोड़ा समय के स्केल को, समय की सारणी को समझना पड़ेगा।

आपको कभी एक दफा कुर्सी पर बैठे—बैठे झपकी लग जाती है और आप एक सपना देखते हैं। और सपने में देखते हैं कि आपकी शादी हो गई, घर बस गया, नौकरी लग गई, मकान खरीद लिया, बच्चे हो गए, बच्चे बड़े हो गए, शहनाई बज रही है, लड़के की शादी हो रही है। और तभी कोई आपको बगल से आपका आफिसर आकर उठाता है। और आप घड़ी में देखते हैं, और पाते हैं कि मुश्किल से एक मिनट बीता है झपकी लगे। तब बड़ी मुश्किल होती है कि एक मिनट में इतना लंबा उपद्रव कैसे हुआ होगा! आधी जिंदगी लग जाती है इतना उपद्रव करने में। तीस—चालीस साल लग जाते हैं, यह एक मिनट में कैसे हुआ? लेकिन बिलकुल हुआ।

असल में ड्रीम—टाइम अलग है। उसका स्केल अलग है। स्वप्न की जो समय की धारणा है, बिलकुल अलग है। इसलिए एक मिनट के सपने में जिंदगीभर के सपने देखे जा सकते हैं। एक मिनट में पूरी जिंदगी देखी जा सकती है।

आमतौर से लोग कहते हैं कि जब कोई नदी में डूबकर मरता है, तो आखिरी डुबकी में अपनी पूरी जिंदगी को फिर से देख लेता है। देख सकता है, इसमें कोई बहुत कठिनाई नहीं है। समय अलग है स्वप्न का, जागने का समय अलग है। लेकिन जागने में भी समय का स्केल चौबीस घंटे एक—सा नहीं रहता। उसमें पूरे वक्त बदलाहट होती रहती है, वह फ्लिकर करता है।

जैसे जब आप दुख में होते हैं तो समय लंबा हो जाता है, और जब सुख में होते हैं तो छोटा हो जाता है। कोई प्रियजन पास आकर बैठ जाता है, घंटा बीत जाता है, लगता है, अभी तो आए थे, क्षणभर हुआ है। और कोई दुश्मन आकर बैठ जाता है, और क्षणभर भी नहीं बैठता है कि ऐसा लगता है, कब जाएगा! जिंदगी बीती जा रही है। घड़ी में तो उतना ही समय चलता है, लेकिन आपके मन के समय की धारणा पूरे वक्त छोटी—बडी होती रहती है।

घर में कोई मर रहा हो, रातभर उसकी खाट के पास बैठें तो ऐसा लगेगा कि इटरनिटी हो गई, अनंत मालूम पडता है। अनंत मालूम पड़ता है। रात खतम होती नहीं मालूम पड़ती। कब होगी खतम! लेकिन वही कोई अपने प्रियजन के साथ नृत्य कर रहा है, और रात ऐसे भागने लगती है कि आज रात दुश्मन है और जल्दी कर रही है। और रात जल्दी से भाग जाती है और सुबह आ जाती है। और ऐसा लगता है, सांझ और सुबह के बीच में कोई वक्त ही नहीं था। बस, सांझ आई और सुबह आ गई। बीच का वक्त गिर जाता है।

सुख में समय छोटा मालूम होता है। छोटा हो जाता है, मालूम होता नहीं, हो ही जाता है। दुख में बड़ा हो जाता है। दिन में भी, जागते में भी समय पूरे वक्त बदल रहा है। और अगर कभी आनंद का अनुभव किया हो, तो समय समाप्त हो जाता है।

जीसस से किसी ने पूछा कि तुम्हारे प्रभु के राज्य में खास बात क्या होगी? तो जीसस ने कहा, देयर शैल बी टाइम नो लांगर—समय नहीं होगा। खास बात यह होगी। तो उन्होंने पूछा कि यह हमारी समझ में नहीं आता कि समय नहीं होगा, तो फिर सब काम कैसे चलेगा!

आनंद के क्षण में समय नहीं होता। अगर कभी ध्यान का एक क्षण भी आपके भीतर उतरा है, कभी आनंद का एक क्षण भी आपको नचा गया है, तो उस वक्त समय नहीं होता, समय समाप्त हो गया होता है। इस संबंध में दुनिया के वे सारे लोग सहमत हैं—चाहे महावीर, चाहे बुद्ध, चाहे लाओत्से, चाहे जीसस, चाहे मोहम्मद, चाहे कोई और—वें सब राजी हैं कि वह जो क्षण है आत्म—अनुभव का, आनंद का, ब्रह्म का, वह टाइमलेस मोमेंट है; वह समयरहित क्षण है; वह कालातीत है।

तो जो टेलीपैथी का समय है, उसके स्केल अलग हैं। क्षणभर में भी यह बात हो सकती है, जिसके लिए डेढ़ घंटा लिखने में लगता।

आपने क्षणभर में जो सपना देखा है, अगर लिखिएगा तो आपको डेढ़ घंटा लगेगा। आप कहेंगे, बड़ी अजीब बात है। देखा क्षणभर में और लिखने में डेढ घंटा लग रहा है! क्या कारण है? क्या वजह है?

तीसरी बात इसलिए और आपको खयाल में दे दूं। वजह यह है कि जब आपके भीतर कोई घटना घटती है, तब वह साइमलटेनियस घटती है, वह युगपत घटती है। जैसे मैं आपको देख रहा हूं तो मैं आपको इकट्ठा देख रहा हूं एक ही क्षण में। लेकिन अगर आपकी गिनती करने आऊं, तो एक—एक की गिनती करूंगा। और तब लीनियर हो जाएगा; एक रेखा में मुझे आपकी गिनती करनी पड़ेगी; उसमें घंटों लग जाएंगे। आपको जब देखा,तो मैंने सबको देखा आपको। वह एक क्षण में एक साथ हो गया। लेकिन जब गिना और कहीं आपके नाम लिखूं रजिस्टर पर, तो बहुत घंटे लग जाएंगे।

तो जब आप सपने को देखते हैं, तो युगपत घट जाता है। जब आप उसको लिखते हैं कागज पर, तब आप लंबाई में लिखते हैं, युगपत नहीं रह जाता। एक—एक घटना लिखनी पड़ती है। तब वह लंबी हो जाती है, समय ज्यादा ले लेती है।

गीता जब लिखी गई या संजय ने जब कही धृतराष्ट्र को कि ऐसी—ऐसी बात हो रही है वहा कृष्ण और अर्जुन के बीच, तब उसमें वक्त लगा होगा उतना ही जितना वक्त अभी गीता पढ़ते वक्त आपको लगेगा—उतना ही। लेकिन कृष्ण और अर्जुन के बीच समय कितना लगा, यह तब तक आपको खयाल में आना मुश्किल है, जब तक आपको टेलीपैथी का थोड़ा—सा अनुभव न हो।

हमारे हिसाब से समय का कोई मूल्य नहीं है वहां। इसलिए हो सकता है, किसी भी योद्धा को पता भी न चला हो कि कृष्ण और अर्जुन के बीच क्या घटा! एक क्षण में हो गया हो। रथ जाकर खड़ा हुआ हो, अर्जुन निढाल होकर बैठ गया हो और एक क्षण में यह सारी बात हो गई हो, जो हुई है।

एक छोटी—सी कहानी, फिर हम दूसरा श्लोक लें।

सुना है मैंने, नारद के जीवन में एक कहानी है। 'यह जगत माया है, यह जगत माया है—बड़े—बड़े ज्ञानियों से नारद ने सुना है। फिर स्वयं भगवान से जाकर उन्होंने पूछा कि मेरी समझ में नहीं आता, जो है, वह माया कैसे हो सकता है? जो है, वह है! वह माया कैसे हो सकता है? उसके इलूजरी,उसे माया होने का क्या मतलब है? धूप तपती है तेज,आकाश में सूरज है, दोपहर है।

भगवान ने कहा कि मुझे बड़ी प्यास लगी है—फिर पीछे समझाऊं—थोड़ा पानी ले आ।

नारद पानी लेने गए। गांव में प्रवेश किया। दोपहर है, लोग अपने घरों में सो रहे हैं। एक दरवाजे पर दस्तक दी। एक युवती बाहर आई। नारद भूल गए भगवान को। कोई भी भूल जाए। जिसको सदा याद किया जा सकता है, उसको याद करने की इतनी जल्दी भी क्या है! भूल गए। और जब भगवान को ही भूल गए, तो उनकी प्यास का क्या सवाल रहा! किसलिए आए थे, याद न रहा। लड़की को देखते रहे, मोहित हो गए। निवेदन किया कि मैं विवाह का प्रस्ताव लेकर आया हूं। पिता बाहर थे। उस लड़की ने कहा, पिता को आ जाने दें, तब तक आप विश्राम करें।

विश्राम किया। पिता आए। राजी हो गए। विवाह हो गया। फिर चली कहानी। बच्चे हुए, चार—छह बच्चे पैदा हो गए। काफी वक्त लगा। पिता मर भी गया, ससुर मर भी गए। के हो गए नारद। पत्नी भी की हो गई, बच्चों की लाइन लग गई। बाढ़ आ गई। वर्षा के दिन हैं। गांव डूब गया। अब अपने पत्नी—बच्चों को बचाकर किसी तरह बाढ़ पार कर रहे हैं। के हैं, शक्ति नहीं है पास। बड़ी मुश्किल में पड़ गए हैं। पत्नी को बचाते हैं, तो बच्चे बहे जाते हैं; बच्चों को बचाते हैं, तो पत्नी बही जाती है। बाढ़ है तेज और सबको बचाने में सब बह जाते हैं। नारद अकेले थके—मांदे तट पर जाकर लगते हैं। आंखें बंद हैं, आंसू बह रहे हैं। और कोई पूछता है कि उठो, बड़ी देर लगा दी, सूरज ढलने के करीब हो गया और हम प्यासे ही बैठे हैं। पानी अब तक नहीं लाए?

नारद ने आख खोली, देखा, भगवान खड़े हैं। उन्होंने कहा, अरे, मैं तो भूल ही गया। मगर इस बीच तो बहुत कुछ हो गया। आप कहते हैं, अभी सिर्फ सूरज ढल रहा 'है? उन्होंने कहा, सूरज ही ढल रहा है। चारों तरफ देखा, बाढ़ का कोई पता नहीं है। पूछा, बच्चे—पत्नी? भगवान ने कहा, कैसे बच्चे, कैसी पत्नी? कोई सपना तो नहीं देखते थे? भगवान ने कहा कि तुम पूछते थे कि जो है, वह माया कैसे हो सकता है? जो है, वह माया नहीं है। लेकिन जो है, उसे समय के माध्यम से देखने से वह सब माया हो जाता है। और जो है, उसे समय के अतिरिक्त, समय का अतिक्रमण करके देखने से वह सब सत्य हो जाता है। संसार समय के माध्यम से देखा गया सत्य है। सत्य समय—शून्य माध्यम से देखा गया संसार है।

यह जो घटना घटी है, यह घटना आंतरिक है और समय की परिधि के बाहर है।

अधर्माभिभवात्कृष्ण प्रदुष्यन्ति कलीस्प्रय:।
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसंकर: ।।41।।

संकरो नरकायैव कुलध्नानां कुलस्य च ।
पतन्ति यितरो ह्योषां लुप्तपिण्डोदकक्रिया: ।।42।।

तथा हे कृष्ण पाप के अधिक बढ़ जाने से कुल की स्त्रियां दूषित हो जाती हैं। और हे वार्ष्णेय, स्त्रियों के दूषित होने पर वर्णसंकर उत्पन्न होता है।

और वह वर्णसंकर कुलधातियों को और कुल को नर्क में ले जाने के लिए ही (होता) है। लोप हुई पिंड और जल की क्रिया वाले इनके पितर लोग भी गिर जाते हैं।

दोषैरेतैः कुलध्नानां वर्णस्थ्यंस्कारकै: ।
उत्साद्यन्तेजातिधर्मा कुलधर्माश्च शाश्वता: ।।43।।

उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन ।
नरकेऽनियतं वासी भवतींत्यनुशुश्रुम ।।44।।

और इन वर्णसंकरकारक दोषों से कुलघातियों के सनातन कुलधर्म और जातिधर्म नष्ट हो जाते हैं।

हे जनार्दन, नष्ट हुए कुलधर्म वाले मनुष्यों का अनंत काल तक नर्क में वास होता है, ऐसा हमने सुना है।

अर्जुन बहुत—बहुत मार्गों से क्या—क्या बुरा हो जाएगा युद्ध में, उसकी खोजबीन कर रहा है। उसके मन में बहुत—बहुत बुराइयां दिखाई पड़ रही हैं। अभी ही नहीं, आगे भी, संतति कैसी हो जाएगी, वर्ण कैसे विकृत हो जाएंगे, सनातन धर्म कैसे नष्ट हो जाएगा, वह सब खोज रहा है। यह बहुत अजीब—सा लगेगा कि उसे इस सब की चिंता क्यों है!

लेकिन अगर हिरोशिमा के बाद बर्ट्रेंड रसेल और पश्चिम के समस्त युद्ध—विरोधी लोगों का साहित्य देखें, तो हैरान होंगे। वे भी सब यही कह रहे हैं। बच्चे विकृत हो जाएंगे, व्यवस्था नष्ट हो जाएगी, सभ्यता नष्ट हो जाएगी, धर्म खो जाएगा, संस्कृति खो जाएगी। जो—जो अर्जुन को खयाल आ रहा है, वह—वह खयाल हिरोशिमा के बाद सारी दुनिया के शांतिवादी लोगों को आ रहा है। शांतिवादी—शांतिवादी कह रहा हूं—शांतिवादी युद्ध से क्या—क्या बुरा हो जाएगा, उसकी तलाश में लगता है। लेकिन उसकी सारी तलाश, जैसा मैंने कहा, उसके भीतर पलायन की जो वृत्ति पैदा हो रही है, उसके समर्थन में कारण खोजने की होती है।

हम वही खोज लेते हैं, जो हम करना चाहते हैं। लेकिन दिखाई ऐसा पड़ता है कि जो होना चाहिए, वही हम कर रहे हैं। हम जो करना चाहते हैं, हम उसकी ही दलीलें खोज लेते हैं। और जिंदगी में सब की दलीलों के लिए सुविधा है। जो आदमी जो करना चाहता है, उसके लिए पक्ष की सारी दलीलें खोज लेता है।

एक आदमी ने अमेरिका में एक किताब लिखी है कि तेरह तारीख या तेरह का आंकड़ा, तेरह की संख्या खतरनाक है। बड़ी किताब लिखी। और सब खोज लिया उसने कि तेरहवीं मंजिल पर से कौन आदमी गिरकर मरा। तो आज तो अमेरिका के कई होटलों में तेरहवीं मंजिल ही नहीं है उस किताब के प्रभाव में, क्योंकि तेरहवीं पर कोई ठहरने को राजी नहीं है। बारहवीं के बाद सीधी चौदहवीं मंजिल आ जाती है। तेरह तारीख को अस्पताल में जो लोग भर्ती होते हैं, उनमें से कितने मर जाते हैं, तेरह तारीख को कितने एक्सिडेंट होते हैं सड़क पर, तेरह तारीख को कितने लोगों को कैंसर होता है, तेरह तारीख को कितने हवाई जहाज गिरते हैं, तेरह तारीख को कितनी मोटरें टकराती हैं—तेरह तारीख को क्या—क्या उपद्रव होता है, उसने सब इकट्ठा कर लिया है। बारह को भी होता है, ग्यारह को भी होता है—उतना ही। लेकिन वह उसने छोड़ दिया है। तेरह का सब इकट्ठा कर लिया है।

कोई अगर ग्यारह तारीख के खिलाफ हो, तो वह ग्यारह तारीख के लिए यह सब इकट्ठा कर लेगा। अगर कोई तेरह तारीख के पक्ष में हो, तो तेरह तारीख को बच्चे भी पैदा होते हैं, तेरह तारीख को हवाई जहाज नहीं भी गिरते हैं, तेरह तारीख को अच्छी घटनाएं भी घटती हैं, विवाह भी होते हैं, तेरह तारीख को मित्रता भी बनती है, तेरह तारीख को विजय—उत्सव भी होते हैं, तेरह तारीख को भी सब अच्छा भी होता है। आदमी का चित्त उसे खोज लेता है, जो वह, चाहता है।

अभी वह पलायन चाहता है अर्जुन, तो वह यह सब खोज रहा

है। कल तक उसने यह बात नहीं कही थी कभी भी। कल तक उसे आने वाली संतति को क्या होगा, कोई मतलब न था। युद्ध के आखिरी क्षण तक उसे कभी इन सब बातों का खयाल न आया, आज सब खयाल आ रहा है! आज उसके मन को पलायन पकड रहा है, तो वह सब दलीलें खोज रहा है।

अब यह बड़े मजे की बात है कि कुल मामला इतना है कि वह अपनों को मारने से भयभीत हो रहा है। लेकिन दलीलें बहुत दूसरी खोज रहा। वह सब दलीलें खोज रहा है। मामला कुल इतना है कि वह ममत्व से पीड़ित है, मोह से पीड़ित है, अपनों को मारने की हिम्मत नहीं जुटा पा रहा है। इतनी—सी बात है, लेकिन इसके आस—पास वह बड़ा जाल, फिलासफी खड़ी कर रहा है।

हम सब करते हैं। छोटी—सी बात जो होती है, अक्सर ऐसा होता है कि वह बात हम छोड़ ही देते हैं, जो होती है, उसके आस—पास जो जाल हम खड़ा करते हैं, वह बहुत दूसरा होता है। एक आदमी को किसी को मारना है, तो वह बहाने खोज लेता है। एक आदमी को क्रोध करना है, तो वह बहाने खोज लेता है। एक आदमी को क्रोध करना है, तो वह बहाने खोज लेता है। एक आदमी को भागना है, तो वह बहाने खोज लेता है। आदमी को जो करना है, वह पहले आता है; और बहाने खोजना पीछे आता है।

वह कृष्ण देख रहे हैं और हंस रहे हैं। समझ रहे हैं कि ये सब जो दलीलें वह दे रहा है; ये चालबाजी की दलीलें हैं; ये दलीलें ' वास्तविक नहीं हैं; ये सही नहीं हैं। यह उसकी अपनी दृष्टि नहीं है। क्योंकि उसने कभी आज तक किसी को मारते वक्त नहीं सोचा। कोई ऐसा पहला मौका नहीं है कि वह मार रहा है। वह निष्णात योद्धा है। मारना ही उसकी जिंदगीभर का अनुभव और कुशलता है। मारना ही उसका बल है, तलवार ही उसका हाथ है, धनुष—बाण ही उसकी आत्मा है। ऐसा आदमी नहीं है कि कोई तराजू पकड़े बैठा रहा हो और अचानक युद्ध पर लाकर खड़ा कर दिया गया हो। इसलिए उसकी बातों पर कृष्ण जरूर हंस रहे होंगे। वे जरूर देख रहे होंगे कि आदमी कितना चालाक है!

सब आदमी चालाक हैं। जो कारण होता है, उसे हम भुलाते हैं। और जो कारण नहीं होता है, उसके लिए हम दलीलें इकट्ठी करते हैं। और अक्सर ऐसा होता है कि खुद को ही दलीलें देकर हम समझा लेते हैं और मूल कारण छूट जाता है।

लेकिन कृष्ण चाहेंगे कि उसे मूल कारण खयाल में आ जाए। क्योंकि मूल कारण अगर खयाल में हो, तो समझ पैदा हो सकती है। और अगर मूल कारण छिपा दिया जाए और दूसरे फाल्स रीजन्स, झूठे कारण इकट्ठे कर लिए.......।

अर्जुन को क्या मतलब है कि आगे क्या होगा? धर्म की उसे कब चिंता थी कि धर्म विनष्ट हो जाएगा! कब उसने फिक्र की थी कि ब्राह्मण, कि कहीं कुल विकृत न हो जाएं? कब उसने फिक्र की थी? इन सब बातों की कोई चिंता न थी कभी। आज अचानक सब चिंताए उसके मन पर उतर आई हैं!

यह समझने जैसा है कि ये सारी चिंताएं क्यों उतर रही हैं, क्योंकि वह भागना चाहता है। भागना चाहता है, तो ऐसा नहीं दिखाएगा कि कायर है। वजह से भागेगा। रीजनेबल होगा उसका भागना। कहेगा कि इतने कारण थे, इसलिए भागता हूं। अगर बिना कारण भागेगा, तो दुनिया हंसेगी। यहीं उसकी चालाकी है। यहीं हम सब की भी चालाकी है। हम जो भी कर रहे हैं, उसके लिए पहले कारण का एक जाल खड़ा करेंगे। जैसे मकान को बनाते हैं, तो एक स्ट्रक्चर खड़ा करते हैं, ऐसे हम एक जाल खड़ा करेंगे। उस जाल से हम दिखाएंगे कि यह ठीक है। लेकिन मूल कारण बिलकुल और होगा।

अगर कृष्ण को यह साफ दिखाई पड़ जाए कि अर्जुन जो कह रहा है, वही कारण है, तो मैं नहीं मानता कि वे धर्म का विनाश करवाना चाहेंगे, मैं नहीं मानता कि वे चाहेंगे कि बच्चे विकृत हो जाएं; मैं नहीं सोचता कि वे चाहेंगे कि संस्कृति, सनातन— धर्म नष्ट हो जाए। नहीं वे चाहेंगे। लेकिन ये कारण नहीं हैं। ये फाल्स सब्स्टिटयूट्स हैं, ये झूठे परिपूरक कारण हैं। इसलिए कृष्ण इनको गिराने की कोशिश करेंगे, इनके। काटने की कोशिश करेंगे। वे अर्जुन को वहा लाएंगे, जहा मूल कारण है। क्योंकि मूल कारण से लड़ा जा सकता है, लेकिन झूठे कारणों से लड़ा नहीं जा सकता। और इसलिए हम मूल को छिपा लेते हैं और झूठे कारणों में जीते हैं।

यह अर्जुन की मनोदशा ठीक से पहचान लेनी जरूरी है। यह रीजन की कनिंगनेस है, यह बुद्धि की चालाकी है। सीधा नहीं कहता कि मैं भाग जाना चाहता हूं; नहीं होता मन अपनों को मारने का, यह तो आत्मघात है, मैं जा रहा हूं। सीधा नहीं कहता। दुनिया में कोई आदमी सीधा नहीं कहता। जो आदमी सीधा कहता है, उसकी जिंदगी में क्राति हो जाती है, जो इरछा—तिरछा कहता रहता है, उसकी जिंदगी में कभी क्रांति नहीं होती। वह जिसको कहते हैं झाड़ी के आसपास पीटना, बीटिंग अराउंड दि बुश; बस, ऐसे ही वह पीटेगा पूरे वक्त। झाड़ी बचाएगा, आसपास पिटाई करेगा। अपने को बचाएगा और हजार—हजार कारण खोजेगा। छोटी—सी बात है सीधी उसकी, हिम्मत खो रहा है, ममत्व के साथ हिम्मत जा रही है। उतनी सीधी बात नहीं कहेगा और सारी बातें इकट्ठी कर रहा है। उसके कारण सुनने और समझने जैसे हैं। हमारा चित्त भी ऐसा करता है, इसलिए समझना उपयोगी है।

प्रश्न : भगवान श्री अर्जन के चित्त ने जो कछ भी कारण बताए, उसमें है कि कुलधर्म का क्षय होने से दूषित स्त्रियों से वर्णसंकर प्रजा का जन्म होता है। जो प्रजा पिंड और तर्पण क्रिया नहीं करती है, उससे उनके पितृगण नर्क में जाते हैं। तो क्या पितृगण पिंडदान नहीं देने पर भूखे मरते हैं? यह क्या अर्जन के चित्त की भ्रांति ही है?

नहीं! अर्जुन के कारण सब अत्यंत ऊपरी, अत्यंत व्यर्थ हैं। कोई पितृगण आपके पिंड से बंधकर नहीं जीते हैं। और अगर आपके पिंडदान से किन्हीं जा चुके पितृगणों की आगे की यात्रा बिगड़ती हो, तब तो पिंडदान बडी खतरनाक

बात है। आत्माएं अपने ही भीतर से अपनी यात्रा पर निकलती हैं। आपने उनके पीछे क्या किया और क्या नहीं किया, इससे उनकी यात्रा का कोई भी संबंध नहीं है।

लेकिन पुरोहितों का एक जाल है जगत में। और पुरोहितों का जाल जन्म से लेकर मृत्यु तक आदमी को कसता है, मरने बाद भी कसता है। और बिना आदमी को भयभीत किए आदमी का शोषण नहीं किया जा सकता। भय ही शोषण का आधार है। तो बेटे का शोषण किया जा सकता है, मरे हुए बाप के लिए भी भय दिखाकर।

अर्जुन वह सब बातें कर रहा है। वह उसने सुनी होंगी। वह सब उसके आसपास हवा में रही होंगी। तब थीं, तब तो आश्चर्य नहीं, अभी भी हैं। पांच हजार साल पहले अर्जुन ने सुनी होंगी, कोई आश्चर्य की बात नहीं, अभी भी हैं। अर्जुन जो कह रहा है, उसने जो सुना होगा हवा में, जो पुरोहित समझाते रहे होंगे आसपास, वही कह रहा है। उसे कोई मतलब नहीं है। वह तो वे सब दलीलें इकट्ठी परेड करवा रहा है कृष्ण के सामने कि साबित हो जाए कि वह भाग रहा है, तो भागना ही धर्म है, उचित है। वह इसीलिए ये सारी दलीलें ला रहा है। लेकिन इनमें कोई भी सत्य नहीं है। और न ही कोई वर्णसंकर से कोई विकृति होती है।

उस दिन खयाल था। अभी भी है। करपात्री और शंकराचार्य से पूछिए, तो यही खयाल है। कुछ लोगों के खयाल बदलते ही नहीं, सारी दुनिया में सब बदल जाए! कुछ लोग खयाल को ऐसा पकड़ते हैं कि खयाल के नीचे से सारी जिंदगी निकल जाती है, लेकिन मुर्दा खयाल को पकड़े रह जाते हैं।

क्रास ब्रीडिंग—जिसको वर्णसंकर कह रहा है अर्जुन—श्रेष्ठतम ब्रीडिंग है। क्रास ब्रीडिंग से संभावना श्रेष्ठतर होने की है। बीज में आप पूरी तरह उपयोग कर रहे हैं। उस वक्त आप ख़याल में नहीं लाते कि अर्जुन के खिलाफ जा रहे हैं। जानवरों में उपयोग कर रहे हैं। आदमी में अभी उपयोग नहीं कर रहे हैं। इसलिए आज आदमी की ब्रीडिंग जानवरों से भी पिछड़ी हुई ब्रीडिंग है।

आज हम जितने अच्छे कुत्ते पैदा कर लेते हैं कुत्तों में, उतना अच्छा आदमी आदमी में पैदा नहीं कर पाते। आदमी की अभी भी संतति की व्यवस्था एकदम अवैज्ञानिक है। अर्जुन के वक्त में तो रही ही होगी, आज भी है। आज भी आदमी से श्रेष्ठतर आदमी, मन और शरीर की दृष्टि से स्वस्थ, ज्यादा आयुष्य वाला, ज्यादा प्रतिभाशाली पैदा हो सके, इस तरफ हमारा कोई खयाल नहीं है। बीज की हम फिक्र करते हैं। बीज अच्छे से अच्छा होता जा रहा है—फलों का, फूलों का, गेहूं का। पशुओं में हम अच्छे से अच्छे पशु पैदा करने की फिक्र करते हैं। आदमी में अभी भी फिक्र नहीं है।

लेकिन पुराने वक्त में ऐसा खयाल था कि अगर दूसरी जाति से मिलना हुआ, तो जो बच्चा पैदा होगा वह वर्णसंकर हो जाएगा। सच तो यह है कि इस जगत में जितनी भी प्रतिभाशाली जातियां हैं, वे सब वर्णसंकर हैं। और जितनी शुद्ध जातियां हैं, वे बिलकुल पिछड़ गई हैं। नीग्रो बिलकुल शुद्ध हैं; अफ्रीका के जंगलों में रहने वाले आदमी बिलकुल शुद्ध हैं; हिंदुस्तान के आदिवासी बिलकुल शुद्ध हैं। जितनी भी विकासमान संस्कृतियां हैं, सभ्यताएं हैं, वे सभी वर्णसंकर हैं।

असल में, जैसे दो नदिया मिलकर ज्यादा समृद्ध हो जाती हैं, वैसे ही जीवन की दो विभिन्न धाराएं भी मिलकर ज्यादा समृद्ध हो जाती हैं। अगर अर्जुन ठीक है, तब तो बहन और भाई की शादी करवा देनी चाहिए, उससे बिलकुल शुद्ध बच्चे पैदा होंगे। लेकिन बहन और भाई की शादी से शुद्ध बच्चा पैदा नहीं होता, सिर्फ रुग्ण बच्चा पैदा होता है। बहन और भाई को हम बचाते हैं। जो बुद्धिमान हैं, वे चचेरे भाई और बहन को भी बचाते हैं। जो उनसे भी ज्यादा बुद्धिमान हैं, वे अपनी जाति में शादी कभी न करेंगे। जो उनसे भी ज्यादा बुद्धिमान हैं, वे अपने देश को भी बचाएंगे। और आज नहीं कल, अगर किसी ग्रह पर, उपग्रह पर हमने कोई मनुष्य खोज लिए, तो जो बहुत बुद्धिमान हैं, वे इंटर प्लेनेटरी क्रास ब्रीडिंग की फिक्र करेंगे।

लेकिन वह अर्जुन तो सिर्फ परेड करवा रहा है। वह तो यह कह रहा है कि यह—यह उसने सुना है। ऐसी—ऐसी हानि हों जाएगी, इसलिए मुझे भागने दो। न उसे क्रास ब्रीडिंग से मतलब है, न कोई वह जानकार है। उसकी जानकारी और कुशलता इस सबकी नहीं है। ही, ये उसके सुने हुए खयाल हैं। चारों तरफ हवा में ये बातें थी।

आज भी हैं। उस समय थीं, तो बिलकुल स्वाभाविक लगता है। बिना चित्रों के नहीं सोच पाता। आदमी को सोचने में चित्र बड़े क्योंकि मनुष्य की संतति का जन्म—शास्त्र बहुत विकसित नहीं था। सहयोगी हो जाते हैं। आज बहुत विकसित है।

लेकिन आज भी इतने विकसित संतति—शास्त्र के साथ, हमारा मस्तिष्क इतना विकसित नहीं है कि हम उसे सह सकें या उस संबंध में सोच सकें। क्योंकि अपनी जाति में शादी करना, बहुत दूर की अपनी बहन से ही शादी करना है। जरा फासला है, दस—पांच पीढ़ियों का फासला होगा। अपनी ही जाति में शादी करना, दस—पांच पीढ़ियों के पीछे एक ही पिता की संतति है वह। सौ पीढ़ी पीछे होगी, बहुत दूर जाएंगे तो। लेकिन एक जाति में सब बहन— भाई ही हैं। और ज्यादा पीछे जाएंगे तो एक महाजाति में भी सब बहन— भाई हैं।

जितने दूर जाएं, जितना विभिन्न बीजारोपण संयुक्त हो, उतनी विभिन्न समृद्धिया, उतने विभिन्न संस्कार, उतनी विभिन्न जातियों के द्वारा अनुभव किया गया सारा का सारा हजारों साल का इतिहास जेनेटिक अणु में इकट्ठा होकर उस व्यक्ति को मिल जाता है। जितने दूर से ये दो धाराएं आएं, उतने विलक्षण व्यक्ति के पैदा होने की संभावना है।

तो वर्णसंकर बहुत गाली थी अर्जुन के वक्त में, हिंदुस्तान में अभी भी काशी में गाली है। लेकिन अब सारे जगत के बुद्धिमान इस बात के लिए राजी हैं कि जितने दूर का वर्ण हो, जितनी संकरता हो, उतने ही श्रेष्ठतम व्यक्ति को जन्म दिया जा सकता है। लेकिन अर्जुन को इससे लेना—देना नहीं है। अर्जुन कोई इस पर वक्तव्य नहीं दे रहा है। वह तो सिर्फ दलीलें इकट्ठी कर रहा है।

प्रश्न : भगवान श्री, नर्क या स्वर्ग जैसे कुछ स्थान विशेष हैं क्या? ऐसा लगता है कि पाप और पुण्य एवं नर्क और स्वर्ग की कल्पना व्यक्ति को भयभीत या प्रोत्साहित करने के हेतु की गई है। क्या आप सहमत हैं इससे?

नर्क और स्वर्ग भौगोलिक स्थान नहीं हैं, लेकिन मानसिक दशाएं जरूर हैं। लेकिन आदमी का चिंतन सदा ही चीजों को चित्रों में रूपांतरित करता है। आदमी बिना चित्रों के नहीं सोच पाता। आदमी को सोचने में चित्र बड़े सहयोगी हो जाते है।

हम सबने देखी है, अभी भी घरों में टंगी भारत माता की फोटो। वह तो कुछ बुद्धिमान हमारे मुल्क में पता नहीं क्यों नहीं हैं कि भारत माता की खोज पर नहीं निकलते! फोटो तो घरों में लटकी हुई है भारत माता की। लेकिन भारत माता कहीं खोजने से मिलने वाली नहीं है। लेकिन हजार, दो हजार साल बाद अगर कोई कहेगा कि भारत माता नहीं थी, तो लोग कहेंगे, बिलकुल गलत कहते हैं। देखो, गांधीजी इशारा कर रहे हैं फोटो में भारत माता की तरफ। गांधीजी गलती कर सकते हैं? भारत माता जरूर रही होंगी। या तो कहीं गुहा—कंदराओं में छिप गई हैं हमारे पाप की वजह से।

आदमी जो भी समझना चाहे, उसे चित्रों में रूपांतरित करता है। असल में जितना हम पुराने में लौटेंगे, उतनी ही पिक्टोरियल लैंग्वेज बढती जाती है। असल में दुनिया की पुरानी भाषाएं चित्रात्मक हैं। जैसे चीनी अभी भी चित्रों की भाषा है। अभी भी शब्द नहीं हैं, वर्ण नहीं हैं, चित्र हैं; चित्रों में ही सारा काम करना पडता है, इसलिए चीनी सीखना बहुत मुश्किल मामला हो जाता है। साधारण भी कोई सीखे तो दस—पंद्रह साल तो मेहनत करनी ही पड़े। क्योंकि कम से कम दस—बीस हजार चित्र तो उसे याद होने ही चाहिए। अब चीनी में अगर झगड़ा लिखना है, तो एक झाड़ू बनाकर उसके नीचे दो औरतें बिठालनी पड़ती हैं, तब पता चलता है कि झगडा है। बिलकुल पक्का झगड़ा तो है ही। एक झाड़ के नीचे दो औरतें! इससे बड़ा झगड़ा और क्या हो सकता है?

सारी दुनिया की, जितने हम पीछे लौटेंगे, उतनी चितना पिक्टोरियल होगी। अभी भी हम सपना जब देखते हैं, तो उसमें शब्द नहीं होते, चित्र होते हैं। क्योंकि सपना जो है, वह प्रिमिटिव, बहुत पुराना है, नया नहीं है। बीसवीं सदी में भी बीसवीं सदी का सपना देखना मुश्किल है। सपना तो हम देखते हैं कोई लाख साले पुराना। उसका ढंग लाख साल पुराना होता है।

इसलिए बच्चों की किताब में चित्र ज्यादा रखने पड़ते हैं और शब्द कम रखने पड़ते हैं। क्योंकि बच्चा शब्दों से नहीं समझ सकेगा, चित्रों से समझेगा। अभी ग गणेश जी का, नाहक गणेश जी को फंसाना पड़ता है। गणेश जी का कोई लेना—देना नहीं है ग से। लेकिन बच्चा गणेश जी को समझेगा, फिर ग को समझेगा। बच्चा प्रिमिटिव है।

तो जितना हम पीछे लौटेंगे, उतने सारे मानसिक —तत्व हमें भौगोलिक बनाने पड़े। स्वर्ग चित्त की एक दशा है। जब सब सुखपूर्ण है, सब शांत है, सब फूल खिले हैं, सब संगीत से भरा है। लेकिन इसे कैसे कहें! इसे ऊपर रखना पड़ा। नर्क है, जहा कि सब दुख है, पीड़ा है, जलन है। नीचे रखना पडा। नीचे और ऊपर वेल्यूज बन गईं। ऊपर वह है, जो श्रेष्ठ है, नीचे वह है, जो बुरा है, निकृष्ट है। फिर जलन, दुख, पीड़ा, तो आग की लपटें बनानी पड़ी। स्वर्ग, तो शीतल, शांत, एयरकडीशनिग की व्यवस्था करनी पड़ी। लेकिन वे सब चित्र हैं। लेकिन जिद पीछे पैदा होती है। जिद पुरोहित पैदा करवाता है। वह कहता है, नहीं, चित्र नहीं हैं। ये तो स्थान हैं। अब वह मुश्किल में पड़ेगा।

क्योंकि जब खुश्चेव का आदमी पहली दफा अंतरिक्ष में पहुंचा, तो खुश्चेव ने रेडियो पर कहा कि मेरे आदमी चांद का चक्कर लगा लिए हैं। कोई स्वर्ग दिखाई नहीं पड रहा है। अब यह पुरोहित से झगड़ा है खुश्चेव का। खुश्चेव से पुरोहित को हारना पड़ेगा, क्योंकि पुरोहित दावा ही गलत कर रहा है। कहीं कोई ऊपर स्वर्ग नहीं है, कहीं कोई नीचे नर्क नहीं है। हौ, लेकिन सुख की अवस्था ऊपर की अवस्था है, नर्क की अवस्था दुख की अवस्था, नीचे की अवस्था है।

और यह नीचे—ऊपर को इतना भौगोलिक बनाने का कारण है। जब आप सुखी होंगे, तब आपको लगेगा जैसे आप जमीन से ऊपर उठ गए हैं। और जब आप दुखी होंगे, तो ऐसा लगेगा कि जमीन में गड़ गए हैं। वह बहुत मानसिक फीलिंग है जब आप दुखी होंगे, तो सब तरफ ऐसा लगेगा कि अंधेरा छा गया। जब सुखी होंगे, तब सब तरफ लगेगा कि आलोक छा गया। वह फीलिंग है, भाव है, अनुभव है भीतर। जब दुखी होंगे, तो ऐसा लगेगा कि जैसे जल रहे हैं, जैसे कोई भीतर से आग जल रही है। और जब आनंदित होंगे, तो भीतर फूल खिलने लगेंगे।

वे भीतरी भाव हैं। लेकिन कवि उनको कैसे बनाए! चित्रकार उनको कैसे समझाए! धर्मगुरु उन्हें कैसे लोगों के सामने उपस्थित करे! तो उसने बनाया उनका चित्र, तो ऊपर गया स्वर्ग, नीचे गया नर्क। लेकिन अब वह भाषा बेमानी हो गई। अब आदमी उस भाषा के पार चला गया, भाषा बदलनी पड़ेगी।

तो मैं कहता हूं, ज्यॉग्राफिकल नहीं, भौगोलिक नहीं, साइकोलाजिकल हैं, स्वर्ग और नर्क हैं। और ऐसा भी नहीं है कि आप मरकर स्वर्ग चले जाएंगे और नर्क चले जाएंगे। आप चौबीस घंटे में कई बार स्वर्ग और नर्क में यात्रा करते रहते हैं। ऐसा नहीं है कोई कि इकट्ठा एक दफा होलसेल, बिलकुल फुटकर है मामला, चौबीस घंटे का काम है।

जब आप क्रोध में होते हैं तो फौरन नर्क में होते हैं। जब आप प्रेम में होते हैं तो स्वर्ग में उठ जाते हैं। पूरे वक्त आपका मन नीचे—ऊपर हो रहा है। पूरे वक्त आप सीढ़ियां उतर रहे हैं अंधेरे की और आलोक की। ऐसा कोई इकट्ठा नहीं है। लेकिन जो आदमी जिंदगीभर नर्क में ही गुजारता हो, उसकी आगे की यात्रा भी अंधेरे की तरफ ही हो रही है।

यह अर्जुन बेचारा सारी दुनिया को बचाने के लिए—आत्माएं स्वर्ग जाएं, इसके लिए; उनके बेटे पिंडदान करें, इसलिए; कोई विधवा न हो जाए, इसलिए; वर्णसंकरता न फैल जाए, विनाश न हो जाए—इतने बड़े उपद्रव के लिए..। यह आदमी सिर्फ भागना चाहता है। इतनी—सी छोटी बात की कृष्ण आज्ञा दे दें।

लेकिन इसमें भी वह सेंक्यान मांग रहा है; इसमें भी वह चाह रहा है कि कृष्ण कह दें कि अर्जुन, तू बिलकुल ठीक कहता है। ताकि कल जिम्मेवारी उसकी अपनी न रह जाए; तब वह कल कह सके कि कृष्ण! तुमने ही मुझसे कहा था, इसलिए मैं गया था।

असल में इतनी भी हिम्मत नहीं है उसकी कि वह रिस्पासबिलिटी अपने ऊपर ले ले, कि कह दे कि मैं जाता हूं। क्योंकि तब उसे दूसरा मन उसका कहता है कि कायरता होगी! यह तो उसके खून में नहीं है। यह भागना उसके वश की बात नहीं है। क्षत्रिय है, पीठ दिखाना उसकी हिम्मत के बाहर है। मर जाना बेहतर है, पीठ दिखाना बेहतर नहीं है। यह भी उसके भीतर बैठा है। इसलिए वह कहता है कि कृष्ण अगर साक्षी दे दें, और कह दें कि ठीक है, तू उचित कहता है अर्जुन।

वह तो क्या की जगह अगर कोई साधारण धातु का बना हुआ कोई पंडित—पुरोहित होता, तो कह देता कि बिलकुल ठीक कहता है अर्जुन, शास्त्र में ऐसा ही तो लिखा है, अर्जुन भाग गया होता। वह भागने का रास्ता खोज रहा है। लेकिन उसे पता नहीं कि जिससे वह बात कर रहा है, उस आदमी को धोखा देना मुश्किल है। वह अर्जुन को पैना, गहरे देख रहा है। वह जानता है कि वह क्षत्रिय है और क्षत्रिय होना ही उसकी नियति है, वही उसकी डेस्टिनी है। वह ये सब बातें ऐसी कर रहा है, ब्राह्मणों जैसी। ब्राह्मण वह है नहीं। बातें ब्राह्मणों जैसी कर रहा है। दलीलें वह ब्राह्मणों की दे रहा है। है वह ब्राह्मण नहीं, है वह क्षत्रिय। तलवार के अतिरिक्त वह कुछ नहीं जानता। एक ही शास्त्र है उसका। असल में अर्जुन जैसा क्षत्रिय दुनिया में खोजना मुश्किल है।

मेरे एक मित्र जापान से आए, तो किसी ने उन्हें एक मूर्ति भेंट कर दी। उस मूर्ति के एक हाथ में तलवार है और तलवार की चमक है चेहरे पर। और दूसरे हाथ में एक दीया है और दीए की ज्योति की चमक है दूसरे हिस्से पर चेहरे के! जिस तरफ दीया है, उस तरफ से मूर्ति को देखें, तो लगता है कि चेहरा बुद्ध का है। और जिस तरफ तलवार है, उस तरफ से देखें, तो लगता है कि चेहरा अर्जुन का है।

वे मुझसे पूछने लगे कि यह क्या मामला है? तो मैंने कहा कि अगर बुद्ध के मुकाबले बुद्ध से ज्यादा बड़ा ब्राह्मण खोजना मुश्किल है, शुद्ध ब्राह्मण, तो अर्जुन से बड़ा क्षत्रिय भी खोजना मुश्किल है। और यह जो मूर्ति है जापान में, समुराई सैनिक की मूर्ति है। समुराई के लिए नियम है कि उसके पास बुद्ध जैसी शांति और अर्जुन जैसी क्षमता चाहिए, तभी वह सैनिक है। लड़ने की हिम्मत अर्जुन जैसी और लड़ते समय शाति बुद्ध जैसी। बड़े इंपासिबल की मांग है, बड़े असंभव की मांग है।

लेकिन अर्जुन के पास बुद्ध जैसा कुछ भी नहीं है। उसकी शाति सिर्फ बचाव है। उसकी शाति की बातें सिर्फ पलायनवादी हैं। वह शांति की बातें करके भी पछताएगा। कल अर्जुन फिर कृष्ण को पकड़ लेगा कि तुमने क्यों मुझे सहारा दिया, बदनामी हो गई! कुल की प्रतिष्ठा चली गई! वह फिर पच्चीस दलीलें ले आएगा। जैसे अभी पच्चीस दलीलें लाया है भागने के पक्ष में, कल पच्चीस दलीलें लाएगा और कृष्ण को कहेगा कि तुम ही जिम्मेवार हो, तुमने ही मुझे उलझा दिया और भगा दिया। अब सब बदनामी हो गई। अब कौन जिम्मा ले इसका?

इसलिए कृष्ण उसे इतने सस्ते में छोड़ नहीं सकते हैं। इतने सस्ते में छोड़ने की बात भी नहीं है। वह आदमी दोहरे दिमाग में है। उसे एक दिमाग पर लाना एकदम आवश्यक है। फिर वह एक दिमाग से जो भी करे, कृष्ण की उसे सहमति हो सकती है।

प्रवचन 5 : अर्जुन का पलायन—अहंकार की ही दूसरी अति
ओशो – गीता-दर्शन – भाग एक
अध्याय—1-2 – प्रवचन 5 : अर्जुन का पलायन—अहंकार की ही दूसरी अति

अहो बत महत्पापं कर्तुंव्यवसिता वयम्।
यद्राज्यमुखलोभेन हन्तुं स्वजनमुद्यता ।।45।।

अहो! शोक है कि हम लोग (बुद्धिमान होकर भी) महान पाप करने को तैयार हुए है, जो कि राज्य और सुख के लोभ से अपने कुल को मारने के लिए उद्यत हुए हैं।

यदि माम्प्रतीकारमशस्त्रं शस्त्रपाणय: ।
धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत् ।।46।।

यदि मुझ शस्त्ररहित, न सामना करने वाले को, शस्त्रधारी धृतराष्ट्र के पुत्र रण में मारें, तो वह मरना भी मेरे लिए अति कल्याणकारक होगा।

संजय उवाच

एवमुक्त्वार्जुन: संख्ये रथोपस्थ उपाविअत् ।
विसृज्य सशरं चापं शोकसंविग्नमानस ।।47।।

संजय बोले कि रणभूमि में शोक से उद्विग्न मन वाला अर्जुन हस प्रकार कहकर बाण सहित धनुष को त्यागकर रथ के पिछले भाग में बैठ गया।

अथ द्वितीयोsध्याय:

संजय उवाच

तं तथा कृपयाविष्टमश्रुयूणीकुलेक्षणम् ।
विषीदन्तमिदं वाक्यमुवाच मधुसूदन: ।।1।।

संजय ने कहा : पूर्वोक्त प्रकार मे दया से भरकर और आंसुओ से पूर्ण तथा व्याकुल नेत्रों वाले शोकयुक्त उस अर्जुन के प्रति भगवान मधुमूदन ने यह वचन कहा।

श्रीभगवानुवाच

कुतस्त्वा कश्मलीमदं विषमे समुपस्थितम् ।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ।।2।।

हे अर्जुन, तुमको इस विषम स्थल में यह अज्ञान किस हेतु से प्राप्त हुआ, क्योंकि यह न तो श्रेष्ठ पुरूषों मे आचरण किया गया है, न स्वर्ग को देने वाला है। न कीर्ति को करने वाला है।

क्लैब्यं मा स्म गम: पार्थ नैतत्त्वटयुययद्यते।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्मीत्तिष्ठ परंतय ।।3।।

इसलिए हे अर्जुन, नपुंसकता को मत प्राप्त हो। यह तेरे लिए योग्य नहीं है हई परंतप तुच्छ हृदय की दुर्बलता को त्यागकर युद्ध कई लिए खड़ा हो।

संजय ने अर्जुन के लिए, दया से भरा हुआ, दया के आंसू आंख में लिए, ऐसा कहा है। दया को थोड़ा समझ लेना जरूरी है। संजय ने नहीं कहा, करुणा से भरा हुआ; कहा है, दया से भरा हुआ।

साधारणत: शब्दकोश में दया और करुणा पर्यायवाची दिखाई पड़ते हैं। साधारणत: हम भी उन दोनों शब्दों का एक—सा प्रयोग करते हुए दिखाई पड़ते हैं। उससे बड़ी भ्रांति पैदा होती है। दया का अर्थ है, परिस्थितिजन्य; और करुणा का अर्थ है, मनःस्थितिजन्य। उनमें बुनियादी फर्क है।

करुणा का अर्थ है, जिसके हृदय में करुणा है। बाहर की परिस्थिति से उसका कोई संबंध नहीं है। करुणावान व्यक्ति अकेले में बैठा हो, तो भी उसके हृदय से करुणा बहती रहेगी। जैसे निर्जन में फूल खिला हो, तो भी सुगंध उड़ती रहेगी। राह पर निकलने वालों से कोई संबंध नहीं है। राह से कोई निकलता है या नहीं निकलता है, फूल की सुगंध को इससे कुछ लेना—देना नहीं है। नहीं कोई निकलता, तो निर्जन पर भी फूल की सुगंध उड़ती है। कोई निकलता है तो उसे सुगंध मिल जाती है, यह दूसरी बात है; फूल उसके लिए सुगंधित नहीं होता है।

करुणा व्यक्ति की अंतस चेतना का स्रोत है। वहा सुगंध की भाति करुणा उठती है। इसलिए बुद्ध को या महावीर को दयावान कहना गलत है, वे करुणावान हैं, महाकारुणिक हैं।

अर्जुन को संजय कहता है, दया से भरा हुआ। दया सिर्फ उनमें पैदा होती है, जिनमें करुणा नहीं होती। दया सिर्फ उनमें पैदा होती है, जिनके भीतर हृदय में करुणा नहीं होती। दया परिस्थिति के दबाव से पैदा होती है। करुणा हृदय के विकास से पैदा होती है। राह पर एक भिखारी को देखकर जो आपके भीतर पैदा होता है, वह दया है; वह करुणा नहीं है।

और तब एक बात और समझ लेनी चाहिए कि दया अहंकार को भरती है और करुणा अहंकार को विगलित करती है। करुणा सिर्फ उसमें ही पैदा होती है, जिसमें अहंकार न हो। दया भी अहंकार को ही परिपुष्ट करने का माध्यम है। अच्छा माध्यम है, सज्जनों का माध्यम है, लेकिन माध्यम अहंकार को ही पुष्ट करने का है।

जब आप किसी को दान देते हैं, तब आपके भीतर जो रस उपलब्ध होता है—देने वाले का, देने वाले की स्थिति में होने का—भिखारी को देखकर जो दया पैदा होती है; उस क्षण में अगर 'भीतर खोजेंगे, तो अहंकार का स्वर भी बजता होता है। करुणावान बाहेगा, पृथ्वी पर कोई भिखारी न रहे; दयावान चाहेगा, भिखारी रहे। अन्यथा दयावान को बड़ी कठिनाई होगी। दया पर खड़े हुए समाज भिखारी को नष्ट नहीं करते, पोषित करते हैं। करुणा पर कोई समाज खड़ा होगा, तो भिखारी को बरदाश्त नहीं कर सकेगा। नहीं होना चाहिए।

अर्जुन के मन में जो हुआ है, वह दया है। करुणा होती तो क्रांति हो जाती। इसे इसलिए ठीक से समझ लेना जरूरी है कि कृष्ण जो उत्तर दे रहे है, वह ध्यान में रखने योग्य है। तत्काल कृष्ण उससे जो लह रहे हैं, वह सिर्फ उसके अहंकार की बात कह रहे है। वह उससे कहे रहे है, अनार्यों के योग्य। वह दूसरा सूत्र बताता है कि कृष्ण ने पकड़ी है बात।

अहंकार का स्वर बज रहा है उसमें। वह कह रहा है, मुझे दया आती है। ऐसा कृत्य मैं कैसे कर सकता हूं? कृत्य बुरा है, ऐसा नहीं। कृत्य मैं कैसे कर सकता हूं? इतना बुरा मैं कहा हूं! इससे तो उचित होगा, गा से वह कहता है कि वे सब धृतराष्ट्र के पूत्र मुझे मार डालें। वह ठीक होगा, बजाय इसके कि इतने कुकृत्य को करने को मैं तत्पर होऊं।

अहंकार अपने स्वयं की बलि भी दे सकता है। अहंकार जो आखिरी कृत्य कर सकता है, वह शहीदी है; वह मार्टर भी हो सकता है। और अक्सर अहंकार शहीद होता है, लेकिन शहीद होने से और मजमूत होता है।

अर्जुन कह रहा है कि इससे तो बेहतर है कि मैं मर जाऊं। मैं, अर्जुन, ऐसी स्थिति में कुकृत्य नहीं कर सकूंगा। दया आती है मुझे, यह सब क्या करने को लोग इकट्ठे हुए हैं!

आश्चर्य होता है मुझे।

उसकी बात से ऐसा लगता है कि इस युद्ध के बनने में वह बिलकुल साथी—सहयोगी नहीं है। उसने कोआष्ट नहीं किया है। यह युद्ध जैसे आकस्मिक उसके सामने खड़ा हो गया है। उसे जैसे इसका कुछ पता ही नहीं है। यह जो परिस्थिति बनी है, इसमें वह जैसे पार्टिसिपेंट, भागीदार नहीं है। इस तरह दूर खड़े होकर बात कर रहा है। कि दया आती है मुझे आंख में आंसू भर गए हैं उसके। नहीं, ऐसा मैं न का सकूंगा। इससे तो बेहतर है कि मैं ही मर जाऊं, वही श्रेयकर है......।

इस स्वर को कृष्ण ने पकड़ा है। इसलिए मैने कहा कि गा इस पृथ्वी पर पहले मनोवैज्ञानिक हैं। क्योंकि दूसरा सूत्र कृष्ण का सिर्फ अर्जुन के अहंकार को और बढ़ावा देने वाला सूत्र है।

दूसरे सूत्र में कहते हैं, कैसे अनार्यों जैसी तू बात करता है? आर्य का अर्थ है श्रेष्ठजन, अनार्य का अर्थ है निकृष्टजन। आर्य का अर्थ है अहंकारीजन, अनार्य का अर्थ है दीन—हीन। तू कैसी अनार्यों जैसी बात करता है!

अब सोचने जैसा है कि दया की बात अनार्यों जैसी बात है! आंख में दया से भरे हुए आंसू अनार्यों जैसी बात है! और कृष्ण कहते हैं, इस पृथ्वी पर अपयश का कारण बनेगा और परलोक में भी अकल्याणकारी है। दया!

शायद ही कभी आपको खयाल आया हो कि संजय कहता है, दया से भरा अर्जुन, आंखों में आंसू लिए; और कृष्ण जो कहते हैं, उसमें तालमेल नहीं दिखाई पड़ता। क्योंकि दया को हमने कभी ठीक से नहीं समझा कि दया भी अहंकार का भूषण है। दया भी अहंकार का कृत्य है। वह भी ईगो—एक्ट है—अच्छे आदमी का। क्रूरता बुरे आदमी का ईगो—एक्ट है।

ध्यान रहे, अहंकार अच्छाइयों से भी अपने को भरता है, बुराइयों से भी अपने को भरता है। और अक्सर तो ऐसा होता है कि जब अच्छाइयों से अहंकार को भरने की सुविधा नहीं मिलती, तभी वह बुराइयों से अपने को भरता है।

इसलिए जिन्हें हम सज्जन कहते हैं और जिन्हें हम दुर्जन कहते हैं, उनमें बहुत मौलिक भेद नहीं होता, ओरिजनल भेद नहीं होता। सज्जन और दुर्जन, एक ही अहंकार की धुरी पर खड़े होते हैं। फर्क इतना ही होता है कि दुर्जन अपने अहंकार को भरने के लिए दूसरों को चोट पहुंचा सकता है। सज्जन अपने अहंकार को भरने के लिए स्वयं को चोट पहुंचा सकता है। चोट पहुंचाने में फर्क नहीं होता।

अर्जुन कह रहा है, इनको मैं मारूं, इससे तो बेहतर है मैं मर जाऊं। दुर्जन—अगर हम मनोविज्ञान की भाषा में बोलें तो—सैडिस्ट होता है। और सज्जन जब अहंकार को भरता है, तो—मैसोचिस्ट होता है। मैसोच एक आदमी हुआ, जो अपने को ही मारता था।

सभी स्वयं को पीड़ा देने वाले लोग जल्दी सज्जन हो सकते हैं। अगर मैं आपको भूखा मारूं, तो दुर्जन हो जाऊंगा। कानून, अदालत मुझे पकड़ेंगे। लेकिन मैं खुद ही अनशन करूं, तो कोई कानून, अदालत मुझे पकड़ेगा नहीं; आप ही मेरा जुलूस निकालेंगे।

लेकिन भूखा मारना आपको अगर बुरा है, तो मुझको भूखा मारना कैसे ठीक हो जाएगा? सिर्फ इसलिए कि यह शरीर मेरे जिम्मे पड़ गया है और वह शरीर आपके जिम्मे पड़ गया है! तो आपके शरीर को अगर कोड़े मारूं और आपको अगर नंगा खड़ा करूं और काटो पर लिटा दूं? तो अपराध हो जाएगा। और खुद नंगा हो जाऊं और काटो पर लेट जाऊं, तो तपश्चर्या हो जाएगी! सिर्फ रुख बदलने से, सिर्फ तीर उस तरफ से हटकर इस तरफ आ जाए, तो धर्म हो जाएगा!

अर्जुन कह रहा है, इन्हें मारने की बजाय तो मैं मर जाऊं। वह बात वही कह रहा है; मरने—मारने की ही कह रहा है। उसमें कोई बहुत फर्क नहीं है। ही, तीर का रुख बदल रहा है।

और ध्यान रहे, दूसरे को मारने में कभी इतने अहंकार की तृप्ति नहीं होती, जितना स्वयं को मारने में होती है। क्योंकि दूसरा मरते वक्त भी मुंह पर थूककर मर सकता है। लेकिन खुद आदमी जब अपने को मारता है, तो बिलकुल निहत्था, बिना उत्तर के मरता है। दूसरे को मारना कभी पूरा नहीं होता। दूसरा मरकर भी बच जाता है। उसकी आंखें कहती हैं कि मार डाला भला, लेकिन हार नहीं गया वह! लेकिन खुद को मारते वक्त तो कोई उपाय ही नहीं। हराने का मजा पूरा आ जाता है।

अर्जुन दया की बात करता हो और गा उससे कहते हैं कि अर्जुन, तेरे योग्य नहीं हैं ऐसी बातें, अपयश फैलेगा—तो वे सिर्फ उसके अहंकार को फुसला रहे हैं, परसुएड कर रहे हैं।

दूसरा सूत्र कृष्ण का, बताता है कि पकड़ी है उन्होंने नस। वे ठीक जगह छू रहे हैं उसे। क्योंकि उसे यह समझाना कि दया ठीक नहीं, व्यर्थ है। उसे यह भी समझाना कि दया और करुणा में फासला है, अभी व्यर्थ है। अभी तो उसकी रग अहंकार है। अभी अहंकार सैडिज्म से मैसोचिज्य की तरफ जा रहा है। अभी वह दूसरे को दुख देने की जगह, अपने को दुख देने के लिए तत्पर हो रहा है।

इस स्थिति में वे दूसरे सूत्र में उससे कहते हैं कि तू क्या कह रहा है! आर्य होकर, सभ्य, सुसंस्कृत होकर, कुलीन होकर, कैसी अकुलीनो जैसी बात कर रहा है! भागने की बात कर रहा है युद्ध से? कातरता तेरे मन को पकड़ती है? वे चोट कर रहे हैं उसके अहंकार को।

बहुत बार गीता को पढ़ने वाले लोग ऐसी बारीक और नाजुक जगहों पर बुनियादी भूलकर जाते हैं। क्या कृष्ण यह कह रहे हैं कि अहंकारी हो? नहीं, कृष्ण सिर्फ यह देख रहे है कि जो दया उठ रही है, वह अगर अहंकार से उठ रही है, तो अहंकार को फुलाने से तत्काल विदा हो जाएगी।

इसलिए कहते हैं, कातरपन की बातें कर रहा है! कायरता की बातें कर रहा है! सख्त से सख्त शब्दों का वे उपयोग करेंगे।

यहां अर्जुन से वे जो कह रहे हैं पूरे वक्त, उसमें क्या प्रतिक्रिया पैदा होती है, उसके लिए कह रहे हैं। मनोविश्लेषण शुरू होता है। कृष्ण अर्जुन को साइकोएनालिसिस में ले जाते हैं। लेट गया अर्जुन कोच पर अब गा की। अब वे जो भी पूछ रहे हैं, उसको जगाकर पूरा देखना चाहेंगे कि वह है कहा! कितने गहरे पानी में है!

अब आगे से कृष्ण यहां साइकोएनालिस्ट, मनोविश्लेषक हैं। और अर्जुन सिर्फ पेशेंट है, सिर्फ बीमार है। और उसे सब तरफ से उकसाकर देखना और जगाना जरूरी. है। पहली चोट वे उसके अहंकार पर करते हैं।

और स्वभावत:, मनुष्य की गहरी से गहरी और पहली बीमारी अहंकार है। और जहा अहंकार है, वहा दया झूठी है। और जहा अहंकार है, वहा अहिंसा झूठी है। और जहा अहंकार है, वहा शाति झूठी है। और जहा अहंकार है, वहा कल्याण और मंगल और लोकहित की बातें झूठी हैं। क्योंकि जहा अहंकार है, वहा ये सारी की सारी चीजें सिर्फ अहंकार के आभूषण के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।

अर्जुन उवाच

कथं भीष्ममहं संख्ये द्रोणं च मधुसूदन ।
ईषुभि: प्रति योत्स्यामि पूजाहीवरिसूदन ।।4।।

तब अर्जुन बोला? हे मधुसूदनु मैं रणभूमि में भीष्म पिताम्ह और द्रोणाचार्य के प्रीत किस प्रकार बाणों को करके युद्ध करूंगा? क्योंकि हे आइऽ?ऊदन? वे दोनों ही पूजनीय हैं। किन अर्जुन नहीं पकड़ पाता। वह फिर वही दोहराता है दूसरे कोण से। वह कहता है, मैं द्रोण और भीष्म से कैसे युद्ध करूंगा, वे मेरे पूज्य हैं। बात फिर भी वह विनम्रता की बोलता है।

लेकिन अहंकार अक्सर विनम्रता की भाषा बोलता है। और अक्सर विनम्र लोगों में सबसे गहन अहंकारी पाए जाते हैं। असल में विनम्रता डिफेंसिव ईगोइज्म है, वह सुरक्षा करता हुआ अहंकार है। आक्रामक अहंकार मुश्किल में पड़ सकता है। विनम्र अहंकार पहले से ही सुरक्षित है, वह इंश्योर्ड है।

इसलिए जब कोई कहता है, मैं तो कुछ भी नहीं हूं, आपके चरणों की धूल हूं? तब जरा उसकी आंखों में देखना। तब उसकी आंखें कुछ और ही कहती हुई मालूम पड़ेगी। उसके शब्द कुछ और! कहते मालूम पड़ेंगे।

गा ने अर्जुन की रग पर हाथ रखा है, लेकिन अर्जुन नहीं समझ पा रहा है। वह दूसरे कोने से फिर बात शुरू करता है। वह कहता है, द्रोण को, जो मेरे गुरु हैं; भीष्म को, जो मेरे परम आदरणीय हैं, पूज्य हैं—उन पर मैं कैसे आक्रमण करूंगा।

यहां ध्यान में रखने जैसी बात है, यहां भीष्म और द्रोण गौण है। अर्जुन कह रहा है, मैं कैसे आक्रमण करूंगा? इतना बुरा मैं नहीं कि द्रोण पर और बाण खींचूं! कि भीष्म की और छाती छेदूं! नहीं, यह मुझसे न हो सकेगा। यहां वह कह तो यही रहा है कि वे पूज्य हैं, यह मैं कैसे करूंगा? लेकिन गहरे में खोजें और देखें तो पता चलेगा, वह यह कह रहा है कि यह मेरी जो इमेज है, मेरी जो प्रतिमा है, मेरी ही आंखों में जो मैं हूं, उसके लिए यह असंभव है। इससे तो बेहतर है मधुसूदन कि मैं ही मर जाऊं। इससे तो अच्छा है, प्रतिमा बचे, शरीर खो जाए; अहंकार बचे, मैं खो जाऊं। वह जो इमेज है मेरी, वह जो सेल्फ इमेज है उसकी……..।

हर आदमी की अपनी—अपनी एक प्रतिमा है। जब आप किसी पर क्रोध कर लेते हैं और बाद में पछताते हैं और क्षमा मांगते हैं,! तो इस भ्रांति में मत पड़ना कि आप क्षमा माग रहे हैं और पछता रहे है। असल में आप अपने सेल्फ इमेज को वापस निर्मित कर रहे हैं। आप जब किसी पर क्रोध करते हैं, तो आपने निरंतर अपने को अच्छा आदमी समझा है, वह प्रतिमा आप अपने ही हाथ से खंडित कर लेते हैं। क्रोध के बाद पता चलता है कि वह अच्छा आदमी, जो मैं अपने को अब तक समझता था, क्या मैं नहीं हूं! अहंकार कहता है, नहीं, आदमी तो मैं अच्छा ही हूं। यह क्रोध जो हो गया है। यह बीच में आ गई भूल—चूक है। इंस्पाइट आफ मी, मेरे बावजूद हो गया है। यह कोई मैंने नहीं किया है, हो गया, परिस्थितिजन्य है। पछताते हैं, क्षमा माग लेते हैं।
अगर सच में ही क्रोध के लिए पछताए हैं, तो दुबारा क्रोध फिर जीवन में नहीं आना चाहिए। नहीं, लेकिन कल फिर क्रोध आता है।
नहीं, क्रोध से कोई अड़चन न थी। अड़चन हुई थी कोई और बात से। वह कभी सोचा ही नहीं था कि मैं और क्रोध कर सकता हूं! तो जब पछता लेते हैं, तब आपकी अच्छी प्रतिमा, आपका अहंकार फिर सिंहासन पर विराजमान हो जाता है।

वह कहता है, देखो माफी माग ली, क्षमा माग ली। विनम्र आदमी हूं। समय ने, परिस्थिति ने, अवसर ने, मूड नहीं था, भूखा था, दफ्तर से नाराज लौटा था, असफल था, कुछ काम में गड़बड़ हो गई थी—परिस्थितिजन्य था। मेरे भीतर से नहीं आया था क्रोध। मैंने तो क्षमा मांग ली है। जैसे ही होश आया, जैसे ही मै लौटा, मैंने क्षमा माग ली है। आप अपनी प्रतिमा को फिर सजा—संवारकर, फिर गहने—आभूषण पहनाकर सिंहासन पर विराजमान कर दिए। क्रोध के पहले भी यह प्रतिमा सिंहासन पर बैठी थी, क्रोध में नीचे लुढ़क गई थी; फिर बिठा दिया। अब आप फिर पूर्ववत पुरानी जगह आ गए, कल फिर क्रोध करेंगे। पूर्ववत अपनी जगह आ गए। क्रोध के पहले भी यहीं थे, क्रोध के बाद भी यहीं आ गए। जो पश्चात्ताप है, वह इस प्रतिमा की पुनर्स्थापना है।

लेकिन ऐसा लगता है, क्षमा मांगता आदमी बड़ा विनम्र है। सब दिखावे सच नहीं हैं। सच बहुत गहरे हैं और अक्सर उलटे हैं। वह आदमी आपसे क्षमा नहीं माग रहा है। वह आदमी अपने ही सामने निंदित हो गया है। उस निंदा को झाड़ रहा है, पोंछ रहा है, बुहार रहा है। वह फिर साफ—सुथरा, स्नान करके फिर खड़ा हो रहा है।

यह जो अर्जुन कह रहा है कि पूज्य हैं उस तरफ, उन्हें मैं कैसे मारूं? एम्फेसिस यहां उनके पूज्य होने पर नहीं है। एम्फेसिस यहां अर्जुन के मैं पर है कि मैं कैसे मारूं? नहीं—नहीं, यह अपने मैं की प्रतिमा खंडित करने से, कि लोक—लोकातर में लोग कहें कि अपने ही गुरु पर आक्रमण किया, कि अपने ही पूज्यों को मारा, इससे तो बेहतर है मधुसूदन कि मै ही मर जाऊं। लेकिन लोग कहें कि मर गया अर्जुन, लेकिन पूज्यों पर हाथ न उठाया। मर गया, मिट गया, लेकिन गुरु पर हाथ न उठाया।

उसके मै को पकड़ लेने की जरूरत है। अभी उसकी पकड़ में नहीं है। किसी की पकड़ में नहीं होता है। **जिसका मैं अपनी ही पकड़ में आ जाए, वह मैं के बाहर हो जाता है। हम अपने मैं को बचा—बचाकर जीते हैं। वह दूसरी—दूसरी बातें करता जाएगा। वह. सब्स्टीटयूट खोजता चला जाएगा। कभी कहेगा यह, कभी कहेगा वह। सिर्फ उस बिंदु को छोड़ता जाएगा, जो है। कृष्ण ने छूना चाहा। था, वह उस बात को छोड़ गया है। अनार्य—आर्य की बात वह नहीं उठाता। कातरता की बात वह नहीं उठाता। लोक में यश, परलोक में भटकाव, उसकी बात वह नहीं उठाता; वह दूसरी बात उठाता है।** जैसे उसने कृष्ण को सुना ही नहीं। उसके वचन कह रहे हैं कि बीच में जो कृष्य ने बोला है, अर्जुन ने नहीं सुना।
सभी बातें जो बोली जाती हैं, हम सुनते नहीं। हम वही सुन लेते हैं, जो हम सुनना चाहते हैं। सभी जो दिखाई पड़ता है, वह हम देखते नहीं। हम वही देख लेते हैं, जो हम देखना चाहते हैं। सभी जो हम पढ़ते हैं, वह पढ़ा नहीं जाता; हम वही पढ़ लेते हैं, जो हम पढ़ना चाहते हैं। हमारा देखना, सुनना, पढ़ना, सब सिलेक्टिव है; उसमें चुनाव है। हम पूरे वक्त वह छांट रहे हैं, जो हम नहीं देखना चाहते।

एक नया मनोविज्ञान है, गेस्टाल्ट। यह जो अर्जुन ने उत्तर दिया वापस, यह गेस्टाल्ट का अदभुत प्रमाण है। गेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिक कहते हैं, आकाश में बादल घिरे हों, तो हर आदमी उनमें अलग—अलग चीजें देखता है। डरा हुआ आदमी भूत—प्रेत देख लेता है, धार्मिक आदमी भगवान की प्रतिमा देख लेता है, फिल्मी दिमाग का आदमी अभिनेता—अभिनेत्रियां देख लेता है। वह एक ही बादल आकाश में है, अपना—अपना देखना हो जाता है।

प्रत्येक आदमी अपनी ही निर्मित दुनिया में जीता है। और हम अपनी दुनिया में.. इसलिए इस पृथ्वी पर एक दुनिया की भ्रांति में मत रहना आप। इस दुनिया में जितने आदमी हैं, कम से कम उतनी दुनियाएं हैं। अगर साढ़े तीन अरब आदमी हैं आज पृथ्वी पर, तो पृथ्वी पर साढ़े तीन अरब दुनियाएं हैं। और एक आदमी भी, पूरी जिंदगी एक दुनिया में रहता हो, ऐसा मत सोच लेना। उसकी दुनिया भी रोज बदलती चली जाती है।
पर्ल बक ने एक किताब अपनी आत्मकथा की लिखी है, तो नाम दिया है, **माई सेवरल वर्ल्ड्स, मेरे अनेक संसार।** अब एक आदमी के अनेक संसार कैसे होंगे? रोज बदल रहा है। और प्रत्येक व्यक्ति अपनी दुनिया के आस पास बाड़े, दरवाजे, संतरी, पहरेदार खड़े रखता है। और वह कहता है, इन—इन को भीतर आने देना, इन—इन को बाहर से ही कह देना कि घर पर नहीं हैं। यह हम लोगों के साथ ही नहीं करते, सूचनाओं के साथ भी करते हैं।

अब अर्जुन ने बिलकुल नहीं सुना है; गा ने जो कहा, वह बिलकुल नहीं सुना है। वह जो उत्तर दे रहा है, वह बताता है कि वह इररेलेवेंट है, उसकी कोई संगति नहीं है।

हम भी नहीं सुनते। दो आदमी बात करते हैं, अगर आप चुपचाप। साक्षी बनकर खड़े हो जाएं तो बड़े हैरान होंगे। लेकिन साक्षी बनकर खड़ा होना मुश्किल है। क्योंकि पता नहीं चलेगा और आप भी तीसरे आदमी भागीदार हो जाएंगे बातचीत में। अगर आप दो आदमियों की साक्षी बनकर बात सुनें तो बहुत हैरान होंगे कि ये एक—दूसरे से बात कर रहे हैं या अपने—अपने से बात कर रहे हैं! एक आदमी जो कह रहा है, दूसरा जो कहता है उससे उसका कोई भी संबंध नहीं है।

जुग ने एक संस्मरण लिखा है कि दो पागल प्रोफेसर उसके पागलखाने में भर्ती हुए इलाज के लिए। ऐसे भी प्रोफेसरों के पागल होने की संभावना ज्यादा है। या यह भी हो सकता है कि पागल आदमी प्रोफेसर होने को उत्सुक रहते हैं। वे दोनों पागल हो गए हैं। साधारण पागल नहीं हैं। साधारण पागल डर जाता है, भयभीत हो जाता है। प्रोफेसर पागल हैं। पागल होकर वे और भी बुद्धिमान हो गए हैं। जब तक जागे रहते हैं, घनघोर चर्चा चलती रहती है। जुग खिड़की से छिपकर सुनता है कि उनमें क्या बात होती है!

बातें बड़ी अदभुत होती हैं, बड़ी गहराई की होती हैं। दोनों इन्फार्म्ड हैं; उन दोनों ने बहुत पढ़ा—लिखा, सुना—समझा है। कम उनकी जानकारी नहीं है, शायद वही उनके पागलपन का कारण है। जानकारी ज्यादा हो और ज्ञान कम हो, तो भी आदमी पागल हो सकता है। और ज्ञान तो होता नहीं, जानकारी ही ज्यादा हो जाती है, फिर वह बोझ हो जाती है।

चकित है जुग, उनकी जानकारी देखकर। वे जिन विषयों पर चर्चा करते हैं, वे बड़े गहरे और नाजुक हैं। लेकिन इससे भी चकित ज्यादा दूसरी बात पर है, और वह यह कि जो एक बोलता है, उसका दूसरे से कोई संबंध ही नहीं होता। लेकिन यह तो पागल के लिए बिलकुल स्वाभाविक है। इससे भी ज्यादा चकित इस बात पर है कि जब एक बोलता है तो दूसरा चुप रहता है। और ऐसा लगता है कि सुन रहा है। और जैसे ही वह बंद करता है कि दूसरा जो बोलता है तो उसे सुनकर लगता है कि उसने उसे बिलकुल नहीं सुना। क्योंकि अगर वह आकाश की बात कर रहा था, तो वह पाताल की शुरू करता है। उसमें कोई संबंध ही नहीं होता।

तब वह अंदर गया और उसने जाकर पूछा कि और सब तो मेरी समझ में आ गया; आप गहरी बातें कर रहे हैं, वह समझ में आ गया। समझ में यह नहीं आ रहा है कि जब एक बोलता है, तो दूसरा चुप क्यों हो जाता है! तो वे दोनों हंसने लगे और उन्होंने कहा कि क्या तुम हमें पागल समझते हो?

इस दुनिया में पागल भर अपने को कभी पागल नहीं समझते। और जो आदमी अपने को पागल समझता हो, समझना चाहिए, वह पागल होने के ऊपर उठने लगा।

क्या तुम हमें पागल समझते हो? उन दोनों ने कहा। नहीं, जुग ने कहा, ऐसी भूल मैं कैसे कर सकता हूं! पागल बिलकुल आपको नहीं समझता हूं। पर यही मैं पूछ रहा हूं कि जब एक बोलता है, तो दूसरा चुप क्यों रह जाता है! तो उन्होंने कहा, क्या तुम समझते हो कि हमें कनवर्सेशन का नियम भी मालूम नहीं, बातचीत करने की व्यवस्था भी मालूम नहीं? हमें मालूम है कि जब एक बोले तो दूसरे को चुप रहना चाहिए। जुग ने कहा, जब तुम्हें इतना मालूम है, तो मैं यह और पूछना चाहता हूं कि जो एक बोलता है, उससे दूसरे के बोलने का कभी कोई संबंध ही नहीं होता! दोनों फिर हंसने लगे। उन्होंने कहा, खैर, हम तो पागल समझे जाते हैं, लेकिन इस जमीन पर जहां भी लोग बोलते हैं दो, उनकी बातों में कोई संबंध होता है? जुग घबड़ाकर वापस लौट आया। उसने अपने संस्मरण में लिखा है कि उस दिन से मैं भी सोचता हूं जब किसी से बात करता हूं—संबंध है!

थोड़ा संबंध हम बना लेते हैं। जब आपसे मैं बात कर रहा हूं? अगर हम पागल नहीं हैं—जिसकी कि संभावना बहुत कम है—तो जब आप बोल रहे हैं, तब मैं अपने भीतर बोले चला जाता हूं। जैसे ही आप चुप होते हैं, मैं बोलना शुरू करता हूं। मैं जो बोलना शुरू करता हूं? उसका संबंध मेरे भीतर जो मैं बोल रहा था, उससे होता है; आपसे नहीं होता। हा, इतना संबंध हो सकता है जैसा खूंटी और कोट का होता है, कि आपकी बात में से कोई एक बात पकड़ लूं, खूंटी बना लूं और मेरे भीतर जो चल रहा था, उसको उस पर टांग दूं। बस, इतना ही संबंध होता है।

अर्जुन और कृष्ण की चर्चा में यह मौका बार—बार आएगा, इसलिए मैंने इसे ठीक से आपसे कह देना चाहा। अर्जुन ने बिलकुल नहीं सुना कि गा ने क्या कहा है। नहीं कहा होता, ऐसी ही स्थिति है। वह अपने भीतर की ही सुने चला जा

रहा है। वह कह रहा है, ये पूज्य, ये द्रोण, ये भीष्म...। वह यह सोच रहा होगा भीतर। इधर कृष्ण क्या बोल रहे हैं, वे जो बोल रहे हैं, वह परिधि के बाहर हो रहा है। उसके भीतर जो चल रहा है, वह यह चल रहा तं। वह कृष्ण से कहता है कि मधुसूदन, ये पूज्य, ये प्रिय; इन्हें मैं भार सकता हूं? मैं अर्जुन। इसे ध्यान रखना। उसने कृष्ण की बात नहीं सेनी।

प्रश्न :

भगवान श्री, आपने बताया कि प्रोफेसर पागल होते हैं। तो आप पहले दर्शनशास्त्र के प्राध्यापक थे, अब आप आचार्य बन गए हैं। तो हमको आप उपलब्ध हुए हैं, यह हमारा सौभाग्य है। आपने अभी एक बात बताई ईगो के बारे में। तो एक प्रश्न यह उठता है कि ईगो के बिना तो प्रोजेक्यान होता ही नहीं। और साइकोलाजिस्ट जो हैं—आप तो आत्म—संश्लेषक हैं—मगर साइकोलाजिस्ट तो यह कहते हैं कि ईगो फुलफिलमेंट के बिना व्यक्तित्व का पूर्णतया विकास नहीं होता। और आप अहं—शून्यता की बात करते हैं, तो क्या ईगो को एनाइलेट करने का आप सूचन दे रहे हैं?

एक तो मैंने कहा कि प्रोफेसर के पागल होने की संभावना ज्यादा होती है। पागल हो ही जाता है, ऐसा नहीं कहा। और दूसरा यह भी नहीं कहा है कि सभी पागल प्रोफेसर होते हैं। ऐसा भी नहीं कहा है; संभावना ज्यादा होती है। असल में जहा भी तथाकथित शान का भार ज्यादा हो, बर्डन हो, वहीं चित्त विक्षिप्त हो सकता है। **ज्ञान तो चित्त को मुक्त करता है, शान का भार विक्षिप्त करता है। और जान, जो मुक्त करता है, वह स्वयं से आता है। और ज्ञान, जो विक्षिप्त कर देता है, वह स्वयं से कभी नहीं आता, वह सदा पर से आता है।**

दूसरी बात पूछी है कि मनोवैज्ञानिक तो अहंकार को विकसित करने की बात करते हैं। मैं तो अहंकार को शून्य करने की बात करता हूं। मनोवैज्ञानिक निश्चित ही अहंकार को विकसित करने की बात करेंगे। सभी मनोवैज्ञानिक नहीं; बुद्ध नहीं करेंगे, कृष्ण नहीं करेंगे, महावीर नहीं करेंगे। फ्रायड करेगा, एरिक्सन करेगा। करेगा, उसका कारण है। क्योंकि फ्रायड या एरिक्सन के लिए अहंकार से ऊपर कोई और सत्य नहीं है। तो जो आखिरी सत्य है, उसको विकसित किया जाना चाहिए। महावीर, बुद्ध या कृष्ण के लिए अहंकार आखिरी सत्य नहीं है, केवल बीच की सीढ़ी है। निरहंकार आखिरी सत्य है। अहंकार नहीं, ब्रह्म आखिरी सत्य है। अहंकार सिर्फ सीढ़ी है।

इसलिए बुद्ध या महावीर या कृष्ण कहेंगे, अहंकार को विकसित भी करो और विसर्जित भी करो। सीढ़ी पर चढ़ो भी और सीढ़ी को छोड़ो भी। आओ भी उस पर, जाओ भी उस पर से। उठो भी उस तक, पार भी हो जाओ। चूंकि मन के पार भी सत्ता है, इसलिए मन का जो आखिरी सत्य है-अहंकार-वह पार की सत्ता के लिए छोडने का पहला कदम होगा। अगर मैं अपने घर से आपके घर में आना चाहूं र तो मेरे घर की आखिरी दीवार छोड़ना ही आपके घर में प्रवेश का पहला कदम होगा। मन की आखिरी सीमा अहंकार है। अहंकार से ऊपर मन नहीं जा सकता।

चूंकि पश्चिम का मनोविज्ञान मन को आखिरी सत्य समझ रहा है, इसलिए अहंकार के विकास की बात उचित है। उचित कह रहा हूं सत्य नहीं। सीमा के भीतर बिलकुल ठीक है बात। लेकिन जिस दिन पश्चिम के मनस-शास्त्र को एहसास होगा, और एहसास होना शुरू हो गया है। जुंग के साथ दीवार टूटनी शुरू हो गई है। और अनुभव होने लगा है कि अहंकार के पार भी कुछ है।

लेकिन अभी भी अहंकार के पार का जो अनुभव हो रहा है पश्चिम के मनोविज्ञान को, वह अहंकार के नीचे हो रहा है-बिलो ईगो; बियांड ईगो नहीं हो रहा है। अहंकार के पार भी कुछ है-मतलब अचेतन, चेतन से भी नीचे-अति चेतन नहीं, सुपर कांशस नहीं, चेतन के भी आगे नहीं। लेकिन यह बड़ी शुभ घड़ी है। अहंकार के पार तो कम से कम कुछ है, नीचे ही सही। और अगर नीचे है तो ऊपर होने की बाधा कम हो जाती है। और अगर हम अहंकार के पार नीचे भी कुछ स्वीकार करते हैं, तो आज नहीं कल ऊपर भी स्वीकार करने की सुविधा बनती है।

मनोविज्ञान तो कहेगा, अहंकार को ठीक से इंटिग्रेटेड, क्रिस्टलाइब्द, अहंकार को ठीक शुद्ध, साफ, संश्लिष्ट हो जाना चाहिए। यही इडिविजुएशन है, यही व्यक्तित्व है। कृष्ण नहीं कहेंगे। कृष्ण कहेंगे, उसके आगे एक कदम और है। संश्लिष्ट, एकाग्र हुए अहंकार को किसी दिन समर्पित हो जाना चाहिए, सरेंडर्ड हो जाना चाहिए। वह आखिरी कदम है अहंकार की तरफ से। लेकिन ब्रह्म की तरफ वह पहला कदम है।

निश्चित ही बूंद अपने को खो दे सागर में, तो सागर हो सकती है। और अहंकार अपने को खो दे सागर में, तो ब्रह्म हो सकता है। लेकिन खोने के पहले होना तो चाहिए, बूंद भी होनी तो चाहिए। अगर बूंद ही न हो, भाप हो, तो सागर में खोना मुश्किल है। अगर कोई भाप की बूंद उड़ रही हो, तो उससे हम पहले कहेंगे, बूंद बन जाओ। फिर बूंद बन जाने

पर कहेंगे कि जाओ, सागर में कूद जाओ क्योंकि भाप सीधी सागर में नहीं कूद सकती, कितना ही उपाय करे, आकाश की तरफ उड़ेगी, सागर में कूद नहीं सकती। बूंद कूद सकती है।

तो पश्चिम का मनोविज्ञान बूंद बनाने तक है, कृष्ण का मनोविज्ञान सागर बनाने तक है। लेकिन पश्चिम के मनोविज्ञान से गुजरना पड़ेगा। जो अभी भाप हैं, उनको फ्रायड और जुंग के पास से गुजरना पड़ेगा, तभी वे. कृष्ण के पास पहुंच सकते हैं। लेकिन बहुत से भाप के कण सीधे ही कृष्ण तक पहुंचना चाहते हैं, वे मुश्किल में पड़ जाते हैं। बीच में फ्रायड है ही, उससे बचा नहीं जा सकता। अंत वह नहीं है, लेकिन प्रारंभ वह जरूर है।

कृष्ण का मनोविज्ञान चरम मनोविज्ञान है, दि सुप्रीम। जहां से मन समाप्त होता है, वहां है वह। वह लास्ट बैरियर पर है। और फ्रायड और एडलर मन की पहली सीमा की चर्चा कर रहे हैं। यह अगर खयाल में रहे, तो कठिनाई नहीं होगी।
मैं भी कहूंगा, अहंकार को संश्लिष्ट करें, ताकि एक दिन समर्पित कर सकें। क्योंकि समर्पित वही कर सकेगा जो संश्लिष्ट है। जिसके अपने ही अहंकार के पच्चीस खंड हैं, जो स्किजोफ्रेनिक है, **जिसके भीतर एक मैं भी नहीं है, कई मैं हैं-वह समर्पण करने कैसे जाएगा? एक मैं को समर्पण करेगा, दूसरा कहेगा, रहने दो, वापस आ जाओ।**
हम अभी ऐसे ही हैं। मनोविज्ञान की समस्त खोजें कहती हैं, हम पोलीसाइकिक हैं। हमारे भीतर एक मैं भी नहीं है, बहुत मैं हैं, अनेक मैं हैं। रात एक मैं कहता है कि सुबह पांच बजे उठेंगे, कसम खा लेता है। सुबह पांच बजे दूसरा मैं कहता है, सर्दी बहुत है। छोड़ो, कहां की बातों में पड़े हो! फिर कल देखेंगे। करवट लेकर सो जाता है। सुबह सात बजे तीसरा मैं कहता है कि बड़ी भूल की। शाम को तय किया था, पांच बजे सुबह बदले क्यों? बड़ा पश्चात्ताप करता है। आप एक ही आदमी पांच बजे तय किए थे, तो सुबह किस आदमी ने आपसे कहा कि सो जाओ! आपके भीतर ही कोई बोल रहा है, बाहर कोई नहीं बोल रहा है। और जब सो ही गए थे पांच बजे, तो सुबह सात बजे पश्चात्ताप क्यों कर रहे हैं? आप ही सोए थे, किसी ने कहा नहीं था। अब यह पश्चात्ताप कौन कर रहा है? सामान्यत: हमें खयाल आता है कि मैं एक मैं हूं? इससे बड़ा कनफ्यूजन पैदा होता है। हमारे भीतर बहुत मैं हैं। एक मैं कह देता है उठेंगे, दूसरा मैं कहता है नहीं उठते, तीसरा मैं कहता है पश्चात्ताप करेंगे। चौथा मैं सब भूल जाता है, कोई याद ही नहीं रखता इन सब बातों की। और ऐसे ही जिंदगी चलती चली जाती है।

मनोविज्ञान कहता है, पहले मैं को एक करो।
एक मैं हो तो समर्पण हो सकता है। पच्चीस स्वर हों तो समर्पण कैसे होगा! इसलिए भगवान के सामने एक मै तो झुक जाता है चरणों में, दूसरा मैं अकड़कर खड़ा रहता है, वहीं मंदिर में। एक मैं तो चरणों, में सिर रखे पड़ा रहता है, दूसरा देखता रहता है कि मंदिर में कोई देखने वाला आया कि नहीं आया। एक ही आदमी खड़ा है, पर दो मैं है। एक वहा चरणों में सिर रखे है, दूसरा झांककर देख रहा है कि लोग देख रहे हैं कि नहीं देख रहे हैं! अब समर्पण कर रहे हो, तो लोगों से, देखने वालों से क्या लेना—देना है! एक मैं नीचे चरणों में पड़ा है, दूसरा मैं कह रहा है, कहा के खेल में पड़े हो! सब बेकार है। कहीं कोई भगवान नहीं है। एक मैं इधर भगवान के चरण पकड़े हुए है, दूसरा मैं दुकान पर बैठा हुआ काम में लगा है।

मैं संश्लिष्ट होना चाहिए, तभी समर्पण हो सकता है। इसलिए मैं इनमें विरोध नहीं देखता। मैं इनमें विकास देखता हूं। फ्रायड अंत नहीं है, लेकिन महत्वपूर्ण है और मैं संश्लिष्ट करने में उपयोगी है। कृष्ण अंत हैं। वहा एक सीमा पर जाकर मैं को समर्पित भी कर देना है।

गुरूनहत्वा हि महानुभावान् ।
श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके ।।5।।

हत्वार्थकामांस्तु गुरूनिहैव ।
भुञ्जीय भोगान्रूधिरप्रदिग्धान् ।।7।।

महानुभाव गुरूजनों को न मारकर हम लोक में भिक्षा का अन्न भी भोगना कल्याणकारक समझता हूं,

क्योंकि गुरूजनों को मारकर भी हम लोक में रुधिर से सने हुए अर्थ और कामरूप भोगों को ही तो भोगूंगा।

न चैतद्विद्म: कतरन्नो गरीयो ।
यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयु: ।

यानेव हत्वा न जिजीविषाम—

स्तेsवस्थिता प्रमुखे धार्तशष्ट्र: ।।6।।

हम लोग यह भी नहीं जानते कि हमारे लिए क्या करना श्रेष्ठ है, अथवा यह भी नहीं जानते कि हम जीतेंगे या

हमको वे जीतेंगे। और जिनको मारकर जीना भी नहीं चाहते, वे ही धृतराष्ट्र के पुत्र हमारे सामने खड़े हैं।

कार्पण्यदोषोयहतस्वभाव: ।
पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेता:।

यव्छ्रुईय: स्यान्निश्चतं ब्रूहि तन्मे ।
शिष्यस्तेsहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।।7।।

इसलिए कायरतारूत्य दोष करके उपहत हुए स्वभाव वाला और धर्म के विषय में मोहितीचत्त हुआ मैं आपको पूछता हूं, जो कुछ निश्चय किया हुआ कल्याण कारक साधन हो, वह मेरे लिये कहिए क्योंकि मैं आपका शिष्य हूं, इसलिए आपके शरण हुए मेरे को शिक्षा दीजिए।

अर्जुन अपनी ही बात कहे चला जाता है। पूछता मालूम पड़ता है गा से, लेकिन वस्तुत: कृष्ण को ही धर्म क्या है, बताए चला जाता है। पूछ रहा है कि अविद्या से मेरा मन भर गया है। क्या उचित है, क्या अनुचित है, उसका मेरा बोध खो गया है। लेकिन साथ ही कहे चला जा रहा है कि अपनों को मारकर तो जो अन्न भी खाऊंगा, वह रक्त से भरा हुआ होगा। **अपनों को मारकर सम्राट बन जाने से तो बेहतर है कि मैं सड़क का भिखारी हो जाऊं। निर्णय दिए चला जा रहा है। निर्णय दिए चला जा रहा है और कह रहा है, अविद्या से मेरा मन भर गया है।** दोनों बातों में कोई संगति नहीं है। **अविद्या से मन भर गया है, तो अर्जुन के पास कहने को कुछ भी नहीं होना चाहिए। इतना ही काफी है कि अविद्या से मेरा मन भर गया है; मुझे मार्ग बताएं।** मैं नहीं जानता, क्या ठीक है, क्या गलत है। नहीं, लेकिन साथ ही वह कहता है कि यह ठीक है और यह गलत है।

चित्त हमारा कितना ही कहे कि अविद्या से भर गया, अहंकार मानने को राजी नहीं होता। अहंकार कहता है, मैं और अविद्या से भर गया! मुझे पता है कि धर्म क्या है और अधर्म क्या है।

दूसरी बात यह भी देख लेने जैसी है कि **अहंकार जहा भी होता है, वहा सदा अतियों का चुनाव करता है, एक्सट्रमि इज दि च्वाइस। एक अति से ठीक दूसरी अति को चुनता है। अहंकार कभी मध्य में खड़ा नहीं होता; खड़ा नहीं हो सकता; क्योंकि ठीक मध्य में अहंकार की मृत्यु है।** तो वह कहता है, सम्राट होने से तो भिखारी होना बेहतर है। दो आखिरी पोलेरिटी चुनता है। वह कहता है, सम्राट होने से तो भिखारी होना बेहतर है। अर्जुन या तो सम्राट हो सकता है या भिखारी हो सकता है, बीच में कहीं नहीं हो सकता। या तो उस छोर पर नंबर एक या इस छोर पर नंबर एक; लेकिन नंबर एक ही हो सकता है।

यह थोड़ा ध्यान रखने जैसा है। बर्नार्ड शा ने कभी कहा कि अगर मुझे स्वर्ग भी मिले और नंबर दो होना पड़े, तो मैं इनकार करता हूं। मैं नर्क में ही रहना पसंद कर लूंगा, लेकिन नंबर एक होना चाहिए। नंबर एक होना चाहिए, नर्क भी पसंद कर लूंगा। नंबर दो मी अगर हो जाता हूं, तो स्वर्ग मुझे नहीं चाहिए। क्या मजा होगा उस स्वर्ग में जिसमें नंबर दो हो गए! नर्क में भी मजा हो सकता है, अगर नंबर एक...। **इसलिए नंबर एक होने वाले लोग अगर सब नर्क में इकट्ठे हो जाते हों तो बहुत हैरानी नहीं है। दिल्ली से नर्क का रास्ता एकदम करीब है। दिल्ली से गए कि नर्क में गए। वहा बीच में गैप भी नहीं है। वह जो नंबर एक होने के लिए पीड़ित है, अगर उससे सम्राट होना छूटता हो तो वह तत्काल जो दूसरा विकल्प है, वह भिखारी होने का है।**

यह विकल्प भी देखना जरूरी है; क्योंकि यह विकल्प सिर्फ अहंकार ही चुनता है। यह विकल्प—एक्सट्रमि, अति का विकल्प—सदा अहंकार ही चुनता है। क्योंकि अहंकार को इससे मतलब नहीं है कि सम्राट बनो कि भिखारी बनो, मतलब इससे है कि नंबर एक!

अर्जुन कह रहा है कि इससे तो बेहतर है कि मैं भिखारी ही हो जाऊं, सड़क पर भीख मांगू। ऊपर से दिखाई पड़ता है कि बड़ी विनम्रता की बात कह रहा है। सम्राट होना छोड़कर भीख मांगने की बात कह रहा है। लेकिन भीतर से बहुत फर्क नहीं है। भीतर बात वही है। भीतर बात वही है, अति पर होने की बात अहंकार की इच्छा है। आखिरी पोल पर, ध्रुव पर खड़े होने की इच्छा अहंकार की इच्छा है। या तो इस कोने या उस कोने, मध्य उसके लिए नहीं है।

बुद्ध के मनोविज्ञान का नाम मध्यमार्ग है, दि मिडल वे। और जब बुद्ध से किसी ने पूछा कि आप अपने मार्ग को मज्झिम निकाय—बीच का मार्ग—क्यों कहते हैं? तो **बुद्ध ने कहा, जो दो अतियों के बिलकुल बीच में खड़ा हो जाए, वही केवल अहंकार से मुक्त हो सकता है, अन्यथा मुक्त नहीं हो सकता। ।**
एक छोटी—सी घटना बुद्ध के जीवन के साथ जुड़ी है। एक गांव में बुद्ध आए हैं। सम्राट दीक्षित होने आ गया। और उस सम्राट ने कहा कि मुझे भी दीक्षा दे दें। बुद्ध के भिक्षुओं ने बुद्ध के कान में कहा, सावधानी से देना इसे आप। क्योंकि हमने जो इसके संबंध में सुना है, वह बिलकुल विपरीत है। यह आदमी कभी रथ से नीचे नंगे पैर भी नहीं चला है। यह आदमी अपने महल में, जो भी संभव हो सका सारे भोग के साधनों में डूबा पड़ा है। यह अपनी सीढ़िया भी चढ़ता है तो सीढ़ियों के किनारे रेलिंग की जगह नंगी स्त्रियों को खड़ा रखता है, उनके कंधों पर हाथ रखकर चढ़ता है। जरा इससे सावधान रहना। शराब और स्त्री के अतिरिक्त इसकी जिंदगी में कभी कुछ नहीं आया है। और यह आज अचानक भिक्षु होने और त्यागी बनने, तपश्चर्या का व्रत लेने आया है। यह आदमी बीच में धोखा न दे जाए।

बुद्ध ने कहा, जहां तक मैं आदमियों को जानता हूं यह आदमी धोखा न देगा। यह एक अति से ऊब गया, अब दूसरी अति पर जा रहा है। एक एक्सट्रीम से ऊब गया और अब दूसरे एक्सट्रीम पर जा रहा है। पर उन्होंने कहा, हमें संदेह होता है, क्योंकि यह कल तक बिलकुल और था। बुद्ध ने कहा, मुझे संदेह नहीं होता है। इस तरह के लोग अक्सर ही अतियों में चुनाव करते हैं। भय मत करो। उन्होंने कहा, हमें नहीं लगता है कि यह भीख माग सकेगा, सड़क पर नंगे पैर चल सकेगा, धूप—छाव सह सकेगा, हमें नहीं दिखाई पड़ता। बुद्ध ने कहा, यह तुम से ज्यादा सह सकेगा। हंसे वे सब। उन्होंने कहा कि इस मामले में कम से कम बुद्ध निश्चित ही गलत हो जाने वाले हैं।

लेकिन नहीं, बुद्ध गलत नहीं हुए। दूसरे ही दिन से देखा गया कि भिक्षु अगर रास्ते पर चलते, तो रास्ते के नीचे चलता वह सम्राट ' जहा काटे होते। और भिक्षु अगर वृक्ष की छाया में बैठते, तो वह सम्राट धूप में खड़ा रहता। और भिक्षु अगर दिन में एक बार भोजन करते, तो वह सम्राट दो दिन में एक बार भोजन करता।

छह महीने में वह सूखकर काला पड़ गया। अति सुंदर उसकी काया थी। भूख से हाइ?यं ा उसकी बाहर निकल आईं। पैरों में घाव बन गए। बुद्ध ने अपने भिक्षुओं से पूछा कि कहो, तुम कहंर्त थे कि यह आदमी भरोसे का नहीं, और मैंने तुमसे कहा था कि यह आदमी बहुत भरोसे का है, यह आदमी तुमसे आगे तपश्चर्या कर लेगा। ?? पर, वे भिक्षु कहने लगे, हम हैरान हैं कि आप कैसे पहचाने!

बुद्ध ने कहा, **अहंकार सदा एक अति से दूसरी अति चुन लेता है। बीच में नहीं रुक सकता। यह सम्राटों में सम्राट था, यह भिक्षुओं में भिक्षु है। यह सम्राटों में नंबर एक सम्राट था। इसने सारी सुंदर स्त्रिया राज्य की इकट्ठी कर रखी थीं। इसने सारे हीरे—जवाहरात अपने महल के रास्तों पर जड़ रखे थे। अब यह भिक्षुओं में साधारण ' भिक्षु नहीं है। यह भिक्षुओं में असाधारण भिक्षु है। तुम चलते हो सीधे रास्ते पर, यह चलता है तिरछे रास्ते पर। तुम काटे बचाकर चलते हो, यह काटे देखकर चलता है कि कहा—कहा हैं। तुम छाया में बैठते हो, यह धूप में खड़ा होता है। यह नंबर एक रहेगा, यह कहीं भी रहे। यह नंबर एक होना नहीं छोड़ सकता; यह तुम्हें मात करके रहेगा। इसने सम्राटों को मात किया, तुम भिखारियों को कैसे मात नहीं करेगा! अहंकार अति चुनता है।**
अर्जुन कह रहा है कि छोड़ दूं सब साम्राज्य, कुछ अर्थ नहीं। भिक्षा माग लेंगे। माग सकता है, बिलकुल माग सकता है। अहंकार की वहा भी तृप्ति हो सकती है। मध्य में नहीं रुक सकता। अति से अति पर जा सकता है। **अति से अति पर जाने में कोई रूपांतरण, कोई टांसफार्मेशन नहीं है।**
फिर बुद्ध एक दिन उस सम्राट के पास गए साझ को। रुग्ण, बीमार, वह राह के किनारे पड़ा था। बुद्ध ने उससे कहा, मैं एक बात—पूछने आया हूं। मैंने सुना है कि तुम जब सम्राट थे, तो वीणा बजाने में बहुत कुशल थे। मैं तुमसे पूछने आया हूं कि वीणा के तार अगर बहुत कसे हों, तो संगीत पैदा होता है? उसने कहा, कैसे पैदा होगा! तार टूट जाते हैं। और बुद्ध ने कहा, बहुत ढीले हों तार, तब संगीत पैदा होता है? उस सम्राट ने कहा कि नहीं, बहुत ढीले हों तो टंकार ही पैदा नहीं होती संगीत कैसे पैदा होगा? बुद्ध ने कहा, अब मैं जाऊं। एक बात और तुमसे कह जाऊं कि जो वीणा के तारों का नियम है—न बहुत ढीले, न बहुत कसे; अर्थात न कसे न ढीले, बीच में कहीं; जहा न तो कहा जा सके कि तार

कसे हैं, न कहा जा सके कि तार ढीले हैं—ठीक मध्य में जब तार होते हैं, तभी संगीत पैदा होता है। जीवन की वीणा का भी नियम यही है।

काश! अर्जुन बीच की बात करता, तो कृष्ण कहते, जाओ, बात समाप्त हो गई, कोई अर्थ न रहा। लेकिन वह बीच की बात नहीं कर रहा है। वह एक अति से दूसरी अति की बात कर रहा है। दूसरी अति पर अहंकार फिर अपने को भर लेता है।

प्रश्न :
भगवान श्री, यहां पर एक मुद्दे का प्रश्न आ गया है श्रोतागणों से। पूछते हैं कि कोर्ट में सब से पहले गीता पर क्यों हाथ रखवाते हैं ? कोर्ट में रामायण— या उपनिषद क्यों नहीं रखते? क्या गीता में एक श्रद्धा है या सिर्फ अंधश्रद्धा है?
पूछा है कि अदालत में शपथ लेते वक्त गीता पर हाथ क्यों रखवाते हैं? रामायण पर क्यों नहीं रखवा लेते? उपनिषद पर क्यों नहीं रखवा लेते? बड़ा कारण है। पता नहीं अदालत को पता है या नहीं, लेकिन कारण है; कारण बड़ा है।

राम, कितने ही बड़े हों, लेकिन इस मुल्क के चित्त में वे पूर्ण अवतार की तरह नहीं है; अंश है उनका अवतार। उपनिषद के ऋषि कितने ही बड़े ज्ञानी हों, लेकिन अवतार नहीं हैं। कृष्ण पूर्ण अवतार हैं। परमात्मा अगर पूरा पृथ्वी पर उतरे, तो करीब—करीब कृष्ण जैसा होगा। इसलिए कृष्ण इस मुल्क के अधिकतम मन को छू पाए हैं; बहुत कारणों से। एक तो पूर्ण अवतार का अर्थ होता है, मल्टी डायमेंशनल, बहुआयामी; जो मनुष्य के समस्त व्यक्तित्व को स्पर्श करता हो। राम वन डायमेंशनल हैं।
हर्बर्ट मारक्यूस ने एक किताब लिखी है, **वन डायमेंशनल मैन, एक आयामी मनुष्य।** राम वन डायमेंशनल हैं, **एक आयामी हैं, एकसुरे है, एक ही स्वर है उनमें।** स्वभावत: एक ही स्वर का आदमी सिर्फ उस एकसुरे आदमियों के लिए प्रीतिकर हो सकता है, सबके लिए प्रीतिकर नहीं हो सकता। महावीर और बुद्ध सभी एकसुरे हैं। एक ही स्वर है उनका। इसलिए समस्त मनुष्यों के लिए महावीर और बुद्ध प्रीतिकर नहीं हो सकते। हा, मनुष्यों का एक वर्ग होगा, जो बुद्ध के लिए दीवाना हो जाए, जो महावीर के लिए पागल हो जाए। लेकिन एक वर्ग ही होगा, सभी मनुष्य नहीं हो सकते।
लेकिन कृष्ण मल्टी डायमेंशनल हैं। ऐसा आदमी जमीन पर खोजना कठिन है, जो कृष्ण में प्रेम करने योग्य तत्व न पा ले। चोर भी कृष्ण को प्रेम कर सकता है। नाचने वाला भी प्रेम कर सकता है। साधु भी प्रेम कर सकता है; असाधु भी प्रेम कर सकता है। युद्ध। के क्षेत्र में लड़ने वाला भी प्रेम कर सकता है; गोपियों के साथ नृत्य करने वाला भी प्रेम कर सकता है। कृष्ण एक आर्केस्ट्रा हैं। बहुत वाद्य हैं; सब बज रहे हैं। जिसे जो वाद्य पसंद हो, वह अपने वाद्य को तो प्रेम कर ही सकता है। और इसलिए पूरे कृष्ण को प्रेम करने वाले आदमी पैदा नहीं हो सके। जिन्होंने भी प्रेम किया है, उन्होंने कृष्ण में चुनाव किया है।
सूरदास तो बालकृष्ण को प्रेम करते हैं, गोपियों से वे बहुत डरते हैं। इसलिए बालकृष्ण को प्रेम करते हैं। क्योंकि बालकृष्ण उन्हें जमते हैं कि बिलकुल ठीक हैं। ठीक है कि बालक है; तो चलेगा। जवान कृष्ण से सूरदास को डर लगता है, क्योंकि जवान सूरदास से सूरदास को डर लगा है। तो अपना चुनाव है उनका। वह अपना चुनाव कर लेंगे।
अब अगर केशवदास को कृष्ण को प्रेम करना है, तो बालकृष्ण की वह फिक्र ही छोड़ देंगे। वह तो जवान कृष्ण को—जो कि चांद की छाया में नाच रहा है, जिसके कोई नीति—नियम नहीं हैं; जिसकी कोई मर्यादा नहीं, जो अमर्याद है, जिसको कोई बंधन नहीं पकड़ते; जो एकदम अराजक है—तो केशवदास तो उस युवा कृष्ण को चुन लेंगे, बालकृष्ण की फिक्र छोड़ देंगे।
अब तक कृष्ण को पूरा प्रेम करने वाला आदमी नहीं हुआ। क्योंकि पूरे कृष्ण को प्रेम करना तभी संभव है, जब वह आदमी भी मल्टी डायमेंशनल हो। **हम आमतौर से एक आयामी होते हैं। एक हमारा ट्रैक होता है व्यक्तित्व का, एक रेल की पटरी होती है, उस पटरी पर हम चलते हैं।**
मगर कृष्ण में हमें अपनी पटरी के योग्य मिल जाएगा। इसलिए कृष्ण इस मुल्क के हर तरह के आदमी के लिए प्रीतिकर हैं। बुरे से बुरे आदमी के लिए प्रीतिकर हो सकते हैं।
ध्यान रहे, अदालत में अच्छे आदमियों को तो कभी—कभी जाना पड़ता है—यानी जब बुरे आदमी उनको ले जाते हैं, तब जाना पड़ता। है—अदालत आमतौर से बुरे आदमियों की जगह है। बुरा आदमी अगर राम को प्रेम करता होता, तो अदालत में आता ही नहीं। जो अदालत में. आ गया है, राम की कसम खिलाना नासमझी है उसको। कृष्ण की कसम खिलाई जा सकती है। अदालत में आकर भी आदमी कृष्ण को प्रेम करता हुआ हो सकता है। बुरे आदमी के लिए भी कृष्ण खुले हैं। इन बुरे आदमियों के लिए भी उनके मकान का एक दरवाजा है, जो खुला है।

राम वगैरह के मंदिर में इकहरे दरवाजे हैं, कृष्ण के मंदिर में बहुत दरवाजे हैं। वहां शराबी भी जाए, तो उसके लिए भी एक दरवाजा है। असल में कृष्ण से बड़ी छाती का आदमी खोजना बहुत मुश्किल है। इसलिए मैं नहीं कहता कि अदालत को पता होगा—यह मुझे पता नहीं—लेकिन जाने—अनजाने, कृष्ण का रेंज व्यक्तियों को छूने का सर्वाधिक है। अधिकतम व्यक्ति उनसे स्पर्शित हो सकते हैं। ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं है, जिससे कृष्ण आलिंगन करने से इनकार करें, कहें कि तू हमारे लिए नहीं, हट! सबके लिए हैं। इसलिए सर्वाधिक के लिए होने से संभावना है।

और पूछा है कि क्या सिर्फ अंधविश्वास है?

नहीं, सिर्फ अंधविश्वास नहीं है। **इस जगत में सत्य से भी बड़ा सत्य प्रेम है। और जिसके प्रति प्रेम है, उसके प्रति असत्य होना मुश्किल है। असल में जिसके प्रति प्रेम है, हम उसी के प्रति सत्य हो पाते हैं। जिंदगी में हम सत्य वहीं हो पाते हैं, जहा हमारा प्रेम है। और अगर प्रेमी के पास भी आप सत्य न हो पाते हों, तो समझना कि प्रेम का धोखा है।**

अगर एक पति अपनी पत्नी से भी कुछ छिपाता हो और सत्य न हो पाता हो, एक पत्नी अपने पति से भी कुछ छिपाती हो और सत्य न हो पाती हो—कोई बड़ी बात नहीं, छोटी—मोटी बात भी छिपाती हो, अगर उसे क्रोध आ रहा हो और क्रोध को भी छिपाती हो—तो भी प्रेम की कमी है, तो भी प्रेम नहीं है। प्रेम अपने को पूरा नग्न उघाड़ देता है—सब तरह से, सब परतों पर।

अंधविश्वास कारण नहीं है। प्रेम की रग को पकडना जरूरी है, तो ही सत्य बुलवाया जा सकता है। यह भी मैं नहीं जानता कि अदालत को पता है या नहीं। क्योंकि अदालत को प्रेम का कुछ पता होगा, इसमें जरा संदेह है। लेकिन इतना तो मनस—शास्त्र कहता है कि **अगर हम प्रेम की रग को पकड लें, तो आदमी के सत्य बोलने की सर्वाधिक संभावना है। बोलेगा कि नहीं, यह दूसरी बात है। लेकिन अधिकतम संभावना वहीं है, जहां प्रेम की रग को हम पकड़ लेते हैं। और जहां प्रेम नहीं है, वहां अधिकतम असत्य की संभावना है, क्योंकि सत्य का कोई कारण नहीं रह जाता है।**

न हि प्रपश्यामि ममायनुछाद् यव्छोकमुव्छोषणीमीन्द्रयाणाम्।
अवाप्य भूमावसयत्नमृद्धं राज्यंसुराणामीप चाधिपत्यम् ।।8।।

क्योंकि भूमि में निष्कंटक धनधान्य संपन्न राज्य की और देवताओं के स्वामीपन को प्राप्त होकर भी मैं उस उपाय को नहीं देखता हूं जो कि मेरी इंद्रियों के सुखाने वाले शोक को दूर कर सके।

संजय उवाच

एवमुक्त्ता हषीकेशं गुडाकेश: परंतप ।
न योत्स्य हति गोविन्दमुक्त्वा तूष्र्णों बभूव ह ।।9।।

तमुवाच हषीकेश प्रहसन्निव भारत ।
सेनयोरूभयोर्मध्ये विषीदन्तमिदं वच: ।।10।।

संजय बोले :

हे राजन निद्रा को जीतने वाला अर्जुन अंतर्यामी भगवान श्री कृष्ण के प्रति इस प्रकार कहकर फिर (श्री गोविंद को) युद्ध नहीं करूंगा,

ऐसे स्पष्ट कहकर चुप हो गया। उसके उपरांत हे भरतवंशी धृतराष्ट्र अंतर्यामी श्री कृष्ण ने दोनों सेनाओं के बीच में उस शोकयुक्त अर्जुन को हंसते हुए से यह वचन कहा।

अर्जुन अति अनिश्चय की स्थिति में है। संजय कहता है, फिर भी ऐसा कहकर कि मैं युद्ध नहीं करूंगा, अर्जुन रथ में बैठ गया है। अति अनिश्चय की स्थिति में ऐसा निश्चयात्मक भाव कि मैं युद्ध नहीं करूंगा, सोचने जैसा है। इतना डिसीसिव वक्तव्य, इतना निर्णायक वक्तव्य कि मैं युद्ध नहीं करूंगा और इतनी अनिश्चय की स्थिति कि क्या ठीक है,

क्या गलत है, इतनी अनिश्चय की स्थिति कि मन अविद्या से भरा है मेरा, मुझे प्रकाशित करो। लेकिन मुझे प्रकाशित करो, यह कहता हुआ भी वह निर्णय तो अपना ही ले लेता है। वह कहता है, मैं युद्ध नहीं करूंगा।
इसके जरा भीतर प्रवेश करना जरूरी होगा। **अक्सर जब आप बहुत निश्चय की बात बोलते हैं, तब आपके भीतर अनिश्चय गहरा होता है। एक आदमी कहता है कि मैं दृढ़ निश्चय करता हूं। जब ऐसा कोई आदमी कहे, तो समझना कि उसके भीतर अनिश्चय बहुत ज्यादा है, नहीं तो दृढ़ निश्चय की जरूरत नहीं पड़ेगी।** जब एक आदमी कहे, मेरा ईश्वर पर पक्का भरोसा है, तो समझना कि भरोसा भीतर बिलकुल नहीं है। नहीं तो पक्के भरोसे का लेबल लगाने की जरूरत नहीं पड़ेगी। जब एक आदमी बार—बार कहे कि मैं सत्य ही बोलता हूं तब समझना कि भीतर असत्य की बहुत संभावना है। अन्यथा ऐसे बोलने की जरूरत नहीं पड़ेगी।
हम अपने भीतर जो डांवाडोलपन है, उसे निश्चयात्मक वक्तव्यों को ऊपर से थोपकर मिटाने की कोशिश में रत होते हैं। हम सभी, हम सभी जो भीतर बिलकुल निश्चित नहीं है, उसको भी बाहर चेहरे पर निश्चित करके देख लेना चाहते हैं।
अब यह अर्जुन बड़े मजे की बात कह रहा है। वह कह रहा है, मैं युद्ध नहीं करूंगा। उसने तो आखिरी निर्णय ले लिया, उसने निष्पत्ति ले ली। उसने तो कनक्लूडिंग बात कह दी। अब कृष्ण के लिए छोड़ा क्या है? अगर युद्ध नहीं करूंगा, तो अब कृष्ण से पूछने को क्या बचा है? सलाह क्या लेनी है?

इसलिए दूसरी बात जो संजय कह रहा है, वह बड़ी मजेदार है। वह कह रहा है, **कृष्ण ने हंसते हुए.......।**
वह हंसी किस बात पर है? हंसने का क्या कारण है? अर्जुन हंसी योग्य है? इतनी दुख और पीड़ा में पड़ा हुआ, इतने संकट में, इतनी क्राइसिस में और कृष्ण हंसते हैं! लेकिन अब तक नहीं हंसे थे। पहली दफे कृष्ण हंसते हैं उसके वक्तव्य को सुनकर।

उस हंसी का कारण है। कि वे देखते हैं, इतना अनिश्चित आदमी इतने निश्चय वक्तव्य दे रहा है कि युद्ध नहीं करूंगा! धोखा किसको दे रहा है? उसके धोखे पर, उसके सेल्फ डिसेपान पर, उसकी आत्मवचना पर कृष्ण को हंसी आ जाती है। जो जानता है, उसे आएगी। देख रहे हैं कि नीचे तो दरारें ही दरारें हैं उसके मन में। देख रहे हैं कि नीचे तो कटा—कटा मन है उसका, टूटा—टूटा मन है। देख रहे हैं कि नीचे कुछ भी तय नहीं है और ऊपर से वह कहता है कि मैं युद्ध नहीं करूंगा। यह वह अपने को धोखा दे रहा है।
हम सब देते हैं। और जब भी हम बहुत निश्चय की भाषा बोलते हैं, तब भीतर अनिश्चय को छिपाते हैं। जब हम बहुत प्रेम की भाषा बोलते हैं, तो भीतर घृणा को छिपाते हैं। और जब हम बहुत आस्तिकता की भाषा बोलते हैं, तो भीतर नास्तिकता को छिपाते हैं। आदमी उलटा जीता है। ऊपर जो दिखाई पड़ता है, ठीक उससे उलटा भीतर होता है।
इसलिए कृष्ण की हंसी बिलकुल मौजूं है, ठीक वक्त पर है। असामयिक नहीं है, लगेगी असामयिक। अच्छा नहीं लगता यह। बड़ी कठोर बात मालूम पड़ती है कि कृष्ण हंसें। इतने दुख, इतने संकट में पड़ा हुआ अर्जुन, उस पर हंसें! लेकिन हंसी का कारण है। देख रहे हैं उसको कि कैसा दोहरा काम अर्जुन कर रहा है। एक तरफ कुछ कह रहा है, दूसरी तरफ ठीक उलटा वक्तव्य दे रहा है। **दो—सुरे आदमी के वक्तव्य में, दोहरे आदमी के वक्तव्य में हमेशा अंतर्विरोध होता है।** अंतर्विरोध बहुत साफ है। यानी वह ऐसा काम कर रहा है, कि एक हाथ से ईंट रख रहा है मकान की और दूसरे हाथ से खींच रहा है, एक हाथ से दीवार उठाता है, दूसरे हाथ से खींचता है; दिनभर मकान बनाता है, रात गिरा लेता है। यह जो दोहरा काम वह कर रहा है, इसलिए कृष्ण हंस रहे हैं। यह हंसी उसके व्यक्तित्व के इस दोहरेपन पर, इस स्किजोफ्रेनिक, बंटे हुए पन पर हंसी के सिवाय और क्या हो सकता है!
मगर कृष्ण की हंसी में काफी इशारा है। लेकिन मैं नहीं समझता कि अर्जुन ने वह हंसी देखी होगी। और मैं नहीं समझता कि अर्जुन ने वह हंसी सुनी होगी।

आखिरी सूत्र और पढ़ लें।

श्री भगवानवाच

अशोव्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे ।
गतासूनगतासूंश्च नानुशीचन्ति पण्डिता ।।11।।

श्री कृष्ण बोले : हे अर्जुन तू न शौक करने योग्यों के लिए शोक करता है और पंडितों के से वचनों को कहता है, परंतु पंडितजन, जिनके प्राण चले गए है, उनके लिए और जिनके प्राण नहीं गए है, उनके लिए भी नहीं शोक करते हैं।

हंसकर जो कृष्ण ने कहा है, वह और भी कठोर है। वे अर्जुन को कहते हैं कि तुम शास्त्र की भाषा बोल रहे हो, लेकिन पंडित नहीं हो, मूढ़ हो, मूर्ख हो। क्योंकि शास्त्र की भाषा बोलते हुए भी तुम जो निष्पत्तियां निकाल रहे हो, वे तुम्हारी अपनी हैं। शास्त्र की भाषा बोल रहा है—क्या—क्या अधर्म हो जाएगा, क्या—क्या अशुभ हो जाएगा, क्या—क्या बुरा हो जाएगा—पूरी शास्त्र की भाषा अर्जुन बोल रहा है। लेकिन शास्त्र की भाषा पर अपने को थोप रहा है। जो निष्कर्ष लेना चाहता है, वह उसके भीतर लिया हुआ है। शास्त्र से केवल गवाही और समर्थन खोज रहा है।
मूर्ख और पंडित में एक ही फर्क है। मूर्ख भी शास्त्र की भाषा बोल सकता है, अक्सर बोलता है, कुशलता से बोल सकता है। क्योंकि मूर्ख होने और शास्त्र की भाषा बोलने में कोई विरोध नहीं है। लेकिन **मूर्ख शास्त्र से वही अर्थ निकाल लेता है, जो निकालना चाहता है।** शास्त्र से मूर्ख को कोई प्रयोजन नहीं है, प्रयोजन अपने से है। शास्त्र को भी वह अपने साथ खड़ा कर लेता है गवाही की तरह।
सिमन वेल ने कहीं एक वाक्य लिखा है, लिखा है कि कुछ लोग हैं जो सत्य को भी अपने पक्ष में खड़ा करना चाहते हैं, और कुछ लोग हैं जो सत्य के पक्ष में स्वयं खड़े होना चाहते हैं। बस, दो ही तरह के लोग हैं। कुछ लोग हैं जो धर्म को अपनी पीठ के पीछे खड़ा करना चाहते हैं, शास्त्र को अपने पीछे खड़ा करना चाहते हैं; और कुछ लोग हैं जो धर्म के साथ खड़े होने का साहस रखते हैं।

लेकिन धर्म के साथ खड़ा होना बड़ा क्रांतिकारी कदम है, क्योंकि धर्म मिटा डालेगा, आपको तो बचने नहीं देगा। लेकिन धर्म को अपने पक्ष में खड़ा कर लेना बहुत कनफर्मिस्ट, बहुत सरल, बड़ा रूढ़िग्रस्त कदम है, क्योंकि उससे आप अपने को बचाने के लिए सुविधा और सिक्योरिटी खोजते हैं।

अर्जुन पंडित की भाषा बोल रहा है, पंडित जैसी बातें बोल रहा है। लेकिन अर्जुन को ज्ञान से, प्रज्ञा से कोई लेना—देना नहीं है। अपने पक्ष में सारे शास्त्रों को खड़ा करना चाहता है।

और जो व्यक्ति शास्त्र को अपने पक्ष में खड़ा कर लेना चाहता है, स्वभावत: अपने को शास्त्र के ऊपर रख लेता है। और अपने को शास्त्र के ऊपर रख लेने से ज्यादा खतरनाक और कुछ भी नहीं हो सकता है। क्योंकि उसने यह तो मान ही लिया कि वह ठीक है, उसमें गलती होने की तो उसे अब कोई संभावना न रही। उसने अपने ठीक होने का तो अंतिम निर्णय ले लिया। अब वह शास्त्रों में भी अपने को खोज लेता है।

ईसाई फकीर एक बात कहा करते हैं कि शैतान भी शास्त्र से हवाले दे देता है, अक्सर देता है। कोई कठिनाई नहीं है शास्त्र से हवाले दे देने में। आसान है बात। अर्जुन भी वैसे ही शास्त्र के हवाले दे रहा है।

और बड़े मजे की बात यह है कि किस आदमी के सामने शास्त्र के हवाले दे रहा है! जब शास्त्र मूर्तिमंत सामने खड़ा हो, तब शास्त्र के हवाले 'सिर्फ नासमझ दे सकता है। किस आदमी के सामने शान की बातें बोल रहा है! जब शान सामने खड़ा हो, तब ज्ञान की उधार बातें सिर्फ नासमझ बोल सकता है। कृष्ण का हंसना उचित है। और कृष्ण का यह कहना भी उचित है कि अर्जुन तू पंडित की भाषा बोलता है, लेकिन निपट गंवारी का काम कर रहा है। किसके सामने?

सुना है मैंने कि बोधिधर्म के पास एक आदमी गया बुद्ध की एक किताब लेकर, और बोधिधर्म से बोला कि इस किताब के संबंध में मुझे कुछ समझाओ। बोधिधर्म ने कहा कि यदि तू समझता है कि बुद्ध की किताब मैं समझा सकूंगा, तो किताब को फेंक, मुझसे ही समझ ले। और अगर तू समझता है कि बुद्ध की किताब बोधिधर्म नहीं समझा सकेगा, तो मुझे फेंक, किताब को ही समझ ले।

कृष्ण की हंसी बहुत उचित है। किनके हवाले दे रहा है? और बड़े मजे की बात है, पूरे समय कह रहा है, भगवन्! कह रहा है, भगवान! हे भगवान! हे मधुसूदन! और शास्त्र के हवाले दे रहा है। भगवान के सामने भी कुछ नासमझ शास्त्र लेकर पहुंच जाते हैं, उनकी नासमझी का कोई अंत नहीं है। अगर कभी भगवान भी उन्हें मिल जाए, तो उसके सामने

भी वे गीता के उद्धरण देंगे कि गीता में ऐसा लिखा है। तो भगवान को हंसना ही पड़ेगा कि कम से कम अब तो गीता छोड़ो। लेकिन वे नहीं छोड़ेंगे।

वह अर्जुन, जो आम पंडित की नासमझी है, वही कर रहा है। और कृष्ण सीधे और साफ कह रहे हैं। इतनी सीधी और साफ बात कम कही गई है, बहुत कम कही गई है। कृष्ण कह सकते हैं, कहने का कारण है। लेकिन अर्जुन इसे भी सुनेगा या नहीं, यह कहना मुश्किल है! अर्जुन करीब—करीब पूरी गीता में, बहुत समय तक, अंधे और बहरे का ही प्रदर्शन करता है। अन्यथा शायद गीता की जरूरत ही नहीं थी। अगर वह एक बार गौर से आख खोलकर कृष्ण को देख लेता, तो ही बात समाप्त हो गई थी। लेकिन वह भगवान भी कहे चला जाता है और उनकी तरफ ध्यान भी नहीं दे रहा है!

जब खुद भगवान ही सारथी हैं—अगर सच में वह जानता है कि वे भगवान हैं—तो जब वे सारथी बनकर ही रथ पर बैठ गए हों और लगाम उनके ही हाथ में हो, तब वह व्यर्थ अपने सिर पर वजन क्यों ले रहा है सोचने का! अगर वे भगवान ही हैं, ऐसा वह जानता है, तो अब और पूछने की क्या गुंजाइश है? हाथ में लगाम उनके है, छोड़ दे बात! लेकिन वह कहता है भगवान, जानता अभी नहीं है।

हम भी भगवान कहे चले जाते हैं, जानते नहीं हैं। मंदिर में एक आदमी भगवान के सामने खड़े होकर कहता है कि नौकरी नहीं लग रही, नौकरी लगवा दें भगवान। अगर भगवान को जानता ही है, तो इतना तो जानना ही चाहिए कि नौकरी नहीं लग रही, इसका उन्हें पता होगा। यह कृपा करके इन्कमेंशन मत दें। और अगर इतना भी उनको पता नहीं है, तो ऐसे भगवान के सामने हाथ जोड़कर भी कुछ होने वाला नहीं है। जो आम भक्त भगवान के सामने कर रहा है, कह रहा है, भगवान! और शक उसे इतना भी है कि अब यह लड़के को नौकरी नहीं लग रही है..!

जीसस सूली पर आखिरी क्षण में, जब हाथ में उनके खीले ठोंक दिए गए, तो उनके मुंह से एक आवाज निकल गई जोर से कि हे भगवान, यह क्या दिखला रहा है! यह क्या करवा रहा है! एक क्षण को जीसस के मुंह से निकल गया, यह क्या करवा रहा है!

मतलब क्या हुआ? शिकायत हो गई। मतलब क्या हुआ? मतलब यह हुआ कि जीसस कुछ और देखना चाहते थे और कुछ और हो रहा है। मतलब यह हुआ कि समर्पण नहीं है; मतलब यह हुआ कि भगवान के हाथों में लगाम नहीं है, मतलब यह हुआ कि इस क्षण में जीसस भगवान से ज्यादा बुद्धिमान अपने को समझ रहे हैं!

तत्काल जीसस को खयाल आ गया। अर्जुन को बहुत मुश्किल से खयाल आता है; जीसस को तत्काल खयाल आ गया। जैसे ही उनके मुंह से यह आवाज निकली कि हे भगवान, यह क्या दिखला रहा है! दूसरा वाक्य उन्होंने कहा, क्षमा कर। जो तेरी मर्जी—दाई विल बी डन—तेरी ही इच्छा पूरी हो। यह मैं क्या कह दिया—क्या दिखला रहा है! शक पैदा हो गया।

मेरे हिसाब में तो इस एक वचन को बोलते वक्त जीसस मरियम के बेटे जीसस थे और दूसरे वचन को बोलते वक्त वे क्राइस्ट हो गए। इस बीच में क्रांति घटित हो गई। एक क्षण पहले तक वे सिर्फ मरियम के बेटे जीसस थे, जिसने कहा, यह क्या दिखला रहा है! शिकायत मौजूद थी। आस्तिक के मन में शिकायत नहीं हो सकती। दूसरे क्षण में ही तत्काल उनके मुंह से निकला, क्षमा कर; तेरी इच्छा पूरी हो। जो तू कर रहा है, वही ठीक है, उससे अन्यथा ठीक होने का कोई सवाल ही नहीं है।

बस, वे क्राइस्ट हो गए। दूसरे ही क्षण वे मरियम के साधारण बेटे न रहे; वे परमात्मा के पुत्र हो गए।

अर्जुन कहे तो चला जा रहा है, भगवान, भगवान! लेकिन वह संबोधन है, वैसे ही जैसे सभी संबोधन झूठे होते हैं, औपचारिक होते हैं। अभी भगवान उसे दिखाई नहीं पड़ रहा है। दिखाई तो उसे यही पड़ रहा है कि अपना सखा है कृष्ण। आ गया है साथ, सारथी का काम कर रहा है। साथ है, इसलिए पूछ लेते हैं। बाकी भगवान की जो अनुभूति है, वह अगर उसे हो जाए तो पूछने को क्या बचता है! उसे कहना चाहिए कि लगाम तुम्हारे हाथ में है, जो मर्जी। दाई विल बी डन, अपनी इच्छा पूरी करो।

इसलिए उसके भगवान का संबोधन अभी सार्थक नहीं है। क्योंकि वह संबोधनों के बाद भी निर्णय खुद ले रहा है। वह कह रहा है, मैं युद्ध नहीं करूंगा। कह रहा है, भगवान! कह रहा है, मैं युद्ध नहीं करूंगा। इस पर कृष्ण हंसें और कहें कि तू बड़ी विरोधी बातें बोल रहा है, तो उचित ही है।

शेष संध्या बात करेंगे।

प्रवचन 6 : मृत्यु के पीछे अजन्मा, अमृत और सनातन का दर्शन

ओशो – गीता-दर्शन – भाग एक

अध्याय—1-2 – प्रवचन 6 : मृत्यु के पीछे अजन्मा, अमृत और सनातन का दर्शन

प्रश्न :

भगवान श्री, कृष्ण के साथ क्रियाएं बनती हैं और निश्चित परिणाम की इच्छा रहती है। अगर हर समय चित्त निरहंकार या निर्विचार रहा, तो क्रियाएं कैसे होंगी? निर्विचार मन कुछ व्यक्त कैसे कर सकता है? सब निरंतर निर्विचार रहने से निष्क्रिय हो जाएं, तो समाज कैसे चल सकता है? समाज नष्ट नहीं हो जाएगा?

निरहंकार होने से कोई निष्क्रिय नहीं होता है; न ही निर्विचार होने से कोई निष्क्रिय होता है। निरहंकार होने से सिर्फ कर्ता का भाव चला जाता है। लेकिन कर्म परमात्मा को समर्पित होकर पूर्ण गति से प्रवाहित होते हैं। नदी। बहती है, कोई अहंकार नहीं है। हवाएं चलती हैं, कोई अहंकार नहीं। है। फूल खिलते हैं, कोई अहंकार नहीं है। ठीक ऐसे ही सहज, निरहंकारी जीवन से सब कुछ होता है, सिर्फ भीतर कर्ता का भाव संगृहीत नहीं होता है। इसलिए सुबह जो मैंने कहा कि अर्जुन का अहंकार ही पूरे समय उसकी पीड़ा और उसका संताप बना है। इसका यह अर्थ नहीं कि वह अहंकार छोड़ दे, तो कर्म छूट जाएगा।

और जैसा मैंने कहा कि विचार मनुष्य को चिंता में डालता है; निर्विचार हो जाए चित्त, तो चिंता के बाहर हो जाता है। इसका यह अर्थ नहीं है कि निर्विचार चित्त फिर बोलेगा नहीं, करेगा नहीं, अभिव्यक्ति नहीं रहेगी।

नहीं, ऐसा नहीं है। निर्विचार चित्त बास की पोंगरी की तरह हो जाएगा। गीत उससे बहेंगे, लेकिन अपने नहीं, परमात्मा के ही बहेंगे। विचार उससे निकलेंगे, लेकिन अपने नहीं, परमात्मा के। ही निकलेंगे। समस्त के प्रति समर्पित होगा वैसा चित्त। बोलेगा वही, जो परमात्मा बुलाता है; करेगा वही, जो परमात्मा कराता है। स्वयं के बीच का जो मैं का आधार है, वह बिखर जाएगा। इसके बिखरते ही चिंता नहीं है। इसके बिखरते ही कोई संताप, कोई एंग्जाइटी नहीं है।

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिया।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ।।12।।

क्योंकि आत्मा नित्य है, इसलिए शोक करना अयुक्त है। वास्तव में न तो ऐसा ही है कि मैं किसी काल में नहीं था, अथवा तू नहीं था, अथवा ये राजा लोग नहीं थे और न ऐसा ही है कि इससे आगे हम सब नहीं रहेंगे।

अर्जुन ऐसी चिंता दिखाता हुआ मालूम पड़ता है कि ये सब जो आज सामने खड़े दिखाई पड़ रहे हैं, युद्ध में मर जाएंगे, नहीं हो जाएंगे। कृष्ण उसे कहते हैं, **जो है, वह सदा से था; जो नहीं है, वह सदा ही नहीं है।**
इस बात को थोड़ा समझ लेना उपयोगी है।

धर्म तो सदा ऐसी बात कहता रहा है, लेकिन विज्ञान ने भी ऐसी बात कहनी शुरू की है। और विज्ञान से ही शुरू करना उचित होगा। क्योंकि धर्म शिखर की बातें करता है, जिन तक सबकी पहुंच नहीं है। विज्ञान आधार की बातें करता है, जहां हम सब खड़े हैं। विज्ञान की गहरी से गहरी खोजों में एक खोज यह है कि अस्तित्व को अनस्तित्व में नहीं ले जाया जा सकता है। जो है, उसे विनष्ट करने का कोई उपाय नहीं है। और जो नहीं है, उसका सृजन करने का भी। कोई उपाय नहीं है। रेत के एक छोटे से कण को भी हमारे विज्ञान की सारी जानकारी और सारे जगत की प्रयोगशालाएं

और सारे जगत के वैज्ञानिक मिलकर भी विनष्ट नहीं कर सकते हैं; रूपातरित भर कर सकते हैं; नए रूप भर दे सकते हैं।

जिसे हम सृजन कहते हैं, क्रिएशन कहते हैं, वह भी नए रूप का निर्माण है—नए अस्तित्व का नहीं, एक्सिस्टेंस का नहीं—फार्म का। और जिसे हम विनाश कहते हैं, वह भी अस्तित्व का विनाश नहीं है, सिर्फ रूप का, आकृति का। आकृतियां बदली जा सकती हैं, लेकिन जो आकृति में छिपा है, वह अपरिवर्तित है। करीब—करीब ऐसा, जैसे कि गाड़ी का चाक चलता है, घूमता है; लेकिन एक कील है, जो खड़ी है, जिस पर चाक घूमता रहता है। जो चाक को ही जानते हैं, वे कहेंगे, सब परिवर्तन है। जो कील को भी जानते हैं, वे कहेंगे, सब परिवर्तन के मूल में, केंद्र पर ठहरा हुआ भी कुछ है, अनमूविंग भी कुछ है।

और बड़े मजे की बात यह है कि अगर चाक से कील अलग कर लें, तो चाक जरा भी घूम न पाएगा। चाक का घूमना उस पर निर्भर है, जो नहीं घूमता है। रूप बदलते हैं। रूप का बदलना उस पर निर्भर है, जो अरूप है, फार्मलेस है और नहीं बदलता है।

अर्जुन जब कह रहा है कि ये सब मर जाएंगे, तब वह फार्म की, की, आकृति की बात कह रहा है। वह कह रहा है, ये सब मिट जाएगे। उसे आकृति से ज्यादा का कोई भी पता नहीं है।
और जब गा कहते हैं कि नहीं, जिन्हें तू आज देख रहा है, वे पहले नहीं थे, ऐसा नहीं है। वे पहले भी थे। मै भी पहले था, तू भी था। और ऐसा भी नहीं है कि जो हम आज हैं, कल नहीं होंगे। कल भी हम होंगे, सदा—सदा अनादि से अनंत तक हमारा होना है। यहां कृष्य और अर्जुन दो अलग चीजों की बात कर रहे हैं, यह समझ लेना जरूरी है।

अर्जुन रूप की बात कर रहा है, कृष्य अरूप की बात कर रहे हैं। अर्जुन उसकी बात कर रहा है, जो दिखाई पड़ता है; कृष्ण उसकी बात कर रहे हैं, जो नहीं दिखाई पड़ता है। अर्जुन उसकी बात कर रहा है, जो आंखों और हाथों की पकड़ में आता है; कृष्ण उसकी बात कर रहे हैं, जो हाथ, आंख और कान की पकड़ के पीछे छूट जाता है। अर्जुन, जैसा हम सब सोचते हैं, वैसा सोच रहा है। कृष्ण, वैसा कह रहे हैं, जैसा हम सब जान सकें कभी तो सौभाग्य है।
जो दिखाई पड़ता है, वह सदा नहीं था। सदा तो बहुत बड़ा शब्द है। जो दिखाई पड़ता है, वह क्षणभर पहले भी नहीं था। आप मेरे चेहरे को देख रहे हैं, क्षणभर पहले यह चेहरा यही नहीं था, क्षणभर बाद यही नहीं होगा। क्षणभर में बहुत कुछ मेरे शरीर में मर गया और बहुत कुछ नया आ गया।
बुद्ध कहा करते थे—**कोई उनसे मिलने आता, तो वे उससे कहा करते थे —कि तुम जब मिलने आए थे और जब तुम विदा होओगे, तो वही नहीं होओगे जो मिलने आया था।**
घंटेभर में बहुत कुछ बदल जाता है। एक आदमी सत्तर साल में कोई दस बार पूरा का पूरा बदल जाता है। हर सात साल में शरीर के सब अणु—परमाणु बदल जाते हैं। प्रतिक्षण शरीर में कुछ मर रहा है और बाहर फेंका जा रहा है। प्रतिक्षण शरीर में नया जीवित हो रहा है, नया आ रहा है, भोजन से आप नया डाल रहे हैं। और प्रतिपल शरीर से बहुत कुछ बाहर फेंका जा रहा है। सात साल में पूरी शरीर बदल जाता है। लेकिन हम कहे चले जाते हैं कि मै वही हूं। आकृति की समानता, आकृति की एकता बन जाती है।

फिल्म देखते हैं कभी आप। अगर परदे पर फिल्म को धीमे—धीमे चलाया जाए, तो आप बहुत हैरान हो जाएंगे। इतना हाथ, पैर से इतना ऊपर सिर तक उठे, इतने हाथ के उठने के लिए हजारों चित्र लेने पड़ते हैं। फिर वे चित्र एकदम से तेजी से चलाए जाते हैं। एक चित्र इतना ऊपर दूसरा और ऊपर, तीसरा और ऊपर, चौथा और ऊपर। इतनी तेजी से घूमने से हाथ उठता हुआ मालूम पड़ता है। । लेकिन अगर उन्हें धीमे चलाया जाए तो आप पाएंगे कि हाथ के हजार चित्र लेने पड़े हैं।

ठीक ऐसे ही, जब हम एक व्यक्ति को देख रहे हैं, तो हम एक ही व्यक्ति को नहीं देख रहे हैं। जितनी देर हमने देखा, उस बीच हजार चित्र हमारी आंखों ने ग्रहण किए हैं। भीतर चित्र संश्लिष्ट हुए और एक आकृति हमारे मन में बनी। जब तक वह बनी है, तब तक बाहर सब बदल गया है।

विराट आकाश में तारे दिखाई पड़ते हैं। जो तारे हमें दिखाई पड़ते हैं, वे वहीं नहीं होते हैं, जहां दिखाई पड़ते हैं। वहा कभी थे। क्योंकि जो निकटतम तारा है, उससे भी हम तक आने में कोई चार साल रोशनी को लग जाते है। और रोशनी धीमी नहीं चलती। रोशनी चलती है एक सेकेंड में एक लाख छियासी हजार मील। एक लाख छियासी हजार मील प्रति सेकेंड से प्रकाश की किरण यात्रा करती है हम तक। चार साल लगते हैं, निकटतम तारे से हम तक पहुंचने में। जब हमारे पास किरण पहुंचती है, तो हमें तारा वहा दिखाई पड़ता है, जहां चार साल पहले था। इस बीच हो सकता है कि रहा ही न हो, बिखर गया हो। और इतना तो तय है कि उस जगह अब नहीं होगा, जहां चार साल पहले था। इस बीच में वह करोड़ों, अरबों, खरबों मील की यात्रा कर गया है।

इसलिए रात हमें जो तारे दिखाई पड़ते हैं, वे वहा नहीं हैं, जहां दिखाई पड़ते है। रात बड़ी झूठी है, तारे बिलकुल झूठे हैं। कोई तारा वहा नहीं है। और दूर के तारे हैं। किसी तारे को सौ वर्ष लगते हैं, हजार वर्ष लगते हैं रोशनी पहुंचाने में; करोड़ वर्ष लगते हैं। ऐसे तारे हैं कि जब पृथ्वी बनी थी—कोई चार अरब वर्ष पहले—तब से उनकी चली रोशनी अब तक पृथ्वी पर नहीं पहुंची। इन चार अरब वर्षों में न मालूम क्या हो गया होगा!

जो हमें दिखाई पड़ता है, वह वही नहीं है, जो है। उतनी देर में भी बदल जाता है। जब आंख से मैं देखता हूं आपके चेहरे को, तो आपसे किरण मुझ तक आती है, तब तक भी समय गुजरा। आप वही नहीं होते हैं। इस बीच भीतर सब कुछ बदल गया है। आकृति—सदा की तो बात दूर—क्षणभर भी एक नहीं रहती।

हेराक्लतु ने कहा है, यू कैन नाट स्टेप ट्राइस इन दि सेम रिवर—एक ही नदी में दोबारा नहीं उतर सकते। यह भी जरा ठीक नहीं है, बिलकुल ठीक नहीं है। एक ही नदी में एक बार भी उतरना बहुत मुश्किल है, दोबारा उतरना तो असंभव है। एक नदी में एक बार भी उतरना मुश्किल है! क्योंकि जब पैर आपका नदी की सतह को छूता है, तब नीचे नदी भागी जा रही है। जब पैर और थोड़ा नीचे जाता है, तब ऊपर नदी भागी जा रही है। जब पैर और नीचे जाता है, तब नदी भागी जा रही है। आपका पैर नदी में एक फीट उतरता है, उस बीच नदी का सारा पानी भागा जा रहा है। जब आप ऊपर छुए थे, तब नीचे का पानी भाग गया है। जब आप नीचे पहुंचें, तब तक ऊपर का पानी नहीं है।

आकृति तो नदी की तरह भाग रही है। लेकिन आकृति हमें थिर दिखाई पड़ती है। समानता की वजह से तादात्म्य मालूम होता है। वही है जो कल देखा था, वही है जो सुबह देखा था, वही है। प्रतिपल आकृति बदली जा रही है।

यह आकृतियों का जो जगत, यह रूप का जो जगत है, अर्जुन। इस रूप के जगत के प्रति चिंतित है बहुत। हम भी चिंतित हैं बहुत। जो मर ही रहा है प्रतिपल, उसके लिए वह कह रहा है कि ये मर जाएंगे तो क्या होगा? जो मर ही रहा है, जिसे बचाने का कोई उपाय नहीं है, उसके लिए वह चिंतित है; वह असंभव के लिए चिंतित है। और जो असंभव के लिए चिंतित है, वह चिंता से कभी मुक्त नहीं हो सकता। असंभव की चिंता ही विक्षिप्तता बन जाती है।

आकृति को सदा बचाना तो दूर, क्षणभर भी बचाना मुश्किल है। एक आकृति का जगत है—रूप का, ध्वनि का, किरण का, तरंगों का—वह कंपित है पूरे समय। सब बदला जा रहा है। अभी हम यहां इतने लोग बैठे हैं, हम सब बदले जा रहे हैं, सब कंपित हैं, सब तरंगायित हैं, सब वेवरिंग हैं, सब बदल रहा है। इस बदलाहट के जगत को, जो भी सोचता हो बचाने की आकांक्षा, वह असंभव आकांक्षा कर रहा है। असंभव आकांक्षाओं के किनारे टकराकर ही मनुष्य विक्षिप्त हो जाता है।

कृष्ण अर्जुन को कह रहे हैं कि तू जो कह रहा है कि ये मर जाएंगे, तो मैं तुझे कहता हूं? ये पहले भी थे, ये बाद में भी होंगे। तू इनके मरने की चिंता छोड़ दे। क्यों?

मुझे सुकरात की घटना याद आती है। सुकरात जब मर रहा था, तो उसके एक मित्र ने, क्रेटो ने पूछा कि आप मर जाएंगे, लेकिन आप चिंतित और परेज्ञान नहीं दिखाई पड़ते! तो सुकरात ने कहा कि मैं इसलिए चिंतित और परेज्ञान नहीं हूं? क्योंकि मैं सोचता हूं कि यदि मरकर मर ही जाऊंगा, तब तो चिंता का कोई कारण ही नहीं है। क्योंकि जब बचूंगा ही नहीं, तो चिंता कौन करेगा! दुःखी कौन होगा! पीड़ित कौन होगा! कौन जानेगा कि मैं मर गया! अगर मैं मर ही जाऊंगा, तो जानने को भी कोई नहीं बचेगा कि मैं मर गया। जानने को भी कोई नहीं बचेगा कि मैं कभी था। जानने को कोई नहीं बचेगा कि सुकरात जैसा कुछ था। इसलिए चिंता का कोई कारण नहीं है। और अगर नहीं मरा, अगर

नहीं मरा मरकर भी, तब तो चिंता का कोई कारण ही नहीं है। और दो ही संभावनाएं हैं—सुकरात ने कहा—या तो मैं मर ही जाऊंगा और या फिर नहीं ही मरूंगा। और तीसरी कोई भी संभावना नहीं है। इसलिए मैं निश्चित हूं।

कृष्ण अर्जुन को कह रहे हैं कि जो मरने वाला है, वह तेरे बचाने से नहीं बचेगा। और जो नहीं मरने वाला है, वह तेरे मारने से नहीं मर सकता है। इसलिए तू व्यर्थ की चिंता में पड़ रहा है। इस व्यर्थ की चिंता को छोड़।

यह शायद रूप और अरूप के बीच जो जगत का फैलाव है, अगर हम रूप की तरफ से पकड़े, तब भी चिंता व्यर्थ है; क्योंकि जो मिट ही रहा है, मिट ही रहा है, मिट ही रहा है, मिट ही जाएगा, पानी पर खींची गई लकीर है। खिंच भी नहीं पाती और मिटनी शुरू हो जाती है। हाथ उठ भी नहीं पाता और मिट गई होती है। अगर हम अरूप से सोचें, तो जो नहीं मिटेगा, नहीं मिटेगा, नहीं मिटेगा, वह कभी मिटा नहीं है। लेकिन अरूप से— हमारा कोई परिचय नहीं है, अर्जुन का भी कोई परिचय नहीं है।

यह भी समझ लेना जरूरी है कि अर्जुन की चिंता एक और दूसरी ' सूचना भी देती है। अर्जुन कहता है, ये सब मर जाएंगे। इसका मतलब है कि अर्जुन अपने को भी रूप ही समझता है। . था ऐसा नहीं कहेगा। हम दूसरों के संबंध में जो कहते हैं, वह हमारे ?! संबंध में ही कहा गया होता है। जब मैं किसी को मरते देखकर सोचता हूं कि मर गया, खो गया, मिट गया, तब मुझे जानना चाहिए कि मुझे अपने भीतर भी उसका पता नहीं है, जो नहीं मिटता है, नहीं मरता है, नहीं खोता है।

अर्जुन जब चिंता जाहिर कर रहा है कि ये मर जाएंगे, तो वह अपनी मृत्यु की ही चिंता जाहिर कर रहा है। वह यह जानता नहीं कि उसके भीतर भी कुछ है, जो नहीं मरता है। और जब कृष्ण कह रहे हैं कि ये नहीं मरेंगे, तब कृष्ण अपने संबंध में ही कह रहे हैं, क्योंकि वे उसे जानते हैं, जो नहीं मरता है।
हमारा बाहर का ज्ञान, हमारे भीतर के ज्ञान का ही विस्तार है। हमारा जगत का ज्ञान, हमारे स्वयं के ज्ञान का ही विस्तार है, एक्सटेंशन है। जो हम अपने संबंध में जानते हैं, उसे ही फैलाकर हम समस्त के संबंध में जान लेते हैं। और जो हम अपने संबंध में नहीं जानते, उसे हम किसी और के संबंध में कभी नहीं जान सकते। आत्म—ज्ञान ही ज्ञान है; बाकी सब ज्ञान गहरे अज्ञान पर खड़ा होता है। और अज्ञान पर खड़े जान का कोई भी भरोसा नहीं।
अब वह अर्जुन बड़े ज्ञान की बातें करता हुआ मालूम पड़ता है; वह बड़े धर्म की बातें करता हुआ मालूम पड़ता है; लेकिन उसे इतना भी पता नहीं है कि अरूप भी है कोई, निराकार भी है कोई ' अस्तित्व के आधार में कुछ है, जो अमृत है—इसका उसे कोई भी पता नहीं है। और जिसे अमृत का पता नहीं है, उसके लिए जीवन में अभी ज्ञान की कोई भी किरण नहीं फूटी। जिसे मृत्यु का पता है, वह घने अंधकार और अज्ञान में खड़ा है।

कसौटी यही है, अगर ज्ञात है आपको सिर्फ मृत्यु, तो अज्ञान आधार है; और अगर शात है आपको अमृत, नहीं जो मरता, तो ज्ञान आधार है। अगर मृत्यु का भय है मन में—चाहे दूसरे की, चाहे अपनी, इससे कोई भेद नहीं पड़ता—अगर मृत्यु का भय है मन में, तो गवाही है वह भय इस बात की कि आपको अमृत का कोई भी पता नहीं है।
और अमृत ही है; और मृत्यु केवल ऊपर बनी हुई लहरों का नाम है। सागर ही है लेकिन सागर दिखाई नहीं पड़ता; दिखाई लहरें पड़ती हैं। आप कभी सागर के किनारे गए है, तो सागर देखा है? कहेंगे, जरूर देखा है। लेकिन सिर्फ लहरें ही देखी होंगी, सागर नहीं देखा होगा। लहरें सागर नहीं हैं; लहरें सागर में हैं जरूर, लेकिन लहरें सागर नहीं हैं। क्योंकि सागर बिना लहरों के भी हो सकता है, लेकिन लहरें बिना सागर के नहीं हो सकतीं। पर दिखाई लहरें पड़ती हैं; उन्हीं का जाल फैला है ऊपर। आंखें उन्हीं को पकड़ती हैं, कान उन्हीं को सुनते हैं।
और मजा यह है कि जिस लहर को आप देख रहे हैं, लहर का मतलब ही यह है कि आप उसे कभी न देख पाएंगे। क्योंकि लहर, देख रहे हैं, तभी बदली जा रही है। देख भी नहीं पाए कि बदल गई। लहर का मतलब ही है, जो हो रही है, नहीं हो रही है; जिसका होना और न होना एक साथ चल रहा है; जो उठ रही है और गिर रही है; जो है और नहीं है; जो एक साथ डोल रही है। इस लहर को ही हम देखते हैं।
जिसने लहरों को ही सागर समझा, वह चिंतित हो सकता है कि क्या होगा? लहरें मिट रही हैं, क्या होगा? लेकिन जो सागर को जानता है, वह कहेगा, लहरों को बनने दो, मिटने दो। लहरों में जो पानी है, जो सागर है, वह पहले भी था जब लहर नहीं थी, और बाद में भी होगा जब लहर नहीं होगी।

जीसस से एक मित्र ने पूछा है उनके कि अब्राहम—एक बहुत पुराना प्रोफेट हुआ जेरूसलम में, तो अब्राहम बहुत पहले हुआ— **आप अब्राहम के संबंध में क्या जानते हैं? तो जीसस ने कहा, जब अब्राहम हुआ, उसके पहले भी मैं था—बिफोर अब्राहम, आई वाज—मैं अब्राहम के पहले भी था।**
निश्चित ही, उस आदमी को शक हुआ होगा। तीस साल से ज्यादा उम्र नहीं थी जीसस की। अब्राहम को मरे हजारों साल हो गए और यह आदमी कहता है, अब्राहम के पहले भी मैं था। जब अब्राहम नहीं हुआ था, तब भी मैं था।

असल में जीसस सागर की बात कर रहे हैं; उस लहर की बात नहीं कर रहे, जो मरियम से उठी। वह जो जीसस नाम की लहर है, उसकी बात नहीं कर रहे हैं। वह उस सागर की बात कर रहे हैं, जो लहरों के पहले है और लहरों के बाद है।
और जब कृष्ण कहते हैं कि पहले भी हम थे, तू भी था, मैं भी था; ये जो लोग सामने युद्ध के स्थल पर आकर खड़े हैं, 'ये भी थे बाद में भी हम होंगे—तो वे सागर की बात कर रहे हैं। और अर्जुन लहर की बात कर रहा है। और अक्सर सागर और लहर की बात करने वाले लोगों में संवाद बड़ा मुश्किल है, कम्मुनिकेशन बहुत मुश्किल है। क्योंकि कोई पूरब की बात कर रहा है, कोई पश्चिम की बात कर रहा है।
इसलिए गीता इतनी लंबी चलेगी। क्योंकि अर्जुन बार—बार लहरों की बातें उठाएगा, और कृष्ण बार—बार सागर की बात करेंगे, और उनके बीच कहीं भी, कहीं भी कटाव नहीं होता। कहीं वे एक—दूसरे को काटते नहीं। काट दें तो बात हल हो जाए। इसलिए लंबी चलेगी बात। वह फिर दोहरकर लहरों पर लौट आएगा। उसे लहरें ही दिखाई पड़ती हैं। और जिसे लहरें दिखाई पड़ती हैं, उसका भी कसूर क्या है! लहरें ही ऊपर होती हैं।

असल में जो देखने पर ही निर्भर है, उसे लहरें ही दिखाई पड़ेगी। अगर सागर को देखना हो, तो खुली आंख से देखना जरा मुश्किल है। आंख बंद करके देखना पडता है। **अगर सागर को देखना हो, तो सच तो यह है कि आंख से देखना ही नहीं पड़ता, सागर में डुबकी लगानी पड़ती है। और डुबकी लगाते वक्त आंख बंद कर लेनी होती है। लहरों से नीचे उतरना पड़ता है सागर में। लेकिन जो अभी अपने ही चित्त की लहरों से नीचे न उतरा हो, वह दूसरे के ऊपर उठी लहरों के नीचे नहीं जा सकता है। अर्जुन की सारी पीड़ा आत्म—अज्ञान है।**
प्रश्न :
भगवान श्री, यह भी लहर का ही सवाल है। कृष्ण जब अर्जुन से यह कह रहे हैं कि मैं, तू और ये जनादि पहले भी थे और बाद में भी होंगे, इससे यह निष्कर्ष निकलता है, अभी आपने बताया कि आत्मा की फार्मलेस कंटेंट का ही शरीर के फार्म के बजाय महत्व है। लेकिन क्या यह संभावना भी नहीं हो सकती है कि फार्म के बगैर कंटेंट की सम्यक अभिव्यक्ति नहीं हो सकती! घटादि आकृति के बगैर मृत्तिका का क्या प्रयोजन है?

अभिव्यक्ति और अस्तित्व में फर्क है; एक्सिस्टेंस और एक्सप्रेशन में फर्क है। ***जो अभिव्यक्त नहीं है, वह भी हो सकता है।*** *एक बीज है। छिपा है वृक्ष उसमें; अभिव्यक्त नहीं है, लेकिन है। है इस अर्थ में कि हो सकता है; है इस अर्थ में कि छिपा है; है इस अर्थ में कि* ***पोटेंशियल*** *है।*
अभी आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी की एक लेबोरेटरी में, डिलाबार प्रयोगशाला में, एक बहुत अनूठा प्रयोग चल रहा है, वैज्ञानिक प्रयोग है। और वह प्रयोग, मैं समझता हूं, इस समय चलने वाले प्रयोगों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। वह प्रयोग यह है कि बहुत संवेदनशील कैमरे बीज में छिपे हुए उस वृक्ष का भी चित्र ले सकते हैं, जो बीस साल बाद पूरा का पूरा प्रकट होगा।

यह बहुत हैरानी वाली बात है। एक कली का चित्र लेते वक्त भूल से यह घटना घट गई। और विज्ञान की बहुत—सी खोजें भूल से होती हैं। क्योंकि वैज्ञानिक बहुत ट्रेडीशनल माइंड के होते हैं। वैज्ञानिक बहुत कनफर्मिस्ट होते हैं। वैज्ञानिक आमतौर से क्रांतिकारी नहीं होता। क्रांतिकारी कभी—कभी वैज्ञानिक हो जाते हैं, यह दूसरी बात है; लेकिन वैज्ञानिक आमतौर से क्रांतिकारी नहीं होता। वैज्ञानिक तो जितना विज्ञान जानता है, उसको जोर से पकड़ता है, और भी नई चीज को प्रवेश नहीं करने देता। पिछले पूरे का इतिहास यह बताता है कि हर विज्ञान की नई खोज में बाकी वैज्ञानिकों ने जितनी बाधा डाली, उतनी और किसी ने भी नहीं डाली है। **तो अक्सर नई घटना भूल से घटती है; वैज्ञानिक उसको कर नहीं रहा होता, एक्सिडेंटल होती है।**
डिलाबार प्रयोगशाला में बहुत संवेदनशील कैमरों के साथ फूलों पर कुछ अध्ययन किया जा रहा था। और एक कली का फोटो लिया गया, लेकिन कली का फोटो तो नहीं आया, फोटो फूल का आया! कैमरे के सामने कली थी और कैमरे के भीतर फूल आया। तब पहले तो यही खयाल हुआ कि जरूर कुछ कैमरे की फिल्म में कुछ भूल हो गई है। कोई एक्सपोजर पहले हो गया। कुछ न कुछ गलती हो गई है। लेकिन फिर भी फूल के खिलने तक प्रतीक्षा करनी

चाहिए। और जब फूल खिला तो बड़ी कठिनाई हो गई। गलती कैमरे की फिल्म में नहीं हुई थी, गलती विज्ञानिकों की समझ में थी। जब फूल खिला, तो ठीक वह वैसा था, जैसा कि चित्र बना था। तब फिर इस पर काम आगे जारी हुआ। और ऐसा समझा गया कि जो कल होने वाला है, वह भी किसी सूक्ष्म तरंगों के जगत में, इस समय भी हो रहा है, तभी कल हो पाएगा।

एक बच्चा पैदा होता है मां से। नौ महीने अंदर गर्भ में छिपा होता रहता है। किसी को पता नहीं, क्या हो रहा है। नौ महीने बाद पैदा होता है। यह नौ महीने बाद अचानक बही आ जाता, नौ महीने की इसने भीतर यात्रा की है। एक कली जब फूल बनती है, तो फूल बनने के पहले उसके आस—पास की विद्‌युत तरंगें यात्रा करती हैं फूल बनने की—गर्भ में। वह चित्र लिया जा सकता है। इसका मतलब यह हुआ कि आज नहीं कल, हम एक बच्चे के चित्र से उसके बुढ़ापे का चित्र भी ले सकेंगे। मैं मानता हूं ले सकेंगे!

इस अर्थ में ज्योतिष बहुत वैज्ञानिक आधार लेगा। अब तक ज्योतिष वैज्ञानिक नहीं बन सका है। इस अर्थ में वैज्ञानिक बनेगा। जो कल होने वाला है, वह आज भी किसी तल पर हो रहा है—हमें चाहे दिखाई पड़े, चाहे न दिखाई पड़े।
कठिनाई कुछ ऐसी है कि मैं एक वृक्ष के नीचे बैठा हूं, आप वृक्ष के ऊपर बैठे हैं। आप कहते हैं, एक बैलगाड़ी रास्ते पर मुझे दिखाई पड़ रही है। मैं कहता हूं मुझे दिखाई नहीं पड रही है। मैं कहता हूं, कोई बैलगाड़ी नहीं है, रास्ता खाली है। जहां तक रास्ता मुझे दिखाई पड़ता है, रास्ता खाली है। मेरे लिए बैलगाड़ी भविष्य में है, फ्यूचर में है। झाड़ पर आप बैठे हैं, आपके लिए प्रेजेंट में है, वर्तमान में है। आप कहते हैं कि नहीं, बैलगाड़ी है। मै कहता हूं, होगी; है तो नहीं, भविष्य में होगी। लेकिन आप कहते हैं, वर्तमान में है; मुझे दिखाई पड़ रही है।

फिर बैलगाड़ी मुझे भी दिखाई पड़ने लगती है। भविष्य से मेरे लिए भी वर्तमान में आ जाती है। फिर रास्ते पर चली जाती है, थोड़ी देर में मुझे दिखाई पड़नी बंद हो जाती है। अतीत में चली जाती है, पास्ट में। लेकिन झाडू पर से आप कहते हैं कि नहीं, मुझे अभी भी दिखाई पड़ रही है। मेरे लिए अभी भी वर्तमान में है।

मेरे लिए बैलगाड़ी भविष्य में थी, वर्तमान में हुई, अतीत में हो गई। आपके लिए एक ही प्रेजेंट में चल रही है, वर्तमान में चल रही है। आप जरा मुझसे ऊंचाई पर बैठे हैं और कोई खास फर्क नहीं है।
जहां से कृष्ण देख रहे हैं, वह ऊंचाई से देखना है, फ्राम दि पीक। जहां से वे कह रहे हैं कि नहीं, कल भी थे, परसों भी थे, पहले भी थे; अभी भी हैं, कल भी होंगे, परसों भी होंगे। असल में कृष्ण जहां से देख रहे हैं, वहां एवर प्रेजेंट है, वहा सब वर्तमान है। अर्जुन जहां से देख रहा है, वहा से वह कहता है, क्या पता जन्म के पहले थे या नहीं थे! मुझे पता नहीं। बस, उसकी यात्रा जन्म तक जाती है। जन्म तक भी नहीं जाती।
अगर आप ठीक से देखेंगे, तो चार वर्ष से पहले की स्मृति आपको नहीं होती है। चार वर्ष से पहले की बात अनुमान है, इनफरेंस है। लोग कहते हैं कि आप थे। चार वर्ष तक आपकी स्मृति जाती है। कोई बहुत बुद्धिमान हुआ, तीन वर्ष तक चली जाएगी। कोई और बहुत ही प्रतिभाशाली हुआ, तो दो वर्ष तक चली जाएगी। लेकिन दो वर्ष तक भी जाए, तो दो वर्ष तक आप थे? कुछ कहा नहीं जा सकता। स्मृति ही आधार है, तो दो वर्ष के पहले आप नहीं थे। लेकिन अचानक कैसे हो जाएंगे, अगर दो वर्ष तक न रहे हों।

लेकिन अगर याद आ जाए जन्म तक—दूसरे याद दिला देते हैं—पर मां के पेट में भी आप थे, उसकी कोई स्मृति नहीं है। लेकिन गहरी हिप्नोसिस में उसकी स्मृति भी आ जाती है। गहरे सम्मोहन में व्यक्ति को बेहोश किया जाए, तो वह बता देता है कि वह तीन महीने का जब मां के पेट में था, तो मां गिर पड़ी थी। बच्चे को भी तो चोट लगती है, जब मां गिरती है तो। गर्भ की भी स्मृति आ जाती है। गर्भ के पार की भी स्मृति आ सकती है। पिछले जन्म की भी स्मृति आ सकती है। लेकिन वह हमारे लिए पास्ट होगा। उसकी स्मृति जगानी पड़ेगी। अतीत होगा।

कृष्ण के लिए सब शाश्वत वर्तमान है, दि इटरनल नाउ, अब ही है सब। वे जिस जगह से खड़े होकर देख रहे हैं, वे कहते हैं कि नहीं अर्जुन, पहले भी सब थे, बाद में भी सब होंगे। मैं भी था, तुम भी थे।
यहां भी डर है कि भूल हो जाएगी। यहां भी डर यह है कि अर्जुन समझेगा कि मैं अर्जुन नाम का व्यक्ति पहले भी था। कृष्ण यह नहीं कह रहे हैं। अर्जुन नाम का व्यक्ति कभी नहीं था पहले; हो नहीं सकता। अर्जुन नाम का व्यक्ति तो सिर्फ एक वस्त्र है। उस वस्त्र के पीछे जो छिपी है चेतना निराकार, वह थी। और अर्जुन नाम का व्यक्ति आगे भी नहीं होगा। वह तो वस्त्र है, वह तो मौत के साथ खो जाएगा। हा, जिस पर टंगा है वस्त्र, वह आगे भी होगा।

कृष्ण जो कह रहे हैं, अगर अर्जुन बहुत भी समझेगा, तो भी भूल होने वाली है। वह भूल यह होगी कि वह ज्यादा से ज्यादा यही समझेगा, तो मैं अर्जुन तुम कृष्ण, हम पहले भी थे। ये जो लोग खड़े हैं, ये पहले भी थे। वह फिर भी वही पूछेगा, ये आकृतियां पहले भी यही थीं?

आकृतियां कभी ये न थीं। लेकिन आकृति अभिव्यक्ति है। अनाकृति, निराकार अस्तित्व—अभिव्यक्ति नही है। लेकिन अस्तित्व अनभिव्यक्त भी हो सकता है, अनमैनिफेस्ट भी हो सकता है। जो प्रकट है वही नहीं है, जो अप्रकट है वह भी यही है। प्रकट हमें है ही क्या! बहुत थोड़ा—सा हमें प्रकट है।
अगर हम वैज्ञानिक से पूछें, तो आज वैज्ञानिक कहने लगा है कि हमारे सामने प्रकट बहुत थोड़ा—सा है। यहां हम बैठे हैं। आज। से दो सौ साल पहले रेडियो तो नहीं था। आज रेडियो है। यहां हम रेडियो रखे हैं और उसे लगाते हैं और लंदन की आवाज सुनाई पड़नी शुरू हो जाती है। जब आप रेडियो पर बटन घुमाते हैं, तब लंदन से आवाज शुरू हो जाती है? नहीं, लंदन की आवाज तो गुजर ही रही थी पूरे वक्त। सिर्फ आपके पास रेडियो नहीं था, जो पकड़े। जब नही सुन रहे थे, तब भी गुजर रही थी; मैनिफेस्ट नहीं थी, प्रकट नहीं थी; अप्रकट गुजर रही थी। कान उसे नहीं पकड़ पाते थे, बस इतना ही। और भी हजारों आवाजें गुजर रही हैं।
वैज्ञानिक कहते हैं कि हमारी आवाज सुनने का एक रेंज है। इतनी तरंगों तक हम सुनते हैं। इतनी तरंगों के नीचे भी नहीं सुनते, इसके ऊपर भी नहीं सुनते। हमारी सुनने की क्षमता की एक सीमा है; उसके पार बहुत कुछ गुजर रहा है, जो हमें सुनाई नहीं पड़ता है। वह है। उसके नीचे भी बहुत कुछ गुजर रहा है, जो हमें सुनाई नहीं पड़ता। वह भी है। जो हमें दिखाई नहीं पड़ता, वह भी है। अस्तित्व उतना ही प्रकट होता है, जितनी हमारे पास इंद्रिया हैं।
समझ लें एक अंधा आदमी है, उसके लिए प्रकाश का कोई अस्तित्व नहीं है। क्योंकि अंधे आदमी के लिए प्रकाश प्रकट होने में असमर्थ है। क्योंकि अंधे आदमी के पास कोई माध्यम नहीं है। जरा सोचें कि कहीं किसी न किसी ग्रह—उपग्रह पर जरूर ऐसे प्राणी होंगे, जिनके पास पाच से ज्यादा इंद्रिया होंगी। तब हमको पहली दफे पता चलेगा कि और भी चीजें हैं जगत में, जिनका हमें कोई भी पता नहीं है। क्योंकि पाच इंद्रिया कोई सीमा नहीं आ गई। वैज्ञानिक कहते हैं कि कम से कम पचास हजार प्लेनेट्स पर जीवन है, कम से कम पचास हजार प्लेनेट्स पर। कोई चार अरब ग्रहों—उपग्रहों का पता है, उनमें कम से कम पचास हजार पर जीवन के होने की संभावना है। इन पर अलग—अलग तरह का जीवन विकसित हुआ होगा—कहीं सात इंद्रियों वाले, कहीं पंद्रह इंद्रियों वाले, कहीं बीस इंद्रियों वाले व्यक्ति होंगे। तो वे वे चीजें जान रहे होंगे, जिनका हम सपना भी नहीं देख सकते। क्योंकि सपना भी हम वही देख सकते हैं, जो हम जानते हैं। सपने में भी हम वह नहीं देख सकते हैं, जो हम जानते नहीं हैं। हम कल्पना भी नहीं कर सकते, हमारे कालिदास और हमारे भवभूति और हमारे रवींद्रनाथ कविता भी नहीं लिख सकते, कल्पना भी नहीं कर सकते उसकी, जो हमारी इंद्रियों के बाहर है। लेकिन वह है। चूंकि हमें नहीं दिखाई पड़ता है, इसलिए नहीं है, ऐसा कहने का कोई भी कारण नहीं है।

और फिर अभिव्यक्ति बहुत ऊपरी घटना है। अस्तित्व बहुत भीतरी घटना है। अस्तित्व घटना नहीं है, कहना चाहिए, अस्तित्व होना है, बीइंग है। और अभिव्यक्ति हैपनिंग है, घटना है। मैं यहां बैठा हूं। मैं एक गीत गाऊं। जब तक मैंने गीत नहीं गाया था, तब तक गीत मेरे भीतर कहा था? कहीं था। कोई फिजियोलाजिस्ट मेरे शरीर को काट—पीटकर गीत पकड़ पाता? कोई वैज्ञानिक, कोई मनोवैज्ञानिक, कोई मस्तिष्क का सर्जन मेरे मस्तिष्क को काटकर गीत की कड़ी पकड़ पाता? कहीं भी खोजने से मेरे भीतर गीत नहीं मिलता। लेकिन जो गीत मैं गा रहा हूं, अगर वह मेरे भीतर नहीं था, तो उसके आने का उपाय क्या है!

वह अनमैनिफेस्ट था, वह कहीं बीज था, वह कहीं छिपा था। वह कहीं सूक्ष्मतम तरंगों में था, वह कहीं अस्तित्व में तो था, अभिव्यक्त नहीं था। फिर वह प्रकट हुआ है। फिर वह प्रकट हुआ है। प्रकट होने से वह हो गया है, ऐसा नहीं, प्रकट होने के पहले भी था। और ऐसा भी नहीं कि वह पूरा प्रकट हो गया हो, क्योंकि प्रकट होने में मेरी सीमाएं भी बाधा डालती है।

रवींद्रनाथ मरते दम तक कहते रहे कि जो मैं गाना चाहता था, वह गा नहीं पाया हूं। लेकिन जिसको तुम गा ही नहीं पाए, तुम्हें कैसे पता चला कि तुम उसे गाना चाहते थे! जरूर कहीं भीतर कुछ एहसास हो रहा है; कहीं कोई फीलिंग कि कुछ गाना था। जैसो कई बार आपको लगता है कि किसी का नाम जबान पर रखा है और याद नहीं आता। अब बड़े पागलपन की बात कहते है आप कि जबान पर रखा है और याद नहीं आता। अगर जबान पर रखा है, तो अब और याद आने की जरूरत क्या है, निकालिए जबान से! लेकिन आप कहते हैं, नहीं, रखा तो जबान पर है, लेकिन याद नहीं आता।

क्या मतलब हुआ इसका? इसका मतलब हुआ कि कहीं कोई एक सरकता एहसास है कि मालूम है, लेकिन फिर भी मैनिफेस्ट नहीं हो पा रहा है, फिर भी अभिव्यक्त नहीं हो पा रहा है, मन पकड़ नहीं पा रहा है। कहीं एहसास है। और अगर आप मर जाएं या आपको काट डाला जाए और हम आपके भीतर सब खोज—बीन करें कि जो बिलकुल जबान पर रखा था, वह कहा है! तो जबान मिल जाएगी, जबान पर रखा हुआ कुछ भी नहीं मिलेगा। मस्तिष्क मिल जाएगा, तंतु मिल जाएंगे, हजारों—हजारों सेल की व्यवस्था मिल जाएगी, काट—पीट हो जाएगी, वह कहीं मिलेगा नहीं। कहीं अनभिव्यक्त, अनमैनिफेस्ट, कहीं छिपा, कहीं अंतराल में, अस्तित्व में दबा वह खो जाता है।

जो कृष्ण कह रहे है, वह यह कह रहे हैं कि जो प्रकट हुआ है, वही तू नहीं है। वह जो अप्रकट रह गया है, वही तू है। और जो अप्रकट है, वह बहुत बड़ा है; और जो प्रकट हुआ है, वह एक छोर भर है अर्जुन! ऐसे छोर बहुत बार प्रकट हुए हैं, ऐसे छोर बहुत बार प्रकट होते रहेंगे, होते रहेंगे। लेकिन वह जो अप्रकट है, वह अनंत; वह जो अप्रकट है, अनादि; वह जो अप्रकट है, असीम; वह कभी चुकता नहीं। सारी अभिव्यक्तियों के बाद भी वह अनचुका, पीछे शेष रह जाता है।

निश्चित ही, अभिव्यक्त न होगा तो हम इंद्रियों से उसे न पहचान पाएंगे। हम इंद्रियों से उसे न पहचान पाएंगे, क्योंकि इंद्रिया सिर्फ अभिव्यक्ति को पकड़ती हैं। लेकिन हम इंद्रिया ही नहीं हैं। और अगर हम इंद्रियों के भीतर उतरने की कला सीख जाएं, तो जो अभिव्यक्त नहीं है, वह भी पकड़ा जाता है, वह भी पहचाना जाता है, वह भी देखा जाता है, वह भी सुना जाता है, वह भी हृदय के किसी गहन तल पर स्पर्शित होता है।

अभिव्यक्ति अस्तित्व की अनिवार्यता नहीं है, अभिव्यक्ति अस्तित्व का खेल है; आकृति अस्तित्व की अनिवार्यता नहीं है, आकृति अस्तित्व का खेल है। इसलिए कृष्ण जगत को, जीवन को एक लीला से ज्यादा नहीं कहते हैं। और लीला का मतलब है कि मंच पर कोई आया है, राम बनकर आया है; बस वह एक आकृति है। कोई रावण बनकर आया है, वह एक आकृति है। वे धनुष—बाण लेकर लड़ने खड़े हुए है, वह एक आकृति है। परदे के पीछे अभी थोड़ी देर बाद वे गपशप करेंगे, सीता को भूल जाएंगे। झगड़ा बंद हो जाएगा, चाय पीएंगे ग्रीन—रूम में बैठकर।

वह जो गा कह रहे हैं, वह ग्रीन—रूम की बात कह रहे है। अर्जुन जो बात कह रहा है, वह मंच की बात कह रहा है। पर जो मंच पर प्रकट हुआ है, वह सिर्फ रूप है, वह सिर्फ अभिनय है, वह एक आकृति है। और आकृति के बिना अस्तित्व हो सकता है, लेकिन अस्तित्व के बिना आकृति नहीं हो सकती है। जैसा मैंने कहा? लहर नहीं हो सकती सागर के बिना, सागर बिना लहर के हो सकता है।

जब राम और रावण पर्दे के पीछे जाकर गपशप करके चाय पीने लगेंगे, तब राम और रावण की जो आकृतियां बनी थीं, वे कहा हैं? वे नहीं हैं। वे लहरें थीं, वे सिर्फ आकार थे, जो पीछे प्राण न हो, तो नहीं हो जाते हैं। रूप बदलता है, फार्म बदलता है, आकृतियां बदलती हैं, अभिनय बदलता है, अभिनेता नहीं; वह जो पीछे खड़ा है, वह नहीं। कृष्ण उसकी ही बात कर रहे हैं।

देहिनीऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा ।
तथा देहान्तरप्राप्तिधर्रिस्तन्न मुह्यति ।।13।।

किंतु जैसे जीवात्मा की हम देह में कुमार, युवा और वृद्ध अवस्था होती है, वैसे ही अन्य शरीर की प्राप्ति होती है। उस विषय में धीर पुरुष मोहित नहीं होता है।

कृष्ण कह रहे हैं कि जैसे इस एक शरीर में भी सब बदलाहट है—बचपन है, जवानी है, बुढ़ापा है, जन्म है, मृत्यु है—जैसे इस एक शरीर में भी कुछ थिर नहीं है, जैसे इस एक शरीर में भी सब अथिर, सब बदला जा रहा है, बच्चे जवान हुए जा रहे हैं, जवान के हुए जा रहे हैं, के मृत्यु में उतरे जा रहे हैं..।

एक बड़े मजे की बात है, भाषा में पता नहीं चलता, क्योंकि शब्दों में गति नहीं होती। शब्द तो ठहरे हुए, थिर होते हैं, स्टैटिक होते है। चूंकि भाषा में शब्द ठहरे हुए होते हैं, जीवन के साथ भाषा बड़ा अनाचार करती है। जीवन में कुछ भी ठहरा हुआ नहीं होता। न ठहरे हुए जीवन पर जब हम ठहरे हुए शब्दों को जड़ देते हैं, तो बड़ी गलती हो जाती है।

हम बोलते है, यह बच्चा है। गलत बात बोलते हैं। बच्चा है की स्थिति में कभी नहीं होता, बच्चा पूरे वक्त होने की स्थिति में होता है—हो रहा है। कहना चाहिए, बच्चा हो रहा है। हम कहते हैं, का है। गलत बात कहते हैं। है की स्थिति में कोई का नहीं होता। का हो रहा है। **प्रत्येक चीज हो रही है। है की स्थिति में कोई भी चीज नहीं है। इज की हालत में कोई भी चीज नहीं है, प्रत्येक चीज बिकमिग में है।** हम कहते हैं, नदी है। कैसी गलत बात कहते हैं! नदी और है हो सकती है? नदी का मतलब ही है कि जो बह रही है, हो रही है।
सब शब्द थिर हैं और जीवन में कहीं भी कुछ थिर नहीं है। इसलिए जीवन के साथ बड़ी भूल हो जाती है। और इन शब्दों को दिन—रात बोलते—बोलते हम भूल जाते हैं। जब हम किसी आदमी को जवान कहते हैं, तो जवान का मतलब क्या होता है जीवन में? भाषाकोश में नहीं, शब्दकोश में नहीं। शब्दकोश में तो जवान का मतलब जवान होता है। जिंदगी में क्या होता है? जिंदगी में जवान का मतलब सिर्फ के होने की तैयारी होता है और कुछ नहीं। शब्दकोश में नहीं कहीं लिखा है ऐसा। शब्दकोश में के का मतलब बूढ़ा होता है। जिंदगी में के का मतलब मरने की तैयारी होता है। और तैयारी भी ऐसी नहीं कि जो हो गई, हो रही है, होती ही जा रही है।

कृष्ण कह रहे हैं, इस जीवन में भी अर्जुन, चीजें ठहरी हुई नहीं हैं। इस जीवन में भी जिन आकृतियों को तू देख रहा है, कल वे बच्चा थीं, जवान हुईं, बूढ़ी हो गईं।
बड़े मजे की बात है। अगर मा के पेट में जब पहली दफे बीजारोपण होता है, उस सेल, उस कोष्ठ का चित्र ले लिया जाए और आपको बताया जाए कि आप यही थे पचास साल पहले, तो आप मानने को राजी न होंगे कि क्या मजाक करते हैं, मै और यह! **एक छोटा—सा सेल जो नंगी आंख से दिखाई भी नहीं पड़ता, जिसको खुर्दबीन से देखना पड़ता है; जिसमें न कोई आंख है, न कोई कान है, न कोई कान है; जिसमें कुछ भी नहीं है; जिसका पता नहीं कि वह स्त्री होगी कि पुरुष होगा; जिसका पता नहीं, एक छोटा—सा बिंदु, यह काला धब्बा—यह मैं! मजाक कर रहे हैं। यह मैं कैसे हो सकता हूं! लेकिन यह आपकी पहली तस्वीर है। इसे अपने एल्बम में लगाकर रखना चाहिए। और अगर यह आप नहीं हैं, तो जो तस्वीर आपकी आज है, वह भी आप नहीं हो सकते हैं। क्योंकि कल वह भी बदल जाएगी।**
अगर हम एक आदमी की, पहले दिन पैदा हुआ था तब की तस्वीर, और जिस दिन मरता है उस दिन की तस्वीर को आस—पास रखें, क्या इन दोनों के बीच कोई भी तालमेल दिखाई पड़ेगा? कोई भी संबंध हम जोड़ पाएंगे? क्या हम कभी कल्पना भी कर पाएंगे कि यह वही बच्चा है, जो पैदा हुआ था, वही यह का मर रहा है! नहीं कोई संगति दिखाई पड़ेगी, बडी असंगत बात दिखाई पडेगी कि कहां यह कहां वह, इसका कोई संबंध दिखाई नहीं पडता है। लेकिन इतने असंगत प्रवाह की भी हम कभी चिंता, कभी विचार नहीं करते हैं।

कृष्ण यही विचार उठाना चाह रहे हैं अर्जुन में। वे यह कह रहे हैं कि जिन आकृतियों को तू कह रहा है कि ये मिट जाएंगी, इसका मुझे डर है, ये आकृतियां मिट ही रही हैं। ये चौबीस घंटे मिटती ही रही हैं। ये सदा मिटने के क्रम में ही लगी हैं।

आदमी पूरी जिंदगी सिवाय मरने के और कुछ करता ही नहीं है। उसकी सारी जिंदगी मरने का ही एक लंबा क्रम है। जन्म में जो शुरू होता है, मृत्यु में वह पूरा होता है। जन्म की प्रक्रिया एक कदम है, मृत्यु की प्रक्रिया दूसरा कदम है।
और ऐसा भी नहीं है कि अचानक मौत एक दिन आ जाती है। मौत जन्म के दिन से रोज—रोज आती ही रहती है, तभी तो पहुंच पाती है। उसको सत्तर साल लग जाते हैं आप तक आने में। या ऐसा समझिए कि आपको सत्तर साल लग जाते हैं उस तक पहुंचने में। लेकिन यात्रा पहले दिन ही शुरू हो जाती है।

यह सब बदल रहा है, लेकिन फिर भी यह खयाल नहीं आता कि इतनी बदलाहट के बीच मुझे यह खयाल क्यों बना रहता है कि मैं वही हूं, जो बच्चे में था; मैं वही हूं जो जवान में था, मैं वही हूं, जो के में है। यह आइडेंटिटी, यह तादात्म्य, इतनी बदलाहट के बीच यह सातत्य, यह स्मृति, यह रिमेंबरिग कहा बनी रहती है, किसे बनी रहती है, क्यों बनी रहती है? एक स्वर तो जरूर भीतर होना चाहिए जो अनबदला है, अन्यथा कौन याद करेगा?
मैं कहता हूं कि दस साल का था, तो ऐसी घटना घटी। मेरे भीतर जो दस साल में था, वह जरूर किसी तल पर आज भी होना चाहिए। अन्यथा दस साल में जो घटना घटी, उसे मैं कैसे याद कर सकता हूं! मैं तो नहीं था, जो मैं आज हूं, यह तो मैं नहीं था। जो भी आज दिखाई पड़ता है, यह दस साल में मैं नहीं था। किसे याद है? यह स्मृति का सूत्र कहां है? कोई जरूर मेरे गहरे में कोई कील होनी चाहिए, जिस पर सब बदल गया है। **रास्ते बदल गए हैं, अनेक—अनेक**

रास्तों पर वह रथ घूम चुका है, लेकिन कोई एक कील जरूर होनी चाहिए, जिसने चक्के की हर स्थिति देखी है। चक्का खुद याद नहीं रख सकता है, बदल रहा है पूरे समय। कोई अनबदला तत्व चाहिए।

तो कृष्ण कह रहे हैं कि बचपन था, जवानी थी, बुढापा था। इस सब बदलाहट के बीच कोई थिर, कोई नहीं बदलने वाला, कोई अपरिवर्तित, कोई अनमूविंग तथ्य, उसकी स्मृति जगाने की है। तब फिर हम ऐसा न कह सकेंगे कि मैं बच्चा था, फिर हम ऐसा न कह सकेंगे कि मैं जवान था, फिर हम ऐसा न कह सकेंगे कि मैं का हूं। नहीं, तब हमारी बात और होगी। तब हम कहेंगे कि **मैं कभी बचपन में था, मैं कभी जवानी में था, मैं कभी बुढ़ापे में था। मैं कभी जन्मा, मैं कभी मरने में था। लेकिन यह जो मैं है, यह इन सारी स्थितियों से ऐसे ही टूट जाएगा, जैसे कोई यात्री स्टेशनों से गुजरता है।** तो अहमदाबाद के स्टेशन पर नहीं कहता कि मैं अहमदाबाद हूं। वह कहता है कि मैं अहमदाबाद के स्टेशन पर हूं। बंबई पहुंचकर वह यह नहीं कहता कि मैं बंबई हो गया हूं। वह कहता है, मैं बंबई के स्टेशन पर हूं। क्योंकि अगर वह बंबई हो जाए, तो फिर अहमदाबाद कभी नहीं हो सकेगा। अहमदाबाद हो जाए, तो फिर बंबई कभी नहीं हो सकेगा।

आप अगर बच्चे थे, तो जवान कैसे हो सकते हैं? और अगर आप जवान थे, तो के कैसे हो सकते हैं? निश्चित ही कोई आपके भीतर होना चाहिए जो बच्चा नहीं था। इसलिए बचपन भी आया और गया; जवानी भी आई और गई; बुढ़ापा भी आया और जाएगा। जन्म भी आया, मृत्यु भी आई; **और कोई है, जो इस सब के भीतर खड़ा है और सब आ रहा है और जा रहा है स्टेशंस की तरह।**

अगर यह फासला दिखाई पड़ जाए कि जिन्हें हम अपना होना मान लेते हैं, वे केवल स्थितियां हैं। हमारा होना वहा से गुजरा है, लेकिन हम वही नहीं हैं—उसके स्मरण के लिए कृष्ण कह रहे हैं।

प्रश्न :

भगवान श्री, यह शरीर छोड्कर आत्मा अन्य शरीर में प्रवेश करता है। मरण और जन्म के बीच के समय में आत्मा का क्या केवल अस्तित्व रहता है या अभिव्यक्ति भी? उस अवस्था में आत्मा का स्वरूप कैसा होता है?

एक शरीर को छोडने के बाद दूसरे शरीर में प्रवेश के बीच जो अंतराल है, उस अंतराल में कोई अभिव्यक्ति भी होती है कि सिर्फ अस्तित्व होता है! अभिव्यक्ति भी होती है। लेकिन वह अभिव्यक्ति, जैसी अभिव्यक्ति से हम परिचित रहे हैं शरीर के भीतर, वैसी नहीं होती। उस अभिव्यक्ति का माध्यम पूरा बदल जाता है। वह अभिव्यक्ति सूक्ष्म शरीर की अभिव्यक्ति होती है। उसे भी देखा जा सकता है—विशेष टयूनिंग में। जैसे रेडियो सुना जा सकता है—विशेष टयूनिंग में। उसे भी स्पर्श किया जा सकता है—विशेष व्यवस्था से।

लेकिन साधारण शरीर, जिसे हम जानते हैं वैसा शरीर, तो हम दफना आते हैं, वह नहीं रह जाता। लेकिन वही अकेला शरीर नहीं है हमारे भीतर। उसके भीतर और शरीर और शरीर भी हैं। उसके भीतर शरीरों का एक जाल है। साधारण मृत्यु में सिर्फ पहला शरीर गिरता है। उसके पीछे छिपा दूसरा शरीर हमारे साथ ही यात्रा करता है। सूक्ष्म शरीर कहें, कोई भी नाम दे दें, एस्ट्रल बाडी कहें, कोई भी नाम दे दें—वह हमारे साथ यात्रा करता है। उस शरीर में ही हमारी सारी स्मृतियां, सारे अनुभव, सारे कर्म, सारे संस्कार संगृहीत होते हैं। वह हमारे साथ यात्रा करता है।

उस शरीर को देखा जा सकता है। बहुत कठिन नहीं है उसे देखना। बहुत कठिन नहीं है, बहुत ही सरल है। और जैसे—जैसे दुनिया आगे बढ़ी है सभ्यता में, थोड़ा कठिन हो गया है, अन्यथा इतना कठिन नहीं था। कुछ चीजें खो गई हैं, हमें दिखाई पड़नी मुश्किल हो गई हैं। सिर्फ हम आदी नहीं रहे उनको देखने के। उस दिशा से हमारे मन हट गए हैं। उस दिशा में हमने खोज—बीन बंद कर दी है। अन्यथा वह सूक्ष्म शरीर बहुत सरलता से देखा जा सकता था। अभी भी देखा जा सकता है। और अभी तो वैज्ञानिक आधारों पर भी देखने की बड़ी सफल चेष्टाएं की गई हैं। उस सूक्ष्म शरीर के सैकडों—हजारों चित्र भी लिए गए हैं। समस्त वैज्ञानिक उपकरणों से जांच भी की गई है।

यहां हम इतने लोग बैठे हैं। हम इतने ही लोग नहीं बैठे हैं। अगर किसी दिन हम वैसा कैमरा बहुत ठीक से विकसित कर पाए—जो कि हो ही जाएगा, क्योंकि चित्र तो सूक्ष्म शरीरों के लिए ही जाने लगे हैं—और यहां का चित्र किसी दिन उस कैमरे से लिया जाए जो सूक्ष्म शरीरों को भी पकड़ता हो, तो लोग इतने ही नहीं दिखाई पड़ेंगे, जितने बैठे हैं। और भी बहुत से लोग दिखाई पड़ेंगे, जो हमें दिखाई नहीं पड़ रहे हैं।

महावीर की सभाओं के लिए कहा जाता है कि उनमें बड़ी भीड़ होती थी। लेकिन उस भीड़ में बहुत तरह के व्यक्ति सम्मिलित होते थे। उसमें वे तो सम्मिलित होते थे, जो गांवों से सुनने आए थे, वे भी सम्मिलित होते थे, जो आकाश से सुनने आए थे।

सदा, सब जगह वे चेतनाएं भी मौजूद हैं। कभी वे चेतनाएं अपनी तरफ से भी कोशिश करती हैं कि आपको दिखाई पड़ जाएं। कभी वे चेतनाएं आप कोशिश करें तो भी दिखाई पड़ सकती हैं। लेकिन उनसे उनके दिखाई पड़ने का संबंध विशेष है, सामान्य नहीं है।

एक शरीर से दूसरे शरीर की यात्रा के बीच में शरीर तो होता है, क्योंकि सूक्ष्म शरीर अगर न हो तो नया शरीर ग्रहण नहीं किया जा सकता। सूक्ष्म शरीर को अगर विज्ञान की भाषा में कहें, तो वह बिल्ट—इन—प्रोग्रैम है; नए शरीर को ग्रहण करने की योजना है, ब्लयूप्रिंट है। नहीं तो नए शरीर को ग्रहण करना मुश्किल हो जाएगा। आपने अब तक इस जिंदगी तक जो भी संग्रह किया है—संस्कार, अनुभव, शान, कर्म—जो भी आपने इकट्ठा किया है, जो भी आप हैं, वह सब उसमें है।

कभी आपने देखा, रात जब आप सोते हैं, तो रात सोते समय जो आपका आखिरी विचार होता है, वह सुबह उठते वक्त आपका पहला विचार होता है। नहीं देखा हो तो थोड़ा खयाल करना। रात सोते वक्त नींद के उतरने के आखिरी क्षण में, इधर नींद उतर रही है, उस वक्त आपका जो विचार होगा, वह सुबह जब नींद टूट रही, तब आपका पहला विचार होगा। रात का आखिरी विचार, सुबह का पहला विचार होगा। वह रातभर कहां था? आप तो सो गए थे। अब तक उसे खो जाना चाहिए था। वह आपके सूक्ष्म शरीर में प्रतीक्षा करता रहा—आप फिर उठें, वह फिर आपको पकड़े।

जैसे ही यह शरीर छूटता है, आप एक बिल्ट—इन—प्रोग्रैम— जिंदगीभर की आकांक्षाओं, वासनाओं, कामनाओं का सब संगृहीत ब्लूप्रिंट, एक नक्शा—अपने सूक्ष्म शरीर में लेकर यात्रा पर निकल जाते हैं। वह नक्शा प्रतीक्षा करेगा, जब तक आप नए शरीर को ग्रहण करें। जैसे ही शरीर ग्रहण होगा, फिर जो—जो संभावना शरीर में उपलब्ध होने लगेगी, जिस-जिस चीज का अवसर बनने लगेगा, वह सूक्ष्म शरीर उन-उन चीजों को प्रकट करना शुरू कर देगा।

लेकिन एक बार ऐसी मृत्यु भी होती है, जब सूक्ष्म शरीर भी आपके साथ नहीं होता। वैसी मृत्यु को ही मुक्ति, वैसी मृत्यु को ही मोक्ष...। उसके बाद सिर्फ अस्तित्व होता है, फिर कोई अभिव्यक्त शरीर नहीं होता। लेकिन साधारण मृत्यु में आपके साथ एक शरीर होता है। असाधारण मृत्यु है वह, महामृत्यु है, समाधिस्थ की होती है। जो इस जन्म में समाधि को उपलब्ध होगा, उसका मतलब होता है कि उसने जीते जी अपने सूक्ष्म शरीर को विसर्जित कर दिया। समाधि का मतलब ही यही है कि उसने जीते जी सूक्ष्म शरीर को विसर्जित कर दिया, बिल्ट-इन-प्रोग्रैम तोड़ डाला। अब आगे की यात्रा के लिए उसके पास कोई योजना न रही। अब न कोई पंचवर्षीय योजना है उसके पास, न कोई पांच जीवन की। अब उसके पास कोई योजना नहीं है। अब वह योजना-मुक्त हो गया। अब इस शरीर के गिरते ही उसके पास सिर्फ अस्तित्व रह जाएगा, अभिव्यक्ति नहीं।

अभिव्यक्ति बंधन है, क्योंकि अभिव्यक्ति पूरे की अभिव्यक्ति नहीं है। इसलिए थोड़ा-सा प्रकट होता है और जो अप्रकट रहता है, वह बेचैन होता है। हमारे प्राणों में जो स्वतंत्रता की छटपटाहट है, हमारे प्राणों में जो मुक्ति की आकांक्षा है, वह इस कारण से है कि बड़ा थोड़ा-सा प्रकट हो रहा है। जैसे एक आदमी के सारे शरीर में जंजीरें बांध दीं और सिर्फ एक अंगुली खुली छोड़ दी। वह अपनी अंगुली हिला रहा है। तकलीफ में पड़ा हुआ है। वह कहता है, मुझे स्वतंत्रता चाहिए। क्योंकि मेरा पूरा शरीर जकड़ा हुआ है।

ऐसे ही हमारा पूरा अस्तित्व जकड़ा हुआ है। एक छोटे-से द्वार से जरा-सी अभिव्यक्ति है, वह अभिव्यक्ति बंधन मालूम पड़ती है। वही हमारी पीड़ा है। छटपटा रहे हैं। लेकिन इस छटपटाहट के हम दो तरह के प्रयोग कर सकते हैं। या तो वह जो छोटा-सा द्वार है हमारा शरीर, उसी के माध्यम से हम अपने को मुका करने की। कोशिश में लगे रहें, तो हम उसको बड़ा करेंगे।

एक आदमी बड़ा मकान बनाता है। उसका मतलब सिर्फ यह है कि वह अपने शरीर को बडा बना रहा है। कोई और मतलब नहीं है। एक आदमी बड़ा मकान बनाता है और बड़े मकान में जरा! लगता है कि थोड़ा मुक्त हुआ। स्पेस बढ़ी, जगह बड़ी हुई। छोटी कोठरी में ज्यादा बंद मालूम होता था, बड़े मकान में जरा खुला मालूम पड़ता है। लेकिन थोड़े दिन में वह भी छोटा मालूम पड़ने लगता है। फिर एक बड़ा महल बनाता है, थोड़े दिन में वह भी छोटा। मालूम पड़ने लगता है।

असल में आदमी के पास इतना बड़ा अस्तित्व है कि पूरा आकाश भी छोटा है। इसलिए वह कितने ही बड़े मकान बनाता जाए, सब छोटे पड़ जाएंगे। उसको इतनी स्पेस चाहिए, जितनी परमात्मा को मिली है। बस, इससे कम में काम नहीं चल सकता। वहां भी भीतर परमात्मा ही है। वह पूरी जगह चाहता है, वह असीम चाहता है, जहां कहीं कोई सीमा न आती हो। जहां भी सीमा आएगी, वहीं बंधन मालूम होगा। और शरीर बहुत तरह की सीमाएं बना लेता है। देखने की सीमा, सुनने की सीमा, सोचने की सीमा, सब चीज की सीमा है।

और असीम है अस्तित्व और सीमित है अभिव्यक्ति, इसलिए अभिव्यक्ति से मुक्त होना ही संसार से मुक्त होना है। वह जिसको हम पुरानी भाषा में कहें, आवागमन से मुक्त होना, वह अभिव्यक्ति से मुक्त होना है। वह शुद्ध अस्तित्व की तलाश है, प्योर। एक्सिस्टेंस की तलाश है। वह उस अस्तित्व की तलाश है, जहां अभिव्यक्ति नहीं होगी, बस होना ही होगा-जस्ट बीइंग-सिर्फ होना ही रह जाएगा। और कोई सीमा न होगी। सिर्फ होने में सीमा नहीं है।

तो जिस दिन कोई समाधि को पाकर, सब बिल्ट-इन-प्रोग्रैम तोड़कर, अभिव्यक्ति की सारी आकांक्षाएं छोड़कर, अभिव्यक्ति की सारी वासनाओं को छोड़कर मरता है, उस दिन उसके पास फिर कोई शरीर नहीं होता, फिर हम उसका फोटोग्राफ नहीं ले सकते।
तो अभी पश्चिम में साइकिक रिसर्च सोसाइटीज ने जो फोटोग्राफ्स लिए हैं, उन फोटोग्राफ्स में महावीर का फोटोग्राफ नहीं हो सकता, उस फोटोग्राफ में बुद्ध को नहीं पकड़ा जा सकता, उस फोटोग्राफ में कृष्ण को नहीं पकड़ा जा सकता। उस फोटोग्राफ में उनको ही पकड़ा जा सकता है, जो अभी बिल्ट-इन-प्रोग्रैम लेकर चले हैं। जिनके पास एक योजना है, एक ब्लूप्रिंट है शरीर का,। उनको पकड़ा जा सकता है। महावीर का फोटोग्राफ नहीं पकड़ा जा सकता है, कोई उपाय नहीं है। अस्तित्व का कोई भी चित्र नहीं लिया जा सकता। अस्तित्ववान का चित्र लिया जा सकता है, अस्तित्व का कोई चित्र नहीं लिया जा सकता है। अस्तित्व का कैसे चित्र होगा? क्योंकि अस्तित्व की कोई सीमा नहीं है। चित्र उसी का हो सकता है, जिसकी सीमा हो।

तो साधारण मृत्यु में तो-पूछा है आपने-शरीर रहेगा, सूक्ष्म हो जाएगा। असाधारण मृत्यु में, योगिक मृत्यु में, महामृत्यु में, निर्वाण में नहीं कोई शरीर रह जाता, सिर्फ अस्तित्व ही रह जाता है। नहीं कोई लहर रह जाती, बस सागर ही रह जाता है।

प्रश्न—:
भगवान श्री, वासनामय सूक्ष्म शरीर की शांति के लिए क्या पुत्र—पत्नी कुछ कर सकते हैं? क्योंकि गीता में पिंडदान का उल्लेख आता है।

वासना, प्रत्येक व्यक्ति की अपनी है, दूसरा उसमें कुछ भी नहीं कर सकता। वासना मेरी है, मेरी पत्नी कुछ नहीं कर सकती। ही, लेकिन मेरी वासना के लिए करने के बहाने से अपनी वासना के लिए कुछ कर सकती है। पर वह बहुत दूसरी बात है।
पति मर गया है। पत्नी अपने पति को वासनामुक्त करने की कोशिश करती है—प्रार्थना करती है, हवन करती है, पिंडदान करती है, कुछ भी करती है, कोई आयोजन करती है—इससे उसके पति की वासना में कोई अंतर नहीं पड़ सकता है, लेकिन उसकी स्वयं की वासना में अंतर पड़ सकता है। और योजना का सीक्रेट यही है।

योजना पति की वासना—मुक्ति के लिए नहीं है। क्योंकि पति की वासना—मुक्ति अगर आप करवा दें, तब तो पति को वासना भी पकड़ा सकते हैं आप। तब तो इस दुनिया में मुक्ति मुश्किल हो जाएगी। महावीर मर जाएं और महावीर की पत्नी वासना पकड़ाए, तो महावीर क्या करेंगे! क्योंकि जिसे हम मुक्त कर सकते हैं, उसे हम बांध भी सकते हैं। तब तो मुक्ति भी बंधन बन जाएगी; तब तो मुक्ति भी असंभव है।

नहीं, लेकिन राज दूसरा है, सीक्रेट दूसरा है। वह सीक्रेट साधारणत: खोला नहीं गया है। **राज यह है कि पति मर गया है, पति के लिए तो पत्नी कुछ भी नहीं कर सकती। जिंदा में ही कुछ नहीं कर सकती, मरने के बाद करना तो बहुत मुश्किल है। दूसरे का अपना होना है, जिसमें हमारा कोई प्रवेश नहीं है—न पति का, न पत्नी का, न मां का, न पिता का। लेकिन पति के बहाने वह जो करेगी—अगर वह पति को वासना —मुक्त करने की आकांक्षा**

से प्रार्थना करे, तो यह प्रार्थना, यह आकाक्षा, यह वासना—मुक्ति की कामना, उसकी अपनी वासना को तिरोहित करेगी।
यह बड़े मजे की बात है कि दूसरे की वासना जगाने में हम अपनी ही वासना जगाते हैं। और दूसरे की वासना मिटाने में हम अपनी ही वासना मिटाते हैं। असल में दूसरे के साथ जो हम करते हैं, गहरे में अपने ही साथ करते हैं। सच तो यह है कि दूसरे के साथ सिर्फ किए जाने का दिखावा हो सकता है, सब करना अंततः अपने ही साथ है। उपयोगी है, लेकिन कृपा करके ऐसा मत सोचें कि वह जो दूसरा यात्रा पर निकल गया है, उसके लिए उपयोगी है। आपके लिए उपयोगी है। आपके लिए सार्थक है।

लेकिन शायद ऐसा अगर कहा गया होता जैसा मैं कह रहा हूं? तो शायद पत्नी प्रार्थना भी न करे। सोचेगी, ठीक है। लेकिन मरे हुए पति के लिए इतना करने की आकांक्षा उसके मन में होती है कि शायद **उनको सुगम मार्ग मिल जाए, आनंद की राह मिल जाए, स्वर्ग का द्वार मिल जाए।**
होने का बुनियादी कारण है। क्योंकि जिंदा रहते तो हम एक—दूसरे को सिर्फ नर्क के द्वार तक पहुंचाते हैं, एक—दूसरे को दुख में धक्के देते हैं। इसलिए मरने के बाद पछतावा, रिपेंटेंस शुरू होता है। मरने के बाद पति पत्नी को जितना प्रेम करता हुआ दिखाई पड़ने लगता है, ऐसा जिंदगी में कभी नहीं किया था। रिपेंटेंस शुरू होता है। जीते के साथ जो किया था, उससे बिलकुल उलटा करना शुरू होता है।
बाप के साथ बेटा जिंदा में जो कर रहा था, वह मरने के बाद कुछ और करने लगता है। जिंदा में कभी आदर न दिया था, मरने के बाद तस्वीर, फोटो लगाता है, फूल चढ़ाता है! जिंदा में कभी पैर न दबाए थे, मरने के बाद राख को समेटकर गंगा ले जाता है। जिंदा बाप ने कहा होता कि गंगा ले चलो, तो भूलकर न ले गया होता। मरे बाप को गंगा ले जाता है!

यह बहुत गहरे में हमारा जो जगत है, इसमें हम जिंदा लोगों के साथ इतना दुर्व्यवहार कर रहे हैं कि सिर्फ मरों के साथ क्षमायाचना कर सकते हैं, और कुछ नहीं। इसलिए पति के लिए पत्नी कर सकती है, पति पत्नी के लिए कर सकता है, बेटा बाप के लिए कर सकता है, बेटा मां के लिए कर सकता है। अपने लिए शायद नहीं भी करेगा।
इसलिए एक बहुत मनोवैज्ञानिक सत्य को, एक बहुत गलत कारण देकर पकड़ाने की कोशिश की गई है। वह सत्य केवल इतना है कि **हम अपनी वासना को, दूसरे की वासना—शांति के लिए किए गए प्रयास से—अपनी वासना को—शांत करने**
और यह छोटी बात नहीं है। मगर यह जानकर ही की जानी चाहिए अब। और अब यह जानकर ही होगी; क्योंकि युग बदलता है, प्रौढ़ता बदलती है मस्तिष्क की।

घर में यदि मिठाई रखी है, तो हम बच्चों से कह देते हैं कि भूत है कमरे में, मत जाना। कोई भूत नहीं होता, मिठाई होती है। लेकिन मिठाई बच्चा ज्यादा न खा ले। और बच्चे को अभी समझाने का कोई उपाय नहीं होता कि मिठाई ज्यादा खा लोगे तो नुकसान हो जाएगा। तो भूत खड़ा करना पड़ता है। काम हो जाता है—भूत की वजह से बच्चा नहीं जाता। लेकिन बच्चा फिर जवान हो जाता है। अब इसको कहिए, भूत है, तो वह कहता है, रहने दो, कोई फिक्र नहीं। बल्कि भूत की वजह से और आकर्षण पैदा होता है, वह और चला जाता है। वैसे शायद न भी जाता। अब तो उचित है कि इसे पूरी बात ही समझा दी जाए।

आदमियत ने जो—जो धारणाएं मनुष्यता के बचपन में निर्मित की थीं, वे सभी की सभी अब अस्तव्यस्त हो गई है। अब उचित है कि सीधी और साफ बात कह दी जाए। आज से पांच हजार साल पहले जब गीता कही गई होगी या और भी पहले, तो जो धारणाएं मनुष्य के विकास की बहुत प्राथमिक अवस्थाओं में कही गई थीं, वे अब, सब हंसने योग्य हो गई हैं। अगर उन्हें बचाना हो तो उनके राज खोल देने जरूरी हैं, उन्हें सीधा—साफ कह देना जरूरी है कि वे इसलिए हैं। भूत नहीं है, मिठाई है। और मिठाई खाने के नुकसान क्या हैं, वे साफ कह देने उचित हैं।
मनुष्य प्रौढ़ हुआ है। और इसलिए मनुष्य सारी दुनिया में अधार्मिक दिखाई पड़ रहा है। यह मनुष्य की प्रौढ़ता है, अधार्मिकता नहीं है। असल में प्रौढ़, एडल्ट आदमी के लिए, एडल्ट ह्मुमैनिटी के लिए, प्रौढ़ हो गई मनुष्यता के लिए, बचपन में दिए गए मनुष्यता को जो सिद्धांत थे, अब उनकी आत्मा को फिर से नए शरीर देने की जरूरत है।

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदु:खदा: ।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत ।।14।।

हे कुंतीपुत्र, सर्दी—गर्मी और सुख—दुख को देने वाले इंद्रिय और विषयों के संयोग तो क्षणभँगुर और अनित्य हैं। इसलिए, हे भरतवंशी अर्जुन, उनको तू सहन कर।

जो भी जन्मता है, मरता है। जो भी उत्पन्न होता है, वह विनष्ट होता है। जो भी निर्मित होगा, वह बिखरेगा, समाप्त होगा। कृष्ण कह रहे हैं, इसे स्मरण रख भारत, इसे स्मरण रख कि जो भी बना है, वह मिटेगा। और जो भी बना है, वह मिटेगा; जो जन्मा है, वह मरेगा—इसका अगर स्मरण हो, इसकी अगर याददाश्त हो, इसका अगर होश, अवेयरनेस हो, तो उसके मिटने के लिए दुख का कोई कारण नहीं रह जाता। और जिसके मिटने में दुख का कारण नहीं रह जाता, उसके होने में सुख का कोई कारण नहीं रह जाता।
हमारे सुख—दुख हमारी इस भ्रांति से जन्मते हैं कि जो भी मिला है वह रहेगा। प्रियजन आकर मिलता है, तो सुख मिलता है। लेकिन जो आकर मिला है, वह जाएगा। जहां मिलन है, वहा विरह है। जो मिलन में विरह को देख ले, उसके मिलन का सुख विलीन हो जाता है, उसके विरह का दुख भी विलीन हो जाता है। जो जन्म में मृत्यु को देख ले, उसकी जन्म की खुशी विदा हो जाती है, उसका मृत्यु का दुख विदा हो जाता है। और जहां सुख और दुख विदा हो जाते हैं, वहा जो शेष रह जाता है, उसका नाम ही आनंद है। आनंद सुख नहीं है। आनंद सुख की बड़ी राशि का नाम नहीं है। आनंद सुख के स्थिर होने का नाम नहीं है। आनंद मात्र दुख का अभाव नहीं है। आनंद मात्र दुख से बच जाना नहीं है। आनंद सुख और दुख दोनों से ही उठ जाना है, दोनों से ही बच जाना है।
असल में सुख और दुख एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जो मिलन में सिर्फ मिलन को देखता और विरह को नहीं देखता, वह क्षणभर के सुख को उपलब्ध होता है। फिर जो विरह में सिर्फ विरह को देखता है, मिलन को नहीं देखता, वह क्षणभर के दुख को उपलब्ध होता है। और जब कि मिलन और विरह एक ही प्रक्रिया के दो हिस्से हैं; एक ही मैग्नेट के दो पोल हैं; एक ही चीज के दो छोर हैं।

इसलिए जो सुखी हो रहा है, उसे जानना चाहिए, वह दुख की ओर अग्रसर हो रहा है। जो दुखी हो रहा है, उसे जानना चाहिए, वह सुख की ओर अग्रसर हो रहा है। सुख और दुख एक ही अस्तित्व के दो छोर हैं। और जो भी चीज निर्मित है, जो भी चीज बनी है, वह बिखरेगी; बनने में ही उसका बिखरना छिपा है; निर्मित होने में ही उसका विनाश छिपा है। जो व्यक्ति इस सत्य को पूरा का पूरा देख लेता है, पूरा...! हम आधे सत्य देखते हैं और दुखी होते हैं।

यह बड़े मजे की बात है, असत्य दुख नहीं देता, आधे सत्य दुःख देते हैं। असत्य जैसी कोई चीज है भी नहीं, क्योंकि असत्य का मतलब ही होता है जो नहीं है। सिर्फ आधे सत्य ही असत्य हैं। वे भी हैं इसीलिए कि वे भी सत्य के आधे हिस्से हैं। पूरा सत्य आनंद में ले जाता, आधा सत्य सुख—दुख में डावाडोल करवाता है।

इस जगत में असत्य से मुका नहीं होना है, सिर्फ आधे सत्यों से मुका होना है। ऐसा समझिए कि आधा सत्य, हाफ टूथ ही असत्य है। और कोई असत्य है नहीं। असत्य को भी खड़ा होना पड़े तो सत्य के ही आधार पर खड़ा होना पड़ता है, वह अकेला खड़ा नहीं हो सकता, उसके पास अपने कोई पैर नहीं हैं।

कृष्ण कह रहे हैं अर्जुन से, तू पूरे सत्य को देख। तू आधे सत्य को देखकर विचलित, पीड़ित, परेशान हो रहा है।

जो भी विचलित, पीड़ित, परेशान हो रहा है, वह किसी न किसी आधे सत्य से परेशान होगा। जहां भी दुख है, जहां भी सुख है, वहा आधा सत्य होगा। और आधा सत्य पूरे समय पूरा सत्य बनने की कोशिश कर रहा है।

तो जब आप सुखी हो रहे हैं, तभी आपके पैर के नीचे से जमीन खिसक गई है और दुख आ गया है। जब आप दुखी हो रहे हैं, तभी जरा गौर से देखें, आस—पास कहीं दुख के पीछे सुख छाया की तरह आ रहा है। इधर सुबह होती है, उधर सांझ होती है। इधर दिन निकलता है, उधर रात होती है। इधर रात है, उधर दिन तैयार हो रहा है। **जीवन पूरे समय, अपने से विपरीत में यात्रा है। जीवन पूरे समय, अपने से विपरीत में यात्रा है। एक छोर से दूसरे छोर पर लहरें जा रही हैं।** कृष्ण कहते हैं, भारत! पूरा सत्य देख। पूरा तुझे दिखाई पड़े, तो तू अनुद्विग्न हो सकता है।
यं हि न व्यथयन्त्येते पुरूषं युठषर्षभ ।
समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते।।15।।

क्योंकि, हे पुरूषश्रेष्ठ, दुख—सुख को समान समझने वाले जिस धीर पुरूष को ये इंद्रियों के विषय व्याकुल नहीं कर सकते, वह मोक्ष के लिए योग्य होता है।

विरोधी ध्रुवों में बटा हुआ जो हमारा अस्तित्व है, इन दोनों के बीच, इन दोनों की आकृतियों के भेद को देखकर, इनके भीतर की अस्तित्व की एकता को जो अनुभव कर लेता है, ऐसा व्यक्ति ही ज्ञानी है। जिसे जन्म में मृत्यु की यात्रा दिखाई पड़ जाती है, जिसे सुख में दुख की छाया दिखाई पड़ जाती है, मिलन में विरह आ जाता है जिसके पास, जो प्रतिपल विपरीत को मौजूद देखने में समर्थ हो जाता है, वैसा व्यक्ति ही शानी है। देखने में समर्थ हो जाता है—खयाल रखना जरूरी है। ऐसा मानने में समर्थ हो जाता है, वह ज्ञानी नहीं हो जाता है। मान लिया ऐसा, तो काम नहीं चलता है।
माने हुए सत्य अस्तित्व के जरा—से धक्के में गिर जाते हैं और बिखर जाते हैं। जाने हुए सत्य ही जीवन में नहीं बिखरते हैं। जो ऐसा जान लेता है, ऐसा देख लेता है, या कहें कि ऐसा अनुभव कर लेता है और बड़े मजे की बात है कि अनुभव करने कहीं दूर जाने की जरूरत नहीं है। जिंदगी रोज मौका देती है, प्रतिपल मौका देती है। ऐसा कोई सुख जाना है आपने, जो दुख न बन गया हो? ऐसा कोई सुख जाना है जीवन में, जो दुख न बन गया हो? ऐसी कोई सफलता जानी है, जो विफलता न बन गई हो? ऐसा कोई यश जाना है, जो अपयश न बन गया हो?

लाओत्से कहा करता था कि मुझे जीवन में कभी कोई हरा नहीं पाया। वह मर रहा है, आखिरी क्षण है। तो शिष्यों ने पूछा, वह राज हमें भी बता दो, क्योंकि चाहते तो हम भी हैं कि जीते और कोई हमें हरा न पाए। जरूर बता दें जाने के पहले वह राज, वह सीक्रेट। लाओत्से हंसने लगा। उसने कहा, तुम गलत आदमी हो। तुम्हें बताना बेकार है। तुमने मेरी पूरी बात भी न सुनी और बीच में ही पूछ लिया। मैं इतना ही कह पाया था कि मुझे जिंदगी में कोई हरा नहीं पाया। तुम इतनी जल्दी ही पूछ लिए। पूरी बात तो सुन लो! आगे मैं कहने वाला था कि मुझे जिंदगी में कोई हरा नहीं पाया, क्योंकि मैंने जिंदगी में किसी को जीतना नहीं चाहा। क्योंकि मुझे दिखाई पड़ गया कि जीता कि हारने की तैयारी की। इसलिए मुझे कोई हरा नहीं पाया, क्योंकि मैं कभी जीता ही नहीं। उपाय ही न रहा मुझे हराने का। मुझे हराने वाला आदमी ही नहीं था पृथ्वी पर। कोई हरा ही नहीं सकता था, क्योंकि मैं पहले से ही हारा हुआ था। मैंने जीतने की कोई चेष्टा ही नहीं की। लेकिन तुम कहते हो कि हम भी जीतना चाहते हैं और हम भी चाहते हैं कि कोई हमें हरा न पाए, तब तो तुम हारोगे। क्योंकि जीत और हार एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।
कृष्ण कह रहे हैं, वह यह कह रहे हैं कि ऐसा जो देख लेता है...! और देखने का ध्यान रखें; यह देखना एकझिस्टेंशियल अनुभव है; यह अस्तित्वगत अनुभव है। हम रोज जानते हैं, लेकिन पता नहीं कैसे चूक जाते हैं देखने से! कैसे अपने को बचा लेते हैं देखने से! शायद कोई बड़ी ही चालाकी हम अपने साथ करते हैं। अन्यथा ऐसा जीवंत सत्य दिखाई न पड़े, यही आश्चर्य है।

रोज अनुभव में आता है। **सब चीजें अपने से विपरीत में बदल जाती हैं।** ज्यादा गहरी मित्रता करें और शत्रुता जन्मनी शुरू हो जाती है। लेकिन तरकीब क्या है हमारी इससे बच जाने की? तरकीब हमारी यह है कि जब मित्र शत्रु बनने लगता है, तो हम ऐसा नहीं समझते हैं कि मित्रता शत्रुता बन रही है, हम समझते हैं कि मित्र शत्रु बन रहा है। बस वहीं भूल हो जाती है। जब एक मित्र शत्रु बनने लगता है, तो हम समझते हैं कि मित्र शत्रु बन रहा है; दूसरा कोई मित्र होता तो नहीं बनता, यह आदमी दगाबाज था। तीसरा कोई मित्र होता तो नहीं बनता, यह आदमी दगाबाज था। वह दूसरा मित्र, आप भी उसके शत्रु बन रहे हैं अब, वह भी यही सोचता है कि यह आदमी गलत आदमी चुन लिया। ठीक आदमी होता तो कभी ऐसा नहीं होने वाला था। मित्र जब शत्रु बनता है, तब हम सत्य से वंचित रह जाते हैं। सत्य यह है कि मित्रता शत्रुता बन जाती है। लेकिन हम मित्र पर थोपकर, फिर दूसरे मित्र की. तलाश में निकल जाते हैं।
एक आदमी ने अमेरिका में आठ बार शादियां कीं। मगर होशियार आदमी रहा होगा। पहली शादी, सालभर बाद तलाक किया। देखा कि पत्नी गलत है। कोई अनहोनी बात नहीं देखी; सभी पति देखते हैं, सभी पत्नियां देखती हैं। देखा कि पत्नी गलत है, चुनाव गलत हो गया। तलाक कर दिया। फिर दूसरी पत्नी चुनी। छः महीने बाद पता चला कि फिर गलत हो गया! आठ बार जिंदगी में शादी की। लेकिन मैंने कहा कि आदमी होशियार होगा, क्योंकि आठ बार की भूल से भी जो ठीक सत्य पर पहुंच जाए, वह भी असाधारण आदमी है। आठ हजार बार करके भी नहीं पहुंचते, क्योंकि हमारा तर्क तो वही रहता है हर बार।

आठ बार के बाद उसने शादी नहीं की। और उसके मित्रों ने पूछा कि तुमने शादी क्यों न की? तो उसने कहा कि आठ बार में एक अजीब अनुभव हुआ कि हर बार जिस स्त्री को मैं ठीक समझकर लाया, वह पीछे गलत साबित हुई। तो पहली दफा मैंने सोचा कि वह स्त्री गलत थी। दूसरी दफे सोचा कि वह स्त्री गलत थी। लेकिन तीसरी दफे शक पैदा

होने लगा। चौथी दफा तो बात बहुत साफ दिखाई पड़ने लगी। फिर भी मैंने कहा, एक—दो प्रयोग और कर लेने चाहिए। आठवीं बार बात स्पष्ट हो गई कि यह सवाल स्त्री के गलत और सही होने का नहीं है। जिससे भी सुख चाहा, उससे दुख। मिलेगा। जिससे भी सुख चाहा, उससे दुख मिलेगा। क्योंकि सब सुख दुख में बदल जाते हैं। **जिससे भी मित्रता चाही, उससे मिलेगी। क्योंकि सभी मित्रताए शत्रुताओं की शुरुआत हैं।**
ट्रिक कहां है मन की? धोखा कहां है? तरकीब?

तरकीब है, **अनुभूति के सत्य को, स्थिति के सत्य को, हम व्यक्तियों पर थोप देते हैं। फिर नया व्यक्ति खोजने निकल जाते हैं।** साइकिल नहीं है घर में, साइकिल खरीद ली। फिर पाते हैं, सोचा था कि बहुत सुख मिलेगा, नहीं मिला। लेकिन तब तक यह खयाल भी नहीं आता कि जिस साइकिल के लिए रात—रातभर सपने देखे थे कि मिल जाए तो बहुत सुख मिलेगा, अब बिलकुल नहीं मिल रहा है। लेकिन वह बात ही भूल जाते हैं। तब तक हम कार मिल जाए तो उसके सुख में लग जाते हैं। फिर कार भी मिल जाती है। फिर भूल जाते हैं कि जितना सुख सोचा था, उतना मिला? वह कभी मिलता नहीं।
मिलता है दुख, खोजा जाता है सुख। मिलती है घृणा, खोजा जाता है प्रेम। मिलता है अंधकार, यात्रा की जाती है सदा प्रकाश की। लेकिन इन दोनों को हम कभी जोड़कर नहीं देख पाते, गणित को हम कभी पूरा नहीं कर पाते। उसका एक कारण और भी खयाल में ले लेना जरूरी है। क्योंकि दोनों के बीच में टाइम—गैप होता है, इसलिए हम नहीं जोड़ पाते हैं।

अफ्रीका में जब पहली दफा पश्चिम के लोग पहुंचे, तो बड़े हैरान हुए। क्योंकि अफ्रीकनों में यह खयाल ही नहीं था कि बच्चों का संभोग से कोई संबंध है। उनको पता ही नहीं था इस बात का कि बच्चे का जन्म संभोग से किसी भी तरह जुड़ा हुआ है। टाइम—गैप बड़ा है। एक तो सभी संभोग से बच्चे पैदा नहीं होते। दूसरे नौ महीने का फर्क पड़ता है। अफ्रीका में खयाल ही नहीं था कबीलों में कि बच्चे का कोई संबंध संभोग से है। संभोग से कुछ लेना—देना ही नहीं है। कॉज और एफेक्ट में इतना फासला जो है—कारण नौ महीने पहले, कार्य नौ महीने बाद—तो जोड़ नहीं हो पाता।

सुख को जब हम पकड़ते हैं, जब तक वह दुख बनता है, तब तक बीच में टाइम गिरता है समय गिरता है। तो हम जोड़ नहीं पाते कि ये दोनों बिंदु जुड़े हैं। यह वही सुख है जो अब दुख बन गया। नहीं, वह हम नहीं जोड़ पाते। मित्र को शत्रु बनने में समय लगेगा न! आखिर कुछ भी बनने में समय लगता है। तो जब मित्र बना था तब, और जब शत्रु बना तब, वर्षों बीच में गुजर जाते हैं। जोड नहीं पाते कि मित्र बनने में और शत्रु तक पहुंचने में इतना वक्त लगा। नहीं, मित्र बनने की घटना अलग है और शत्रु बनने की घटना अलग है। तब तय नहीं कर पाते, तब व्यक्ति पर ही थोप देते हैं कि गलती व्यक्ति के साथ हो गई है।

कृष्ण अर्जुन से कह रहे हैं कि तू **आर—पार देख, पूरा देख। और जो इस पूरे को देख लेता है, वह ज्ञानी हो जाता है। और ज्ञानी को फिर ठंडा और गरम, सुख और दुख पीडा नहीं देते। लेकिन इसका यह मतलब मत समझ लेना कि ज्ञानी को ठंडे और गरम का पता नहीं चलता है।**
ऐसी भ्रांति हुई है, इसलिए मैं कहता हूं। ऐसी भ्रांति हुई है। तब तो वह ज्ञानी न हुआ, जड़ हो गया। अगर सेंसिटिविटी मर जाए तो उसको पता ही न चले। तो कई जड़—बुद्धि ज्ञानी होने के भ्रम में पड जाते हैं, क्योंकि उनको ठंडी और गरमी का पता नहीं चलता। थोड़े अभ्यास से पता नहीं चलेगा। इसमें कोई कठिनाई तो नहीं है।

ध्यान रहे, ज्ञानी को ठंडे और गरम से, सुख और दुख से पीड़ा नहीं होती। सुख और दुख में चुनाव नहीं रह जाता, च्वाइस नहीं रह जाती, च्वाइसलेसनेस हो जाती है। इसका यह मतलब नहीं है कि दिखाई नहीं पड़ता। इसका यह मतलब नहीं है कि ज्ञानी को सुई चुभाएं तो पता नहीं चलेगा। इसका यह मतलब नहीं है कि ज्ञानी के गले में फूल डालें तो सुगंध न आएगी और दुर्गंध फेंकें तो दुर्गंध न आएगी।

नहीं, सुगंध और दुर्गंध दोनों आएंगी, शायद आपसे ज्यादा आएंगी। उसकी संवेदनशीलता आपसे ज्यादा होगी। उसकी सेंसिटिविटी ज्यादा होगी। क्योंकि वह अस्तित्व के प्रति ज्यादा सजग होगा; क्षण के प्रति ज्यादा जागा होगा। उसकी अनुभूति आपसे तीव्र होगी। लेकिन वह यह जानता है कि सुगंध और दुर्गंध, गंध के ही दो छोर हैं।

कभी, जहा सुगंध बनती है, उस फैक्टरी के पास से गुजरें तो पता चल जाएगा। असल में दुर्गंध को ही सुगंध बनाया जाता है। खाद डाल देते हैं और फूल में सुगंध आ जाती है। सुगंध और दुर्गंध, गंध के ही दो छोर हैं। गंध अगर प्रीतिकर लगती है, तो सुगंध मालूम होती है, गंध अप्रीतिकर लगती है, तो दुर्गंध मालूम पड़ती है।

ऐसा नहीं है कि ज्ञानी को पता नहीं चलता कि क्या सौंदर्य है और क्‌या कुरूप है। बहुत पता चलता है। लेकिन यह भी पता चलता है कि सौंदर्य और कुरूप आकृतियों के दो छोर हैं, एक ही लहर के दो छोर हैं। इसलिए **पीड़ित नहीं होता, डांवाडोल नहीं होता, अस्थिर नहीं होता। संतुलन नहीं खोता।**
लेकिन इससे बड़ी भ्रांति हुई है। और वह भ्रांति यह हुई है कि जिस आदमी को ठंडी—गरमी का पता न चले, वह जानी हो गया! यह बहुत आसान है। वह काम बहुत कठिन है, जो मैं कह रहा हूं! ठंडी—गरमी का पता न चले, इसके लिए तो थोडा—सा ठंडी—गरमो का अभ्यास करने की जरूरत है। ठंडी—गरमी का पता नहीं चलेगा, चमड़ी जड़ हो जाएगी, उसका बोध कम हो जाएगा। जरा नाक में, नासापुटों में जो थोडे से गंध के तंतु हैं, अगर दुर्गंध के पास बैठे रहें, वे अभ्यासी हो जाएंगे।

तो परमहंस भी हो जाते हैं लोग, दुर्गंध के पास बैठकर। नासमझ उनके चरण भी छूते हैं कि बड़ा परमहंस है, दुर्गंध का पता नहीं चल रहा है! किस भंगी को पता चलता है? नासापुट नष्ट हो जाते हैं। लेकिन इससे भंगी परमहंस नहीं हो जाता।
खलील जिब्रान ने एक छोटी—सी कहानी लिखी है, वह मैं कहूं, फिर आज की बात पूरी करूं। फिर हम सुबह बात करेंगे।

जिब्रान ने लिखा है कि गांव से, देहात से, एक औरत शहर आई मछलियां बेचने। मछलियां बेच दीं। लौटती थी सांझ, तो उसकी सहेली थी शहर में। गांव की ही लड़की थी। उसने उसे ठहरा लिया कि आज रात रुक जा। वह एक माली की पत्नी थी, मालिन थी; बगिया थी सुंदर उसके पास, फूल ही फूल थे। मेहमान घर में आया है, गरीब मालिन, उसके पास कुछ और तो न था। उसने बड़े फूल—मोगरे के, गुलाब के, जुही के, चमेली के—उसके चारों तरफ लाकर रख दिए।

रात उसे नींद न आए। वह करवट बदले, और बदले, और नींद न आए। मालिन ने उससे पूछा कि नींद नहीं आती? कोई तकलीफ है? उसने कहा, तकलीफ है। ये फूल हटाओ—एक। और मेरी टोकरी, जिसमें मैं मछलियां लाई थी, वह टोकरी मुझे दे दो, उसमें थोड़ा पानी छिड़क दो।

अपरिचित मकान हो तो मुश्किल हो जाती है। अपरिचित गंध! मछलियां आदत का हिस्सा थीं, लेकिन इससे कुछ कोई परमहंस नहीं हो जाता।

ठंडी और गरमी का पता न चले तो कोई ज्ञानी नहीं हो जाता। सुख—दुख का पता न चले तो कोई ज्ञानी नहीं हो जाता।

सुख—दुख का पूरी तरह पता चले और फिर भी सुख—दुख संतुलन न तोड़े सुख—दुख का पूरी तरह पता चले, लेकिन सुख में भी दुःख की छाया देखे, दुःख मं भी सुख की छाया दिखे। सुख—दुःख आर—पार, ट्रांसपैरेंट दिखाई पड़ने लगें, तो व्‌यक्‌ति ज्ञान को उपलब्‌ध होता है।
शेष कल।

प्रवचन 7 : भागना नहीं—जागना है
ओशो – गीता-दर्शन – भाग एक
अध्याय—1-2 – प्रवचन 7 : भागना नहीं—जागना है

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सत:।
उभयेरपि दृष्टोऽन्तक्यनयोस्तत्त्वदर्शिभि:।।16।।

और हे अर्जुन, अस्त (वस्तु) का तो अस्तित्व नहीं है और सत का अभाव नहीं है। इस प्रकार इन दोनों को हम तत्व—ज्ञानी पुरुषों द्वारा देखा गया है।

क्‍या है सत्य, क्या है असत्य, उसके भेद को पहचान लेना ही शान है, प्रज्ञा है। किसे कहें है और किसे कहें नहीं है, इन दोनों की भेद—रेखा को खींच लेना ही जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि है। क्या है स्वप्न और क्या है यथार्थ, इसके अंतर को समझ लेना ही मुक्ति का मार्ग है। कृष्ण ने इस वचन में कहा है, जो है, और सदा है, और जिसके न होने का कोई उपाय नहीं है, जिसके न होने की कोई संभावना ही नहीं है, वही सत है, वही रियल है। जो है, लेकिन कभी नहीं था और कभी फिर नहीं हो सकता है, जिसके न हो जाने की संभावना है, वही असत है, वही अनरियल है।

यहां बहुत समझ लेने जैसी बात है। साधारणत: असत, अनरियल हम उसे कहते हैं, जो नहीं है। लेकिन जो नहीं है, उसे तो असत कहने का भी कोई अर्थ नहीं है। जो नहीं है, उसे तो कुछ भी कहने का कोई अर्थ नहीं है। जो नहीं है, उसे इतना भी कहना कि वह नहीं है, गलत है, क्योंकि हम है शब्द का प्रयोग कर रहे हैं। जब हम कहते हैं नहीं है, तब भी हम है शब्द का प्रयोग कर रहे हैं। जो नहीं है, उसके लिए नहीं है, कहना भी गलत है। जो नहीं है, वह नहीं ही है, उसकी कोई बात ही अर्थहीन है।

इसलिए असत का अर्थ नान—एक्सिस्टेंट नहीं होता है। असत का अर्थ होता है, जो नहीं है, फिर भी है, जो नहीं है, फिर भी होने का भ्रम देता है; जो नहीं है, फिर भी प्रतीत होता है कि है। रात स्वप्न देखा है, यह नहीं कह सकते कि वह नहीं है। नहीं था, तो देखा कैसे? नहीं था, तो स्वप्न भी हो सके, यह संभव नहीं है। देखा है, जीया है, गुजरे हैं, लेकिन सुबह उठकर कहते हैं कि स्वप्न था। यह सुबह उठकर जिसे स्वप्न कहते हैं, उसे बिलकुल नहीं, नान—एक्सिस्टेंट नहीं कहा जा सकता। था तो जरूर। देखा है, गुजरे हैं। और ऐसा भी नहीं था कि जिसका परिणाम न हुआ हो। जब रात स्वप्न में भयभीत हुए हैं, तो कंप गए हैं। असली शरीर कंप गया है, प्राण कंप गए हैं, रोएं खड़े हो गए हैं। नींद भी टूट गई है स्वप्न से, तो भी छाती धड़कती रही है। जागकर देख लिया है कि स्वप्‍न था, लेकिन छाती धड़की जा रही है, हाथ—पैर कंपे जा रहे हैं।

यदि वह स्वप्न बिलकुल ही नहीं होता, तो उसका कोई भी परिणाम नहीं हो सकता था। था, लेकिन उस अर्थ में नहीं था, जिस अर्थ में जागकर जो दिखाई पड़ता है, वह है। उसे किस कोटि में रखें—न होने की, होने की? उसे किस जगह रखें? था जरूर और फिर भी नहीं है!

असत की जो कोटि है, असत की जो केटेगरी है, अनरियल की जो कोटि है, वह अनस्तित्व की कोटि नहीं है। अनरियल, असत की कोटि अस्तित्व और अनस्तित्व के बीच की कोटि है। ऐसा सत, जो सत मालूम पड़ता है, लेकिन नहीं है।

लेकिन हम यह कैसे जानेंगे? क्योंकि स्वप्न में तो पता नहीं पडता कि जो हम देख रहे हैं, वह नहीं है। स्वप्न में तो मालूम होता है, जो देख रहे हैं, वह बिलकुल है। और ऐसा नहीं है कि पहली दफे स्वप्न देखने में ऐसा मालूम पड़ता हो। जीवनभर स्वप्न देखकर भी और रोज सुबह जागकर भी, जानकर कि नहीं था, आज रात फिर जब स्वप्न आएगा, तब स्वप्न में पूरी तरह लगेगा कि है। लगता है पूरी तरह कि है, भासता है पूरी तरह कि है, फिर भी सुबह जागकर पाते हैं कि नहीं है।

यह जो एपिअरेंस है, भासना है, यह जो दिखाई पड़ना है, यह जो होने जैसा धोखा है, इसका नाम असत है। संसार को जब असत कहा है, तो उसका यह अर्थ नहीं है कि संसार नहीं है। उसका इतना ही अर्थ है कि चेतना की ऐसी अवस्था भी है, जब हम जागने से भी जागते हैं। अभी हम स्वप्न से जागकर देखते हैं, तो पाते हैं, स्वप्न नहीं है। लेकिन जब हम जागने से भी जागकर देखते हैं, तो पाते हैं कि जिसे जागने में जाना था, वह भी नहीं है। जागने से भी जाग जाने का नाम समाधि है। जिसे अभी हम जागना कह रहे हैं, जब इससे भी जागते हैं, तब पता चलता है कि जो देखा था, वह भी नहीं है।

कृष्ण कह रहे हैं, जिसके आगे—पीछे न होना हो और बीच में होना हो, वह असत है। जो एक समय था कि नहीं था और एक समय आता है कि नहीं हो जाता है, उसके बीच की जो घटना है, बीच की जो हैपनिग है, दो न होने के बीच जो होना है, उसका नाम असत है; उसका नाम अनरियल है।

लेकिन जिसका न होना है ही नहीं, जिसके पीछे भी होना है, बीच में भी होना है, आगे भी होना है, जो तीनों तलों पर है ही; सोए तो भी है, जागे तो भी है, जागकर भी जागे तो भी है; निद्रा में भी है, जागरण में भी है, समाधि में भी है, जो चेतना की हर स्थिति में ही है, उसका नाम सत है। और ऐसा जो सत है, वह सदा है, सनातन है, अनादि है, अनंत है।

जो ऐसे सत को पहचान लेते हैं, वे बीच में आने वाले असत के भंवर को, असत की लहरों को देखकर न सुखी होते हैं, न दुखी होते हैं। क्योंकि वे जानते हैं, जो क्षणभर पहले नहीं था, वह क्षणभर बाद नहीं हो जाएगा। दोनों ओर न होने की खाई है, बीच में होने का शिखर है। तो स्वप्न है। तो असत है। दोनों ओर होने का ही विस्तार है अंतहीन, तो जो है, वह सत है।

कसौटी, कृष्ण कीमती कसौटी हाथ में देते हैं, उससे सत की परख हो सकती है। सुख अभी है, अभी क्षणभर पहले नहीं था, और अभी क्षणभर बाद फिर नहीं हो जाता है। दुख अभी है, क्षणभर पहले नहीं था, क्षणभर बाद नहीं हो जाता है। जीवन अभी है, कल नहीं था, कल फिर नहीं हो जाता है। जो—जो चीजें बीच में होती हैं और दोनों छोरों पर नहीं होती हैं, वे बीच में केवल होने का धोखा ही दे पाती हैं। क्योंकि जो दोनों ओर नहीं है, वह बीच में भी नहीं हो सकता है। सिर्फ भासता है, दिखाई पड़ता है, एपीअर होता है। जीवन की प्रत्येक चीज को इस कसौटी पर कसा जा सकता है। अर्जुन से कृष्ण यही कह रहे हैं कि तू कसकर देख। जो अतीत में नहीं था, जो भविष्य में नहीं होगा, उसके अभी होने के व्यामोह में मत पड़। वह अभी भी वस्तुत: नहीं है, वह अभी भी सिर्फ दिखाई पड़ रहा है, वह सिर्फ होने का धोखा दे रहा है। और तू धोखे से जाग भी न पाएगा कि वह नहीं हो जाएगा। तू उस पर ध्यान दे, जो पहले भी था, जो अभी भी है और आगे भी होगा। हो सकता है, वह तुझे दिखाई भी न पड़ रहा हो, लेकिन वही है। तू उसकी ही तलाश कर, तू उसकी ही खोज कर।

जीवन में सत्य की खोज, असत्य की परख से शुरू होती है। टु नो दि फाल्स एज दि फाल्स, मिथ्या को जानना मिथ्या की भांति, असत को पहचान लेना असत की भांति, सत्य की खोज का आधार है। सत्य को खोजने का और कोई आधार भी नहीं है हमारे पास। हम कैसे खोजें कि सत क्या है? सत्य क्या है? हम ऐसे ही शुरू कर सकते हैं कि असत्य क्या है।

कई बार बड़ी उलझन पैदा होती है। क्योंकि कहा जा सकता है कि जब तक हमें सत्य पता न हो, तब तक हम कैसे जानेंगे कि असत्य क्या है! जब तक हमें सत्य पता न हो, तब तक हम कैसे जानेंगे कि असत्य क्या है? सत्य पता हो, तो ही असत्य को जान सकेंगे। और सत्य हमें पता नहीं है।

लेकिन इससे उलटी बात भी कही जा सकती है। और सोफिस्ट उलटी दलील भी देते रहे हैं। वे कहते हैं कि जब तक हमें यही पता नहीं है कि असत्य क्या है, तो हम कैसे समझ लेंगे कि सत्य क्या है! यह चक्रीय तर्क वैसा ही है, जैसे अंडे और मुर्गी का है। कौन पहले है? अंडा पहले है या मुर्गी पहले है? कहें कि मुर्गी पहले है तो मुश्किल में पड़ जाते हैं, क्योंकि मुर्गी बिना अंडे के नहीं हो सकेगी। कहें कि अंडा पहले है तो उतनी ही कठिनाई खड़ी हो जाती है, क्योंकि अंडा बिना मुर्गी के रखे रखा नहीं जा सकेगा। लेकिन कहीं से प्रारंभ करना पड़ेगा, अन्यथा उस दुष्चक्र में, उस विशियस सर्किल में कहीं कोई प्रारंभ नहीं है।

अगर ठीक से पहचानें, तो मुर्गी और अंडे दो नहीं हैं। इसीलिए दुष्चक्र पैदा होता है। अंडा, हो रही मुर्गी है, मुर्गी, बन रहा अंडा है। वे दो नहीं हैं, वे एक ही प्रोसेस, एक ही हिस्से के, एक ही लहर के दो भाग हैं। और इसीलिए दुष्चक्र पैदा होता है कि कौन पहले! उनमें कोई भी पहले नहीं है। एक ही साथ हैं, साइमलटेनियस हैं, युगपत हैं। अंडा मुर्गी है, मुर्गी अंडा है।

यह सत और असत का भी करीब—करीब सवाल ऐसा है। वह जिसको हम असत कहते हैं, उसका आधार भी सत है। क्योंकि वह असत भी सत होकर ही भासता है, वह भी दिखाई पड़ता है। एक रस्सी पड़ी है और अंधेरे में सांप दिखाई पड़ती है। सांप का दिखाई पड़ना बिलकुल ही असत है। पास जाते हैं और पाते हैं कि सांप नहीं है, लेकिन पाते हैं कि रस्सी है। वह रस्सी सांप जैसी भास सकी, पर रस्सी थी भीतर। रस्सी का होना सत है। वह सांप एक क्षण को दिखाई पड़ा, फिर नहीं दिखाई पड़ा, वह असत था। पर वह भी, उसके आधार में भी सत था, सब्सटैंस में, कहीं गहरे में सत था। उस सत के ही आभास से, उस सत के ही प्रतिफलन से वह असत भी भास सका है।

लहर के पीछे भी सागर है, मर्त्य के पीछे भी अमृत है, शरीर के पीछे भी आत्मा है, पदार्थ के पीछे भी परमात्मा है। अगर पदार्थ भी भासता है, तो परमात्मा के ही प्रतिफलन से, रिफ्लेक्यान से भासता है, अन्यथा भास नहीं सकता।

आप एक नदी के किनारे खड़े हैं और नीचे आपका प्रतिबिंब बनता है। निश्चित ही वह प्रतिबिंब आप नहीं हैं, लेकिन वह प्रतिबिंब आपके बिना भी नहीं है। निश्चित ही वह प्रतिबिंब सत नहीं है, पानी पर बनी केवल छवि है। लेकिन फिर भी वह प्रतिबिंब जहा से आ रहा है, वहा सत है।

असत, सत की ही झलक है क्षणभर को मिली। क्षणभर को सत ने जो आकृति ली, अगर हमने उस आकृति को जोर से पकड़ लिया, तो हम असत को पकड लेते हैं। और अगर हमने उस आकृति में से उसको पहचान लिया जो निराकार, निर्गुण, उस क्षणभर आकृति में झलका था, तो हम सत को पकड़ लेते हैं।

लेकिन जहां हम खड़े हैं, वहां आकृतियों का जगत है। जहां हम खडे हैं, वहा प्रतिफलन ही दिखाई पड़ते हैं। हमारी आंखें इस तरह झुकी हैं कि नदी के तट पर कौन खड़ा है, वह दिखाई नहीं पड़ता; नदी के जल में जो प्रतिबिंब बन रहा है, वही दिखाई पड़ता है। हमें उससे ही शुरू करना पड़ेगा, हमें असत से ही शुरू करना पड़ेगा। हम स्वप्न में हैं, तो स्वप्न से ही शुरू करना पड़ेगा। अगर हम स्वप्न को ठीक से पहचानते जाएं, तो स्वप्न तिरोहित होता चला जाएगा। यह बड़े मजे की बात है, कभी प्रयोग करने जैसा अदभुत है। रोज रात को सोते समय स्मरण रखकर सोए, सोते—सोते एक ही स्मरण रखे रहें कि जब स्वप्न आए तब मुझे होश बना रहे कि यह स्वप्न है। बहुत कठिन पड़ेगा, लेकिन संभव हो जाता है। नींद लगती जाए, लगती जाए, और आप स्मरण करते जाएं, करते जाएं कि जैसे ही स्वप्न आए, मैं जान पाऊं कि यह स्वप्न है। थोड़े ही दिन में यह संभव हो जाता है, नींद में भी यह स्मृति प्रवेश कर जाती है। अचेतन में उतर जाती है। और जैसे ही स्वप्न आता है, वैसे ही पता चलता है, यह स्वप्न है।

लेकिन एक बहुत मजे की घटना है। जैसे ही पता चलता है, यह स्वप्न है, स्वप्न तत्काल टूट जाता है—तत्काल, इधर पता चला कि यह स्वप्न है कि उधर स्वप्न टूटा और बिखरा। स्वप्न को स्वप्न की भांति पहचान लेना, उसकी हत्या कर देनी है। वह तभी तक जी सकता है, जब तक सत्य प्रतीत हो। उसके जीने का आधार उसके सत्य होने की प्रतीति में है।

इस प्रयोग को जरूर करना ही चाहिए।

इस प्रयोग के बाद कृष्ण का यह सूत्र बहुत साफ समझ में आ जाएगा कि. वे इतना जोर देकर क्यों कह रहे हैं कि अर्जुन, असत और सत के बीच की भेद—रेखा को जो पहचान लेता है, वह जान को उपलब्ध हो जाता है। स्वप्न से ही शुरू करें रात के, फिर बाद में दिन के स्वप्न को भी जागकर देखें और वहां भी स्मरण रखें कि जो है—दों नहीं के बीच में—वह स्वप्न है। और तब अचानक

आप पाएंगे कि आपके भीतर कोई रूपांतरित होता चला जा रहा है। और जहां कल मन पकड़ लेने का होता था, आज वहां मुट्ठी नहीं बंधती। कल जहां मन रोक लेने का होता था किसी स्थिति को, आज वहा हंसकर गुजर जाने का मन होता है। क्योंकि जो दोनों तरफ नहीं है, उसे पकड़ना, हवा को मुट्ठी में बांधने जैसा है। जितने जोर से पकड़ो, उतने ही बाहर हाथ के हो जाती है। मत पकड़ो तो बनी रहती है, पकड़ो तो खो जाती है।

जैसे ही यह दिखाई पड़ गया कि दो नहीं के बीच में जो है, है मालूम पड़ता है, वह स्वप्न है, वैसे ही आपकी जिंदगी से असत की पकड़ गिरनी शुरू हो जाएगी; स्वप्न बिखरना शुरू हो जाएगा। तब जो शेष रह जाता है, दि रिमेनिंग, वह सत्य है। जिसको आप पूरी तरह जागकर भी नहीं मिटा पाते, जिसको आप पूरी तरह स्मरण करके भी नहीं मिटा पाते, जो आपके बावजूद शेष रह जाता है, वही सत्य है। वह शाश्वत है, उसका कोई आदि नहीं है, कोई अंत नहीं है। कहना चाहिए, वह टाइमलेस है।

यह भी थोड़ा समझ लेने जैसा है।

असत हमेशा टाइम में होगा, समय में होगा। क्योंकि जो कल नहीं था, आज है, और कल नहीं हो जाएगा, उसके समय के तीन विभाजन हुए—अतीत, वर्तमान और भविष्य। लेकिन जो कल भी था, आज भी है, कल भी होगा, उसके तीन विभाजन नहीं हो सकते। उसका कौन—सा अतीत है? उसका कौन—सा वर्तमान है? उसका कौन—सा भविष्य है? वह सिर्फ है। इसलिए सत्य के साथ टाइम सेंस नहीं है, समय की कोई धारणा नहीं है। सत कालातीत है, समय के बाहर है। असत समय के भीतर है।

जैसे मैंने कहा, आप नदी के तट पर खड़े हैं और आपका प्रतिफलन, रिफ्लेक्यान नदी में बन रहा है। आप नदी के बाहर हो सकते हैं, लेकिन रिफ्लेक्यान सदा नदी के भीतर ही बन सकता है। पानी का माध्यम जरूरी है। कोई भी माध्यम जो दर्पण का काम कर सके, कोई भी माध्यम जो प्रतिफलन कर सके, वह जरूरी है। आपके होने के लिए, कोई प्रतिफलन करने वाले माध्यम की जरूरत नहीं है। लेकिन आपका चित्र बन सके, उसके लिए प्रतिफलन के माध्यम की जरूरत है।

टाइम, समय प्रतिफलन का माध्यम है। किनारे पर सत खड़ा होता है, समय में असत पैदा होता है। समय की धारा में, समय के दर्पण पर, टाइम मिरर पर जो प्रतिफलन बनता है, वह असत है। और समय में कोई भी चीज थिर नहीं हो सकती। जैसे पानी में कोई भी चीज थिर नहीं हो सकती, क्योंकि पानी अथिर है। इसलिए कितना ही थिर प्रतिबिंब हो, फिर भी कंपता रहेगा। पानी कंपन है। ये जो कंपते हुए प्रतिबिंब हैं समय के दर्पण पर बने हुए, कल थे, अभी हैं, कल नहीं होंगे। कल भी बड़ी बात है, बीते क्षण में थे, नहीं थे, अगले क्षण में नहीं हो जाएंगे। ऐसा जो क्षण— क्षण बदल रहा है, जो क्षणिक है, वह असत है। जो क्षण के पार है, जो सदा है, वही सत है। इसकी भेद—रेखा को जो पहचान लेता, कृष्ण कहते हैं, वह शान को उपलब्ध हो जाता है।

अविनाक्षि तु तद्विद्धि येन सवर्मिदं ततम्।

विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हींत।।17।।

हम न्याय के अनुसार नाशरहइत तो उसको जानो कि जिससे यह संपूर्ण जगत व्याप्त है, क्योंकि हस अविनालशी का विनाश करने को कोई भी समर्थ नहीं है।

जिसने इस सारे जगत को व्याप्त किया है, वह सूक्ष्मतम अविनाशी है। लेकिन जिससे यह सारा जगत व्याप्त हुआ है, वह वस्तु स्थूल है और विनाशवान है। इसे ऐसा समझें, एक कमरा है, खाली है, कुछ भी सामान नहीं है। वह जो कमरे

का खालीपन है, वह पूरा का पूरा व्याप्त किए है कमरे को। उचित तो यही होगा कि जब कमरा नहीं था, तब भी वह खालीपन था। पीछे हमने दीवारें उठाकर उस खालीपन को चारों तरफ से बंद किया है। कमरा नहीं था, तब भी वह खालीपन था। कमरा नहीं होगा, तब भी वह खालीपन होगा। कमरा है, तब भी वह खालीपन है। कमरा बना है, मिटेगा, कभी नहीं था, कभी नहीं हो जाएगा; पर वह जो खालीपन है, वह जो स्पेस है, वह जो अवकाश है, वह जो आकाश है—वह था, है, रहेगा।

उसके लिए था, है, इस तरह के शब्द उचित नहीं हैं। क्योंकि जो कभी भी नहीं नहीं हुआ, उसके लिए है कहना ठीक नहीं है। है सिर्फ उसी चीज के लिए कहना ठीक है, जो नहीं है भी हो सकती है। वृक्ष है, कहना ठीक है, आदमी है, कहना ठीक है, परमात्मा है, कहना ठीक नहीं है। परमात्मा के साथ यह कहना कि परमात्मा है, पुनरुक्ति है, रिपिटीशन है। परमात्मा का अर्थ ही है कि जो है। उसको दोहराने की कोई जरूरत नहीं है कि परमात्मा है। इसका मतलब यह हुआ कि जो है, वह है। कोई और मतलब नहीं हुआ। जो नहीं नहीं हो सकता, उसके लिए है कहना बिलकुल बेमानी है।

इसीलिए बुद्ध जैसे परम आस्तिक ने, परमात्मा है, ऐसा शब्द कभी प्रयोग नहीं किया। नासमझ समझे कि नास्तिक है यह आदमी। लेकिन बुद्ध को लगा कि यह तो बड़ी ही भूल भरी बात कहनी है कि परमात्मा है। क्योंकि है सिर्फ उसी के लिए कहना चाहिए, जो नहीं है भी हो जाता है। आदमी है, ठीक है बात। उस पर है हम लगा सकते हैं। है उस पर आई हुई घटना है, कल खो जाएगी। लेकिन परमात्मा है, यह कहना ठीक नहीं है। गॉड इज, कहना ठीक नहीं है। क्योंकि गॉड का तो मतलब ही इजनेस है। जो है ही, उसके लिए है कहना, बड़ा कमजोर शब्द उपयोग करना है, गलत शब्द उपयोग करना है, पुनरुक्ति है।

खाली जगह है ही। कमरा नहीं था, तब भी थी। फिर कमरे में हम फर्नीचर ले आए, फिर कमरे में हमने तस्वीरें लगा दीं, फिर कमरे में हम आकर बैठ गए। कमरा पूरा सज गया, भर गया। अब इस कमरे में दो चीजें हैं। एक तो वह खालीपन, जो सदा से था; और एक यह भरापन, जो सदा से नहीं था। लेकिन बड़े मजे की बात है कि कमरे का खालीपन हमें कभी दिखाई नहीं पडता; कमरे का भरापन दिखाई पड़ता है। कमरे में वही दिखाई पड़ता है, जो भरा हुआ है। वह नहीं दिखाई पड़ता, जो खाली है। किसी भी कमरे में आप प्रवेश करेंगे, तो वही दिखाई पड़ता है, जो वहा है। वह नहीं दिखाई पडता, जो वहा सदा था। वह नहीं दिखाई पड़ता। वह अदृश्य भी है। अगर खालीपन का भी पता चलता है, तो कहना चाहिए कि भरेपन के रिफरेंस में पता चलता है।

यह कुर्सी रखी है, तो इसके आस—पास खाली जगह मालूम पड़ती है। इस कुर्सी के आस—पास खाली जगह मालूम पड़ती है। खाली जगह के बीच में यह कुर्सी मालूम नहीं पड़ती। असलियत यही है कि खालीपन के बीच में यह कुर्सी रखी है। कुर्सी हटाई जा सकती है, खालीपन हटाया नहीं जा सकता, भरा जा सकता है, हटाया नहीं जा सकता।

आप एक कमरे से कुर्सी बाहर निकाल ले सकते हैं, क्योंकि कुर्सी कमरे के अस्तित्व का हिस्सा नहीं है। लेकिन कमरे से खालीपन नहीं निकाल सकते। ज्यादा से ज्यादा कमरे में सामान भरकर खालीपन को दबा सकते हैं। अगर कमरे में से सब चीजें निकाल ली जाएं, तो आप कहेंगे, यहां तो कुछ भी नहीं है। और अगर कमरे से सब चीजें निकाल ली गई हों, तो आपको सिर्फ कमरे की दीवारें दिखाई पड़ेगी। अगर दीवारें भी निकाल ली जाएं, तो आप कहेंगे, यहां कमरा ही नहीं है।

लेकिन दीवारें कमरा नहीं हैं। दीवारों के बीच में जो खाली जगह है, वही कमरा है। अंग्रेजी का शब्द रूम बहुत अच्छा है। रूम का मतलब होता है, खाली जगह। रूम का मतलब ही होता है, खाली जगह। पर वह खाली जगह दिखाई भी नहीं पड़ती, खयाल में भी नहीं आती, क्योंकि खाली जगह का हमें स्मरण ही नहीं है। असल में खाली जगह इतनी सदा से है कि उसे हमें देखने की जरूरत ही नहीं पड़ी है।

ठीक ऐसे ही, यह जो विराट आकाश है, यह जो स्पेस है अनंत, यह जो खाली जगह है, यह जो एंपटीनेस है फैली हुई अनंत तक, जिसका कोई ओर—छोर नहीं है, जो कहीं शुरू नहीं होती और कहीं समाप्त नहीं होती।

आप ध्यान रखें, खाली चीज कभी भी शुरू और समाप्त नहीं हो सकती, सिर्फ भरी चीज शुरू और समाप्त हो सकती है। खालीपन की कोई बिगनिंग और कोई एंड नहीं हो सकता। कमरे के खालीपन की कौन—सी शुरुआत है और कौन—सा अंत है? हा, दीवार का ओर।. होता है, सामान का होता है, कमरे का नहीं होता। स्पेस की कोई सीमाएं नहीं हैं, आकाश का अर्थ ही है कि जिसकी कोई सीमा नहीं है। यह जो असीम फैला हुआ है, यह सत है। और इस असीम के बीच में बहुत कुछ उठता है, बनता है, निर्मित होता है, बिखरता है, वह असत है।

वृक्ष बने, खालीपन थोड़ी देर के लिए हरा हुआ। फूल खिले, खालीपन थोड़ी देर के लिए सुगंध से भरा। फिर फूल गिर गए, फिर वृक्ष गिर गया, खालीपन फिर अपनी जगह है। और जब वृक्ष उठा था और फूल खिले थे, तब भी खालीपन में कोई अंतर नहीं पड़ा था; वह वैसा ही था।

चीजें बनती हैं और मिटती हैं। जो बनता है और मिटता है, वह स्थूल है, वह दिखाई पड़ता है। जो नहीं बनता, नहीं मिटता, वह सूक्ष्म है, वह अदृश्य है। सूक्ष्म कहना भी ठीक नहीं है। लेकिन मजबूरी में कृष्ण ने सूक्ष्म का प्रयोग किया है। उचित नहीं है, लेकिन मजबूरी है। कोई और उपाय नहीं है। असल में जब हम कहते हैं सूक्ष्म, तो हमारा मतलब यह होता है, स्थूल का ही कोई हिस्सा। जब हम कहते हैं छोटा, तो मतलब होता है कि बड़े का ही कोई हिस्सा। जब हम कहते हैं बहुत सूक्ष्म, तो हमारा मतलब होता है कि बहुत कम स्थूल। बाकी मनुष्य की भाषा में सूक्ष्म भी स्थूल से ही जुड़ा है। हम कितना ही कहै सूक्ष्मातिसूक्ष्म, तो भी स्थूल से ही जुड़ा है। आदमी की भाषा द्वंद्व से बनी है। उसमें पेयर्स हैं, उसमें दो—दो चीजों के जोड़े हैं।

लेकिन कृष्ण जिसे सूक्ष्म कह रहे हैं, वह स्थूल का कोई हिस्सा नहीं है। कृष्ण सूक्ष्म कह रहे हैं उसे, जो स्थूल नहीं है। मजबूरी है। लेकिन उसके लिए हमारे पास कोई शब्द नहीं है। इसलिए निकटतम गलत शब्द जो हो सकता है, वह सूक्ष्म है। यानी कम से कम गलत शब्द जो हो सकता है, वह सूक्ष्म है। उसके लिए कोई शब्द नहीं है। कुछ भी हम कहें।

हमने जितने शब्द बनाए हैं, वे बड़े मजेदार हैं। हम उलटे से उलटा शब्द भी प्रयोग करें, तो भी कोई अंतर नहीं पड़ता। वह उलटे से उलटा भी हमारे पुराने शब्द से ही जुड़ा होता है। अगर हम कहें कि वह असीम है, तो भी हमें सीमा से ही वह शब्द बनाना पड़ता है।

अब यह बडे मजे की बात है कि सीमा में असीम का कोई भाव नहीं होता। लेकिन असीम में सीमा का भाव होता है। हम कितनी ही कल्पना करें असीम की, हम ज्यादा से ज्यादा बहुत बड़ी सीमा की कल्पना करते हैं। हम कितना ही सोचें, तो हमारा मतलब यही होता है कि सीमा और आगे हटा दो, और आगे हटा दो, और आगे हटा दो। लेकिन सीमा होगी ही नहीं, यह हमारा विचार नहीं सोच पाता। वह इनकसिवेबल है। उसकी कोई चितना नहीं हो सकती असीम की।

जब हम कहते हैं, कमरे में खालीपन है, तो उसका मतलब हमारे मन में यह होता है कि कमरे में खालीपन भरा है। तो हम एंपटीनेस को भी वस्तु की तरह उपयोग करते हैं, खालीपन भरा है। जैसे खालीपन कोई चीज है। जब कि खालीपन का मतलब न भरा होना है, जहां कुछ भी नहीं है। लेकिन अगर हम कुछ भी नहीं का भी प्रयोग करें, तो हम कुछ भी नहीं का भी वस्तु की तरह प्रयोग करते हैं। अंग्रेजी में शब्द है नथिंग, वह बना है नो—थिग से। नथिंग भी कहना हो—नही कुछ—तो भी थिंग, वस्तु उसमें लानी पड़ती है। बिना वस्तु के हम सोच ही नहीं सकते; बिना स्थूल के हम सोच ही नहीं सकते।

इसलिए कृष्ण के इस सूक्ष्म शब्द को आदमी की मजबूरी समझें। इसका मतलब स्थूल का कोई अंश नहीं है, कोई बहुत सूक्ष्म स्थूल नहीं है। सूक्ष्म का अर्थ है, जो स्थूल नहीं ही है। और स्थूल क्या है? जो दिखाई पड़ता है, वह स्थूल है। जो स्पर्श में आता है, वह

स्थूल है। जो सुनाई पड़ता है, वह स्थूल है। असल में जो इंद्रियों की पकड़ में आता है, वह स्थूल है।

ऐसा भी नहीं है कि आप कल बड़ी दूरबीन बना लें, खुर्दबीन बना लें और उसकी पकड़ में आ जाए तो वह सूक्ष्म हो जाएगा। नहीं, जो भी पकड़ में आ जाए, वह स्थूल है। क्योंकि दूरबीन कुछ नहीं करती, सिर्फ आपकी आंख की इंद्रिय की शक्ति को बड़ा करती है। आपकी आंख ही जैसे और बड़ी आंख हो जाती है। बड़े से बड़े यंत्र भी हम विकसित कर लें, तब भी जो पकड़ में आएगा, वह स्थूल ही होगा। क्योंकि सब यंत्र हमारी इंद्रियों के एक्सटेंशन हैं, वे हमारी इंद्रियों के लिए और जोड़े गए हिस्से हैं।

एक आदमी आंख से चश्मा लगाकर देख रहा है। तो जो उसे आंख से नहीं दिखाई पडता था, वह अब दिखाई पड़ रहा है। लेकिन वह कोई सूक्ष्म चीज नहीं देख रहा है। वैज्ञानिक बड़ी दूर की चीजें देख रहे हैं, बड़े दूर का, लेकिन वह भी स्थूल है। जो भी दिखाई पड़ेगा, जो भी सुनाई पड़ेगा, जो भी स्पर्श में आ जाएगा, इंद्रियों की सीमा के भीतर जो भी आ जाएगा, वह स्थूल है। सूक्ष्म का मतलब है, जो मनुष्य की इंद्रियों की सीमा में नहीं आता है, नहीं आ सकता है, नहीं लाया जा सकता है। असल में विचार भी जिसे नहीं पकड़ सकता, वही सूक्ष्म है।

अब वैज्ञानिक कहते हैं कल तक वह परमाणु सूक्ष्मतम था। अब परमाणु भी टूट गया, अब इलेक्ट्रान है, न्यूट्रान है, प्रोटान है। अब वैज्ञानिक कहते हैं कि वे सर्वाधिक सूक्ष्म हैं। क्योंकि अब वे दिखाई पड़ने के बाहर ही हो गए। अब अनुमान का ही मामला है। लेकिन जो अनुमान में भी आता है, वह भी सूक्ष्म नहीं है। क्योंकि अनुमान भी मनुष्य के विचार का हिस्सा है।

इसलिए वैज्ञानिक जिसे इलेक्ट्रान कह रहे हैं, वह भी कृष्ण का सूक्ष्म नहीं है। इलेक्ट्रान के भी पार, ठीक होगा कहना, आलवेज दि बियांड, जहां तक आप पहुंच जाएंगे, उसके जो पार। वहा भी पहुंच जाएंगे, तो उसके जो पार, दि ट्रासेंडेंटल, वह जो सदा अतिक्रमण कर जाता है, वही सूक्ष्म है। पार होना ही जिसका गुण है। आप जहां तक पकड़ पाते हैं, जो उसके पार सदा शेष रह जाता है, सदा ही शेष रह जाता है और रह जाएगा।

ठीक से समझ लेना उचित होगा। हमारे पास दो शब्द हैं— अज्ञात, अननोन; अज्ञेय, अननोएबल। साधारणत: जब हम सूक्ष्म को समझने जाते हैं, तो ऐसा लगता है, जो अज्ञात है, अननोन है। नहीं, कृष्ण उसे सूक्ष्म नहीं कह रहे हैं। क्योंकि जो अननोन है, वह नोन बन सकता है; जो अज्ञात है, वह कल ज्ञात हो जाएगा। वह सूक्ष्म नहीं है। जिसके ज्ञात होने की अनंत में भी कभी संभावना है, वह सूक्ष्म नहीं है।

स्थूल ही ज्ञात हो सकता है। आज न हो, कल हो जाए। कल न हो, कभी हो जाए। लेकिन जो भी जात हो सकता है, वह स्थूल है। जो ज्ञात हो ही नहीं सकता, जो सदा ही ज्ञान के बाहर छूट जाता है, जो सदा ही जानने की पकड़ के बाहर रह जाता है, अननोएबल, अज्ञेय है। नहीं, जाना ही नहीं जा सकता जो, वही सूक्ष्म है। इसलिए सूक्ष्म का मतलब ऐसा नहीं है कि हमारे पास अच्छे उपकरण होंगे तो हम उसे जान लेंगे।

लोग पूछते हैं कि क्या वितान कभी परमात्मा को जान पाएगा? जिसे भी वितान जान लेगा, वह परमात्मा नहीं होगा। क्योंकि परमात्मा से अर्थ ही है कि जो जानने की पकड़ में नहीं आता। किसी दिन विज्ञान की प्रयोगशाला अगर परमात्मा को पकड़ लेगी, तो वह पदार्थ हो जाएगा। असल में जहां तक परमात्मा पकड़ में आता है, उसी का नाम पदार्थ है। और जहां परमात्मा पकड़ में नहीं आता, वहीं परमात्मा है।

सूक्ष्म का कृष्ण का अर्थ ठीक से खयाल में ले लेना जरूरी है। क्योंकि जो सूक्ष्म है, वही सत है। जो पकड़ में आता है, वह असत होगा। वह आज होगा, कल नहीं होगा। जो पकड़ में नहीं आता, वही सत है।

एक कमरे में हम जाएं, वहा फूल रखा है। फूल' सुबह ठीक है, सांझ मुरझा जाएगा। उसी फूल के नीचे शंकर जी की पिंडी रखी है, पत्थर रखा है। वह सुबह भी था, सांझ भी होगा। लेकिन सौ वर्ष, दो सौ वर्ष, तीन सौ वर्ष, हजार वर्ष— बिखर जाएगा। फूल एक दिन में बिखर गया। पत्थर था, हजारों वर्ष में बिखरा। इससे अंतर नहीं पड़ता। कमरे में सिर्फ एक चीज है जो नहीं बिखरेगी, वह कमरे का कमरापन है, रूमीनेस है। वह जो खालीपन है, वह भर नहीं बिखरेगा। वही सूक्ष्म है, वही सत है। बाकी कमरे में जो भी है, वह सब बिखर जाएगा।

मैंने एक ताओइस्ट चित्रकार की कहानी पढ़ी है। मैंने पढ़ा है कि एक ताओ गुरु ने अपने शिष्यों को कहा कि तुम एक चित्र बना लाओ। उन्होंने पूछा कि कोई थीम, कोई विषय दे दें। तो उसने कहा, तुम एक चित्र बना लाओ कि गाय घास चर रही है। वे चित्र बनाकर ले आए। सभी अच्छे—अच्छे चित्र बनाकर ले आए थे। लेकिन एक साधु जो चित्र बनाकर लाया था, उसमें जरा चौंकने वाली बात थी। क्योंकि वह कोरा कागज ही ले आया था।

गुरु ने पूछा कि क्या बना नहीं पाए? उसने कहा कि नहीं, चित्र बना है, देखें। फिर गुरु ने उसके कागज की तरफ देखा, और शिष्यों ने भी कागज की तरफ देखा; फिर सबने उसकी तरफ देखा और पूछा कि गाय कहा है! तो उसने कहा, गाय घास चरकर जा चुकी है। उन्होंने पूछा कि घास कहां है? तो उसने कहा कि घास गाय चर गई। तो उन्होंने पूछा, इसमें फिर क्या बचा? तो उसने कहा, जो गाय के पहले भी था और घास के पहले भी था, और गाय के बाद भी बचता है और घास के बाद भी बचता है, वही मैं बना लाया हूं। लेकिन वे सब कहने लगे, यह कोरा कागज है! पर उसने कहा कि यही बचता है—यह कोरापन।

कृष्ण इस कोरेपन को सूक्ष्म कह रहे हैं। जो सब लहरों के उठ जाने, गिर जाने पर बच जाता है। और जो सदा बच जाता है, वही सत है।

प्रश्न :

भगवान श्री, नथिंगनेस वर्सेस एवरीथिंगनेस में आप कभी आपके प्रवचन में भागना और जागना जो प्रयोग करते हैं, तो मैं उससे भागूं या जागूं? इससे उसको क्या मतलब है? इसमें क्या एफर्ट का तत्व नहीं आता? और टोटल एक्सेप्टिबिलिटी में ईविल का क्या स्थान होता है?

शून्य, नथिंगनेस और सब कुछ, एवरीथिंगनेस, एक ही चीज को कहने के दो ढंग हैं दो ओर से—नकार से— या विधेय से, निगेटिव से या पाजिटिव से। जब हम कहते हैं शून्य, तो यह हमारा चुनाव है नकार का। जब हम कहते हैं पूर्ण, तो यह हमारा चुनाव है विधेय का। लेकिन मजे की बात है कि सिर्फ शून्य ही पूर्ण होता है और पूर्ण ही शून्य होता है। सिर्फ शून्य ही पूर्ण होता है, क्योंकि शून्य के अपूर्ण होने का कोई उपाय नहीं है। आप अधूरा शून्य नहीं खींच सकते। आप शून्य के दो हिस्से नहीं कर सकते। आप शून्य में से कितना ही निकाल लें, तो भी शून्य में कुछ कम नहीं होता। आप शून्य में कितना ही जोड दें, तो शून्य में कुछ बढ़ता नहीं।

शून्य का मतलब ही यह है कि उससे बाहर— भीतर कुछ नहीं निकाला जा सकता। पूर्ण का भी मतलब यही है। पूर्ण का मतलब ही यह है कि जिसमें जोड़ने को कुछ नहीं बचा। क्योंकि पूर्ण के बाहर कुछ नहीं बच सकता। दि टोटल, अब उसके बाहर कुछ बचा नहीं, जिसको जोड़े। जिसमें से कुछ निकालें तो कोई जगह नहीं बची, क्योंकि टोटल के बाहर कोई जगह नहीं बच जाएगी, जिसमें निकाल लें। शून्य से कुछ निकालें, तो पीछे शून्य ही बचता है। शून्य में कुछ जोड़े, तो उतना ही शून्य रहता है। पूर्ण से कुछ निकालने का उपाय नहीं, पूर्ण में कुछ जोड़ने का उपाय नहीं। क्योंकि पूर्ण में अगर कुछ जोड़ा जा सके, तो इसका मतलब है कि वह अपूर्ण था पहले, अब उसमें कुछ जोड़ा जा सकता है।

शून्य और पूर्ण एक ही सत्य के दो नाम हैं। हमारे पास दो रास्ते हैं, जहां से हम नाम दे सकते हैं। या तो हम नकार का उपयोग करें, या विधेय का उपयोग करें। सब कुछ और कुछ भी नहीं, एक ही बात को कहने के दो ढंग हैं। यह हमारा चुनाव है कि हम कैसे इसे कहें। अगर यह खयाल में आ जाए, तो इस जगत में उठे बहुत बड़े विवाद की बुनियाद आधारशिला गिर जाती है।

बुद्ध और शंकर के बीच कोई विवाद नहीं है। सिर्फ नकार और विधेय के शब्दों के प्रयोग का फासला और भिन्नता है। बुद्ध नकारात्मक शब्दों का प्रयोग करते हैं। वे कहते हैं, नहीं है, शून्य है, निर्वाण है। निर्वाण का मतलब, दीए का बुझ जाना। जैसे दीया बुझ जाता है, बस, ऐसे ही सब कुछ नहीं हो जाता है।

शंकर कहते हैं, सब है, ब्रह्म है, मोक्ष है, ज्ञान है। सब विधेय शब्दों का प्रयोग करते हैं। और बड़े मजे की बात यह है कि ये दोनों इशारे बिलकुल एक चीज की तरफ हैं। शंकर और बुद्ध से करीब दूसरे आदमी खोजना मुश्किल है। लेकिन शंकर और बुद्ध के

करीब ही इस मुल्क का सबसे बड़ा विवाद खड़ा हुआ। ही और न—के बीच कितना फासला मालूम पड़ता है! इससे ज्यादा उलटे शब्द नहीं हो सकते। लेकिन पूर्ण ही और पूर्ण न के बीच कोई फासला नहीं है। लेकिन वह हमें अनुभव हो जाए दो में से किसी एक का भी, तो ही दिखाई पड़ सकता है।

पूछा है कि मैं कहता हूं भागें मत, जागे—समग्र के प्रति जागे। क्योंकि भागने का मतलब ही यह है कि हमने समग्र में कुछ चुनाव कर लिया कि इसे छोड़ेंगे, उसे पकड़ेंगे, तभी भागा जा सकता है। भागने का मतलब है कि कुछ हम छोड़ेंगे और कुछ हम पकड़ेंगे। अगर पूरे को छोड़े, तो भागकर कहां जाएंगे? अगर पूरे को स्वीकार करें, तो भागकर कहा जाएंगे? अगर त्याग पूर्ण हो, तो भागना नहीं हो सकता। भागेंगे कहां? जहां भाग रहे हैं, पूर्ण में वह भी त्यागा जा चुका है। मक्का भागेंगे? मदीना भागेंगे? काशी भागेंगे? हरिद्वार भागेंगे? अगर त्याग पूर्ण है, तो भागना असंभव है। अगर भोग भी पूर्ण है, तो भागना असंभव है। भागने की कोई जरूरत नहीं है।

सब अधूरे का खेल है, सब आधे का खेल है। तो जो हाफ—हाटेंड, जो आधे हृदय से भोग रहे हैं, उनको पकड़ने का उपाय है। जो आधे हृदय से त्याग रहे हैं, उनको छोड़ने का उपाय है। लेकिन जो पूरे हृदय से जी रहे हैं, उनको न भागने को कुछ है, न त्यागने को कुछ है। उनको तो सिर्फ जानने को ही कुछ है—जागने को ही।

प्रश्न भागने का नहीं है, प्रश्न जागने का है। प्रश्न देखने का है, दर्शन का है। प्रश्न गहरे में झांकने का है। प्रश्न यह नहीं है कि पदार्थ से भाग जाओ, क्योंकि कहीं भी भागोगे तो पदार्थ है। प्रश्न यह है कि पदार्थ में गहरे झांको, ताकि परमात्मा दिखाई पड़े; तब भागने की कोई जरूरत न रह जाएगी।

आकृतियों से जो भागेगा, वह जाएगा कहां? दूसरी आकृतियों के पास पहुंच जाएगा। स्थानों से भागेगा, दूसरे स्थानों में पहुंच जाएगा। मकानों से भागेगा, दूसरे मकानों में पहुंच जाएगा। लोगों से भागेगा, दूसरे लोगों में पहुंच जाएगा। भागकर जाएंगे कहां? जहां भी भागेंगे वहा संसार है। संसार से नहीं भागा जा सकता। हर जगह पहुंचकर पता चलेगा, संसार है। फिर वहां से भी भागो, फिर वहां से भी भागो—भागते रहो।

अगर हम चांद—तारों की रोशनी की गति भी पा जाएं, तो भी संसार के बाहर न भाग सकेंगे। अभी तक कोई चांद—तारा नहीं भाग सका, अभी तक कोई रोशनी की किरण नहीं भाग सकी संसार के बाहर। अनंत—अनंत यात्रा है रोशनी की किरणों की। लेकिन होगी संसार के भीतर ही, भाग नहीं सकतीं। असल में जहा तक भाग सकते हैं, वहां तक तो संसार होगा ही। नहीं तो भागेंगे कैसे? रास्ता कहां पाएंगे?

जाग सकते हैं। ज्ञानी जागता है, अज्ञानी भागता है। हां, अज्ञानी के भागने के दो ढंग हैं। कभी वह स्त्री की तरफ भागता है, कभी स्त्री की तरफ से भागता है। कभी धन की तरफ भागता है, कभी धन छोड़ने के लिए भागता है। कभी मुंह करके भागता है संसार की तरफ, कभी पीठ करके भागता है। न मुंह करके कभी संसार को उपलब्ध कर पाता है, न पीठ करके कभी संसार को छोड़ पाता है।

जो न पाया जा सकता है और न छोड़ा जा सकता है, उसका नाम संसार है। सपने न पाए जा सकते हैं, न छोड़े जा सकते हैं। असत न पाया जा सकता है, न छोड़ा जा सकता है। असत के प्रति केवल जागा जा सकता है, वन कैन बी ओनली अवेयर। सपने के प्रति सिर्फ जागा जा सकता है। जो आदमी सपना छोड्कर भाग रहा है, वह काफी गहरे सपने में अभी है। क्योंकि जिसको सपना छोड्कर भागना पड़ रहा है, उसे इतना तो पक्का है कि सपना सपना नहीं है। भागने योग्य तो मालूम ही हो रहा है। इतना सच तो दिखाई पड़ता ही है।

कृष्ण को समझेंगे तो दिखाई पड़ेगा। कृष्ण अर्जुन को भागने से ही बचाने की चेष्टा में संलग्न हैं। यह पूरी गीता भागने वालों के खिलाफ है। यह पूरी गीता इस बात के खिलाफ है कि जो भागने वाले हैं, वे वही पागलपन को उलटी दिशा में कर रहे हैं, जो पकड़ने वाले करते हैं। लेकिन सिर्फ पागलपन उलटा हो जाए शीर्षासन करने लगे, तो इससे पागलपन नहीं रह जाता, ऐसा नहीं है। कोई पागल शीर्षासन करके खड़ा हो जाए, तो पागलपन मिट जाता है, ऐसा नहीं है।

भोगी त्यागी हो जाते हैं, संसारी संन्यासी हो जाते हैं, उलटे हो जाते हैं, तो कोई अंतर नहीं पड़ता। ही, दिशा उलटी दिखाई पड़ने लगती है, आदमी वही होता है। ढंग उलटे हो जाते हैं, आदमी वही होता है।

कृष्ण गीता में एक बहुत ही अनूठी बात कह रहे हैं। और वे यह कह रहे हैं कि संसारी और संन्यासी विपरीत नहीं हैं। एक—दूसरे से उलटे नहीं हैं। संसार से भागकर कोई संन्यासी नहीं होता, संसार में जागकर कोई संन्यासी होता है। और जागना हो, तो यहीं जाग जाओ। कहीं भी भागो, इससे कोई अंतर नहीं पड़ता। जागने के लिए कोई खास जगह नहीं है, कहीं भी जागा जा सकता है। सपने मिटाने के लिए खास सपने देखने की जरूरत नहीं है, किसी भी सपने में जागा जा सकता है।

एक आदमी सपना देख रहा है चोर का, एक आदमी सपना देख रहा है साधु का। क्या साधु वाले सपने से जागना आसान है, बजाय चोर वाले सपने के? दोनों सपने हैं। जागना एक—सा ही है। कोई अंतर नहीं पड़ता। साधु होने के सपने से जागने में भी यही करना पड़ेगा कि जानना पड़ेगा, यह सपना है। और चोर के सपने से भी जागने के लिए यही करना पड़ेगा कि जानना पड़ेगा कि यह सपना है। सपने को सपने की भांति जानना ही जागना है। और सपने को सत्य की तरह जो मान लेता है, उसके समाने दो विकल्प हैं। या तो सपने में डूबे, भोगे; या सपने से भागे और त्यागे।

गीता, भोग और त्याग दोनों की अतियों को सपने के बीच मानेगी। जागना! और जागने के लिए ही वे कह रहे हैं कि तू पहचान अर्जुन, क्या सत है, क्या असत है! यह तू पहचान, तो यह पहचान, यह रिकग्नीशन ही तेरा जागरण बन जाने वाला है।

प्रश्न :

भगवान श्री, आप यह तो कहेंगे न कि जागना भी भागने का शीर्षासन है? इतना तो एफर्ट करना पड़ेगा!

नहीं, जागना भागने से जरा भी संबंधित नहीं है। जागना भागने से संबंधित ही नहीं है। क्योंकि जागने में भागने का कोई भी तत्व नहीं है, विपरीत तत्व भी नहीं है; दूसरी तरफ भागना भी नहीं है। जागने का मतलब ही है कि। जो है, उसे हम देखने को तत्पर होते हैं।

धन है, इसके साथ भागने के दो काम हो सकते हैं। एक काम हो सकता है कि इसे छाती से लगाकर पकड़कर बैठ जाएं; इसमें से एक पैसा न भाग जाए इसका ध्यान रखें। दूसरा हो सकता है कि इससे ऐसे भागें कि लौटकर न देखें।

मुझे कोई कह रहा था कि विनोबा के सामने पैसा करो, तो दूसरी तरफ मुंह कर लेते हैं। पैसे से इतना डर! तो पैसे में काफी ताकत मालूम पड़ती है। रामकृष्ण के पास अगर कोई पैसा रख दे, तो ऐसी छलता लगाकर उचकते हैं कि सांप—बिच्छू आ गया। पैसे में सांप—बिच्छू? तो सपना टूटा नहीं। सपने ने दूसरी शकल ली। पहले पैसा स्वर्ग मालूम पड़ता था, अब नर्क मालूम पड़ने लगा। लेकिन पैसा कुछ है—यह जारी है।

पैसा कुछ भी नहीं है। है तो लहर है—न भागने योग्य, न पकड़ने योग्य। जागना बहुत और बात है। उसमें पैसे से आख बंद करने की जरूरत नहीं है, पैसे को छाती से पकड लेने की जरूरत नहीं है। पैसा वहां है, आप यहां हैं। पैसे ने कभी आपको नहीं पकड़ा, न पैसा कभी आपसे भागा। आपकी पैसे ने इतनी फिक्र नहीं की, जितनी फिक्र आप पैसे की कर रहे हैं। पैसा कहीं ज्यादा जानी! मालूम पड़ता है। आप चले जाओ तो रोता नहीं है, आप आ जाओ तो प्रसन्न नहीं होता। कहता नहीं, कि आइए, स्वागत है, बड़ा अच्छा हुआ।

जागने का अर्थ यह है, जहा हैं—कहीं न कहीं हैं, किसी न किसी सपने में हैं; कोई आश्रम के सपने में होगा, कोई दूकान के सपने में होगा—जहां हैं, किसी न किसी सपने में हैं, वहां जागे। इस सपने को पहचानें कि यह सत्य है? इस बात की जिज्ञासा, इस बात की खोज कि जो मैं देख रहा हूं, वह क्या है?

नहीं, मैं यह नहीं कह रहा हूं कि आप कहने लगें, यह सपना है। अगर आपको कहना पड़े कि यह सपना है, तो जागना नहीं होगा, तब एफर्ट होगा। अगर आपको कोशिश करनी पड़े कि यह सब सपना है, आपको अगर कोशिश करके अपने को समझाना पड़े कि यह सब सपना है, तब तो समझ लेना कि अभी आपको सपने का पता नहीं चला। सपने का पता अगर चल जाए, तो यह कहने की कोई जरूरत नहीं रह जाती कि सब सपना है। सब सपना है, यह तो वही आदमी दोहराता है अपने मन में, जिसे अभी सपने का कोई भी पता नहीं है।

एक सूफी फकीर को मेरे पास लाए थे। वह मित्र जो लाए थे, कहने लगे कि उन फकीर को सब जगह परमात्मा ही परमात्मा दिखाई पड़ता है। मैंने उनसे पूछा कि जगह भी दिखाई पड़ती है? परमात्मा भी दिखाई पड़ता है? दोनों दिखाई पड़ते हैं? उन्होंने कहा, ही, उन्हें कण—कण में परमात्मा दिखाई पड़ता है। तो मैंने कहा, कण भी दिखाई पड़ता है, कण में परमात्मा भी दिखाई पड़ता है 1 ऐसा? उन्होंने कहा, आप कैसी बातें पूछते हैं? मैंने कहा, अगर परमात्मा ही दिखाई पड़ता है, तो अब कण दिखाई नहीं पड़ना चाहिए। और कण दिखाई पड़ता है, तो परमात्मा आरोपित होगा, इंपोब्द होगा। कोशिश की गई होगी।

इसलिए जो आदमी कहता है कि कण—कण में परमात्मा दिखाई पड़ता है, उसे दो चीजें दिखाई पड़ रही हैं, कण भी दिखाई पड़ रहा है, परमात्मा भी दिखाई पड़ रहा है। ये दोनों चीजें एक साथ दिखाई नहीं पड़ सकतीं। इनमें से एक ही चीज एक बार दिखाई पड़ सकती है। अगर परम:त्मा दिखाई पड़ता है, तो कण दिखाई नहीं पड़ता। क्योंकि परमात्मा के अतिरिक्त कण की कोई जगह नहीं रह जाती, जहां उसे देखें। और अगर कण दिखाई पड़ता है, तो परमात्मा दिखाई नहीं पड़ता। क्योंकि जब तक कण दिखाई पड रहा है, तब तक परमात्मा दिखाई पड़ना मुश्किल है।

तो मैंने उनसे कहा, कोशिश की होगी, समझाया होगा अपने को, लिखा है किताबों में कि कण—कण में परमात्मा है। नहीं उन्होंने कहा कि मुझे वर्षों से दिखाई पड़ता है। तो मैंने कहा, और वर्षों के पहले कोशिश की होगी। मैंने कहा, आप रुके। मेरे पास रुक जाएं और दो—चार दिन अब देखने की कोशिश न करें।

दूसरे दिन सुबह उन्होंने मुझसे कहा कि आपने मुझे भारी नुकसान पहुंचाया। मेरी तीस साल की साधना खराब कर दी। क्योंकि मैंने रात से कोशिश नहीं की, तो मुझे वृक्ष फिर वृक्ष दिखाई पड़ने लगे। अब मुझे परमात्मा दिखाई नहीं पड़ता!

तो मैंने कहा, जिसको तीस साल देखकर भी, दो—चार घंटे देखने की कोशिश न की जाए और खो जाता हो, तो आप वृक्षों के ऊपर अपना एक सपना आरोपित कर रहे हैं। उसका परमात्मा से कोई लेज—देना नहीं है। कह रहे हैं कि वृक्ष में परमात्मा है। समझाए जाएं, तो दिखाई पड़ने लगेगा। ' लेकिन यह वह परमात्मा नहीं है, जिसकी कृष्ण बात कर रहे हैं। आपको परमात्मा थोपना नहीं है जगत पर, आपको तो जगत के प्रति ही जाग जाना है। जागते से जगत खो जाता है और परमात्मा शेष रह जाता है।

आपको सपने को समझाना नहीं है अपने को कि यह झूठ है, यह झूठ है। नहीं, सपने को देख लेना है ठीक से, क्या है? और जैसे ही सपने को देख लिया जाता है कि क्या है, तो आप अचानक पाते हैं कि सपना टूट गया और नहीं है। फिर जो शेष रह जाता है वही सत्य है।

प्रयास तो हमें असत्य के लिए करने पड़ते हैं, सत्य के लिए नहीं करने पड़ते हैं। एफर्ट तो असत्य के लिए करना पड़ता है, सत्य के लिए नहीं करना पड़ता। क्योंकि जो सत्य मनुष्य के प्रयास से मिलता होगा, वह सत्य नहीं हो सकता। जो सत्य मनुष्य के प्रयास के बिना ही मौजूद है, वही सत्य है।

सत्य आपको निर्मित नहीं करना है, वह आपका कंस्ट्रक्शन नहीं है कि आप उसका निर्माण करेंगे। सत्य तो है ही। कृपा करके असत्य भर निर्माण न करें; जो है, वह दिखाई पड़ जाएगा।

मैं एक वृक्ष की शाखा को अपने हाथ से खींच लेता हूं। फिर मैं राह चलते आपसे पूछता हूं कि इस वृक्ष की शाखा को मैंने इसकी जगह से नीचे खींच लिया है, अब मैं इसे इसकी जगह वापस पहुंचाना चाहता हूं तो क्या करूं? तो आप क्या कहेंगे मुझसे कि कुछ करिए! आप कहेंगे, कृपा करके खींचिए भर मत; छोड़ दीजिए। शाखा अपनी जगह पहुंच जाएगी; शाखा अपनी जगह थी ही; आपकी कृपा से ही अपनी जगह से हट गई है।

परमात्मा में पहुंचने के लिए मनुष्य को किसी एफर्ट और प्रयास की जरूरत नहीं है। परमात्मा को खोने के लिए उसने जो प्रयास !? किया है, कृपा करके उतना प्रयास भर वह न करे, अपनी जगह। पहुंच जाएगा।

स्वप्न हमारे निर्माण हैं। सत्य हमारा निर्माण नहीं है।

इसलिए बुद्ध को जब शान हुआ और लोगों ने बुद्ध से पूछा कि तुम्हें क्या मिला? तो बुद्ध ने कहा, मुझे कुछ मिला नहीं, सिर्फ मैंने कुछ खोया है। तब तो वे बहुत हैरान हुए। उन्होंने कहा, हम तो सोचते थे कि आपको कुछ मिला है! बुद्ध ने कहा, मिला कुछ भी नहीं। जो था ही, उसे मैंने जाना है। ही, खोया जरूर कुछ। जो—जो मैंने बनाया था, वह मुझे सब खो देना पड़ा। अइगन मैंने खोया और : ज्ञान मैंने पाया नहीं, क्योंकि ज्ञान था ही। जिस अइमन को मैं जोर से पकड़े था, उसकी वजह से दिखाई नहीं पड़ रहा था। खोया जरूर, पाया कुछ भी नहीं। पाया वही, जो पाया ही हुआ था, जो सदा से मिला ही हुआ था।

ठीक से समझें तो सिर्फ जागकर देखने की जरूरत है। आख। खोलकर, प्रज्ञा को पूरी तरह जगाकर, चेतना को पूरे होश से अप्रमाद में लाकर देखने भर की जरूरत है कि क्या है! और जैसे ही हम देखते हैं कि क्या है, उसमें जो नहीं है, वह गिर जाता है; जो है, वह शेष रह जाता है।

अन्तवन्त हमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिण: ।

अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत ।।18।।

और हम नाशरहित, अप्रमेय, नित्यस्वरूप, जीवात्मा के ये शरीर नाशवान कहे गए हैं। इसलिस हे भरतवंशी अर्जुन, तू युद्ध कर।

अर्जुन को युद्ध बड़ा सत्य मालूम पड़ रहा है; देह बहुत सत्य मालूम पड़ रही है; मृत्यु बहुत सत्य मालूम पड़ रही है; उसकी अड़चन स्वाभाविक है। उसकी अड़चन हमारी सबकी अड़चन है। जो हमें सत्य मालूम पड़ता है, वही उसे सत्य मालूम पड़ रहा है। कृष्ण उसे बड़ी दूसरी दुनिया की बातें कह रहे हैं। वे कह रहे हैं कि यह देह, ये शरीरधारी लोग, यह दिखाई पड़ने वाला सारा जाल—यह स्वप्न है। तू इसकी फिक्र मत कर और लड़।

कृष्ण का लड़ने के लिए यह आह्वान तथाकथित धार्मिक लोगों को, सो काल्ड रिलीजस लोगों को, सदा ही कष्ट का कारण रहा है; समझ के बाहर रहा है। क्योंकि एक तरफ समझाने वाले लोग हैं, जो कहते हैं, चींटी पर पैर पड़ जाए तो बचाना, अहिंसा है। पानी छानकर पीना। दूसरी तरफ यह कृष्ण है, जो कह रहा है कि लड़, क्योंकि यहां न कोई मरता, न कोई मारा जाता। यह सब देह स्वप्न है।

अर्जुन साधारणत: ठीक कहता मालूम पड़ता है। गांधी ने चाहा होता कि अर्जुन की बात कृष्ण मान लेते, अहिंसावादियो ने चाहा होता कि कृष्ण की बात न चलती, अर्जुन की चल जाती। लेकिन कृष्ण बड़ी अजीब बात कह रहे हैं। वे कह रहे हैं, जो स्वप्न है, उसके लिए तू दुखी हो रहा है! जो नहीं है, उसके लिए तू पीड़ित और परेशान हो रहा है! साधारण नीति के बहुत पार चली गई बात।

इसलिए जब पहली बार गीता के अनुवाद पश्चिम में पहुंचे, तो पश्चिम के नीतिविदो की छातियां कंप गईं। भरोसा न हुआ कि कृष्ण और ऐसी बात कहेंगे। जिन्होंने सिर्फ पुरानी बाइबिल के टेन कमांडमेंट्स पढ़े थे धर्म के नाम पर—जिन्होंने पढ़ा था चोरी मत कर, जिन्होंने पढ़ा था असत मत बोल, जिन्होंने पढ़ा था किसी को ' दुख मत पहुंचा—उनके प्राण अगर कैप गए हों। बड़ा शॉकिग था कि कृष्ण कहते हैं कि यह सब स्वप्न है; तू लड़!

तो पश्चिम के नीतिविदो को लगा कि गीता जैसी किताब नैतिक। नहीं है। या तो अनैतिक है या अतिनैतिक है। या तो इम्मारल है या एमारल है। कम से कम मारल तो नहीं है। यह क्या बात है?

और ऐसा पश्चिम में ही लगा हो, ऐसा नहीं, जैन विचारकों ने कृष्ण को नर्क में डाल दिया। जैन चिंतन को अनुभव हुआ कि यह आदमी क्या कह रहा है! मारने की खुली छूट! अगर अर्जुन का। वश चलता तो महाभारत शायद न होता। कृष्ण ने ही करवा दिया। तो अहिंसा की धारा इस मुल्क में भी थी। उसने कृष्ण को नर्क में। डालने की जरूरत महसूस की। इस आदमी को नर्क में डाल ही देना चाहिए।

यह बड़ा मुद्दा है और बड़े विचार का है। इसमें ध्यान रखना जरूरी है कि नीति धर्म नहीं है, नीति बहुत कामचलाऊ व्यवस्था है। नीति बिलकुल सामाजिक घटना है। नीति स्वप्न के बीच व्यवस्था है। स्वप्न में भी रास्तों पर चलना हो तो नियम बनाने पड़ेंगे। स्वप्न में भी जीना हो तो व्यवस्थापन, डिसिप्लिन, शिष्ट—अनुशासन बनाना पड़ेगा। नीति धर्म नहीं है, नीति बिलकुल सामाजिक व्यवस्था है। इसलिए नीति रोज बदल सकती है; समाज बदलेगा और नीति बदलेगी। कल जो ठीक था, वह आज गलत हो जाएगा। आज जो ठीक है, वह कल गलत हो जाएगा। नीति भी असत का हिस्सा है।

इसका यह मतलब नहीं है कि धर्म अनीति है। जब नीति तक असत का हिस्सा है, तो अनीति तो असत का हिस्सा होगी ही। धर्म नीति और अनीति को पार करता है। असल में धर्म संसार को पार करता है। तो इसलिए कृष्ण की बात जिस तल से कही जा रही है, उस तल से बहुत मुश्किल से समझी जा सकी है।

जैनों ने नर्क में डाल दिया, वह एक उपाय था, उनसे छुटकारा पाने का। गांधी ने पूरी गीता को मेटाफर मान लिया। मान लिया कि यह हुई नहीं है घटना कभी, क्योंकि कृष्ण कहां युद्ध करवा सकते हैं! यह किसी असली युद्ध की बात नहीं है, यह तो शुभ—अशुभ के बीच जो युद्ध चलता है, उसकी प्रतीक—कथा है, सिम्बालिक है। यह दूसरी तरकीब थी—ज्यादा बली। लेकिन मतलब वही छुटकारा पाने का है। मतलब यह कि यह घटना कभी.।

कृष्ण युद्ध कैसे करवा सकते हैं! कृष्ण कैसे कह सकते हैं कि युद्ध करो! नहीं, कृष्ण तो यह कह ही नहीं सकते। इसलिए अब एक दूसरा उपाय है—होशियारी से कृष्ण से बच जाने का—और वह यह है कि कहो कि मेटाफर है, सिंबल है, एक कहानी है, प्रतीक—कथा है। यह घटना कभी घटी नहीं, ऐसा कोई युद्ध कहीं हुआ नहीं कि जिसमें युद्ध करवाया गया हो। ये सब तो प्रतीक— पुरुष हैं—यह अर्जुन और यह दुर्योधन और ये सब—ये व्यक्ति नहीं हैं, ये ऐतिहासिक तथ्य नहीं हैं। यह तो सिर्फ एक पैरेबल है, एक प्रतीक—कथा है, जिसमें शुभ और अशुभ की लड़ाई हो रही है। और अशुभ के खिलाफ लड़ने के लिए कृष्ण कह रहे हैं।

अब यह कृष्ण को एकदम विकृत करना है। कृष्ण अशुभ के खिलाफ लड़ने को नहीं कह रहे हैं। अगर कृष्ण को ठीक समझें, तो वे कह रहे हैं कि शुभ और अशुभ एक ही स्वप्न के हिस्से हैं, हिंसा और अहिंसा एक ही स्वप्न के हिस्से हैं। कृष्ण यह नहीं कह रहे हैं कि हिंसा ठीक है, कृष्ण इतना ही कह रहे हैं कि हिंसा और। अहिंसा अच्छे और बुरे आदमी के स्वप्न हैं। स्वप्न ही हैं। और पूरे स्वप्न को स्वप्न की भांति जो जानता है, वह सत्य को उपलब्ध होता है। नीति का अतिक्रमण करती है यह बात। अनैतिक नहीं है। अनीति का भी अतिक्रमण करती है यह बात।

इन अर्थों में कृष्ण का संदेश बहुत कठिन हो जाता है समझना। चुनाव आसान पड़ता है—यह बुरा है, यह ठीक है। लेकिन ठीक और बुरा दोनों ही स्वप्न है, यहां हमारे पैर डगमगा जाते हैं। लेकिन जो यहां पैर को थिर रख सके, वही गीता में आगे प्रवेश कर सकेगा।

इसलिए इस बात को बिलकुल ठीक से समझ लेना कि कृष्ण न हिंसक हैं, न अहिंसक हैं। क्योंकि हिंसक की मान्यता है कि मैं दूसरे को मार डालता हूं। और अहिंसक की मान्यता है कि मैं दूसरे को बचा रहा हूं। और कृष्ण कहते हैं कि जो न मारा जा सकता, वह बचाया भी नही जा सकता है। न तुम बचा सकते हो, न तुम मार सकते हो। जो है, वह है। और जो नहीं है, वह नहीं है। तुम दोनों एक—दूसरे से विपरीत स्वप्न देख रहे हो।

एक आदमी किसी की छाती में छुरा भोंक देता है, तो सोचता है, मिटा डाला इसे। और दूसरा आदमी उसकी छाती से छुरा निकाल कर मलहम—पट्टी करता है, और सोचता है, बचा लिया इसे। इन! दोनों ने सपने देखे विपरीत—एक बुरे आदमी का सपना, एक अच्छे आदमी का सपना। और हम चाहेंगे कि अगर सपना ही देखना है, तो अधिक लोग अच्छे आदमी का सपना देखें।

लेकिन कृष्ण यह कह रहे हैं कि दोनों सपने हैं। और एक और तल है देखने का, जहां बचाने वाला और मारने वाला एक—सी ही भूल कर रहा है। वह भूल यही है कि जो है, उसे या तो मिटाया जा सकता है, या बचाया जा सकता है। कृष्ण कह रहे हैं, जो नहीं है, वह नहीं है; जो है, वह है। वे यह नहीं कह रहे हैं कि बुरे आदमी का सपना देखें, वे यह

कह रहे हैं कि दोनों ही सपने हैं। और अगर देखना ही है, तो पूरे सपने को देखें, ताकि जाग जाएं। अगर देखना ही है, तो बुरे—अच्छे आदमी के सपनों में चुनाव न करें, पूरे सपने को ही देखें और जाग जाएं।

यह जागरण की, अवेयरनेस की जो प्रक्रिया कृष्ण अर्जुन को कह रहे हैं, वह अर्जुन की कैसे समझ में आएगी, बड़ी कठिनाई है। क्योंकि अर्जुन बड़ी नीतिवादी बातें कर रहा है। और वह नैतिक सपना देखने को बड़ा उत्सुक है। वह अनैतिक सपने से ऊबा हुआ मालूम पड़ता है। अब वह नैतिक सपना देखने को उत्सुक है। और कृष्ण कहते हैं, सपने में ही चुनाव कर रहा है। पूरे सपने के प्रति ही जाग जाना है।

एक सूत्र और पढ़ लें, फिर रात हम बात करेंगे।

य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम् ।

उभौ तो न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते।।19।।

और जो हल आत्मा को मारने वाला समझता है। तथा जो हमको मरा मानता है, वे दोनों ही नहीं जानते हैं। क्यींकि यह आत्मा न मारता है और न मारा जाता है।

जो है, वह न मरता है और न मारा जाता है। और जो है हमारे भीतर, उसका नाम आत्मा है। और जो है हमारे बाहर, उसका नाम परमात्मा है। जो मारा जाता है और जो मार सकता है, या जो अनुभव करता है कि मारा गया—हमारे भीतर उसका नाम शरीर है, हमारे बाहर उसका नाम जगत है। जो अमृत है, जो इम्मार्टल है, वही चेतना है। और जो मर्त्य है, वही जड़ है। साथ ही, जो मर्त्य है, वही लहर है, असत है; और जो अमृत है, वही सागर है, सत है।

अर्जुन के मन में यही चिंता, दुविधा और पीड़ा है कि मैं कैसे मारने में संलग्न हो जाऊं! इससे तो बेहतर है, मैं ही मर जाऊं। ये दोनों बातें एक साथ ही होंगी। जो दूसरे को सोच सकता है मरने की भाषा में, वह अपने को भी मरने की भाषा में सोच सकता है। जो सोच सकता है कि मृत्यु संभव है, वह स्वभावत: दुखी हो जाएगा। लेकिन कृष्ण कह रहे हैं कि मृत्यु एक मात्र असंभावना है—दि ओनली इंपासिबिलिटी। मृत्यु हो ही नहीं सकती। मृत्यु की असंभावना है।

लेकिन जिंदगी जहा हम जीते हैं, वहां तो मृत्यु से ज्यादा निश्चित और कोई संभावना नहीं है। वहां सब चीजें असंभव हो सकती हैं, मृत्यु भर सुनिश्चित रूप से संभव है। एक बात तय है, वह है मृत्यु। और सब बातें तय नहीं हैं। और सब बदलाहट हो सकती है। कोई दुखी होगा, कोई सुखी होगा। कोई स्वस्थ होगा, कोई बीमार होगा। कोई सफल होगा, कोई असफल होगा। कोई दीन होगा, कोई सम्राट होगा। और सब होगा, और सब विकल्प खुले हैं, एक विकल्प बंद है। वह मृत्यु का विकल्प है, वह होगा ही। सम्राट भी वहा पहुंचेगा, भिखारी भी वहा पहुंचेगा; सफल भी, असफल भी; स्वस्थ भी, बीमार भी—सब वहा पहुंच जाएंगे। एक बात, जिस जीवन में हम खड़े है, वहां तय है, वह मृत्यु है।

और कृष्ण बिलकुल उलटी बात कह रहे हैं, वे यह कह रहे हैं कि एक बात भर सुनिश्चित है कि मृत्यु असंभावना है। न कभी कोई मरा और न कभी कोई मर सकता है। मृत्यु अकेला भ्रम है। शायद इस मृत्यु के आस—पास ही हमारे जीवन के सारे कोण निर्मित होते हैं। जो देखता है कि मृत्यु सत्य है, उसके जीवन में शरीर से ज्यादा का अनुभव नहीं है।

यह बड़े मजे की बात है कि आपको मृत्यु का कोई भी अनुभव नहीं है। आपने दूसरों को मरते देखा है, अपने को मरते कभी नहीं देखा है।

समझें कि एक व्यक्ति को हम विकसित करें. जिसने मृत्यु न देखी हो, किसी को मरते न देखा हो। कल्पना कर लें, एक व्यक्ति को हम इस तरह बडा करते हैं, जिसने मृत्यु नहीं देखी। क्या यह आदमी कभी भी सोच पाएगा कि मैं मर जाऊंगा? क्या इसके मन में कभी भी यह कल्पना भी उठ सकती है कि मैं मर जाऊंगा?

असंभव है। मृत्यु इनफरेंस है, अनुमान है, दूसरे को मरते देखकर। और मजा यह है कि जब दूसरा मरता है तो आप मृत्यु नहीं देख रहे, क्योंकि मृत्यु की घटना आपके लिए सिर्फ इतनी है कि वह कल तक बोलता था, अब नहीं बोलता; कल तक चलता था, अब नहीं चलता। आप चलते हुए को, न चलते की अवस्था में गया हुआ देख रहे हैं। बोलते हुए को, न बोलते की अवस्था में देख रहे हैं। धड़कते हृदय को, न धड़कते हृदय की अवस्था में देख रहे हैं। लेकिन क्या इतने से काफी है कि आप कहें, जो भीतर था, वह मर गया? क्या इतना पर्याप्त है? क्या इतना काफी है? मृत्यु की निष्पत्ति लेने को क्या यह काफी हो गया? यह काफी नहीं है।

दक्षिण में एक योगी थे कुछ वर्षों पहले, ब्रह्मयोगी। उन्होंने आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी में, और कलकत्ता और रंगन युनिवर्सिटी में—तीन जगह मरने का प्रयोग करके दिखाया। वह बहुत कीमती प्रयोग था। वह दस मिनट के लिए मर जाते थे।

जब आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी में उनका प्रयोग हुआ तो डाक्टर्स मौजूद थे। और उन्होंने कहा कि इस दस मिनट में आप मेरी जांच—पड़ताल करके लिख दें सर्टिफिकेट कि यह आदमी मर गया कि जिंदा है। फिर उनकी श्वास खो गई। फिर उनकी नाड़ी बंद हो गई। फिर हृदय ने धड़कना बंद कर दिया। फिर खून की चाल सब शात हो गई। और दस डाक्टरों नें—आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी के मेडिकल कालेज के—सर्टिफिकेट लिखा कि यह आदमी मर गया है। और मरने के सारे सिम्मम्स इस आदमी ने पूरे कर दिए हैं। और दस आदमियों ने दस्तखत किए।

और वे ब्रह्मयोगी दस मिनट के बाद वापस जिंदा हो गए। श्वास फिर चलने लगी, हृदय फिर धड़कने लगा, खून फिर बहने लगा, नाड़ी फिर वापस लौट आई। और उन्होंने कहा, फिर सर्टिफिकेट लिखें कि इस आदमी के बाबत क्या खयाल है! उन डाक्टरों ने कहा, हम बड़ी मुश्किल में पड़ गए। आप हम पर कोई अदालत में मुकदमा तो न चलाएंगे? क्योंकि मेडिकल साइंस जो कह सकती थी, हमने कह दिया। तो ब्रह्मयोगी ने कहा, मुझे यह भी लिखकर दें कि अब तक जितने लोगों को आपने मरने के सर्टिफिकेट दिए हैं, वे संदिग्ध हो गए हैं।

असल में जिसे हम मृत्यु कह रहे हैं, वह जीवन का शरीर से सरक जाना है। जैसे कोई दीया अपनी किरणों को सिकोड़ ले वापस, ऐसे जीवन का फैलाव वापस क्किउडु जाता है, बीज में वापस लौट जाता है। फिर नई यात्रा पर निकल जाता है। लेकिन बाहर से इस सिकुड़ने को हम मृत्यु समझ लेते हैं।

बटन दबा दी हमने, बिजली का बल्व जलता था, किरणें समाप्त हो गईं। बल्व से अंधकार झरने लगा। क्या बिजली मर गई? सिर्फ अभिव्यक्ति खो गई। सिर्फ मैनिफेस्टेशन बंद हो गया। फिर बटन दबाते हैं, फिर किरणें बिजली की वापस बहने लगीं। क्या बिजली पुनरुज्जीवित हो गई? क्योंकि जो मरी नहीं थी, उसको पुनरुज्जीवित कहने का कोई अर्थ नहीं है। बिजली पूरे समय वहीं थी, सिर्फ अभिव्यक्ति खो गई थी।

जिसे हम मृत्यु कहते हैं, वह प्रकट का फिर पुन: अप्रकट हो जाना है। जिसे हम जन्म कहते हैं, वह अप्रकट का पुन: प्रकट हो जाना है।

कृष्ण कहते हैं, न ही शरीर को मारने से आत्मा मरती है, न ही शरीर को बचाने से आत्मा बचती है। आत्मा न मरती है, न बचती है। असल में जो मरने और बचने के पार है, वही आत्मा है, वही अस्तित्व है।

शेष सांझ हम बात करेंगे।

प्रवचन 8 : मरणधर्मा शरीर और अमृत, अरूप आत्मा
ओशो – गीता-दर्शन – भाग एक
अध्याय—1-2 – प्रवचन 8 : मरणधर्मा शरीर और अमृत, अरूप आत्मा
प्रश्न :
भगवान श्री,
य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते।।

इस श्लोक के बारे में सुबह जो चर्चा हुई, उसमें आत्मा यदि हननकर्ता नहीं या हनन्य भी नहीं है, तो जनरल डायर या नाजियों के कनसनट्रेशन कैंप की घटनाएं कैसे जस्टिफाई हो सकती हैं! टोटल एक्सेप्टिबिलिटी में इनकी क्या उपादेयता है?

न कोई मरता है और न कोई मारता है; जो है, उसके विनाश की कोई संभावना नहीं है। तब क्या इसका यह अर्थ लिया जाए कि हिंसा करने में कोई भी बुराई नहीं है? क्या इसका यह अर्थ लिया जाए कि जनरल डायर ने या आउश्वित्ज में जर्मनी में या हिरोशिमा में जो महान हिंसा हुई, वह निंदा योग्य नहीं है? स्वीकार योग्य है?

नहीं, कृष्ण का ऐसा अर्थ नहीं है। इसे समझ लेना उपयोगी है। हिंसा नहीं होती, इसका यह अर्थ नहीं है कि हिंसा करने की आकांक्षा बुरी नहीं है। हिंसा तो होती ही नहीं, लेकिन हिंसा की आकांक्षा होती है, हिंसा का अभिप्राय होता है, हिंसा की मनोदशा होती है।

जो हिंसा करने के लिए इच्छा रख रहा है, जो दूसरे को मारने में रस ले रहा है, जो दूसरे को मारकर प्रसन्न हो रहा है, जो दूसरे को मारकर समझ रहा है कि मैंने मारा—कोई नहीं मरेगा पीछे—लेकिन इस आदमी की यह समझ कि मैंने मारा, इस आदमी का यह रस कि मारने में मजा मिला, इस आदमी की यह मनोकाक्षा कि मारना संभव है, इस सबका पाप है।

पाप हिंसा होने में नहीं है, पाप हिंसा करने में है। होना तो असंभव है, करना संभव है। जब एक व्यक्ति हिंसा कर रहा है, तो दो चीजें हैं वहां। हिंसा की घटना तो, कृष्ण कहते हैं, असंभव है, लेकिन हिंसा की मनोभावना बिलकुल संभव है।

ठीक इससे उलटा भी सोच लें कि फिर क्या महावीर की अहिंसा और बुद्ध की अहिंसा का कोई अर्थ नहीं? अगर हिरोशिमा और आउश्वित्ज के कनसनट्रेशन कैम्प्स में होने वाली हिंसा का कोई अर्थ नहीं है, तो बुद्ध और महावीर की अहिंसा का भी कोई अर्थ नहीं रह जाता। अगर आप समझते हों कि अहिंसा का अर्थ तभी है, जब हम किसी मरते और मिटते को बचा पाएं, तो कोई अर्थ नहीं है।

नहीं, महावीर और बुद्ध की अहिंसा का अर्थ और है। यह बचाने की आकांक्षा, यह न मारने की आकांक्षा! यह मारने में रस न लेने की स्थिति, यह बचाने में रस लेने का मनोभाव! जब महावीर एक चींटी को बचाकर निकलते हैं, तो ऐसा नहीं है कि महावीर के बचाने से चींटी बच जाती है। चींटी में जो बचने वाला है, बचा ही रहेगा; और जो नहीं बचने वाला है, वह महावीर के बचाने से नहीं बचता है। लेकिन महावीर का यह भाव बचाकर निकलने का बड़ा कीमती है। इस भाव से चींटी को कोई लाभ—हानि नहीं होती, लेकिन महावीर को जरूर होती है।

बहुत गहरे में प्रश्न भाव का है, घटना का नहीं है। बहुत गहरे में प्रश्न भावना का है, वह व्यक्ति क्या सोच रहा है। क्योंकि व्यक्ति जीता है अपने विचारों में घिरा हुआ। घटनाएं घटती हैं यथार्थ में, व्यक्ति जीता है विचार में, भाव में।

हिंसा बुरी है; कृष्ण के यह कहने के बाद भी बुरी है कि हिंसा नहीं होती। और कृष्ण का कहना जरा भी गलत नहीं है। असल में कृष्ण अस्तित्व से कह रहे हैं; अस्तित्व के बीच खोज रहे हैं।

हिटलर जब लोगों को मार रहा है, तो कृष्ण की मनोदशा में नहीं है। हिटलर को लोगों को मारने में रस और आनंद है—मिटाने में, विनाश करने में। विनाश होता है या नहीं होता है, यह बिलकुल दूसरी बात है। लेकिन हिटलर को विनाश में रस है। यह रस हिंसा है। अगर ठीक से समझें, तो विनाश का रस हिंसा है, मारने की इच्छा हिंसा है। मरना होता है या नहीं होता है, यह बिलकुल दूसरी बात है। और यह जो रस हिटलर का है, यह एक डिसीज्ड, रुग्ण चित्त का रस है।

समझ लेना जरूरी है कि जब भी विनाश में रस मालूम पड़े, तो ऐसा आदमी भीतर विक्षिप्त है। जितना ही भीतर आदमी शांत और आनंदित होगा, उतना ही विनाश में रस असंभव है। जितना ही भीतर आनंदित होगा, उतना सृजन में रस होगा, उतना क्रिएटिविटी में रस होगा।

महावीर की अहिंसा एक क्रिएटिव फीलिंग है, जगत के प्रति एक सृजनात्मक भाव है। हिटलर की हिंसा जगत के प्रति एक विनाशात्मक भाव है, एक डिस्ट्रक्टिव भाव है। यह भाव महत्वपूर्ण है। और जहां हम जी रहे हैं, वहा अस्तित्व में क्या होता है, यह मूल्यवान नहीं है।

मैं एक छोटी—सी घटना से समझाने की कोशिश करूं।

कबीर के घर बहुत भक्त उगते हैं। गीत, भजन। और जब जाने लगते हैं, तो कबीर कहते हैं, भोजन करते जाएं। फिर कबीर का बेटा और पत्नी परेशान हो गए। बेटे ने एक दिन कहा कि अब बरदाश्त के बाहर है। हम कब तक कर्ज लेते जाएं! यह हम कहां से लोगों को खिलाएं! अब आप कहना बंद करें।

कबीर ने कहा कि मुझे याद ही नहीं रहती; जब घर कोई मेहमान आता है, तो मुझे खयाल ही नहीं रहता कि घर में कुछ नहीं है। और घर कोई आया हो तो कैसे खयाल रखा जाए कि घर में कुछ नहीं है! तो मैं कहे ही जाता हूं कि भोजन करते जाएं। फिर तो बेटे ने कहा, तो क्या हम चोरी करने लगें? व्यंग्य में कहा, क्रोध में कहा कि क्या हम चोरी करने लगें! कबीर ने कहा कि अरे, तुझे यह पहले खयाल क्यों न आया! वह बेटा तो हैरान हुआ, क्योंकि उसे आशा न थी कि कबीर और ऐसा कहेंगे। तो उसने कहा, तो फिर आज मैं चोरी करने जाऊं? वह बेटा भी साधारण नहीं था; कबीर का ही बेटा था। मैं आज चोरी करने जाऊं? कबीर ने कहा, बिलकुल। तो बेटे ने और परीक्षा लेने के लिए कहा, आप भी चलिएगा? कबीर ने कहा, चला चलूंगा।

रात हो गई, बेटे ने कहा, चलें। बेटा भी आखिरी तर्क की सीमा तक देखना चाहता था कि बात क्या है, क्या कबीर चोरी करने को राजी हैं? कबीर—और चोरी करने को राजी! बेटे की समझ के बिलकुल बाहर है। अर्जुन की समझ के भी बाहर है कि कृष्ण हिंसा करने को राजी हैं।

ले गया कबीर का बेटा कमाल कबीर को। फिर जाकर दीवार तोड़ी। दीवार तोड़कर बीच—बीच में देखता भी रहा। कबीर उससे कहते हैं, इतना घबड़ाता क्यों है? इतना कंपता क्यों है? उसने दीवार भी तोड़ ली। फिर उसने कहा, मैं भीतर जाऊं? कबीर ने कहा कि जरूर जा। वह भीतर भी गया। वह एक गेहूं का बोरा घसीटकर भी लाया। उसने सोचा, अब रोकेंगे, अब रोकेंगे। अब तो बहुत हो गया, हद्द हो गई। कबीर ने बोरा भी बाहर निकलवा लिया। फिर बेटे से कहा, भीतर जाकर, घर में लोग सोए होंगे, उनको कह आओ कि तुम्हारे घर चोरी हो गई है, हम एक बोरा ले जा रहे हैं। तो उस बेटे ने कहा, यह किस प्रकार की चोरी है? चोरी कहीं बताई जाती है? तो कबीर ने कहा कि जो चोरी बताई नहीं जा सकती, वह फिर पाप हो गई। खबर करो! तो बेटे ने कहा कि मैं इतनी देर से परेशान ही था कि यह किस तरह आप चोरी करवा रहे हैं! कबीर

ने कहा, मुझे याद ही न रहा, क्योंकि जब से यह दिखाई पड़ने लगा कि सभी एक हैं, तब से कुछ अपना न रहा, कुछ पराया न रहा। वह दूसरे का है, तब चोरी पाप है। लेकिन वह याद ही न रहा, तूने ठीक याद दिला दिया। लेकिन तूने पहले याद क्यों न दिलाया! कबीर कह रहे हैं, वह दूसरे का है, तब तक तो चोरी पाप है। लेकिन अगर दूसरे की कोई चीज नहीं रह गई, अगर सभी एक का ही है; और उस तरफ जो श्वास चलती है, वह भी मेरी है; और इस ' तरफ जो श्वास चलती है, वह भी मेरी है—तो इस तल पर चोरी के पाप होने का कोई अर्थ नहीं रह जाता। लेकिन यह अस्तित्व के तल की बात हुई। यह ब्रह्मज्ञान में प्रविष्ट व्यक्ति की बात हुई। तो कबीर ने कहा, अगर न जगा सकता हो तो वापस लौटा दे। क्योंकि अपने को ही अगर हम खबर करने में डरते हैं, तो चीज फिर अपनी नहीं है। तो फिर वापस लौटा दे। किससे बचकर ले जाना है? अब यह बहुत दो तलों की बात हो गई, यह दो एक्सिस्टेंस की बात हो गई। इसे ठीक से खयाल में ले लें। एक तो अस्तित्व का जगत है, जहां सभी कुछ परमात्मा का है, वहा चोरी नहीं हो सकती। कबीर उसी जगत में जी रहे हैं। एक मनोभावों का जगत है, जहां दूसरा दूसरा है, मैं मैं हूं; मेरी चीज मेरी है, दूसरे की चीज दूसरे की है। वहां चोरी होती है, हो रही है, हो सकती है।

जब तक दूसरे की चीज दूसरे की है, तब तक चोरी पाप है। चोरी घटित होती नहीं, सिर्फ चीजें यहां से वहा रखी जाती हैं। चोरी की क्या घटना घट सकती है इस जमीन पर! कल न मैं रहूंगा, न आप रहेंगे। मेरी चीजें भी मेरी नहीं रह जाएंगी, आपकी चीजें भी आपकी नहीं रह जाएंगी। चीजें यहां पड़ी हैं—इस घर में या उस घर में, क्या फर्क पड़ेगा!

अस्तित्व के तल पर चोरी नहीं घटती, भाव के तल पर चोरी घटती है। अगर हिटलर यह कह सके कि मरने में हिंसा होती ही नहीं, तो हिटलर को फिर अपने आस—पास संतरी खड़े करने की जरूरत नहीं। फिर वह आउश्विज्ब में मारे लोगों को, तो हमें कोई एतराज न होगा। लेकिन खुद को बचाने के लिए जो तत्पर है, दूसरे को मारने को जो आतुर है, वह जानता है, मानता है कि हिंसा होती है। खुद को जो बचा रहा है।

अगर कृष्ण अर्जुन से यह कहें कि ये कोई मरने वाले नहीं हैं, बेफिक्री से मार, लेकिन तू मरने वाला है, जरा अपने को सम्हालना, बचाना। तब फिर बेईमानी हो जाएगी। लेकिन कृष्ण उससे कहते हैं कि न कोई मरता है, न कोई मारा जाता है। अगर ये भी तुझे मार डालें, तो भी कुछ मरता नहीं। अगर तू भी इन्हें मार डाले, तो भी कुछ मरता नहीं। वे बहुत अस्तित्व की गहरी बात कह रहे हैं। इतना स्मरण रखना जरूरी है।

हिरोशिमा में हिंसा हुई, क्योंकि जिन्होंने बम पटका, वे मारने के लिए पटके थें। हिटलर ने हिंसा की, क्योंकि वह मानकर चल रहा है कि दूसरे को मार रहे हैं। मरता है, नहीं मरता है, यह बहुत दूसरी बात है। इससे हिटलर का कोई लेना—देना नहीं है। जब तक मैं अपने को बचाने को उत्सुक हूं तब तक मैं दूसरे को मारने को सिद्धात नहीं बना सकता। जब तक मैं कहता हूं, यह मेरी चीज है, कोई चोरी न कर ले जाए, तब तक मैं दूसरे के घर चोरी करने जाऊं, तो वह चोरी कबीर की चोरी नहीं हो सकती। कबीर की चोरी चोरी ही नहीं है। कृष्ण की हिंसा हिंसा ही नहीं है।

इसलिए सवाल उचित है। कृष्ण की गीता और कृष्ण का संदेश समझकर कोई अगर ऐसा समझ ले कि दूसरे को मारना मारना ही नहीं है, बिलकुल झूठ है, समझे; लेकिन खुद का मारा जाना भी मारा जाना नहीं है, इस शर्त को ध्यान में रखकर; तब कोई हर्ज नहीं है। लेकिन अपने को बचाए और दूसरे को मारे—और मजा यह है कि हम अपने को बचाने के लिए ही दूसरे को मारते हैं—तब फिर कृष्ण को भूल ही जाएं तो अच्छा है।

खतरा हुआ है। इस मुल्क ने जीवन के इतने गहरे सत्यों को पहचाना था, उसकी वजह से यह मुल्क बुरी तरह पतित हुआ है। असल में बहुत गहरे सत्य बेईमान आदमियों के हाथों में पड़ जाएं, तो असत्यों से बदतर सिद्ध होते हैं। इस मुल्क ने इतने गहरे सत्यों को पहचाना था कि उन सत्यों को जब तक हम पूरा न जान लें, तब तक उनका आधा उपयोग नहीं कर सकते।

इस मुल्क ने भलीभांति जाना था कि व्यवहार तो माया है, वह तो सपना है। तो फिर ठीक है, बेईमानी में कौन—सी बुराई है! अगर यह मुल्क पांच हजार साल की निरंतर चितना के बाद आज पृथ्वी पर सर्वाधिक बेईमान है, तो उसका कारण है। अगर हम इतनी अच्छी बातें करने के बाद भी जीवन में एकदम विपरीत सिद्ध होते हैं, तो उसका कारण है। उसका कारण यही है कि जिस तल पर बातें हैं, उस तल पर हम नहीं उठते, बल्कि जिस तल पर हम हैं, उसी तल पर उन बातों को ले आते हैं।

कृष्ण के तल पर अर्जुन उतरे, उठे, तब तो ठीक। और अगर अर्जुन कृष्ण को अपने तल पर खींच लाए, तो खतरा होने वाला है। और अक्सर ऐसा होता है कि कृष्ण के तल तक उठना तो मुश्किल हो जाता है, कृष्ण को ही खींचकर हम अपने तल पर ले आते हैं। तब हम ऐट ईज, सुविधा में हो जाते हैं। तब हम कह पाते हैं, सब माया है; सब माया है; बेईमानी कर पाते हैं, कह पाते हैं, माया है। अब बड़े मजे की बात है कि जिस आदमी को माया दिखाई पड़ रही है, वह आदमी बेईमानी करने में इतना रसलिप्त हो सकता है?

एक मित्र आए। कहने लगे, जब से ध्यान करने लगा हूं तो मन सरल हो गया है। एक आदमी धोखा देकर मेरा झोला ले गया। ऐसे तो सब माया है—उन्होंने कहा—ऐसे तो सब माया है, लेकिन वह धोखा दे गया, झोला ले गया। अब आगे ध्यान करूं कि न करूं? ऐसे तो सब माया है—इसे वे बार—बार कहते हैं। मैंने कहा, ऐसे तो सब माया है, तो इतना झोले से क्यों परेशान हो रहे हैं? और ऐसे सब माया है, तो वह आदमी क्या धोखा दे गया? और ऐसे सब माया है, तो किसका झोला कौन ले गया है?

नहीं, उन्होंने कहा, ऐसे तो सब माया है, लेकिन पूछने मैं यह आया हूं कि अगर ऐसा ध्यान में सरल होता जाऊं, और हर कोई धोखा देने लगे!

अब ये दो तलों की बातें हैं। उनके खयाल में नहीं पड़ती, कि वह ऐसे तो सब माया है, कृष्ण से सुन लिया, और वह जो झोला चोरी चला गया, वहा हम खड़े हैं। और यह जो बात है, यह किसी शिखर से कही गई है। हम जहां खड़े हैं, वहां यह बात बिलकुल नहीं है।

इस देश के पतन में, इस देश के चारित्रिक हास में, इस देश के जीवन में एकदम अंधकार भर जाने में और गंदगी भर जाने में, हमारे ऊंचे से ऊंचे सिद्धातों की हमने जो व्याख्या की है, वह कप्रण है। यह सवाल ठीक है।

कृष्ण आपसे नहीं कह रहे हैं कि बेफिक्री से हिंसा करो। कृष्ण यह कह रहे हैं कि अगर यह तुम्हारी समझ में आ जाए कि कोई मरता नहीं, कोई मारा नहीं जाता. तब, तब जो होता है, होने दो। लेकिन दोहरा है यह तीर। डबल ऐरोड है। यह ऐसा नहीं है कि दूसरा मरता है तो मारो, क्योंकि कोई नहीं मरता। और जब खुद मरने लगो तो चिल्लाओ कि कहीं मुझे मार मत डालना। ऐसा ही हो गया है।

हम इस देश में सर्वाधिक मानते हैं कि आत्मा अमर है और सबसे ज्यादा मरने से डरते हैं जमीन पर। हमसे ज्यादा कोई भी मरने से नहीं डरता। जिनको हम नास्तिक कहते हैं, जिनको हम कहते हैं—ईश्वर को नहीं मानते आत्मा को नहीं मानते, वे भी नहीं डरते हैं मरने से। वे भी कहते हैं कि ठीक है, मौका आ जाए, जिंदगी दाव पर लगा दें। लेकिन हम एक हजार साल तक गुलाम रह सके; क्योंकि जिंदगी दांव पर लगाने की हमारी हिम्मत ही नहीं रही। ही, घर में बैठकर हम बात करते हैं कि आत्मा अमर है। अगर आत्मा अमर है, तो इस मुल्क को एक सेकेंड के लिए गुलाम नहीं किया जा सकता था।

लेकिन आत्मा जरूर अमर है; लेकिन हम बेईमान हैं। आत्मा अमर है, वह हम कृष्ण से सुन लेते हैं; और हम मरने वाले हैं, यह हम भलीभांति जानते हैं। अपने को बचाए चले जाते हैं। बल्कि आत्मा अमर है, इसका पाठ रोज इसीलिए करते हैं, कि भरोसा आ जाए कि मरेंगे नहीं। कम से कम मैं तो नहीं मरूंगा, इसका भरोसा दिला रुहे हैं, इससे अपने को समझा रहे हैं। इस दो तल पर—जहां कृष्ण खड़े हैं वहा, और जहां हम खड़े हैं वहां—वहा के फासले को ठीक से समझ लेना।

और कृष्ण की बात तभी पूरी सार्थक होगी, जब आप कृष्ण के तल पर उठें। और कृपा करके कृष्ण को अपने तल पर मत लाना। हालाकि वह आसान है, क्योंकि कृष्ण कुछ भी नहीं कर सकते। आप गीता को जिस तल पर ले जाना चाहें, वहीं ले जाएं। जहां कटघरे में रहते हों, गोडाउन में रहते हों, नर्क में रहते हों, वहीं ले जाएं गीता को, तो वहीं चली जाएगी। कृष्ण कुछ भी नहीं कर सकते।

कृपा करके जीवन के जो परम सत्य हैं, उन्हें जीवन की अंधेरी गुहाओं में मत ले जाना। वे जीवन के परम सत्य शिखरों पर जाने गए हैं। आप भी शिखरों पर चढ़ना, तभी उन परम सत्यों को समझ पाएंगे। वे परम सत्य सिर्फ पुकार हैं,

आपके लिए चुनौतियां हैं कि आओ इस ऊंचाई पर, जहां प्रकाश ही प्रकाश है, जहां आत्मा ही आत्मा है, जहा अमृत ही अमृत है।

लेकिन जिन अंधेरी गलियों में हम जीते हैं, जहां अंधेरा ही अंधेरा है, जहां प्रकाश की कोई किरण नहीं पहुंचती मालूम पड़ती। वही यह सुनकर कि प्रकाश ही प्रकाश है, अंधकार है ही नहीं, अपने हाथ के दीए को मत बुझा देना—कि जब प्रकाश ही प्रकाश है, तब इस दीए की क्या जरूरत है, फूंक दो। उस दीए को बुझाने से गली और अंधेरी हो जाएगी। जहां आदमी जी रहा है, वहा हिंसा और अहिंसा का भेद है। अंधेरा है वहां। जहां आदमी जी रहा है, वहा चोरी और अचोरी में भेद है। अंधेरा है वहा। वहां कृष्ण की बात सुनकर अपने इस भेद के छोटे—से दीए को मत फूंक देना। नहीं तो सिर्फ अंधेरा घना हो जाएगा, और कुछ भी नहीं होगा।

हां, कृष्ण की बात सुनकर सिर्फ समझना इतना, एक शिखर है चेतना का, जहा अंधेरा है ही नहीं, जहां दीया जलाना पागलपन है। पर उस शिखर की यात्रा करनी होती है। उस शिखर की यात्रा पर हम धीरे—धीरे बढ़ेंगे। कि वह शिखर कैसे, कैसे हम उस जगह पहुंच जाएं, जहां जीवन अमृत है, और जहा अहिंसा और हिंसा बचकानी बातें हैं, चाइल्डिश बातें हैं। लेकिन वहा नहीं जहा हम हैं, वहा बड़ी सार्थक हैं, वहा बड़ी महत्वपूर्ण हैं।

न जायते म्रियते वा कदाचिन् नायं भूत्वा भविता वा न भूय: ।
अजी नित्य: शाश्वतोऽयं युराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ।।20।।

यह आत्मा किसी काल में भी न जन्मता है और न मरता है, अथवा न यह आत्मा, हो करके फिर होने वाला है, क्योंकि यह अजन्मा, नित्य, शाश्वत और पुरातन है। शरीर के नाश होने पर भी यह नष्ट नहीं होता है।

जहां हम हैं, जो हम हैं, वहा सभी कुछ जात है, जन्मता है। जिससे भी हम परिचित हैं, वहां अजात, अजन्मा, कुछ भी नहीं है। जो भी हमने देखा है, जो भी हमने पहचाना है, वह सब जन्मा है, सब मरता है। लेकिन जन्म और मरण की इस प्रक्रिया को भी संभव होने के लिए इसके पीछे कोई, इस सब मरने और जन्मने की श्रृंखला के पीछे—जैसे माला के गुरियों को कोई धागा पिरोता है; दिखाई नहीं पड़ता, गुरिए दिखाई पड़ते हैं—इस जन्म और मरण के गुरियों की लंबी माला को पिरोने वाला कोई अजात धागा भी चाहिए। अन्यथा गुरिए बिखर जाते हैं। टिक भी नहीं सकते, साथ खड़े भी नहीं हो सकते, उनमें कोई जोड़ भी नहीं हो सकता। दिखती है माला ऊपर से गुरियों की, होती नहीं है गुरियों की। गुरिए टिके होते हैं एक धागे पर, जो सब गुरियों के बीच से दौड़ता है।

जन्म है, मृत्यु है, आना है, जाना है, परिवर्तन है, इस सबके पीछे अजात सूत्र—अनबॉर्न, अनडाइंग; अजात, अमृत; न जो जन्मता, न जो मरता—ऐसा एक सूत्र चाहिए ही। वही अस्तित्व है, वही आत्मा है, वही परमात्मा है। सारे रूपांतरण के पीछे, सारे रूपों के पीछे, अरूप भी चाहिए। वह अरूप न हो, तो रूप टिक न सकेंगे।

फिल्म देखते हैं सिनेमागृह में बैठकर। प्रतिपल दौड़ते रहते हैं फिल्म के चित्र। चित्रों में कुछ होता नहीं बहुत। सिर्फ किरणों का जाल होता है। छाया—प्रकाश का जोड़ होता है। लेकिन पीछे एक परदा चाहिए। वह परदा बिलकुल दिखाई नहीं पड़ता, जब तक फिल्म दौड़ती रहती है। उसे दिखाई पड़ना भी नहीं चाहिए। अगर वह दिखाई पड़े, तो फिल्म दिखाई न पड़ सके। जब तक फिल्म चलती रहती है, रूप आते और जाते रहते हैं, तब तक पीछे थिर खड़ा परदा दिखाई नहीं पड़ता।

लेकिन उस परदे को हटा दें, तो ये रूप कहीं भी प्रकट नहीं हो सकते, ये आकृतियां कहीं भी प्रकट नहीं हो सकतीं। इन आकृतियों की दौड़ती हुई परिवर्तन की इस लीला में पीछे कोई थिर परदा चाहिए, जो उन्हें सम्हाले। एक चित्र आएगा, तब भी परदा वही होगा। दूसरा चित्र आएगा, तब भी परदा वही होगा। तीसरा चित्र। आएगा, तब भी परदा वही होगा। चित्र बदलते जाएंगे, परदा वही होगा। तभी इन चित्रों में एक संगति, तभी इन चित्रों में एक श्रृंखला, तभी इन चित्रों में एक संबंध दिखाई पड़ेगा। वह संबंध, पीछे जो थिर परदा है, उससे ही पैदा हो रहा है।

सारा जीवन चित्रों का फैलाव है। ये चित्र टिक नहीं सकते। जन्म भी एक चित्र है, मृत्यु भी एक चित्र है—जवानी भी, बुढ़ापा भी, सुख भी, दुख भी, सौंदर्य भी, कुरूपता भी, सफलता—असफलता भी—वह सब चित्रों की धारा है। उन

चित्रों की धारा को सम्हालने के लिए कोई चाहिए, जो दिखाई नहीं पड़ेगा। उसको दिखाई पड़ने का उपाय नहीं है। जब तक चित्रों को आप देख रहे हैं, तब तक वह दिखाई नहीं पड़ेगा।

वह परदे की तरह जो पीछे खड़ा है, वही अस्तित्व है। उसे कृष्ण कहते हैं, वह अजात, अजन्मा; कभी जन्मता नहीं, कभी मरता नहीं। लेकिन भूलकर भी आप ऐसा मत समझ लेना कि यह आपके संबंध में कहा जा रहा है। आप तो जन्मते हैं और मरते हैं। और ' जिस आप के संबंध मे यह कहा जा रहा है, उस आप का, आपको कोई भी पता नहीं है। जिस आप को आप जानते हैं, वह तो जन्मता है; उसकी तो जन्म—तारीख है; उसकी तो मृत्यु की तिथि भी होगी। कब्र पर पत्थर लगेगा, तो उसमें जन्म और मृत्यु दोनों की तारीखें लग जाएंगी। लोग, जब आप जन्मे थे, तो बैंडबाजा बजाए थे, खुशी किए थे। जब मरेंगे, तो रोके, दुखी होंगे। आप जितना अपने को जानते है, वह सिर्फ चित्रों का समूह है।

इसे थोड़ा वैज्ञानिक ढंग से भी समझना उपयोगी है कि क्या सच में ही जिसे आप जानते हैं, वह चित्रों का समूह है?

अब तो हम ब्रेनवाश कर सकते हैं। अब तो वैज्ञानिक रास्ते उपलब्ध हैं, जिनसे हम आपके चित्त की सारी स्मृति को पोंछ डाल सकते हैं। एक आदमी है पचास साल का, उसे पता है कि चार लड़कों का पिता है, पत्नी है, मकान है, यह उसका नाम है, यह उसकी वंशावली है। इस—इस पद पर रहा है, यह—यह काम किया है। सब पचास साल की कथा है। उसका ब्रेनवाश किया जा सकता है। उसके मस्तिष्क को हम साफ कर डाल सकते हैं। फिर भी वह होगा। लेकिन फिर वह यह भी न बता सकेगा कि मेरा नाम क्या है। और यह भी न बता सकेगा कि मेरे कितने लड़के हैं।

मेरे एक मित्र हैं डाक्टर। ट्रेन से गिर पड़े। चोट खाने से स्मृति चली गई। बचपन से मेरे साथी हैं, साथ मेरे पढ़े हैं। देखने उन्हें मैं उनके गांव गया। जाकर सामने बैठ गया; उन्होंने मुझे देखा और जैसे नहीं देखा। मैंने उनसे पूछा, पहचाना नहीं? उन्होंने कहा कि कौन हैं आप? उनके पिता ने कहा कि सारी स्मृति चली गई है; जब से ट्रेन से गिरे हैं, चोट लग गई, सारी स्मृति चली गई; कोई स्मरण नहीं है।

इस आदमी के पास इसका कोई अतीत नहीं है। चित्र खो गए। कल तक यह कहता था, मैं यह हूं मेरा यह नाम है। अब वे सब चित्र खो गए। वह फिल्म वाश हो गई। वह सब धुल गया। अब यह खाली है—कोरा कागज। अब इस कोरे कागज पर फिर से लिखा जाएगा। अब उसकी नई स्मृति बननी शुरू हुई।

अभी जब दुबारा मैं मिलने गया, तो उसने कहा कि आपको पता ही होगा कि तीन साल पहले मैं गिर पड़ा, चोट लग गई। अब इस तीन साल की स्मृति फिर से निर्मित होनी शुरू हुई। लेकिन तीन साल के पहले वह कौन था, वह बात समाप्त हो गई। ही, उसे याद दिलाते हैं कि तुम डाक्टर थे, तो वह कहता है, आप लोग कहते हैं कि मैं डाक्टर था, लेकिन मुझे कुछ पता नहीं। मेरा इतिहास तो बस वहीं से समाप्त हो जाता है, जहां से वह घटना घट गई, जहां वह दुर्घटना घट गई।

आज चीन में तो कम्मुनिस्ट ब्रेनवाश को एक पोलिटिकल, एक राजनैतिक उपाय बना लिए हैं। रूस में तो वह चल ही रहा है। अब आने वाली दुनिया में किसी राजनैतिक विरोधी को मारने की जरूरत नहीं होगी। क्योंकि इससे बड़ी हत्या और क्या हो सकती है कि उसके ब्रेन को वाश कर दो। विरोधी को पकड़ो और उसके मस्तिष्क को साफ कर दो। विद्युत के धक्कों से, और दूसरे केमिकल्स से, और दूसरी मानसिक प्रक्रियाओं से उसकी स्मृति को पोंछ डालो। फिर क्या बात है? समाप्त हो गई। अगर मार्क्स के दिमाग को साफ कर दो, तो कैपिटल साफ हो जाएगी। उसके दिमाग में जो है, वह मिट जाएगा। फिर उस आदमी की कोई आइडेंटिटी, उसका कोई तादात्म्य पीछे से नहीं रह जाएगा।

तो हम जिसे कहते हैं मैं, जो कभी पैदा हुआ, जो किसी का बेटा है, किसी का पिता है, किसी का पति है, यह सिर्फ चित्रों का संग्रह है, एलबम है; इससे ज्यादा नहीं है। अपना—अपना एलबम सम्हाले बैठे हैं। उसी को लौट—लौटकर देख लेते हैं; दूसरों को भी दिखा देते हैं, कोई घर में आता है, कि यह एलबम है। बाकी यह आप नही हैं।

अगर इस एलबम को आप समझते हों कि कृष्ण कह रहे हैं अजात, तो इस गलती में मत पड़ना। यह अजात नहीं है। यह तो जन्मा है। यह तो जात है। यह मरेगा भी। जो जन्मा है, वह मरेगा भी। जन्म एक छोर है, मृत्यु दूसरा अनिवार्य

छोर है। आप तो मरेंगे ही। इस बात को ठीक से समझ लें, तो शायद उस आप को खोजा जा सके, जो कि नहीं मरेगा। लेकिन हम इसी मैं को पकड़े रह जाते हैं, जो जन्मा है। यह मैं—यह मैं—मैं नहीं हूं। यह सिर्फ मेरे उस गहरे मैं पर इकट्ठे हो गए चित्र हैं, जिनसे मैं गुजरा हूं।

इसलिए जापान में झेन फकीर के पास जब कोई साधक जाता है और उससे पूछता है कि मैं क्या साधना करूं? तो वह कहता है कि तू यह साधना कर, अपना ओरिजनल फेस, जो जन्म के पहले तेरा चेहरा था, उसको खोजकर आ।

जन्म के पहले कहीं कोई चेहरा होता है! अब कोई आपसे कहने लगे, मरने के बाद जो आपकी शकल होगी, उसको खोजकर लाइए। कोई आपसे कहे कि जन्म के पहले जो आपकी शकल थी, वह खोजकर लाइए।

वे झेन फकीर ठीक कहते हैं। वे वही कहते हैं, जो कृष्ण कह रहे हैं। वे यह कहते हैं, उसका पता लगाओ, जो तुममें कभी जन्मा नहीं था। अगर ऐसे किसी सूत्र को तुम खोज सकते हो, जो जन्म के पहले भी था, तो विश्वास रखो फिर कि वह मृत्यु के बाद भी होगा। जो जन्म के पहले था, उसे मृत्यु नहीं पोंछ सकेगी। जो जन्म के पहले था, वह मृत्यु के बाद भी होगा। और जो जन्म के बाद ही हुआ है, वह मृत्यु के पहले तक ही साथी हो सकता है, उसके आगे साथी नहीं हो सकता है।

कृष्ण जब कह रहे हैं कि कोई है अजन्मा, नहीं जन्मता, नहीं। मरता, जिसे शस्त्रों से छेदा नहीं जा सकता।

आपको, मुझे छेदा जा सकता है। इसलिए ध्यान रखना, जिसे छेदा जा सकता है, कृष्ण उसके संबंध में बात नहीं कर रहे हैं। वे कहते हैं कि जिसे छेदा नहीं जा सकता शस्त्रों से, आग में जलाया नहीं जा सकता, पानी में डुबाया नहीं जा सकता।

हमें तो छेदा जा सकता है; कोई कठिनाई नहीं है छेदे जाने में। आग में जलाए जाने में कोई कठिनाई नहीं है। पानी में डुबाए जाने में कोई कठिनाई नहीं है।

तो जो पानी में डुबाया जा सकता, आग में जलाया जा सकता, शस्त्रों से छेदा जा सकता, उसकी यह चर्चा नहीं है। जिसके ऊपर सर्जन कुछ कर सकता है, उसकी यह चर्चा नहीं है। जिसके लिए डाक्टर कुछ कर सकता है, उसकी यह चर्चा नहीं है। डाक्टर जिससे उलझा है, वह मर्त्य है। और सर्जन जिस पर काम कर रहा है, वह मरणधर्मा है। वितान की प्रयोगशाला में जिस पर खोज—बीन हो रही है, वह मरणधर्मा है। इससे उसका कोई लेना—देना नहीं है।

इसलिए अगर वैज्ञानिक सोचता हो कि अपनी प्रयोगशाला की टेबल पर किसी दिन वह कृष्ण के अजात को, अजन्मे को, अमृत को पकड़ लेगा, तो भूल में पड़ा है। वह कभी पकड़ नहीं पाएगा। उसके सब सूक्ष्मतम औजार उसको ही पकड़ पाएंगे, जो छेदा जा सकता है। लेकिन जो नहीं छेदा जा सकता, अगर वह दिखाई पड़ जाए. वह दिखाई पड़ सकता है। वह दिखाई पड़ सकता है।

सिकंदर हिंदुस्तान आया। जब हिंदुस्तान से वापस लौटता था, तो हिंदुस्तान की सीमा को छोड़ते वक्त उसके मित्रों ने याद दिलाया कि जब हम यूनान से चले थे, तो यूनान के दार्शनिकों ने कहा था कि हिंदुस्तान से एक संन्यासी को लेते आना।

अब संन्यासी जो है, वह सच यह है कि जगत को हिंदुस्तान की देन है, अकेली देन है। पर काफी है। सारे जगत की सारी देनें भी इकट्ठी कर ली जाएं, तो एक संन्यासी भी हमने जगत को दिया, तो हमने बैलेंस पूरा कर दिया है। और शायद जिस दिन दुनिया की सब देनें बेकार सिद्ध हो जाएंगी, उस दिन हमारा दिया संन्यास ही सारी दुनिया के लिए अर्थ' का हो सकता है।

तो याद दिलाई मित्रों ने सिकंदर को कि एक संन्यासी को तो ले चलें। बहुत चीजें लूट ली हैं। धन लूट लिया, लेकिन धन वहां भी है। बहुमूल्य चीजें, हीरे—जवाहरात ले जा रहे हैं, लेकिन वे वहां भी हैं। एक संन्यासी को भी ले चलें, जो वहां

नहीं है। सिकंदर ने सोचा कि जैसे और चीजें ले जाई जा सकती हैं, वैसे ही संन्यासी को ले ऐसा कोई आदमी नहीं देखा, जो कोई संन्यासी हो।

गांव में लोग गए, गांव में पूछा कि कोई संन्यासी है? लोगों ने कहा, संन्यासी तो है, लेकिन प्रयोजन क्या है? तुम्हारे ढंग संन्यासी के पास पहुंचने जैसे नहीं मालूम पड़ते! नंगी तलवारें हाथ में लिए हो, पागल मालूम पड़ते हो; क्या बात है? तो उन्होंने कहा कि पागल नहीं, हम सिकंदर के सिपाही हैं। और किसी संन्यासी को पकड़कर हम यूनान ले जाना चाहते हैं।

तो उन लोगो ने कहा कि जो संन्यासी तुम्हारी पकड़ में आ जाए, समझना कि संन्यासी नहीं है। जाओ, हालाकि गांव में एक संन्यासी है, हम तुम्हें उसका पता दिए देते है। नदी के किनारे तीस वर्षों से एक आदमी नग्न रहता है। जैसा हमने सुना है, जैसा हमने उसे देखा है, जैसा इन तीस वर्षों में हमने उसे जाना है, हम कह सकते हैं कि वह संन्यासी है। लेकिन तुम उसे पकड़ न पाओगे। पर, उन्होंने कहा, दिक्कत क्या है? तलवारें हमारे पास, जंजीरें हमारे पास! उन्होंने कहा, तुम जाओ, उसी से निपटो।

वे गए। उस संन्यासी से उन्होंने कहा कि महान सिकंदर की आशा है कि हमारे साथ चलो। हम तुम्हें सम्मान देंगे, सत्कार देंगे, शाही व्यवस्था देंगे। यूनान तुम्हें ले जाना है। कोई पीड़ा नहीं, कोई दुख नहीं, कोई रास्ते में तकलीफ नहीं होने देंगे। वह संन्यासी हंसने लगा। उसने कहा कि अगर सत्कार ही मुझे चाहिए होता, अगर स्वागत ही मुझे चाहिए होता, अगर सुख ही मुझे चाहिए होता, तो मैं संन्यासी कैसे होता? छोड़ो! सपने की बातें मत करो। मतलब की बात कहो।

तो उन्होंने कहा कि मतलब की बात यह है कि अगर नहीं जाओगे, तो हम जबरदस्ती पकड़कर ले जाएंगे। तो उस संन्यासी ने कहा कि जिसे तुम पकड़कर ले जाओगे, वह संन्यासी नहीं है। संन्यासी परम स्वतंत्र है; उसे कोई पकड़कर नहीं ले जा सकता। उन्होंने कहा, हम मार डालेंगे। तो उस संन्यासी ने कहा, वह तुम कर सकते हो। लेकिन मैं तुमसे कहता हूं कि तुम मारोगे, लेकिन भ्रम में रहोगे, क्योंकि तुम जिसे मारोगे, वह मैं नहीं हूं। तुम अपने सिकंदर को ही लिवा लाओ। शायद उसकी कुछ समझ में आ जाए।

वे सिपाही सिकंदर को बुलाने आए। सिकंदर से उन्होंने कहा कि अजीब आदमी है। वह कहता है, मार डालो, तो भी जिसे तुम मारोगे, वह मैं नहीं हूं। कौन है फिर वह, सिकंदर ने कहा, हमने तो

ऐसा कोई आदमी नहीं देखा, जो मरने के बाद बचता हो। बचेगा कैसे? अब सिकंदर अनुभव से कहता था, हजारों लोग मारे थे उसने। उसने कहा, मैंने कभी किसी आदमी को मरने के बाद बचते नहीं देखा!

गया, नंगी तलवार उसके हाथ में है। संन्यासी से उसने कहा कि चलना पड़ेगा। अन्यथा यह तलवार गरदन और शरीर को अलग कर देगी। वह संन्यासी खिलखिलाकर हंसने लगा। और उसने कहा कि जिस गरदन और शरीर के अलग करने की तुम बात कर रहे हो, उसे मैं बहुत पहले, अलग है, ऐसा जान चुका हूं। इसलिए अब तुम और ज्यादा अलग न कर सकोगे। इतनी अलग जान चुका हूं कि तुम्हारी तलवार के लिए बीच में से गुजर जाने के लिए काफी फासला है, जगह है। काफी अलग जान चुका हूं, अब तुम और अलग न कर सकोगे।

सिकंदर को क्या समझ में आतीं ये बातें! उसने तलवार उठा ली। उसने कहा, मैं अभी काट दूंगा। देखो, सिद्धातों की बातों में मत पड़ो। फिलासफी से मुझे बहुत लेना—देना नहीं है। मैं आदमी व्यावहारिक हूं प्रैक्टिकल हूं। ये ऊंची बातें छोड़ो। एक झटका और गरदन अलग हो जाएगी। सिकंदर से उस संन्यासी ने कहा, तुम मारो तलवार। जिस तरह तुम देखोगे कि गरदन नीचे गिर गई, उसी तरह हम भी देखेंगे कि गरदन नीचे गिर गई।

अब यह जो आदमी है, यह कह रहा है वही, जो कृष्ण कह रहे हैं—छेदने से छिदता नहीं, काटने से कटता नहीं। इसलिए जब तक आप छेदने से छिद जाते हों और काटने से कट जाते हों, तब तक जानना, अभी अपने होने का पता नहीं चला। जब छेदने से शरीर छिद जाता हो और भीतर अनछिदा कुछ रह जाता हो; जब काटने से शरीर कट' जाता हो और भीतर अनकटा कुछ शेष रह जाता हो; जब बीमार होने से शरीर बीमार हो जाता हो और भीतर बीमारी के

बाहर कोई रह जाता हो; जब दुख आता हो तो शरीर दुख से भर जाता हो और भीतर दुख के पार कोई खड़ा देखता रह जाता हो—तब जानना कि कृष्ण जिस आप की बात कर रहे हैं, उस आप का अब तक आपको भी पता नहीं था।

अर्जुन वही बात कर रहा है, जो सिकंदर कर रहा है। टाइप भी उनका एक ही है। उनके टाइप में भी बहुत फर्क नहीं है—शरीर ही। लेकिन हम सबका भी टाइप वही है।

निरंतर खोजते रहना! कांटा तो चुभता है रोज पैर में, तब जरा देखना कि अनचुभा भी भीतर कोई रह गया? बीमारी तो आती है रोज, जरा भीतर देखना, बीमारी के बाहर कोई बचा? दुख आता है रोज; रोना, हंसना, सब आता है रोज। देखना, देखना, खोजना उसे, जो इनके बाहर बच जाता है।

धीरे—धीरे खोजने से वह दिखाई पड़ने लगता है। और जब एक बार दिखाई पड़ता है, तो पता चलता है कि जिसे हमने अब तक समझा था कि मैं हूं, वह सिर्फ छाया थी, सिर्फ शैडो थी। छाया को। ही समझा था कि मैं हूं और उसका हमें कोई पता ही नहीं था, जिसकी छाया बन रही है। छाया के साथ ही एक होकर जीए थे। वह छाया हमारी स्मृतियों का जोड़ है, हमारे जन्म से लेकर मृत्यु तक बने हुए चित्रों का एलबम है।

वेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम्।
कथं स पुरुष पार्थ कं घातयति हन्तिकम् ।।21।।

हे पृथापुत्र अर्जुन, जो पुरूष इस आत्मा को नाशरीहत, नित्य, अजन्मा और अव्यय जानता है वह पुरूष कैसे किसको मरवता है और कैसे किसको मारता है।

जनता है! कृष्ण कहते हैं, जो ऐसा जानता है—हू नोज लाइक दिस। नहीं कहते हैं कि जो ऐसा मानता है—हू बिलीब्स लाइक दिस। कह सकते थे कि जो पुरुष ऐसा मानता है कि न जन्म है, न मृत्यु है। तब तो हम सबको भी बहुत आसानी हो जाए। मानने से ज्यादा सरल कुछ भी नहीं है, क्योंकि मानने के लिए कुछ भी नहीं करना पड़ता। जानने से ज्यादा कठिन कुछ भी नहीं है, क्योंकि जानने के लिए तो पूरी आत्म—क्रांति से गुजर जाना पड़ता है।

कृष्ण कहते हैं, जो पुरुष ऐसा जानता है। इस जानने शब्द को ठीक से पहचान लेना जरूरी है। क्योंकि सारा धर्म जानने शब्द को छोड्कर मानने शब्द के इर्द—गिर्द घूम रहा है। सारा धर्म, सारी पृथ्वी पर बहुत—बहुत नामों से जो धर्म प्रचलित है, वह सब मानने के आस—पास घूम रहा है। वह सारा धर्म कह रहा है, मानो ऐसा, मानोगे तो हो जाएगा। लेकिन कृष्ण कहते है, जो जानता है।

अब जानने का क्या मतलब? जानना भी दो तरह से हो सकता है। शास्त्र से कोई पढ़ ले, तो भी जान लेता है। अनुभव से कोई जाने, तो भी जान लेता है। क्या ये दोनों जानना एक ही अर्थ रखते हैं? शास्त्र से जानना तो बड़ा सरल है। लिखा है, पढ़ा और जाना। उसके लिए सिर्फ शिक्षित होना काफी है, पठित होना काफी है। : उसके लिए धार्मिक होने की कोई जरूरत नहीं है। शास्त्र से पढ़कर जो जानना है, वह जानना नहीं है, जानने का धोखा है। वह सिर्फ इकमेंशन है, सूचना है।

लेकिन सूचना से धोखे हो जाते हैं। पढ़ लेते हैं, अजर है, अमर है; नहीं जन्मता, नहीं मरता; पढ़ लेते हैं, दोहरा लेते हैं। बार—बार दोहरा लेने से भूल जाते हैं कि जानते नहीं हैं, सिर्फ दोहराते हैं। बहुत बार—बार दोहराने से, बहुत बार—बार दोहराने से बात ही भूल जाती है कि जो हम कह रहे हैं, वह अपना जानना नहीं है।

एक आदमी शास्त्र में पढ़ ले तैरने की कला; जान ले पूरा शास्त्र। चाहे तो तैरने पर बोल सके, बोले लिख सके तो लिखे। चाहे तो कोई युनिवर्सिटी से पी एच डी ले ले। डाक्टर हो जाए तैरने के संबंध में। लेकिन फिर भी उस आदमी को भूलकर नदी में धक्का मत देना। क्योंकि उसकी पीएचडी. तैरा न सकेगी। उसकी पी एच डी. और जल्दी डुबा देगी, क्योंकि काफी वजनी होती है, पत्थर का काम करेगी।

तैरने के संबंध में जानना, तैरना जानना नहीं है। सत्य के संबंध में जानना, सत्य जानना नहीं है। टु नो अबाउट, संबंध में जानना, इज इक्यीवेलेंट, बिलकुल बराबर है न जानने के। सत्य के संबंध में जानना, सत्य को न जानने के बराबर है। लेकिन एकदम बराबर कहना ठीक नहीं है, थोड़ा खतरा है। सत्य को न जानना, ऐसा जानना, सत्य की तरफ जाने में राह बन जाती है। लेकिन सत्य को बिना जानते हुए जान लेना कि जानते हैं, सत्य की तरफ जाने में बाधा बन जाती है। नहीं, इक्यीवेलेंट भी नहीं है।

कृष्ण के इस शब्द को बहुत ठीक से समझ लेना चाहिए। क्योंकि इस एक शब्द के आस—पास ही आथेंटिक रिलीजन, वास्तविक धर्म का जन्म होता है—जानने। मानने के आस—पास नान—आथेंटिक, अप्रामाणिक धर्म का जन्म होता है। जानने से जो उपलब्ध होता है, उसका नाम श्रद्धा है। और मानने से जो उपलब्ध होता है, उसका नाम विश्वास है, बिलीफ है। और जो लोग विश्वासी हैं, वे धार्मिक नहीं हैं; वे बिना जाने मान रहे हैं।

यह शब्द बहुत छोटा नहीं है, बड़े से बड़ा शब्द है। लेकिन भ्रांति इसके साथ निरंतर होती रहती है। हमारे पास एक शब्द है, वेद; वेद का अर्थ है, जानना। लेकिन हम तो वेद से मतलब लेते हैं, संहिता, वह जो किताब है। हमने कहा है, वेद अपौरुषेय है, जानना अपौरुषेय है। लेकिन हम मतलब लेते हैं कि वह जो किताब है हमारे पास, वेद नाम की, वह परमात्मा की लिखी हुई है।

वेद किताब नहीं है, वेद जीवन है। लेकिन जानने को मानना बना लेना बड़ा आसान है, ज्ञान को किताब बना लेना बड़ा आसान है, जानने को शास्त्र पर निर्भर कर देना बहुत आसान है। क्योंकि तब बहुत कुछ करना नहीं पड़ता, जानने की जगह केवल स्मृति की जरूरत होती है। बस, याद कर लेना काफी होता है। तो बहुत लोग गीता याद कर रहे है!

मैं एक गांव में गया था अभी, तो वहां उन्होंने एक गीता—मंदिर बनाया है। मैंने पूछा, एक छोटी—सी गीता के लिए इतना बड़ा मंदिर? तो उन्होंने कहा कि नहीं, जगह कम पड़ रही है। मैंने कहा, क्या कर रहे हैं यहां आप? उन्होंने कहा कि अब तक हम यहां एक लाख गीता लिखवाकर हाथ से रखवा चुके हैं। अब जगह कम पड़ रही है। हिंदुस्तान भर में हजारों लोग गीता लिख—लिखकर भेज रहे हैं। मैंने कहा, लेकिन यह क्या हो रहा है? इससे क्या होगा? उन्होंने कहा कि कोई आदमी दस दफे लिख चुका, कोई पचास दफे लिख चुका, कोई सौ दफे लिख चुका—लिखने से ज्ञान होगा।

तो मैंने उनसे कहा, छापेखाने तो परम ज्ञानी हो गए होंगे। कंपोजिटरों के तो हमको चरण पकड़ लेना चाहिए, कंपोजिटर जहां मिल जाएं; क्योंकि कितनी गीताएं छाप चुके वे! अब महात्माओं की तलाश प्रेस में करनी चाहिए, मुद्रणशाला में करनी चाहिए, अब और कहीं नहीं करनी चाहिए।

यह पागलपन क्यों पैदा होता है? होने का कारण है। ऐसा लगता है, शास्त्र से जानना हो जाएगा। शास्त्र से सूचना मिल सकती है, इकमेंशन मिल सकती है, इशारे मिल सकते हैं, ज्ञान नहीं मिल सकता। शान तो जीवन के अनुभव से ही मिलेगा। और जब तक जीवन के अनुभव से यह पता न चल जाए कि हमारे भीतर कोई अजन्मा है, तब तक रुकना मत, तब तक कृष्ण कितना ही कहें, मान मत लेना। कृष्ण के कहने से इतना ही जानना कि जब इतने जोर से यह आदमी कह रहा है, तो खोजें, तो लगाएं पता। जब इतने आश्वासन से यह आदमी भरा है, इतने सहज आश्वासन से कह रहा है; जाना है इसने, जीया है कुछ, देखा है कुछ। हम भी देखें, हम भी जानें, हम भी जीएं। काश! शास्त्र इशारा बन जाए और हम यात्रा पर निकल जाएं। लेकिन शास्त्र मंदिर बन जाता है और हम विश्राम को उपलब्ध हो जाते हैं।

इस जानने शब्द को स्मरण रखना, क्योंकि पीछे कृष्ण उस पर बार—बार, गहरे से गहरा जोर देते हैं।

वासांलि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृहणाति नरोऽयराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा—न्यन्यानि संयाति नवानि देही ।।22।।

और यदि तू कहे कि मैं तो शरीरों के वियोग का शोक करता हूं तो यह भी उचित नहीं है; क्योंकि जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्यागकर दूसरे नए वस्त्रों को ग्रहण करता है, वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीर को त्यागकर दूसरे नए शरीरों को प्राप्त होता है।

वस्त्रों की भांति, जीर्ण हो गए वस्त्रों की भांति शरीर को छोड़ती है आत्मा, नए शरीरों को ग्रहण करती है। लेकिन वस्त्रों की भांति! हमने कभी अपने शरीर को वस्त्र की भांति अनुभव किया? ऐसा जिसे हमने ओढ़ा हो? ऐसा जिसे हमने पहना हो? ऐसा जो हमारे बाहर हो? ऐसा जिसके हम भीतर हों? कभी हमने वस्त्र की तरह शरीर को अनुभव किया? नहीं, हमने तो अपने को शरीर की तरह ही अनुभव किया है। जब भूख लगती है, तो ऐसा नहीं लगता कि भूख लगी है—ऐसा मुझे पता चल रहा है। ऐसा लगता है, मुझे भूख लगी। जब सिर में दर्द होता है, तो ऐसा नहीं लगता है कि सिर में दर्द हो रहा है—ऐसा मुझे पता चल रहा है।

नहीं, ऐसा लगता है, मेरे सिर में दर्द हो रहा है, मुझे दर्द हो रहा है। तादात्म्य, आइडेंटिटी गहरी है। ऐसा नहीं लगता कि मैं और शरीर ऐसा कुछ दो है। ऐसा लगता है, शरीर ही मैं हूं।

कभी आंख बद करके यह देखा, शरीर की उम्र पचास वर्ष हुई, मेरी कितनी उम्र है? कभी आंख बंद करके दो क्षण सोचा, शरीर की उम्र पचास साल हुई, मेरी कितनी उम्र है? कभी आंख बंद करके चिंतन किया कि शरीर का तो ऐसा चेहरा है, मेरा कैसा चेहरा है? कभी सिर में दर्द हो रहा हो तो आंख बंद करके खोज—बीन की कि यह दर्द मुझे हो रहा है या मुझसे कहीं दूर हो रहा है?

पिछले महायुद्ध में एक बहुत अदभुत घटना घटी। फ्रांस में एक अस्पताल में एक आदमी भरती हुआ—युद्ध में बहुत आहत, चोट खाकर। उसका पूरा का पूरा पैर जख्मी हो गया। अंगूठे में उसे भयंकर पीड़ा है। चीखता है, चिल्लाता है, बेहोश हो जाता है। होश आता है, फिर चीखता और चिल्लाता है। रात उसे डाक्टरों ने बेहोश करके घुटने से नीचे का पूरा पैर काट डाला। क्योंकि उसके पूरे शरीर के विषाक्त हो जाने का डर था।

चौबीस घंटे बाद वह होश में आया। होश में आते ही उसने चीख मारी। उसने कहा, मेरे अंगूठे में बहुत दर्द हो रहा है! अनूठा अब था ही नहीं। पास खड़ी नर्स हंसी और उसने कहा, जरा सोचकर कहिए। सच, अंगूठे में दर्द हो रहा है? उसने कहा, क्या मजाक कर रहा हूं? अंगूठे में मुझे बहुत भयंकर दर्द हो रहा है। कंबल पड़ा है उसके पैर पर, उसे दिखाई तो पड़ता नहीं।

उस नर्स ने कहा, और जरा सोचिए, थोड़ा भीतर खोज—बीन करिए। उसने कहा, खोज—बीन की बात क्या है, दर्द इतना साफ है। नर्स ने कंबल उठाया और कहा, देखिए अंगूठा कहा है? अनूठा तो नहीं था। आधा पैर ही नहीं था। पर उस आदमी ने कहा कि देख तो रहा हूं कि अनूठा नहीं है, आधा पैर भी कट गया है, लेकिन दर्द फिर भी मुझे अंगूठे में हो रहा है।

तब तो एक मुश्किल की बात हो गई। चिकित्सक बुलाए गए। चिकित्सकों के सामने भी पहली दफा ऐसा सवाल आया था। जो। अनूठा नहीं है, उसमें दर्द कैसे हो सकता है? लेकिन फिर जांच—पड़ताल की, तो पता चला कि हो सकता है। जो अनूठा नहीं है, उसमें भी दर्द हो सकता है। यह बड़ी मेटफ़िजिकल बात हो गई, यह तो बड़ा अध्यात्म हो गया। डाक्टरों ने पूरी जांच—पड़ताल की, तो लिखा कि वह आदमी ठीक कह रहा है, दर्द उसे अंगूठे में हो रहा है।

तब तो उस आदमी ने भी कहा कि क्या मजाक कर रहे हैं! पहले उन्होंने उससे कहा था, क्या मजाक कर रहे हो? फिर उस आदमी ने कहा कि कैसी मजाक कर रहे हैं! मैं जरूर किसी भ्रम में पड़ गया होऊंगा। लेकिन आप भी कहते हैं कि दर्द हो सकता है उस अंगूठे में, जो नहीं है! तो डाक्टरों ने कहा, हो सकता है। क्योंकि दर्द अंगूठे में होता है, पता कहीं और चलता है। अंगूठे और पता चलने की जगह में बहुत फासला है। जहा पता चलता है, वह चेतना है। जहां दर्द होता है, वह अनूठा है। दर्द से चेतना तक संदेश लाने के लिए जिन स्नायुओं का काम रहता है, भूल से वे स्नायु अभी तक खबर दे रहे हैं कि दर्द हो रहा है।

जब अंगूठे में दर्द होता है, तो उससे जुड़े हुए स्नायुओं के तंतु कंपने शुरू हो जाते हैं। कंपन से ही वे खबर पहुंचाते हैं। जैसे टिक—टिक, टिक—टिक से टेलिग्राफ में खबर पहुंचाई जाती है, ऐसा ही कंपित होकर वे स्नायु खबर पहुंचाते हैं। कई हेड आफिसेज से गुजरती है वह खबर आपके मस्तिष्क तक आने में। फिर मस्तिष्क चेतना तक खबर पहुंचाता है। इसमें कई ट्रासफामेंशन होते हैं। कई कोड लैंग्वेज बदलती है। कई बार कोड बदलता है,रै क्योंकि इन सबकी भाषा अलग—अलग है।

तो कुछ ऐसा हुआ कि अंगूठा तो कट गया, लेकिन जो संदेशवाहक नाडिया खबर ले जा रही थीं, वे कंपती ही रहीं। वे कंपती रहीं, तो संदेश पहुंचता रहा। संदेश पहुंचता रहा और मस्तिष्क कहता रहा कि अंगूठे में दर्द हो रहा है।

क्या ऐसा हो सकता है कि हम एक आदमी के पूरे शरीर को अलग कर लें और सिर्फ मस्तिष्क को निकाल लें? अब तो हो जाता

है। पूरे शरीर को अलग किया जा सकता है। मस्तिष्क को बचाया जा सकता है, अकेले मस्तिष्क को। अगर एक आदमी को हम बेहोश करें और उसके पूरे शरीर को अलग करके उसके मस्तिष्क को प्रयोगशाला में रख लें और अगर मस्तिष्क से हम पूछ सकें कि। तुम्हारा शरीर के बाबत क्या खयाल है? तो वह कहेगा कि सब ठीक है। कहीं कोई दर्द नहीं हो रहा है। शरीर है ही नहीं। वह कहेगा, सब ठीक है।

शरीर का जो बोध है, वह कृष्ण कहते हैं, वस्त्र की भांति है। लेकिन वस्त्र ऐसा, जिससे हम इतने चिपट गए हैं कि वह वस्त्र नहीं रहा, हमारी चमड़ी हो गया। इतने जोर से चिपट गए हैं, इतना तादात्म्य है जन्मों—जन्मों का, कि शरीर ही मैं हूं ऐसी ही हमारी पकड़ हो गई है। जब तक यह शरीर और मेरे बीच डिस्टेंस, फासला पैदा नहीं होता, तब तक कृष्ण का यह सूत्र समझ में नहीं आएगा कि जीर्ण वस्त्रों की भांति...।

यह, थोड़े—से प्रयोग करें, तो खयाल में आने लगेगा। बहुत ज्यादा प्रयोग नहीं, बहुत थोड़े—से प्रयोग। सत्य तो यही है, जो कहा जा रहा है। असत्य वह है, जो हम माने हुए हैं। लेकिन माने हुए असत्य वास्तविक सत्यों को छिपा देते हैं। माना हुआ है हमने, वह हमारी मान्यता है। और बचपन से हम सिखाते हैं और मान्यताएं घर करती चली जाती हैं।

हमने माना हुआ है कि मैं शरीर हूं। शरीर सुंदर होता है, तो हम मानते हैं, मैं सुंदर हूं। शरीर स्वस्थ होता है, तो हम मानते हैं, मैं स्वस्थ हूं। शरीर को कुछ होता है, तो हम मैं के साथ एक करके

मानते हैं। फिर यह प्रतीति गहरी होती चली जाती है, यह स्मृति सघन हो जाती है। फिर शरीर वस्त्र नहीं रह जाता, हम ही वस्त्र हो जाते हैं।

एक मेरे मित्र हैं। वृद्ध हैं, सीढ़ियों से पैर फिसल पड़ा उनका। पैर में बहुत चोट पहुंची। कोई पचहत्तर साल के वृद्ध हैं। गया उनके गांव तो लोगों ने कहा, तो मैं उन्हें देखने गया। बहुत कराहते थे और डाक्टरों ने तीन महीने के लिए उनको बिस्तर पर सीधा बांध रखा था। और कहा कि तीन महीने हिलना—डुलना नहीं। सक्रिय आदमी हैं, पचहत्तर साल की उम्र में भी बिना भागे—दौड़े उन्हें चैन नही। तीन महीने तो उनको ऐसा अनंत काल मालूम होने लगा।

मैं मिलने गया, तो कोई छह—सात दिन हुए थे। रोने लगे। हिम्मतवर आदमी हैं। कभी आंख उनकी आंसुओ से भरेगी, मैंने सोचा नहीं था। एकदम असहाय हो गए और कहा कि इससे तो बेहतर है, मैं मर जाता। ये तीन महीने इस तरह बंधे हुए! यह तो बिलकुल नर्क हो गया। यह मैं न गुजार सकूंगा। मुझसे बोले, मेरे लिए प्रार्थना करिए कि भगवान मुझे उठा ही ले। अब जरूरत भी क्या है। अब काफी जी भी लिया। अब ये तीन महीने इस खाट पर बंधे—बंधे ज्यादा कठिन हो जाएंगे। तकलीफ भी बहुत है, पीड़ा भी बहुत है।

मैंने उनसे कहा, छोटा—सा प्रयोग करें। आंख बंद कर लें और पहला तो यह काम करें कि तकलीफ कहां है, एक्लेक्ट पिन ज्वाइंट करें कि तकलीफ कहां है। वे बोले, पूरे पैर में तकलीफ है। मैंने कहा कि थोड़ा आंख बंद करके खोज—बीन करें, सच में पूरे पैर में तकलीफ है?

क्योंकि आदमी को एग्जाजरेट करने की, बढ़ाने की आदत है। न तो इतनी तकलीफ होती है, न इतना सुख होता है। हम सब बढ़ाकर देखते हैं। आदमी के पास मैग्नीफाइंग माइंड है। उसके पास—जैसे कि काच होता है न, चीजों को बड़ा करके बता देता है—ऐसी खोपड़ी है। हर चीज को बड़ा करके देखता है। कोई फूलमाला पहनाता है, तो वह समझता है कि भगवान हो गए। कोई जरा हंस देता है, तो वह समझता है कि गए, सब इज्जत पानी में मिल गई। मैग्नीफाइंग ग्लास का काम उसका दिमाग करता है।

मैंने कहा, जरा खोजें। मैं नहीं मानता कि पूरे पैर में दर्द हो सकता है। क्योंकि पूरे पैर में होता, तो पूरे शरीर में दिखाई पड़ता। जरा खोजें।

आंख बंद करके उन्होंने खोजना शुरू किया। पंद्रह मिनट बाद मुझसे कहा कि हैरानी की बात है। दर्द जितनी जगह फैला हुआ दिखाई पड़ता था, इतनी जगह है नहीं। बस, घुटने के ठीक पास मालूम पड़ता है। मैंने कहा, कितनी जगह घेरता होगा? उन्होंने कहा कि जैसे कोई एक बड़ी गेंद के बराबर जगह। मैंने कहा, और थोड़ा खोजें। और थोड़ा खोजें। उन्होंने फिर आंख बंद कर ली। और अब तो आश्वस्त थे, क्योंकि दर्द इतना सिकुड़ा कि सोचा भी नहीं था कि मन ने इतना फैलाया होगा। और खोजा। पंद्रह मिनट मैं बैठा रहा। वे खोजते चले गए।

फिर उन्होंने आंख नहीं खोली। चालीस मिनट, पैंतालीस मिनट—और उनका चेहरा मैं देख रहा हूं; और उनका चेहरा बदलता जा रहा है। कोई सत्तर मिनट बाद उन्होंने आंख खोली और कहा, आश्चर्य है कि वह तो ऐसा रह गया, जैसे कोई सुई चुभाता हो इतनी जगह में। फिर मैंने कहा, फिर क्या हुआ? आपको जवाब देना था; मुझे जल्दी जाना है; मैं सत्तर मिनट से बैठा हुआ हूं आप आंख नहीं खोले। उन्होंने कहा कि जब वह इतना सिकुड़ गया कि ऐसा लगने लगा कि बस, एक जरा—सा बिंदु जहां पिन चुभाई जा रही हो, वहीं दर्द है, तो मैं उसे और गौर से देखने लगा। मैंने सोचा, जो इतना सिकुड़ सकता है, वह खो भी सकता है। और ऐसे क्षण आने लगे कि कभी मुझे लगे कि नहीं है। और कभी लगे कि है, कभी लगे कि खो गया। और एक क्षण लगे कि सब ठीक है, और एक क्षण लगे कि वापस आ गया।

फिर मैंने कहा कि फिर भी मुझे खबर कर देनी थी, तो मैं जाता। उन्होंने कहा, लेकिन एक और नई घटना घटी, जिसके लिए मैं सोच ही नहीं रहा था। वह घटना यह घटी कि जब मैंने इतने गौर से दर्द को देखा, तो मुझे लगा कि दर्द कहीं बहुत दूर है और मैं कहीं बहुत दूर हूं। दोनों के बीच बड़ा फासला है। तो मैंने कहा, अब ये तीन महीने इसका ही ध्यान करते रहें। जब भी दर्द हो, फौरन आंख बंद करें और ध्यान में लग जाएं।

तीन महीने बाद वे मुझे मिले तो उन्होंने पैर पकड़ लिए। फिर रोए, लेकिन अब आंसू आनंद के थे। और उन्होंने कहा, भगवान की कृपा है कि मरने के पहले तीन महीने खाट पर लगा दिया, अन्यथा मैं कभी आंख बंद करके बैठने वाला आदमी नहीं हूं। लेकिन इतना आनंद मुझे मिला है कि मैं जीवन में सिर्फ इसी घटना के लिए अनुगृहीत हूं परमात्मा का।

मैंने कहा, क्या हुआ आपको? उन्होंने कहा, यह दर्द को मिटाते—मिटाते मुझे पता चला कि दर्द तो जैसे दीवार पर हो रहा है घर की और मैं तो घर का मालिक हूं बहुत अलग!

शरीर को भीतर से जानना पड़े, फ्राम दि इंटीरियर। हम अपने शरीर को बाहर से जानते हैं। जैसे कोई आदमी अपने घर को बाहर से जानता हो। हमने कभी शरीर को भीतर से फील नहीं किया है; बाहर से ही जानते हैं। यह हाथ हम देखते हैं, तो यह हम बाहर से ही देखते हैं। वैसे ही जैसे आप मेरे हाथ को देख रहे हैं बाहर से, ऐसे ही मैं भी अपने हाथ को बाहर से जानता हूं। हम सिर्फ फ्राम दि विदाउट, बाहर से ही परिचित हैं अपने शरीर से। हम अपने। शरीर को भी भीतर से नही जानते। फर्क है दोनों बातों में। घर के बाहर से खड़े होकर देखें तो बाहर की दीवार दिखाई पड़ती है, घर के भीतर से खड़े होकर देखें तो घर का इंटीरियर, भीतर की दीवार दिखाई पड़ती है।

इस शरीर को जब तक बाहर से देखेंगे, तब तक जीर्ण वस्त्रों की तरह, वस्त्रों की तरह यह शरीर दिखाई नहीं पड़ सकता है। इसे भीतर से देखें, इसे आंख बंद करके भीतर से एहसास करें कि शरीर भीतर से कैसा है? इनर लाइनिंग कैसी है? कोट के भीतर की सिलाई कैसी है? बाहर से तो ठीक है, भीतर से कैसी है? इसकी भीतर की रेखाओं को पकड़ने की कोशिश करें। और जैसे—जैसे साफ होने लगेगा, वैसे—वैसे लगेगा कि जैसे एक दीया जल रहा है और उसके चारों तरफ एक कांच है। अब तक काच से ही हमने देखा था, तो काच ही मालूम पड़ता था कि ज्योति है। जब भीतर से देखा तो पता चला कि ज्योति अलग है, काच तो केवल बाहरी आवरण है।

और एक बार एक क्षण को भी यह एहसास हो जाए कि ज्योति अलग है और शरीर बाहरी आवरण है, तो फिर सब मृत्यु वस्त्रों का बदलना है, फिर सब जन्म नए वस्त्रों का ग्रहण है, फिर सब मृत्यु पुराने वस्त्रों का छोड़ना है। तब जीर्ण वस्त्रों की तरह यह शरीर छोड़ा जाता है, नए वस्त्रों की तरह लिया जाता है। और आत्मा अपनी अनंत यात्रा पर अनंत

वस्त्रों को ग्रहण करती और छोड़ती है। तब जन्म और मृत्यु, जन्म और मृत्यु नहीं हैं, केवल वस्त्रों का परिवर्तन है। तब सुख और दुख का कारण नहीं है।

लेकिन यह जो कृष्ण कहते हैं, यह गीता से समझ में न आएगा; यह अपने भीतर समझना पड़ेगा। धर्म के लिए प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं ही प्रयोगशाला बन जाना पड़ता है। यह कृष्ण जो कह रहे हैं, इसको पढ़कर मत समझना कि आप समझ लेंगे। मैं जो समझा रहा हूं र उसे समझकर समझ लेंगे, इस भ्रांति में मत पड़ जाना। इससे तो ज्यादा से ज्यादा चुनौती मिल सकती है। लौटकर घर प्रयोग करने लग जाना। लौटकर भी क्यों, यहां से चलते वक्त ही रास्ते पर जरा देखना कि यह जो चल रहा है शरीर, इसके भीतर कोई अचल भी। है? और चलते—चलते भी भीतर अचल का अनुभव होना शुरू हो जाएगा। यह जो श्वास चल रही है, यही मैं हूं या श्वासों को भी देखने वाला पीछे कोई है? तब श्वास भी दिखाई पड़ने लगेगी कि यह रही। और जिसको दिखाई पड़ रही है, वह श्वास नहीं हो सकता, क्योंकि श्वास को श्वास दिखाई नहीं पड़ सकती।

तब विचारों को जरा भीतर देखने लगना, कि ये जो विचार चल रहे हैं मस्तिष्क में, यही मैं हूं? तब पता चलेगा कि जिसको विचार दिखाई पड़ रहे हैं, वह विचार कैसे हो सकता है! कोई एक विचार दूसरे विचार को देखने में समर्थ नहीं है। किसी एक विचार ने दूसरे विचार को कभी देखा नहीं है। जो देख रहा है साक्षी, —वह अलग है। और जब शरीर, विचार, श्वास, चलना, खाना, भूख—प्यास, सुख—दुख अलग मालूम पड़ने लगें, तब पता चलेगा कि कृष्ण जो कह रहे हैं कि जीर्ण वस्त्रों की तरह यह शरीर छोड़ा जाता है, नए वस्त्रों की तरह लिया जाता है, उसका क्या अर्थ है। और अगर यह दिखाई पड़ जाए, तो फिर कैसा दुख, कैसा सुख? मरने में फिर मृत्यु नहीं, जन्म में फिर जन्म नहीं। जो था वह है, सिर्फ वस्त्र बदले जा रहे हैं।

प्रश्न :
भगवान श्री, आत्मा व्यापक है, पूर्ण है, तो पूर्ण से पूर्ण कहां जाता है? आत्मा एक शरीर से छूटकर दूसरे कौन शरीर में जाता है? कहां से शरीर में आता भी है? आत्मा का उदर—प्रवेश हो, उससे पहले गर्भ जीता भी कैसे है?

आत्मा न तो आता है, न जाता है। आने—जाने की सारी बात शरीर की है। मोटे हिसाब से दो शरीर समझ लें। एक शरीर तो जो हमें दिखाई पड़ रहा है। यह शरीर माता—पिता से मिलता है, जन्मता है। और इसके पास अपनी सीमा है, अपनी सामर्थ्य है; उतने दिन चलता है और समाप्त हो जाता है। यंत्र है। माता—पिता से सिर्फ यंत्र मिलता है। गर्भ में माता—पिता सिर्फ यंत्र की सिचुएशन, स्थिति पैदा करते हैं। यह शरीर जो हमें दिखाई पड़ रहा है, यह जन्म के साथ शुरू होता है और मृत्यु के वे आने—जाने के साथ समाप्त। यह आता जाता।

एक और शरीर है जो आत्मा के लिए और भीतर का वस्त्र है, कहें कि अंडरवियर है। यह ऊपर का वस्त्र है यह शरीर, वह जरा भीतरी वस्त्र है। वह शरीर पिछले जन्म से साथ आता है। वह सूक्ष्म शरीर है। सूक्ष्म है, इसका अर्थ इतना ही कि यह शरीर बहुत पौदगलिक, मैटीरियल है, वह शरीर इलेक्ट्रानिक है। वह शरीर विद्‌युत—कणों से निर्मित है। वह जो विद्‌युत—कणों से निर्मित दूसरा शरीर है, वह आपके साथ पिछले जन्म से आता है। वही यात्रा करता है। वह भी यात्रा करता है।

वह शरीर, दूसरा सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीर में प्रवेश कर जाता है, गर्भ में प्रवेश कर जाता है। उसका प्रवेश होना वैसा ही आटोमैटिक, स्वचालित है, जैसे पानी पहाड़ से उतरता है, नदियों से बहता है और सागर में चला जाता है। जैसे पानी का नीचे की तरफ बहना प्राकृतिक है, ऐसा ही सूक्ष्म शरीर का अपने योग्य अनुकूल शरीर में प्रवाहित होना एकदम प्राकृतिक घटना है।

इसलिए साधारण आदमी मरता है तो तत्काल जन्म मिल जाता है, क्योंकि चौबीस घंटे पृथ्वी पर लाखों गर्भ उपलब्ध हैं। असाधारण आदमी मरता है तो समय लगता है, जल्दी गर्भ नहीं मिलता। चाहे बुरा आदमी मरे असाधारण, चाहे अच्छा आदमी मरे असाधारण, दोनों के लिए बहुत प्रतीक्षा का समय है। दोनों के लिए, तत्काल गर्भ उपलब्ध नहीं होता। रेडीमेड गर्भ सिर्फ बिलकुल मध्यवर्गीय लोगों को मिलते हैं। उनके लिए रोज गर्भ उपलब्ध हैं। इधर मरे नहीं कि उधर गर्भ ने पुकारा नहीं। इधर मरे नहीं कि गर्भ के गड्ढे में बहे नहीं। इसमें देर नहीं लगती।

लेकिन बहुत बुरा आदमी, जैसे हिटलर जैसा आदमी, तो मुश्किल हो जाती है। हिटलर के लिए मां—बाप की प्रतीक्षा में काफी समय लग जाता है। गांधी जैसे आदमी को भी काफी समय लग जाता है। इनके लिए जल्दी गर्भ उपलब्ध नहीं हो सकता। हमारे हिसाब से कभी सैकड़ों वर्ष भी लग जाते हैं। उनके हिसाब से नहीं कह रहा हूं। उनके लिए टाइम—स्केल अलग है। हमारे हिसाब से कभी सैकड़ों वर्ष लग जाते हैं। जैसे ही योग्य गर्भ उपलब्ध हुआ कि वैसे ही योग्य सूक्ष्म शरीर उसमें प्रवेश कर जाता है। सारी यात्रा इन्हीं शरीरों की है। अब आत्मा किस भांति संबंधित होता है इस सब में?

असल में हमारे पास अब तक जो भी प्रतीक हैं, आदमी के पास, है। घर में कोई आया और गया। तो आदमी तो प्रतीकों का उपयोग करेगा। प्रतीक कभी भी ठीक—ठीक नहीं होते। आने—जाने की बात बहुत ठीक नहीं है आत्मा के संबंध में। अब आत्मा को हम कैसा प्रतीक, किस प्रतीक से कहें! कृष्ण के वक्त में तो प्रतीक और भी नहीं हैं। प्रतीक तो बहुत क्रूड हैं। उनसे हमें काम चलाना पड़ता है। जैसे उदाहरण के लिए, एक—दो उदाहरण लेने से खयाल में आ जाए।

एक आदमी किसी समुद्र में एक छोटे—से द्वीप पर रहता है। वहा कोई फूल नहीं होते। पत्थर ही पत्थर हैं। रेत ही रेत है। वह आदमी यात्रा पर निकलता है और किसी महाद्वीप पर बहुत—से फूल देखकर लौटता है। उसके द्वीप के लोग उससे पूछते हैं कि क्या नई चीज देखी? वह कहता है, फूल। वे लोग कहते हैं, फूल यानी क्या? व्हाट डू यू मीन? तो उस द्वीप पर फूल नहीं होते, ' अब वह क्या करे! वह नदी के किनारे से चमकदार पत्थर उठा लाता है, रंगीन पत्थर उठा लाता है। वह कहता है, ऐसे होते हैं।

निश्चित ही, उस द्वीप का कोई आदमी इस पर सवाल नहीं उठाएगा। क्योंकि सवाल का कोई कारण नहीं है। लेकिन उस आदमी की—जो फूल देखकर आया है—बड़ी मुसीबत है। कोई प्रतीक उपलब्ध नहीं है, जिससे वह कहे।

हम जिस जगत में जीते हैं, वहा आना—जाना प्रतीक है। तो जन्म को हम कहते हैं आना, मृत्यु को हम कहते हैं जाना। लेकिन सच में ही आत्मा न आती है, न जाती है। तो इसके लिए एक प्रतीक मेरे खयाल में आता है, वह शायद और करीब है, वह आपके समझ में आ जाए।

अभी पश्चिम में उनका खयाल है कि पेट्रोल से ज्यादा दिन तक कार नहीं चलाई जा सकेगी। क्योंकि पेट्रोल ने इतना नुकसान कर दिया है। इकोलाजी का एक नया आंदोलन सारे योरोप और अमेरिका में चलता है। इतनी गंदी कर दी है हवा पेट्रोल ने कि आदमी के जीने योग्य नहीं रह गई है। तो अब पेट्रोल से कार नहीं चलाई जा सकती, तो बिजली से ही चलाई जाएगी। या तो बैटरी से चलाई जाए, तो थोड़ी महंगी होगी। या बिजली से चलाई जाए। लेकिन बिजली से चलाने के लिए—कैसे चलाई जाए? बिजली कार को कैसे मिलती रहे?

तो रूसी वैज्ञानिकों का एक सुझाव कीमती मालूम पड़ता है। उनका कहना है, इस सदी के पूरे होते—होते हम सारे रास्तों के नीचे बिजली के तार बिछा देंगे। सारे रास्तों के नीचे बिजली के तार बिछा देंगे। जो भी कार ऊपर से चलेगी रास्ते के, नीचे से उसे बिजली चलने के लिए उपलब्ध होती रहेगी।

जैसे ट्राम चलती है आपकी। ऊपर तार होता है, उससे बिजली मिलती रहती है। ट्राम चलती है, बिजली नहीं चलती। बिजली ऊपर से मिलती रहती है, नीचे से ट्राम दौड़ती रहती है। जितनी आगे बढ़ती है, उधर से बिजली मिल जाती है। जैसे ट्राम चलती है और बिजली नहीं चलती, लेकिन ऊपर से प्रतिपल मिलती रहती है। और जब बिजली न मिले, तो ट्राम तत्काल रुक जाए। बिजली के द्वारा चलती है, लेकिन बिजली नहीं चलती, ट्राम चलती है।

ठीक वैसे ही रूस का वैज्ञानिक कहता है, नीचे हम सड्कों के तार बिछा देंगे, कार ऊपर से दौड़ती रहेगी। बस, उसके दौड़ने से वह बिजली लेती रहेगी। कार का मीटर तय करता रहेगा, कितनी बिजली आपने ली। वह आप जमा करते रहेंगे। लेकिन बिजली नहीं चलेगी, चलेगी कार।

ठीक ऐसे ही, आत्मा व्यापक तत्व है; वह है ही सब जगह। सिर्फ हमारा सूक्ष्म शरीर बदलता रहता है, दौड़ता रहता है। और जहां भी जाता है, आत्मा से उसे जीवन मिलता रहता है।

जिस दिन सूक्ष्म शरीर बिखर जाता है, ट्राम टूट गई, बिजली अपनी जगह रह जाती है; ट्राम टूट जाती है, सूक्ष्म शरीर खो जाता है। तो जब सूक्ष्म शरीर खोता है, तो आत्मा परमात्मा से मिल जाती है, ऐसा नहीं। आत्मा परमात्मा से सदा मिली ही हुई थी, सूक्ष्म शरीर की दीवार के कारण अलग मालूम पड़ती थी, अब अलग नहीं मालूम पड़ती है।

आने—जाने की जो धारणा है—आवागमन की—वह बड़ी क्रूड सिमली है। वह बहुत ही दूर की है, लेकिन कोई उपाय नहीं है। जो मैं कह रहा हूं, मैं यह कह रहा हूं कि आत्मा तो चारों तरफ मौजूद है, हमारे भीतर भी, बाहर भी।

अब यहां बिजली के बल्व जल रहे हैं। एक सौ कैंडिल का बल्व जल रहा है, एक पचास कैंडिल का जल रहा है, एक बीस कैडिल का जल रहा है, एक बिलकुल जुगनू की तरह पांच कैंडिल का जल रहा है। इन सबके भीतर एक सी बिजली दौड़ रही है। और प्रत्येक अपनी कैंडिल के आधार पर उतनी बिजली ले रहा है। यह माइक है, इसमें तो कोई बल्व भी नहीं लगा हुआ है, यह माइक अपनी उपयोगिता के लिए बिजली ले रहा है। रेडियो अपनी उपयोगिता की बिजली ले रहा है, पंखा अपनी उपयोगिता की बिजली ले रहा है। बिजली में कोई फर्क नहीं है—पंखे के यंत्र में फर्क है, माइक के यंत्र में फर्क है, बल्व के यंत्र में फर्क है।

परमात्मा चारों तरफ मौजूद है। सब तरफ वही है। हमारे पास एक सूक्ष्म यंत्र है, सूक्ष्म शरीर। उसके अनुसार हम उससे ताकत ' और जीवन ले रहे हैं। इसलिए अगर हमारे पास पांच कैंडिल का सूक्ष्म शरीर है, तो हम पांच कैंडिल की ताकत ले रहे हैं; पचास कैंडिल का है, तो पचास कैडिल की ले रहे हैं। महावीर के पास हजार कैंडिल का है, तो हजार कैंडिल का ले रहे हैं। हम गरीब हैं बहुत, एक ही कैडिल का सूक्ष्म शरीर है, तो एक ही कैंडिल की ले रहे हैं।

परमात्मा की कंजूसी नहीं है इसमें। हम जितना बड़ा पात्र लेकर आ गए हैं, उतना ही उपलब्ध हो रहा है। हम चाहें हम हजार कैंडिल के हो जाएं, तो ठीक महावीर से जैसी प्रतिभा प्रकट होती है, हमसे प्रकट हो जाए। और एक सीमा आती है कि महावीर कहते हैं, हजार से भी काम नहीं चलेगा, हम तो अनंत कैंडिल चाहते हैं! तो फिर कहते हैं कि बल्व तोड़ दो, तो फिर अनंत कैंडिल के हो जाओ। क्योंकि बल्व जब तक रहेगा, तो सीमा रहेगी ही कैंडिल की, हजार हो, दो हजार हो, लाख हो, दस लाख हो। लेकिन अगर अनंत प्रकाश चाहिए, तो बल्व तोड़ दो। तो फिर महावीर कहते हैं, हम बल्व तोड़ देते हैं, हम मुक्त हो जाते हैं।

मुक्त होने का कुल मतलब इतना है कि अब ले चुके यंत्रों से बहुत, लेकिन देखा कि हर यंत्र सीमा बन जाता है। और जहा सीमा है वहां दुख है। इसलिए तोड़ देते हैं यंत्र को, अब हम पूरे के साथ एक ही हुए जाते हैं।

यह भाषा की गलती है कि एक ही हुए जाते हैं, एक थे ही। यंत्र बीच में था, इसलिए कम मिलता था। यंत्र टूट गया, तो पूरा है।

आत्मा आती—जाती नहीं, सूक्ष्म शरीर आता है, जाता है। स्थूल शरीर आता है, जाता है। स्थूल शरीर मिलता है माता—पिता से, सूक्ष्म शरीर मिलता है पिछले जन्म से। और आत्मा सदा से है।

सूक्ष्म शरीर न हो, तो स्थूल शरीर ग्रहण नहीं किया जा सकता। सूक्ष्म शरीर टूट जाए, तो स्थूल शरीर ग्रहण करना असंभव है। इसलिए सूक्ष्म शरीर के टूटते ही दो घटनाएं घटती हैं। एक तरफ। सूक्ष्म शरीर गिरा कि स्थूल शरीर की यात्रा बंद हो जाती है। और दूसरी तरफ परमात्मा से जो हमारी सीमा थी, वह मिट जाती है। सूक्ष्म शरीर का गिर जाना ही साधना है। बीच का सेतु, जो ब्रिज है बीच में हमें जोड़ने वाला—शरीर से इस तरफ और उस तरफ परमात्मा से—वह गिर जाता है। उसको गिरा देना ही समस्त साधना है।

वह सूक्ष्म शरीर जिन चीजों से बना है, उन्हें समझ लेना जरूरी है। वह हमारी इच्छाओं से, वासनाओं से, कामनाओं से, आकाक्षाओं से, अपेक्षाओं से, हमारे किए कर्मों से, हमारे न किए कर्मो से लेकिन चाहे गए कर्मो से, हमारे विचारों से, हमारे कामों से, हम जो भी रहे हैं—सोचा है, विचारा है, किया है, अनुभव किया है, भावना की है—उस सबका, उस सबके इलेक्ट्रानिक प्रभावों से, उस सबके वैद्‌युतिक प्रभावों से निर्मित हमारा सूक्ष्म शरीर है।

उस सूक्ष्म शरीर का विसर्जन ही दो परिणाम लाता है। इधर गर्भ की यात्रा बंद हो जाती है। जब शान हुआ तब बुद्ध ने कहा कि घोषणा करता हूं कि मेरे मन, तू, जिसने अब तक मेरे लिए बहुत शरीरों के घर बनाए, अब तू विश्राम को उपलब्ध हो सकता है। अब तुझे मेरे लिए कोई और घर बनाने की जरूरत नहीं। धन्यवाद देता हूं और तुझे छुट्टी देता हूं। अब तेरे लिए कोई काम नहीं बचा, क्योंकि मेरी कोई कामना नहीं बची। अब तक मेरे लिए अनेक—अनेक घर बनाने वाले मन, अब तुझे आगे घर बनाने की कोई जरूरत नहीं है।

मरते वक्त जब बुद्ध से लोगों ने पूछा कि अब, जब कि आपकी आत्मा परम में लीन हो जाएगी, तो आप कहां होंगे? तो बुद्ध ने कहा कि अगर मैं कहीं होऊंगा तो परम में लीन कैसे हो सकूंगा! क्योंकि जो समव्हेयर है, जो कहीं है, वह एवरीव्हेयर नहीं हो सकता, वह सब कहीं नहीं हो सकता। जो कहीं है, वह सब कहीं नहीं हो सकता। तो बुद्ध ने कहा, यह पूछो ही मत। अब मै कहीं नहीं होऊंगा, क्योंकि सब कहीं होऊंगा। मगर फिर—फिर पूछते है भक्त, कि कुछ तो बताएं, अब आप कहां होंगे?

बूंद से पूछ रहे हैं कि सागर में गिरकर तू कहां होगी? बूंद कहती है, सागर ही हो जाऊंगी। लेकिन और बूंदें पूछना चाहेंगी कि वह तो ठीक है, लेकिन फिर भी कहां होगी? कभी मिलने आएं! तो बूंद, जो सागर हो रही है, वह कहती है, तुम सागर में ही आ जाना, तो मिलन हो जाएगा। लेकिन बूंद से मिलन नहीं होगा, सागर से ही मिलन होगा।

जिसे बुद्ध से मिलना हो, कृष्ण से मिलना हो, महावीर से मिलना हो, जीसस से, मोहम्मद से मिलना हो, तो अब बूंद से मिलना नहीं हो सकता। कितना ही मूर्ति बनाकर रखे रहें; अब बूंद से मिलना नहीं हो सकता। बूंद गई सागर में, इसीलिए तो मूर्ति बनाई। यही तो मजा है, पैराडाक्स है। मूर्ति इसीलिए बनाई कि बूंद सागर में गई। बनाने योग्य हो गई मूर्ति अब इसकी।

लेकिन अब लुइग्त में कुछ मतलब नहीं है। अब तो मिलना हो तो सागर में ही जाना पड़े।

माता—पिता से मिलता है बूंद का आकार, बाह्य। स्वयं के पिछले जन्मों से मिलती है बूंद की भीतरी व्यवस्था। और परमात्मा से मिलती है जीवन—ऊर्जा, वह है हमारी आत्मा। लेकिन जब तक इस बूंद की दोहरी परत को हम ठीक से न पहचान लें, तब तक उसको हम नहीं पहचान सकते, जो दोनों के बाहर है।

आज इतना ही। फिर कल सुबह बात करेंगे।

प्रवचन 9 : आत्म-विद्या के गूढ़ आयामों का उदघाटन
ओशो – गीता-दर्शन – भाग एक
अध्याय—1-2 – प्रवचन 9 : आत्म-विद्या के गूढ़ आयामों का उदघाटन
नैनं छिन्दीन्त शस्त्राणि नैनं दहति पावक:।
न चैनं क्लेदयत्यापो न शोषयति मारुत:।।23।।

हे अर्जुन, हम आत्मा को शस्त्रादि नहीं काट सकते हैं, और इसको आग नहीं जला सकती है, तथा हमको जल नहीं गीला कर सकता है और वायु नहीं सुखा सकता है।

अव्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च ।
नित्य: सर्वगत: स्थाणुरचलोऽयं सनातन: ।।24।।

क्योंकि यह आत्मा अच्छेद्य है, यह आत्मा अदाह्यु अक्लेद्य और अशोष्य है तथा यह आत्मा निःसंदेह नित्य, सर्वव्यायक, अचल, स्थिर रहने वाला और सनातन है।

अव्यक्तोऽयमचिज्योऽयमविकार्योंदुयमुव्यते।
तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोबितुमहर्ति ।।25।।

और यह आत्मा अव्यक्त अर्थात इंद्रियों का अविषय और यह आत्मा अर्चिंत्य अर्थात मन का अविषय और यह आत्मा विकाररहित अर्थात न बदलने वाला कहा जाता है। इससे हे अर्जुन, इस आत्मा को ऐसा जानकर तू शोक करने के योग्य नहीं है अर्थात तुझे शोक करना उचित नहीं है।

प्रश्न :
भगवान श्री, जो आत्मा अपनी तरफ से किसी भी दिशा में प्रवृत्त नहीं होता, वह वस्त्रों की भांति जीर्ण देह को त्यागने की और नवीन देह को धारण करने की चेष्टा की तकलीफ क्यों उठाता है? इसमें कुछ इंट्रिजिक कंट्राडिक्यान नहीं फलित होता है?

आत्मा, न जन्म लेता है, न मरता है न उसका प्रारंभ है, न उसका अंत है—जब हम ऐसा कहते हैं, तो थोड़ी—सी भूल हो जाती है। इसे दूसरे ढंग से कहना ज्यादा सत्य के करीब होगा : जिसका जन्म नहीं होता, जिसकी मृत्यु नहीं होती, जिसका कोई प्रारंभ नहीं है, जिसका कोई अंत नहीं है, ऐसे अस्तित्व को ही हम आत्मा कहते हैं।

निश्चित ही, अस्तित्व प्रारंभ और अंत से मुका होना चाहिए। जो है, दैट व्हिच इज, उसका कोई प्रारंभ नहीं हो सकता। प्रारंभ का अर्थ यह होगा कि वह शून्य से उतरे, ना—कुछ से उतरे। और प्रारंभ होने के लिए भी प्रारंभ के पहले कुछ तैयारी चाहिए पड़ेगी। प्रारंभ आकस्मिक नहीं हो सकता। सब प्रारंभ पूर्व की तैयारी से, पूर्व के कारण से बंधे होते है, कॉजेलिटि से बंधे होते हैं।

एक बच्चे का जन्म होता है; हो सकता है, क्योंकि मां—बाप के दो शरीर उसके जन्म की तैयारी करते हैं। सब प्रारंभ अपने से भी पहले किसी चीज को, प्रिसपोब्द, अपने से भी पहले किसी चीज को स्वीकार करते है। इसलिए कोई प्रारंभ मौलिक रूप से प्रारंभ नहीं होता। किसी चीज का प्रारंभ हो सकता है, लेकिन शुद्ध प्रारंभ नहीं होता। ठीक वैसे ही, किसी चीज का अंत हो सकता है, लेकिन अस्तित्व का अंत नहीं होता। क्योंकि कोई भी चीज समाप्त हो, तो उसके भीतर जो होना था, जो अस्तित्व था, वह शेष रह जाता है। तो जब हम कहते हैं, आत्मा का कोई जन्म नहीं, कोई मृत्यु नहीं, तो समझ लेना चाहिए। दूसरी तरफ से समझ लेना उचित है कि जिसका कोई जन्म नहीं, जिसकी कोई मृत्यु नहीं, उसी का नाम हम आत्मा कह रहे हैं। आत्मा का अर्थ है—अस्तित्व, बीइंग।

लेकिन हमारी भ्रांति वहा से शुरू होती है, आत्मा को हम समझ लेते हैं मैं। मेरा तो प्रारंभ है और मेरा अंत भी है। लेकिन जिसमें मैं जन्मता हूं और जिसमें मैं समाप्त हो जाता हूं उस अस्तित्व का कोई अंत नहीं है।

आकाश में बादल बनते हैं और बिखर जाते हैं। जिस आकाश में उनका बनना और बिखरना होता है, उस आकाश का कोई प्रारंभ और कोई अंत नहीं है। आत्मा को आकाश समझें—इनर स्पेस, भीतरी आकाश। और आकाश में भीतर और बाहर का भेद नहीं किया जा सकता। बाहर के आकाश को परमात्मा कहते हैं, भीतर के आकाश को आत्मा। इस आत्मा को व्यक्ति न समझे, इंडिविजुअल न समझें। व्यक्ति का तो प्रारंभ होगा, और व्यक्ति का अंत होगा। इस आंतरिक आकाश को अव्यक्ति समझें। इस आंतरिक आकाश को सीमित न समझें। सीमा का तो प्रारंभ होगा और अंत होगा।

इसलिए कृष्ण कह रहे हैं कि न उसे आग जला सकती है।

आग उसे क्यों नहीं जला सकती? पानी उसे क्यों नहीं डुबा सकता? अगर आत्मा कोई भी वस्तु है, तो आग जरूर जला सकती है। यह आग न जला सके, हम कोई और आग खोज लेंगे। कोई एटामिक भट्ठी बना लेंगे, वह जला सकेगी। अगर आत्मा कोई वस्तु है, तो पानी क्यों नहीं डुबा सकता? थोड़ा पानी न डुबा सकेगा, तो बड़े पैसिफिक महासागर में डुबा देंगे।

जब वे यह कह रहे हैं कि आत्मा को न जलाया जा सकता है, न डुबाया जा सकता है पानी में, न नष्ट किया जा सकता है, तो वे यह कह रहे हैं कि आत्मा कोई वस्तु नहीं है; थिंगनेस, वस्तु उसमें नहीं है। आत्मा सिर्फ अस्तित्व का नाम है। एक्सिस्टेंट वस्तु नहीं, एक्सिस्टेंस इटसेल्फ। वस्तुओं का अस्तित्व होता है, आत्मा स्वयं अस्तित्व है। इसलिए आग न जला सकेगी, क्योंकि आग भी अस्तित्व है। पानी न डुबा सकेगा, क्योंकि पानी भी अस्तित्व है। इसे ऐसा समझें कि आग भी आत्मा का एक रूप है, पानी भी आत्मा का एक रूप है, तलवार भी आत्मा का एक रूप है, इसलिए आत्मा से आत्मा को जलाया न जा सकेगा। आग उसको जला सकती है, जो उससे भिन्न है। आत्मा किसी से भी भिन्न नहीं। आत्मा अस्तित्व से अभिन्न है, अस्तित्व ही है।

अगर हम आत्मा शब्द को अलग कर दें और अस्तित्व शब्द को विचार करें, तो कठिनाई बहुत कम हो जाएगी। क्योंकि आत्मा से हमें लगता है, मैं। हम आत्मा और ईगो को, अहंकार को पर्यायवाची मानकर चलते हैं। इससे बहुत जटिलता पैदा हो जाती है। आत्मा अस्तित्व का नाम है। उस अस्तित्व में उठी हुई एक लहर का नाम मैं है। वह लहर उठेगी, गिरेगी; बनेगी, बिखरेगी; उस मैं को जलाया भी जा सकता है, डुबाया भी जा सकता है। ऐसी आग खोजी जा सकती है, जो मैं को जलाए। ऐसा पानी खोजा जा सकता है, जो मैं को डुबाए। ऐसी तलवार खोजी जा सकती है, जो मै को काटे। इसलिए मैं को छोड़ दें। आत्मा से मैं का कोई भी लेना—देना नहीं है, दूर का भी कोई वास्ता नहीं है।

मैं को छोड्कर जो पीछे आपके शेष रह जाता है, वह आत्मा है। लेकिन मैं को छोड्कर हमने अपने भीतर कभी कुछ नहीं देखा है। जब भी कुछ देखा है, मैं मौजूद हूं। जब भी कुछ सोचा है, मैं मौजूद हूं। मैं हर जगह मौजूद हूं भीतर। इतने घने रूप से हम मैं के आस—पास जीते हैं कि मैं के पीछे जो खड़ा है सागर, वह हमें कभी दिखाई नहीं पड़ता।

और हम कृष्ण की बात सुनकर प्रफुल्लित भी होते हैं। जब सुनाई पड़ता है कि आत्मा को जलाया नहीं जा सकता, तो हमारी रीढ़ सीधी हो जाती है। हम सोचते हैं, मुझे जलाया नहीं जा सकता। जब हम सुनते हैं, आत्मा मरेगी नहीं, तो हम भीतर आश्वस्त हो जाते हैं कि मैं मरूंगा नहीं। इसीलिए तो का होने लगता है आदमी, तो गीता ज्यादा पढ़ने लगता है। मृत्यु पास आने लगती है, तो कृष्ण की बात समझने का मन होने लगता है। मृत्यु कंपाने लगती है मन को, तो मन समझना चाहता है, मानना चाहता है कि कोई तो मेरे : भीतर हो, जो मरेगा नहीं, ताकि मै मृत्यु को झुठला सकूं।

इसलिए मंदिर में, मस्जिद में, गुरुद्वारे में जवान दिखाई नहीं पड़ते। क्योंकि अभी मौत जरा दूर मालूम पड़ती है। अभी इतना भय नहीं, अभी पैर कंपते नहीं। वृद्ध दिखाई पड़ने लगते हैं। सारी दुनिया में धर्म के आस—पास के आदमियों के इकट्ठे होने का एक ही कारण है कि जब मैं मरने के करीब पहुंचता है, तो मैं जानना चाहता है कि कोई आश्वासन, कोई सहारा, कोई भरोसा, कोई प्रामिस—कि नहीं, मौत को भी झुठला सकेंगे, बच जाएंगे मौत के पार भी। कोई कह दे कि मरोगे नहीं—कोई अथारिटी, कोई प्रमाण—वचन, कोई शास्त्र!

इसीलिए आस्तिक, जो वृद्धावस्था में आस्तिक होने लगता है, उसके आस्तिक होने का मौलिक कारण सत्य की तलाश नहीं होती, मौलिक कारण भय से बचाव होता है, फियर से बचाव होता है। और इसलिए दुनिया में जो तथाकथित

आस्तिकता है, वह भगवान के आस—पास निर्मित नहीं, भय के आस—पास निर्मित है। और अगर भगवान भी है उस आस्तिकता का, तो वह भय का ही रूप है; उससे भिन्न नहीं है। वह भय के प्रति ही सुरक्षा है, सिक्योरिटी है।

तो जब कृष्ण यह कह रहे हैं, तो एक बात बहुत स्पष्ट समझ लेना कि यह आप नहीं जलाए जा सकेंगे, इस भ्रांति में मत पड़ना। इसमें तो बहुत कठिनाई नहीं है। घर जाकर जरा आग में हाथ डालकर देख लेना, तो कृष्ण एकदम गलत मालूम पड़ेंगे। एकदम ही गलत बात मालूम पड़ेगी। गीता पढ़कर आग में हाथ डालकर देख लेना कि आप जल सकते हैं कि नहीं! गीता पढ़कर पानी में डुबकी लगाकर देख लेना, तो पता चल जाएगा कि डूब सकते हैं या नहीं!

लेकिन कृष्ण गलत नहीं हैं। जो डूबता है पानी में, कृष्ण उसकी बात नहीं कर रहे हैं। जो जल जाता है आग में, कृष्ण उसकी बात नहीं कर रहे हैं। लेकिन क्या आपको अपने भीतर किसी एक भी ऐसे तत्व का पता है, जो आग में नहीं जलता? पानी में नहीं डूबता? अगर पता नहीं है, तो कृष्ण को मानने की जल्दी मत करना। खोजना, मिल जाएगा वह सूत्र, जिसकी वे बात कर रहे हैं।

सवाल पूछा है। पूछा है कि आत्मा न भी करती हो यात्रा, सूक्ष्म शरीर, लिंग शरीर अगर यात्रा करता है, तो भी आत्मा का सहयोग तो है ही। आत्मा कोआप्ट तो करती ही है। अगर इनकार कर दे सहयोग करने से, तब तो यात्रा नहीं हो सकेगी!

इसे भी दो तलों पर समझ लेना जरूरी है। सहयोग भी इस जगत में दो प्रकार के हैं। एक, वैज्ञानिक जिसको कैटेलिटिक कोआपरेशन कहता है, कैटेलिटिक एजेंट जिसको वैज्ञानिक कहता है, उस बात को समझ लेना उचित है। एक सहयोग है, जिसमें हम पार्टिसिपेट होते है। एक सहयोग है, जिसमें हमें भागीदार होना पड़ता है। एक और सहयोग है, जिसमें मौजूदगी काफी है, जस्ट प्रेजेंस।

सुबह सूरज निकला। आपकी बगिया का फूल खिल गया। सूरज को पता भी नहीं है कि उसने इस फूल को खिलाया। सूरज इस फूल को खिलाने के लिए निकला भी नहीं है। यह फूल न होता तो सूरज के निकलने में कोई बाधा भी नहीं पड़ती। यह न होता तो सूरज यह न कहता कि फूल तो है नहीं, मैं किसलिए निकलूं! यह खिल गया है, इसके लिए सिर्फ सूरज की मौजूदगी, प्रेजेंस काफी बनी है। सूरज की मौजूदगी के बिना यह खिल भी न सकता, यह बात पक्की है। लेकिन सूरज की मौजूदगी इसको खिलाने के लिए नहीं है, यह बात भी इतनी ही पक्की है। सूरज की मौजूदगी में यह खिल गया है।

लेकिन यह भी बहुत ठीक नहीं है। क्योंकि सूरज की किरणें कुछ करती हैं। चाहे सूरज को पता हो, चाहे न पता हो। सूरज की किरणें उसकी कलियों को खोलती हैं। सूरज की किरणें उस पर चोट भी करती हैं। चोट कितनी ही बारीक और सूक्ष्म हो, लेकिन चोट होती है।

सूरज की किरणों का भी वजन है। सूरज की किरणें भी प्रवेश करती हैं। कोई एक वर्ग मील पर जितनी सूरज की किरणें पड़ती हैं, उसका कोई एक छटांक वजन होता है। बहुत कम है। एक वर्ग मील पर जितनी किरणें पड़ती हैं, अगर हम इकट्ठी कर सकें, तो कहीं एक छटांक वजन होगा। एक तो इकट्ठा करना मुश्किल है। अनुमान है वैज्ञानिकों का, इतना वजन होगा। इतना भी सही, तो भी सूरज फूल की पखुडियों पर कुछ करता है। तो वह भी कैटेलिटिक एजेंट नहीं है, इनडायरेक्ट पार्टिसिपेट है, परोक्ष रूप से भाग लेता है।

लेकिन कैटेलिटिक एजेंट वैज्ञानिक बहुत दूसरी चीज को कहते हैं। जैसे कि हाइड्रोजन और आक्सीजन मिलकर पानी बनता है। तो आप हाइड्रोजन और आक्सीजन एक कमरे मे बंद कर दें, तो भी पानी नहीं बनेगा। सब तरह से सब मौजूद है, लेकिन पानी नहीं बनेगा। लेकिन उस कमरे में बिजली की एक धारा दौड़ा दें। तो बस, तत्काल हाइड्रोजन और आक्सीजन के अणु मिलकर पानी बनाना शुरू कर देंगे। सब तरह से खोज—बीन की गई, बिजली की धारा कुछ भी नहीं करती। न वह हाइड्रोजन को छूती है, न आक्सीजन को छूती है। न स्पर्श करती है न उनके साथ कुछ करती। बस उसकी मौजूदगी, सिर्फ उसका होना। उसकी मौजूदगी के बिना नहीं हो पाता। कहना चाहिए, उसकी मौजूदगी ही कुछ करती है; बिजली कुछ नहीं करती।

कृष्ण कह रहे हैं इस सूत्र में, आत्मा निक्तिय है, अक्रिय है, नान—एक्टिव है।

आत्मा अक्रिय है, निष्क्रिय है, कर्म नहीं करती, तो फिर यह सारी की सारी यात्रा, यह जन्म और मरण, यह शरीर और शरीर का छूटना, और नए वस्त्रों का ग्रहण और जीर्ण वस्त्रों का त्याग, यह कौन करता है? आत्मा की मौजूदगी के बिना यह नहीं हो सकता है, इतना पक्का है। लेकिन आत्मा की मौजूदगी सक्रिय तत्व की तरह काम नहीं करती, निष्क्रिय उपस्थिति की तरह काम करती है।

जैसे समझें कि बच्चों की क्लास लगी है। शिक्षक नहीं है। चिल्ला रहे हैं, शोरगुल कर रहे हैं, नाच रहे हैं। फिर शिक्षक कमरे में आया। सन्नाटा छा गया, चुप्पी हो गई। अपनी जगह बैठ गए हैं, किताबें पढ्ने लगे हैं। अभी शिक्षक ने एक शब्द नहीं बोला। अभी शिक्षक ने कुछ किया नहीं। अभी उसने यह भी नहीं कहा कि चुप हो जाओ। अभी उसने यह भी नहीं कहा कि गलत कर रहे हो। अभी उसने कुछ किया ही नहीं। अभी वह सिर्फ प्रवेश हुआ है। पर उसकी मौजूदगी, और कुछ हो गया है। शिक्षक कैटेलिटिक एजेंट है इस क्षण में। अभी कुछ कर नहीं रहा है।

ये सारे उदाहरण बिलकुल ठीक नहीं हैं, सिर्फ आपको खयाल आ सके, इसलिए कह रहा हूं। आत्मा की मौजूदगी—लेकिन पूछा जा सकता है, मौजूद होने का भी उसका निर्णय तो है ही; डिसीजन तो है ही! शिक्षक कमरे में आया है, नहीं आता। आने का निर्णय तो लिया ही है। यह भी कोई कम काम तो नहीं है। आया है। आत्मा कम से कम निर्णय तो ले ही रही है जीवन में होने का। अन्यथा जीवन के प्रारंभ का कोई अर्थ नहीं है। कैसे जीवन प्रारंभ होगा! तो आत्मा क्यों निर्णय ले रही है जीवन के प्रारंभ का? मौजूद होने की भी क्या जरूरत है? क्या परपज है?

तो यहां थोड़े और गहरे उतरना पड़ेगा। एक बात तो यह समझ लेनी जरूरी है कि स्वतंत्रता सदा दोहरी होती है। स्वतंत्रता कभी इकहरी नहीं होती। स्वतंत्रता सदा दोहरी होती है। स्वतंत्रता का मतलब ही यह होता है कि आदमी या जिसके लिए स्वतंत्रता है, वह विपरीत भी कर सकता है।

समझ लें, एक गांव में हम डुंडी पीट दें और कहें कि प्रत्येक आदमी अच्छा काम करने के लिए स्वतंत्र है, लेकिन बुरा काम नहीं कर सकता। तो उस गांव में अच्छा काम करने की स्वतंत्रता भी नहीं रह जाएगी। अच्छा काम करने की स्वतंत्रता में इम्प्लइड है, छिपी है, बुरा काम करने की स्वतंत्रता। और जो आदमी बुरा काम कर ही नहीं सकता, उसने अच्छा काम किया है, ऐसा कहने का कोई अर्थ नहीं रह जाता।

स्वतंत्रता दोहरी है, समस्त तलों पर। आत्मा स्वतंत्र है, अस्तित्व स्वतंत्र है। उस पर कोई परतंत्रता नहीं है। उसके अतिरिक्त कोई है ही नहीं, जो उसे परतंत्र कर सके। अस्तित्व फ्रीडम है, अस्तित्व स्वातंन्त्र है। और स्वातंत्र्य में हमेशा दोहरे विकल्प हैं। आत्मा चाहे तो दोनों यात्राएं कर सकती है—संसार में, शरीर में, बंधन में, बंधन के बाहर, संसार के बाहर, शरीर के बाहर। ये दोनों संभावनाएं हैं। और संसार का अनुभव, संसार के बाहर उठने के अनुभव की अनिवार्य आधारशिला है। विश्रांति का अनुभव, तनाव के अनुभव के बिना असंभव है। मुक्ति का अनुभव, अमुक्त हुए बिना असंभव है।

मैं एक छोटी—सी कहानी निरंतर कहता रहता हूं। मैं कहता रहता हूं कि एक अमीर आदमी, एक करोड़पति, जीवन के अंत में सारा धन पाकर चिंतित हो उठा। चिंतित हो उठा कि आनंद अब तक मिला नहीं! सोचा था जीवनभर धन, धन, धन। सोचा था, धन साधन बनेगा, आनंद साध्य होगा। साधन पूरा हो गया, आनंद की कोई खबर नहीं। साधन इकट्ठे हो गए, आनंद की वीणा पर कोई स्वर नहीं बजता। साधन इकट्ठा हो गया, भवन तैयार है, लेकिन आनंद का मेहमान आता हुआ दिखाई नहीं पड़ता, उसकी कोई पदचाप सुनाई नहीं पड़ती है। चिंतित हो जाना स्वाभाविक है।?

गरीब आदमी कभी चिंतित नहीं हो पाता, यही उसका दुर्भाग्य है। अगर वह चिंतित भी होता है, तो साधन के लिए होता है कि कैसे धन मिले, कैसे मकान मिले! अमीर आदमी की जिंदगी में पहली दफा साध्य की चिंता शुरू होती है; क्योंकि साधन पूरा होता है। अब वह देखता है, साधन सब इकट्ठे हो गए, जिसके लिए इकट्ठे किए थे, वह कहां है!

इसलिए जब तक किसी आदमी की जिंदगी में साध्य का खयाल न उठे, तब तक वह गरीब है। चाहे उसके पास कितना ही धन इकट्ठा हो गया हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। उसके अमीर होने की खबर उसी दिन मिलती है,

जिस दिन वह यह सोचने को तैयार हो जाता है—सब है जिससे आनंद मिलना चाहिए ऐसा सोचा था, लेकिन वह आनंद कहां है? साधन पूरे हो गए, लेकिन वह साध्य

कहां है? भवन बन गया, लेकिन अतिथि कहां है? उसी दिन आदमी अमीर होता है। वही उसका सौभाग्य है। लेकिन बहुत कम अमीर आदमी अमीर होते हैं।

वह अमीर आदमी अमीर था, चिंता पकड़ गई उसे। उसने अपने घर के लोगों को कहा कि बहुत दिन प्रतीक्षा कर ली, अब मै खोज में जाता हूं। अब तक सोचता था कि इंतजाम कर लूंगा, तो आनंद का अतिथि आ जाएगा। इंतजाम पूरा है, अतिथि का कोई पता चलता नहीं। अब मैं उसकी खोज पर निकलता हूं। बहुत—से हीरे—जवाहरात अपने साथ लेकर वह गया। गांव—गांव पूछता लोगों से कि आनंद कहा मिलेगा? लोगों ने कहा, हम खुद ही तलाश में हैं। इस गांव तक हम उसी की तलाश में पहुंचे हैं। रास्तों पर लोगों से पूछता था, आनंद कहां मिलेगा? वे यात्री कहते कि हम भी सहयात्री हैं, फेलो ट्रेवलर्स हैं, हम भी खोज में निकले हैं। तुम्हें पता चल जाए, तो हमें भी खबर कर देना। जिससे पूछा उसी ने कहा कि तुम्हें खबर मिल जाए, तो हमें भी बता देना। हमें कुछ पता नहीं, हम भी खोज में हैं। थक गया, परेशान हो गया, मौत करीब दिखाई पड़ने लगी। आनंद की कोई खबर नहीं।

फिर एक गांव से गुजर रहा था, तो किसी से उसने पूछा। झाड़ के नीचे एक आदमी बैठा हुआ था। देखकर ऐसा लगा कि शायद यह आदमी कोई जवाब दे सके। क्योंकि अंधकार घिर रहा था साझ का, लेकिन उस आदमी के आस—पास कुछ अलौकिक प्रकाश मालूम पड़ता था। रात उतरने को थी, लेकिन उसके चेहरे पर चमक थी सुबह की। पकड़ लिए उसके पैर, धन की थैली पटक दी। और कहा कि ये हैं अरबों—खरबों रुपए के हीरे—जवाहरात—आनंद चाहिए!

उस फकीर ने आंखें ऊपर उठाईं और उसने कहा कि सच में चाहिए? बिलकुल तुम्हें आज तक कभी आनंद नहीं मिला? उसने कहा, कभी नहीं मिला। उसने कहा, कभी कोई थोड़ी—बहुत धुन बजी हो! कोई धुन नहीं बजी। उसने कहा, कभी थोड़ा—बहुत स्वाद आया हो! उस आदमी ने कहा, बातों में समय खराब मत करो; तुम पहले आदमी हो, जिसने एकदम से यह नहीं कहा कि मैं भी खोज रहा हूं। मुझे बताओ! उस फकीर ने पूछा, कोई परिचय ही नहीं है? उसने कहा, कोई परिचय नहीं है।

इतना कहना था कि वह फकीर उस झोले को, जिसमें। हीरे—जवाहरात थे, लेकर भाग खड़ा हुआ। उस अमीर ने तो सोचा भी नहीं था। वह उसके पीछे भागा और चिल्लाया, मैं लुट गया। तुम आदमी कैसे हो! गांव परिचित था फकीर का, अमीर का तो परिचित नहीं था। गली—कूचे वह चक्कर देने लगा। सारा गांव जुट गया। गांव भी पीछे भागने लगा। अमीर चिल्ला रहा है, छाती पीट रहा है, आंख से आंसू बहे जा रहे है। और वह कह रहा है, मैं लुट गया, मैं मर गया; मेरी जिंदगीभर की कमाई है। उसी के सहारे मै आनंद को खोज रहा हूं; अब क्या होगा! मेरे दुख का कोई अंत नहीं है। मुझे बचाओ किसी तरह इस आदमी से; मेरा धन वापस दिलवाओ। वह गावभर में चक्कर लगाकर भागता हुआ फकीर वापस उसी झाडू के नीचे आ गया, जहां अमीर का घोड़ा खड़ा था। झोला जहां से उठाया था वहीं पटककर, जहां बैठा था वहीं झाड़ के पास फिर बैठ गया।

पीछे से भागता हुआ अमीर आया और सारा गांव। अमीर ने झोला उठाकर छाती से लगा लिया और भगवान की तरफ हाथ उठाकर कहा, हे भगवान, तेरा परम धन्यवाद! फकीर ने पूछा, कुछ आनंद मिला? उस अमीर ने कहा, कुछ? बहुत—बहुत मिला। ऐसा आनंद जीवन में कभी भी नहीं था। उस फकीर ने कहा, आनंद के पहले दुखी होना जरूरी है; पाने के पहले खोना जरूरी है; होने के पहले न होना जरूरी है; मुकि के पहले बंधन जरूरी है; ज्ञान के पहले अज्ञान जरूरी है; प्रकाश के पहले अंधकार जरूरी है।

इसलिए आत्मा एक यात्रा पर निकलती है, वह धन खोने की यात्रा है। असल में जिसे हम खोते नहीं, उसे हम कभी पाने का अनुभव नहीं कर सकते। और इसलिए जब जिन्होंने पाया है, जैसे कृष्ण, जैसे बुद्ध.. जब बुद्ध को मिला जान, लोगों ने पूछा, क्या मिला? तो बुद्ध ने कहा, मिला कुछ भी नहीं। जो मिला ही हुआ था, उs?को जाना भर। लेकिन बीच में खोना जरूरी था। स्वास्थ्य का अनुभव करने के लिए भी बीमार होना अनिवार्य प्रक्रिया है। ऐसा जीवन का तथ्य है। ऐसी फैक्टिसिटी है।

तो जब आप पूछते हैं, क्या जरूरत है आत्मा को संसार में जाने की? तो मैं कहता हूं, मुकि के अनुभव के लिए। और आत्मा संसार में आने के पहले भी मुका है, लेकिन उस मुक्ति का कोई ,? मोढ़ा नहीं हो सकता, उस मुक्ति की कोई प्रतीति नहीं हो सकती; रस मुक्ति का कोई एहसास नहीं हो सकता। खोए बिना एहसास असंभव है।

इसलिए संसार एक परीक्षण है। संसार एक एक्सपेरिमेंट है, स्वयं को खोने का। संसार इससे ज्यादा कुछ भी नहीं है। यह आत्मा का अपना ही चुनाव है कि वह खोए और पाए। परमात्मा संसार में अपने को खोकर पा रहा है; खोता रहेगा, पाता रहेगा; अंधेरे में उतरेगा और प्रकाश में आकर जागेगा कि प्रकाश है।

इसलिए कृष्ण से अगर हम पूछेंगे, तो वे कहेंगे, लीला है—अपने से ही अपने को छिपाने की, अपने से ही अपने को खोजने की, अपने से ही अपने को पाने की—लीला है, बहुत गंभीर मामला नहीं है। बहुत सीरियस होने की जरूरत नहीं है। इसलिए कृष्ण से ज्यादा नान—सीरियस, गैर—गंभीर आदमी खोजना मुश्किल है। और जो गंभीर हैं, वे खबर देते हैं कि उन्हें जीवन के पूरे राज का अभी पता नहीं चला है। जीवन का पूरा राज यही है कि जिसे हम तलाश रहे हैं, उसे हमने खोया है। जिसे हम खोज रहे हैं, उसे हमने छिपाया है। जिसकी तरफ हम जा रहे हैं, उसकी तरफ से हम खुद आए हैं।

पर ऐसा है। और आप पूछें, क्यों है? तो उस क्यों का कोई उत्तर नहीं है। एक क्यों तो जरूर जिंदगी में होगा, जिसका कोई उत्तर नहीं होगा। वह क्यों हम कहां जाकर पकड़ते हैं, यह दूसरी बात है। लेकिन अल्टिमेट व्हाई, आखिरी क्यों का कोई उत्तर नहीं हो सकता है। नहीं हो सकता, इसीलिए फिलासफी, दर्शनशास्त्र फिजूल के चक्कर में घूम जाता है। वह क्यों की तलाश करता है।

इसको थोड़ा समझ लेना उचित है।

दर्शनशास्त्र क्यों की तलाश करता है—ऐसा क्यों है? एक कारण मिल जाता है; फिर वह पूछता है, यह कारण क्यों है? फिर दूसरा कारण मिल जाता है फिर वह पूछता है, यह कारण क्यों है? फिर इनफिनिट रिग्रेस हो जाता है। फिर अंतहीन है यह सिलसिला। और हर उत्तर नए प्रश्न को जन्म दे जाता है। हम कोई भी कारण खोज लें, फिर भी क्यों तो पूछा ही जा सकता है। ऐसा कोई कारण हो सकता है क्या, जिसके संबंध में सार्थक रूप से क्यों न पूछा जा सके? नहीं हो सकता। इसलिए दर्शनशास्त्र एक बिलकुल ही अंधी गली है।

विज्ञान नहीं पूछता—क्यों? विज्ञान पूछता है—क्या, व्हाट? इसलिए विज्ञान अंधी गली नहीं है। धर्म भी नहीं पूछता—क्यों? धर्म भी पूछता है—व्हाट, क्या? इसे समझ लेना आप।

विज्ञान और धर्म बहुत निकट हैं। विज्ञान की भी दुश्मनी अगर है, तो फिलासफी से है। और धर्म की भी अगर दुश्मनी है, तो फिलासफी से है। आमतौर से ऐसा खयाल नहीं है। लोग समझते है कि धर्म तो खुद ही एक फिलासफी है।

धर्म बिलकुल भी फिलासफी नहीं है। धर्म एक विज्ञान है। धर्म यह पूछता है, क्या? क्यों नहीं। क्योंकि धर्म जानता है कि अस्तित्व से क्या का उत्तर मिल सकता है। क्यों का कोई उत्तर नहीं मिल सकता। वितान भी पूछता है, क्या? विज्ञान पूछता है, पानी क्या है? हाइड्रोजन और आक्सीजन। आप पूछें कि क्यों हाइड्रोजन और आक्सीजन मिलते है? वैज्ञानिक कहेगा, दार्शनिक से पूछो। हमारी लेबोरेटरी में हम क्या खोजते है। हम बता सकते हैं कि हाइड्रोजन और आक्सीजन से मिलकर पानी बनता है। क्या, हम बताते हैं। कैसे, हम बताते हैं। क्यों, कृपा करके हमसे मत पूछो। या तो पागलों से या फिलासफर से, इनसे क्यों पूछो।

वैज्ञानिक कहता है कि हम कितना ही खोजें, हम इतना ही जान सकते हैं कि क्या! और जब हमें क्या पता चल जाए, तो हम जान सकते हैं, कैसे! पानी हाइड्रोजन और आक्सीजन से मिलकर बना है, हमने जान लिया—व्हाट। अब हम खोज कर सकते हैं कि कैसे मिला है। इसलिए वितान क्या की खोज करता है और कैसे को प्रयोगशाला में ढूंढ लेता है।

धर्म भी अस्तित्व के क्या की खोज करता है और योग में कैसे की प्रक्रिया को खोज लेता है। इसलिए धर्म का जो आनुषांगिक अंग है, वह योग है। और विज्ञान का जो आनुषागिक अंग है, वह प्रयोग है। लेकिन धर्म का कोई संबंध नहीं है क्यों से। क्योंकि एक बात सुनिश्चित है कि हम अस्तित्व के क्यों को न पूछ पाएंगे। अस्तित्व है, और यहीं बात समाप्त हो जाती है।

तो कृष्ण कह रहे हैं कि ऐसा है कि वह जो आत्मा है, वह मरणधर्मा नही है। पूछें, क्यों? तो क्यों का कोई सवाल ही नहीं है। ऐसा है, थिंग्स आर सच। वह जो आत्मा है, वह आत्मा जल नहीं सकती, जन्म नहीं लेती, मरती नहीं। क्यों? कृष्ण कहेंगे, ऐसा है। अगर तुम पूछो कि कैसे हम जानें उस आत्मा को, तो रास्ता बताया जा सकता है—जों नहीं मरती, जो नहीं जन्मती। लेकिन अगर पूछें कि क्यों नहीं मरती? तो कृष्ण कहते हैं, कोई उपाय नहीं है। यहां जाकर सब निरुपाय हो जाता है। यहा जाकर आदमी एकदम हेल्पलेस हो जाता है। यहां जाकर बुद्धि एकदम थक जाती और गिर जाती है।

लेकिन बुद्धि क्यों ही पूछती है। उसका रस क्यों में है। क्योंकि, अगर आप क्यों पूछें, तो बुद्धि कभी न गिरेगी और कभी न थकेगी, कभी न मरेगी। वह पूछती चली जाएगी, पूछती चली जाएगी, पूछती चली जाएगी।

बचपन में मैंने एक कहानी सुनी है, आपने भी सुनी होगी। एक बूढ़ी औरत, नानी है। बच्चे उसे घर में घेर लेते हैं और कहानी पूछते हैं। वह थक गई है, उसकी सब कहानियां चुक गई हैं। लेकिन बच्चे हैं कि रोज पूछे ही चले जाते हैं। वे फिर—फिर कहते हैं रोज रात, कहानी! और वह की थक गई है, उसकी सब कहानियां चुक गई हैं। अब वह क्या करे और क्या न करे! और बच्चे हैं कि पीछे पड़े हैं।

तो फिर उसने एक कहानी ईजाद की। ठीक वैसी ही जैसी परमात्मा की कहानी है। उसने कहानी ईजाद की। उसने कहा, एक वृक्ष पर अनंत पक्षी बैठे है। बच्चे खुश हुए, क्योंकि अनंत पक्षी हैं, कथा अनंत चल सकेगी। उसने कहा, एक शिकारी है, जिसके पास अनंत बाण हैं। उसने एक तीर छोड़ा। तीर के लगते ही वृक्ष पर, एक पक्षी उड़ा। बच्चों ने पूछा, फिर? उस बूढ़ी ने कहा, उस शिकारी ने दूसरा तीर छोड़ा, फिर एक पक्षी उड़ा। बच्चों ने पूछा, फिर! उस बूढ़ी ने कहा, फिर शिकारी ने एक तीर छोड़ा। फिर एक पक्षी उड़ा—फुर्र। बच्चों ने पूछा, फिर! फिर यह कहानी चलने लगी, बस ऐसे ही चलने लगी। फिर बच्चे थक गए और उन्होंने कहा, कुछ और नहीं होगा? उस की स्त्री ने कहा कि अब मै थक गई हूं, अब और कहानी नहीं। अब यह एक कहानी काफी रहेगी। अब तुम रोज पूछना। फिर उसने एक तीर छोड़ा—अनंत है तीर, अनंत हैं पक्षी।

यह जो हमारे क्यों का जगत है, वह ठीक बच्चों जैसा है, जो पूछ रहे हैं, क्यों? क्यों का सवाल चाइल्डिश है, यद्यपि बहुत बुद्धिमान लोग पूछते हुए मालूम पड़ते हैं। असल में बुद्धिमानों से ज्यादा बाल—बुद्धि के लोग खोजने मुश्किल हैं। क्यों का सवाल एकदम बचकाना है। लेकिन बड़ा कीमती मालूम पड़ता है। क्योंकि दुनिया में जिनको हम बुद्धिमान कहते है, वे यही पूछते रहे हैं। चाहे वे यूनान के दार्शनिक हों, चाहे भारत के हों और चाहे चीन के हों, वे यह क्यों ही पूछते रहे हैं। और फिर क्यों के उत्तर खोजते रहे हैं। किसी उत्तर ने किसी को तृप्ति नहीं दी। किसी उत्तर से हल नहीं हुआ। क्योंकि हर उत्तर के बाद पूछने वाले ने पूछा, क्यों? फिर एक तीर, फिर पक्षी उड़ जाता है। और फिर इससे कोई अंतर नहीं पड़ता है।

इसलिए मैंने निरंतर पीछे आपसे कहा कि यह किताब मेटाफिजिकल नहीं है। यह कृष्ण का संदेश जो अर्जुन को है, यह कोई दार्शनिक, कोई तत्व—शान का नहीं, यह मनस—विज्ञान का है। इसलिए वे कह रहे है, ऐसा है। और एक आत्मा जब यात्रा करती है, तो कैसे यात्रा करती है, वह मैंने आपसे कहा। यात्रा का क्या—इतना ही ज्ञात है, इतना ही ज्ञात हो सका है, इतना ही शात हो सकता है, इससे शेष अज्ञात ही रहेगा। वह यह कि स्वतंत्रता के पूर्ण अनुभव के पहले परतंत्रता का ?? अनुभव जरूरी है। मुक्ति के पूरे आकाश में उड़ने के पहले किसी कारागृह, किसी पिंजरे के भीतर थोड़ी देर टिकना उपयोगी है। उसकी यूटिलिटी है। इसलिए आत्मा यात्रा करती है। और जब तक आत्मा बहुत गहरी नहीं उतर जाती पाप, अंधकार, बुराई, कारागृह में, तब तक लौटती भी नहीं।

कल कोई दोपहर मुझसे पूछता था कि वाल्मीकि जैसे पापी उपलब्ध हो जाते हैं शान को! तो मैंने कहा, वही हो पाते हैं। जो मीडियाकर हैं, जो बीच में होते हैं, उनका अनुभव ही अभी पाप का इतना नहीं कि पुण्य की यात्रा शुरू हो

सके। इसलिए वे बीच में ही रहते हैं। लेकिन वाल्मीकि के लिए तो आगे जाने का रास्ता ही खतम हो जाता है; कल—डि—सैक आ जाता है; वहां सब रास्ता ही खतम हो जाता है। अब और वाल्मीकि क्या पाप करें? आखिरी आ गई यात्रा। अब दूसरी यात्रा शुरू होती।

इसलिए अक्सर गहरा पापी गहरा संत हो जाता है। साधारण पापी साधारण सज्जन ही होकर जीता है। जितने गहरे अंधकार की यात्रा होगी, उतनी अंधकार से मुक्त होने की आकांक्षा का भी जन्म होता है; उतनी ही तीव्रता से यात्रा भी होती है दूसरी दिशा में भी। इसलिए आत्मा निष्क्रिय होते हुए भी कामना तो करती है यात्रा की। निष्क्रिय कामना भी हो सकती है। आप कुछ न करें, सिर्फ कामना करें। लेकिन आत्मा के तल पर कामना ही एक्ट बन जाती है, दि वेरी डिजायर बिकम्स दि एक्ट। वहां सिर्फ कामना करना ही कृत्य हो जाता है। वहां कोई और कृत्य करने की जरूरत नहीं होती।

इसलिए शास्त्र कहते हैं कि परमात्मा ने कामना की, तो जगत निर्मित हुआ। बाइबिल कहती है कि परमात्मा ने कहा, लेट देअर बी लाइट, एंड देअर वाज़ लाइट। कहा कि प्रकाश हो, और प्रकाश। हो गया। यहां प्रकाश हो और प्रकाश के हो जाने के बीच कोई भी कृत्य नहीं है सिर्फ कामना है। आत्मा की कामना कि अंधेरे को जाने, कि यात्रा शुरू हो गई। आत्मा की कामना कि मुका हों, कि यात्रा शुरू हो गई। आत्मा की कामना कि जानें परम सत्य को, कि यात्रा शुरू हो गई।

और आपको अगर कृत्य करने पड़ते हैं, तो वे इसलिए करने पड़ते हैं कि कामना पूरी नहीं है। असल में कृत्य सिर्फ कामना की कमी को पूरा करते हैं, फिर भी पूरा नहीं कर पाते। अगर कामना पूरी है, तो कृत्य तत्काल हो जाता है। अगर आप इसी क्षण पूरे भाव से कामना कर पाएं कि परमात्मा को जानूं र तो एक सेकेंड भी नहीं गिरेगा और परमात्मा जान लिया जाएगा।

अगर बाधा पड़ती है, तो कृत्य की कमी से नहीं; बाधा पड़ती है, भीतर मन ही पूरा नहीं कहता। वह यह कहता है, जरा और सोच लूं; इतनी जल्दी भी क्या है जानने की! एक मन कहता है, जानें। ?? आधा मन कहता है, छोड़ो। क्या रखा है! परमात्मा है भी, नहीं है—कुछ पता नहीं है। कामना ही पूरी नहीं है।

इसलिए कृष्ण जब कहते हैं, आत्मा निष्क्रिय है, तो इस बात को ठीक से समझ लेना कि आत्मा के लिए कृत्य करने की अनिवार्यता ही नहीं है। आत्मा के लिए कामना करना ही पर्याप्त कृत्य है। अगर यह खयाल में आ जाए, तो ही यह बात खयाल में आ पाएगी कि कृष्ण अर्जुन को समझाए चले जा रहे हैं, इस आशा में कि अगर समझ भी पूरी हो जाए, तो बात पूरी हो जाती है; कुछ और करने को बचता नहीं है। कुछ ऐसा नहीं है कि समझ पूरी हो जाए, तो फिर शीर्षासन करना पड़े, आसन करना पड़े, व्यायाम करना पड़े, फिर मंदिर में घंटी बजानी पड़े, फिर पूजा करनी पड़े, फिर प्रार्थना ! करनी पड़े। अगर अंडरस्टैंडिंग पूरी हो जाए, तो कुछ करने को। बचता नहीं। वह पूरी नहीं होती है, इसलिए सब उपद्रव करना पड़ता है। सारा रिचुअल सब्सीटयूट है। जो भी क्रियाकांड है, वह समझ की कमी को पूरा करवा रहा है और कुछ नहीं। उससे पूरी होती भी नहीं, सिर्फ वहम पैदा होता है कि पूरी हो रही है। अगर समझ पूरी। हो जाए, तो तत्काल घटना घट जाती है।

एडिंग्टन ने अपने आत्म—संस्मरणों में लिखा है कि जब मैंने जगत की खोज शुरू की थी, तो मैं कुछ और सोचता था। मैं सोचता था, जगत वस्तुओं का एक संग्रह है। अब जब कि मैं जगत की खोज, जितनी मुझसे हो सकती थी, करके विदा की बेला में आ गया हूं, तो मैं कहना चाहता हूं दि वर्ल्ड इज लेस लाइक ए थिंग एंड मोर लाइक ए थाट। अब यह नोबल प्राइज विनर वैज्ञानिक कहे, तो थोड़ा सोचने जैसा है। वह कहता है कि जगत वस्तु के जैसा कम और विचार के जैसा ज्यादा है।

अगर जगत विचार के जैसा ज्यादा है, तो कृत्य मूल्यहीन है, संकल्प मूल्यवान है। कृत्य संकल्प की कमी है। इसलिए हमें लगता है कि कुछ करें भी, तब पूरा हो पाएगा।

संकल्प ही काफी है। आत्मा बिलकुल निष्क्रिय है। और उसका संकल्प ही एकमात्र सक्रियता है। संकल्प है कि हम जगत में जाएं, तो हम आ गए। जिस दिन संकल्प होगा कि उठ जाएं वापस, उसी दिन हम वापस लौट जाते हैं। लेकिन जगत का अनुभव, लौटने के संकल्प के लिए जरूरी है।

प्रश्न :
भगवान श्री, बहुत सारे श्रोताओं की जिज्ञासा मंडराती है इस प्रश्न के बारे में। क्या एस्ट्रल बाडी और प्रेतात्मा एक ही चीज हैं? क्या ऐसी प्रेतात्मा दूसरे स्थूल शरीर में प्रवेश करके परेशान कर सकती है? उसका क्या उपाय है? बहुत सारे श्रोताजनों ने यह पूछा है।

जैसा मैंने कहा, साधारण व्यक्ति, सामान्यजन, जो न बहुत बुरा है, न बहुत अच्छा है। चार तरह के लोग हैं। साधारणजन, जो अच्छाई और बुराई के मिश्रण हैं। असाधारणजन, जो या तो शुद्ध बुराई हैं अधिकतम या शुद्ध अच्छाई हैं अधिकतम। तीसरे वे लोग, जो न बुराई हैं, न अच्छाई हैं—दोनों नहीं हैं। इनके लिए क्या नाम दें, कहना कठिन है। चौथे वे लोग, जो बुराई और अच्छाई में बिलकुल समतुल है, बैलेंस्ट हैं। ये तीसरे और चौथे लोग ऐसे हैं, जिनकी जन्म की यात्रा बंद हो जाएगी। उनकी हम पीछे बात करेंगे। पहले और दूसरे लोग ऐसे हैं, जिनकी जन्म की यात्रा जारी रहेगी।

जो पहली तरह के लोग हैं—मिश्रण; अच्छे भी, बुरे भी, दोनों ही एक साथ, कभी बुरे, कभी अच्छे, अच्छे में भी बुरे, बुरे में भी। अच्छे, सबका जोड़ हैं; निर्णायक नहीं, इनडिसीसिव; इधर से उधर डोलते रहते हैं—इनके लिए साधारणतया मरने के बाद तत्काल गर्भ मिल जाता है। क्योंकि इनके लिए बहुत गर्भ उपलब्ध हैं। सारी पृथ्वी इन्हीं के लिए मैन्यूफैक्चर कर रही है। इनके लिए फैक्टरी जगह—जगह है। इनकी मांग बहुत असाधारण नहीं है। ये जो चाहते हैं, वह बहुत साधारण व्यक्तित्व है, जो कहीं भी मिल सकता है। ऐसे आदमी प्रेत नहीं होते। ऐसे आदमी तत्काल नया शरीर ले लेते हैं।

लेकिन बहुत अच्छे लोग और बहुत बुरे लोग, दोनों ही बहुत समय तक अटक जाते हैं। उनके लिए उनके योग्य गर्भ मिलना। मुश्किल हो जाता है। जैसा मैंने कहा कि हिटलर के लिए या चंगेज के लिए या स्टैलिन के लिए या गांधी के लिए या अलबर्ट शवित्वर के लिए, इस तरह के लोगों के लिए जन्म एक मृत्यु के बाद काफी समय ले लेता है—जब तक योग्य गर्भ उपलब्ध न हो। तो बुरी आत्माएं और अच्छी आत्माएं, एक्सट्रीमिस्ट; जिन्होंने बुरे होने का ठेका ही ले रखा था जीवन में, ऐसी आत्माएं; जिन्होंने भले होने का ठेका ले रखा था, ऐसी आत्माएं—इनको रुक जाना पड़ता है।

जो इनमें बुरी आत्माएं हैं, उनको ही हम भूत—प्रेत कहते हैं। और इनमें जो अच्छी आत्माएं हैं, उनको ही हम देवता कहते रहे हैं। ये काफी समय तक रुक जाती हैं, कई बार तो बहुत समय तक रुक जाती हैं। हमारी पृथ्वी पर हजारों साल बीत जाते हैं, तब तक रुक जाती हैं।

पूछा है कि क्या ये दूसरे के शरीर में प्रवेश कर सकती हैं?

कर सकती हैं। प्रत्येक व्यक्ति के शरीर में जितनी संकल्पवान आत्मा हो, उतनी ही रिक्त जगह नहीं होती। जितनी विल पावर की आत्मा हो, उतनी ही उसके शरीर में रिक्त जगह नहीं होती, जिसमें कोई दूसरी आत्मा प्रवेश कर सके। जितनी संकल्पहीन आत्मा हो, उतनी ही रिक्त जगह होती है।

इसे थोड़ा समझना जरूरी है। जब आप संकल्प से भरते हैं, तब आप फैलते हैं। संकल्प एक्सपैडिंग चीज है। और जब आपका संकल्प निर्बल होता है, तब आप सिकुड़ते हैं। जब आप हीन—भाव से भरते हैं, तो सिकुड़ जाते हैं। यह बिलकुल सिकुड़ने और फैलने की घटना घटती है भीतर।

तो जब आप कमजोर होते हैं, भयभीत होते हैं, डरे हुए होते हैं, आत्मग्लानि से भरे होते हैं, आत्म—अविश्वास से भरे होते हैं, स्वयं के प्रति अश्रद्धा से भरे होते हैं, स्वयं के प्रति निराशा से भरे होते हैं, तब आपके भीतर का जो सूक्ष्म शरीर है, वह सिकुड़ जाता है। और आपके इस शरीर में इतनी जगह होती है फिर कि कोई भी आत्मा प्रवेश कर सकती है। आप दरवाजा दे सकते हैं।

आमतौर से भली आत्माएं प्रवेश नहीं करती हैं। नहीं करने का कारण है। क्योंकि भली आत्मा जिंदगीभर ऐंद्रिक सुखों से मुका होने की चेष्टा में लगी रहती है। एक अर्थ में, भली आत्मा शरीर से ही मुका होने की चेष्टा में लगी रहती है। लेकिन बुरी आत्मा के जीवन के सारे अनुभव शरीर के सुख के अनुभव होते हैं। और बुरी आत्मा, शरीर से बाहर होने पर जब उसे नया जन्म नहीं मिलता, तो ' उसकी तड़फन भारी हो जाती है; उसकी पीड़ा भारी हो जाती है। उसको अपना शरीर तो मिल नहीं रहा है, गर्भ उपलब्ध नहीं है,

लेकिन वह किसी के शरीर पर सवार होकर इंद्रिय के सुखों को चखने की चेष्टा करती है। तो अगर कहीं भी कमजोर संकल्प का आदमी हो……..।

इसीलिए पुरुषों की बजाय स्त्रियों में प्रेतात्माओं का प्रवेश मात्रा में ज्यादा होता है। क्योंकि स्त्रियों को हम अब तक संकल्पवान नहीं! बना पाए हैं। जिम्मा पुरुष का है, क्योंकि पुरुष ने स्त्रियों का संकल्प तोड़ने की निरंतर कोशिश की है। क्योंकि जिसे भी गुलाम बनाना हो, उसे संकल्पवान नहीं बनाया जा सकता। जिसे गुलाम बनाना हो, उसके संकल्प को हीन करना पड़ता है, इसलिए स्त्री के संकल्प को हीन करने की निरंतर चेष्टा की गई है हजारों साल में। जो आध्यात्मिक संस्कृतियां हैं, उन्होंने भी भयंकर चेष्टा की है कि स्त्री के संकल्प को हीन करें, उसे डराए, उसे भयभीत करें। क्योंकि पुरुष की प्रतिष्ठा उसके भय पर ही निर्भर करेगी।

तो स्त्री में जल्दी प्रवेश……। और मात्रा बहुत ज्यादा है। दस प्रतिशत पुरुष ही प्रेतात्माओं से पीड़ित होते हैं, नब्बे प्रतिशत स्त्रियां पीड़ित होती हैं। संकल्प नहीं है; जगह खाली है; प्रवेश आसान है। संकल्प जितना मजबूत हो, स्वयं पर श्रद्धा जितनी गहरी हो, तो हमारी आत्मा हमारे शरीर को पूरी तरह घेरे रहती है। अगर संकल्प और बड़ा हो जाए, तो हमारा सूक्ष्म शरीर हमारे इस शरीर के बाहर भी घेराव बनाता है—बाहर भी। इसलिए कभी किन्हीं व्यक्तियों के पास जाकर, जिनका संकल्प बहुत बड़ा है, आप तत्काल अपने संकल्प में परिवर्तन पाएंगे। क्योंकि उनका संकल्प उनके शरीर के बाहर भी वर्तुल बनाता है। उस वर्तुल के भीतर अगर आप गए, तो आपका संकल्प परिवर्तित होता हुआ मालूम पड़ेगा। बहुत बुरे आदमी के पास भी।

अगर एक वेश्या के पास जाते हैं, तो भी फर्क पड़ेगा। एक संत के पास जाते हैं, तो भी फर्क पड़ेगा। क्योंकि उसके संकल्प का वर्तुल, उसके सूक्ष्म शरीर का वर्तुल, उसके स्थूल शरीर के भी बाहर फैला होता है। यह फैलाव बहुत बड़ा भी हो सकता है। इस फैलाव के भीतर आप अचानक पाएंगे कि आपके भीतर कुछ होने ' लगा, जो आपका नहीं मालूम पड़ता। आप कुछ और तरह के आदमी थे, लेकिन कुछ और हो रहा है भीतर।

तो हमारा संकल्प इतना छोटा भी हो सकता है कि इस शरीर के भीतर भी सिकुड़ जाए, इतना बड़ा भी हो सकता है कि इस शरीर के बाहर भी फैल जाए। वह इतना बड़ा भी हो सकता है कि पूरे ब्रह्मांड को घेर ले। जिन लोगों ने कहा, अहं ब्रह्मास्मि, वह संकल्प के उस क्षण में उन्हें अनुभव हुआ है, जब सारा संकल्प सारे ब्रह्मांड को घेर लेता है। तब चांद—तारे बाहर नहीं, भीतर चलते हुए मालूम पड़ते हैं। तब सारा अस्तित्व अपने ही भीतर समाया हुआ मालूम पड़ता है। संकल्प इतना भी सिकुड़ जाता है कि आदमी को यह भी पक्का पता नहीं चलता कि मैं जिंदा हूं कि मर गया। इतना भी सिकुड़ जाता है।

इस संकल्प के अति सिकुड़े होने की हालत में ही नास्तिकता का गहरा हमला होता है। संकल्प के फैलाव की स्थिति में ही आस्तिकता का गहरा हमला होता है। संकल्प जितना फैलता है, उतना ही आदमी आस्तिक अनुभव करता है अपने को। क्योंकि अस्तित्व इतना बड़ा हो जाता है कि नास्तिक होने का कोई कारण नहीं रह जाता। संकल्प जब बहुत सिकुड़ जाता है, तो नास्तिक अनुभव करता है। अपने ही पैर डांवाडोल हों, अपना ही अस्तित्व न होने जैसा हो, उस क्षण आस्तिकता नहीं उभर सकती; उस वक्त जीवन के प्रति नहीं का भाव, न का भाव पैदा होता है। नास्तिकता और आस्तिकता मनोवैज्ञानिक सत्य है—मनोवैज्ञानिक।

सिमन वेल ने लिखा है कि तीस साल की उम्र तक मेरे सिर में भारी दर्द था। चौबीस घंटे होता था। तो मैं कभी सोच ही नहीं पाई कि परमात्मा हो सकता है। जिसके सिर में चौबीस घंटे दर्द है, उसको बहुत मुश्किल है मानना कि परमात्मा हो सकता है।

अब यह बड़े मजे की बात है कि सिरदर्द जैसी छोटी चीज भी परमात्मा को दरवाजे के बाहर कर सकती है। वह ईश्वर के न होने की बात करती रही। उसे कभी खयाल भी न आया कि ईश्वर के न होने का बहुत गहरा कारण मेडिकल है। उसे खयाल भी नहीं—आया कि ईश्वर के न होने का कारण सिरदर्द है। तर्क और दलीलें और नहीं। जिसके सिर में दर्द है, उसके मन से नहीं का भाव उठता है। उसके मन से ही का भाव नहीं उठता। हौ के भाव के लिए भीतर बड़ी प्रफुल्लता चाहिए, तब ही का भाव उठता है।

फिर सिरदर्द ठीक हो गया। तब उसे एहसास हुआ कि उसके भीतर से इनकार का भाव कम हो गया है। तब उसे एहसास हुआ कि वह न मालूम किस अनजाने क्षण में नास्तिक से आस्तिक होने लगी।

संकल्प अगर क्षीण है, तो प्रेतात्माएं प्रवेश कर सकती हैं; बुरी प्रेतात्माएं, जिन्हें हम भूत कहें, प्रवेश कर सकती हैं, क्योंकि वे आतुर हैं। पूरे समय आतुर हैं कि अपना शरीर नहीं है, तो आपके। शरीर से ही थोड़ा—सा रस ले लें। और शरीर के रस शरीर के बिना नहीं लिए जा सकते हैं, यह तकलीफ है। शरीर के रस शरीर से ही लिए जा सकते हैं।

अगर एक कामुक आत्मा है, सेक्यूअल आत्मा है और उसके पास अपना शरीर नहीं है, तो सेक्यूअलिटी तो पूरी होती है, शरीर नहीं होता, इंद्रियां नहीं होतीं। अब उसकी पीड़ा आप समझ सकते है। उसकी पीड़ा बड़ी मुश्किल की हो गई। चित्त कामुक है, और उपाय बिलकुल नहीं है, शरीर नहीं है पास में। वह किसी के भी शरीर में प्रवेश करके कामवासना को तृप्त करने की चेष्टा कर सकती है।

शुभ आत्माएं आमतौर से प्रवेश नहीं करतीं, जब तक कि आमंत्रित न की जाएं। अनइनवाइटेड उनका प्रवेश नहीं होता। क्योंकि उनके लिए शरीर की कोई आकांक्षा नहीं है। लेकिन इनविटेशन पर, आमंत्रण पर, उनका प्रवेश हो सकता है। आमंत्रण का मतलब इतना ही हुआ कि अगर कोई ऐसी घड़ी हो, जहां उनका उपयोग किया जा सके, जहां वे सहयोगी हों और सेवा दे सकें, तो वे तत्काल उपलब्ध हो जाती हैं। बुरी आत्मा हमेशा अनइनवाइटेड प्रवेश करती है, घर के पीछे के दरवाजे से भली आत्मा आमंत्रित होकर प्रवेश कर सकती है।

लेकिन भली आत्माओं का प्रवेश निरंतर कम होता चला गया है, क्योंकि आमंत्रण की विधि खो गई है। और बुरी आत्माओं का प्रवेश बढ़ता चला गया है। क्यों? क्योंकि संकल्प दीन—हीन और नकारात्मक, निगेटिव हो गया है। इसलिए आज पृथ्वी पर देवता की बात करना झूठ है; भूत की बात करना झूठ नहीं है। प्रेत अभी भी अस्तित्ववान हैं; देवता कल्पना हो गए हैं।

लेकिन देवताओं को बुलाने की, निमंत्रण की विधियां थीं। सारा वेद उन्हीं विधियों से भरा हुआ है। उसके अपने सीक्रेट मैथड्स हैं कि उन्हें कैसे बुलाया जाए, उनसे कैसे तारतम्य, उनसे कैसे कम्मुनिकेशन, उनसे कैसे संबंध स्थापित किया जाए, उनसे चेतना कैसे जुड़े। और निश्चित ही, बहुत कुछ है जो उनके द्वारा ही जाना गया है। और इसीलिए उसके लिए आदमी के पास कोई प्रमाण नहीं है।

अब यह जानकर आपको हैरानी होगी कि सात सौ साल पुराना एक पृथ्वी का नक्शा बेरूत में मिला है। सात सौ साल पुराना, पृथ्वी का नक्शा, बेरूत में मिला है। वह नक्शा ऐसा है, जो बिना हवाई जहाज के नहीं बनाया जा सकता। जिसके लिए हवाई जहाज की ऊंचाई पर उड़कर पृथ्वी देखी जाए, तो ही बनाया जा सकता है।

लेकिन सात सौ साल पहले हवाई जहाज ही नहीं था। इसलिए बड़ी मुश्किल में वैज्ञानिक पड़ गए हैं उस नक्शो को पाकर। बहुत कोशिश की गई कि सिद्ध हो जाए कि वह नक्शा सात सौ साल पुराना नहीं है, लेकिन सिद्ध करना मुश्किल हुआ है। वह कागज सात सौ साल पुराना है। वह स्याही सात सौ साल पुरानी है। वह भाषा सात सौ साल पुरानी है। जिन दीमकों ने उस कागज को खा लिया है, वे छेद भी पाच सौ साल—पुराने हैं। लेकिन वह नक्शा बिना हवाई जहाज के नहीं बन सकता।

तो एक तो रास्ता यह है कि सात सौ साल पहले हवाई जहाज रहा हो, जो कि ठीक नहीं है। सात हजार साल पहले रहा हो, इसकी संभावना है; सात सौ साल पहले रहा हो, इसकी संभावना नहीं है। क्योंकि सात सौ साल बहुत लंबा फासला नहीं है ‘ सात सौ साल पहले हवाई जहाज रहा हो और बाइसिकल न रही हो, यह नहीं हो सकता। क्योंकि हवाई

जहाज एकदम से आसमान से नहीं बनते। उनकी यात्रा है—बाइसिकल है, कार है, रेल है, तब हवाई जहाज बन पाता है। ऐसा एकदम से टपक नहीं जाता आसमान से। तो एक तो रास्ता यह है कि हवाई जहाज रहा हो, जो कि सात सौ साल पहले नहीं था।

दूसरा रास्ता यह है कि अंतरिक्ष के यात्री आए हों—जैसा कि एक रूसी वैज्ञानिक ने सिद्ध करने की कोशिश की है—कि किसी दूसरे प्लेनेट से कोई यात्री आए हों और उन्होंने यह नक्शा दिया हो। लेकिन दूसरे प्लेनेट से यात्री सात सौ साल पहले आए हों, यह भी संभव नहीं है। सात हजार साल पहले आए हों, यह संभव है। क्योंकि सात सौ साल बहुत लंबी बात नहीं है। इतिहास के घेरे की बात है। हमारे पास कम से कम दो हजार साल का तो सुनिश्चित इतिहास है। उसके पहले का इतिहास नहीं है। इसलिए इतनी बड़ी घटना सात सौ साल पहले घटी हो कि अंतरिक्ष से यात्री आए हों और उसका एक भी उल्लेख न हो, जब कि सात सौ साल पहले की किताबें पूरी तरह उपलब्ध हैं, संभव नहीं है।

मै तीसरा सुझाव देता हूं? जो अब तक नहीं दिया गया। और वह सुझाव मेरा यह है कि यह जो नक्शो की खबर है, यह किसी आत्मा के द्वारा दी गई खबर है, जो किसी व्यक्ति में इनवाइटेड हुई। जो किसी व्यक्ति के द्वारा बोली।

पृथ्वी गोल है, यह तो पश्चिम में अभी पता चला। ज्यादा समय नहीं हुआ, अभी कोई तीन सौ साल। लेकिन हमारे पास भूगोल शब्द हजारों साल पुराना है। तब भूगोल जिन्होंने शब्द गढ़ा होगा, उनको पृथ्वी गोल नहीं है, ऐसा पता रहा हो, नहीं कहा जा सकता। नहीं तो भूगोल शब्द कैसे गढ़ेंगे! लेकिन आदमी के पास—जमीन गोल है—इसको जानने के साधन बहुत मुश्किल मालूम पड़ते हैं। सिवाय इसके कि यह संदेश कहीं से उपलब्ध हुआ हो। आदमी के ज्ञान में बहुत—सी बातें हैं, जिनकी कि प्रयोगशालाएं नहीं थीं, जिनका कि कोई उपाय नहीं था। जैसे कि लुकमान के संबंध में कथा है। और अब तो वैज्ञानिक को भी संदेह होने लगा है कि कथा ठीक होनी चाहिए।

लुकमान के संबंध में कथा है कि उसने पौधों से जाकर पूछा कि बता दो, तुम किस बीमारी में काम आ सकते हो? पौधे बताते हुए मालूम नहीं पड़ते। लेकिन दूसरी बात भी मुश्किल मालूम पड़ती है कि लाखों पौधों के संबंध में लुकमान ने जो खबर दी है, वह इतनी सही है, कि या तो लुकमान की उम्र लाखों साल रही हो और लुकमान के पास आज से भी ज्यादा विकसित फार्मेसी की प्रयोगशालाएं रही हों, तब वह जांच कर पाए कि कौन—सा पौधा किस बीमारी में काम आता है। लेकिन लुकमान की उम्र लाखों साल नहीं है। और लुकमान के पास कोई प्रयोगशाला की खबर नहीं है। लुकमान तो अपना झोला लिए जंगलों में घूम रहा है और पौधों से पूछ रहा है। पौधे बता सकेंगे?

मेरी अपनी समझ और है। पौधे तो नहीं बता सकते, लेकिन शुभ आत्माएं पौधों के संबंध में खबर दे सकती हैं। बीच में मीडिएटर कोई आत्मा काम कर रही है, जो पौधों की बाबत खबर दे सकती है कि यह पौधा इस काम में आ जाएगा।

अब यह बड़े मजे की बात है, जैसे कि हमारे मुल्क में आयुर्वेद की सारी खोज बहुत गहरे में प्रयोगात्मक नहीं है, बहुत गहरे में देवताओं के द्वारा दी गई सूचनाओं पर निर्भर है। इसलिए आयुर्वेद की कोई दवा आज भी प्रयोगशाला में सिद्ध होती है कि ठीक है। लेकिन हमारे पास कभी कोई बड़ी प्रयोगशाला नहीं थी, जिसमें हमने उसको सिद्ध किया हो।

जैसे सर्पगंधा है। अब आज हमको पता चला कि वह सच में ही, सुश्रुत से लेकर अब तक सर्पगंधा के लिए जो खयाल था, वह ठीक साबित हुआ। लेकिन अब पश्चिम में सर्पेटीना—सर्पगंधा का रूप है वह— अब वह भारी उपयोग की चीज हो गई है। पागलों के इलाज के लिए अनिवार्य चीज हो गई है। लेकिन यह सर्पगंधा! का पता कैसे चला होगा? क्योंकि आज तो पश्चिम के पास प्रयोगशाला है, जिसमें सर्पगंधा की केमिकल एनालिसिस हो सकती है। लेकिन हमारे पास ऐसी कोई प्रयोगशाला थी, इसकी खबर नहीं मिलती। यह सर्पगंधा की खबर, आमंत्रित आत्माओं से मिली हुई खबर है। और बहुत देर नहीं है कि हमें आमंत्रित आत्माओं के उपयोग फिर खोजने पड़ेंगे।

इसलिए आज जब आप वेद को पढ़ें, तो कपोल—कल्पना हो जाती है, झूठ मालूम पड़ता है कि क्या बातचीत कर रहे हैं ये—इंद्र आओ, वरुण आओ, फलां आओ, ढिकां आओ। और इस तरह बात कर रहे हैं कि जैसे सच में आ रहे हों। और फिर इंद्र को भेंट भी कर रहे है, इंद्र से प्रार्थना भी कर रहे हैं। और इतने बड़े वेद में कहीं भी एक जगह कोई ऐसी बात नहीं मालूम पड़ती कि कोई एक भी आदमी शक कर रहा हो कि क्या पागलपन की बात कर रहे हो! किससे बात कर रहे हो! देवता, वेद के समय में बिलकुल जमीन पर चलते हुए मालूम पड़ते हैं।

निमंत्रण की विधि थी। सब हवन, यज्ञ बहुत गहरे में निमंत्रण की विधियां हैं, इनविटेशस हैं, इनवोकेशस हैं। उसकी बात तो कहीं आगे होगी, तो बात कर लेंगे।

लेकिन यह जो आपने पूछा, तो सूक्ष्म शरीर ही स्थूल शरीर से मुक्त रहकर प्रेत और देव दिखाई पड़ता है।

अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतम् ।
तथापि त्वं महाबाहो नैवं शोचितुमर्हसि ।।26।।

और यदि तू इसको सदा जन्मने और सदा मरने वाला माने, तो भी हे अर्जुन, इस प्रकार शोक करना योग्य नहीं है।

कृष्ण का यह वचन बहुत अदभुत है। यह कृष्ण अपनी तरफ से नहीं बोलते, यह अर्जुन की मजबूरी देखकर कहते हैं। कृष्ण कहते हैं, लेकिन तुम कैसे समझ पाओगे कि आत्मा अमर है? तुम कैसे जान पाओगे इस क्षण में कि आत्मा अमर है? छोड़ो, तुम यही मान लो, जैसा कि तुम्हें मानना। सुगम होगा कि आत्मा मर जाती है, सब समाप्त हो जाता है।

लेकिन महाबाहो! कृष्ण कहते है अर्जुन से, अगर ऐसा ही तुम मानते हो, तब भी मृत्यु के लिए सोच करना व्यर्थ हो जाता है। जो मिट ही जाता। है, उसको मिटाने में इतनी चिंता क्या है? जो मिट ही जाएगा—तुम नहीं मिटाओगे तो भी मिट जाएगा—उसको मिटाने में इतने परेशान क्यों हो? और जो मिट ही जाता है, उसमें हिंसा कैसी?

एक यंत्र को तोड़ते वक्त तो हम नहीं कहते कि हिंसा हो गई। एक घड़ी को फोड़ दें पत्थर पर पटककर, तब तो नहीं कहते कि हिंसा हो गई, तब तो हम नहीं कहते कि बड़ा पाप हो गया! क्यों? क्योंकि कुछ भी तो नहीं था घड़ी में, जो न मिटने वाला हो।

तो कृष्ण कहते हैं, जो मिट ही जाने वाले यंत्र की भांति हैं, जिनमें कोई अजर, अमर तत्व ही नहीं है, तो मिटा दो इन यंत्रों को, हर्ज क्या है ? फिर चिंतित क्यों होते हो? और कल तुम भी मिट जाओगे, तो किस पर लगेगा पाप? कौन होगा भागीदार पाप का? कौन भोगेगा? कौन किसी यात्रा पर तुम जा रहे हो, जहां कि इनको मारने का जिम्मा और रिस्पासिबिलिटी तुम्हारी होने को है? तुम भी नहीं बचोगे। ये भी मर जाएंगे, तुम भी मर जाओगे, डस्ट अनटु डस्ट, धूल धूल में गिर जाएगी। तो चिंता क्या करते हो?

लेकिन ध्यान रहे, यह कृष्ण अपनी तरफ से नहीं बोलते। कृष्ण इतनी बात कहकर अर्जुन की आंखों में देखते होंगे, कुछ परिणाम नहीं होता है। परिणाम आसान भी नहीं है। आपकी आंखों में देखूं? तो जानता हूं कि नहीं होता है।

आत्मा अमर है, सुनने से नहीं होता है कुछ। देखा होगा कृष्ण ने कि वह अर्जुन वैसा ही निढाल बैठा है। ये बातें उसके सिर पर से गुजर जाती हैं। सुनता है कि आत्मा अमर है, लेकिन उसकी चिंता में कोई अंतर नहीं पड़ता। तो कृष्ण यह वचन मजबूरी में अर्जुन की तरफ से बोलते हैं। वे कहते हैं, छोड़ो, मुझे छोड़ो। मैं जो कहता हूं र उसे जाने दो। फिर ऐसा ही मान लो, तुम जो कहते हो, वही ठीक है। लेकिन ध्यान रहे, वे कहते हैं, ऐसा ही मान लो, लेट अस सपोज। कहते हैं, ऐसा ही स्वीकार कर लेते हैं। तुम जो कहते हो, वही मान लेते हैं कि आत्मा मर जाती है, तो फिर तुम चिंता कैसे ' कर रहे हो? फिर चिंता का कोई भी कारण नहीं। फिर धूल धूल में गिर जाएगी। मिट्टी मिट्टी में मिल जाएगी। पानी पानी में खो जाएगा। आग आग में लीन हो जाएगी। आकाश आकाश में तिरोहित हो जाएगा। फिर चिंता कैसी?

यह अर्जुन के ही तर्क से, अर्जुन की ही ओर से कृष्ण कोशिश करते हैं। यह कृष्ण का वक्तव्य बताता, है कि अर्जुन को देखकर। कैसी निराशा उन्हें न हुई होगी। यह वक्तव्य बहुत मजबूरी में दिया हुआ वक्तव्य है। यह वक्तव्य खबर देता है कि अर्जुन बैठा सुनता रहा होगा। फिर भी उसकी आंखों में वही प्रश्न रहे होंगे, वही चिंता रही होगी, वही उदासी रही होगी। सुन लिया होगा उसने और कुछ भी नहीं सुना होगा।

इस वक्त जीसस का मुझे स्मरण आता है। जीसस ने कहा है, कान है तुम्हारे पास, लेकिन तुम सुनते कहां! आंख है तुम्हारे पास, लेकिन तुम देखते कहां!

कृष्ण को ऐसा ही लगा होगा। नहीं सुन रहा है, नहीं सुन रहा है, नहीं समझ रहा है। बात भी सुनने और समझने से आने वाली कहां है! कसूर भी उसका क्या है! बात अस्तित्वगत है, बात अनुभूतिगत है। मात्र सुनने से कैसे समझ में आ जाएगी?

नहीं, अभी कृष्ण को और मेहनत लेनी पड़ेगी। और—और आयामों से दरवाजे उसके खटखटाने पड़ेंगे। अभी तक वे जो कह रहे थे, पर्वत के शिखर से कह रहे थे। अब वे अंधेरी गली का तर्क ही अंधेरी गली के लिए उपयोग कर रहे हैं।

जातस्य हि ध्रुवी मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ।
तस्मादपश्हिायेंऽश्रें न त्वं शोचितुमर्हीस ।।27।।

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत ।
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का यरिदेवना ।।28।।

क्योंकि ऐसा होने से तो जन्मने वाले की निश्चित मृत्यु और मरने वाले का निश्चित जन्म होना सिद्ध हुआ। इससे भी तू इस बिना उपाय वाले विषय में शोक करने को योग्य नहीं है। (और यह भीष्मादिकों के शरीर मायामय होने से अनित्य है, इससे शरीरों के लिए शोक करना उचित नहीं है, क्योंकि) हे अर्जुन, संपूर्ण प्राणी जन्म ले पहले बिना शरीर वाले और मरने के बाद भी बिना शरीर वाले ही हैं। केवल बीच में ही शरीर वाले (प्रतीत होते हैं) फिर उस विषय में क्या चिंता है?

खयाल आपको आया होगा कि कृष्ण जब अपनी तरफ से बोल रहे थे, तब उन्होंने अर्जुन को मूर्ख भी कहा। जब वे अपनी सतह से बोल रहे थे, तब अर्जुन को मूढ़ कहने में भी उन्हें कठिनाई न हुई। लेकिन जब वे अर्जुन की तरफ से बोल रहे हैं, तब उसे महाबाहो, भारत. तब उसे बड़ी प्रतिष्ठा दे रहे हैं, बड़े औपचारिक शब्दों का उपयोग कर रहे हैं। जब अपनी तरफ से बोल रहे थे, तब उसे निपट मूढ़ कहा, कि तू निपट गंवार है, तू बिलकुल मूढ़ है, तू बिलकुल मंद—बुद्धि है। लेकिन अब उसी मंद—बुद्धि अर्जुन को वे कहते हैं, हे महाबाहो!

अब उसकी ही जगह उतरकर बात कर रहे है। अब ठीक उसके कंधे पर हाथ रखकर बात कर रहे है। अब ठीक मित्र जैसे बात कर रहे हैं। क्योंकि इतनी बात से लगा है कि जिस शिखर की उन्होंने बात कही, वह उसकी पकड़ में शायद नहीं आती। बहुत बार ऐसा हुआ है।

मोहम्मद ने कहा है कि मैं वैसा कुआ नहीं हूं कि अगर तुम मेरे पास पानी पीने न आओ, तो मैं तुम्हारे पास न आऊं। अगर तुम मोहम्मद के पास न आओगे, तो मोहम्मद तुम्हारे पास आएगा। और अगर प्यासा कुएं के पास न आएगा, तो कुआ ही प्यासे के पास जाएगा।

कृष्ण अर्जुन के पास वापस आकर खड़े हो गए हैं। ठीक वहीं खड़े थे, भौतिक शरीर तो वहीं खड़ा था पूरे समय, लेकिन पहले वे बोल रहे थे बहुत ऊंचाई से। वहां से, जहा आलोकित शिखर है। तब वे अर्जुन को कह सके, तू नासमझ है। अब वे अर्जुन को कह रहे हैं कि तेरी समझ ठीक है। तू अपनी ही समझ का उपयोग कर। अब मैं तेरी समझ से ही कहता हूं।

लेकिन अब वे जो कह रहे हैं, वह सिर्फ तर्क और दलील की बात है। क्योंकि जो अनुभव को न पकड़ पाए फिर उसके लिए तर्क और दलील के अतिरिक्त पकड़ने को कुछ भी नहीं रह जाता; कोई उपाय नहीं रह जाता। जो तर्क और दलील को ही पकड़ पाए, तो फिर तर्क और दलील की ही बात कहनी पड़ती है। लेकिन उस बात में प्राण नहीं है, वह बल नहीं है। वह बल हो नहीं सकता। क्योंकि कृष्ण जानते हैं कि वे जो कह रहे हैं, अब सिर्फ तर्क है, अब सिर्फ दलील है। अब वे यह कह रहे है कि तुझे ही ठीक मान लेते है। लेकिन यह जो शरीर बना है, जिन भौतिक तत्वो से, जिस माया से, खो जाएगा उसमें। विद्वान पुरुष इसके लिए चिंता नहीं किया करते।

विद्वान और ज्ञानी के फर्क को भी ठीक से समझ लेना चाहिए। क्योंकि पहले कृष्ण पूरे समय कह रहे हैं कि जो ऐसा जान लेता है, वह ज्ञान को उपलब्ध हो जाता है। लेकिन अब वे कह रहे है—ज्ञानी नहीं—अब वे कह रहे हैं, विद्वान पुरुष चिता को उपलब्ध नहीं होते। विद्वान का वह तल नहीं है, जो ज्ञानी का है। विद्वान तर्क के तल पर जीता है, युक्ति के तल पर जीता है। इतनी अनुभूति के तल पर जीता है। जानी जानता है, विद्वान सोचता है।

लेकिन यही सही, कृष्ण कहते हैं, नहीं इतनी होने की तैयारी तेरी, तो विद्वान ही हो जा। सोच मत कर, चिंता मत कर। क्योंकि सीधी—सी बात है कि जब सब खो ही जाता है, इतना तो तू सोच ही सकता है, यह तो विचार में ही आ जाता है कि सब खो जाता है, सब मिट जाता है, तो फिर चिंता मत कर, मिट जाने दे। तू बचाएगा कैसे? तू बचा कैसे सकेगा? तो जो अपरिहार्य है—दैट व्हिच इज इनएविटेबल—जो अपरिहार्य है, जो होगा ही, होकर ही रहेगा, उसमें तू ज्यादा से ज्यादा निमित्त है, अपने को निमित्त समझ ले। विद्वान हो जा, चिंता से मुका हो।

लेकिन इसे समझ लेना। कृष्ण ने जब अर्जुन को मूड भी कहा, तब भी इतना अपमान न था, जितना अब विद्वान होने के लिए कहकर हो गया है। मूढ़ कहा, तब तक भरोसा था उस पर अभी। अभी आशा थी कि उसे खींचा जा सकता है शिखर पर। उसे देखकर वह आशा छूटती है। अब वे उसे प्रलोभन दे रहे हैं विद्वान होने का। वे कह रहे हैं कि कम से कम, बुद्धिमान तो तू है ही। और बुद्धिमान पुरुष को चिंता का कोई कारण नहीं, क्योंकि बुद्धिमान पुरुष ऐसा मानकर चलता है कि सब चीजें बनी हैं, मिट जाती हैं। कुछ बचता ही नहीं है पीछे, बात समाप्त हो जाती है।

रास्ते में मैं आ रहा था, तो मेरे जो सारथी थे यहां लाने वाले, वे कहने लगे कि कृष्ण बड़ा अपमान करते है अर्जुन का! कभी मूर्ख कहते हैं, कभी नपुंसक कह देते हैं उसको यह बात ठीक नहीं है।

अब वे बड़ा सम्मान कर रहे है। वे कह रहे हैं, हे महाबाहो, हे भारत, विद्वान पुरुष शोक से मुका हो जाते हैं। तू भी विद्वान है। लेकिन मैं आपसे कहता हूं अपमान अब हो रहा है। जब उसे मूढ़ कहा था, तो बड़ी आशा से कहा था कि शायद यह चिनगारी, शायद यह चोट. वह ठीक शॉक ट्रीटमेंट था। वह बेकार चला गया। वह ठीक शॉक ट्रीटमेंट था, बड़ा धक्का था। अर्जुन को काफी क्रोध चढ़ा देते हैं वे। लेकिन उसको क्रोध भी नहीं चढ़ा। उसे सुनाई ही नहीं पड़ा कि वे क्या कह रहे है। वह अपनी ही रटे चला जाता है। तब वे अब, अब यह बिलकुल निराश हालत में कृष्ण कह रहे हैं।

ऐसे बहुत उतार—चढ़ाव गीता में चलेंगे। कभी आशा बनती है कृष्ण को, तो ऊंची बात कहते हैं। कभी निराशा आ जाती है, तो फिर नीचे उतर आते हैं। इसलिए कृष्ण भी इसमें जो बहुत—सी बातें कहते है, वे एक ही तल पर कही गई नहीं हैं। कृष्ण भी चेतना के बहुत से सोपानों पर बात करते हैं। कहीं से भी—लेकिन अथक चेष्टा करते है कि अर्जुन कहीं से भी—कहीं से भी उस यात्रा पर निकल जाए, जो अमृत और प्रकाश को उसके अनुभव में ला दे।

आश्चर्यवत्यश्यीत कीश्चदेन—माश्चर्यन्द्वदति तथैव चान्यः।
आश्चर्यवव्चैनमन्य: श्रृणोति श्रुत्वाग्येनं वेद न चैव कश्चित्;।।29।।

और हे अर्जुन, यह आत्मतत्व बड़ा गहन है, इसलिए कोई (महापुरूष) ही हम आत्मा को आश्चर्य की तरह देखता है और वैसे ही दूसरा कोई महापुरुष ही आश्चर्य की तरह इसके तत्व को कहता है और दूसरा कोई ही इस आत्मा को आश्चर्य की तरह सुनता है और कोई सुनकर भी इस आत्मा को नहीं जानता।

बडी अदभुत बात है। एक तो कृष्ण कहते हैं, इस आत्मा की दिशा में किसी भी मार्ग से गति करने वाला एक आश्चर्य है—एक मिरेकल, एक चमत्कार। किसी भी दिशा से उन्मुख होने वाला आत्मा की तरफ—एक चमत्कार है। क्योंकि करोड़ों—करोड़ों में कभी कोई एक उस ऊंचाई की तरफ आंख उठाता है। अन्यथा हमारी आंखें तो जमीन में गड़ी रह जाती। हैं, आकाश की तरफ कभी उठती ही नहीं। नीचाइयों में उलझी रह जाती हैं, ऊंचाइयों की तरफ हमारी आंख की कभी उड़ान नहीं होती। कभी हम पंख नहीं फैलाते आकाश की तरफ। कभी करोड़ों—करोड़ों में कोई एक आदमी।

इस जगत में सबसे बड़ा आश्चर्य शायद यही है कि कभी कोई आदमी स्वयं को जानने के लिए आतुर और पिपासु होता है। होना नहीं चाहिए ऐसा; लेकिन है ऐसा। मैं कौन हूं? यह कोई पूछता ही नहीं। होना तो यह चाहिए कि यह बुनियादी

प्रश्न होना चाहिए प्रत्येक के लिए। क्योंकि जिसने अभी यह भी नहीं पूछा कि मैं कौन हूं, उसके और किसी बात के पूछने का क्या अर्थ है! और जिसने अभी यह भी नहीं जाना कि मैं कौन हूं, वह और जानने निकल पड़ा है? जिसका खुद का घर अंधेरे से भरा है, जिसने वहा भी दीया नहीं जलाया, उससे ज्यादा आश्चर्य का आदमी नहीं होना चाहिए।

लेकिन कृष्ण बड़ा व्यंग्य करते हैं, वे बड़ी मजाक करते हैं; बहुत आयरानिकल स्टेटमेंट है। वे यह कहते हैं कि अर्जुन, बड़े आश्चर्य की बात है कि कभी करोड़ों—करोड़ों में कोई एक आदमी आत्मा के संबंध में खोज पर, जानने पर निकलता है। लेकिन पीछे और एक मजेदार बात कहते हैं।

वे कहते हैं, लेकिन वह आत्मा सोचने—समझने, मनन से नहीं उपलब्ध होता है; विचार से नहीं उपलब्ध होता है। एक तो यही आश्चर्य है कि मुश्किल से कभी कोई उसके संबंध में विचार करता है। लेकिन विचार करने वाला भी उसे पा नहीं लेता है। पाता तो उसे वही है, जो विचार करते—करते विचार का भी अतिक्रमण कर जाता है। जो विचार करते—करते वहां पहुंच जाता है, जहां विचार कह देता है कि बस, अब आगे मेरी गति नहीं है।

एक तो करोड़ों में कभी कोई विचार शुरू करता है। और फिर उन करोड़ों में, जो विचार करते हैं, कभी कोई एक विचार की सीमा के आगे जाता है। और विचार की सीमा के आगे जाए बिना, उसका कोई अनुभव नहीं है। क्योंकि आत्मा का होना विचार के पूर्व है। आत्मा विचार के पीछे और पार है। विचार आत्मा के ऊपर उठी हुई लहरें हैं, तरंगें हैं। विचार आत्मा की सतह पर दौड़ते हुए हवा के झोंके हैं। विचार से आत्मा को नहीं जाना जा सकता। आत्मा से विचारों को जाना जा सकता है। क्योंकि विचार ऊपर हैं, आत्मा पीछे है। विचार को आत्मा से जाना सकता है, विचार से आत्मा को। नहीं जाना जा सकता। मैं अपने हाथ से इस रूमाल को पकड सकता हूं। लेकिन इस रूमाल से अपने हाथ को नहीं पकड़ सकता। हाथ पीछे है। विचार बहुत ऊपर है।

एक जगत है हमारे बाहर, वस्तुओं का ' वह बाहर है। फिर एक जगत है हमारे भीतर, विचारों का; लेकिन वह भी बाहर है। हम उसके भी पीछे हैं। हमारे बिना वह नहीं हो सकता। हम उसके बिना भी हो सकते हैं। रात जब बहुत गहरी नींद में सो गए होते हैं—सुषुप्ति में—तब कोई विचार नहीं रह जाता, लेकिन आप होते हैं। सुबह कहते हैं, स्वप्न भी नहीं था, विचार भी नहीं था, बड़ी गहरी थी नींद। लेकिन आप तो थे। विचार के बिना आप हो सकते हैं, लेकिन कभी आपका विचार आपके बिना नहीं हो सकता। वह जो पीछे है, वह विचार को जान सकता है, लेकिन विचार उसे नहीं जान सकते।

लेकिन हम विचार से ही जानने की कोशिश करते है। पहले तो हम जानने की कोशिश ही नहीं करते। वस्तुओं को जानने की कोशिश करते है। वस्तुओं से किसी तरह करोड़ों में एक का छुटकारा होता है, तो विचारों में उलझ जाता है। क्योंकि वस्तुओं के बाद विचारों का जगत है। विचार से भी किसी का छुटकारा हो, तो स्वयं को जान पाता है।

तो कृष्ण कहते हैं, चिंतन से, मनन से, अध्ययन से, प्रवचन से उसे नहीं जाना जा सकता। एक और मजे की बात उन्होंने इसमें कही है कि आश्चर्य है कि कोई आत्मा के संबंध में समझाए, उपदेश दे। पहली तो बात इसलिए आश्चर्य है कि कोई आत्मा के संबंध में उपदेश दे, क्योंकि आत्मा किसी की भी आवश्यकता नहीं है; उपदेश सुनेगा कौन? नो वन्य नेसेसिटी। बाजार में वही चीज बिक सकती है, जो किसी की जरूरत हो। आत्मा किसी की भी जरूरत नहीं है। इसलिए जो आत्मा के संबंध में उपदेश देने की हिम्मत करता है, बिलकुल पागल आदमी है। कोई जिस चीज को लेने को तैयार नहीं, उसको बेचने निकल पड़े!

वह कृष्ण को खुद भी समझ में आ रहा होगा कि अर्जुन की जो मांग नहीं, जो उसकी डिमांड नहीं, वे उसकी सप्लाई कर रहे हैं। वह बेचारा कुछ और मांग रहा है। वह मांग रहा है एस्केप, वह मांग रहा है पलायन, वह मांग रहा है कसोलेशन, वह मांग रहा है सांत्वना। वह कह रहा है, मुझे किसी तरह बचाओ, निकालो इस चक्कर से। वह आत्मा वगैरह की बात ही नहीं कर रहा है। वह किसी की जरूरत नहीं है। इसलिए आश्चर्य है कि कभी कोई आदमी आत्मा को बेचने निकल जाता है!

पर कुछ लोग सनकी होते हैं, आत्मा को भी समझाने लगते है। एक तो यह आश्चर्य है कि कोई समझने को जिसे तैयार नहीं है।

अभी मैंने पढ़ा, एक ईसाई बिशप का मैं जीवन पढ़ रहा था। कीमती आदमी था। सारे योरोप के ईसाई पादरियों का एक सम्मेलन था। तो उस बिशप ने उस पादरियों के सम्मेलन में यह कहा, उनसे कि मै तुमसे यह पूछना चाहता हूं कि चर्चों में जब तुम बोलते हो, तो लोग सिर्फ ऊबे हुए मालूम पड़ते हैं र बोर्ड मालूम पड़ते हैं। अधिक तो सोए मालूम पड़ते हैं। कोई रस लेता नहीं मालूम पड़ता। और लोग बार—बार घड़ी देखते मालूम पड़ते हैं। कारण क्या है? उत्तर वे बिशप नहीं दे सके, जो इकट्ठे थे। तब जिसने पूछा था, उस फकीर ने खुद ही कहा कि मै समझता हूं कि कारण यह है कि तुम उन प्रश्नों के उत्तर दे रहे हो, जो कोई पूछता ही नहीं है, जो किसी के प्रश्न ही नहीं है।

पहला तो आश्चर्य कि कोई आत्मा को समझाने निकलने की हिम्मत करे, करेजियस है मामला कि कोई आत्मा की दुकान खोले, कोई ग्राहक मिलने की उम्मीद नहीं होनी चाहिए। और दूसरा इस कारण भी आश्चर्य है कि आत्मा ऐसा तत्व है, जो समझाया नहीं जा सकता। कोई उपाय जिसे समझाने का नहीं है।

इसलिए कृष्ण या कबीर बुद्ध या मोहम्मद या नानक इनकी तकलीफ, इनकी उलझन बड़ी गहरी है। कुछ इन्होंने जाना है, जो ये चाहेंगे कि सबको जना दें। जो ये चाहेंगे कि जो इन्हें मिला है,। वह सबको मिल जाए। जो आनंद की वर्षा और जो अमृत का सागर इनमें उतर आया है, सब में उतर आए। लेकिन समझाने की बड़ी मुश्किल है। शब्द बेकार हैं। जिसे विचार से जाना नहीं, उसे विचार से कहेंगे कैसे! और जिसे शब्द छोड्कर जाना, उसे शब्द से प्रकट कैसे करेंगे! तो आश्चर्य इसलिए भी है कि वह कहा नहीं जा सकता, फिर भी कहना ही पड़ेगा, फिर भी कहना ही पड़ा है।

इसलिए एक और एब्सर्ड, बिलकुल असंगत सी घटना दुनिया में घटी कि बुद्ध कहते हैं, कहा नहीं जा सकता; और जितना बुद्ध बोलते हैं, उतना कोई आदमी नहीं बोलता। और कृष्ण कहते हैं, समझाया नहीं जा सकता; और समझाए चले जा रहे हैं। और महावीर कहते हैं, वाणी के बाहर है, शब्द के बाहर है; लेकिन यह भी तो वाणी से और शब्द से ही कहना पड़ता है।

विट्गिस्टीन ने अपने टेक्टेटस में एक वाक्य लिखा है, दैट व्हिच कैन नाट बी सेड, मस्ट नाट बी सेड—जो नहीं कहा जा सकता, वह नहीं ही कहना चाहिए। लेकिन विट्गिस्टीन की बात अगर कृष्ण, बुद्ध और महावीर मान लें, तो यह दुनिया बहुत गरीब होती, यह बहुत दीन और दरिद्र होती।

तो मैं तो कहना चाहूंगा, दैट व्हिच कैन नाट बी सेड, मस्ट बी। सेड—जो नहीं कहा जा सकता, उसे भी कहना ही चाहिए। नहीं कहा जा सकेगा, यह पक्का है। लेकिन नहीं कह सकने की तकलीफ में भी कुछ संवेदित हो जाएगा, कुछ कम्युनिकेट हो जाएगा। नहीं कहा जा सकता, इस मुसीबत में भी कोई चीज—शब्दों के बाहर और शब्दों के पार और पंक्तियों के बीच में निवेदित हो जाएगी। उसी की चेष्टा चल रही है।

संगीत वही नहीं है, जो स्वरों में होता है; संगीत वह भी है, जो दो स्वरों के बीच के मौन में होता है। वही नहीं कहा जाता, जो शब्दों में कहा जाता है; वह भी कहा जाता है, जो दो शब्दों के बीच के साइलेंस में शून्य में होता है। वही नहीं सुना जाता, जो शब्द से सुना जाता है; वह भी सुना जा सकता है, जो शब्द के बाहर, इर्द—गिर्द, आस—पास छूट जाता है।

तो कृष्ण कह रहे हैं, मिरेकल है, चमत्कार है।

शेष सांझ बात करेंगे।

प्रवचन 10 : जीवन की परम धन्यता—स्वधर्म की पूर्णता में
ओशो – गीता-दर्शन – भाग एक
अध्याय—1-2 – प्रवचन 10 : जीवन की परम धन्यता—स्वधर्म की पूर्णता में

प्रश्नः
भगवान श्री, अट्ठाइसवें श्लोक पर सुबह बात हुई—
अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तिमध्यानि भारत ।
अव्यक्तिनिधनान्येव तत्र का परिवेदना ।।28।।

इसमें कहां गया है कि आदि में अप्रकट, अंत में अप्रकट ओर मध्य में प्रकट है जो, यह जो मैनिफेस्टेड है, प्रकट है, इसमें ही द्वैतता का अनुभव होता है। और जो अप्रकट है, उससे अद्वैत का दर्शन किया जाता है। तो यह जो मध्य में मैनिफस्टेड है, उसमे जो द्वैतता है, डुअलिज्म है, उसका परिहार करके के लिए आप कोई विशेष प्रक्रिया का सूचन देंगे?

अव्यक्त है प्रारंभ में, अव्यक्त है अंत में; मध्य में व्यक्त का जगत है। जिब्रान ने कही कहा है, एक रात अंधेरी अमावस की राम में, एक छोटे से झोपड़े में बैठा था, मिट्टी का एक दीया जलाकर। टीमटिमाती थोड़ी-सी रोशनी थी। द्वार के बाहर भी अंधकार था। सब और अंधकार था। केवल उस छोटे से झोपड़े में उस दीए की थोड़ी सी रोशनी थी। और एक रात का पक्षी फड़फड़ाता हुआ झोपड़े के द्वार से प्रविष्ट हुआ, उसने दो या तीन चक्कर झोपड़े के भीतर टीमटिमाती रोशनी में लगाए, और पीछे के द्वार से बाहर हो गया। जिब्रान ने उस रात अपनी डायरी में लिखा कि उस पक्षी को अंधेरे में प्रकाश में दो क्षण के लिए आते देखकर, फिर प्रकाश में दो क्षण फड़फड़ाते देखकर और फिर गहन अंधकार में खो जाते देखकर मुझे लगा कि जीवन भी ऐसा ही है।

अव्यक्त है प्रारंभ में अव्यक्त है बाद में; दो क्षण की व्यक्त की फड़फड़ाहट है। दो क्षण के लिए वह जो मैनिफटेड है। वह जो प्रकट है। उसमे फूल खिलते है, पत्ते आते है, जीवन हंसता है। रोता है और फिर खो जाता है। अव्यक्त में अद्वैत है—पहले भी, अंत में भी, दोनों ओर। मध्य में द्वैत ही नहीं है, अनेकत्व है। दो ही नहीं है। अनेक है। सब चीजें पृथक—पृथक मालूम होती है।

तो पूछ रहे है कि उस अपृथक को, उस अभिन्न को, उस एक को, उस अद्वय को, उस मूल को और आदि को मध्य के इन व्यक्त क्षणों में जानने का क्या प्रयोग है?

निश्चित ही है।

एक वृक्ष के नीचे खड़े हैं। पत्ते हवाओं में हिल रहे हैं। सूरज की में पत्ते चमक रहे हैं। एक—एक पत्ता अलग—अलग मालूम। और अगर पत्ते सचेतन हो जाएं, अगर एक—एक पता होश , तो सोच भी न पाएगा कि साथ का जो पड़ोसी पत्ता है, मै कहीं एक हैं, कहीं नीचे शाखा पर जुड़े हैं। पड़ोस में हुए पत्ते को देखकर जागा हुआ, होश में आ गया पत्ता , कोई पराया है।

ठीक भी है; तर्कयुक्त भी है। क्योंकि पड़ोस में कोई पत्ता रहा है और यह पत्ता तो अभी जवान है। अगर ये दोनों एक दोनों एक साथ के हो गए होते। पड़ोस में कोई पत्ता गिरने के करीब है, पीला होकर सूखकर गिर रहा है। गिर गया है कोई, जमीन पर सूखा पड़ा है, हवाओं में उड़ रहा है। अगर वह इस पत्ते से एक होता, तो वह वृक्ष पर और जिससे एक है, वह पृथ्वी पर कैसे हो सकता था! वह हरा है, कोई सूख गया है। वह जवान है, कोई का हो गया है। कोई अभी बच्चा है, किसी की अभी कोंपल फूटती है। उस पत्ते का सोचना ठीक ही है कि वह अलग है।

लेकिन काश! यह पत्ता बाहर से न देखे। अभी बाहर से देख रहा है, देख रहा है दूसरे पत्ते को। काश! यह पत्ता अपने भीतर देख सके और भीतर उतरे, तो क्या बहुत दूर वह रस—धार है, जहां से ये दोनों पत्ते जुड़े हैं! वह भी जो का, वह भी जो जवान वह भी जो आ रहा है, वह भी जो जा रहा है क्या वह रस—धार बहुत दूर है? यह पत्ता अपने भीतर उतरे, स्वयं में उतरे, तो उस शाखा को जरूर ही देख पाएगा, जान पाएगा, जहा से सब पत्ते निकले हैं।

लेकिन फिर वह शाखा भी समझ सकती है कि दूसरी शाखा से अन्य है, भिन्न है। वह शाखा भी भीतर उतरे, तो उस वृक्ष को खोज लेने में बहुत कठिनाई नहीं है, जहां सभी शाखाएं जुड़ी हैं। लेकिन वह वृक्ष भी सोच सकता है कि पड़ोस में खड़ा हुआ वृक्ष और है, अन्य है। लेकिन वह वृक्ष भी नीचे उतरे, तो क्या उस पृथ्वी को खोजना बहुत कठिन होगा, जिस पर कि दोनों वृक्ष जुड़े हैं और एक ही रस—धार से जीवन को पाते हैं! पृथ्वी भी सोचती होगी कि दूसरे ग्रह—मंडल, तारे, चांद, सूरज अलग हैं। काश! पृथ्वी भी अपने भीतर उतर सके, तो जैसे पत्ते ने उतरकर जाना, वैसे पृथ्वी भी जानती है कि सारा ब्रह्मांड भीतर एक से जुड़ा है!

दो ही रास्ते हैं देखने के। एक रास्ता है जो तू से शुरू होता है, और एक रास्ता है जो मैं से शुरू होता है। जो रास्ता तू से शुरू होता है, वह अनेक के दर्शन में ले जाता है। जो रास्ता मैं से शुरू होता है, वह एक के दर्शन में ले जाता है। जो तू से शुरू होता है, वह अनमैनिफेस्टेड में नहीं ले जाएगा, वह अव्यक्त में नहीं ले जाएगा, वह व्यक्त में ही ले जाएगा। क्योंकि दूसरे के तू को हम बाहर से ही छू सकते हैं, उसकी आतंरिक गहराइयों में उतरने का कोई उपाय नहीं; हम उसके बाहर ही घूम सकते हैं। भीतर तो हम सिर्फ स्वयं के ही उतर सकते है।

इसलिए प्रत्येक के भीतर वह सीढ़ी है, जहां से वह उतर सकता है वहां, जहां अब भी अव्यक्त है। सब व्यक्त नहीं हो गया है। सब कभी व्यक्त हो भी नहीं सकता। अनंत है अव्यक्त। क्योंकि जो अद्वैत है, वह अनंत भी होगा; और जो व्यक्त है, वह सीमित भी होगा। व्यक्त की सीमा है, अव्यक्त की कोई सीमा नहीं है। जो अव्यक्त है, वह अनंत है, वह अभी भी है। उस बड़े सागर पर बस एक लहर प्रकट हुई है। उस लहर ने सीमा बना ली है। वह सागर असीम है।

लेकिन अगर लहर दूसरी लहर को देखे, तो सागर तक कभी न पहुंच पाएगी। दूसरी लहर से सागर तक पहुंचने का कोई भी उपाय नहीं है। क्योंकि दूसरी लहर के भीतर ही पहुंचने का कोई उपाय नहीं है। हम सिर्फ अपने ही भीतर उतर सकते हैं। और अपने ही भीतर उतरकर सबके भीतर उतर सकते हैं। स्वयं में उतरना पहली सीढ़ी है, स्वयं में उतरते ही सर्व में उतरना हो जाता है।

और यह बड़े मजे की बात है कि जो दूसरे में उतरता है, उसको ही लगता है कि मैं हूं। और जो मैं में उतरता है, उसे लगता है, मै नहीं हूं सर्व है। मैं की सीढ़ी पर उतरते ही पता चलता है कि मैं भी खो गया, सर्व ही रह गया।

लेकिन हम जीवन में सदा दूसरे से शुरू करते है, दि अदर। बस वह दूसरे से ही हम सब सोचते हैं। अपने को छोड्कर ही हम चलते हैं, उसको बाद दिए जाते हैं। जन्मों—जन्मों तक एक चीज को हम छोड़ते चले जाते हैं, निग्लेक्ट किए जाते है, एक चीज के प्रति हमारी उपेक्षा गहन है—स्वयं को हम सदा ही छोड्कर चलते हैं। सब जोड़ लेते हैं, सब हिसाब में ले लेते हैं। बस वह एक, जो अपना होना है, उसे हिसाब के बाहर रख देते है।

वेई बू ने एक किताब लिखी है, दि टेंथ मैन, दसवां आदमी। और बहुत पुरानी भारतीय कथा से वह किताब शुरू की है। उस कहानी से हम सब परिचित हैं, कि दस आदमियों ने नदी पार की 1 वर्षा थी, बाढ़ थी। नदी पार उतरकर सहज ही उन्होंने सोचा कि कोई बह न गया हो! तो उन्होंने गिनती की। निश्चित ही, गिनती उन्होंने वैसी ही की जैसी हम करते है। लेकिन बड़ी मुश्किल हो गई। थे तो दस, लेकिन गिनती में नौ ही निकले। एक ने की, दूसरे ने की, तीसरे ने की, फिर तो कन्फर्म हो गया कि नौ ही बचे हैं, एक खो गया।

जैसे सभी की जिंदगी का ढंग एक ही था—हम सभी का है—प्रत्येक ने स्वयं को छोड्कर गिना। गिनती नौ हुई। अब वह जो एक खो गया, उसके लिए बैठकर वे रोने लगे। यह भी पक्का पता नहीं चलता था कि वह कौन खो गया! ऐसे शक भी होता है कि कोई नहीं खोया। लेकिन शक ही है, क्योंकि गणित कहता है कि खो गया। अब गणित इतना प्रामाणिक मालूम होता है कि अब शक को अलग ही हटा देना उचित है। रो लेना भी उचित है, क्योंकि जो खो गया मित्र, उसके लिए अब और तो कुछ कर नहीं सकते। वे वहां बैठकर एक वृक्ष के नीचे रोते हैं।

वहा से एक फकीर गुजरा है। उसने पूछा कि क्या हुआ? क्यों रोते हो? उन्होंने कहा, एक साथी खो गया है। दस चले थे उस पार से, अब गिनते हैं तो नौ ही हैं! वे फिर छाती पीटकर रोने लगे। उस फकीर ने नजर डाली और देखा कि वे दस ही हैं। पर समझा वह फकीर। संसारी आदमी की बुद्धि और संसारी आदमी के गणित को भलीभांति जानता था। जानता था कि संसारी की भूल ही एक है। वही भूल दिखता है, हो गई है।

उसने कहा, जरा फिर से गिनो। लेकिन एक काम करो, मैं एक—एक आदमी के गाल पर चांटा मारता हूं। जिसको मैं चांटा मारूं, वह बोले, एक! दूसरे को मारूं, दो! तीसरे को मारूं, तीन! मैं चांटा मारता चलता हूं। चांटा इसलिए, ताकि तुम याद रख सको कि तुम छूट नहीं गए हो।

बड़ी हैरानी हुई, गिनती दस तक पहुंच गई। वे बड़े चकित हुए और उन्होंने कहा, क्या चमत्कार किया? यह गिनती दस तक कैसे पहुंची? हमने बहुत गिना, लेकिन नौ पर ही पहुंचती थी!

तो उस फकीर ने कहा, दुनिया में गिनने के दो ढंग हैं। दुनिया में दो तरह के गणित है। एक गणित जो तू से शुरू होता है और एक गणित जो मैं से शुरू होता है। जो गणित तू से शुरू होता है, वह गणित कभी भी अव्यक्त में नहीं ले जाएगा। नहीं ले जाएगा इसलिए कि तू के भीतर प्रवेश का द्वार ही नहीं है। जो गणित मैं से शुरू होता है, वह अव्यक्त में ले जाता है।

इसलिए धर्म की परम अनुभूति परमात्मा है। और धर्म का प्राथमिक चरण आत्मा है। आत्मा से शुरू करना पड़ता है, परमात्मा पर पूर्णता होती है। स्वयं से चलना पड़ता है, सर्व में निष्पत्ति होती है। तो अपने भीतर से गिनती शुरू करें। अभी भी आपके भीतर अव्यक्त मौजूद है। झांकते ही नहीं वहां, यह दूसरी बात है। आपके भीतर अव्यक्त मौजूद है।

इसे थोड़ा समझ लेना उचित होगा कि अव्यक्त आपके भीतर कैसे है! आपके ठीक पैरों के नीचे है। जिस जमीन पर आप खड़े हैं, वहीं! वहीं थोड़े ही दो कदम नीचे। चले नहीं कि अव्यक्त मौजूद है। कौन चला रहा है आपकी श्वास को? आप? तो जरा बंद करके देखें, तो पता चलेगा, आप नहीं चला रहे हैं। जरा रोकें, तो पता चल जाएगा, आप नहीं चला रहे है। श्वास धक्के देगी और चलेगी, तब आपको पता चलेगा, आपके नीचे से भी कोई और गहरे में इसे चला रहा है। खून चल रहा है चौबीस घंटे, आप नहीं चला रहे हैं। आपने कभी चलाया नहीं, चलाना पड़ता तो बहुत! मुश्किल में पड़ जाते। वह काम ही इतना होता कि और कोई काम न बचता। और मिनट दो मिनट भी चूक जाते, भूल जाते, तो समाप्ति हो जाती। वह श्वास आदमी पर अगर होती चलाने की, तो दुनिया में आदमी बचता नहीं, कभी का समाप्त हो गया होता। एक क्षण चूके कि गए। नहीं, आप सोए रहें, बेहोश पड़े रहें, शराब पीए पड़े रहें, वह श्वास चलती रहेगी, वह खून दौड़ता रहेगा।

खाना तो आप खा लेते हैं, पचाता कौन है? आप? अभी तक बड़ी से बड़ी वैज्ञानिक प्रयोगशाला रोटी को खून में बदलने में समर्थ नहीं हो पाई है। और वैज्ञानिक कहते हैं कि आदमी का छोटा—सा पेट जो करता है, अगर किसी दिन हम समर्थ हुए, तो कम से कम सैकड़ों मील जगह घेरे, इतनी बड़ी फैक्टरी और लाखों लोग काम करें, इतना इंतजाम, एक आदमी के पेट में जो रहा है, उसके लिए करना पड़ेगा। लेकिन फिर भी पक्का नहीं है कि यह हो सकेगा। कौन चला रहा है? आप?

निश्चित ही, एक बात पक्की है कि आप नहीं चला रहे हैं। तो आपके भीतर अव्यक्त, आपके भीतर छिपी हुई कोई ताकत, आपके मैं की सीमा के पार!

आप सोते हैं रोज। लेकिन इस भ्रांति में मत पड़ना कि आप सोते हैं, क्योंकि सोना कोई एक्ट नहीं है, कोई क्रिया नहीं है। भाषा में है। भाषा से कोई लेना—देना नहीं है। सोना बिलकुल ही क्रिया नहीं है। क्योंकि जिसको नींद नहीं आती है, उसको भलीभांति पता है कि कितनी ही करवट बदलता है, कितने ही उपाय करता है, नहीं आती, नहीं आती, नहीं आती। सच तो यह है कि जितने उपाय करता है, उतनी ही नहीं आती। और अगर कभी आती है तो उसके उपाय की वजह से नहीं आती, उपाय कर—कर के थक गया होता है, तब आती है। नींद ला नहीं सकते आप कि ले आएं। कहां से आती है? आपके भीतर अव्यक्त से आती है। मनोवैज्ञानिक से पूछें, तो उसे थोड़ी—सी समझ मिली है उस अव्यक्त की, उसे वह अनकांशस कह रहा है। वह कह रहा है, अचेतन से आती है।

पैर पर चोट लग गई है। तत्काल, तत्काल मवाद से भर जाता है घाव। आपने कुछ किया? आपने कुछ भी नहीं किया। लेकिन पता नहीं, पूरे शरीर से वे जीवाणु दौड़कर उस घाव के पास पहुंच जाते हैं। जिसको आप मवाद कहते है, वह मवाद नहीं है; वह उन जीवाणुओं की पर्त है, जो तत्काल उसे चारों तरफ से घेर लेते हैं, बाहर के जगत से सुरक्षा देने

के लिए। चमड़ी तो टूट गई है, दूसरी पर्त चाहिए। वह पर्त उसे घेर लेती है। और भीतर अव्यक्त तत्काल, जो घाव बन गया है, उसे ठीक करने में लग जाता है।

साधारण चिकित्सक सोचता है कि हम ठीक कर देते हैं बीमारी को। लेकिन जो असाधारण चिकित्सक हैं जगत में, जो जरा गहरे उतरे हैं मनुष्य की बीमारी में, वे कहते हैं कि नहीं, ज्यादा से ज्यादा हम थोड़ा—सा सहयोग पहुंचाते हैं; इतना भी कहना अतिशयोक्ति है। शायद इतना ही कहना उचित है कि हम थोड़ी—सी बाधाएं अलग करते हैं; बाकी हीलिंग फोर्स भीतर से आती है।

और अब तो मनोवैज्ञानिक निरंतर इतने गहरे उतर रहे हैं, वे कहते हैं कि अगर एक आदमी के भीतर जीने की इच्छा चली गई है, तो घाव भरना मुश्किल हो जाता है। अगर एक आदमी के भीतर से जीवन की इच्छा चली गई है, तो बीमारी को चिकित्सा ठीक नहीं कर पाती। क्योंकि अव्यक्त ने जीने की जो शक्ति थी, वह देनी बंद कर दी, वापस ले ली। बूढ़े आदमी के शरीर में कोई बुनियादी फर्क नहीं हो गए होते हैं। लेकिन अव्यक्त सिकुड़ने लगता है। वह शक्ति वापस लौटने लगती है। उतार शुरू हो गया।

अगर हम अपने भीतर थोड़ा—सा झांकें, तो हमें पता चलेगा कि हम जहां जी रहे हैं, वह शायद किसी एक बहुत बड़ी ऊर्जा का ऊपरी शिखर है। बस, उस शिखर से ही हम परिचित है, उसके पीछे हम। बिलकुल परिचित नहीं है। उसके पीछे अव्यक्त अभी भी मौजूद है। ' सभी व्यक्त घटनाओं के पीछे अव्यक्त मौजूद है। सभी दृश्य घटनाओं के पीछे अदृश्य मौजूद है। सभी चेतन घटनाओं के पीछे अचेतन मौजूद है। सभी दिखाई पड़ने वाले जगत और रूप के पीछे अरूप मौजूद है। जरा रूप की परत में गहरे उतरें।

कैसे उतरें? क्या करें?

दूसरे को भूलें। बहुत कठिन है। आंख बंद करें, तो भी दूसरा ही याद आता है। आंख बंद करें, तो भी दूसरा ही दिखाई पड़ता है। आंख बंद करें, तो भी दूसरे से ही मिलना होता रहता है। दूसरे से आब्सेस्ट हैं, दूसरे से रुग्ण हैं। दूसरा है कि पीछा छोड़ता ही नहीं; बस, चित्त में घूमता ही चला जाता है। यह जो दूसरे की भीतर भीड़ है, इसे विदा करें।

विदा करने का उपाय है, इस भीड़ के प्रति साक्षी का भाव करें। भीतर आंख बंद करके, वे जो दूसरों के प्रतिबिंब हैं, उनके साक्षी भर रह जाएं। देखते रहें, कुछ कहें मत। न पक्ष लें, न विपक्ष लें। न प्रेम करें, न घृणा करें। न किसी चित्र को कहें कि आओ, न किसी चित्र को कहें कि जाओ। बस बैठे रह जाएं और देखते रहें, देखते रहें, देखते रहें। धीरे—धीरे चित्र 'विदा होने लगते है। क्योंकि जिन मेहमानों को आतिथेय देखता ही रहे, वे मेहमान ज्यादा देर नहीं टिक सकते। मित्रता दिखाए तो भी टिक सकते हैं, शत्रुता दिखाए तो भी आ सकते हैं। कुछ भी न दिखाए.।

तो बुद्ध ने एक सूत्र दिया है, उपेक्षा, इडिफरेंस। बस, रह जाए, कुछ भी न दिखाए; न पक्ष, न विपक्ष। तो धीरे—धीरे दूसरे के चित्र बिखर जाते हैं। विचार खो जाते हैं।

और जिस क्षण भी दूसरे के चित्र नहीं होते, उसी क्षण स्वयं के होने का बोध पहली दफा उतरता है। जिस क्षण दूसरा आपके भीतर मौजूद नहीं है, उसी क्षण अचानक आपको अपनी प्रेजेंस का, अपने होने का अनुभव होता है; कहीं से कोई झरना फूट पड़ता है जैसे। जैसे पत्थर रखा था दूसरे का झरने के ऊपर, वह हट गया और झरने की धारा फूट पड़ी। आप पहली दफा अपनी प्रेजेंस को, अपने होने को, अपने अस्तित्व को अनुभव करते हैं और अव्यक्त में यात्रा शुरू हो जाती है। उसके आगे आपको कुछ नहीं करना है।

जैसे एक आदमी छत से कूद जाए। कूद जाए, तब तो ठीक है। कूदने के पहले पूछे कि मैं छत से कूद तो जाऊंगा, लेकिन फिर जमीन तक आने के लिए क्या करूंगा? तो हम कहेंगे, तुम कुछ। करना ही मत, बाकी काम जमीन कर लेगी। तुम छत से कूद भर जाना, बाकी काम जमीन पर छोड़ देना। वह बड़ी कुशल है। उसका ग्रेविटेशन है, उसकी अपनी कशिश है, अपना गुरुत्वाकर्षण है, वह तुम्हें खींच लेगी। तुम सिर्फ एक कदम छत से उठा लेना।

बस, दूसरे से एक कदम उठा लेना आप, बाकी अव्यक्त खींच लेगा। उसका अपना ग्रेविटेशन है; उससे बड़ा कोई ग्रेविटेशन नहीं है, उससे बड़ी कोई कशिश नहीं है। वह खींच लेगा। लेकिन हम दूसरे को पकड़े हैं। वह दूसरे को पकड़े होने की वजह से, दूसरे के साथ हम इतने जोर से चिपके हुए हैं कि वह द्वार ही नहीं खुल पाता, जहां से अव्यक्त हमें पुकार ले और खींच ले और बुला ले और अपने में डुबा ले।

और एक बार अव्यक्त में डूबकर लौटे, तो फिर दूसरे में भी वही दिखाई पड़ेगा, जो स्वयं में दिखाई पड़ा है। क्योंकि दूसरे को हम वहीं तक जानते हैं, जितना हम स्वयं को जानते हैं। जिस दिन आपको अपने भीतर अव्यक्त दिखाई पड़ जाएगा, वह इटरनल एबिस, वह अंतहीन खाई अव्यक्त की अपने भीतर मुंह खोलकर दिखाई पड़ जाएगी, उस दिन प्रत्येक आंख में और प्रत्येक चेहरे में वही अव्यक्त दिखाई पड़ना शुरू हो जाएगा। फिर पत्ते में और फूल में और आकाश में, सब तरफ उस अव्यक्त की मौजूदगी अनुभव होने लगती है।

लेकिन यात्रा का पहला कदम स्वयं के भीतर है। उपेक्षा या साक्षी या कोई भी नाम दें, अवेयरनेस, कुछ भी नाम दें— दूसरे के जो चित्र भीतर हैं, दूसरे के जो प्रतिबिंब भीतर हैं, उनके प्रति होश से भर जाएं और कुछ मत करें, वे गिर जाते हैं। कुछ किया कि वे पकड़ जाते है। कुछ मत करें और अचानक आप पाएंगे कि घटना घट गई और आप अव्यक्त में उतर गए।

कृष्ण उसी अव्यक्त की बात कर रहे हैं। वह पहले भी था, बाद में भी है, अभी भी है। सिर्फ व्यक्त से ढंका है। जरा व्यक्त की परत के नीचे जाएं और वह प्रकट हो जाता है।

प्रश्न :
भगवान श्री, हम अगर जीने की इच्छा छोड़ दें, तो क्या अव्यक्त का सिकुड़ना शुरू होता है? या अव्यक्त का सिकुड़ना शुरू होता है, इसके प्रभाव से हम जीने की इच्छा खो बैठते हैं? प्रश्न यह है कि आरंभ कहां से होता है? क्या पारस्परिक असर नहीं होता?

जीवन की इच्छा हम छोड़ दें तो अव्यक्त सिकुड़ना शुरू हो जाता है, या अव्यक्त सिकुड़ना शुरू हो जाता है, इसलिए हम जीवन की इच्छा छोड़ देते है—ये अगर दो घटनाएं होतीं, तो मैं कोई उत्तर दे पाता। ये दो घटनाएं नहीं हैं; यह साइमलटेनियस, युगपत घटना है। अव्यक्त का सिकुड़ना और हमारा जीने की इच्छा छोड़ देना, एक ही घटना है। हमारा जीने की इच्छा छोड़ देना और अव्यक्त का सिकुड़ना भी एक ही घटना है। क्योंकि हम अव्यक्त से पृथक नहीं हैं, हम उससे अन्य नहीं हैं, हम उससे दूसरे नहीं हैं। यह एक ही चीज है।

हां, हमें सबसे पहले जो पता चलता है, उसमें फर्क हो सकता है। अस्तित्व में दोनों एक चीज हैं; पता चलने में फर्क हो सकता है। एक ' आदमी को पहले पता चल सकता है कि मेरी जीवन की इच्छा मरती जाती है। एक आदमी को पता चल सकता है कि मेरी तो इच्छा कोई मरी नहीं, लेकिन भीतर कुछ सिकुड़ना शुरू हो गया है। यह आदमियों पर निर्भर करेगा कि उनकी कहां से शुरुआत होगी।

अगर कोई आदमी निरंतर अहंकार में ही जीया है, तो उसकी। प्रतीति और होगी। और कोई आदमी निरंतर निरहंकार में जीया है, तो उसकी प्रतीति और होगी। वह प्रतीति अहंकार के अस्तित्व पर निर्भर करेगी, घटना के अस्तित्व पर नहीं। घटना तो एक ही है। घटना एक ही है। वे घटनाएं दो नहीं हैं। लेकिन हम तो अहंकार में ही जीते हैं। इसलिए साधारणत: जब जीवन सिकुड़ना शुरू होता है, अस्तित्व जब डूबना शुरू होता है, तो हमें ऐसा ही लगता है.।

बूढ़े आदमी कहते हुए सुने जाते हैं कि अब जीने की कोई इच्छा न रही। अब जीना नहीं चाहते। अब तो मौत ही आ जाए तो अच्छा है। लेकिन अभी भी वे यह कह रहे हैं कि अब जीने की कोई इच्छा न रही, जैसे कि अपनी इच्छा से अब तक जीते थे। लेकिन सब चीजों को अपने से बांधकर देखा है, तो इसको भी अपने से ही बांधकर वे देखेंगे।

हमारी स्थिति करीब—करीब ऐसी ही है। मैने सुना है कि जगन्नाथ की रथ—यात्रा चल रही है। हजारों लोग रथ को नमस्कार कर रहे हैं। एक कुत्ता भी रथ के आगे हो लिया। उस कुत्ते की अकड़ देखते ही बनती है। ठीक कारण है। सभी उसको नमस्कार कर रहे है! जो भी सामने आता है, एकदम चरणों में गिर जाता है। सामने जो भी आ जाता है,

चरणों में गिर जाता है। उस कुत्ते की अकड़ बढ़ती चली जा रही है। फिर पीछे लौटकर देखता है, तो पता चलता है कि सामने ही नहीं स्वागत हो रहा है, पीछे भी रथ चल रहा है। स्वभावत: जिस कुत्ते का इतना स्वागत हो रहा हो, उसके पीछे रथ चलना ही चाहिए। यह रथ कुत्ते के पीछे चल रहा है! ये लोग कुत्ते को नमस्कार कर रहे है।

हमारा अहंकार करीब—करीब जीवन की घटनाओं और पीछे अव्यक्त के चलने वाले रथ के बीच में, कुत्ते की हालत में होता है। सब नमस्कार इस मै को होते हैं; सब पीछे से घटने वाली घटनाएं इस मै को होती है। लेकिन कौन इस कुत्ते को समझाए? कैसे समझाए?

इस पर निर्भर करेगा कि आपने पूरे जीवन को कैसे लिया है। जब आपको भूख लगी है, तब आपने सोचा है कि मैं भूख लगा रहा हूं या अव्यक्त से भूख आ रही है! जब आप बच्चे से जवान हो गए है, तो आपने समझा कि मैं जवान हो गया हूं या अव्यक्त से जवानी आ रही है!

यह इंटरप्रिटेशन की बात है, यह व्याख्या की बात है। घटना तो वही है, जो हो रही है, वही हो रही है। लेकिन कुत्ता अपनी व्याख्या करने को तो स्वतंत्र है। रथ चल रहा है, नमस्कार रथ को की जा रही है, लेकिन कुत्ते को व्याख्या करने से तो नहीं रोक सकते कि नमस्कार मुझे हो रही है, रथ मेरे लिए चल रहा है!

आदमी जो व्याख्या कर रहा है, उसी से सभी कुछ अहंकार— केंद्रित हो जाता है। अन्यथा अहंकार को छोड़े, तो फिर दो बातें नहीं रह जातीं, एक ही बात रह जाती है, क्योंकि हम भी अव्यक्त के ही . हिस्से है। हम अगर अलग होते, तब उपाय भी था; हम भी अव्यक्त के ही हिस्से हैं। हम भी जो कर रहे हैं, वह भी अव्यक्त ही कर रहा है। हम भी जो सोच रहे हैं, वह भी अव्यक्त ही सोच रहा है। हम भी जो हो रहे हैं, वह भी अव्यक्त ही हो रहा है।

जिस दिन हमें ऐसा दिखाई पड़ेगा, उस दिन यह सवाल नहीं बनेगा। लेकिन अभी बनेगा, क्योंकि हमें लगता है, कुछ हम कर रहे हैं। कुछ हम कर रहे है, वह मनुष्य की व्याख्या है। उसी व्याख्या में अर्जुन उलझा है, इसलिए पीड़ित और परेज्ञान है। वह यह कह रहा है कि मै मारूं! इन सबको मैं काट डालूं! नहीं, ये सब मेरे हैं, मैं यह न करूंगा। इससे तो बेहतर है कि मैं भाग जाऊं। लेकिन भागना भी वही करेगा, मारना भी वही करेगा। वह कर्ता को नहीं छोड़ पाएगा, वह मैं की व्याख्या नहीं छोड़ पा रहा है।

कृष्ण अगर कुछ भी कह रहे हैं, तो इतना ही कह रहे हैं कि तू जो व्याख्या कर रहा है मैं के केंद्र से, वह केंद्र ही झूठा है, वह केंद्र कहीं है ही नहीं। उस केंद्र के ऊपर तू जो सब समर्पित कर रहा है, वहीं तेरी भूल हुई जा रही है।

लेकिन हमें सब चीजें दो में टूटी हुई दिखाई पड़ती हैं। यह श्वास मेरे भीतर आती है, फिर दूसरी श्वास बाहर जाती है। ये दो श्वासें नहीं हैं, एक श्वास है। कोई पूछ सकता है कि मै श्वास को बाहर निकालता हूं? इसलिए मुझे श्वास भीतर लेनी पड़ती है? या चूंकि मैं श्वास भीतर लेता हूं, इसलिए मुझे श्वास बाहर निकालनी पड़ती है? तो हम कहेंगे, भीतर आना और बाहर जाना एक ही श्वास के डोलने का फर्क है। एक ही श्वास है; वही भीतर आती है, वही बाहर जाती है।

असल में बाहर और भीतर भी दो चीजें नहीं है अव्यक्त में। बाहर और भीतर भी अव्यक्त में—बाहर और भीतर भी अव्यक्त में—एक ही चीज के दो छोर हैं। लेकिन जहां हम जी रहे हैं, मैनिफेस्टेड जगत में, व्यक्त में, जहां सब अनेक हो गया है, वहां सब भिन्न है, वहा सब अलग है। फिर उस अलग से हमारे सब सवाल उठते है।

बुद्ध के पास एक व्यक्ति आया है। और बहुत सवाल पूछता है। तो बुद्ध ने कहा, ऐसा कर, तू सवालों के उत्तर ही चाहता है? उसने कहा, उत्तर ही चाहता हूं। बुद्ध ने कहा, और कितने लोगों से तूने पूछा है? उसने कहा, मैं बहुत लोगों से पूछकर थक चुका हूं, अब आपके पास आया हूं। बुद्ध ने कहा, इतने लोगों से पूछकर तुझे उत्तर नहीं मिला, तो तुझे यह खयाल नहीं आता कि पूछने से उत्तर मिलेगा ही नहीं! उसने कहा कि नहीं, यह खयाल नहीं आया। मुझे तो इतना ही खयाल आता है कि अब और किसी से पूछें, अब और किसी से पूछें, अब और किसी से पूछें। बुद्ध ने कहा, तो कब तक तू पूछता रहेगा? मैं भी तुझे उत्तर दे दूं उसी तरह, जैसे दूसरों ने तुझे दिए थे? या कि तुझे सच ही उत्तर चाहिए। उसने कहा, मुझे सच ही उत्तर चाहिए।

तो बुद्ध ने कहा, फिर तू रुक जा; फिर तू सालभर पूछ ही मत। उसने कहा, बिना पूछे उत्तर कैसे मिलेगा? बुद्ध ने कहा, तू प्रश्न छोड़। सालभर बाद पूछना। सालभर पूछ ही मत, सालभर सोच ही मत, सालभर बात ही मत कर, सालभर मौन ही हो जा। उसने कहा, लेकिन इससे क्या होगा? यह, बुद्ध ने कहा, सालभर बाद ठीक इसी दिन पूछ लेना। जब बुद्ध ने उससे यह कहा कि ठीक इसी दिन पूछ लेना, तो एक भिक्षु वृक्ष के नीचे बैठा था, खिलखिलाकर हंसने लगा।

उस आदमी ने उस भिक्षु से पूछा, हंसते हैं आप, क्या बात है? हंसने की क्या बात है? उस भिक्षु ने कहा, पूछना हो तो अभी पूछ लेना, क्योंकि इसी धोखे में हम भी पड़े। हम साल बिता चुके हैं। जब सालभर बाद खुद ही जान लेते हैं, तो पूछने को बचता नहीं है। पूछना हो तो अभी पूछ लेना, नहीं तो फिर पूछ ही न पाओगे। ये बुद्ध बड़े धोखेबाज हैं। मै भी इसी धोखे में पड़ा और पीछे मुझे पता चला कि और लोग भी इस धोखे में पड़े हैं। बुद्ध ने कहा, मैं अपने वचन पर अडिग रहूंगा। अगर सालभर बाद तू पूछेगा, तो मैं उत्तर दूंगा। साल बीत गया। फिर वही दिन आ गया। और बुद्ध ने उस आदमी को कहा कि मित्र, अब खड़े हो जाओ और प्रश्न पूछ लो! वह हंसने लगा और उसने कहा कि जाने दें, बेकार की बात—चीत में कोई सार नहीं है। पर बुद्ध ने कहा, वायदा था मेरा, तो मैं तुम्हें याद दिलाए देता हूं। पीछे मत कहना कि मैंने धोखा दिया।

उसने कहा कि नहीं, आप उस दिन उत्तर देते तो ही धोखा होता। क्योंकि जब मैं चुप हुआ, तब मैंने देखा कि सारे प्रश्न विचार से निर्मित थे, क्योंकि विचार ने अस्तित्व को खंड—खंड में तोड़ा हुआ था। और अस्तित्व था अखंड। अब जब मैं भीतर निर्विचार हुआ, तो मैंने पाया कि सारे प्रश्न झूठे थे; क्योंकि अस्तित्व को तोड़कर खड़े किए गए थे।

उस अव्यक्त में, उस अखंड में सब प्रश्न गिर जाते है, लेकिन व्यक्त में सब प्रश्न उठते है। तो या तो हम प्रश्न पूछते रहें, तो जिंदगी दर्शनशास्त्र बन जाती है। और या हम भीतर उतरें, तो जिंदगी धर्म बन जाती है। और अधर्म धर्म के खिलाफ उतना नहीं है, जितनी फिलासफी है, जितना दर्शन है धर्म के खिलाफ। क्योंकि वह विचार, और विचार, और विचार में ले जाता है। और हर विचार चीजों को तोड़ता चला जाता है। आखिर में सब चीजें टूट जाती हैं; प्रश्न ही प्रश्न रह जाते हैं; कोई उत्तर नहीं बचता।

भीतर उतरें, वहां एक ही है, वहां दो नहीं हैं। और जहां दो नहीं हैं, वहा प्रश्न नहीं हो सकता। प्रश्न के लिए कम से कम दो का होना जरूरी है कम से कम। पूछा जा सके, इसलिए कम से कम दो का होना जरूरी है।

वह जो पहले था अव्यक्त, वह जो बाद में रह जाएगा अव्यक्त, वह अभी भी है। उसमें उतरना, उसमें डूबना ही मार्ग है।

देही नित्यमध्योऽहं देहे सर्वस्य भारत ।
तस्मात्सवार्णि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हीस ।।30।।

स्वधर्मीप चावेक्ष्य न विकीम्पतुमहर्सि ।
धम्यीद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽच्चरक्षम्रइयस्य न विद्यते ।।31।।

हे अर्जुन, यह आत्मा सब के शरीर में सदा ही अवध्य है, इसलिए संपूर्ण भूत प्राणियों के लिए तू शोक करने को योग्य नहीं है।

और अपने धर्म को देखकर भी तू भय करने को योग्य नहीं है, क्योंकि धर्मयुक्त युद्ध से बढ़कर दूसरा कोई कल्याणकारक कर्तव्य क्षत्रिय के लिए नहीं है।

कृष्ण अर्जुन को कहते हैं कि और सब बातें छोड़ भी दो, तो भी क्षत्रिय हो, और क्षत्रिय के लिए युद्ध से भागना श्रेयस्कर नहीं है।

इसे थोड़ा समझ लेना जरूरी है, कई कारणों से।

एक तो विगत पांच सौ वर्षों में, सभी मनुष्य समान हैं, इसकी बात इतनी प्रचारित की गई है कि कृष्ण की यह बात बहुत अजीब लगेगी, बहुत अजीब लगेगी, कि तुम क्षत्रिय हो। समाजवाद के जन्म के पहले, सारी पृथ्वी पर, उन सारे लोगों ने, जिन्होंने सोचा है और जीवन को जाना है, बिलकुल ही दूसरी उनकी धारणा थी। वह धारणा यह थी कि कोई भी व्यक्ति समान नहीं है। एक।

और दूसरी धारणा उस असमानता से ही बंधी हुई थी और वह यह थी कि व्यक्तियों के टाइप हैं, व्यक्तियों के विभिन्न प्रकार है। बहुत मोटे में, इस देश के मनीषियों ने चार प्रकार बांटे हुए थे। वे चार वर्ण थे। वर्ण की धारणा भी बुरी तरह, बुरी तरह निंदित हुई। इसलिए नहीं कि वर्ण का धारणा के पीछे कोई मनोवैज्ञानिक सत्य नहीं है, बल्कि इसलिए कि वर्ण की धारणा मानने वाले लोग अत्यंत नासमझ सिद्ध हुए। वर्ण की धारणा को प्रतिपादित जो आज लोग कर रहे हैं, अत्यंत प्रतिक्रियावादी और अवैज्ञानिक वर्ग के हैं। संग—साथ से सिद्धात तक मुसीबत में पड़ जाते है!

इसलिए आज बड़ी मुश्किल पड़ती है यह बात कि कृष्ण का यह कहना कि तू क्षत्रिय है। जिस दिन यह बात कही गई थी, उस दिन यह मनोवैज्ञानिक सत्य बहुत स्पष्ट था। अभी जैसे—जैसे पश्चिम में मनोविज्ञान की समझ बढ़ती है, वैसे—वैसे यह सत्य पुन: स्थापित होता जाता है। कार्ल गुस्ताव कं ने फिर आदमी को चार टाइप में बांटा है। और आज अगर पश्चिम में किसी आदमी की भी मनुष्य के मनस में गहरी से गहरी पैठ है, तो वह जुग की है। उसने फिर चार हिस्सों में बांट दिया है।

नहीं, आदमी एक ही टाइप के नहीं है। पश्चिम में जो मनोविज्ञान का जन्मदाता है फ्रायड, उसने तो मनोवैज्ञानिक आधार पर समाजवाद की खिलाफत की है। उसने कहा कि मैं कोई अर्थशास्त्री नहीं हूं लेकिन जितना ही मैं मनुष्य के मन को जानता हूं र उतना ही मैं कहता हूं कि मनुष्य असमान है। इनइक्यालिटी इज दि फैक्ट, और इक्यालिटी सिर्फ एक झूठी कहानी है, पुराणकथा है। समानता है नहीं; हो नहीं सकती; क्योंकि व्यक्ति—व्यक्ति बुनियाद में बहुत भिन्न हैं।

इन भिन्नताओं की अगर हम बहुत मोटी रूप—रेखा बांधें, तो इस मुल्क ने कृष्ण के समय तक बहुत मनोवैज्ञानिक सत्य को विकसित कर लिया था और हमने चार वर्ण बांटे थे। चार वर्णों में राज है। और जहा भी कभी मनुष्यों को बांटा गया है, वह चार से कम में नहीं बांटा गया है और चार से ज्यादा में भी नहीं बांटा गया; जिन्होंने भी बांटा है—इस मुल्क में ही नहीं, इस मुल्क के बाहर भी। कुछ कारण दिखाई पड़ता है। कुछ प्राकृतिक तथ्य मालूम होता है पीछे।

ब्राह्मण से अर्थ है ऐसा व्यक्ति, जिसके प्राणों का सारा समर्पण बौद्धिक है, इंटेलेक्यूअल है। जिसके प्राणों की सारी ऊर्जा बुद्धि में रूपांतरित होती है। जिसके जीवन की सारी खोज ज्ञान की खोज है। उसे प्रेम न मिले, चलेगा; उसे धन न मिले, चलेगा, उसे पद न मिले, चलेगा; लेकिन सत्य क्या है, इसके लिए वह सब समर्पित कर सकता है। पद, धन, सुख, सब खो सकता है। बस, एक लालसा, उसके प्राणों की ऊर्जा एक ही लालसा के इर्द—गिर्द जीती है, उसके भीतर एक ही दीया जल रहा है और वह दीया यह है कि ज्ञान कैसे मिले? इसको ब्राह्मण.।

आज पश्चिम में जो वैज्ञानिक हैं, वे ब्राह्मण हैं। आइंस्टीन को ब्राह्मण कहना चाहिए, लुई पाश्चर को ब्राह्मण कहना चाहिए। आज पश्चिम में तीन सौ वर्षों में जिन लोगों ने विज्ञान के सत्य की खोज में अपनी आहुति दी है, उनको ब्राह्मण कहना चाहिए।

दूसरा वर्ग है क्षत्रिय का। उसके लिए ज्ञान नहीं है उसकी आकांक्षा का स्रोत, उसकी आकांक्षा का स्रोत शक्ति है, पावर है। व्यक्ति हैं पृथ्वी पर, जिनका सारा जीवन शक्ति की ही खोज है। जैसे नीत्से, उसने किताब लिखी है, विल टु पावर। किताब लिखी है उसने कि जो असली नमक हैं आदमी के बीच—नीत्से कहता है—वे सभी शक्ति को पाने में आतुर हैं, शक्ति के उपासक हैं, वे सब शक्ति की खोज कर रहे हैं। इसलिए नीत्से ने कहा कि मैंने श्रेष्ठतम संगीत सुने है, लेकिन जब सड़क पर चलते हुए सैनिकों, के पैरों की आवाज और उनकी चमकती हुई संगीनें रोशनी में मुझे दिखाई पड़ती है, इतना सुंदर संगीत मैंने कोई नहीं सुना।

ब्राह्मण को यह आदमी पागल मालूम पड़ेगा, संगीन की चमकती हुई धार में कहीं कोई संगीत होता है? कि सिपाहियों के एक साथ पड़ते हुए कदमों की चाप में कोई संगीत होता है? संगीत तो होता है कंटेंप्लेशन में, चितना में, आकाश के नीचे वृक्ष के पास बैठकर तारों के संबंध में सोचने में। संगीत तो होता है संगीत में, काव्य में। संगीत तो होता है खोज में सत्य की। यह पागल है नीत्से!

लेकिन नीत्से किसी एक वर्ग के लिए ठीक—ठीक बात कह रहा है। किसी के लिए तारों में कोई अर्थ नहीं होता। किसी के लिए एक ही अर्थ होता है, एक ही संकल्प होता है कि शक्ति और ऊर्जा के ऊपरी शिखर पर वह कैसे उठ जाए। उसे हमने कहा था क्षत्रिय।

कृष्ण पहचानते हैं अर्जुन को भलीभांति। वह टाइप क्षत्रिय का है। अभी बातें वह ब्राह्मण जैसी कर रहा है। इसमें कनफ्यूब्द हो जाएगा। इसमें उपद्रव में पड़ जाएगा। उसके व्यक्तित्व का पूरा का पूरा बनाव, स्ट्रक्चर, उसके मनस की एनाटामी, उसके मनस का सारा ढांचा क्षत्रिय का है। तलवार ही उसकी आत्मा है; वही उसकी रौनक है, वही उसका संगीत है। अगर परमात्मा की झलक उसे कहीं से भी मिलनी है, तो वह तलवार की चमक से मिलनी है। उसके लिए कोई और रास्ता नहीं है।

तो उससे वे कह रहे हैं, तू क्षत्रिय है; अगर और सब बातें भी छोड़, तो तुझसे कहता हूं कि तू क्षत्रिय है। और तुझसे मैं कहता हूं कि क्षत्रिय से यहां—वहां होकर तू सिर्फ दीन—हीन हो जाएगा, यहां—वहां होकर तू सिर्फ ग्लानि को उपलब्ध होगा, यहां—वहां होकर तू सिर्फ अपने प्रति अपराधी हो जाएगा।

और ध्यान रहे, अपने प्रति अपराध जगत में बड़े से बड़ा अपराध है। क्योंकि जो अपने प्रति अपराधी हो जाता है, वह फिर सबके प्रति अपराधी हो जाता है। सिर्फ वे ही लोग दूसरे के साथ अपराध नहीं करते, जो अपने साथ अपराध नहीं करते। और कृष्ण की भाषा में समझें, तो अपने साथ सबसे बड़ा अपराध यही है कि जो उस व्यक्ति का मौलिक स्वर है जीवन का, वह उससे च्यूत हो जाए, उससे हट जाए।

तीसरा एक वर्ग और है, जिसको तलवार में सिर्फ भय के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं दिखाई पड़ेगा; संगीत तो कभी नहीं, सिर्फ भय दिखाई पड़ेगा। जिसे ज्ञान की खोज नासमझी मालूम पड़ेगी कि सिरफिरों का काम है। तो तीसरा वर्ग है, जिसके लिए धन महिमा है। जिसके लिए धन ही सब कुछ है। धन के आस—पास ही जिसके जीवन की सारी व्यवस्था निर्मित होती है। अगर वैसे आदमी को मोक्ष की भी बात करनी हो, तो उसके लिए मोक्ष भी धन के रूप में ही दिखाई पड़ सकता है। अगर वह भगवान का भी चिंतन करेगा, तो भगवान को लक्ष्मीनारायण बनाए बिना नहीं रह सकता। इसमें उसका कोई कसूर नहीं है। सिर्फ फैक्ट, सिर्फ तथ्य की बात कर रहा हूं मै। ऐसा है। और ऐसा आदमी अगर छिपाए अपने को, तो व्यर्थ ही कठिनाई में पड़ेगा। अगर वह दबाए अपने को, तो कठिनाई में पड़ेगा। उसके लिए जीवन की जो परम अनुभूति का द्वार है, वह शायद धन की खोज से ही खुलने वाला है। इसलिए और कहीं से खुलने वाला नहीं है।

अब एक राकफेलर या एक मार्गन या एक टाटा, ये कोई छोटे लोग नहीं है। कोई कारण नहीं है इनके छोटे होने का। ये अपने वर्ग में वैसे ही श्रेष्ठ हैं, जैसे कोई याज्ञवल्क, जैसे कोई पतंजलि, जैसे कोई अर्जुन अपने वर्गों में होंगे। इसमें कोई तुलना नहीं है, कोई कंपेरिजन नहीं है।

वर्ण की जो धारणा है, वह तुलनात्मक नहीं है, वह सिर्फ तथ्यात्मक है। जिस दिन वर्ण की धारणा तुलनात्मक हुई कि कौन ऊपर, कौन नीचे, उस दिन वर्ण की वैज्ञानिकता चली गई और वर्ण एक सामाजिक अनाचार बन गया। जिस दिन वर्ण में तुलना पैदा हुई—कि क्षत्रिय ऊपर, कि ब्राह्मण ऊपर, कि वैश्य ऊपर, कि शूद्र ऊपर, कि कौन नीचे, कि कौन पीछे—जिस दिन वर्ण का शोषण किया गया, वर्ण के वैज्ञानिक सिद्धात को जिस दिन सामाजिक शोषण की आधारशिला में रखा गया, उस दिन से वर्ण की धारणा अनाचार हो गई।

सभी सिद्धातों का अनाचार हो सकता है, किसी भी सिद्धात का शोषण हो सकता है। वर्ण की धारणा का भी शोषण हुआ। और अब इस मुल्क में जो वर्ण की धारणा के समर्थक हैं, वे उस वर्ण की वैज्ञानिकता के समर्थक नहीं हैं। उस

वर्ण के आधार पर जो शोषण खड़ा है, उसके समर्थक हैं। उनकी वजह से वे तो डूबेंगे ही, वर्ण का एक बहुत वैज्ञानिक सिद्धात भी डूब सकता है।

एक चौथा वर्ग भी है, जिसे धन से भी प्रयोजन नहीं है, शक्ति से भी अर्थ नहीं है, ज्ञान की भी कोई बात नहीं है, लेकिन जिसका जीवन कहीं बहुत गहरे में सेवा और सर्विस के आस—पास घूमता है। जो अगर अपने को कहीं समर्पित कर पाए और किसी की सेवा कर पाए, तो फुलफिलमेंट को, आप्तता को उपलब्ध हो सकता है।

ये जो चार वर्ग हैं, इनमें कोई नीचे—ऊपर नहीं है। ऐसे चार मोटे विभाजन है। और कृष्ण की पूरी साइकोलाजी, कृष्ण का पूरा का पूरा मनोविज्ञान इस बात पर खड़ा है कि प्रत्येक व्यक्ति को परमात्मा तक पहुंचने का जो मार्ग है, वह उसके स्वधर्म से गुजरता है। स्वधर्म का मतलब हिंदू नहीं, स्वधर्म का मतलब मुसलमान नहीं, स्वधर्म का मतलब जैन नहीं; स्वधर्म का मतलब, उस व्यक्ति का जो वर्ण है। और वर्ण का जन्म से कोई संबंध नहीं है।

लेकिन संबंध निर्मित हो गया। हो जाने के पीछे बहुत कारण हैं, वह मैं बात करूंगा। हो जाने के पीछे कारण थे, वैज्ञानिक ही कारण थे। संबंध था नहीं जन्म के साथ वर्ण का, इसलिए फ्लुइडिटी थी,। और कोई विश्वामित्र यहां से वहां हो भी जाता था। संभावना थी कि एक वर्ण से दूसरे वर्ण में यात्रा हो जाए। लेकिन जैसे ही यह सिद्धात खयाल में आ गया और इस सिद्धात की परम प्रामाणिकता, सिद्ध हो गई कि प्रत्येक व्यक्ति अपने वर्ण से ही, अपने स्वधर्म से ही सत्य को उपलब्ध हो सकता है, तो एक बहुत जरूरी बात पैदा हो गई और वह यह कि यह पता कैसे चले कि कौन व्यक्ति किस वर्ण का है! अगर जन्म से तय न हो, तो शायद ऐसा भी हो सकता है कि एक आदमी जीवनभर कोशिश करे और पता ही न लगा पाए कि वह किस वर्ण का है। उसका क्या है झुकाव, वह क्या होने को पैदा हुआ है—पता ही कैसे चले? तो फिर सुगम यह हो सकता है कि अगर जन्म से कुछ निश्चय किया जा सके।

लेकिन जन्म से निश्चय किया कैसे जा सके न कोई आदमी किसी के घर में पैदा हो गया, इससे तय हो जाएगा? कोई आदमी किसी के घर में पैदा हो गया, ब्राह्मण के घर में, तो ब्राह्मण हो जाएगा?

जरूरी नहीं है। लेकिन बहुत संभावना है। प्रोबेबिलिटी ज्यादा है। और उस प्रोबेबिलिटी को बढ़ाने के लिए, सटेंन करने के लिए बहुत से प्रयोग किए गए। बड़े से बड़ा प्रयोग यह था कि ब्राह्मण को एक सुनिश्चित जीवन व्यवस्था दी गई, एक डिसिप्लिन दी गई। यह डिसिप्लिन इसलिए दी गई कि इस आदमी को या इस स्त्री को जो नई आत्मा अपने गर्भ की तरह चुनेगी, तो उस आत्मा को बहुत स्पष्ट हो जाना चाहिए कि वह उसके टाइप से मेल खाता है कि नहीं खाता है।

इसलिए मैंने परसों आपसे कहा कि वर्णसंकर होने के डर से नहीं, क्योंकि वर्णसंकर से तो बहुत ही विकसित व्यक्तित्व पैदा हो सकते हैं, लेकिन दो जातियों में शादी न हो, उसका कारण बहुत दूसरा था। उसका कुल कारण इतना था कि हम प्रत्येक वर्ण को एक। स्पष्ट फार्म, एक रूप दे देना चाहते थे। और प्रत्येक वर्ण को इतना स्पष्ट ढांचा दे देना चाहते थे कि आत्माएं, जो चुनाव करती हैं अपने नए जन्म के लिए, उनके लिए एकदम सुगम व्यवस्था हो जाए। फिर भी भूल—चूक हो जाती थी। इतने बड़े समाज में बहुत वैज्ञानिक प्रयोग भी भूल—चूक ले आता है। तो कभी किसी.।

अब एक पिता और एक मां, जिनके दोनों के जीवन की खोज ज्ञान रही है, निश्चित ही ये जिस गर्भ को निर्मित करेंगे, वह गर्भ किसी ज्ञान की खोजी आत्मा के लिए सुगमतम होगा। इसलिए बहुत संभावना है कि ब्राह्मण के घर में ब्राह्मण का टाइप पैदा हो। संभावना है, निश्चय नहीं है। भूल—चूक हो सकती है। इसलिए भूल—चूक के लिए तरलता थी, थोड़ी यात्रा हो सकती थी।

इन चार हिस्सों में जो स्टैरटिफिकेशन किया गया समाज का, चार हिस्सों में तोड़ दिया गया, ये चार हिस्से नीचे—ऊपर की धारणा से बहुत बाद में भरे। पहले तो एक बहुत वैज्ञानिक, एक बहुत मनोवैज्ञानिक प्रयोग था, जो इनके बीच किया गया। ताकि आदमी पहचान सके कि उसके जीवन का मौलिक, उसके जीवन का मौलिक पैशन, उसके जीवन की मौलिक वासना क्या है। क्योंकि वह उसी वासना से यात्रा करके निर्वासना तक पहुंच सकता है। कृष्ण अर्जुन को कह रहे हैं कि तू क्षत्रिय है। और सब बातें छोड़ दे, तो भी मैं तुझे कहता हूं कि तेरे लिए यही उचित है, तू लड़ने से मत भाग। तू लड़। तू लड़ ही सकता है। तेरा सारा व्यक्तित्व ही योद्धा। का व्यक्तित्व है। तू हाथ में किताब लेकर नहीं बैठ सकता। हाथ में किताब रहेगी, लेकिन तेरे प्राणों तक किताब नहीं पहुंच सकती। तू सेवा करने की फिक्र में पड़ जाए

कि सेवक हो जाऊं, लोगों के पैर दबाऊं, तो तेरे हाथ पैर दबाते रहेंगे, तेरी आत्मा वहा नहीं होग़ी। तू धन कमाने में लग जा, तो तू रुपये इकट्ठा करता रहेगा, लेकिन वे रुपये तेरे लिए निर्मूल्य होंगे; उनका मूल्य नहीं होगा।

मूल्य रुपये में नहीं होता, मूल्य व्यक्ति के वर्ण में होता है। उससे रुपये में आता है। मूल्य रुपए में नहीं होता, मूल्य व्यक्ति के वर्ण में होता है। अगर वैश्य के हाथ में रुपया आ जाए तो उसमें मूल्य होता है, क्षत्रिय के हाथ में रुपये का इतना ही मूल्य हो सकता है कि वह तलवार खरीद ले, इससे ज्यादा मूल्य नहीं होता। इंट्रिंजिक वैल्यू नहीं होती रुपये की क्षत्रिय के हाथ में, ही, एक्सटर्नल वैल्यू हो सकती है कि एक तलवार खरीद ले।

एक ब्राह्मण के हाथ में रुपये का कोई मतलब नहीं होता, कोई मतलब ही नहीं होता; ठीकरा होता है। इसलिए ब्राह्मण रुपये को ठीकरा कहते रहेंगे। वैश्य की समझ में कभी नहीं आता कि बात क्या है! यह हो नहीं सकता। उसे तो दिखाई पड़ेगा कि इस जगत में कुछ चल नहीं सकता, पैसा ही सब कुछ चला रहा है।

इसलिए अब तक दुनिया में जो भी व्यवस्थाएं बनी हैं, वे भी गहरे में वर्ण की ही व्यवस्थाओं के रूपांतरण हैं। अब तक पृथ्वी पर कोई भी व्यवस्था ब्राह्मण की नहीं बन सकी। संभावना है आगे। आज जो पश्चिम में बहुत बुद्धिमान लोग मेरिटोक्रेसी की बात कर रहे हैं, गुणतंत्र की, तो कभी ऐसा वक्त आ सकता है कि जगत में ब्राह्मण की व्यवस्था हो। शायद वैज्ञानिक इतने प्रभावशाली हो जाएंगे आने वाले पचास सालों में कि राजनीतिज्ञों को अपने आप जगह खाली कर देनी पड़े। अभी भी बहुत प्रभावशाली हो गए हैं। अभी भी एक वैज्ञानिक के ऊपर निर्भर करता है बड़े से बड़ा युद्ध, कि कौन जीतेगा।

अगर आइंस्टीन जर्मनी में होता, तो जीत का हिसाब और होता। आइंस्टीन अमेरिका में था, तो हिसाब और हो गया। हिटलर को अगर कोई भी भूल—चूक पछताती होगी अभी भी नर्क में, तो एक ही भूल—चूक पछताती होगी कि इस यहूदी को भाग जाने दिया, वही गलती हो गई। यह एक आदमी पर इतना बड़ा निर्णय होगा।

ज्ञान निर्णायक होता जा रहा है! क्षत्रिय दुनिया पर हुकूमत कर चुके। वैश्य आज अमेरिका में हुकूमत कर रहे हैं। शूद्र आज रूस और चीन में हुकूमत कर रहे हैं। शूद्र यानी प्रोलिटेरिएट, शूद्र यानी वह जिसने अब तक सेवा की थी, लेकिन बहुत सेवा कर चुका, अब वह कहता है, हटो! अब हम मालकियत भी करना चाहते हैं। लेकिन ब्राह्मण के हाथ में भी कभी आ सकती है व्यवस्था। संभावना बढ़ती जाती है। क्योंकि क्षत्रियों के हाथ में जब तक व्यवस्था रही, सिवाय तलवार चलने के कुछ भी नहीं हुआ। अमेरिका के हाथ में, जब से वैश्यों के हाथ में धन की सत्ता आई है, तब से सारी दुनिया में सिवाय धन के और कोई चीज विचारणीय नहीं रही। और जब से प्रोलिटेरिएट, सेवक, श्रमिक के हाथ में व्यवस्था आई है, तब से वह दुनिया में एरिस्टोक्रेसी ने जो भी श्रेष्ठ पैदा किया था, उसे नष्ट करने में लगा है।

चीन में जिसे वे सांस्कृतिक क्रांति कह रहे है, वह सांस्कृतिक क्रांति नहीं, सांस्कृतिक हत्या है। जो भी संस्कृति ने पैदा किया है चीन की, उस सबको नष्ट करने में लगे है। बुद्ध की मूर्तियां तोड़ी जा रही हैं, मंदिर गिराए जा रहे हैं! विहार, मस्जिदें, गुरुद्वारे गिराए जा रहे हैं। कीमती चित्र, बहुमूल्य पेंटिंग्स, वे सब बुर्जुआ हो गई हैं, उन सबमें आग लगाई जा रही है।

यह जो कृष्ण उसको कह रहे हैं अर्जुन को, वह एक बहुत बड़ी मनोवैज्ञानिक बात कह रहे हैं। वे यह कह रहे हैं कि तू अन्यथा हो नहीं सकता। और इसको भी थोड़ा समझ लेना जरूरी है कि क्यों नहीं हो सकता। अगर अर्जुन चाहे, तो क्यों ब्राह्मण 'नहीं हो सकता? अगर बुद्ध क्षत्रिय घर में पैदा होकर ब्राह्मण हो सकते हैं और बुद्ध जैसा ब्राह्मण नहीं हुआ। अगर महावीर क्षत्रिय घर में पैदा होकर ब्राह्मण हो सकते है, और महावीर जैसा ब्राह्मण नहीं हुआ। जैनों के तो चौबीस तीर्थंकर ही क्षत्रिय हैं, लेकिन क्षत्रिय का कोई काम नहीं किया, शुद्धतम ब्राह्मण की यात्रा पर निकले। तो क्यों कृष्ण जोर देते हैं कि अर्जुन, तू क्षत्रिय ही हो सकता है। जब बुद्ध हो सकते हैं, महावीर हो सकते हैं, पार्श्व हो सकते हैं, नेमिनाथ हो सकते है—नेमिनाथ तो कृष्ण के चचेरे भाई ही थे—वे जब हो सकते हैं, तो इस अर्जुन का क्या कसूर है कि नहीं हो सकता! तो थोड़ी—सी बातें समझ लेनी जरूरी है।

आज मनोविज्ञान कहता है कि तीन साल की उम्र तक आदमी जितना सीखता है, वह पचास प्रतिशत है पूरे जीवन के ज्ञान का, फिफ्टी परसेंट। बाकी शेष जीवन में वह पचास प्रतिशत और सीखेगा। पचास प्रतिशत तीन साल में सीख

लेता है; शेष पचास प्रतिशत आने वाले जीवन में सीखेगा। और वह जो पचास प्रतिशत उसने तीन वर्ष की उम्र तक सीखा है, उसे बदलना करीब—करीब असंभव है। बाद में जो पचास प्रतिशत सीखेगा, उसे बदलना कभी भी संभव है। तीन वर्ष तक मानना चाहिए, समझना चाहिए कि व्यक्ति का मन करीब—करीब प्रौढ़ हो जाता है भीतर।

अगर बुद्ध और महावीर क्षत्रिय घरों में पैदा होकर भी ब्राह्मण की, यात्रा पर निकल जाते हैं, तो उनके लक्षण बहुत बचपन से साफ हैं। बुद्ध को एक प्रतियोगिता में खड़ा किया गया कि हरिण को निशाना लगाएं, तो वे इनकार कर देते हैं। इस अर्जुन ने कभी ऐसा नहीं किया। यह अब तक निशाना ही लगाता रहा है; इसकी सारी यात्रा अब तक की क्षत्रिय की ही यात्रा है। आज अचानक, आकस्मिक, एक क्षण में यह कहने लगा कि नहीं। तो इसके पास जो व्यक्तित्व का ढांचा है, वह पूरा का पूरा ढांचा ऐसा नहीं है कि बदला जा सके। उसकी सारी तैयारी, सारा शिक्षण, सारी कंडीशनिंग बहुत व्यवस्था; से क्षत्रिय के लिए हुई है। आज अचानक वह भाग नहीं सकता।

कृष्ण उससे कहते हैं कि तू जो छोड़ने की बात कर रहा है, वह उपाय नहीं है कोई; कठिन है। तू क्षत्रिय है, यह जान। और अब शेष यात्रा तेरी क्षत्रिय की तरह गौरव के ढंग से पूरी हो सकती है, या तू अगौरव को उपलब्ध हो सकता है और कुछ भी नहीं। तो वे कहते है कि या तो तू यश को उपलब्ध हो सकता है क्षत्रिय की यात्रा से, या सिर्फ अपयश में गिर सकता है।

यद्दच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम् ।
सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीद्दशम् ।।32।।

हे पार्थ, अपने आप प्राप्त हुए और खुले हुए स्वर्ग के द्वाररूप हम प्रकार के युद्ध को भाग्यवान क्षत्रिय लोग ही पाते हैं।

इस दूसरे सूत्र में भी वे क्षत्रिय की धन्यता की स्मृति दिला रहे हैं। क्षत्रिय की क्या धन्यता है। क्षत्रिय के लिए क्या ब्लिसफुल है। क्षत्रिय के लिए क्या फुलफिलमेंट है। वह कैसे फुलफिल्ड हो सकता है। वह कैसे आप्तकाम हो सकता है, कैसे भर सकता है पूरा।

युद्ध ही उसके लिए अवसर है। वहीं वह कसौटी पर है। वहीं चुनौती है, वहीं संघर्ष है, वहा मौका है जांच का; उसके क्षत्रिय होने की अग्निपरीक्षा है। कृष्ण कह रहे हैं कि जैसे स्वर्ग और नर्क के द्वार पर कोई खड़ा हो और चुनाव हाथ में हो। युद्ध में उतरता है तू चुनौती स्वीकार करता है, तो स्वर्ग का यश तेरा है। भागता है, पलायन करता है, पीठ दिखाता है, तो नर्क का अपयश तेरा है। यहां स्वर्ग और नर्क किसी भौगोलिक स्थान के लिए सूचक नहीं हैं। क्षत्रिय का स्वर्ग ही यही है।

मैंने सुना है कि अकबर के दरबार मे दो राजपूत गए। युवा, जवान, अभी मूंछ की रेखाएं आनी शुरू हुई है। दोनों अकबर के सामने गए और उन्होंने कहा कि हम दो बहादुर है और सेवा में उपस्थित है; कोई काम! तो अकबर ने कहा, बहादुर हो, इसका प्रमाण क्या है? उन दोनों ने एक—दूसरे की तरफ देखा, हंसे। तलवारें बाहर निकल गईं। अकबर ने कहा, यह क्या करते हो? लेकिन जब तक वह कहे, तब तक तलवारें चमक गईं, कौंध गई। एक क्षण में तो खून के फव्वारे बह रहे थे; एक—दूसरे की छाती में तलवारें घुस गई थीं। खून के फव्वारों से चेहरे भर गए थे। और वे दोनों हंस रहे थे और उन्होंने कहा, प्रमाण मिला? क्योंकि क्षत्रिय सिर्फ एक ही प्रमाण दे सकता है कि मौत मुस्कुराहट से ली जा

सकती है। तो हम सर्टिफिकेट लिखवाकर कहां से लाएं? सर्टिफिकेट कोई और हो भी नहीं सकता बहादुरी का।

अकबर तो घबड़ा गया, उसने अपनी आत्मकथा में लिखवाया है कि इतना मै कभी नहीं घबड़ाया था। मानसिंह को उसने बुलाया और कहा कि क्या, यह मामला क्या है? मैंने तो ऐसे ही पूछा था! तो मानसिंह ने कहा, क्षत्रिय से दोबारा ऐसे ही मत पूछना। क्योंकि जिंदगी हम हाथ पर लेकर चलते हैं। क्षत्रिय का मतलब यह है कि मौत एक क्षण के लिए भी विचारणीय नहीं है। लेकिन अकबर ने लिखवाया है कि हैरानी तो मुझे यह थी कि मरते वक्त वे बड़े प्रसन्न थे; उनके चेहरों पर मुस्कुराहट थी। तो मानसिंह से उसने पूछा कि यह मुस्कुराहट, मरने के बाद भी! तो मानसिंह ने कहा, क्षत्रिय जो हो सकता था, हो गया। फूल खिल गया। तृप्त! कोई यह नहीं कह सका कि क्षत्रिय नहीं! बात खतम हो गई।

वह जो कृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि स्वर्ग और नर्क, जिसके सामने दोनों के द्वार खुले हों, ऐसा क्षत्रिय के लिए युद्ध का क्षण है। वहीं है कसौटी उसकी, वहीं है परीक्षा उसकी। जिसकी तू प्रतीक्षा करता था, जिसके लिए तू तैयार हुआ आज तक, जिसकी तूने अभीप्सा और प्रार्थना की, जो तूने चाहा, वह आज पूरा होने को है। और ऐन वक्त पर तू भाग जाने की बात करता है! अपने हाथ से नर्क में गिरने की बात करता है!

क्षत्रिय के व्यक्तित्व को उसकी पहचान कहां है? उस मौके में, उस अवसर में, जहां वह जिंदगी को दाव पर ऐसे लगाता है, जैसे जिंदगी कुछ भी नहीं है। इसके लिए ही उसकी सारी तैयारी है। इसकी ही उसकी प्यास भी है। यह मौका चूकता है वह, तो सदा के लिए तलवार से धार उतर जाएगी; फिर तलवार जंग खाएगी, फिर आंसू ही रह जाएंगे।

अवसर है प्रत्येक चीज का। जानी का भी अवसर है, धन के यात्री का भी अवसर है, सेवा के खोजी का भी अवसर है। अवसर जो चूक जाता है, वह पछताता है। और जब व्यक्तित्व को उभरने का आखिरी अवसर हो, जैसा अर्जुन के सामने है, शायद ऐसा अवसर दोबारा नहीं होगा, तो कृष्ण कहते हैं, उचित ही है कि स्वर्ग और नर्क के द्वार पर खड़ा है। चुनाव तेरे हाथ में है। स्मरण कर कि तू कौन है! स्मरण कर कि तूने अब तक क्या चाहा है! स्मरण कर कि यह पूरी जिंदगी, सुबह से सांझ, सांझ से सुबह, तूने किस चीज की तैयारी की है! अब वह तलवार की चमक का मौका आया है और त जंग देने की इच्छा रखता है?

अथ चेत्त्वीममं धर्म्यं संग्रामं न कीरष्यद्सि ।
ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पायमवाप्स्यसि ।।33।।

अकीर्तिं चापि भूतानि कथविष्यीन्त तेऽव्ययाम् ।
संभावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते ।।34।।

और यदि तू इस धर्मयुक्त संग्राम को नहीं करेगा, तो स्वधर्म को और कीर्ति को खोकर पाप को प्राप्त होगा।

और सब लोग तेरी बहुत काल तक रहने वाली अपकीर्ति को भी कथन करेंगे और वह अपकीर्ति माननीय पुरुष के लिए मरण से भी अधिक बुरी होती है।

अभय क्षत्रिय की आत्मा है, फियरलेसनेस। कैसा भी भय न पकड़े उसके मन को, कैसे भी भय के झंझावात उसे कंपाएं न। कैसा भी भय हो, मृत्यु का ही सही, तो भी उसके भीतर हलन—चलन न हो। एक छोटी—सी कहानी आपसे कहूं, उससे खयाल आ सकेगा।

सुना है मैंने कि चीन में एक बहुत बड़ा धनुर्धर हुआ। उसने जाकर सम्राट को कहा कि अब मुझे जीतने वाला कोई भी नहीं है। तो मैं घोषणा करना चाहता हूं राज्य में कि कोई प्रतियोगिता करता हो, तो मैं तैयार हूं। और अगर कोई प्रतियोगी न निकले—या कोई प्रतियोगी निकले, तो मैं स्पर्धा के लिए आ गया हूं। और मैं यह चाहता हूं कि अगर कोई प्रतियोगी न निकले या प्रतियोगी हार जाए, तो मुझे पूरे देश का श्रेष्ठतम धनुर्धर स्वीकार किया जाए। सम्राट ने कहा, इसके पहले कि तुम मुझसे कुछ बात करो, मेरा जो पहरेदार है, उससे मिल लो। पहरेदार ने कहा कि धनुर्धर तुम बड़े हो, लेकिन एक व्यक्ति को मैं जानता हूं कुछ दिन उसके पास रह आओ। कहीं ऐसा न हो कि नाहक अपयश मिले।

उस व्यक्ति की खोज करता हुआ वह धनुर्धर जंगल पहुंचा। जब उस व्यक्ति के पास उसने देखा और रहा, तो पता चला कि वह तो कुछ भी नहीं जानता था।

तीन वर्ष उसके पास सीखा। सब सीख गया। तब उसके मन में हुआ कि अब तो मैं सब सीख गया, लेकिन फिर भी अब मै किस मुंह से राजा के पास जाऊं, क्योंकि मेरा गुरु तो कम से कम मुझसे ज्यादा जानता ही है। नहीं ज्यादा, तो मेरे बराबर जानता ही है। तो अच्छा यह हो कि मैं गुरु की हत्या करके चला जाऊं।

अक्सर गुरुओं की हत्या शिष्य ही करते हैं—अक्सर। यह बिलकुल स्वाभाविक नियम से चलता है।

तो गुरु सुबह—सुबह लकड़ियां बीनने गया है जंगल में; वह एक वृक्ष की ओट में खड़ा हो गया। धनुर्धर है, दूर से उसने तीर मारा, गुरु लकड़ियां लिए चला आ रहा है। लेकिन अचानक सब उलटा हो गया। वह तीर पहुंचा, उस गुरु ने देखा, एक लकड़ी सिर के बंडल से निकालकर उस तीर को मारी। वह तीर उलटा लौटा और जाकर उस युवक की छाती में छिद गया।

गुरु ने आकर तीर निकाला और कहा कि इतना भर मैंने बचा रखा था। शिष्यों से गुरु को थोड़ा—सा बचा रखना पड़ता है। लेकिन तुम नाहक.। मुझसे कह देते। मैं गांव आऊंगा नहीं। और शिष्य से प्रतियोगिता करने आऊंगा? पागल हुए हो? तुम जाओ, घोषणा करो, तुम मुझे मरा हुआ समझो। तुम्हारे निमित्त अब किसी को सिखाऊंगा भी नहीं। और मेरे आने की कोई बात ही नहीं; तुमसे प्रतियोगिता करूंगा! जाओ, लेकिन जाने के पहले ध्यान रखना कि मेरा गुरु अभी जिंदा है। और मैं कुछ भी नहीं जानता। उसके पास दस—पांच साल रहकर जो थोड़े—बहुत कंकड़—पत्थर बीन लिए थे, वही। इसलिए उसके दर्शन एक बार कर लो।

बड़ा घबड़ाया वह आदमी। महत्वाकांक्षी के लिए धैर्य बिलकुल नहीं होता। तीन साल इसके साथ खराब हुए। लेकिन अब बिना उस आदमी को देखे जा भी नहीं सकता। तो गया पहाड़ों में खोजता हुआ, और ऊंचे शिखर पर। उसके गुरु ने कहा था कि मेरा का गुरु है, कमर उसकी झुक गई है, तुम पहचान लोगे। जब वह उसके ' पास पहुंचा, तो उसने जाकर देखा कि एक अत्यंत वृद्ध आदमी, सौ के ऊपर पार हो गया होगा, कमर झुक गई है, बिलकुल गोल हो गया है। सोचा कि यह आदमी!

उसने कहा कि क्या आप ही वे धनुर्धर हैं, जिनके पास मुझे भेजा गया है? तो उस के ने आंखें उठाईं, उसकी पलकों के बाल भी बहुत बड़े हो गए थे, बामुश्किल आंखें खोलकर उसने देखा और ' कहा, ही, ठीक है। कैसे आए हो? क्या चाहते हो? उसने कहा, मैं भी एक धनुर्धर हूं।

तो वह का हंसने लगा। उसने कहा, अभी धनुष—बाण साथ। लिए हो! कैसे धनुर्धर हो? क्योंकि जब कोई कला में पूर्ण हो जाता है, तो यह व्यर्थ का बोझ नहीं ढोता है। जब वीणा बजाने में। वीणावादक पूर्ण हो जाता है, तो वीणा तोड़ देता है, क्योंकि फिर वीणा पूर्ण संगीत के मार्ग पर बाधा बन जाती है। और जब धनुर्धर पूरा हो जाता है, तो धनुष—बाण किसलिए? ये तो सिर्फ अभ्यास के लिए थे।

बहुत घबड़ाया वह धनुर्धर। उसने कहा, सिर्फ अभ्यास ही! तो आगे और कौन—सी धनुर्विद्या है? तो उस बूढ़े ने कहा, आओ मेरे साथ। वह का उसे लेकर पहाड़ के कगार पर चला गया, जहा नीचे हजारों फीट का गड्ढ है।

वह का आगे बढ़ने लगा, वह धनुर्धर पीछे खड़ा रह गया। वह का आगे बढ़ा, उसके पैरों की अंगुलियां पत्थर के बाहर झांकने लगीं। उसकी झुकी हुई गरदन खाई में झांकने लगी। उसने कहा कि बेटे, और पास आओ; इतने दूर क्यों रुक गए हो! उसने कहा, लेकिन वहा तो मुझे बहुत डर लगता है। आप वहा खड़े ही कैसे हैं? मेरी आंखें भरोसा नहीं करतीं, क्योंकि वहां तो जरा श्वास भी चूक जाए.।

तो उस के ने कहा, जब अभी मन इतना कंपता है, तो निशाना तुम्हारा अचूक नहीं हो सकता। और जहां भय है, वहां क्षत्रिय कभी पैदा नहीं होता है। उस के ने कहा, जहां भय है, वहा क्षत्रिय कभी पैदा नहीं होता है। वहा धनुर्धर के जन्म की संभावना नहीं है। भयभीत किस चीज से हो? और अगर भय है, तो मन में कंपन होंगे ही, कितने ही सूक्ष्म हों, कितने ही सूक्ष्म हों, मन में कंपन होंगे ही। तो कृष्ण अर्जुन को कह रहे हैं, तू और भयभीत त्र तो कल जो तेरा सम्मान करते थे, कल जिनके बीच तेरे यश की चर्चा थी, कल जो तेरा गुणगान गाते थे, कल तक जो तेरी तरफ देखते थे कि तू एक जीवंत प्रतीक है क्षत्रिय का, वे सब हंसेंगे। अपयश की चर्चा हो जाएगी, कीर्ति को धब्बा लगेगा। तू यह क्या कर रहा है। तेरा निज—धर्म है जो, तेरी तैयारी है जिसके लिए, जिसके विपरीत होकर तू जी भी न सकेगा; कीर्ति के शिखर से गिरते ही, तू श्वास भी न ले सकेगा।

और ठीक कहते हैं कृष्ण। अर्जुन जी नहीं सकता। क्षत्रिय मर सकता है गौरव से, लेकिन पलायन करके गौरव से जी नहीं सकता। वह क्षत्रिय होने की संभावना में ही नहीं है। तो कृष्ण कहते हैं, जो तेरी संभावना है, उससे विपरीत जाकर तू पछताएगा, उससे विपरीत जाकर तू सब खो देगा।

इस संबंध में दो—तीन बातें अंत में आपसे कहूं, जो खयाल ले लेने जैसी हैं; उनसे बड़ी भ्रांति होती है, अगर वे खयाल में न रहें। लग सकता है कि कृष्ण क्या युद्धखोर हैं, वार—मांगर हैं! लग सकता है कि युद्ध की ऐसी उत्तेजना! युद्ध के लिए ऐसा प्रोत्साहन! तो भूल हो जाएगी, अगर आपने ऐसा सोचा।

कृष्ण सिर्फ एक मनस—शास्त्री हैं। अर्जुन की पोटेशियलिटी को समझते हैं; अर्जुन क्या हो सकता है, यह समझते हैं; और अर्जुन क्या होकर तृप्त हो सकता है, यह समझते हैं। और अर्जुन क्या होने से चूक जाए, तो सदा के लिए दुख और विषाद को उपलब्ध हो जाएगा और अपने ही हाथ नर्क में, आत्मघाती हो जाएगा, यह भी समझते हैं।

अब आज सारी दुनिया में मनस—शास्त्र के सामने जो गहरे से गहरा सवाल है, वह यही है कि हम प्रत्येक बच्चे को उसकी संभावना, उसकी पोटेशियलिटी बता सकें, वह क्या हो सकता है। सब अस्तव्यस्त है।

रवींद्रनाथ के पिता रवींद्रनाथ को कवि नहीं बनाना चाहते हैं। कोई भी पिता नहीं बनाना चाहेगा। मैंने तो सुना है कि महाकवि निराला के घर एक रात एक छोटी—सी बैठक चलती थी। सुमित्रानंदन पंत थे, महादेवी थीं, मैथिलीशरण गुप्त थे, और कुछ लोग थे। मैथिलीशरण गुप्त बहुत दिन बाद आए थे। तो जैसी उनकी आदत थी, निराला के भोजन बनाने वाले महाराज को भी पूछा कि ठीक तो हो? सब ठीक तो है? उसने कहा, और तो सब ठीक है महाराज, लेकिन मेरा लड़का, किसी तरह उसे ठीक करें, बर्बाद हुआ जा रहा है। तो मैथिलीशरण ने पूछा, क्या हुआ तुम्हारे लड़के को ' क्या गुंडा—बदमाश हो गया? चोर—लफंगा हो गया? उसने कहा कि नहीं—नहीं, मेरा लड़का कवि हो गया है।

इन सब कवियों पर क्या गुजरी होगी, पता नहीं।

रवींद्रनाथ के पिता भी नहीं चाहते थे कि कवि हो जाए लड़का। सब चेष्टा की, पढ़ाया, लिखाया, पूरा परिवार बड़ा ही धुआंधार पीछे लगा था—इंजीनियर बन जाए, डाक्टर बन जाए, प्रोफेसर बन। जाए—कुछ भी बन जाए, काम का बन जाए।

रवींद्रनाथ के घर में एक किताब रखी है, जोड़ासाको भवन में। बड़ा परिवार था, बहुत बच्चे थे, सौ लोग थे घर में। हर बच्चे के जन्मदिन पर उस किताब में उस बच्चे के संबंध में घर के सब बड़े—बूढ़े भविष्यवाणियां लिखते थे। उस किताब में रवींद्रनाथ के सारे भाई—बहन—काफी थे, दर्जनभर—सबके संबंध में बहुत अच्छी बातें लिखी हैं। रवींद्रनाथ के संबंध में किसी ने अच्छी बात नहीं लिखी है। रवींद्रनाथ की मां ने खुद लिखा है कि रवि से हमें कोई आशा नहीं है। सब लड़के बड़े होनहार हैं; कोई प्रथम आता है, कोई गोल्ड मेड़ल लाता है, कोई युनिवर्सिटी में चमकता है। यह लड़का बिलकुल गैर—चमक का है।

लेकिन आज आप नाम भी नहीं बता सकते कि रवींद्रनाथ के उन सब चमकदार भाइयों के नाम क्या है! वे अचानक कहीं खो गए।

मनोविज्ञान इस समय बहुत व्यस्त है कि यह जो जगत इतना दुखी मालूम पड़ रहा है, इसका बहुत बुनियादी कारण जो है, वह डिसप्लेसमेंट है। हर आदमी जो हो सकता है, वह नहीं हो पा रहा है। वह कहीं और लगा दिया गया है। एक चमार है, वह प्रधानमंत्री हो गया है। जिसे प्रधानमंत्री होना चाहिए, वह कहीं जूते बेच रहा है। सब अस्तव्यस्त है। किसी को भी पता भी तो नहीं है कि वह क्या हो सकता है! धक्के हैं, बिलकुल एक्सिडेंटल है जैसे सब, सांयोगिक है जैसे सब। बाप को एक सनक सवार है कि लड़के को इंजीनियर होना चाहिए, तो इंजीनियर होना चाहिए। अब बाप की सनक से लड़के का कृया लेना—देना! होना था तो बाप को हो जाना चाहिए था। लेकिन बाप को सनक सवार है, बेटे को इंजीनियर होना चाहिए। फिर बाप भी क्या कर सकता है, उसे कुछ भी तो पता नहीं है।

इसलिए आज सारी दुनिया में मनोवैज्ञानिक इस बात के लिए आतुर हैं कि प्रत्येक बच्चे की पोटेशियलिटी की खोज ही मनुष्यता के लिए मार्ग बन सकती है।

वह जो कृष्ण कह रहे हैं, वह युद्ध की बात नहीं कह रहे हैं, भूलकर भी मत समझ लेना यह। इससे बड़ी भ्रांति पैदा होती है। कृष्ण जब यह कह रहे हैं, तो यह बात स्पेसिफिकली, विशेष रूप से अर्जुन के टाइप के लिए निवेदित है। यह बात, अर्जुन की जो संभावना है, उस संभावना के लिए उत्प्रेरित है। यह बात हर किसी के लिए नहीं है। यह हर कोई के लिए नहीं है।

लेकिन इतने बड़े मनोविज्ञान की समझ खो गई। महावीर ने अहिंसा की बात कही। वह कुछ लोगों के लिए सार्थक है, अगर पूरे मुल्क को पकड़ ले तो खतरा है। कृष्ण ने हिंसा की बात कही। वह अर्जुन के लिए सार्थक है, और कुछ लोगों के लिए बिलकुल सार्थक है, पूरे मुल्क को पकड़ ले तो खतरा है।

लेकिन भूल निरंतर हो जाती है। वह निरंतर भूल यह हो जाती है कि हम प्रत्येक सत्य को जनरलाइज कर देते है; उसको सामान्य नियम बना देते हैं। कोई सत्य व्यक्त जगत में सामान्य नियम नहीं है। अव्यक्त जगत की बात छोड़े, व्यक्त जगत में, मैनिफेस्टेड जगत में सभी सत्य सशर्त हैं, उनके पीछे शर्त है।

ध्यान रखेंगे पूरे समय कि अर्जुन से कही जा रही है यह बात, एक पोटेंशियल क्षत्रिय से, जिसके जीवन में कोई और स्वर नहीं रहा है, न हो सकता है। उसकी आत्मा जो हो सकती है, कृष्ण उसके पीछे बिलकुल लाठी लेकर पड गए हैं, कि तू वही हो जा, जो तू हो सकता है। वह भाग रहा है। वह बचाव कर रहा है, वह डर रहा है, वह भयभीत हो रहा है, वह पच्चीस तर्क खोज रहा है।

कृष्ण युद्धखोर नहीं हैं। कृष्ण अर्जुन से कह रहे हैं यह। और। आप भूलकर भी यह मत समझ लेना कि सबके लिए, अर्जुन से कहा गया सत्य, सत्य है। ऐसा भूलकर मत समझ लेना।

हां, एक ही बात सत्य है उसमें, जो जनरलाइज की जा सकती है; और वह यह है कि प्रत्येक की संभावना ही उसका सत्य है। इससे अगर कोई भी बात निकालनी हो, तो इतनी ही निकलती है कि प्रत्येक की उसकी निज—संभावना ही उसके लिए सत्य है।

गीता की इस किताब को अगर महावीर पढ़ें, तो भी पढ़कर महावीर महावीर ही होंगे, अर्जुन नहीं हो जाएंगे। क्योंकि वे राज समझ जाएंगे कि मेरी पोटेशियलिटी क्या है, वही मेरी यात्रा है। इस किताब को बुद्ध पढ़ें, तो दिक्कत नहीं आएगी जरा भी। वे कहेंगे, बिलकुल ठीक, मैं अपनी यात्रा पर जाता हूं? जो मैं हो सकता हूं।

प्रत्येक को जाना है अपनी यात्रा पर, जो वह हो सकता है। और प्रत्येक को खोज लेना है व्यक्त जगत में कि मेरे होने की क्या संभावना है। गीता का संदेश इतना ही है, युद्धखोरी का नहीं है। लेकिन भ्रांति हुई है गीता को पढ़कर। युद्धखोर को लगता है कि बिलकुल ठीक, होना चाहिए युद्ध। गैर—युद्धखोर को लगता है, बिलकुल गलत है, युद्ध करवाने की बात कर रहे हैं!

कृष्ण का युद्ध से लेना—देना ही नहीं है। जब मैं ऐसा कहूंगा, तो आपको जरा मुश्किल होगी, लेकिन मैं फिर पुनः—पुन: कहता हूं कृष्ण को युद्ध से लेना—देना नहीं है। कृष्ण एक मनोवैज्ञानिक सत्य कह रहे हैं। वे कह रहे हैं अर्जुन से, यह तेरा नक्शा है, यह तेरा बिल्ट—इन—प्रोसेस है। तू यह हो सकता है। इससे अन्यथा होने की चेष्टा में सिवाय अपयश, असफलता, आत्मघात के और कुछ भी नहीं है।

शेष कल सुबह बात करेंगे।

प्रवचन 11 : अर्जुन का जीवन शिखर—युद्ध के ही माध्यम से
ओशो – गीता-दर्शन – भाग एक
अध्याय—1-2 – प्रवचन 11 : अर्जुन का जीवन शिखर—युद्ध के ही माध्यम से

भयाद्रणादुयरतं मंस्यन्ते त्वां महारथाः।
येषां च त्वं बहुमतो भूत्वा यास्यसि लाघवम् ।।35।।

और जिनके लिए तू बहुत माननीय होकर भी अब तुच्छता को प्राप्त होगा, वे महारथी लोग तुझे भय के कारण युद्ध से उपराम हुआ मानेंगे।

अवाव्यवादांश्च बहून्यदिष्यन्ति तवाहिताः ।
निन्दन्तस्तव सामष्ठर्यं ततो दुःखतरं नु किम् ।।36।।

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः ।।37।।

तेरे बैरी तेरे सामर्थ्य की निंदा करते हुए बहुत से न कहने योग्य वचनों को कहेंगे। फिर उसमे अधिक दुख क्या होगा? इसलिए युद्ध करना तेरे लिए सब प्रकार से अच्छा है। क्योंकि या तो मरकर तू स्वर्ग को प्राप्त होगा, अथवा जीतकर पृथ्वी को भोगेगा। इससे हे अर्जुन, युद्ध के लिए निश्चर्य वाला होकर खड़ा हो।

कृष्ण की बात यदि यूनान के मनस्वी प्लेटो ने पढ़ी होती, तो सौ प्रतिशत स्वीकृति देता। प्लेटो से किसी ने पूछा, स्वर्ग क्या है? सुख क्या है? तो प्लेटो ने जो सुख की परिभाषा की है, वह समझने जैसी है। प्लेटो ने कहा, अंतस की निजता का बाहर के आचरण से जहां संगतिपूर्ण तालमेल है, वहीं सुख है; जहां अंतस की निजता का बाहर के आचरण से तालमेल है, अविरोध है, वहीं आनंद है। और प्लेटो ने कहा, व्यक्ति जो हो सकता है, जो उसके बीज में छिपा है, जिस दिन वही हो जाता है, उसी दिन स्वर्ग है।

कृष्ण अर्जुन से कह रहे हैं, क्षत्रिय होकर ही तेरा स्वर्ग है। उससे विचलित होकर तेरा कोई सुख नहीं है। तेरी जो निजता है, तेरी जो इडिविजुअलिटी है, जो तेरे भीतर का गुणधर्म है, जो तू भीतर से बीज लिए बैठा है, जो तू हो सकता है, वही होकर ही—अन्यथा नहीं—तू स्वर्ग को उपलब्ध होगा, तू सुख को उपलब्ध होगा, आनंद को अनुभव कर सकता है।

जीवन का आशीर्वाद, जीवन की प्रफुल्लता स्वयं के भीतर जो भी छिपा है, उसके पूरी तरह प्रकट हो जाने में है। जीवन का बड़े से बड़ा दुख, जीवन का बड़े से बड़ा नर्क एक ही है कि व्यक्ति वह न हो पाए, जो होने के लिए पैदा हुआ है; व्यक्ति वह न हो पाए, जो हो सकता था और अन्य मार्गों पर भटक जाए। स्वधर्म से भटक जाने के अतिरिक्त और कोई नर्क नहीं है। और स्वधर्म को उपलब्ध हो जाने के अतिरिक्त और कोई स्वर्ग नहीं है।

कृष्ण अर्जुन को कह रहे हैं कि इस दिखाई पड़ने वाले लोक में जिसे लोग सुख कहते हैं, वह तो तुझे मिलेगा ही; लेकिन न दिखाई पड़ने वाले लोक में...!

इसे भी थोड़ा समझ लेना जरूरी है कि परलोक से हमने जो अर्थ ले रखा है, वह सदा मृत्यु के बाद जो लोक है, उसका ले रखा है। हमने जो व्याख्या कर रखी है अपने मन में इस लोक की और उस लोक की, वह टेंपोरल है, टाइम में है। हमने सोच रखा है कि यह लोक खतम होता है, जहां हमारा जीवन समाप्त होता है, और परलोक शुरू होता है। ऐसा नहीं है।

यह लोक और परलोक साथ ही मौजूद हैं। टेंपोरल नहीं है, समय में उनका विभाजन नहीं है। बाहर जो हमें मिलता है, वह इहलोक है; भीतर जो हमें मिलता है, वह परलोक है। परलोक का केवल मतलब इतना ही है कि इस लोक के जो पार है, इस लोक के जो बियांड है—वह अभी भी है, इस वक्त भी है। जिसको जीसस ने किंगडम आफ गॉड कहा है, प्रभु का राज्य कहा है, उसे ही इस देश ने परलोक कहा है। परलोक का संबंध आपके जीवन के समाप्त होने से नहीं

है; परलोक का संबंध आपके दृश्य से अदृश्य में प्रवेश से है। वह आप अभी भी कर सकते हैं, और वह आप मृत्यु के बाद भी चाहें तो नहीं कर सकते हैं। चाहें तो मृत्यु के बाद भी इहलोक में ही घूमते रहें—इसी लोक में। और चाहें तो जीते—जी परलोक में प्रवेश कर जाएं।

वह आंतरिक—जहा समय और क्षेत्र मिट जाते हैं, जहां टाइम और स्पेस खो जाते हैं, जहां दृश्य खो जाते हैं और अदृश्य शुरू होता है—वह जो आंतरिकता का, वह जो भीतर का लोक है, वहां भी कृष्ण कहते हैं, स्वर्ग। लेकिन स्वर्ग से आप किसी परियों के देश की बात मत समझ लेना। स्वर्ग सिर्फ इनर हार्मनी का नाम है, जहां सब स्वर जीवन के संगीतपूर्ण हैं। और नर्क सिर्फ इनर, आंतरिक विसंगीत का नाम है, जहां सब स्वर एक—दूसरे के विरोध में खड़े हैं।

सार्त्र ने नर्क की परिभाषा में एक वचन कहा है। उसने कहा है कि मनुष्य के मन में नर्क उसी क्षण उत्पन्न हो जाता है, जिस क्षण उसके चित्त में दो बातें खड़ी हो जाती हैं। टु बी, व्हाट वन इज नाट एंड नाट टु बी, व्हाट वन इज—वह होने की इच्छा, जो कि मैं नहीं हूं; और वह नहीं होने की इच्छा, जो कि मैं हूं—इन दोनों के बीच में ही नर्क उपस्थित हो जाता है। सार्त्र भी कृष्ण से राजी होगा।

अर्जुन ऐसे ही नर्क में खड़ा हो गया है। जो है, वह न होने की इच्छा पैदा हुई है उसे, जो नहीं है, वह होने की इच्छा पैदा हुई है। वह एक ऐसे असंभव तनाव में खड़ा हो गया है। जिसमें प्रवेश तो बहुत आसान, लेकिनलौटना बहुत मुश्किल है।

जिंदगी में किसी भी चीज से लौटना बहुत मुश्किल है। जाना बहुत आसान है, लौटना सदा मुश्किल है। और स्वयं के धर्म से जाना बहुत आसान है, क्योंकि स्वधर्म से विपरीत जाना सदा उतार है। वहा हमें कुछ भी नहीं करना पड़ता, सिर्फ हम अपने को छोड़ दें, तो हम उतर जाते हैं। स्वधर्म को पाना चढ़ाव है। उतर जाना बहुत आसान है, चढ़ना बहुत कठिन हो जाता है।

पश्चिम का इस समय का एक बहुत कीमती मनोवैज्ञानिक अभी—अभी गुजरा है। उसका नाम था अब्राहम मैसलो। अब्राहम मैसलो के पूरे जीवन की खोज एक छोटे—से शब्द में समा जाती है। और वह शब्द है, पीक एक्सपीरिएंस। वह शब्द है, शिखर का अनुभव। अब्राहम मैसलो का कहना है कि व्यक्ति के जीवन में स्वर्ग का क्षण वही है, जो उसके व्यक्तित्व के शिखर का क्षण है। जिस क्षण कोई व्यक्ति जो हो सकता है, उसके होने के शिखर पर पहुंच जाता है, जिसके आगे कोई उपाय नहीं बचता, जिसके आगे कोई मार्ग नहीं बचता, जिसके आगे कोई ऊंचाई नहीं बचती, जब भी कोई व्यक्ति अपने भीतर के पीक को छू लेता है, तभी समाधि, एक्सटैसी अनुभव करता है।

निश्चित ही, जो पीक एक्सपीरिएंस अर्जुन के लिए होगा, वही पीक एक्सपीरिएंस बुद्ध के लिए नहीं हो सकता। जो पीक एक्सपीरिएंस, शिखर की अनुभूति बुद्ध की है, वही अनुभूति जीसस के लिए नहीं हो सकती।

लेकिन एक बात ध्यान रख लें, जब हम कहते हैं कि वही अनुभूति नहीं हो सकती, तो हमारा प्रयोजन व्यक्ति से है। अर्जुन और मार्ग से उस अनुभूति पर पहुंचेगा; वह क्षत्रिय है, वह क्षत्रिय के मार्ग से पहुंचेगा। हो सकता है, जब दो तलवारें खिंच जाएंगी, और जीवन और मृत्यु साथ—साथ खड़े हो जाएंगे, श्वास ठहर जाएगी और पलभर के लिए सब रुक जाएगा जगत, और पलभर के लिए निर्णय न रह जाएगा कि जीवन में अब एक पल और है—उस तलवार की धार पर, उस चुनौती के क्षण में अर्जुन अपनी पीक पर होगा, वह अपने क्षत्रिय होने के आखिरी शिखर पर होगा। जहां जीवन और मृत्यु विकल्प होंगे, जहां क्षण में सब तय होता होगा—उस डिसीसिव मोमेंट में वह अपने पूरे शिखर पर पहुंच जाएगा।

यह जो शिखर की अनुभूति है, बुद्ध को किसी और मार्ग से मिलेगी, महावीर को किसी और मार्ग से मिलेगी, मोहम्मद को किसी और मार्ग से मिलेगी। मार्ग भिन्न होंगे, लेकिन प्रत्येक व्यक्ति जब वह अपने शिखर पर पहुंचता है, तो शिखर की जो भीतरी अनुभूति है, वह एक होगी। है वह एक होगी।

इसलिए कृष्ण अर्जुन को कह रहे हैं, एक अवसर मिला है और अवसर बार—बार नहीं मिलते। खोए अवसरों के लिए कभी—कभी जन्मों प्रतीक्षा करनी पड़ती है।

मार्गन से किसी ने एक दिन पूछा—वह अमेरिका का बड़ा करोड़पति था, अरबपति था—उससे पूछा कि आपको जिंदगी में इतनी सफलता कैसे मिली? तो मार्गन ने कहा, मैंने कभी कोई अवसर नहीं खोया। जब भी अवसर आया, मैंने छलांग लगाई और उसे पकड़ा। अपने को खोने को मैं राजी रहा, लेकिन अवसर को खोने को राजी नहीं रहा।

उस आदमी ने पूछा, तो हम कैसे पहचानेंगे कि अवसर आ गया! और जब तक हम पहचानेंगे, तब तक कहीं ऐसा न हो कि अवसर निकल जाए! कहीं ऐसा न हो कि हम पहचानें और छलांग लगाएं, तब तक अवसर जा चुका हो! क्योंकि क्षण तो, क्षण नहीं रुकता। आया नहीं कि गया नहीं। पहचानते—पहचानते चला जाता है। तो आप कैसे पहचानते थे और छलांग लगाते थे?

मार्गन ने जो उत्तर दिया, वह बहुत हैरानी का है। मार्गन ने कहा। कि मैं कभी रुका ही नहीं; मैं छलांग लगाता ही रहा। अवसर आ। गया तो छलांग काम कर गई, अवसर नहीं आया तो भी मैं छलांग लगाता रहा। क्योंकि इतना मौका नहीं था कि मैं प्रतीक्षा करूं अवसर को पहचानूं, फिर छलांग लगाऊं। मैं छलांग लगाता ही रहा। अवसर का घोड़ा नीचे आ गया, तो हम सवार थे; लेकिन हमारी छलांग जारी थी, जब घोड़ा नहीं था, तब भी।

कृष्ण के लिए जो बड़ी से बड़ी चिंता अर्जुन की तरफ से दिखाई पड़ती है, वह यही दिखाई पड़ती है, एक विराट अवसर...। अर्जुन को महाभारत जैसा अवसर न मिले, तो अर्जुन का फूल खिल नहीं सकता। कोई छोटी—मोटी लड़ाई में नहीं खिल सकता उसका फूल। जहां जीत सुनिश्चित हो, वहां अर्जुन का फूल नहीं खिल सकता। जहां जीत पक्की हो, वहां अर्जुन का फूल नहीं खिल सकता। जहां जीत निश्चित हो, वहां अर्जुन का फूल नहीं खिल सकता। जहा जीत चिंता हो, जहां जीत अनिर्णीत हो, जहां हार की उतनी ही संभावना हो, जितनी जीत की है, तो ही उस चुनौती के दबाव में, उस चुनौती की पीड़ा में, उस चुनौती के प्रसव में अर्जुन का फूल खिल सकता है और अर्जुन अपने शिखर को छू सकता है।

इसलिए कृष्ण इतना आग्रह कर रहे हैं कि सब खो देगा! स्वर्ग का क्षण तुझे उपलब्ध हुआ है, उसे तू खो देगा—इस जगत में भी, उस जगत में भी। उस जगत का मतलब, मृत्यु के बाद नहीं—बाहर के जगत में भी, भीतर के भी जगत में।

और ध्यान रहे, बाहर के जगत में तभी स्वर्ग मिलता है, जब भीतर के जगत में स्वर्ग मिलता है। यह असंभव है कि भीतर के जगत में नर्क हो और बाहर के जगत में स्वर्ग मिल जाए। हौ, यह संभव है कि बाहर के जगत में नर्क हो, तो भी भीतर के जगत में स्वर्ग मिल जाए। और यह बड़े मजे की बात है कि अगर भीतर के जगत में स्वर्ग मिल जाए, तो बाहर का नर्क भी नर्क नहीं मालूम पड़ता है। और बाहर के जगत में स्वर्ग मिल जाए और भीतर के जगत में नर्क हो, तो बाहर का स्वर्ग भी स्वर्ग नहीं मालूम पड़ता है।

हम जीते हैं भीतर से, हमारे जीने के सारे गहरे आधार भीतर हैं। इसलिए जो भीतर है, वही बाहर फैल जाता है। भीतर सदा ही बाहर को जीत लेता है, ओवरपावर कर लेता है। इसलिए जब आपको बाहर नर्क दिखाई पड़े, तो बहुत खोज करना। पाएंगे कि भीतर नर्क है, बाहर सिर्फ रिफ्लेक्यान है, बाहर सिर्फ प्रतिफलन है। और जब बाहर स्वर्ग दिखाई पड़े, तब भी भीतर देखना। तो पाएंगे, भीतर स्वर्ग है, बाहर सिर्फ प्रतिफलन है।

इसलिए जो बुद्धिमान हैं, वे बाहर के नर्क को स्वर्ग बनाने में जीवन नष्ट नहीं कर देते। वे भीतर के नर्क को स्वर्ग बनाने का श्रम करते हैं। और एक बार भीतर का नर्क स्वर्ग बन जाए, तो बाहर कोई नर्क होता ही नहीं।

मैंने सुना है कि बक, इंग्लैंड का एक बहुत बड़ा विचारक था। वह ऐसे नास्तिक था, लेकिन चर्च जाता था। मित्रों ने कई बार उससे कहा भी कि तुम चर्च किसलिए जाते हो? क्योंकि तुम नास्तिक हो! ठीक ऐसी ही बात कभी डेविड ह्यूम से भी किसी ने पूछी थी। डेविड ह्यूम भी एक नास्तिक था, बड़े से बड़ा इस जगत में जो हुआ, कीमती से कीमती। वह भी लेकिन रविवार को चर्च जरूर जाता था। तो धम ने जो उत्तर दिया, वही बक ने भी उत्तर दिया था।

बक ने कहा कि चर्च में जो कहा जाता है, उसमें मेरा कोई विश्वास नहीं। लेकिन वह जो आदमी कहता है, उसकी आंखों में मैं झांकता हूं, तो मुझे लगता है कि वह आदमी किसी भीतरी विश्वास से कह रहा है। और सप्ताह में एक दिन

ऐसे आदमी की आंख में झांक लेना उचित है, जिसे भीतरी कोई स्वर्ग का अनुभव हो रहा है। वह जो कहता है, उसमें मुझे कोई भरोसा नहीं है कि वह आदमी जो कह रहा है, वह ठीक हो सकता है। उसके सिद्धांतों को मैं तर्कयुक्त नहीं मानता। लेकिन फिर भी सप्ताह में मैं एक ऐसे आदमी की आंख में झांक लेना चाहता हूं, जो भीतर आश्वस्त है। उसकी सुगंध!

यह बक ने एक दिन, चर्च में जो फकीर बोलता था, उससे पूछा कि मैं तुमसे पूछना चाहता हूं। उस दिन उसने बाइबिल के एक वचन की व्याख्या करते हुए कहा कि भले लोग, जो परमात्मा में विश्वास करते हैं, वे स्वर्ग को उपलब्ध होते हैं। बक ने उससे पूछा कि आप कहते हैं, भले लोग, जो परमात्मा में विश्वास करते हैं, वे स्वर्ग को उपलब्ध होते हैं। तो मैं पूछना चाहता हूं कि बुरे लोग, जो परमात्मा में विश्वास करते हैं, वे स्वर्ग को उपलब्ध होते हैं या नहीं? और यह भी पूछना चाहता हूं कि भले लोग, जो परमात्मा में विश्वास नहीं करते हैं, वे स्वर्ग को उपलब्ध होते हैं या नहीं?

वह फकीर साधारण फकीर नहीं था, ईमानदार आदमी था। उसने कहा, उत्तर देना मुश्किल है, जब तक कि मैं परमात्मा से न पूछ लूं। क्योंकि इसका मुझे कुछ भी पता नहीं। रुको, सात दिन मैं प्रार्थना करूं, फिर उत्तर दे सकता हूं। क्योंकि तुमने मुझे मुश्किल में डाल। दिया। अगर मै यह कहूं कि भले लोग, जो परमात्मा में विश्वास नहीं करते, नर्क जाते हैं, तो भलाई बेमानी हो जाती है, मीनिंगलेस हो जाती है। और अगर मैं यह कहूं कि भले लोग, जो परमात्मा में विश्वास नहीं करते हैं, वे भी स्वर्ग को उपलब्ध हो जाते हैं, तो परमात्मा बेमानी हो जाता है। उसमें विश्वास का कोई अर्थ नहीं रहता। तो रुको।

लेकिन वह फकीर सात दिन सो नहीं सका। सब तरह की प्रार्थनाएं कीं, लेकिन कोई उत्तर न मिला।

सातवां दिन आ गया। सुबह ही आठ बजे बक मौजूद हो जाएगा और पूछेगा कि बोलो! तो वह पांच बजे ही चर्च में चला गया, हाथ जोड़कर बैठकर प्रार्थना करता रहा। प्रार्थना करते—करते उसे नींद लग गई। उसने एक स्वप्न देखा। वही जो सात दिन से उसके प्राणों में चल रहा था, वही स्वप्न बन गया।

उसने स्वप्न देखा कि वह ट्रेन में बैठा हुआ है, तेजी से ट्रेन जा रही है। उसने लोगों से पूछा, यह ट्रेन कहां जा रही है? उन्होंने कहा, यह स्वर्ग जा रही है। उसने कहा, अच्छा हुआ; मैं देख ही लूं। सुकरात कहां है? आदमी अच्छा था, लेकिन ईश्वर में भरोसा नहीं था। वे सारे लोग कहां हैं? बुद्ध कहां हैं? आदमी अच्छे से अच्छा था, लेकिन ईश्वर की कभी बात नहीं की। महावीर कहां है? आदमी अच्छे से अच्छा था, लेकिन परमात्मा की जब भी किसी ने बात की, तो कह दिया कि नहीं है। ये कहां हैं?

स्वर्ग पहुंच गई ट्रेन। बड़ी निराशा हुई लेकिन स्वर्ग को देखकर। ऐसी आशा न थी। सब उजड़ा—उजड़ा मालूम पड़ता था। सब रूखा—रूखा मालूम पड़ता था। रौनक न थी। पूछा, यही स्वर्ग है न? लोगों ने कहा, यही स्वर्ग है। पूछा कि महावीर कहां? बुद्ध कहां? सुकरात कहा? बहुत खोज—बीन की, पता चला कि नहीं हैं। बहुत घुबडाया फकीर। स्टेशन भागा हुआ आया और कहा कि नर्क की गाड़ी?

नर्क की गाड़ी में बैठा और नर्क पहुंचा। लेकिन बड़ी मुश्किल में पड़ा। देखा कि बड़ी रौनक है। जैसी स्वर्ग में होने की आशा थी, ऐसी रौनक है। जैसी नर्क में उदासी होनी चाहिए थी, वैसी स्वर्ग में थी। बड़ी चिंता हुई उसे कि कुछ भूल—चूक तो नहीं हो रही है! स्टेशन पर उतरा, तो बड़ी ही रौनक है; रास्तों से निकला, तो बड़ा काम चल रहा है, बड़ा आनंद है; कहीं गीत है, कहीं कुछ है, कहीं कुछ है।

उसने पूछा कि सुकरात, महावीर, बुद्ध यहां हैं? उन्होंने कहा, यहां हैं। उसने कहा, लेकिन यह नर्क है! सुकरात नर्क में? तो जिस आदमी से उसने पूछा था, उसने कहा कि चलो, मैं तुम्हें सुकरात से मिला देता हूं। एक खेत में सुकरात गड्ढा खोद रहा था। उसने सुकरात से पूछा कि तुम सुकरात और यहां नर्क में? अच्छे आदमी और नर्क में? तो सुकरात हंसने लगा और उसने कहा, तुम अभी भी गलत व्याख्याएं किए जा रहे हो। तुम कहते हो कि अच्छा आदमी स्वर्ग में जाता है। हम कहते हैं, अच्छा आदमी जहां जाता है, वहां स्वर्ग आता है। तुम गलत ही बात—व्याख्या—अभी तक तुम अपनी बाइबिल से गलत व्याख्या किए जा रहे हो। हम कहते हैं, अच्छा आदमी जहा जाता है, वहां स्वर्ग आता है; बुरा आदमी जहां जाता है, वहां नर्क आता है।

अच्छे आदमी स्वर्ग में नहीं जाते। स्वर्ग कोई रेडीमेड जगह नहीं है कि वहां कोई चला गया। स्वर्ग अच्छे आदमी का निर्माण है। वह उसके भीतर जब अच्छा निर्मित हो जाता है, तो बाहर अच्छा फैल जाता है। वह अच्छे आदमी की छाया है; वह अच्छे आदमी की सुगंध है; वह अच्छे आदमी के प्राणों की वीणा से उठा संगीत है। नर्क कोई स्थान नहीं है; वह बुरे आदमी के जीवन से उठे विसंगीत का फैल जाना है; वह बुरे आदमी के भीतर से उठी दुर्गंधों का छा जाना है; वह बुरे आदमी के भीतर जो विक्षिप्तता है, उसका बाहर तक उतर आना है।

कृष्ण जब अर्जुन से कहते हैं कि स्वर्ग का क्षण है, उसे तू खो रहा है। तो एक ही बात ध्यान में रखनी है कि तेरे आंतरिक व्यक्तित्व के लिए जो शिखर अनुभव हो सकता है, उसका क्षण है, और तू उसे खो रहा है।

प्रश्न :
भगवान श्री, आपने बताया कि साधन में, मार्ग में भिन्न रहने पर भी बुद्ध, महावीर, रमण की भीतरी अनुभूति में भेद नहीं होता है। किंतु अभिव्यक्ति देखते हैं, तो एक—दूसरे से भिन्न और कभी—कभी विरूद्ध दिशा की मालूम होती है। जैसे कि शंकर का बद्ध से विरोध है। यह कैसे?

अनुभूति में तो कभी भेद नहीं होता, लेकिन अभिव्यक्ति में बहुत भेद होता है। और जो लोग अभिव्यक्ति को देखकर ही सोचते हैं, उन्हें विरोध भी दिखाई पड़ सकता है। साधारण नहीं, असाधारण दुश्मनी और शत्रुता दिखाई पड़ सकती है। क्योंकि अभिव्यक्ति अनुभूति से नहीं आती, अभिव्यक्ति व्यक्ति से आती है। इस फर्क को समझ लेना जरूरी है।

मैं एक बगीचे में जाऊं। फूल खिले हैं; पक्षी गीत गा रहे हैं; एक रुपया पड़ा है। अगर मैं रुपए का मोही हूं, तो मुझे फूल दिखाई नहीं पड़ेंगे। मुझे पक्षियों के गीत सुनाई पड़ते हुए भी सुनाई नहीं पड़ेंगे। सब खो जाएगा, रुपया ही दिखाई पड़ेगा, इस्फेटिकली मुझे रुपया ही दिखाई पड़ेगा। रुपया मेरी जेब में आ जाए, तो शायद पक्षी का गीत भी सुनाई पड़े।

लेकिन एक कवि प्रवेश कर गया है। उसे रुपया दिखाई ही नहीं पड़ेगा। जहां पक्षी गीत गा रहे हैं, वहां रुपया दिखाई पड़ जाए, तो वह आदमी कवि नहीं है। उसका सारा व्यक्तित्व पक्षी के गीतों की तरफ बह जाएगा। चित्रकार है, उसका सारा व्यक्तित्व रंगों के लिए बह जाएगा।

फिर वे एक ही बगीचे से होकर लौटें और गांव में आकर अगर हम उनसे पूछें कि क्या देखा? तो बगीचा एक था, जहां वे गए थे, लेकिन अभिव्यक्ति भिन्न होगी। अभिव्यक्ति में चुनाव होगा। जो जिसने देखा होगा या जो जिसको पकड़ा होगा या जो जिसको प्रकट कर सकता होगा, वह वैसे ही प्रकट करेगा।

मीरा भी उस जगत में गई है उस अनुभूति के, लेकिन लौटकर नाचने लगी। महावीर की नाचने की कल्पना भी नहीं कर सकते। सोच भी नहीं सकते, कि महावीर और नाचे। उनके व्यक्तित्व में नाचने की कोई जगह ही नहीं है। महावीर भी उस जगत से लौटे हैं, पर वे नाचते नहीं। उस जगत की जो खबर वे लाए हैं, वह खबर अपने ही ढंग से प्रकट करेंगे। उनकी खबर उनकी अहिंसा से प्रकट होनी शुरू होती है। उनके शील से, उनके चरित्र से, उनके उठने—बैठने से—छोटी—छोटी चीज से प्रकट होती है कि वे अद्वैत को जानकर लौटे हैं।

रात महावीर एक ही करवट सोते हैं, करवट नहीं बदलते। कोई पूछता है महावीर से कि आप रातभर एक ही करवट क्यों सोते हैं? तो वे कहते हैं कि कहीं करवट बदलूं और कोई कीड़ा—मकोड़ा दबकर दुख पाए। इसलिए एक ही करवट, दि लीस्ट जो पासिबल है, बिलकुल कम से कम जो संभव है, वह यह। एक करवट तो सोना ही पड़ेगा, तो एक करवट ही सोए रहते हैं। रातभर पैर भी नहीं हिलाते कि रात के अंधेरे में कोई दब जाए, कोई दुख पाए।

अब इस व्यक्ति की अद्वैत की जो अनुभूति है, वह अहिंसा से प्रकट हो रही है। यह यही कह रहा है कि एक ही है। क्योंकि जब तक कीड़ा—मकोड़ा मै ही नहीं हूं र तब तक उसके लिए इतनी चिंता पैदा नहीं होती। लेकिन यह महावीर का अपना ढंग है, यह उनके व्यक्तित्व से आ रहा है।

मीरा नाच रही है। उसने जो जाना है, वह उसके भीतर नाच की तरह अभिव्यक्त हो रहा है। वह नाच ही सकती है। वह जो खुशी, वह जो आनंद उसके भीतर भर गया है, अब कोई शब्द उसे प्रकट नहीं कर सकते। वह तो उसके घुंघरुओं से प्रकट होगा। वह उसी अद्वैत को, पद—घुंघरू—बौध खबर लाएगी।

अब अगर हम महावीर और मीरा को आमने —सामने करें, तो हम कहेंगे, इनकी अनुभूतियां अलग होनी चाहिए। कहां बजता। हुआ शर, कहा रात भी करवट न लेता हुआ आदमी! कहां नाचती हुई मीरा के न मालूम कितने पैर पृथ्वी पर पड़े और कहां महावीर। कि एक—एक पैर को सम्हालकर रखते हैं, फूंककर रखते हैं। वर्षा आ जाती है तो चलते नहीं, जमीन गीली हो तो पैर नहीं उठाते, कि कहीं कोई कीड़ा न दब जाए। और कहां नाचते हुए पैर मीरा के! बड़ा विपरीत है। महावीर कहेंगे, बहुत हिंसा हुई जा रही है। मीरा कहेगी, नाच ही नहीं रहे, तो कहां जाना उसको! क्योंकि उसे जानकर जो नहीं नाचा, तो जाना ही कहां!

फिर शंकर जैसा व्यक्ति है, वह भी जानकर आता है वहा से 1 तो वह कहता है कि एक ब्रह्म ही सत्य है, बाकी सब माया है। बुद्ध जैसा व्यक्ति है, जो कहता है, कोई ब्रह्म—ब्रह्म नहीं है; कुछ नहीं है, शून्य है सब। बड़ी उलटी बातें कहते हैं, तो विवाद दिखाई पड़ता है, बड़ा विरोध दिखाई पड़ता है।

शंकर और बुद्ध से ज्यादा विरोधी आदमी खोजना मुश्किल है। क्योंकि एक कहता है, पाजिटिव है सब, विधायक है सब; और एक कहता है, निगेटिव है सब, नकारात्मक है सब। लेकिन वह भी व्यक्तित्व की एंफेसिस है, वह भी व्यक्तित्व का ही प्रभाव है। जो जानकर वे लौटे हैं, वह करीब—करीब ऐसा है जैसे कि कोई गिलास आधा भरा रखा हो और दो आदमी उसे देखकर आए हों। और एक आदमी आकर कहे कि गिलास आधा खाली है, और एक आदमी कहे कि झूठ, गिलास आधा भरा है। एक खाली पर जोर दे और एक भरे पर जोर दे। और विवाद निश्चित हो जाने वाला है, क्योंकि भरा और खाली बड़े विपरीत शब्द हैं। बिलकुल हो जाने वाला है।

बर्नार्ड शा के संबंध में मैंने सुना है कि वह अमेरिका गया बहुत—बहुत निमंत्रणों के बाद। तब वह कहता रहा कि अमेरिका बड़ा नासमझ, ईडियाटिक मुल्क है; मैं जाता ही नहीं, ऐसे मूढ़ों के बीच जाकर मैं क्या करूंगा। इधर वह गाली देता रहाg उधर अमेरिका में आकर्षण बढ़ता गया। जो गाली देता है, उसके प्रति आकर्षण तो बढ़ ही जाता है। बहुत निमंत्रण थे, तो बर्नार्ड शा गया। जिस जगह उसे उतारा गया, वहां इतना भीड़—भड़क्का हो गया और इतना खतरा था कि कोई झगड़ा न हो जाए, तो उसे चोरी से पहले ही दूसरी जगह उतारकर ले जाया गया।

और पहली ही सभा में वह बोला, तो उसने उपद्रव शुरू किया। वह पहला हो सभा में बोला, तो उसने कहा कि जहा तक मैं देख पा रहा हूं, यहां मौजूद कम से कम पचास प्रतिशत आदमी बिलकुल महामूर्ख हैं—सभा में उसने कहा—यहां मैं देख रहा हूं,। तो कम से कम फिफ्टी परसेंट आदमी बिलकुल महामूर्ख है। जो अध्यक्ष था, वह घबड़ा गया और लोग चिल्लाने लगे कि शर्म! शर्म! वापस लो अपने शब्द! अध्यक्ष ने कहा कि आप शुरू से ही उपद्रव की बात कह दिए। किसी तरह लोगों को समझाइए!

तो बर्नार्ड शा ने कहा कि नहीं! नहीं! मै क्या कहना चाह रहा था और मुझसे बड़ी गलती हो गई। मैं कह रहा था कि जहां तक दिखाई पड़ता है, यहां उपस्थित पचास प्रतिशत लोग बहुत बुद्धिमान मालूम पड़ते हैं। और लोगों ने तालियां बजाईं कि यह बात ठीक कही गई है। और बर्नार्ड शा ने झूककर अध्यक्ष से कहा कि कन्फर्म हो गया कि पचास परसेंट यहां बिलकुल गधे हैं।

लेकिन इन दो वक्तव्यों में बड़ा फर्क मालूम पड़ता है। बात वही है। शंकर और बुद्ध के बीच भी ऐसा ही मामला है।

बुद्ध को नकारात्मक शब्द प्रिय है। उसके कारण हैं उनके व्यक्तित्व में, साइकोलाजिकल कारण हैं। बुद्ध आ रहे हैं समृद्ध घर से, जहां सब पाजिटिव था। महल था, राज्य था, धन था, स्त्रियां थीं—सब था। इतना ज्यादा था सब कि बुद्ध के लिए पाजिटिव शब्द में कोई रस नहीं रह गया। इतना सब भरा था कि अब बुद्ध के लिए रस खाली होने में है।

शंकर एक गरीब ब्राह्मण के लड़के हैं, जहां कुछ भी नहीं है। एक भिखारी घर से आ रहे हैं, जहा कुछ भी नहीं था। जहां झोपड़ा था, जिसमें कुछ भी नहीं था। शंकर का रस नहीं में नहीं हो सकता, नहीं तो बहुत देखी। शंकर का रस है में है, पाजिटिव में है।

तो शंकर के लिए ब्रह्म जब प्रकट होगा, तो वह होगा—सब है। और बुद्ध के लिए जब ब्रह्म प्रकट होगा, तो ऐसा होगा—सब खाली है। यह साइकोलाजिकल टाइप का फर्क है। इसमें अनुभूति का जरा भी फर्क नहीं है।

शंकर और बुद्ध तो बहुत दूर है। बुद्ध के वक्त ही महावीर हैं। एक ही साथ, एक ही इलाके में हैं। और कभी—कभी तो ऐसा हुआ कि एक ही गांव में दोनों थे। तो बिलकुल कटेंप्रेरी हैं। टाइप में भी बहुत फर्क नहीं होना चाहिए, क्योंकि महावीर भी शाही घर से आते हैं, बुद्ध भी शाही घर से आते हैं। दोनों साथ—साथ हैं। एक बार तो ऐसा हुआ कि एक गांव में आधी धर्मशाला में महावीर ठहरे थे, आधी में बुद्ध ठहरे थे। फिर भी बातचीत नहीं हो सकी; फिर भी मिलना नहीं हुआ।

और बातें बड़ी विपरीत हैं। क्योंकि महावीर कहते हैं, आत्मा को जान लेना ही ज्ञान है। और बुद्ध कहते हैं, जो आत्मा को मानता है, उससे बड़ा अज्ञानी नहीं है। अब और क्या विरोध हो सकता है! तलवारें सीधी खिंची हैं। महावीर कहते है, आत्मा को जान लेना ही ज्ञान है। और बुद्ध कहते हैं, आत्मा? आत्मा को मानने वाले से बड़ा कोई अज्ञानी नहीं है।

और फिर भी मैं आपसे कहता हूं कि दोनों एक ही बात कहते हैं। फिर भी मैं आपसे कहता हूं कि वक्तव्य विरोधी है, अनुभूति विरोधी जरा भी नहीं है। फिर क्यों ऐसे वक्तव्य है?

शब्दों के अर्थ उस परम अनुभूति में बहुत निजी और प्राइवेट हो जाते हैं। एक तो हमारी कामन मार्केट की, बाजार की भाषा है, जहां सब शब्द कामन हैं। अगर हम कहते हैं मकान, तो वही मतलब होता है, जो आपका है। वैसे गहरे में फर्क होता है। लेकिन ऊपर से काम चलने लायक बराबर होता है। जब मैं कहता हूं मकान, तो मुझे मेरा मकान खयाल में होता है और आपको अपना मकान खयाल में होता है। अगर हम दोनों मकान की तस्वीर खींचें, तो फर्क पड़ जाएगा।

जब मैं कहता हूं कुत्ता, तो मेरा अपना अनुभव है कुत्तों का, वही होता है उस शब्द में। आपका अपना अनुभव है, वही होता है। हो सकता है, कुत्तों से मैंने जो जाना हो, वह प्रीतिपूर्ण हो; और आपने सिवाय कुत्तों से बचपन से डर के अलावा कुछ भी न जाना हो। जब भी गली से निकले हों, तभी कुत्ता भौंका हो। तो जब कुत्ता शब्द हम बोलते हैं, तो शब्द बिलकुल सामान्य होता है; लेकिन अगर भीतर हम खोजने जाएं, तो आपका कुत्ता और होगा, मेरा कुत्ता और होगा। लेकिन कामचलाऊ दुनिया है शब्दों की, वहां चल जाता है। वहां चल जाता है।

जैसे—जैसे गहरी अनुभूति में उतरते हैं—जो कि बाजार में नहीं है, जो कि एकांत में है—वहां मुश्किल बढ़नी शुरू हो जाती है। जब महावीर कहते हैं आत्मा, तो उनका अपना निजी अर्थ है। यह बिलकुल प्राइवेट लैंग्वेज है। महावीर का मतलब होता है आत्मा से, जहां अहंकार नहीं है। अहंकार को छोड्कर जो भीतर शेष रह जाता है, वही आत्मा है। और तब वे कहते हैं कि आत्मा को जान लेना ज्ञान है। और आत्मा को जान लेने का मार्ग अहंकार का विसर्जन है। अगर हम अहंकार को शून्य कर दें स्वयं से, तो जो बचता है, महावीर के लिए आत्मा है।

बुद्ध आत्मा से अहंकार का ही मतलब लेते हैं। वे कहते हैं, जहां तक मैं का स्वर है, और आत्मा का मतलब है मैं, वहां तक अहंकार है। तो बुद्ध जहां—जहां आत्मा कहते हैं, वहां—वहां उनका मतलब होता है अहंकार।

बुद्ध ने जिस शब्द का उपयोग किया है आत्मा के लिए, वह है अत्ता। अत्ता बहुत बढ़िया शब्द है। आत्मा में भी वह बात नहीं है, जो अत्ता में है पाली के। अत्ता का मतलब ही होता है, दि एनफोर्स्ट ईगो। अता शब्द के स्वर में और दबाव में भी वह बात है—मैं। बुद्ध कहते हैं, जहा—जहा अत्ता है, जहां—जहा मैं है, वहा—वहां अज्ञान है। और जो आदमी अता को मानता है, आत्मा को मानता है, वह अज्ञानी है। लेकिन बुद्ध भी कहते है कि जो अत्ता को छोड़ देता है, तब जो शेष रह जाता है, वही ज्ञान है।

इसीलिए बुद्ध को लोग कहते है अनात्मवादी, और महावीर को कहते हैं आत्मवादी। और वे दोनों एक ही बात कह रहे हैं, वहां वाद का कोई उपाय नहीं है। वाद शब्दों तक है। वाद अभिव्यक्ति तक है। वाद एक्सप्रेशन है, एक्सपीरिएंस नहीं।

लेकिन बड़ी कठिनाई है। बड़ी कठिनाई है, हमारे पास तो शब्द आते हैं। और शब्द भी पंडितों के द्वारा आते हैं। शब्द भी शास्त्रीयता के मार्ग से गुजरकर आते हैं। शब्द ही रह जाते हैं। और अक्सर ऐसा नहीं हो पाता कि हम अनुभूति से खोजने जाएं कि महावीर कहते हैं कि अहंकार छोड़ दो, तो जो बचता है, आत्मा है—हम अहंकार छोड्कर देखें। बुद्ध कहते हैं कि आत्मा के भाव को ही छोड़ दो, तब जो शेष रह जाता है, वही समाधि है—वह भी करके देखें। तब आपको पता चलेगा, बड़ा पागलपन हुआ। ये तो दोनों एक ही जगह पहुंचा देते हैं! लेकिन इतनी किसी को सुविधा नहीं है।

हम शब्दकोश से सुनते हैं, दर्शनशास्त्र में पढ़ते हैं। बौद्ध पंडित हैं, जैन पंडित हैं, हिंदू पंडित हैं, उनके पास शब्दों के सिवाय कुछ भी नहीं है। वे उन शब्दों की व्याख्याएं करते चले जाते हैं। फिर प्रत्येक निजी शब्द के पास—निजी कह रहा हूं, क्योंकि इतना एकांत अनुभव है महावीर और बुद्ध और शंकर का कि मामला प्राइवेट ही है, वह बहुत पब्लिक नहीं है—उस निजी शब्द के आस—पास फिर व्याख्याओं का जाल बुनता चला जाता है। फिर जाल इतना बड़ा हो जाता है कि महावीर के आस—पास जो जाल खड़ा हुआ वह, बुद्ध के आस—पास जो जाल खड़ा हुआ वह, शंकर के आस—पास जो जाल खड़ा हुआ वह, वे इतने दुश्मन हो जाते है हजार दो हजार साल की यात्रा में कि वह जो बीच में मूल शब्द था और शब्द के भी मूल में जो अनुभूति थी, वह कहीं की कहीं खो। जाती है, उसका फिर कोई भी पता नहीं रहता।

इसलिए अड़चन है। अन्यथा अनुभूति कभी भी भिन्न नहीं है। अभिव्यक्ति भिन्न हो सकती है, होती है, एक होने की संभावना भी नहीं है। जिस दिन मनुष्य यह जान पाएगा, उस दिन धर्मों के बीच विवाद नहीं है। और जितना जल्दी जान ले, उतना शुभ है। क्योंकि धर्मों के बीच सारा विवाद भाषा का विवाद है, सत्य का विवाद नहीं है। और जो लोग भाषा के लिए विवाद कर रहे हैं, कम से कम धार्मिक तो नहीं हैं, शब्द—शास्त्री होंगे, लिंग्विस्ट्स होंगे। मगर वे शब्द—शास्त्री अपने को धार्मिक समझ लेते हैं, तब बड़ी कठिनाई हो जाती है।

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं यायमवाक्यसि ।।38।।

यदि तुझे स्वर्ग तथा राज्य की इच्छा न हो, ती भी सुख—दुख, लाभ—हानि और जय—पराजय को समान समझकर उसके उपरांत युद्ध के लिए तैयार हो। इस प्रकार युद्ध को करने से तू पाप को नहीं प्राप्त होगा।

सुख और दुख को समान समझकर, लाभ और हानि की समान समझकर, जय और पराजय को समान समझकर, युद्ध में प्रवृत्त होने पर पाप नहीं लगेगा। कृष्ण का यह वक्तव्य बहुत केटेगोरिकल है, बहुत निर्णायक है। पाप और पुण्य को थोड़ा समझना पड़े।

साधारणत: हम समझते हैं कि पाप एक कृत्य है और पुण्य भी एक कृत्य है। लेकिन यहां कृष्ण कह रहे हैं कि पाप और पुण्य कृत्य नहीं हैं, भाव हैं। अगर पाप और पुण्य कृत्य हैं, एक्ट हैं, तो इससे क्या फर्क पडता है कि मैं लाभ—हानि को बराबर समझूं या न समझूं? अगर मैं आपकी हत्या कर दूं र लाभ—हानि बराबर समझूं या न समझूं? आपकी हत्या के कृत्य में कौन—सा फर्क पड़ जाएगा? अगर मैं एक घर में चोरी करूं लाभ हानि को बराबर समझकर, तो यह पाप नहीं होगा; और लाभ—हानि को बराबर न समझूं र तो यह पाप होगा? तब इसका मतलब यह हुआ कि पाप और पुण्य का कृत्य से, एक्ट से कोई संबंध नहीं है, बल्कि व्यक्ति के भाव से संबंध है। यह तो बहुत विचारने की बात है।

हम सब तो पाप और पुण्य को कृत्य से बांधकर चलते हैं। हम कहते हैं, बहुत बुरा काम किया। हम कहते हैं, बहुत अच्छा काम किया। कृष्ण तो इस पूरी की पूरी व्यवस्था को तोड़े डालते हैं। वे, कहते हैं, काम अच्छे और बुरे होते ही नहीं, करने वाला अच्छा और बुरा होता है। नाट दि एक्ट, बट दि एक्टर, कृत्य नहीं कर्ता! जो होता है वह नहीं, जिससे होता है वह!

लेकिन मनुष्य की सारी नीति कृत्य पर निर्भर है। कहती है, यह काम बुरा है और यह काम अच्छा है। अच्छे काम करो और बुरे काम मत करो। कौन—सा काम बुरा है? कौन—सा काम अच्छा है? क्योंकि कोई भी काम एटामिक नहीं है, आणविक नहीं है; काम एक श्रृंखला है। समझें उदाहरण से।

आप रास्ते से गुजर रहे हैं, एक आदमी आत्महत्या कर रहा है। आप उसे बचाएं या न बचाएं? स्वभावत: आप कहेंगे कि आत्महत्या करने वाले को बचाना चाहिए, कृत्य अच्छा है। लेकिन आप उसे बचा लेते हैं और कल वह पंद्रह आदमियों की हत्या कर देता है। आप नहीं बचाते, तो पंद्रह आदमी बचते थे। आपने बचाया, तो पंद्रह आदमी मरे। कृत्य आपका अच्छा था या बुरा? कृत्य एक सीरीज है अंतहीन। आप समाप्त हो जाएंगे, आपका कृत्य समाप्त नहीं होगा, वह चलता रहेगा। आप मर जाएंगे, और आपने जो किया था, वह चलता रहेगा।

आपने एक बेटा पैदा किया। यह बेटा पैदा करना अच्छा है या बुरा? यह बेटा कल हिटलर बन सकता है। यह एक करोड़ आदमियों को मार डाल सकता है। लेकिन यह बेटा कल हिटलर बनकर एक करोड़ आदमियों को मार डाले, तो भी कृत्य अच्छा है या बुरा? क्योंकि वे एक करोड़ आदमी क्या करते अगर बचते, इस पर सब निर्भर होगा। लेकिन यह श्रृंखला तो अनंत होगी।

कृत्य इंडिविजुअल नहीं है। कृत्य के पास कोई आणविक इंतजाम नहीं है; वह तो बड़ी श्रृंखला की एक कड़ी है। बस, एक कड़ी है और आगे श्रृंखला अंतहीन है। आप चले जाएंगे और कृत्य जारी रहेगा। जैसे कि हमने पत्थर फेंका एक झील में, पत्थर डूब गया। लेकिन पत्थर का झील से जो संघात हुआ था, वह जो लहर उठी थी—पत्थर तो डूबकर झील में बैठ गया—लेकिन वह जो संघात हुआ था, जो लहर उठ गई थी, वह उठ गई। अब वह लहर चल पड़ी। अब वह लहर और लहरों को, और लहरों को, और लहरों को, उठाती रहेगी। पत्थर कभी का शात होकर बैठ गया और लहर अनंत चलती रहेगी, अनंत तटों को छूती रहेगी। करीब—करीब कृत्य ऐसा ही है।

आप करते हैं, आप तो बाहर हो जाते है करके, कृत्य चल पड़ता है। इसलिए कौन—सा कृत्य ठीक है, जब तक हम पूरे विश्व का अंत न पा लें, तब तक तय नहीं हो सकता। जब तक कि सब सृष्टि समाहित न हो जाए, तब तक तय करना मुश्किल है कि महात्मा ने

जो किया था, वह अच्छा था, कि असाधु ने जो किया था, वह अच्छा था! मै अभी पश्चिम के एक विचारक का एक हैरानी से भरा हुआ वक्तव्य पढ़ रहा था। उसने यह पूछा है कि अगर एक आदमी दूसरे महायुद्ध के पहले हिटलर को गोली मार दे, तो यह कृत्य अच्छा है या बुरा? बात तो ठीक पूछता है। अगर एक आदमी दूसरे महायुद्ध के पहले हिटलर को गोली मार दे, तो यह कृत्य शुभ है या अशुभ? क्योंकि यह आदमी करोड़ों आदमियों को मरने से बचा रहा है, बड़ी बर्बादी को रोक रहा है। लेकिन इस आदमी को सजा होती और सारी दुनिया में इसके कृत्य का विरोध होता कि इसने गलत काम किया है।

तो जो लोग कृत्य से सोचते हैं—और हम सभी लोग सोचते हैं, दुनिया के समस्त नीतिशास्त्र कृत्य पर जोर देते हैं कि यह ठीक है और यह गलत है।

कृष्ण इससे उलटी बात कह रहे हैं। वे कह रहे हैं कि यह सवाल नहीं है कि तुमने जो किया है, वह ठीक है या गलत। गहरे में सवाल दूसरा है, और वह सवाल यह है कि तुम कौन हो? तुम क्या हो? तुम्हारी मनोदशा क्या है? इस पर सब निर्भर है।

मेरे देखे भी, कृत्य पर आधारित जो नीति है, बहुत बचकानी है, चाइल्डिश है। लेकिन हम सभी ऐसा सोचते हैं। हम सभी ऐसा सोचते हैं।

कृष्ण कह रहे हैं, व्यक्ति की भावदशा क्या है? और वे एक सूत्र दे रहे हैं कि अगर लाभ और हानि बराबर है, अगर सुख और दुख समान हैं, अगर जय और पराजय में कोई अंतर नहीं, तो तू जो भी करेगा, उसमें कोई पाप नहीं है। क्या करेगा, इसकी वे कोई शर्त ही नहीं रखते। कहते हैं, फिर तू जो भी करेगा, उसमें कोई पाप नहीं है।

विचारणीय है, और गहरी है बात। क्योंकि कृष्ण यह कह रहे हैं कि दूसरे को चोट पहुंचाने की बात तभी तक होती है, जब तक लाभ और हानि में अंतर होता है। जिसे लाभ और हानि में अंतर ही नहीं है.. शर्त बड़ी मुश्किल है। क्योंकि लाभ—हानि में अंतर न हो, यह बड़ी गहरी से गहरी उपलब्धि है।

ऐसा व्यक्ति, जिसे लाभ और हानि में अंतर नहीं है, क्या ऐसा कोई भी कृत्य कर सकता है, जिसे हम पाप कहते हैं! जिसे जय और पराजय समान हो गई हों, जिसे असफलता और सफलता खेल हो गए हों, जो दोनों को एक—सा स्वागत, स्वीकार देता हो, जिसकी दोनों के प्रति समान उपेक्षा या समान स्वीकृति हो, क्या ऐसा व्यक्ति गलत कर सकता है?

कृष्ण का जोर व्यक्ति पर है, कृत्य पर नहीं। और व्यक्ति के पीछे जो शर्त है, वह बहुत बड़ी है। वह शर्त यह है कि उसे द्वंद्व समान दिखाई पड़ने लगे, उसे प्रकाश और अंधेरा समान दिखाई पड़ने लगे। यह तो बड़ी ही गहरी समाधि की अवस्था में संभव है।

इसलिए ऊपर से तो वक्तव्य ऐसा दिखता है कि कृष्ण अर्जुन को बड़ी स्वच्छंद छूट दे रहे हैं; क्योंकि अब वह कुछ भी कर सकता है। ऊपर से ऐसा लगता है, इससे तो स्वच्छंदता फलित होगी, अब तुम कुछ भी कर सकते हो। लेकिन कृष्ण अर्जुन को गहरे से गहरे रूपातरण और ट्रांसफामेंशन में ले जा रहे हैं, स्वच्छंदता में नहीं।

असल में जिस व्यक्ति को जय और पराजय समान हैं, वह कभी भी स्वच्छंद नहीं हो सकता है। उपाय नहीं है, जरूरत नहीं है, प्रयोजन नहीं है। लाभ के लिए ही आदमी पाप में प्रवृत्त होता है.. हानि से बचने के लिए ही आदमी पाप में प्रवृत्त होता है।

एक आदमी असत्य बोलता है। दुनिया में कोई भी आदमी असत्य के लिए असत्य नहीं बोलता है, लाभ के लिए असत्य बोलता है। अगर दुनिया में सत्य बोलने से लाभ होने लगे, तो असत्य बोलने वाला मिलेगा ही नहीं। तब बड़ी मुश्किल से खोजना पड़ेगा। कोई त्यागी, महात्यागी असत्य बोले, बात अलग। कोई बड़ा संकल्पवान तय ही कर ले कि असत्य बोलूंगा, तो बात अलग। लेकिन अगर सत्य के साथ लाभ होता हो, तो असत्य बोलने वाला नहीं मिलेगा। तब तो इसका मतलब यह हुआ कि असत्य कोई नहीं बोलता, लाभ ही असत्य का मार्ग लेता है। हानि से बचना ही असत्य का मार्ग लेता है। आदमी चोरी के लिए चोरी नहीं करता, लाभ के लिए चोरी करता है। कोई दुनिया में चोरी के लिए चोरी नहीं करता।

आज तक दुनिया में किसी ने भी कोई पाप लाभ के अतिरिक्त और किसी कारण से नहीं किया, या हानि से बचने के लिए किया, दोनों एक ही बात है। पाप भी—और मजे की बात है, पुण्य भी—पुण्य भी आदमी लाभ के लिए करता है या हानि से बचने के लिए करता है।

प्लेटो ने एक छोटी—सी कहानी लिखी है। और कहानी है एक नैतिक प्रश्न उठाने के लिए। कहानी है कि एक आदमी को यदि कोई ऐसी तरकीब मिल जाए, कोई ऐसा ताबीज मिल जाए, कि वह। इनविजिबल हो सके, अदृश्य हो सके—जब चाहे तब अदृश्य हो सके—तो प्लेटो पूछता है कि क्या ऐसा आदमी नैतिक हो सकेगा?

वह आपकी दुकान पर आए और हीरे—जवाहरात उठा ले; और अदृश्य है, पुलिस उसे पकड़ न पाए समाज उसे अनैतिक कह न पाए। वह किसी के घर में रात घुस जाए; दिखाई न पड़े, अदृश्य हो सके। तो प्लेटो ने यह पूछा है कि क्या ऐसा नैतिक आदमी खोजना संभव है, जिसके हाथ में अदृश्य होने का ताबीज हो और जो नैतिक रह जाए? बड़ा कठिन मालूम पड़ता है ऐसा आदमी खोजना।

आप भी अगर सोचें कि आपको ताबीज मिल गया, एक पांच मिनट के लिए सोचें कि हाथ में ताबीज है, अब क्या करिएगा! आपका मन फौरन रास्ते बताएगा कि यह—यह करो—पड़ोस वाले की पत्नी को ले भागो, फलां आदमी की कार ले भागो, फलां की दुकान में घुस जाओ—फौरन आपका मन आपको सब रास्ते बता देगा। अभी मिला नहीं ताबीज आपको, लेकिन ताबीज मिल जाए, इसका खयाल भी आपको फौरन बता देगा कि आप क्या—क्या कर सकते हो—जो कि आप नहीं कर पा रहे हो, क्योंकि अनैतिक होने में हानि मालूम पड़ रही है। और कोई कारण नहीं है। इस

जगत में जो हमें नैतिक और अनैतिक लोग दिखाई पड़ते हैं, उनके नैतिक और अनैतिक होने का निर्णायक सूत्र लाभ और हानि है।

कृष्ण नीति को बड़े दूसरे तल पर ले जा रहे हैं, बिलकुल अलग डायमेंशन में। वे यह कह रहे हैं, यह सवाल ही नहीं है। इसीलिए तो जो शक्तिशाली होता है, वह नीति—अनीति की फिक्र नहीं करता। इसलिए अगर चाणक्य से पूछें या मैक्यावेली से पूछें, तो वे कहेंगे, नीति का कोई मतलब नहीं होता, नीति सिर्फ कमजोरों का। बचाव है। शक्तिशाली तो कोई नीति की फिक्र नहीं करता, क्योंकि उसे अनीति से कोई हानि नहीं हो सकती। सिर्फ कमजोर नीति की फिक्र करता है, क्योंकि अनीति से हानि हो सकती है। मैक्यावेली तो सुझाव देता है कि अगर तुम्हारे पास शक्ति है, तो शक्ति का मतलब ही यह है कि तुम अनैतिक होने के लिए स्वतंत्र हो। अगर कमजोर हो, तो उसका मतलब इतना ही है कि तुम्हें नैतिक होने की मजबूरी है।

नीति और अनीति के गहरे में लाभ—हानि पकड़ में आती हैं। दुनिया रोज अनैतिक होती जा रही है, ऐसा हमें लगता है। कुल कारण इतना है कि दुनिया में इतने लोग शक्तिशाली कभी नहीं थे, जितने आज हैं। कुल कारण इतना है। दुनिया अनैतिक होती हुई दिखाई पड़ती है, क्योंकि दुनिया में इतना धन इतने अधिक लोगों के पास कभी भी नहीं था। जिनके पास था, वे सदा अनैतिक थे। दुनिया अनैतिक होती मालूम पड़ती है, क्योंकि अतीत की दुनिया में राजाओं—महाराजाओं के हाथ में ताकत थी। नई दुनिया लोकतंत्र है, वहा एक—एक व्यक्ति के पास शक्ति वितरित कर दी गई है। अब प्रत्येक व्यक्ति शक्ति के मामले में ज्यादा समर्थ है, जितना कभी भी नहीं था। दुनिया अनैतिक होती मालूम पड़ती है, क्योंकि इतने अधिक लोग शिक्षित कभी नहीं थे और शिक्षा एक शक्ति है। जो लोग शिक्षित थे, उनके नैतिक होने का कभी भरोसा नहीं था।

जितनी शिक्षा बढ़ेगी, उतनी अनीति बढ़ जाएगी; जितनी समृद्धि बढ़ेगी, उतनी अनीति बढ़ जाएगी; जितनी शक्ति बढ़ेगी, उतनी अनीति बढ़ जाएगी। मजा यह है कि नीति और अनीति के बहुत गहरे में लाभ—हानि ही बैठी है।

इसलिए कृष्ण का यह वचन बड़े गहरे इंप्लिकेशस का है। वे अर्जुन से कहते हैं कि जब तक तुझे लाभ और हानि में भेद है, तब तक तू जो भी करेगा, वह पाप है। और जिस दिन तुझे लाभ—हानि में कोई भेद नहीं है, उस दिन तू निश्चित हो। फिर तू जो भी करेगा, वह पाप नहीं है।

इसलिए सवाल नहीं है यह कि हम चुनें कि क्या करणीय है और क्या करणीय नहीं है। असली सवाल और गहरे में है और वह यह है कि क्या मेरे चित्त में लाभ और हानि का प्रभाव पड़ता है? अगर पड़ता है, तो मैं मंदिर भी बनाऊं तो पाप होगा, उसके बहुत गहरे में लाभ—हानि ही होगी। अगर मैं पुण्य भी करूं, तो सिर्फ दिखाई पड़ेगा, पुण्य हो रहा है; पीछे पाप ही होगा। और सब पुण्य करने के लिए पहले पाप करना जरूरी होता है। मंदिर भी बनाना हो, तो भी मंदिर बनाने के लायक तो धन इकट्ठा करना ही होता है।

सब पुण्यों के लिए पाप करना जरूरी होता है, क्योंकि कोई पुण्य बिना लाभ के नहीं हो सकते। दान के पहले भी चोरी करनी पड़ती है। असल में जितना बड़ा चोर, उतना बड़ा दानी हो सकता है। असल में बड़ा दानी सिर्फ अतीत का चोर है। आज का चोर कल का दानी हो सकता है। क्योंकि चोरी करके भी करिएगा क्या? एक सीमा आ जाती है सेच्युरेशन की, जहा चोरी से फिर कोई लाभ नहीं मिलता। फिर उसके बाद दान करने से लाभ मिलना शुरू होता है।

कृष्ण का वक्तव्य बहुत अदभुत है। वे यह कहते हैं कि तू लाभ और हानि का जब तक भेद कर पा रहा है, तब तक तू कितने ही पुण्य की बातें कर, लेकिन तू जो भी करेगा वह पाप है। और अगर तू यह समझ ले कि लाभ—हानि में कोई फर्क नहीं, जय—पराजय में कोई फर्क नहीं, जीवन—मृत्यु में कोई फर्क नहीं, तो फिर तू जो भी करे, वह पुण्य है।

यह पुण्य और पाप का बहुत ही नया आयाम है। कृत्य से नहीं, व्यक्ति के अंतस्तल में हुई क्रांति से संबंधित है।

प्रश्न :

भगवान श्री, कुछ मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि जैसे भूख, निद्रा, काम आदि स्वाभाविक वृत्तियां हैं, वैसे ही क्रोध करना भी मानव की स्वाभाविक वृत्ति है। यदि ऐसा है, तो जगत में युद्ध भी स्वाभाविक ही है। जब तक जगत, तब तक युद्ध। क्या युद्ध कभी अटक भी सकती है?

स्वाभाविक किसी बात को कह देना, उसके होने की अनिवार्यता को सिद्ध कर देना नहीं है। जो भी हमें स्वाभाविक मालूम पड़ता है, वह सभी एक तल पर स्वाभाविक है, लेकिन तल के परिवर्तन के साथ बदल जाता है। जैसा मनुष्य है, वैसे मनुष्य के लिए क्रोध बिलकुल स्वाभाविक है। लेकिन मनुष्य बुद्ध जैसा मनुष्य भी हो जाता है, और तब क्रोध बिलकुल अस्वाभाविक हो जाता है। स्वाभाविक और अस्वाभाविक व्यक्ति की चेतना के प्रत्येक तल पर बदलते जाते हैं।

एक आदमी शराब पीकर रास्ते पर चल रहा है, तो नाली में गिर जाना बिलकुल स्वाभाविक है। लेकिन एक आदमी बिना शराब पीए सड़क पर चल रहा है, उसका नाली में गिर जाना बिलकुल अस्वाभाविक है। लेकिन शराब पीए आदमी में और गैर शराब पीए ?? आदमी में आदमियत का कोई भी फर्क नहीं है। फर्क है चेतना का। आदमियत का कोई भी फर्क नहीं है। शराब पीया आदमी भी वैसा ही आदमी है, जैसा नहीं शराब पीया हुआ आदमी आदमी है।

अंतर कहां है? अंतर चेतना का है। शराब पीए हुए आदमी के पास उतनी चेतना नहीं है, जो नाली में गिरने से बचा सके। गैर शराब पीए आदमी के पास उतनी चेतना है, जो नाली में गिरने से बचाती है। अगर हम क्रोध में गिर जाते हैं, तो वह भी हमारी मूर्च्छा के कारण। और बुद्ध अगर क्रोध में नहीं गिरते, तो वह भी उनकी अमूर्च्छा के कारण। वह भी फर्क चेतना का ही है। उस फर्क में भी वही फर्क काम कर रहा है, जो शराबी के साथ कर रहा है। ही, फर्क भीतरी है, इसलिए एकदम से दिखाई नहीं पड़ता।

जब आप क्रोध में होते हैं, तब आपके एड्रिनल ग्लैंड्स आपके भीतर शराब छोड़ देते हैं। जब आप क्रोध में होते हैं, तो आपके शरीर में.. बहुत से मादक रस इकट्ठे हैं आपके शरीर में। अगर वे ग्लैड्स काट दी जाएं, फिर आप क्रोध करके बताएं तो समझा जाए! पावलव ने बहुत प्रयोग किए हैं रूस में कुत्तों की उन ग्लैंड्स को काटकर, जिनकी वजह से कुत्ते भौंकते हैं और भौंकते ही रहते हैं और लड़ते ही रहते हैं। बड़ा जानदार कुत्ता है, तीर है बिलकुल, जरा—सी बात और जूझ जाएगा। उसकी भी ग्लैंड काट देने के बाद, उसको कितना ही उकसाओ, वह कुछ भी नहीं करता। फिर वह बैठा रह जाएगा।

खतरा भी है इस प्रयोग में। क्योंकि आज नहीं कल, कोई हुकूमत आदमियों के ग्लैंड्स भी काटेगी। जिस हुकूमत को भी विद्रोह और क्रांति से बचना है, आज नहीं कल, बायोलाजिस्ट की सहायता वह लेगी। कोई कठिनाई नहीं है। रूस जैसे मुल्क में, जहां हर बच्चे को नर्सरी में पैदा होना है, वहा पैदा होने के साथ ही ग्लैंड्स समाप्त की जा सकती हैं। या उन ग्लैड्स के एंटीडोट्स का इंजेक्यान दिया जा सकता है।

तब आपको पता चलेगा कि स्वाभाविक बिलकुल नहीं है। स्वाभाविक इसलिए है कि शरीर के साथ अनंत यात्रा में जरूरी रहा है। और शरीर के साथ बहुत—सी चीजें जो कल जरूरी थीं, अब जरूरी नहीं रह गई हैं, लेकिन खिंच रही हैं।

जिस स्थिति में मनुष्य है, अगर हम उसको परम स्थिति मान लें, तब तो बिलकुल स्वाभाविक है। लेकिन वह परम स्थिति नहीं है; उसमें बदलाहट हो सकती है। उसमें बदलाहट दो तरह से हो सकती है।

शरीर के द्वारा भी बदलाहट हो सकती है। लेकिन शरीर के द्वारा जो बदलाहट होगी, वह मनुष्य की आत्मा का विकास नहीं, पतन बनेगी। क्योंकि जो आदमी क्रोध कर नहीं सकेगा, इसलिए नहीं करता है, वह आदमी इंपोटेंट हो जाएगा। उस आदमी का कोई गौरव नहीं होगा। उसके व्यक्तित्व में चमक नहीं आएगी। उसकी आंखों में ज्ञान नहीं आएगी। अक्रोध की शाति भी नहीं आएगी, क्योंकि क्रोध कर ही नहीं सकता। जो आदमी बुरा हो ही नहीं सकता, उसके भले होने का कोई भी अर्थ नहीं होता। वह सिर्फ असमर्थ होता है, दीन होता है।

लेकिन जो आदमी क्रोध कर सकता है और नहीं करता है, उसकी चेतना रूपातरित हो जाती है। क्रोध कर सकता है और नहीं करता है, तो वह जो क्रोध की शक्ति है, वह अक्रोध की शक्ति बननी शुरू हो जाती है। तब उसके व्यक्तित्व में रूपांतरण, ट्रांसफामेंशन के नए द्वार खुलते हैं। तब वह सामान्य मनुष्य से ऊपर उठना शुरू होता है। सुपरमैन उसके भीतर पैदा होना शुरू होता है, वह अतिमानव होना शुरू हो जाता है।

मनुष्य के लिए क्या स्वाभाविक है, यह इस पर निर्भर करता है कि उसकी चेतना का तल क्या है। प्रत्येक तल पर स्वभाव भिन्न—भिन्न होगा। एक बच्चे के लिए जो स्वाभाविक है, जवान के लिए स्वाभाविक नहीं रह जाता। और एक जवान के लिए जो स्वाभाविक है, के के लिए स्वाभाविक नहीं रह जाता। बीमार आदमी के लिए जो स्वाभाविक है, वह स्वस्थ के लिए स्वाभाविक नहीं रह जाता।

तो स्वभाव कोई फिक्स एनटाइटी नहीं है। स्वभाव कोई ऐसी बात नहीं है कि कोई थिर चीज है। यही खूबी है मनुष्य की। एक पत्थर का स्वभाव थिर है, पत्थर का स्वभाव बिलकुल थिर है। पानी का स्वभाव बिलकुल थिर है। इसलिए हम विज्ञान की किताब में लिख सकते हैं कि पानी का यह स्वभाव है, अग्नि का यह स्वभाव है।

मनुष्य की खूबी ही यही है कि उसका स्वभाव उस पर ही निर्भर है। और वह अपने स्वभाव को हजार आयाम दे सकता है और विकास कर सकता है। ही, एक स्वभाव जन्म के साथ सबको मिलता है। कुछ लोग उसी पर रुक जाते हैं, उसी को स्वभाव का अंत मान लेते हैं, तब दूसरी बात है।

कभी आपने शायद खयाल न किया हो; अगर एक हीरे को रख दें और पास में कोयले के टुकड़े को रख दें, तो आपको—कभी खयाल न आएगा कि हीरा कोयला ही है। हीरे और कोयले में बुनियादी तत्व के आधार पर कोई भी भेद नहीं है। असल में कोयला ही हजारों—लाखों वर्ष जमीन में दबा रहकर हीरा बन जाता है। लेकिन हीरे और कोयले का स्वभाव एक है? जरा भी एक नहीं है। कहां कोयला, कहां हीरा! लेकिन बनता है हीरा कोयले से ही; वह कोयले की ही आखिरी यात्रा है।

तो जहा मनुष्य अपने को पाता है, कोयले जैसा है। और जहा बुद्ध जैसे, महावीर जैसे, कृष्ण जैसे व्यक्ति अपने को पहुंचाते हैं, हीरे जैसे हैं। फर्क स्वभाव का नहीं है, फर्क विकास का है।

प्राथमिक स्वभाव हम सबको एक जैसा मिला है—क्रोध है, काम है, लोभ है। लेकिन यह अंत नहीं है, प्रारंभ है। और इस प्रारंभ को ही अगर हम अंत समझ लें, तो यात्रा बंद हो जाती हें। और हुई है बंद।

जैसा कि आपने पूछा है, मनोवैज्ञानिक कहते हैं, यह तो स्वभाव है। लेकिन यह कहकर वे कुछ इस तरह की बात दुनिया में पैदा करवाते हैं कि जैसे यह अंत है। इसलिए पश्चिम में मनोविज्ञान के कुछ परिणाम हुए हैं। हिंदुस्तान में मनोविज्ञान ने एक लाभ लिया और मनुष्य को विकास दिया। और पश्चिम के सौ डेढ़ सौ वर्ष के मनोविज्ञान ने मनुष्य को पतन दिया, विकास नहीं दिया। क्योंकि मनोवैज्ञानिक ने कहा, यह तो स्वभाव है। आदमी क्रोध तो करेगा, ही, क्रोध तो स्वभाव है। आदमी कामुक तो होगा ही, कामुकता तो स्वभाव है।

इसका परिणाम क्या हुआ ‘ इसका परिणाम यह हुआ कि जो प्रारंभ—बिंदु था, वह अंतिम मंजिल बन गया। और तब प्रत्येक आदमी ने कहा, क्रोध तो मैं करूंगा ही, यह मेरा स्वभाव है। आदमी क्रोध करेगा ही। निश्चित ही, इसके फल हुए हैं। वे फल पश्चिम में दिखाई पड़ रहे हैं। वे फल ये हुए कि आज कोई भी व्यक्ति अपने को किसी भी कृत्य के लिए जिम्मेवार, रिस्पासिबल नहीं मानता। क्योंकि वह कहता है, यह स्वभाव है।

एक आदमी गालियां बक रहा है सड़क पर, तो आप उससे यह नहीं कह सकते कि तुम यह क्या कर रहे हो? वह कहता है, यह स्वभाव है। एक आदमी चोरी कर रहा है, आप उससे यह नहीं कह सकते कि तुम गलत कर रहे हो। वह कहता है, मैं क्या कर सकता हूं? यह स्वभाव है। पश्चिम के मनोविज्ञान ने अगर बड़े से बड़ा खतरा लाया है, तो आदमी को रिस्पासिबिलिटी से मुका कर दिया। दायित्व कुछ उसका है नहीं। वह कहता है, यह स्वभाव है। और जो भी हो रहा है……..।

तो पश्चिम में मार्क्स और फ्रायड, इन दो के तालमेल से एक अदभुत स्थिति पैदा हो गई है। मार्क्स ने कह दिया कि जो भी हो रहा है, उसके लिए जिम्मेवार समाज है। और फ्रायड ने कह दिया कि जो भी हो रहा है, उसके लिए जिम्मेवार प्रकृति है। आदमी बाहर हो गया। अगर एक आदमी चोरी कर रहा है, तो जिम्मेवार समाज है। अगर एक आदमी हत्या कर रहा है, तो जिम्मेवार समाज है। ऐसा मार्क्स ने कह दिया, व्यक्ति के ऊपर कोई जिम्मेवारी नहीं है, सोशल रिस्पासिबिलिटी है। इसलिए अगर व्यक्ति को बदलना है, तो समाज को बदलो। और जब तक समाज नहीं बदलता, तब तक व्यक्ति जैसा है वैसा रहेगा। इसकी हम उसे लाइसेंस देते हैं।

व्यक्ति बड़ा प्रफुल्लित हुआ। हजारों साल की जो चिंता थी, उसके दिमाग से गिर गई। ये कृष्ण ने, महावीर ने, बुद्ध ने आदमी। को बड़ी भारी चिंता, बड़ी एंग्जाइटी दे दी थी—दें दी थी कि तुम जिम्मेवार हो। चिंता गिर गई। व्यक्ति बड़ा निश्चित हुआ। लेकिन उस निश्चितता में व्यक्ति सिर्फ वही रह गया, जो कोयला था। उससे बाहर की यात्रा बंद हो गई। निश्चित ही, कोयले को हीरा बनना हो, तो चिंता से गुजरना पड़ेगा। लाखों साल की लंबी यात्रा है!

फिर फ्रायड ने लोगों को कह दिया कि समाज भी बदल डालो, तो भी कुछ होने वाला नहीं है। क्योंकि रूस में क्रोध कम हो गया? कि रूस में अहंकार कम हो गया? कि रूस का नागरिक किसी भी तरह से आदमियत के तल पर बदल गया है न कुछ भी नहीं बदला। फ्रायड ने कहा, समाज वगैरह के बदलने का सवाल नहीं है। जिम्मेवार स्वभाव है, नेचर है। जब तक नेचर को न बदल डालो, तब तक कुछ भी नहीं हो सकता।

पर नेचर को कैसे बदलोगे? स्वभाव को कैसे बदलोगे? इसलिए आदमी जैसा है वैसा रहेगा। निश्चित मन से उसे जैसा है वैसा रहना चाहिए! यह बदलाहट, यह क्रांति, यह भीतरी रूपांतरण, यह धर्म, यह योग, यह समाधि, ये सब बकवास हैं। फ्रायड ने कहा, आदमी जैसा है वैसा ही रहेगा। नाहक की चिंता में आदमी को डालकर परेशान किया हुआ है। वह जैसा है है।

फ्रायड के इस कहने का परिणाम पश्चिम में एक्सप्लोसिव हुआ। आज हिप्पी हैं, बीटनिक हैं, प्रवोस हैं, और दूसरे तरह के सारे लोग हैं, वे यही कह रहे हैं कि यह स्वभाव है। और फ्रायड ने गारंटी दी है कि यह स्वभाव है, और आदमी वही रहेगा जो है। आदमी एक पशु है। थोड़ी—सी बुद्धि है उसके पास, इसलिए बुद्धि। से अपने को परेशानी में डाल लेता है। बुद्धि को भी छोड़ दे, तो कोई परेशानी नहीं है।

आदमी को फ्रायड ने—अगर फ्रायड को समझें, तो वह यह कहता है, तुम्हारी बुद्धि ही तुम्हारी परेशानी है। उसी की वजह से तुम झंझट में पड़ जाते हो। जो है, वह है। यह बुद्धि उस पर सोच—विचार करके कहने लगती है, ऐसा नहीं होना चाहिए वैसा नहीं होना चाहिए। इससे तुम चिंता पैदा करते हो, पागल हुए जाते हो। छोड़ो यह चिंता। जो हो, उसके लिए राजी हो जाओ।

ठीक है, निश्चितता आ जाएगी, लेकिन कोयले की निश्चितता होगी। पशु निश्चित है। अगर फ्रायड को मानकर पूरा का पूरा चला जाए, तो आदमी पशु की तरफ गिरता जाएगा—गिरा है। फ्रायड। जो कहता है, वह सच है, लेकिन अधूरा सच है झूठ से भी खतरनाक होते हैं।

यह सच है कि आदमी में क्रोध है, और यह स्वभाव है। और यह भी सच है कि आदमी में क्रोध से विकसित होने की संभावना है, वह भी उसका स्वभाव है। यह सच है कि क्रोध है। और यह भी सच है कि क्रोध से मुक्त होने की आकांक्षा है, वह भी स्वभाव है। ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है, जिसमें क्रोध है और क्रोध से मुका होने की आकांक्षा नहीं है। तो क्रोध स्वभाव है, और क्रोध से मुक्त होने की आकांक्षा? वह स्वभाव नहीं है? ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है, जो अपने को अतिक्रमण नहीं करना चाहता, जो अपने से ऊपर नहीं जाना चाहता। जो है, वह स्वभाव है। जो होना चाहता है, वह भी स्वभाव है।

और निश्चित ही, जो होना चाहता है, उसके लिए, जो है उसको रूपांतरित करना पड़ता है। उसकी विधियां हैं। उस विधि का नाम ही धर्म है। अगर मनुष्य जैसा है, वैसा ही है, तब धर्म की कोई अर्थवत्ता नहीं है, मीनिगलेस है।

इसलिए अगर पश्चिम में धर्म का सारा मूल्य खो गया, तो उसके खोने का बहुत गहरा कारण यही है कि पश्चिम के मनोविज्ञान ने आदमी को कहा कि यह तो स्वभाव है। ऐसा होगा ही।

एक मित्र मेरे पास आए, यही अभी परसों। उन्होंने कहा कि मैं बहुत परेशान था, नींद मुझे नहीं आती थी। नींद खो गई थी, इससे चिंतित था। मनोवैज्ञानिक के पास गया, तो मनोवैज्ञानिक ने कहा कि यह तो बिलकुल ठीक है। मनोवैज्ञानिक ने पूछा कि सेक्स के बाबत तुम्हारी क्या स्थिति है? तो मनोवैज्ञानिक ने उनसे कहा कि तुम हस्तमैथुन, मस्टरबेशन शुरू कर दो। उन्होंने कहा कि कैसी बात कहते हैं? तो उन्होंने कहा, यह तो स्वभाव है। यह तो आदमी को करना ही पड़ता है! जब मनोवैज्ञानिक कहता हो, वे राजी हो गए। फिर दो साल में उस हालत में पहुंच गए कि उसी मनोवैज्ञानिक ने कहा कि अब तुम्हें इलेक्ट्रिक शॉक की जरूरत है। अब तुम बिजली के शॉक्स लो। अब जब मनोवैज्ञानिक कह रहा है। और हम तो अथारिटी के ऐसे दीवाने हैं, ऐसे पागल हैं। और जो चीज जब अथारिटी बन जाए! कभी मंदिर का पुरोहित अथारिटी था, तो वह जो कह दे, वह सत्य था। अब वह पौरोहित्य जो है मंदिर का, वह मनोवैज्ञानिक के हाथ में आया जा रहा है। अब वह जो कह दे, वह सत्य है। तो बिजली के शॉक ले लिए। सब तरह से व्यक्तित्व अस्तव्यस्त हो गया।

स्वभाव की आड़ में आदमी की पशुता को बचाने की चेष्टा खतरनाक है। शायद मनुष्य के ऊपर इससे बड़े खतरे के बादल कभी भी नहीं आए थे, जितने बड़े खतरे के बादल इस बात से आए हैं कि जो भी है, वह है। यह तो होगा ही, यह तो बिलकुल स्वाभाविक है।

मैं आपसे कहना चाहता हूं कि मैं भी कहता हूं कि बिलकुल स्वाभाविक है। मनोविज्ञान से मेरी गहरी सहमतिया हैं, लेकिन असहमतियां भी हैं। मैं मानता हूं, मनोविज्ञान जहां तक जाता है, बहुत ठीक है। लेकिन उसके आगे भी यात्रा—पथ है। जहा तक जाता है, बिलकुल ठीक। लेकिन जहा से इनकार करता है, वहा बिलकुल गलत है। फ्रायड जहां तक जाते हैं, बिलकुल ठीक, वहा तक कृष्ण और बुद्ध भी इनकार नहीं करते। लेकिन कृष्ण और बुद्ध कहते हैं, यह अंत नहीं है, यह बिलकुल प्रारंभ है। और इस प्रारंभ का ऐसा उपयोग करना है कि अंत भी फलित हो सके।

जड़ स्वभाव है, लेकिन फूल तक भी पहुंचना है। अन्यथा जड़ें बड़ी कुरूप होती हैं; गंदी होती हैं; अंधेरे में दबी होती हैं; नीचे अंधेरे रास्तों में, जमीन में फैली होती हैं। स्वाभाविक हैं, बिलकुल जरूरी हैं, लेकिन जड़ें फूल नहीं हैं। और अगर जड़ों पर कोई वृक्ष रुक जाए और कोई फ्रायड वृक्ष को समझा दे कि पागल, यही तेरा स्वभाव है। और वृक्ष रुक जाए और कहे, क्या करेंगे अब आकाश में उठकर, जड़ें ही अपना स्वभाव है, तो फिर फूल नहीं आएंगे। और मजा यह है कि जड़ें इसीलिए हैं कि फूल आएं। और फूल और जड़ में कितना विरोध है! कहां फूल—आकाश में खिले हुए सूर्य की रोशनी में नाचते हुए! और कहा जड़ें—अंधेरे में दबी हुई! विरोध है बड़ा, सामंजस्य भी है बड़ा, क्योंकि फूल बिना जड़ों के नहीं हो सकते।

यह भी आखिरी बात मैं आपसे कहना चाहता हूं कि फूल बिना जड़ों के नहीं हो सकते; हालांकि जड़ें बिना फूल के हो सकती हैं। यह जीवन का एक बहुत बड़ा दुर्भाग्य है कि यहां जो निम्न है, वह श्रेष्ठ के बिना हो सकता है; लेकिन यहां जो श्रेष्ठ है, वह निम्न के बिना नहीं होता। एक मंदिर पर स्वर्ण के शिखर रखने हों, तो नींव भरनी ही पड़ती है। नींव के बिना स्वर्ण—शिखर नहीं होते; लेकिन स्वर्ण—शिखर के बिना नींव हो सकती है—नींव भरें और छोड़ दें। जो निम्न है, वह श्रेष्ठ के बिना भी हो सकता है। लेकिन जो श्रेष्ठ है, वह निम्न के बिना नहीं हो सकता। इसलिए अगर निम्न को हमने स्वभाव समझा, नियति समझी, डेस्टिनी समझी, तो जड़ें ही रह जाती हैं हाथ में।

नहीं, जड़ें हैं ही इसलिए कि फूल तक पहुंचें। मनुष्य का जो स्वभाव आज दिखाई पड़ता है, वह है ही इसलिए कि वह परमात्मा तक पहुंचे। क्रोध है इसलिए कि क्रोध की जड़ किसी दिन अक्रोध का फूल बने। काम है इसलिए, सेक्स है इसलिए कि सेक्स की ऊर्जा और काम की ऊर्जा किसी दिन ब्रह्मचर्य का फूल बने। और जब तक नहीं बन जाती, तब तक मनुष्य को बेचैन होना ही चाहिए जब तक नहीं बन जाती, तब तक मनुष्य को चिंतित होना ही चाहिए; जब तक नहीं बन जाती, तब तक मनुष्य को संताप में, पीड़ा में, संघर्ष में होना ही चाहिए। जल्दी ली गई शाति खतरनाक है, क्योंकि वह प्रारंभ को ही अंत बना सकती है। शाति जरूर मिलती है, लेकिन अंत आ जाए, मंजिल आ जाए, तब तक यात्रा जारी रखनी जरूरी है।

दो तरह की शांतियां हैं। एक तो हम जहा हैं, वहीं बैठ जाएं, तो यात्रा का कष्ट बंद हो जाता है। एक और शाति भी है— जिस दिन यात्रा पूरी होती है और मंजिल आती है। हम बैठ जाएं और इसी को मंजिल मान लें, तो भी शाति मिलती है। और मंजिल आ जाए और हम बैठें, तब भी शाति मिलती है।

लेकिन दोनों शांतियों में बड़ा फर्क है। एक पशु की शाति है, एक परमात्मा की शांति है।

प्रवचन 12 : निष्काम कर्म और अखंड मन की कीमिया
ओशो – गीता-दर्शन – भाग एक
अध्याय—1-2 – प्रवचन 12 : निष्काम कर्म और अखंड मन की कीमिया

एषा तेऽभिहिता सांख्ये बुद्धिर्योगे त्विमां श्रृणु ।
बुद्धया युक्तो यया पार्थ कर्मबन्धं प्रहास्यसि ।।39।।

हे पार्थ, यह सब तेरे लिए सांख्य (ज्ञानयोग) के विषय में कहा गया और इसी को अब (निष्काम कर्म) योग के विषय में सुन कि जिम बुद्धि से युक्त हुआ तु कर्मों के बंधन को अच्छी तरह मे नाश करेगा।

अनंत हैं सत्य तक पहुंचने के मार्ग। अनंत है प्रभु के मंदिर के द्वार। होंगे ही अनंत, क्योंकि अनंत तक पहुंचने के लिए अनंत ही मार्ग हो सकते हैं। जो भी एकांत को पकड़ लेते हैं—जो भी सोचते हैं, एक ही द्वार है, एक ही मार्ग है—वे भी पहुंच जाते हैं। लेकिन जो भी पहुंच जाते हैं, वे कभी नहीं कह पाते कि एक ही मार्ग है, एक ही द्वार है। एक का आग्रह सिर्फ उनका ही है, जो नहीं पहुंचे हैं; जो पहुंच गए हैं, वे अनाग्रही हैं।

कृष्ण अर्जुन से कह रहे हैं, अब तक जो मैंने तुझसे कहा, वह सांख्य की दृष्टि थी।

सांख्य की दृष्टि गहरी से गहरी ज्ञान की दृष्टि है। सांख्य का जो मार्ग है, वह परम ज्ञान का मार्ग है। इसे थोड़ा समझ लें, तो फिर आगे दूसरे मार्ग समझना आसान हो जाएगा।

पर कृष्ण ने क्यों सांख्य की ही पहले बात कर ली! सांख्य की इसलिए पहले बात कर ली कि अगर सौख्य काम में आ जाए, तो फिर और कोई आवश्यकता नहीं है। सांख्य काम में न आ सके, तो ही फिर कोई और आवश्यकता है।

जापान में झेन साधना की एक पद्धति है। आज पश्चिम में झेन का बहुत प्रभाव है। आज का जो भी विचारशील वर्ग है जगत का, पूरे जगत की इटेलिजेंसिया, वह झेन में उत्सुक है। और झेन सांख्य का ही एक रूप है।

सांख्य का कहना यही है कि जानना ही काफी है, करना कुछ भी नहीं है, नालेज इज़ इनफ, जानना पर्याप्त है। इस जगत की जो पीड़ा है और बंधन है, वह न जानने से ज्यादा नहीं है। अज्ञान के अतिरिक्त और कोई वास्तविक बंधन नहीं है। कोई जंजीर नहीं है, जिसे तोड़नी है। न ही कोई कारागृह है, जिसे मिटाना है। न ही कोई जगह है, जिससे मुक्त होना है। सिर्फ जानना है। जानना है कि मैं कौन हूं? जानना है कि जो चारो तरफ फैला है वह क्या है? सिर्फ अंडरस्टैंडिंग, सिर्फ जानना।

जो लोग कृष्णमूर्ति से परिचित हैं, उन्हें यह स्मरण में ले लेना उपयोगी होगा कि कृष्णमूर्ति का सारा विचार सांख्य है। लेकिन सांख्य को समझना कठिन है।

जैसे एक आदमी दुख में पड़ा है, हम उससे कहें कि केवल जान लेना है कि दुख क्या है और तू बाहर हो जाएगा। वह आदमी कहेगा, जानता तो मैं भलीभांति हूं कि दुख है। जानने से कुछ नहीं होता; मुझे इलाज चाहिए, औषधि चाहिए। कुछ करो कि मेरा दुख चला जाए।

एक आदमी, जो वस्तुत: चिंतित और परेशान है, विक्षिप्त है, पागल है, उससे हम कहें कि सिर्फ जानना काफी है और तू पागलपन के बाहर आ जाएगा। वह आदमी कहेगा, जानता तो मैं काफी हूं; जानने को अब और क्या बचा है! लेकिन जानने से पागलपन नहीं मिटता। कुछ और करो! जानने के अलावा भी कुछ और जरूरी है।

कृष्ण ने अर्जुन को सबसे पहले सांख्य की दृष्टि कही, क्योंकि यदि सांख्य काम में आ जाए तो किसी और बात के कहने की कोई जरूरत नहीं है। न काम में आए, तो फिर किसी और बात के कहने की जरूरत पड़ सकती है।

सुकरात का बहुत ही कीमती वचन है, जिसमें उसने कहा है, नालेज इज वर्च्यू, ज्ञान ही सदगुण है। वह कहता था, जान लेना ही ठीक हो जाना है। उससे लोग पूछते थे कि हम भलीभांति जानते हैं कि चोरी बुरी है, लेकिन चोरी छूटती नहीं! तो सुकरात कहता, तुम जानते ही नहीं कि चोरी क्या है। अगर तुम जान लो कि चेरी क्या है, तो छोड़ने के लिए कुछ भी न करना होगा।

हम जानते हैं, क्रोध बुरा है; हम जानते हैं, भय बुरा है; हम जानते हैं, काम बुरा है, वासना बुरी है, लोभ बुरा है, मद—मत्सर सब बुरा है; सब जानते हैं। सांख्य या सुकरात या कृष्णमूर्ति, वे सब कहेंगे : नहीं, जानते नहीं हो। सुना है कि क्रोध बुरा है, जाना नहीं है। किसी और ने कहा है कि क्रोध बुरा है, स्वयं जाना नहीं है। और जानना कभी भी उधार और बारोड नहीं होता। जानना सदा स्वयं का होता है। फर्क है दोनों बातों में।

एक बच्चे ने सुना है कि आग में हाथ डालने से हाथ जल जाता है, और एक बच्चे ने आग में हाथ डालकर देखा है कि हाथ जल जाता है। इन दोनों बातों में जमीन—आसमान का फर्क है। दोनों के वाक्य एक से हैं। जिसने सिर्फ सुना है, वह भी कहता है, मैं जानता हूं कि आग में हाथ डालने से हाथ जल जाता है। और जिसने आग में हाथ डालकर जाना है, वह भी कहता है, मै जानता हूं कि आग मे हाथ डालने से हाथ जल जाता है।

इन दोनों के वचन एक—से है, लेकिन इन दोनों की मनःस्थिति एक—सी नहीं है। और जिसने सिर्फ सुना है, वह कभी हाथ डाल सकता है। और जिसने जाना है, वह कभी हाथ नहीं डाल सकता है। और जिसने सिर्फ सुना है, वह कभी हाथ डालकर कहेगा कि जानता तो मैं था कि हाथ डालने से हाथ जल जाता है, फिर मैंने हाथ क्यों डाला? वह जानने में भूल कर रहा है। दूसरे से मिला हुआ जानना, जानना नहीं हो सकता।

जिस जानने की सांख्य बात करता है, जिस नोइंग की सांख्य बात करता है, वह वह जानना है, जो उधार नहीं है। इस जानने से क्या हो जाएगा? एक छोटी—सी कहानी से बात समझाने की कोशिश करूं।

दूसरे महायुद्ध में ऐसा हुआ कि एक आदमी युद्ध—स्थल पर आहत हो गया। जब होश में आया बेहोशी से, तो पता चला कि उसे सब स्मरण भूल गया है; वह अपना सब अतीत भूल चुका है। उसे यह भी पता नहीं है कि उसका नाम क्या है! कठिनाई न आती, क्योंकि सेना में नाम की कोई जरूरत नहीं होती। लेकिन उसका नंबर भी खो गया युद्ध के स्थल पर।

सेना में तो आदमी नंबर से जाना जाता है, सेना में नाम से नहीं जाना जाता। सुविधा है नंबर से जानने में। और जब पता चलता है कि ग्यारह नंबर आज मर गया, तो कोई तकलीफ नहीं होती। क्योंकि नंबर के न बाप होते, न मा होती, न बेटा होता। नंबर का कोई भी नहीं होता। नंबर मर जाता है, मर जाता है। तख्ती पर सूचना, लग जाती है कि इतने नंबर गिर गए। किसी को कहीं कोई पीड़ा नहीं होती। नंबर रिप्लेस हो जाते हैं। दूसरा नंबर ग्यारह नंबर उसकी जगह आ जाता है। किसी आदमी को रिप्लेस करना मुश्किल है, लेकिन नंबर को रख देना नंबर की जगह कोई कठिन नहीं है। यह मिलिटरी तो नंबर से चलती है। दफ्तर में नाम होते हैं, रजिस्टर में।

लेकिन उसका नंबर भी खो गया है। उसे नाम याद नहीं रहा।। अब वह कौन है? अब क्या करें? उसे कहां भेजे? उसका घर कहा है? उसके मां—बाप कहां हैं? बहुत कोशिश की, खोज—बीन की,। कुछ पता नहीं चल सका। फिर आखिर किसी ने सुझाव दिया कि। एक ही रास्ता है कि उसे इंग्लैंड के गांव—गाव में घुमाया जाए। शायद कहीं उसे देखकर याद आ जाए कि यह मेरा घर है, यह मेरा गांव है। शायद वह जान ले।

फिर उसे ले गए। स्टेशनों पर उसे उतारकर खड़ा कर देते, वह देखता रह जाता; कुछ याद न आता। फिर तो जो ले गए थे घुमाने, वे भी थक गए। एक छोटे स्टेशन पर, जिस पर उतरकर देखने का इरादा भी नहीं है, गाड़ी खडी है, चलने को है। उस आदमी ने खिड़की से झांककर देखा और उसने कहा, मेरा गांव! उतरा, बताना ही भूल गया, कि जो साथ थे उनको बता दे। भागा, सड़क पर आ गया। चिल्लाया, मेरा घर! दौड़ा, गली में पहुंचा। दरवाजे के सामने खड़े होकर कहा, मेरी मां! लौटकर पीछे देखा, साथी पीछे भागकर आए हैं। उनसे बोला, यह रहा मेरा नाम। याद आ गया।

सांख्य कहता है, आत्मज्ञान सिर्फ रिमेंबरेंस है, सिर्फ स्मरण है। कुछ खोया नहीं है, कुछ मिटा नहीं है, कुछ गया नहीं है, कुछ नया बना नहीं है, सिर्फ स्मृति खो गई है। और जिसे हम जानने जा रहे हैं, अगर वह नया जानना है, तब तो फिर कुछ और करना पड़ेगा। लेकिन अगर वह भूला हुआ ही है, जिसे पुन: जानना है, तब कुछ करने की जरूरत नहीं है, जान लेना ही काफी है।

तो कृष्ण ने कहा कि अभी जो मैने तुझसे कहा अर्जुन, वह सांख्य की दृष्टि थी। इस पूरे वक्त कृष्ण ने सिर्फ स्मरण दिलाने की कोशिश की, कि आत्मा अमर है; न उसका जन्म है, न उसकी मृत्यु है। स्मरण दिलाया कि अव्यक्त था, अव्यक्त होगा, बीच में व्यक्त का थोड़ा—सा खेल है। स्मरण दिलाया कि जो तुझे दिखाई पड़ते हैं, वे पहले भी थे, आगे भी होंगे। स्मरण दिलाया कि जिन्हें तू मारने के भय से भयभीत हो रहा है, उन्हें मारा नहीं जा सकता है।

इस पूरे समय कृष्ण क्या कर रहे है? कृष्ण अर्जुन को, जैसे उस सिपाही को घुमाया जा रहा है इंग्लैंड में, ऐसे उसे किसी विचार के लोक में घुमा रहे हैं कि शायद कोई विचार—कण, कोई स्मृति चोट कर जाए और वह कहे कि ठीक, यही है। ऐसा ही है। लेकिन ऐसा वह नहीं कह पाता।

वह शिथिल गात, अपने गांडीव को रखे, उदास मन, वैसा ही हताश, विषाद से घिरा बैठा है। वह कृष्ण की बातें सुनता है। वह उसे पूरे इंग्लैंड में घुमा दिए—हर स्टेशन, हर जगह। कहीं भी उसे स्मरण नहीं आता कि वह दौड़कर कहे, कि यह रहा मै; ठीक है, बात अब बंद करो, पहचान आ गई; रिकग्नीशन हुआ, प्रत्यभिज्ञा हुई, स्मरण आ गया है। ऐसा वह कहता नहीं। वह बैठा है। वह रीढ़ भी नहीं उठाता; वह सीधा भी नहीं बैठता। उसे कुछ भी स्मरण नहीं आ रहा है।

इसलिए कृष्ण उससे कहते हैं कि अब मैं तुझसे कर्मयोग की बात कहता हूं। सांख्ययोग श्रेष्ठतम योग है। अब मैं तुझसे कर्मयोग की बात करता हूं। वे जो जानने से ही नहीं जान सकते, जिन्हें कुछ करना ही पड़ेगा, जो बिना कुछ किए स्मरण ला ही नहीं सकते— अब मैं तुझसे कर्मयोग की बात कहता हूं।

प्रश्न :
भगवान श्री, झेन बुद्धिज्म में, जैसे कि अद्वैत वेदांत में ब्रह्म आता है, तो लेन बुद्धिज्म में तो कुछ ऐसा है नहीं, तो आप साम्यता जो बता रहे हैं, उसकी स्पष्टता करें। और दूसरी बात यह है कि वेस्टर्न फिलासफर्स सांख्य का कभी पुरस्कार करते हैं, तो इसलिए कि सांख्य निरीश्वरवादी है। लेकिन कोई—कोई विद्वान ऐसा कहते हैं कि सांख्य निरीश्वरवादी नहीं है। तो यह भी है। तो वेस्टर्न फिलासफर्स निरीश्वरवादी है, इसलिए सांख्य का स्वीकार करते हैं? और झेन और सांख्य दोनों में ब्रह्म तत्व का स्थान क्या हो सकता है?

झेन और सांख्य के बीच जो साम्य मैंने कहा, उस साम्य का कारण है। ब्रह्म की चर्चा नहीं, उस साम्य का कारण है ज्ञान की प्रधानता। झेन कहता है, करने को कुछ भी नहीं है; और जो करेगा, वह व्यर्थ ही भटकेगा। झेन तो यहां तक कहता है कि तुमने खोजा कि तुम भटके। खोजो ही मत, खड़े हो जाओ और जान लो। क्योंकि तुम वही हो, जिसे तुम खोज रहे हो। झेन कहता है, जिसने प्रयास किया, वह मुश्किल में पड़ेगा। क्योंकि जिसे हमें पाना है, वह प्रयास से पाने की बात नहीं है। केवल अप्रयास में, एफर्टलेसनेस में जानने की बात है।

झेन कहता है, पा सकते हैं श्रम से उसे, जो हमारा नही है। पा सकते हैं श्रम से उसे, जो हमें मिला हुआ नहीं है। धन पाना हो तो बिना श्रम के नहीं मिलेगा, धन पाने के लिए श्रम करना होगा। धन हमारा कोई स्वभाव नहीं है। एक आदमी को दूसरे के घर जाना हो, तो रास्ता चलना पड़ेगा, क्योंकि दूसरे का घर अपना घर नहीं है। लेकिन एक आदमी अपने घर में बैठा हो और पूछता हो कि मुझे मेरे घर जाना है, मै किस रास्ते से जाऊं? तो झेन कहता है, जाना ही मत, अन्यथा घर से दूर निकल जाओगे।

एक छोटी—सी कहानी मुझे याद आती है, जो झेन फकीर कहते है। वे कहते हैं, एक आदमी ने शराब पी ली। शराब पीकर आधी रात अपने घर पहुंचा। हाथ—पैर डोलते हैं, आंखों को ठीक दिखाई ?[नहीं पड़ता। ऐसे भी अंधेरा है, भीतर नशा है, बाहर अंधेरा है। टटोल—टटोलकर किसी तरह अपने दरवाजे तक पहुंच गया है। और फिर थक गया है। बहुत देर से भटक रहा है। फिर जोर—जोर से चिल्लाने लगा कि कोई मुझे मेरे घर पहुंचा दो। मेरी मां राह देखती होगी।

पास—पड़ोस के लोग उठ आए। और उन्होंने कहा, पागल तो नहीं हो गए हो! तुम अपने ही घर के सामने खड़े हो, अपने ही घर की सीढ़ियों पर। यही तुम्हारा घर है। लेकिन वह आदमी इतना परेशानी में चिल्ला रहा है कि मुझे मेरे घर पहुंचा दो, मुझे मेरे घर जाना है, मेरी की मां राह देखती होगी, कि सुने कौन। सुनने के लिए भी तो चुप होना जरूरी है। वह आदमी चिल्ला रहा है। पास—पड़ोस के लोग उससे कह रहे हैं, यही तुम्हारा घर है।

लेकिन यही तुम्हारा घर है—यह भीतर कैसे प्रवेश करे? वह आदमी तो भीतर चिल्ला रहा है, मेरा घर कहां है? शोरगुल सुनकर उसकी बूढ़ी मां भी उठ आई, जिसकी तलाश में वह है। उसने दरवाजा खोला, उसने उसके सिर पर हाथ रखा और कहा, बेटा तुझे क्या हो गया है! उसने उसके ही पैर पकड़ लिए और उसने कहा कि मेरी की मां राह देखती होगी; मुझे रास्ता बताओ कि मेरा घर कहां है?

तो पास—पड़ोस में कोई मजाक करने वाले लोग एक बैलगाड़ी लेकर आ गए और उन्होंने कहा कि बैठो, हम तुम्हें तुम्हारे घर पहुंचा देते हैं। वह आदमी बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने कहा कि यह भला आदमी है। ये सारे लोग मुझे घर पहुंचाने का कोई उपाय ही नहीं करते! कोई उपाय नहीं करता, न कोई बैलगाड़ी लाता, न कोई घोड़ा लाता, न मेरा कोई हाथ पकड़ता। तुम एक भले आदमी हो। उसने उसके पैर पड़े। वह आदमी हंसता रहा। उसे बैलगाड़ी में बिठाया, दस—बारह चक्कर लगाए घर के, फिर उसे द्वार के सामने उतारा। फिर वह कहने लगा, धन्यवाद! बड़ी कृपा की, मुझे मेरे घर पहुंचा दिया।

अब कृष्ण अर्जुन से कोशिश कर चुके पहली वाली कि यही तेरा घर है। अब नहीं मानता, तो बैलगाड़ी जोतते हैं। वे कहते है, कर्मयोग में चल। अब त चक्कर लगा। अब तू दस—पांच चक्कर लगा ले, फिर ही तुझे खयाल में आ सकता है कि पहुंचा। बिना चले तू स्वयं तक भी नहीं पहुंच सकता है।

झेन कहता है कि जिसे हम खोज रहे हैं, वह वहीं है जहां हम है; इंचभर का फासला नहीं है। इसलिए जाओगे कहां? खोजोगे कैसे? श्रम क्या करोगे? असल में श्रम करके हम पराए को पा सकते हैं, स्वयं को नहीं। स्वयं तो सब श्रम के पहले उपलब्ध है।

तो झेन और सांख्य का जो साम्य मैंने कहा, वह इसलिए कहा कि सांख्य भी कर्म को व्यर्थ मानता है, कोई अर्थ नहीं है कर्म का। झेन भी कर्म को व्यर्थ मानता है, कोई अर्थ नहीं कर्म का। क्योंकि जिसे जानना है, वह सब कर्मों के पहले ही मिला हुआ है, आलरेडी एचीव्‌ड।

तो जो अड़चन है, जो कठिनाई है, जो समझ में हमें नहीं आती, वह इसं तरह की है कि कोई चीज जो हमें मिली हुई नहीं है, उसे पाना है, यह एक बात है। और कोई चीज जो हमें मिली ही है, उसे सिर्फ जानना है, यह बिलकुल दूसरी बात है। यदि आत्मा भीतर है ही, तो कहां खोजना है? और अगर मैं ब्रह्म हूं ही, तो क्या करना है? करने से क्या संबंध है? करने से क्या होगा?

नहीं; न—करने में उतरना होगा, नान—एक्शन में उतरना होगा, अकर्म में उतरना होगा। छोड़ देना होगा करना—वरना और थोड़ी देर रुककर उसे देखना होगा, जो करने के पीछे खड़ा है, जो सब करने का आधार है, फिर भी करने के बाहर है।

एक और झेन कहानी मुझे याद आती है कि झेन में कोई पाच सौ वर्ष पहले, एक बहुत अदभुत फकीर हुआ, बांकेई। जापान का सम्राट उसके दर्शन को गया। बड़ी चर्चा सुनी, बड़ी प्रशंसा सुनी, तो गया। सुना उसने कि दूर—दूर पहाड़ पर फैली हुई मोनेस्ट्री है, आश्रम है। कोई पांच सौ भिक्षु वहां साधना में रत हैं। तो गया। बांकेई से उसने कहा, एक—एक जगह मुझे दिखाओ तुम्हारे आश्रम की, मैं काफी समय लेकर आया हूं। मुझे बताओ कि तुम कहा—कहा क्या—क्या करते हो? मैं सब जानना चाहता हूं।

आश्रम के दूर—दूर तक फैले हुए मकान हैं। कहीं भिक्षु रहते हैं, कहीं भोजन करते हैं, कहीं सोते हैं, कहीं स्नान करते हैं, कहीं अध्ययन करते हैं—कहीं कुछ, कहीं कुछ। बीच में आश्रम के सारे विस्तार के बीच एक बड़ा भवन है, स्वर्ण—शिखसे, से मंडित एक मंदिर है।

बांकेई ने कहा, भिक्षु जहां—जहां जो—जो करते है, वह मैं आपको दिखाता हूं। फिर वह ले चला। सम्राट को ले गया भोजनालय में!

और कहां, यहां भोजन करते हैं। ले गया स्नानगृहों में कि यहां स्नान करते है भिक्षु। ले गया जगह—जगह। सम्राट थकने लगा। उसने कहा कि छोड़ो भी, ये सब छोटी—छोटी जगह तो ठीक हैं, वह जो बीच में स्वर्ण—शिखरों से मंडित मंदिर है, वहां क्या करते हो? वहां ले चलो। मैं वह देखने को बड़ा आतुर हूं।

लेकिन न मालूम क्या हो कि जैसे ही सम्राट उस बीच में उठे शिखर वाले मंदिर की बात करे, बांकेई एकदम बहरा हो जाए, वह सुने ही न। एक दफा सम्राट ने सोचा कि शायद चूक गया, खयाल में नहीं आया। फिर दुबारा जोर से कहा कि और सब बातें तो तुम ठीक से सुन लेते हो! यह स्नानगृह देखने मैं नहीं आया, यह भोजनालय देखने मैं नहीं आया, उस मंदिर में क्या करते हो? लेकिन बांकेई एकदम चुप हो गया, वह सुनता ही नहीं। फिर घुमाने लगा—यहां यह होता है, यहां यह होता है।

आखिर वापस द्वार पर लौट आए उस बीच के मंदिर में बांकेई नहीं ले गया। सम्राट घोड़े पर बैठने लगा और उसने कहा, या तो मैं पागल हूं या तुम पागल हो। जिस जगह को मैं देखने आया था, तुमने दिखाई ही नहीं। तुम आदमी कैसे हो? और मैं बार—बार कहता हूं कि उस मंदिर में ले चलो, वहा क्या करते हैं? तुम एकदम बहरे हो जाते हो। सब बात सुनते हो, इसी बात में बहरे हो जाते हो!

बांकेई ने कहा, आप नहीं मानते तो मुझे उत्तर देना पड़ेगा। आपने कहा, वहां—वहां ले चलो, जहां—जहां भिक्षु कुछ करते हैं, तो मैं वहां—वहां ले गया। वह जो बीच में मंदिर है, वहां भिक्षु कुछ भी नहीं करते। वहा सिर्फ भिक्षु भिक्षु होते हैं। वह हमारा ध्यान मंदिर है, मेडिटेशन सेंटर है। वहा हम कुछ करते नहीं, सिर्फ होते हैं। वहा डूइंग नहीं है, वहां बीइंग है। वहां करने का मामला नहीं है। वहा जब करने से हम थक जाते हैं और सिर्फ होने का आनंद लेना चाहते है, तो हम वहां भीतर जाते है। अब मेरी मजबूरी थी, आपने कहा था, क्या करते है, वहां ले चलो।

अगर मैं उस भवन में ले जाता, आप पूछते कि भिक्षु यहां क्या करते है, तो मै क्या कहता? और नहीं करने की बात आप समझ सकते, इसकी मुझे आशा नहीं है। अगर मैं कहता, ध्यान करते हैं, तो भी गलती होती, क्योंकि ध्यान कोई करना नहीं है, ध्यान कोई एक्शन नहीं है। अगर मैं कहता, प्रार्थना करते हैं, तो भी गलती , होती; क्योंकि प्रार्थना कभी कोई कर नहीं सकता, वह कोई एक्ट नहीं है, भाव है। तो मैं मुश्किल में पड़ गया, इसलिए मुझे मजबूरी में बहरा हो जाना पड़ा। फिर मैंने सोचा, बजाय गलत बोलने के यही उचित है कि आप मुझे पागल या बहरा समझकर चले जाएं।

झेन कहता है, ध्यान अर्थात न—करना। इस न—करने में ही वह जाना जाता है, जो है। सांख्य और झेन का इस वजह से साम्य है। झेन बात नहीं करता ब्रह्म की। क्योंकि झेन का कहना यह है कि जब तक ध्यान नहीं, जब तक ज्ञान नहीं, तब तक ब्रह्म की बात व्यर्थ है। और जब ज्ञान हुआ, ध्यान हुआ, तब. भी ब्रह्म की बात व्यर्थ है। क्योंकि जिसे हमने नहीं जाना, उसकी बात क्या करें! और जिसे हमने जान लिया, उसकी बात की क्या जरूरत है! इसलिए झेन चुप है, वह मौन है; वह ब्रह्म की बात नहीं करता।

लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि ब्रह्म नहीं जानता। यह तो निर्भर करेगा व्यक्तियों पर। सांख्य बात करता है, इसी आशा में कि शायद उसकी चर्चा—उसकी चर्चा से उसे जाना नहीं जा सकता, लेकिन उसकी चर्चा शायद किसी के मन में छिपी हुई प्यास पर चोट बन जाए। शायद उसकी चर्चा किसी के मन में चल रही आकांक्षा को मार्ग दे दे। शायद उसकी चर्चा ऊंट के लिए आखिरी तिनका सिद्ध हो जाए। कोई बिलकुल बैठने को ही था ऊंट, एक तिनका और—एक तिनके से कहीं ऊंट बैठा है! लेकिन शायद किसी बैठते ऊंट को तिनका सिद्ध हो जाए, वह बैठ जाए।

इसलिए सांख्य बात करता है। लेकिन कैसे मिलेगा वह? कुछ करने से? नहीं; जानने से। जानना और करना, डूइंग और नोइंग का जो फर्क है, उस मामले में झेन और सौख्य बिलकुल समान है। और जगत में जितने भी परम इतनी हुए हैं, उन सब परम ज्ञानियों की बातों में सांख्य तो होगा ही। सांख्य से बचा नहीं जा सकता। सौख्य तो होगा ही। यह हो सकता है कि किसी की चर्चा में शुद्ध सांख्य हो। तब ऐसा आदमी बहुत कम लोगों के काम का रह जाएगा।

जैसे बुद्ध। बुद्ध की चर्चा शुद्ध सांख्य है। इसलिए हिंदुस्तान से बुद्ध के पैर उखड़ गए। क्योंकि सिर्फ जानना, सिर्फ जानना, सिर्फ जानना! करना कुछ भी नहीं! वह जो इतना बड़ा जगत है, जहां सब करने वाले इकट्ठे हैं, वे कहते है कि कुछ तो करने को बताओ, कुछ पाने को बताओ! बुद्ध कहते हैं, न कुछ पाने को है, न कुछ करने को। झेन जो है, वह बुद्धिज्म की शाखा है। वह शुद्धतम बुद्ध का विचार है। लेकिन हिंदुस्तान के बाहर बुद्ध के पैर जम गए—चीन में, बर्मा में, थाईलैंड में, तिब्बत में। क्योंकि जो अशुद्धि करने के लिए बुद्ध का विचार हिंदुस्तान में राजी नहीं हुआ, तो यहां उसके पैर उखड़ गए, तो वही समझौता उसे करना पड़ा, जो यहां करने को राजी नहीं हुआ।

तिब्बत में वह करना बन गया, रिचुअल बन गया। चीन में जाकर उसने करने के लिए स्वीकृति दे दी कि ऐसा—ऐसा करो। थाईलैंड में वह करना बन गया, लंका में करना बन गया। वह कर्मयोग बना। जब तक वह सांख्य रहा शुद्ध, तब तक उसकी जड़ें फैलनी मुश्किल हो गईं।

थोडे से लोगों की ही पकड़ में आ सकती है शुद्ध सांख्य की बात। इसलिए श्रेष्ठतम विचार सांख्य ने दिया, लेकिन सांख्य को मानने वाला आदमी हिंदुस्तान में खोजे से नहीं मिलेगा। सब तरह के, हजार तरह के मानने वाले आदमी मिल जाएंगे, साख्य को मानने वाला आदमी नहीं मिलेगा। सांख्य के लिए समर्पित एक मंदिर नहीं है। सांख्य के जन्मदाता के लिए समर्पित एक मूर्ति नहीं है।

असल में जो एब्लोत्थूट टूथ की बात करेंगे, उनको राजी होना चाहिए कि आम जनता तक उनकी खबर मुश्किल से पहुंचेगी। जो पूर्ण सत्य की बात करेंगे, उनको राजी रहना चाहिए कि उनकी बात बहुत आकाश में घूमती रहेगी। जमीन तक उतारना बहुत मुश्किल है। क्योंकि यहां जमीन पर सिर्फ अशुद्ध सत्य उतरते हैं। यहां जमीन पर जिस सत्य को भी पैर जमाने हों, उसे जमीन के साथ समझौता करना पड़ता है।

कृष्ण ने पहले नानकंप्रोमाइजिंग सौख्य की बात की। कहा कि मैं तुझे सांख्य की बुद्धि बताता हूं। लेकिन देखा कि अर्जुन के भीतर उसकी जड़ें नहीं पहुंच सकतीं। इसलिए दूसरे, सेकेंडरी वे कहते हैं, अब मैं तुझसे कर्मयोग की बात कहता हूं।

और एक बात और पूछी है कि पश्चिम में क्या साख्य की चर्चा जिन दार्शनिकों ने की है, उनका कारण यही तो नहीं है कि सांख्य निरीश्वरवादी है?

असल में जो भी ब्रह्मवादी है, वह ईश्वरवादी हो नहीं सकता। जो भी ब्रह्मवादी है, वह ईश्वरवादी हो नहीं सकता। अगर वह ईश्वर को जगह भी देगा, तो वह माया के भीतर ही होगी जगह, बाहर नहीं हो सकती। वह इलूजन के भीतर ही होगी। या तो वह कह देगा, कोई ईश्वर नहीं है, ब्रह्म पर्याप्त है, अव्यक्त पर्याप्त है। या अगर समझौता किया उसने आपसे, तो वह कहेगा, ईश्वर है; वह भी अव्यक्त का एक रूप है, लेकिन माया के घेरे के भीतर। वह सिर्फ !? आपसे समझौता कर रहा है।

सांख्य के जो मौलिक सूत्र हैं, वे शुद्धतम हैं। उनमें ईश्वर की कोई जगह नहीं है। ईश्वर का मतलब समझ लेना आप, ब्रह्म का फर्क समझ लेना।

ईश्वर का मतलब है, दि क्रिएटर, सृजन करने वाला। ब्रह्म का अर्थ है, शुद्धतम जीवन की ऊर्जा। ईश्वर के पहले भी ब्रह्म है। ईश्वर भी बनते और मिटते हैं, ईश्वर भी आते और जाते है। ईश्वर हमारी धारणाएं हैं।

इसे ऐसा समझें कि मैं एक अंधेरी रात में चल रहा हूं। दूर, दो—चार मील दूर कुछ दिखाई पड़ता है। लगता है कि कोई पुलिस वाला खड़ा है। और मीलभर चलकर आता हूं पास, तो दिखाई पड़ता है, पुलिस वाला नहीं है, कोई झाडू का ठूंठ है। और मीलभर चलकर आता हूं, तो पाता हूं, झाडू का ठूंठ भी नहीं है, स्वतंत्रता का स्मारक है। जो है, वह वही है। और पता नहीं मीलभर बाद चलकर पता क्या चले! जो है, वह तो वही है। मैं आगे आता जा रहा हूं।

जो लोग ब्रह्म की यात्रा पर निकलते हैं, यात्रा के अंत पर जिसे पाते हैं, वह ब्रह्म है। और यात्रा पास आती जाती है, पास आती जाती है, उस पास आते जाते में जिसे पाते हैं, वह ईश्वर है। ईश्वर ब्रह्म को दूर से देखा गया कंसेप्शन है, धारणा

है। हम सोच ही नहीं सकते ब्रह्म को। जब हम सोचते हैं, तब हम ईश्वर बना लेते हैं। निर्गुण को हम सोच ही नहीं सकते, जब सोचते हैं तो सगुण बना लेते हैं। निराकार को हम सोच नहीं सकते, जब सोचते हैं तो उसे भी आकार दे देते हैं।

ब्रह्म मनुष्य के मन से जब देखा जाता है, तब ईश्वर निर्मित होता है। यह ईश्वर मनुष्य का निर्माण है। जैसे—जैसे आगे जाएगा, विचार छोड़ेगा, छोड़ेगा और निर्विचार होगा, उस दिन पाएगा, ईश्वर भी खो गया। अब जो शेष रह जाता है निराकार, निर्गुण, वही ब्रह्म है।

तो शुद्धतम सूत्र में तो सांख्य राजी नहीं है। क्योंकि सांख्य कहता है, बीच के मुकाम बनाने नहीं हैं। लेकिन सांख्य की भी बाद में एक ?? दूसरी धारा फूटी। निरीश्वर सांख्य तो था ही, लेकिन वह भी हवा में खोने लगा, तो सेश्वर सांख्य भी निर्मित हुआ। कुछ लोगों ने समझौते किए और सांख्य में भी ईश्वर को जोड़ा। और कहा कि काम नहीं चलेगा, क्योंकि आदमी ब्रह्म को पकड़ नहीं पाता, उसके लिए बीच की मंजिलें बनानी पड़ेगी। और न ही पकड़ पाए, इससे। तो अच्छा है कि चार कदम चले और ईश्वर को पकड़े। फिर ईश्वर को छुड़ा लेंगे। चलने को ही जो राजी न हो, उसे चार कदम।, चलाओ। चार कदम चलने के बाद कहेंगे कि यह जो तुम्हें दिखाई। पड़ता था, गलत दिखाई पड़ता था, इसे छोड़ो। और चार कदम चलो। हो सकता है, बीच में कई ईश्वर के मंदिर खड़े करने पड़े—इससे पहले कि ब्रह्म का अव्यक्त, ब्रह्म का निराकार मंदिर प्रकट हो।

पश्चिम में जो सांख्य का प्रभाव है, वह निरीश्वरवादी होने की वजह से नहीं है। पश्चिम में भी जो बुद्धिमान, विचारशील आदमी पैदा हुआ है, वह भी जानता है कि बात तो सिर्फ ज्ञान की ही है, सिर्फ जान लेने की ही है। अगर हमें समझ में न आए, तो वह हमारी मजबूरी है, लेकिन बात केवल जान लेने की है। अगर इकहार्ट से पूछें, या प्लेटिनस से पूछे, या बोहेम से पूछें, तो पश्चिम में भी जो आदमी जानता है, वह कहेगा, बात तो यही है कि सिर्फ जान लेना है, और कुछ भी नहीं करना है। जरा हिले करने के लिए—कि चूक हुई। क्योंकि करना बिना हिले न होगा। करेंगे तो हिलना ही पड़ेगा। और वह जो अकंप है, वह हम जरा भी हिले कि खोया।

उसी की तरह अकंप हो जाना पड़ेगा। जैसे दीए की लौ किसी बंद घर में—जहां हवा के झोंके न आते हों—अकंप जलती है। ऐसे ही अकर्म में व्यक्ति की चेतना अकंप हो जाती है; अकर्म में, नान—स्थान में अकंप हो जाती है। और जैसे ही व्यक्ति की चेतना अकंप होती है, विराट की चेतना से एक हो जाती है।

पश्चिम में भी प्रभाव सांख्य का है। और मैं मानता हूं कि जैसे—जैसे मनुष्य की बुद्धि और विकसित होगी, सौख्य और भी प्रभावी होता चला जाएगा। भारत में उतना प्रभाव सांख्य का नहीं है। भारत में प्रभाव योग का है, जो कि बिलकुल ही दूसरी, उलटी बात है। योग कहता है, कुछ करना पड़ेगा। योग मनुष्य की निम्नतम बुद्धि से चलता है। सांख्य मनुष्य की श्रेष्ठतम बुद्धि से स्वभावतः, जो श्रेष्ठतम से शुरू करेगा, वह आखिर तक नहीं आ पाएगा। और अक्सर ऐसा होता है कि जो आखिरी से शुरू करेगा, वह चाहे तो श्रेष्ठतम तक पहुंच जाए।

सांख्य शुद्धतम ज्ञान है, योग शुद्धतम किया है। और अगर हम सारी दुनिया के चिंतन को दो हिस्सों में बाटना चाहें, तो सांख्य और योग दो शब्द काफी हैं। जिनका भी करने पर भरोसा है, उनको योग में; और जिनको न—करने पर भरोसा है, सिर्फ जानने पर भरोसा है, उनको सौख्य में। असल में जगत में सांख्य और योग के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। बाकी सब इन दो केटेगरी में कहीं न कहीं खड़े होंगे। चाहे दुनिया के किसी कोने में कोई चिंतन पैदा हुआ हो जीवन के प्रति, बस दो ही विभाजन में बांटा जा सकता है।

असल में पूरब और पश्चिम की फिलासफी बांटनी बंद करनी चाहिए; जैन, हिंदू मुसलमान की फिलासफी बांटनी बंद करनी चाहिए; सिर्फ दो विभाजन किए जाने चाहिए, योग और सांख्य। योग पर वे आस्थाएं, जो कहती हैं, कुछ करने से होगा। सांख्य पर वे आस्थाएं, जो कहती हैं, कुछ न करने से ही होता है।

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते ।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् ।।40।।

इस निष्काम कर्मयोग में आरंभ का अर्थात बीज का नाश नहीं है, और उलटा फलस्वरूप दोष भी नहीं होता है,

इसलिए इस निष्काम कर्मयोगरूप धर्म का थोड़ा भी साधन, जन्म—मृत्युरूप महान भय से उद्धार कर देता है।

कृष्ण कह रहे हैं कि निष्काम कर्म का कोई भी कदम व्यर्थ नहीं जाता है। इसे समझना जरूरी है। निष्काम कर्म का छोटा—सा प्रयास भी व्यर्थ नहीं जाता है। लेकिन इससे उलटी बात भी समझ लेनी चाहिए। सकाम कर्म का बड़े से बड़ा प्रयास भी व्यर्थ ही जाता है।

एक घर में मैं अभी ठहरा था। चिंतित थे, जिनके घर रुका था। रात नींद नहीं आती थी, तो मैंने पूछा, बात क्या है? उन्होंने कहा, क्या बताएं, बड़ी मुसीबत टूट पड़ी है, पांच लाख का नुकसान हो गया। स्वभावत:, पांच लाख का नुकसान लगा हो, तो बड़ी मुसीबत टूट ही गई है। मैंने उनकी पत्नी को पूछा, क्या हो गया? कैसे नुकसान लग गया पांच लाख का? उनकी पत्नी ने कहा, आप इनकी बातों में मत पड़ जाना। पांच लाख का नुकसान नहीं लगा है, पांच लाख का लाभ हुआ है!

मैं तो बहुत मुश्किल में पड़ गया। मैने कहा कि क्या कहती हो! उसने कहा, बिलकुल ठीक कहती हूं। उनको दस लाख के लाभ की आशा थी, पाच लाख का ही लाभ हुआ है, इसलिए उनको पाच लाख का नुकसान हो गया है। नींद हराम है, दवाएं चल रही हैं, ब्लड—प्रेशर बढ़ा हुआ है। कोई उपाय नहीं है उनको समझाने का कि पांच लाख का लाभ हुआ है!

मैंने उनसे पूछा। तो उन्होंने कहा कि वह पांच लाख क्या, दस लाख होने ही वाले थे। पंद्रह भी हो सकते थे। पांच का कोई सवाल ही नहीं है। पांच का तो सुनिश्चित नुकसान हुआ है।

अब यह सकाम बुद्धि है, यह सदा असफल होती है; सदा असफल होती है। लाभ हो, तो भी हानि होती है सकाम बुद्धि में। क्योंकि अपेक्षा का कोई अंत नहीं है। जो भी मिलता है, सदा छोटा पड़ता है। जो भी सफलता मिलती है, वह भी किसी बड़ी असफलता के सामने फीकी लगती है। कुछ भी मिल जाए, तो भी तृप्ति नहीं है। कुछ भी मिल जाए, तो भी संतोष की कहीं कोई झलक नहीं आती। सकाम कर्म असफल होने को बाध्य है। असफलता में नहीं है उसका राज, उसका राज सकाम होने में है। अब कृष्ण कहते हैं, निष्काम कर्म का छोटा—सा भी कृत्य सफल ही होता है। होगा ही, क्योंकि असफलता का कोई उपाय नहीं है। जब निष्काम है, तो अपेक्षारहित है। इसलिए जो भी मिल जाए, वह भी बहुत है। क्योंकि कोई अपेक्षा नहीं थी, जिससे उसको छोटा बताया जा सके।

कहानी सुनी है हम सबने कि अकबर ने एक लकीर खींच दी थी दरबार में अपने, और कहा था अपने दरबारियों को कि बिना छुए इसे छोटा कर दो। वे सब हार गए थे और फिर बीरबल ने एक बड़ी लकीर उसके पास खींच दी। उसे छुआ नहीं, काटा नहीं, पोंछा नहीं, सिर्फ एक बड़ी लकीर पास खींच दी। और वह लकीर एकदम छोटी हो गई।

अपेक्षा की बड़ी लकीर जिनके मन में खिंची है, सफलता की सभी लकीरें छोटी पड़ती है। अपेक्षा एंडलेस है—वह जितनी बड़ी खींची थी बीरबल ने, वह कुछ बड़ी नहीं थी—अपेक्षा की जो लकीर है, उसका कोई अंत ही नहीं है। वह दोनों छोरों पर अनंत है। जो लोग ब्रह्म को जानते हैं, वे ब्रह्म को अनंत कहते हैं। लेकिन जिन्होंने ब्रह्म को नहीं जाना, वे भी एक अनंत चीज को जानते हैं। वह अपेक्षा है, एक्सपेक्टेशन है। उस अनंत अपेक्षा के पास खींची गई कोई भी सफलता सदा छोटी पड़ती है।

लेकिन कृष्ण कह रहे है कि अपेक्षा की लकीर मिटा दो। निष्काम कर्म का अर्थ यही है—अपेक्षारहित, फल की आकांक्षारहित, कामनारहित। स्वभावत:, बडी होशियारी की बात उन्होंने कही है। वे कह रहे हैं कि अगर अपेक्षा की लकीर मिटा दो, तो फिर छोटा—सा भी कर्म तृप्ति ही लाता है। क्योंकि कितना ही छोटा हो, तो भी बड़ा ही होता है, क्योंकि तौलने के लिए कोई नीचे लकीर नहीं होती। इसलिए निष्कामकर्मी कभी भी विषाद को उपलब्ध नहीं होता है। सिर्फ सकामकर्मी विषाद को उपलब्ध होता है। फ्रस्ट्रेशन जो है, वह सकाम कर्म की छाया है। निष्काम कर्म की कोई छाया नहीं बनती, कोई विषाद नहीं बनता।

इसलिए एक बहुत मजे की बात ध्यान में ले लेनी जरूरी है, गरीब आदमी ज्यादा विषाद को उपलब्ध नहीं होता, अमीर आदमी ज्यादा विषाद को उपलब्ध होता है। होना नहीं चाहिए ऐसा। बिलकुल नियम को तोड़कर चलती हुई बात मालूम पड़ती है। गरीब समाज ज्यादा परेशान नहीं होते, अमीर समाज बहुत परेशान हो जाते हैं। क्या कारण होगा?

असल में गरीब आदमी अनंत अपेक्षा की हिम्मत नहीं जुटा पाता। वह जानता है अपनी सीमा को। वह जानता है कि क्या हो सकता है, क्या नहीं हो सकता है। अपने वश के बाहर है बात, वह अनंत अपेक्षा की रेखा नहीं बनाता। इसलिए फ्रस्ट्रेशन को उपलब्ध नहीं होता। इसलिए विषाद को उपलब्ध नहीं होता। अमीर आदमी, जिसके पास सुविधा है, संपन्नता है, अपेक्षा की रेखा को अनंत गुना बड़ा करने की हिम्मत जुटा लेता है। बस, उसी के साथ विषाद उत्पन्न हो जाता है।

पाल गुडमेन ने अमेरिका के संबंध में एक किताब लिखी है, ग्रोइंग अप एब्सर्ड। उसमें उसने एक बहुत मजे की बात कही है। उसने कहा है कि मनुष्य जाति ने जिन—जिन सुविधाओं की आकांक्षा की थी, वे सब पूरी हो गई हैं अमेरिका में। मनुष्य जाति ने जो—जो सपने देखे थे, उनसे भी आगे अमेरिका में सफलता मिल गई। लेकिन अमेरिका में जो आदमी है, आज उससे दुखी आदमी बस्तर के जंगल में भी नहीं है। क्या, हो क्या गया? यह एकर्डिटी कहा से आई? यह अजीब बात है कि जो—जो आदमी करोड़ों साल से अपेक्षा कर रहा था, वह सब फलित हो गई है। सब सपने पूरे हो गए हैं। यह क्या हो गया लेकिन? हुआ क्या?

हुआ यह कि सब शक्ति हाथ में होने पर अपेक्षाएं एकदम अनंत हो गईं। इसलिए जो भी पास में है, एकदम छोटा पड़ गया। बस्तर के आदिवासी की बहुत बड़ी अपेक्षा की सामर्थ्य नहीं है, जो भी हाथ में है, काफी बड़ा है।

इसलिए दुनिया में गरीब आदमी कभी बगावत नहीं करते। गरीब ' आदमी अपेक्षा ही नहीं करते कि बगावत कर सकें। दुनिया में बगावत शुरू होती है, जब गरीब आदमी के पास अपेक्षाएं दिखाई पड़ने लगती हैं निकट; तब उपद्रव शुरू होता है। दुनिया में। अशिक्षित आदमी बगावत नहीं करते, क्योंकि अपेक्षा बाध नहीं पाते। शिक्षित आदमी उपद्रव शुरू करते हैं। क्योंकि जैसे ही शिक्षा हुई, अपेक्षाएं एकदम विस्तार लेने लगती हैं। शिक्षित आदमी को शांत करना मुश्किल है। मैं नहीं कहता कि शिक्षित नहीं करना चाहिए; यह मैं नहीं कह रहा हूं। शिक्षित आदमी को शांत करना मुश्किल है। अभी तक तो कोई उपाय नहीं खोजा जा सका।

एक बहुत बड़े विचारक ने तो एक किताब लिखी है, कंपल्सरी मिसएजुकेशन। जिसको हम अनिवार्य शिक्षा कहते हैं, वह उसको अनिवार्य कुशिक्षा.। क्योंकि अगर अंततः आदमी सिर्फ दुखी और अशांत ही होता हो, तो अ, ब, स, द सीख लेने से भी क्या हो जाने वाला है! अगर समृद्धि सिर्फ विषाद ही लाती हो, तो ऐसी समृद्धि से दरिद्रता बेहतर मालूम पड़ सकती है।

लेकिन राज क्या है? सीक्रेट सिर्फ इतना—सा है, समृद्धि से कोई लेना—देना नहीं है, अगर अपेक्षा की धारा बहुत ज्यादा न हो, तो समृद्ध आदमी भी शांत हो सकता है। और अगर अपेक्षा की धारा बहुत बड़ी हो, तो दरिद्र भी अशांत हो जाएगा। अगर अपेक्षा शून्य हो, तो शिक्षित भी शांत हो सकता है। अगर अपेक्षा विराट हो, तो अशिक्षित भी अशांत हो जाता है। प्रश्न शिक्षित—अशिक्षित, धन और दरिद्रता का नहीं है। प्रश्न सदा ही गहरे में अपेक्षा का है, एक्सपेक्टेशन का है।

तो वह कृष्ण कह रहे है कि निष्काम कर्म की तुझसे मैं बात कहता हूं और इसलिए कहता हूं, क्योंकि निष्काम कर्म को करने वाला व्यक्ति कभी भी असफलता को उपलब्ध नहीं होता है। यह पहली बात। और दूसरी बात वे यह कह रहे हैं कि निष्काम कर्म में छोटा—सा भी विध्न, छोटी—सी भी बाधा नहीं आती। क्यों नहीं आती? निष्काम कर्म में ऐसी क्या कीमिया है, क्या केमिस्ट्री है कि बाधा नहीं आती, कोई प्रत्यवाय पैदा नहीं होता!

है। बाधा भी तो अपेक्षा के कारण ही दिखाई पड़ती है। जिसकी अपेक्षा नहीं है, उसे बाधा भी कैसे दिखाई पड़ेगी? गंगा बहती है सागर की तरफ, अगर वह पहले से एक नक्शा बना ले और पक्का कर ले कि इस—इस रास्ते से जाना है, तो हजार बाधाएं आएंगी रास्ते में। क्योंकि कहीं किसी ने मकान बना लिया होगा गंगा से बिना पूछे, कहीं कोई पहाड़ खड़ा हो गया होगा गंगा से बिना पूछे, कहीं चढ़ाई होगी गंगा से बिना पूछे। और नक्श वह पहले बना ले, तो फिर बाधाएं

हजार आएंगी। और यह भी हो सकता है कि बाधाओं से लड़—लड़कर गंगा इतनी मुश्किल में पड़ जाए कि सागर तक कभी पहुंच ही न पाए।

लेकिन गंगा बिना ही नक्शे के, बिना प्लानिंग के चल पड़ती है। रास्ता पहले से अपेक्षा में न होने से, जो भी मार्ग मिल जाता है, वही रास्ता है। बाधा का कोई प्रश्न ही नहीं है। अगर पहाड़ रास्ते में पड़ता है, तो किनारे से गंगा बह जाती है। पहाड़ से रास्ता बनाना किसको था, जिससे पहाड़ बाधा बने!

जो लोग भी भविष्य की अपेक्षा को सुनिश्चित करके चलते हैं, अपने हाथ से बाधाएं खड़ी करते है। क्योंकि भविष्य आपका अकेला नहीं है। किस पहाड़ ने बीच में खड़े होने की पहले से योजना कर रखी होगी, आपको कुछ पता नहीं है।

जो भविष्य को निश्चित करके नहीं चलता, जो अभी कर्म करता है और कल कर्म का क्या फल होगा, इसकी कोई फिक्स, इसकी कोई सुनिश्चित धारणा नहीं बनाता, उसके मार्ग में बाधा आएगी कैसे? असल में उसके लिए तो जो भी मार्ग होगा, वही मार्ग है। और जो भी मार्ग मिलेगा, उसी के लिए परमात्मा को धन्यवाद है। उसको बाधा मिल ही नहीं सकती।

इसलिए कृष्ण कहते हैं, अर्जुन, निष्काम कर्म की यात्रा पर जरा—सा भी प्रत्यवाय नहीं है, जरा—सी भी बाधा नहीं है, जरा—सा भी हिंडरेंस है ही नहीं। पर बड़ी होशियारी की, बड़ी कलात्मक बात है, बहुत आर्टिस्टिक बात है। एकदम से खयाल में नहीं आएगी। एकदम से खयाल में नहीं आएगी कि बाधा क्यों नहीं है? क्या निष्काम कर्म करने वाले आदमी को बाधा नहीं बची?

बाधाएं सब अपनी जगह हैं, लेकिन निष्काम कर्म करने वाले आदमी ने बाधाओं को स्वीकार करना बंद कर दिया। स्वीकृति होती थी अपेक्षाओं से, उनके प्रतिकूल होने से। अब कुछ भी प्रतिकूल नहीं है। निष्काम कर्म की धारणा में बहने वाले आदमी को सभी कुछ अनुकूल है। इसका यह मतलब नहीं है कि सभी कुछ अनुकूल है। असल में जो भी है, वह अनुकूल ही है, क्योंकि प्रतिकूल को तय करने का उसके पास कोई भी तराजू नहीं है। न बाधा है, न विफलता है। सब बाधाएं, सब विफलताएं सकाम मन की निर्मितियां है।

प्रश्न :
भगवान श्री, श्लोक के उत्तरार्द्ध में— स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्—इस धर्म का अति अल्प आचरण भी बड़े भय से बचाता है, इसे भी समझाएं।

निष्काम कर्म का अल्प आचरण भी बड़े—बड़े भयों से बचाता है। बड़े—बड़े भय क्या हैं? बड़े—बड़े भय यही हैं— असफलता तो नहीं मिलेगी! विषाद तो हाथ नही आएगा! दुख तो पल्ले नहीं पड़ेगा! कोई बाधा तो न आ जाएगी! ' निराशा तो नहीं मिलेगी! बड़े—बड़े भय यही हैं। कृष्ण कह रहे हैं, सूत्र के अंतिम हिस्से में, कि निष्काम कर्म का थोड़ा—सा भी आचरण, अंशमात्र आचरण भी, रत्तीभर आचरण भी, पहाड़ जैसे भयों से मनुष्य को मुक्ति दिला देता है।

असल में जब तक विपरीत दशा को न समझ लें, खयाल में नहीं आएगा। जरा—सी अपेक्षा पहाड़ों जैसे भय को निर्मित कर देती है। जरा—सी कामना, पहाड़ों जैसे दुखों का निर्माण कर देती है।। जरा—सी इच्छा पर जोर, जरा—सा आग्रह कि ऐसा ही हो, सारे जीवन को अस्तव्यस्त कर जाता है। जिसने भी कहा, ऐसा ही हो, वह दुख पाएगा ही। ऐसा होता ही नहीं। जिसने भी कहा, ऐसा ही होगा, तो। ही मैं सुखी हो सकता हूं, उसने अपने नर्क का इंतजाम स्वयं ही कर लिया। वह आर्किटेक्ट है अपने नर्क 'का खुद ही; उसने सब व्यवस्था अपने लिए कर ली है।

हम जितने दुख झेल रहे हैं, कभी आपने सोचा कि कितनी छोटी अपेक्षाओं पर खड़े हैं! कितनी छोटी अपेक्षाओं पर! नहीं देखा कभी। हम जो दुख झेल रहे है, कितनी छोटी अपेक्षाओं पर खड़े हैं!

एक आदमी रास्ते से निकल रहा है। आपने सदा उसको नमस्कार किया था, आज आप नमस्कार नहीं करते है, ये दो हाथ ऊपर नहीं उठे आज। उसकी नींद हराम है, वह परेशान है, उसे बुखार चढ़ आया है! अब वह सोचने लगा कि क्या हो गया— कोई बदनामी हो गई, इज्जत हाथ से चली गई, प्रतिष्ठा मिट्टी में मिल गई। जिस आदमी ने सदा नमस्कार की, उसने नमस्कार नहीं किया! क्या होगा g क्या नहीं होगा? अब उसको कैसे बदला चुकाना, और क्या नहीं करना—वह हजार—हजार चक्करों में पड़ गया है। इस आदमी के ये दो हाथों का न उठना, हो सकता है उसकी जिंदगी के सारे भवन को उदासी से भर जाए।

पति घर आया है और उसने कहा, पानी लाओ। और पत्नी नहीं। लाई दो क्षण। सब दुख हो गया! पति घर से बाहर निकला राह चलती किसी स्त्री को उसने आंख उठाकर देख लिया; पत्नी के प्राण अंत हो गए! पत्नी मरने जैसी हालत में हो गई; जीने का कोई अर्थ नहीं रहा, जीना बिलकुल बेकार है!

हम अगर अपने दुखों के पहाड़ को देखें, तो बड़ी क्षुद्र अपेक्षाएं उनके पीछे खड़ी मिलती हैं। यहीं से समझना उचित होगा। क्योंकि निष्काम कर्म का तो अंश भी हमें पता नहीं, लेकिन सकाम कर्म के काफी अंश हमें पता हैं। यहीं से समझना उचित होगा। उसके विपरीत निष्काम कर्म की स्थिति है। कितनी क्षुद्र अपेक्षाएं कितने विराट दुख को पैदा करती चली जाती हैं!

यह जो इतना बड़ा महाभारत हुआ, जानते हैं कितनी क्षुद्र—सी घटना से शुरू हुआ? इतना बड़ा यह युद्ध, यह इतनी—सी क्षुद्र घटना से शुरू हुआ! बहुत ही क्षुद्र घटना से, मजाक से, एक जोक। दुनिया के सभी युद्ध मजाक से शुरू होते हैं।

दुर्योधन आया है। और पांडवों ने एक मकान बनाया है। और अंधे के बेटे की वे मजाक कर रहे हैं। उसमें उन्होंने आईने लगाए हुए हैं। और इस तरह से लगाए हुए हैं कि दुर्योधन को, जहां दरवाजा नहीं है, वहां दरवाजा दिखाई पड़ जाता है; जहां पानी है, वही पानी दिखाई नहीं पड़ता। उसका दीवार से सिर टकरा जाता है, पानी में गिर पड़ता है। द्रौपदी हंसती है। वह हंसी सारे महाभारत के युद्ध का मूल है। उस हंसी का बदला फिर द्रौपदी को नंगा करके चुकाया जाता है। फिर यह बदला चलता है। बड़ी ही क्षुद्र—सी घटना, जस्ट ए जोक, एक मजाक, लेकिन बहुत महंगा पड़ा है। मजाक बढ़ता ही चला गया। फिर उसके कोई आर—पार न रहे और उसने इस पूरे मुल्क को मथ डाला।

एक स्त्री का हंसना! एक घर में चचेरे भाइयों की आपसी मजाक! कभी सोचा भी न होगा कि हंसी इतनी महंगी पड़ सकती है। लेकिन उन्हें पता नहीं कि दुर्योधन की भी अपेक्षाएं हैं। चोट अपेक्षाओं को लग गई। चोट अपेक्षाओं को लग गई। दुर्योधन ने सोचा भी नहीं था कि उस पर हंसा जाएगा—निमंत्रण देकर। उसने सोचा भी नहीं था कि उसका इस तरह मखौल और मजाक उड़ाया जाएगा। वह आया होगा सम्मान लेने, मिला मजाक। उपद्रव शुरू हो गया।

फिर उस उपद्रव के भयंकर परिणाम हुए। जिन परिणामों से मैं नहीं सोचता हूं कि आज तक भी भारत पूरी तरह मुक्त हो पाया है। वह महाभारत में जो घटित हुआ था, उसके परिणाम की प्रतिध्वनि आज भी भारत के प्राणों में चलती है।

जगत में बड़े छोटे—से, छोटे—से कारण सब कुछ करते हैं।

सकाम का हमें पता है, निष्काम का हमें कुछ पता नहीं है। निष्काम कृत्य को भी ठीक ऐसे ही समझें, इसकी उलटी दिशा में। जरा—सा निष्काम भाव, और बड़े—बड़े भय जीवन के दूर हो जाते हैं।

प्रश्न :
भगवान श्री, क्या निष्काम भावना से हमारी प्रगति नहीं रूक जाती है?

पूछ रहे हैं कि निष्काम भावना से हमारी प्रगति नहीं रुक जाती है?

प्रगति का क्या मतलब होता है? अगर प्रगति से मतलब हो कि बहुत धन हो, बड़ा मकान हो, जायदाद हो, जमीन हो, तो शायद—तो शायद—थोड़ी रुकावट पड़ सकती है। लेकिन अगर प्रगति से अर्थ है, शांति हो, आनंद हो, प्रेम हो, जीवन में प्रकाश हो, ज्ञान हो, तो रुकावट नहीं पड़ती, बड़ी गति मिलती है। इसलिए आपकी प्रगति का क्या मतलब है, इस पर निर्भर करेगा। प्रगति से आपका क्या मतलब है? अगर प्रगति से यही मतलब है जो बाहर इकट्ठा होता है, तब तो शायद थोड़ी बाधा पड़ सकती है। लेकिन बाहर सब कुछ भी मिल जाए—सारा जगत, सारी संपदा—और भीतर एक भी किरण शांति की न फूटे, तो मैं तुमसे कहता हूं कि अगर कोई तुम्हें शांति की एक किरण देने को राजी हो जाए और कहे कि छोड़ दो यह सब राज्य और यह सब धन और यह सब दौलत, तो तुम छोड़ पाओगे। छोड़ सकोगे। एक छोटी—सी शांति की लहर भी इस जगत के पूरे साम्राज्य के समतुल नहीं है।

लेकिन हम प्रगति से एक ही मतलब लेते हैं। लेकिन इसका यह भी मतलब नहीं है कि मैं ऐसा कह रहा हूं कि जो निष्काम कर्म में गति करेगा, अनिवार्य रूप से दीन और दरिद्र हो जाएगा। यह मैं नहीं कह रहा हूं। क्योंकि मन शांत हो, तो दरिद्र होने की कोई अनिवार्यता नहीं है। क्योंकि शांत मन जिस दिशा में भी काम करेगा, ज्यादा कुशल होगा। धन भी कमाएगा, तो भी ज्यादा कुशल होगा। ही, एक फर्क पड़ेगा कि धन कमाने का अर्थ चोरी नहीं हो सकेगा। शांत मन के लिए धन कमाने का अर्थ धन कमाना ही होगा, चोरी नहीं। धन निर्मित करना होगा।

शांत मन हो, तो आदमी जो भी करेगा, कुशल हो जाता है। उसके मित्र ज्यादा होंगे, उसकी कुशलता ज्यादा होगी, उसके पास शक्ति ज्यादा होगी, समझ ज्यादा होगी। इसलिए ऐसा नहीं कह रहा हूं कि वैसा आदमी अनिवार्य रूप से दरिद्र होगा। भीतरी तो समृद्धि होगी ही, लेकिन भीतरी समृद्धि बाहरी समृद्धि को लाने का भी आधार बनती है, लेकिन गौण होगी। भीतरी समृद्धि के बचते, भीतरी समृद्धि के रहते हुए मिलती होगी—नाट एट दि कास्ट, कीमत न चुकानी पड़ती होगी भीतरी समृद्धि की—तो बाहरी समृद्धि भी आएगी। हा, सिर्फ उसी जगह बाधा पड़ेगी, जहां बाहरी समृद्धि कहेगी कि भीतरी शांति और आनंद खोओ, तो मै मिल सकती हूं। तो वैसा निष्कामकर्मी कहेगा कि मत मिलो, यही तुम्हारी कृपा है। जाओ।

प्रगति का क्या अर्थ है, इस पर सब निर्भर करता है। अगर सिर्फ दौड़ना ही प्रगति है—कहीं भी दौड़ना, बिना कहीं पहुंचे—तब बात अलग है। लेकिन कहीं अगर पहुंचना प्रगति है, तो फिर बात बिलकुल अलग होगी। अगर आप यह कहते हों कि एक आदमी पागल है और हम उससे कहें कि तुम्हारे दिमाग का इलाज किए देते हैं। और वह कहे, दिमाग का इलाज तो आप कर देंगे, लेकिन इससे मेरी प्रगति में बाधा तो नहीं पड़ेगी? क्योंकि अभी मैं जितनी तेजी से दौड़ता हूं कोई दूसरा नहीं दौड़ पाता। हम कहेंगे, बाधा पड़ेगी। अभी तुम्हारी जैसी तेजी से कोई भी नहीं दौड़ पाता, लेकिन तुम इतनी तेजी से दौड़कर भी कहीं नहीं पहुंचते और धीमे चलने वाले लोग भी पहुंच जाते हैं। बस, इतना ही खयाल हो, तो बात समझ में आ सकती है।

व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरूनन्दन ।
बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम् ।।41।।

हे अर्जुन, हम कल्याणमार्ग में निश्चयात्मक— बुद्धि एक ही है और अज्ञानी (सकामी) पुरूषों की बुद्धियां बहुत भेदों वाली अनंत होती हैं।

मनुष्य का मन एक हो सकता है, अनेक हो सकता है। मनुष्य का चित्त अखंड हो सकता है, खंड—खंड हो सकता है। मनुष्य की बुद्धि स्वविरोधी खंडों में बंटी हुई हो सकती है, विभाजित हो सकती है, अविभाजित भी हो सकती है। साधारणत: विषयी चित्त, इच्छाओं से भरे चित्त की अवस्था एक मन की नहीं होती है, अनेक मन की होती है, पोलीसाइकिक, बहुचित्त होते है। और ऐसा ही नहीं कि बहुचित होते हैं, एक चित्त के विपरीत दूसरा चित्त भी होता है।

मैं कुछ दिन पहले दिल्ली में था। एक मित्र, बड़े शिक्षाशास्त्री हैं, किसी विश्वविद्यालय के पहले कुलपति थे, फिर अब और भी बड़े पद पर हैं। वे मुझसे पूछने आए कि हम शिक्षित तो कर रहे हैं लोगों को, लेकिन बेईमानी, झूठ, दगा, फरेब, सब बढ़ता चला जाता है! हम अपने बच्चों को बेईमानी, दगा, फरेब, झूठ से कैसे रोकें? तो मैंने उनसे पूछा कि दूसरों के बच्चों की पहले छोड़ दें। क्योंकि दूसरों के बच्चों को दगा, फरेब से रोकने को कोई भी तैयार हो जाता है। मैं आपके बच्चों की बात करना चाहता हूं। दूसरों के बच्चों को दगा, फरेब से रोकने में कौन सी कठिनाई है! दूसरे का

बेटा संन्यासी हो जाए, तो सब मुहल्ले के लोग उसको स्वागत— धन्यवाद देने आते है। उनका बेटा हो, तब पता चलता है!

मैंने उनसे पूछा, दूसरों के बच्चों की बात छोड़ दें। आपके भी लड़के हैं! उन्होंने कहा, हैं। लेकिन वे कुछ डरे हुए मालूम पड़े, जैसे ही मैंने कहा कि आपके बच्चों की सीधी बात की जाए। मैंने उनसे पूछा कि मैं आपसे यह पूछता हूं आप अपने बच्चों को दगा, फरेब, झूठ, खुशामद, बेईमानी—ये जो हजार बीमारियां इस समय मुल्क में हैं—इन सब से छुटकारा दिलाना चाहते हैं? उन्होंने बड़े डरते से मन से कहा कि ही, दिलाना चाहता हूं। लेकिन मैंने कहा, आप इतने कमजोर मन से कह रहे हैं ही, कि मैं फिर से पूछता हूं, थोड़ी हिम्मत जुटाकर कहिए। उन्होंने कहा कि नहीं—नहीं, मैं तो दिलाना ही चाहता हूं।

मैंने कहा, लेकिन आप हिम्मत नहीं जुटाते। आप जितनी ताकत से पहले मुझसे बोले कि सब बर्बाद हुआ जा रहा है, हम मुल्कभर के बच्चों को कैसे ईमानदारी सिखाएं! उतने जोर से आप अब नहीं कहते। उन्होंने कहा कि आपने मेरा कमजोर हिस्सा छू दिया है। आपने मेरी नस पकड़ ली है। मैने कहा कि नस पकड़कर ही बात हो सकती है, अन्यथा तो कोई बात होती नहीं। इस मुल्क में हर आदमी बिना नस पकड़े बात करता रहता है, तो कोई मतलब ही नहीं होता है। तो मैं नस ही पकड़ना चाहता हूं।

तो उन्होंने कहा कि नहीं, इतनी हिम्मत से तो नहीं कह सकता। मैंने कहा, क्यों नहीं कह सकते? तो उन्होंने कहा कि मैं जानता हूं। इतना तो मैं चाहता हूं कि जितने ऊंचे पद तक मैं उठा, कम से कम मेरा लड़का भी उठे। और यह भी मैं जानता हूं कि अगर वह पूरा ईमानदार हो, नैतिक हो, तो नहीं उठ सकता। तो फिर मैंने कहा, दो मन है आपके। दो में से एक साफ तय करिए—या तो कहिए कि लड़का सड़क पर भीख मांगे, इसके लिए मैं राजी हूं, लेकिन बेईमानी नहीं। और या फिर कहिए कि लड़का बेईमान हो, मुझे कोई मतलब नहीं; लड़का शिक्षा मंत्रालय में होना चाहिए। एजुकेशन मिनिस्ट्री में पहुंचे बिना हमें कोई चैन नहीं है। बेईमानी से हमें कोई मतलब नहीं। साफ बात कहिए। और नहीं तो आप अपने लड़के में भी डबल माइंड पैदा कर देंगे।

वह लड़का भी समझ जाएगा कि बाप चाहता है कि शिक्षामंत्री होने तक पहुंचो। और देखता है कि शिक्षामंत्री होने तक की यात्रा, सीढ़ी दर सीढ़ी बेईमानी और चोरी की यात्रा है। दूसरी तरफ बाप कहता है कि ईमानदार बनो। और ईमानदार की इस जगत में हालत ठीक वैसी है, जैसी कि नाइबर ने एक किताब लिखी है, मारल मैन इन इम्मारल सोसाइटी—नैतिक आदमी अनैतिक समाज में। सड़क पर भीख मांगने की तैयारी होनी ही चाहिए। यद्यपि नैतिक होकर सड़क पर भीख मांगने में जितना आनंद है, उतना अनैतिक होकर सम्राट हो जाने में भी नहीं है। लेकिन वह दूसरी बात है।

ये दोनों बातें लड़के के दिमाग में होंगी, तो लड़के के दो मन हो जाएंगे। तब तो वह यही कर सकता है ज्यादा से ज्यादा, कि उसको कोई इंतजाम भीतरी करना पड़ेगा। कोई कोएलिशन गवर्नमेंट तो भीतर बनानी पड़ेगी न! इन सब उपद्रवी विरोधी तत्वों के बीच कोई तो समझौता करके, कोई संविद सरकार निर्मित करनी पड़ेगी! तो फिर यही होगा कि जब बाहर दिखाना हो तो ईमानदारी दिखाओ और जब भीतर करना हो तो बेईमानी करो। क्योंकि मंत्री के पद तक पहुंचना ही है और ईमानदारी बड़ी अच्छी चीज है, उसको भी दिखाना ही है।

चित्त हमारा बंट जाता है अनेक खंडों में, और विपरीत आकांक्षाएं एक साथ पकड़ लेती हैं। और अनंत इच्छाएं एक साथ जब मन को पकड़ती हैं, तो अनंत खंड हो जाते हैं। और एक ही साथ हम सब इच्छाओं को करते चले जाते हैं। एक आदमी कहता है, मुझे शांति चाहिए, और साथ ही कहता है, मुझे प्रतिष्ठा चाहिए। उसे कभी खयाल में नहीं आता कि वह क्या कह रहा है!

एक मित्र मेरे पास आए। आते ही से मुझसे बोले कि मै अरविंद आश्रम हो आया, रमण आश्रम हो आया, शिवानंद के आश्रम हो आया, सब आश्रम छान डाले, कहीं शांति नहीं मिलती है। अभी मै पाडिचेरी से सीधा चला आ रहा हूं। किसी ने आपका नाम ले दिया, तो मैंने कहा आपके पास भी जाकर शांति—तो मुझे शांति दें।

तो मैंने कहा कि इसके पहले कि तुम मुझसे भी निराश होओ, एकदम उलटे लौटो और वापस हो जाओ। मै तुम्हें शांति नहीं दूंगा। और तुम कुछ इस तरह कह रहे हो कि जैसे अरविंद आश्रम ने तुम्हें शांति देने का कोई ठेका ले रखा है। सब जगह हो आया, कहीं नहीं मिली! जैसे कि मिलना कोई आपका अधिकार था। बाहर हो जाओ। दरवाजे के!

उन्होंने कहा, आप कैसे आदमी हैं! मै शांति खोजने आया हूं। मैंने कहा, अशांति खोजने कहा गए थे? अशांति खोजने किस आश्रम में गए थे, यह मुझे पहले बता दो। कहा, कहीं नहीं गया था। तो मैंने कहा, जब तुम अशांति तक पैदा करने में कुशल हो, तो शांति भी पैदा कर सकते हो। मेरी क्या जरूरत है? जिस रास्ते से अशांत हुए हो, उसी रास्ते से वापस लौट पड़ो तो शांत हो जाओगे। मैं कहां आता हूं बीच में? अशांति के वक्त मुझसे तुमने कोई सलाह न ली थी, शांति के वक्त तुम मुझसे सलाह लेने चले आए हो! मैंने पूछा कि शांति की बात बंद। अगर मेरे पास रुकना है, तो अशांति की चर्चा करो कि अशांत कैसे हुए हो? क्या है अशांति, उसकी मुझसे बात करो। अशांति तुम्हारी स्पष्ट हो जाए, तो शांति पाना जरा भी कठिन नहीं है।

वे दो दिन मेरे पास थे। उनकी अशांति फिर धीरे—धीरे उन्होंने खोलनी शुरू की। वही थी, जो हम सब की है। एक ही लड़का है उनका। बहुत पैसा कमाया। ठेकेदारी थी। एक ही लड़का है। उस लड़के ने एक लड़की से शादी कर ली, जिससे वे नहीं चाहते थे कि शादी करे। तलवार लेकर खड़े हो गए दरवाजे पर—लाश बिछा दूंगा; बाहर निकल जाओ! लड़का बाहर निकल गया। अब मुसीबत है। अब मौत करीब आ रही है। अब किस मुंह से लड़के को वापस बुलाएं, तलवार दिखाकर निकाला था। और मौत पास आ रही है। और जिंदगीभर जिस पैसे को हजार तरह की चोरी और बेईमानी से कमाया, उसका कोई मालिक भी नहीं रह जाता और हाथ से सब छूटा जा रहा है।

तो मैंने उनसे पूछा, वह लड़की खराब थी, जिसने तुम्हारे लड़के से शादी की है? उन्होंने कहा, नहीं, लड़की तो बिलकुल अच्छी है, लेकिन मेरी इच्छा के खिलाफ...।

तुम्हारी इच्छा से तुम शादी करो, तुम्हारा लड़का क्यों करने लगा? अशांत होने के रास्ते खड़े कर रहे हो। फिर जब उसने शादी अपनी इच्छा से की और तुमने उसे घर से बाहर निकाल दिया, तो अब परेशान क्यों हो रहे हो? बात समाप्त हो गई। उसने तो आकर नहीं कहा कि घर में वापस लो।

कहने लगे, यही तो अशांति है। वह एक दफा आकर माफी मांग ले, अंदर आ जाए।

नहीं मानी, ठीक है। जब उसने आपकी बात नहीं मानी, तो ठीक है। बात खतम हो गई। अब आप क्यों परेशान हैं?

तो इस धन का क्या होगा?

मैने कहा धन का सबके मर जाने के बाद क्या होता है? और तुम्हें क्या फिक्र है? तुम मर जाओगे, धन का जो होगा, वह होगा। कहा कि नहीं, मेरे ही लड़के के पास मेरा धन होना चाहिए। तो मैंने कहा फिर मेरे लड़के के पास मेरी ही पसंद की औरत होनी चाहिए यह खयाल छोड़ो। तुम्हारा लड़का धन छोड़ने को राजी है अपने प्रेम के लिए, तुम भी कुछ छोड़ने को राजी होओ।

दो दिन मेरे पास थे, सारी बात हुई। देखा कि सब हजार तरह की उलटी—सीधी इच्छाएं मन को पकड़े हुए हैं, तो चित्त अशांत हो गया है। हम सब का मन ऐसा ही अशांत है।

कृष्ण कह रहे हैं कि विषय—आसक्त चित्त—चूंकि विषय बहुत विपरीत हैं—एक ही साथ विपरीत विषयों की आकांक्षा करके विक्षिप्त होता रहता है और खंड—खंड में टूट जाता है। जो व्यक्ति निष्काम कर्म की तरफ यात्रा करता है, आनिवार्यरूपेण—क्योंकि कामना गिरती है, तो कामना से बने हुए खंड गिरते हैं। जो व्यक्ति अपेक्षारहित जीवन में प्रवेश करता है, चूंकि अपेक्षा गिरती है, इसलिए अपेक्षाओं से निर्मित खंड गिरते हैं। उसके भीतर एकचित्तता, यूनिसाइकिकनेस, उसके भीतर एक मन पैदा होना शुरू होता है।

और जहां एक मन है, वहां जीवन का सब कुछ है—शांति भी, सुख भी आनंद भी। जहां एक मन है, वहा सब कुछ है—शक्ति भी संगीत भी, सौंदर्य भी। जहां एक मन है, उस एक मन के पीछे जीवन में जो भी है, वह सब चला आता है। और जहां अनेक मन हैं तो पास में भी जो है, वह भी सब बिखर जाता है और खो जाता है। लेकिन हम सब पारे की तरह है—खंड—खंड, टूटे हुए, बिखरे हुए। खुद ही इतने खंडों में टूटे हैं, कि कैसे शांति हो सकती है!

जोसुआ लिएबमेन ने अपने संस्मरण लिखे हैं। संस्मरण की किताब को जो नाम दिया है, वह बहुत अच्छा है। और किताब के पहले ही हिस्से में उसने जो उल्लेख किया है, वह कीमती है। कहा कि जवान था, विश्वविद्यालय से पढ़कर लौटा था, तो मेरे मन में हुआ कि अब जीवन का एक नक्शा बना लूं कि जीवन में क्या—क्या पाना है! स्वभावत:, जीवन का एक नक्शा हो, तो जीवन को सुव्यवस्थित चलाया जा सके।

तो उसने एक फेहरिस्त बनाई। उस फेहरिस्त में लिखा कि धन चाहिए, सुंदर पत्नी चाहिए, यश चाहिए, सम्मान चाहिए, सदाचार चाहिए। कोई बीस—बाइस बातों की फेहरिस्त तैयार की। उसमें सब आ गया, जो आदमी चाह सकता है। जो भी चाह चाह सकती है वह सब आ गया। जो भी विषय की माग हो सकती है, वह सब आ गया। जो भी कामना निर्मित कर सकती है, वे सब सपने आ गए। पर न मालूम, पूरी फेहरिस्त को बार—बार पढ़ता है, कि इसमें और कुछ तो नहीं जोड़ा जाना है; क्योंकि वह जीवनभर का नक्श बनाना है।

सब खोज लेता है, कुछ जोड़ने को बचता नहीं। सब आ गया, ' फिर भी समथिंग इज मिसिंग। कुछ ऐसा लगता है कि कोई कड़ी खो रही है। क्यों लगता है ऐसा? क्योंकि रात सोते वक्त उसने सोचा कि मैं देखूं कि सब मुझे समझ लो कि मिल गया, जो—जो मैंने फेहरिस्त पर लिखा है, सब मिल गया—हो जाएगा सब ठीक? तो मन खाली—खाली लगता है। मन में ऐसा उत्तर नहीं आता आश्वासन से भरा, निश्चय से भरा, कि हा, यह सब मिल जाए जो फेहरिस्त पर लिखा है, तो बस, सब मिल जाएगा। नहीं, ऐसा निश्चय नहीं आता; ऐसी निश्चयात्मक लहर नहीं आती भीतर।

तो गाव में एक बूढ़े फकीर के पास वह गया। उसने कहा कि इस गाव में सबसे ज्यादा बूढ़े तुम हो, सबसे ज्यादा जिंदगी तुमने देखी है। और तुमने जिंदगी गृहस्थ की ही नहीं देखी, संन्यासी की भी देखी है। तुमसे बड़ा अनुभवी कोई भी नहीं है। तो मैं यह फेहरिस्त लाया हूं? जरा इसमें कुछ जोड़ना हो तो बता दो।

उस बूढ़े ने पूरी फेहरिस्त पढ़ी, फिर वह हंसा और उसने कलम उठाकर वह पूरी फेहरिस्त काट दी। और पूरी फेहरिस्त के ऊपर बडेबडे अक्षरों में तीन शब्द लिख दिए, पीस आफ माइंड, मन की शांति। उसने कहा, बाकी ये सब तुम फिक्र छोडो; तुम यह एक चीज पा लो, तो यह बाकी सब मिल सकता है। और यदि तुमने बाकी सब भी पा लिया, तो भी ये जो तीन शब्द मैंने लिखे, ये तुम्हें कभी मिलने वाले नहीं हैं। और आखिर में निर्णय यही होगा कि यह पीस आफ माइंड, यह मन की शांति मिली या नहीं!

तो लिएबमेन ने अपनी आत्मकथा लिखी है, उसको नाम दिया है पीस आफ माइंड। किताब को नाम दिया, मन की शांति। और लिखा कि उस दिन तो मुझे लगा कि यह के ने सब फेहरिस्त खराब ' कर दी। कितनी मेहनत से बनाकर लाया हूं और इस आदमी ने सब काट—पीट कर दिया। जंची नहीं बात कुछ उसकी। लेकिन जिंदगी। के अंत में लिएबमेन कहता है कि आज मैं जानता हूं कि उस बूढ़े ने फेहरिस्त काटी थी, तो ठीक ही किया था। उसने फाड़कर क्यों न फेंक दी! बेकार। आज जीवन के अंत में वे ही तीन शब्द पास घूम रहे हैं। काश, उस दिन मैं समझ जाता कि मन की शांति ही सब कुछ है, तो शायद आज तक पाया भी जा सकता था। लेकिन जिंदगी उसी फेहरिस्त को पूरा करने में बीत जाती है सबकी।

कृष्ण कह रहे हैं, यह जो विषयों की दौड़ है चित्त की, यह सिर्फ अशांति को......। अशांति का अर्थ ही सिर्फ एक है, बहुत—बहुत दिशाओं में दौड़ता हुआ मन, अर्थात अशांति। न दौड़ता हुआ

मन, अर्थात शांति। कृष्ण कहते हैं, निष्काम कर्म की जो भाव—दशा है, वह एक मन और शांति को पैदा करती है। और जहां एक मन है, वहीं निश्चयात्मक बुद्धि है, दि डेफिनीटिव इंटलेक्ट, दि डेफिनीटिव इंटेलिजेंस।

इसको आखिरी बात समझ लें। तो जहां एक मन है, वहां अनिश्चय नहीं है। अनिश्चय होगा कहां? अनिश्चय के लिए कम से कम दो मन चाहिए। जहां एक मन है, वहां निश्चय है।

इसलिए आमतौर से आदमी लेकिन क्या करता है? वह कहता है कि निश्चयात्मक बुद्धि चाहिए, तो वह कहता है, जोड़—तोड़ करके निश्चय कर लो। दबा दो मन को और छाती पर बैठ जाओ, और निश्चय कर लो कि बस, निश्चय कर लिया। लेकिन जब वह निश्चय कर रहा है जोर से, तभी उसको पता है कि भीतर विपरीत स्वर कह रहे हैं कि यह तुम क्या कर रहे हो? यह ठीक नहीं है। वह आदमी कसम ले रहा है कि ब्रह्मचर्य साधूंगा, निश्चय करता हूं। लेकिन निश्चय किसके खिलाफ कर रहे हो? जिसके खिलाफ निश्चय कर रहे हो, वह भीतर बैठा है।

मैं एक के आदमी से मिला। उस बूढ़े आदमी ने कहा कि मैंने अपनी जिंदगी में तीन बार ब्रह्मचर्य का व्रत लिया है। तो मैंने पूछा। कि चौथी बार क्यों नहीं लिया? का आदमी ईमानदार था। के आदमी कम ही ईमानदार होते हैं, क्योंकि जिंदगी इतनी बेईमानी सिखा देती है कि जिसका कोई हिसाब नहीं। बच्चे साधारणत: ईमानदार होते हैं। बेईमान बच्चा खोजना मुश्किल है। के साधारणत: बेईमान होते हैं। ईमानदार का खोजना मुश्किल है।

पर वह का ईमानदार आदमी था। उसने कहा कि आप ठीक कहते है। आप ठीक कहते हैं, मैंने चौथी बार इसीलिए नहीं लिया कि तीन बार की असफलता ने हिम्मत ही तुड़वा दी। फिर हिम्मत भी नहीं रही कि चौथी बार ले सकूं। पर मैंने कहा, तुमने व्रत किसके खिलाफ लिया था? अपने ही खिलाफ कहीं व्रत पूरे होते हैं? जब तुमने व्रत लिया था, तब तुम्हारा पूरा मन राजी था? उसने कहा, पूरा ही मन राजी होता तो फिर क्या था! मेजारिटी माइंड से लिया था, बहुमत से लिया था।

मन कोई पार्लियामेंट नहीं है कि जिसमें आप बहुमत से पक्ष लें। मन कोई पार्लियामेंट नहीं है, कोई संसद नहीं है। और अगर संसद भी है, तो वैसी ही संसद है, जैसी दिल्ली में है। उसमें कुछ पक्का नहीं है कि जो अभी आपके पक्ष में गवाही दे रहा था, वह दो दिन बाद विपक्ष में गवाही देगा; उसका कुछ पक्का नहीं है। आप रातभर सोकर सुबह उठोगे और पाओगे कि माइनारिटी में हो; मेजारिटी हाथ से खिसक गई है।

कृष्ण कुछ और बात कह रहे हैं। वे यह नहीं कह रहे हैं कि तुम निश्चय करो। वे यह कह रहे हैं, जो निष्काम कर्म की यात्रा पर निकलता है, उसे निश्चयात्मक बुद्धि उपलब्ध हो जाती है; क्योंकि

उसके पास एक ही मन रह जाता है। विषयों में जो भटकता नहीं, जो अपेक्षा नहीं करता, जो कामना की व्यर्थता को समझ लेता है, जो भविष्य के लिए आतुरता से फल की मांग नहीं करता, जो क्षण में और वर्तमान में जीता है—वैसे व्यक्ति को एक मन उपलब्ध होता है। एक मन निश्चयात्मक हो जाता है, उसे करना नहीं पड़ता।

शेष कल सुबह बात करेंगे

प्रवचन 13 : काम, द्वंद्व और शास्त्र से—निष्काम, निर्द्वंद्व और स्वानुभव की ओर
ओशो – गीता-दर्शन – भाग एक
अध्याय—1-2 – प्रवचन 13 : काम, द्वंद्व और शास्त्र से—निष्काम, निर्द्वंद्व और स्वानुभव की ओर

यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदज्यीवयश्चि:।
वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तिति वादिन: ।।42।।

कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम् ।
क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति ।।43।।

हे अर्जुन? जो सकामी पुरुष केवल फल श्रुति में प्रीति रखने वाले, स्वर्ग को ही परम श्रेष्ठ मानने वाले, इससे बढ़कर कुछ नहीं है—ऐसे कहने वाले है वे अविवेकजिन जन्मरूप कर्मफल को देने वाली और भोग तथा ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए बहुत—ली क्रियाओं के विस्तार वाली हम प्रकार की जिस दिखाऊ शोभायुक्त वाणी को कहते हैं।

भोगैश्वर्थ्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम् ।
व्यवसायात्मिका बुद्धि: समाधौ न विधींयते ।।44।।

उस वाणी द्वारा हरे हुए चित्त वाले, तथा भोग और ऐश्वर्य में आसक्ति वाले उन पुरूषों के अंतःकरण मे निश्चयात्मक बुद्धि नहीं होती है।

कर्मयोग की बात करते हुए कृष्ण ने अर्जुन को कहा है कि वे सारे लोग, जो सुख, कामना, विषय और वासना से उत्पेरित हैं, जो स्वर्ग से ऊपर जगत में कुछ भी नहीं देख पाते हैं, जिनका धार्मिक चिंतन, मनन और अध्ययन भी विषय—प्रेरित ही होता है, जो संसार में तो सुख की मांग करते ही हैं, जो परलोक में भी सुख की ही मांग किए चले जाते हैं, जिनके परलोक की दृष्टि भी वासना का ही विस्तार है, ऐसे व्यक्ति निष्काम—कर्म की गहराई को समझने में असमर्थ हैं।

कर्मयोग को अगर एक संक्षिप्त से गणित के सूत्र में कहें, तो कहना होगा, कर्म कामना ० कर्मयोग। जहां कर्म से कामना ऋण कर दी जाती है, तब जो शेष रह जाता है, वही कर्मयोग है। लेकिन कामना को शेष करने का अर्थ केवल सांसारिक कामना को शेष कर देना नहीं है, कामना मात्र को शेष कर देना है। इस बात को थोड़ा गहरे में समझ लेना जरूरी है।

संसार की कामना को शेष कर देना बहुत कठिन नहीं है, कामना मात्र को शेष करना असली तपश्चर्या है। संसार की कामना तो शेष की जा सकती है। अगर परलोक की कामना का प्रलोभन दिया जाए, तो संसार की कामना छोड़ने में कोई भी कठिनाई नहीं है। अगर किसी से कहा जाए, इस पृथ्वी पर धन छोड़ो, क्योंकि परलोक में, यहां जो थोड़ा छोड़ता है, बहुत पाता है। तो उस थोड़े को छोड़ना बहुत कठिन नहीं है। वह बार्गेन है, वह सौदा है। हम सभी छोड़ते हैं, पाने के लिए हम सभी छोड़ते हैं। पाने के लिए कुछ भी छोड़ा जा सकता है।

लेकिन पाने के लिए जो छोड़ना है, वह निष्काम नहीं है। वह पाना चाहे परलोक में हो, वह पाना चाहे भविष्य में हो, वह पाना चाहे धर्म के सिक्कों में हो, इससे बहुत फर्क नहीं पड़ता है। पाने की आकांक्षा को आधार बनाकर जो छोड़ना है, वही कामना है, वही कामग्रस्त चित्त है। वैसा चित्त कर्मयोग को उपलब्ध नहीं होता। यहां कहा जाए पृथ्वी पर स्त्रियों को छोड़ दो, क्योंकि स्वर्ग में अप्सराएं उपलब्ध हैं, यहां कहा जाए पृथ्वी पर शराब छोड़ दो, क्योंकि बहिश्त में शराब के चश्मे बह रहे हैं, तो इस छोड़ने में कोई भी छोड़ना नहीं है। यह केवल कामना को नए रूप में, नए लोक में, नए आयाम में पुन: पकड़ लेना है। यह प्रलोभन ही है।

इसलिए जो व्यक्ति भी, कहीं भी, किसी भी रूप में पाने की आकांक्षा से कुछ करता है, वह कर्मयोग को उपलब्ध नहीं हो सकता है। क्योंकि कर्मयोग का मौलिक आधार, कामनारहित, फल की कामनारहित कर्म है। कठिन है बहुत। क्योंकि साधारणत: हम सोचेंगे कि फिर कर्म होगा ही कैसे? हम तो कर्म करते ही इसलिए हैं कि कुछ पाने को है, कोई लक्ष्य, कोई फल। हम तो चलते ही इसलिए हैं कि कहीं पहुंचने को है। हम तो श्वास भी इसीलिए लेते हैं कि पीछे

कुछ होने को है। अगर पता चले कि नहीं, आगे की कोई कामना नहीं, तब तो फिर हम हिलेगे भी नहीं, करेंगे भी नहीं। कर्म होगा कैसे?

गीता के संबंध में और कृष्ण के संदेश के संबंध में जिन लोगों ने भी चिंतन किया है, उनके लिए जो बड़े से बड़ा मनोवैज्ञानिक सवाल है, उलझाव है, वह यही है कि कृष्ण कहते हैं, कर्म वासनारहित, कामनारहित! तो कर्म होगा कैसे? क्योंकि कर्म का मोटिवेशन, कर्म की प्रेरणा कहां से उत्पन्न होती है? कर्म की प्रेरणा तो कामना से ही उत्पन्न होती है। कुछ हम चाहते हैं, इसलिए कुछ हम करते हैं। चाह पहले, करना पीछे। विषय पहले, कर्म पीछे। आकांक्षा पहले, फिर छाया की तरह हमारा कर्म आता है। अगर हम छोड़ दें चाहना, डिजायर, इच्छा, विषय, तो कर्म आएगा कैसे? मोटिवेशन नहीं होगा।

अगर हम पश्चिम के मनोविज्ञान से भी पूछें—जो कि मोटिवेशन पर बहुत काम कर रहा है—कर्म की प्रेरणा क्या है? तो पश्चिम के पूरे मनोवैज्ञानिक एक स्वर से कहते हैं कि बिना कामना के कर्म नहीं हो सकता है।

कृष्ण का मनोविज्ञान आधुनिक मनोविज्ञान से बिलकुल उलटी बात कह रहा है। वे यह कह रहे हैं कि कर्म जब तक कामना से बंधा है, तब तक सिवाय दुख और अंधकार के कहीं भी नहीं ले जाता है। जिस दिन कर्म कामना से मुक्त होता है—परलोक की कामना से भी, स्वर्ग की कामना से भी—जिस दिन कर्म शुद्ध होता है, प्योर एक्ट हो जाता है, जिसमें कोई चाह की जरा भी अशुद्धि नहीं होती, उस दिन ही कर्म निष्काम है और योग बन जाता है।

और वैसा कर्म स्वयं में मुक्ति है। वैसे कर्म के लिए किसी मोक्ष की आगे कोई जरूरत नहीं है। वैसे कर्म का कोई मोक्ष भविष्य में नहीं है.। वैसा कर्म अभी और यहीं, हियर एंड नाउ मुक्ति है। वैसा कर्म मुक्ति है। वैसे कर्म का मुक्ति फल नहीं है, वैसे कर्म की निजता ही मुक्ति है।

इसे थोड़ा समझ लेना जरूरी है, क्योंकि आगे बार—बार, उसके इर्द—गिर्द बात घूमेगी। और कृष्ण के संदेश की बुनियाद में वह बात छिपी है। क्या कर्म हो सकता है बिना कामना के? क्या बिना चाह के हम कुछ कर सकते हैं? तो फिर प्रेरणा कहा से उपलब्ध होगी? वह स्रोत कहां से आएगा, वह शक्ति कहां से आएगी, जो हमें खींचे और कर्म में संयुक्त करे?

जिस जगत में हम जीते हैं और जिस कर्मों के जाल से हम अब तक परिचित रहे हैं, उसमें शायद ही एकाध ऐसा कर्म हो जो। अनमोटिवेटेड हो—शायद ही। अगर कभी ऐसा कोई कर्म भी दिखाई पड़ता हो, जो अनमोटिवेटेड मालूम होता है, जिसमें आगे कोई मोटिव, जिसमें आगे कोई पाने की आकांक्षा नहीं होती, उसमें भी थोड़ा भीतर खोजेंगे, तो मिल जाएगी।

रास्ते पर आप चल रहे हैं। आपके आगे कोई है, उसका छाता गिर गया। आप उठाकर दे देते है—अनमोटिवेटेड। उठाते वक्त आप यह भी नहीं सोचते कि क्या फल, क्या उपलब्धि, क्या मिलेगा? नहीं, यह सोच नहीं होता। छाता गिरा, आपने उठाया, दे दिया। दिखाई पड़ता है, अनमोटिवेटेड है। क्योंकि न घर से सोचकर चले थे कि किसी का छाता गिरेगा, तो उठाएंगे। छाता गिरा, उसके एक क्षण पहले तक छाता उठाने की कोई भी योजना मन में न थी। छाता गिरने और छाता उठाने के बीच भी कोई चाह दिखाई नहीं पड़ती है।

लेकिन फिर भी, मनोविज्ञान कहेगा, अनकाशस मोटिवेशन है। अगर छाता देने के बाद वह आदमी धन्यवाद न दे, तो दुख होगा। छाता दबा ले और चल पड़े तो आप चौकन्ने से खड़े रह जाएंगे कि। कैसा आदमी है, धन्यवाद भी नहीं! अगर पीछे इतना भी स्मरण आता है कि कैसा आदमी है, धन्यवाद भी नहीं! तो मोटिवेशन हो गया। सचेतन नहीं था, आपने सोचा नहीं था, लेकिन मन के किसी गहरे तल पर छिपा था। अब पीछे से हम कह सकते हैं कि धन्यवाद पाने के लिए छाता उठाया? आप कहेंगे, नहीं, धन्यवाद का तो कोई विचार ही न था; यह तो पीछे पता चला।

लेकिन जो नहीं था, वह पीछे भी पता नहीं चल सकता है। जो बीज में न छिपा हो, वह प्रकट भी नहीं हो सकता है। जो अव्यक्त न रहा हो, वह व्यक्त भी नहीं हो सकता है। कहीं छिपा था, किसी अनकांशस, किसी अचेतन के तल पर दबा था, राह देखता था। नहीं, सचेतन कोई कामना नहीं थी, लेकिन अचेतन कामना थी। जीवन में ऐसे कुछ क्षण हमें

मालूम पड़ते हैं, जहां लगता है, अनमोटिवेटेड, निष्काम कोई कृत्य घटित हो गया है। लेकिन उसे भी पीछे से लौटकर देखें, तो लगता है, कामना कहीं छिपी थी। इसलिए पश्चिम का मनोविज्ञान कहेगा कि चाहे दिखाई पड़े और चाहे न दिखाई पड़े, जहां भी कर्म है, वहां कामना है; इतना ही फर्क हो सकता है कि वह चेतन है या अचेतन है।

लेकिन कृष्ण कहते है, ऐसा कर्म हो सकता है, जहां कामना नहीं हो। यह वक्तव्य बहुत महत्वपूर्ण है। इसे समझने के लिए दो—चार ओर से हम यात्रा करेंगे। एक छोटी—सी कहानी से आपको कहना चाहूंगा। क्योंकि जो हमारी जिंदगी में परिचित नहीं है, उसे हमें किसी और की जिंदगी में झांकना पड़े। और हमारी जिंदगी ही इति नहीं है। हमें किसी और जिंदगी में झांकना पड़े, देखना पड़े कि क्या , यह संभव है? इज इट पासिबल? पहले तो यही देख लें कि क्या यह संभव है? अगर संभावना दिखाई पड़े, तो शायद कल सत्य भी हो सकती है।

अकबर एक दिन तानसेन को कहा है, तुम्हारे संगीत को सुनता हूं तो मन में ऐसा खयाल उठता है कि तुम जैसा बजाने वाला शायद ही पृथ्वी पर हो! आगे भी कभी होगा, यह भी भरोसा नहीं आता। क्योंकि इससे ऊंचाई और क्या हो सकेगी, इसकी धारणा भी नहीं बनती है। तुम शिखर हो। लेकिन कल रात जब तुम्हें विदा किया था, सोने गया था, तो मुझे खयाल आया, हो सकता है, तुमने भी किसी से सीखा हो, कोई तुम्हारा गुरु हो। तो मैं आज तुमसे पूछता हूं कि तुम्हारा कोई गुरु है? तुमने किसी से सीखा है?

तो तानसेन ने कहा, मै कछ भी नहीं हूं गुरु के सामने जिससे सीखा है, उसके चरणों की धूँल भी नहीं हूं। इसलिए वह, खयाल मन से छोड़ दें। शिखर! भूमि पर भी नहीं हूं। लेकिन आपने मुझे ही जाना है, इसलिए आपको शिखर मालूम पड़ता हूं। ऊंट जब पहाड़ के करीब आता है, तब उसे पता चलता है, अन्यथा वह पहाड़ होता ही है। पर, तानसेन ने कहा कि मैं गुरु के चरणों में बैठा हूं; मैं कुछ भी नहीं हूं। कभी उनके चरणों में बैठने की योग्यता भी हो जाए तो समझूंगा बहुत कुछ पा लिया।

तो अकबर ने कहा, तुम्हारे गुरु जीवित हों तो तत्क्षण, अभी और आज उन्हें ले आओ, मैं सुनना चाहूंगा। पर तानसेन ने कहा, यही कठिनाई है। जीवित वे हैं, लेकिन उन्हें लाया नहीं जा सकता।

अकबर ने कहा, जो भी भेंट करनी हो, तैयारी है। जो भी! जो भी इच्छा हो, देंगे। तुम जो कहो, वही देंगे। तानसेन ने कहा, वही कठिनाई है, क्योंकि उन्हें कुछ लेने को राजी नहीं किया जा सकता। क्योंकि वह कुछ लेने का प्रश्न ही नहीं है। अकबर ने कहा, कुछ लेने का प्रश्न नहीं है! तो क्या उपाय किया जाए? तानसेन ने कहा, कोई उपाय नहीं आपको ही चलना पड़े। तो उन्होंने कहा, मैं अभी चलने को तैयार हूं। तानसेन ने कहा, अभी चलने से तो कोई सार नहीं है। क्योंकि कहने से वे बजाएंगे, ऐसा नहीं है। जब वे बजाते हैं, तब कोई सुन ले, बात और है। तो मैं पता लगाता हूं कि वे कब बजाते हैं। तब हम चलेंगे।

पता चला—हरिदास फकीर उसके गुरु थे, यमुना के किनारे रहते थे—पता चला, रात तीन बजे उठकर वे बजाते हैं, नाचते हैं। तो शायद ही दुनिया के किसी अकबर की हैसियत के सम्राट ने तीन बजे रात चोरी से किसी संगीतज्ञ को सुना हो। अकबर और तानसेन चोरी से झोंपड़ी के बाहर ठंडी रात में छिपकर बैठे रहे। पूरे समय अकबर की आंखों से आंसू बहते रहे। एक शब्द बोला नहीं।

संगीत बंद हुआ। वापस होने लगे। सुबह फूटने लगी। राह में भी तानसेन से अकबर बोला नहीं। महल के द्वार पर तानसेन से इतना ही कहा, अब तक सोचता था कि तुम जैसा कोई भी नही बजा सकता। अब सोचता हूं कि तुम हो कहं।! लेकिन क्या बात है? तुम अपने गुरु जैसा क्यों नहीं बजा सकते हो?

तानसेन ने कहा, बात तो बहुत साफ है। मै कुछ पाने के लिए बजाता हूं और मेरे गुरु ने कछ पा लिया है, इसलिए बजाते है। मेरे बजाने के आगे कुछ लक्ष्य है, जो मुझे मिले, उसमे मेरे प्राण हैं। इसलिए बजाने में मेरे प्राण पूरे कभी नही हो सकते। बजाने में मै

सदा अधूरा हूं, अंश हूं। अगर बिना बजाए भी मुझे वह मिल जाए जो बजाने से मिलता है, तो बजाने को फेंककर उसे पा लूंगा। बजाना मेरे लिए साधन है, साध्य नहीं है। साध्य कहीं और है—भविष्य में, धन में, यश में, प्रतिष्ठा में—साध्य

कहीं और है, संगीत सिर्फ साधन है। साधन कभी आत्मा नहीं बन पाती; साध्य में ही आत्मा अटकी होती है। अगर साध्य बिना साधन के मिल जाए, तो साधन को छोड़ दूं अभी। लेकिन नहीं मिलता साध के बिना इसलिए साधन को खींचता हूं। लेकिन दृष्टि ओर प्राण ओर आकांक्षा और सब घूमता है साध्य के निकट। लेकिन जिनको आप सुनकर आ रहे हैं, संगीत उनके लिए कुछ पाने का साधन नहीं है। आगे कुछ भी नहीं है, जिसे पाने को वे बजा रहे हैं। बल्कि पीछे कुछ है, जिससे उनका संगीत फूट रहा है और बज रहा है। कुछ पा लिया है, कुछ भर गया है, वह बह रहा है। कोई अनुभूति, कोई सत्य, कोई परमात्मा प्राणों में भर गया है। अब वह बह रहा है, ओवर फ्लोइंग है।

अकबर बार—बार पूछने लगा, किसलिए? किसलिए?

स्वभावत:, हम भी पूँछते हैं, किसलिए? पर तानसेन ने कहा, नदियां किसलिए बह रही है? फूल किस लिए खिल रहे है? सूर्य किस लिए निकल रहा है?

किसलिए, मनुष्य की बुद्धि ने पैदा किया है। सारा जगत ओवर फ्लोइंग है, आदमी को छोड्कर। सारा जगत आगे के लिए नहीं जी रहा है, सारा जगत भीतर से जी रहा है। फूल खिल रहा है, खिलने में ही आनंद है। सूर्य निकल रहा है, निकलने में ही आनंद है। हवाएं बह रही है, बहने में ही आनंद है। आकाश है, होने में ही आनंद है। आनंद आगे नहीं अभी है, यहीं है।

और जो हो रहा है, वह भीतर की ऊर्जा से अकारण बहाव है—अनमोटिवेटेड एक्ट। जिस पर कि कृष्ण का सारा कर्मयोग खड़ा होगा। वह जीवन को भविष्य की तरफ से पकड़ना नहीं, वह जीवन को आकांक्षा की तरफ से खींचना नहीं, व्यक्ति के भीतर छिपा जो अव्यक्त है, उसकी ओवर फ्लोइंग, उसका ऊपर से बह जाना है। कृत्य, जिस दिन आपके जीवन—ऊर्जा की ओवर फ्लोइंग है, ऊपर से बह जाना है, उस दिन निष्काम है। और जब तक भविष्य के लिए किसी कारण से बहना है, तब तक सकाम है। सकाम कर्म योग नहीं है, निष्काम कर्म योग है।

इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है कि वह कामना भविष्य की, स्वर्ग की, मोक्ष की, परमात्मा की—इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। अगर एक व्यक्ति मंदिर में भजन गा रहा है, और इस भजन में भी इतनी कामना है कि ईश्वर को पा लूं, तो यह भजन व्यर्थ हो गया, यह भजन योग न रहा। ईश्वर को पाने की कामना भी कामना ही है। और कामना से कभी ईश्वर पाया नहीं जाता। ईश्वर तो निष्कामना में उपलब्ध है। अगर भजन में इतनी भी कामना है कि ईश्वर को पा लूं तो भजन व्यर्थ हुआ। अगर प्रार्थना में इतनी भी मांग है कि तेरे दर्शन हो जाएं, तो प्रार्थना व्यर्थ हो गई।

लेकिन प्रार्थना अनमोटिवेटेड है; नहीं किसी को पाने के लिए, वरन भीतर के भाव से जन्मी है और अपने में पूरी है, अपने में पूरी है—आगे कुछ द्वार नहीं खोज रही है—तो प्रार्थना है। और उसी क्षण में प्रार्थना सफल है, जिस क्षण प्रार्थना निष्काम है। प्रत्येक कर्म प्रार्थना बन जाता है, अगर निष्काम बन जाए। और प्रत्येक प्रार्थना बंधन बन जाती है, अगर सकाम बन जाए।

लेकिन हम जैसे दुकान चलाते हैं, वैसे ही पूजा भी करते हैं। दुकान भी मोटिवेटेड होती है पूजा भी। दुकान में भी कुछ पाने को होता है, पूजा में भी। पाप भी करते हैं, तो भी कुछ पाने को करते हैं। पुण्य भी करते हैं, तो कुछ पाने को करते हैं। और कृष्ण कह रहे हैं कि पाने के लिए करना ही अधर्म है। पाने की आकांक्षा के बिना जो कृत्य का फूल खिलता है—दि फ्लावरिंग आफ दि प्योर एक्ट—शुद्ध कर्म जब खिलता है बिना किसी कारण के..।

इस संबंध में इमेनुअल कांट का नाम लेना जरूरी है। जर्मनी में काट ने करीब—करीब कृष्ण से मिलती—जुलती बात कही है। उसने कहा कि अगर कर्तव्य में जरा—सी भी आकांक्षा है, तो कर्तव्य पाप हो गया। जरा—सी भी! कर्तव्य तभी कर्तव्य है, जब बिलकुल शुद्ध है, उसमें कोई आकांक्षा नहीं है।

यह हमें कठिन पड़ेगा। क्योंकि हमारी जिंदगी में ऐसा कोई कर्म नहीं है, जिससे हमारी पहचान हो, जिससे हम समझ पाएं। लेकिन ऐसे कर्म के लिए द्वार खोले जा सकते हैं।

मैंने कहा, रास्ते पर एक आदमी है, उसका छाता गिर गया है। आप छाता उठाएं, दे दें, और छाता उठाकर देते समय भीतर देखते रहें कि कोई मांग तो नहीं उठती है! सिर्फ देखते रहें। छाता उठाकर दें और अपने रास्ते पर चल पड़े और भीतर देखते रहें कि कोई मांग तो नहीं उठती धन्यवाद की भी! उठेगी, लेकिन देखते रहें, दो—चार कृत्यों में देखते रहें और अचानक पाएंगे, क्या पागलपन है! गिर जाएगी।

दिन में जो आदमी एक कृत्य भी अनमोटिवेटेड कर ले, वह कृष्ण की गीता को समझ पा सकता है। एक कृत्य भी चौबीस घंटे में अनमोटिवेटेड कर ले, जिसमें कि कुछ न हो, चेतन—अचेतन कोई मांग न हो—बस किया और हट गए और चले गए—तो कृष्ण की गीता को, और कृष्ण के कर्मयोग को समझने का मार्ग खुल जाएगा। रोज गीता न पढ़ें, चलेगा। लेकिन एक कृत्य चौबीस घंटे में ऐसा खिल जाए, जिसमें हमारी कोई भी कामना नहीं है; बस, जिसमें करना ही पर्याप्त है और हम बाहर हो गए और चल पड़े।

कठिन नहीं है। अगर थोड़ी खोज—बीन करें, तो बहुत कठिन नहीं है। छोटी—छोटी, छोटी—छोटी घटनाओं में उसकी झलक मिल सकती है।

और यह जो कृष्ण अर्जुन से कह रहे हैं, वह पूरा का पूरा प्रयोगात्मक है। होगा ही। यह कोई गुरुकुल में बैठकर, किसी वृक्ष के तले, किसी आश्रम में हुई चर्चा नहीं है। यह युद्ध के स्थल पर, जहां सघन कर्म प्रतीक्षा कर रहा है, वहां हुई चर्चा है। यह चर्चा किसी शांत वट—वृक्ष के नीचे बैठकर कोई तत्व—चर्चा नहीं है, यह कोरी तत्व—चर्चा नहीं है। यह सघन कर्म के बीच, ठीक युद्ध के क्षण में—युद्ध से ज्यादा सघन कृत्य और क्या होगा—वहां हुई यह चर्चा है। और अर्जुन से कृष्ण कह रहे हैं कि अगर स्वर्ग तक की भी कामना मन में है—किसी भी विषय की—तो सब व्यर्थ हो जाता है।

कर्मयोग का सार, कर्म ऋण कामना है। काम से कामना गई.।

हमने तो काम शब्द ही रखा हुआ है कर्म के लिए। क्योंकि काम कामना से ही बनता है। हम तो कहते हैं, काम वही है, जो कामना से चलता है।

लेकिन कृष्ण कहते हैं, काम से अगर कामना घट जाए तो कर्मयोग। तो फिर साधारण कर्म नहीं रह जाता है वह, योग बन जाता है। और योग बन जाए, तो न पाप है, न पुण्य है; न बंधन है, न मुक्ति है—दोनों के बाहर है व्यक्ति।

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।
र्द्विन्द्वो नित्यमत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान् ।।45।।

हे अर्जुन, सब वेद तीनों गुणों के कार्य लय संसार को विषय करने वाले, अर्थात प्रकाश करने वाले है।

इसलिए तू असंसारी, अर्थात निष्कामी और सुख—दुखादि द्वंदों से रहित, नित्य वस्तु में स्थित तथा योगक्षेम को न चाहने वाला और आत्मावान हो।

राग और द्वेष से मुक्त, द्वंद्व से रहित और शून्य। राग और द्वेष से मुक्त, दो में से एक पर होना सदा आसान है। राग में होना आसान है, विराग में भी होना आसान है। विराग द्वेष है। धन को पकडना आसान है, धन को त्यागना आसान है। पकड़ना राग है, त्यागना द्वेष है। राग और द्वेष दोनों से मुक्त हो जाओ, शून्य हो जाओ, रिक्त हो जाओ, तो जिसे महावीर ने वीतरागता कहा है, उसे उपलब्ध होता है व्यक्ति।

द्वंद्व में चुनाव आसान है, चुनावरहित होना कठिन है। च्वाइस आसान है, च्वाइसलेसनेस कठिन है। कहें मन को कि इसे चुनते हैं, तो मन कहता है—ठीक। कहें मन को, इसके विपरीत चुनते हैं, तो भी मन कहता है—ठीक। चुनो जरूर! क्योंकि जहा तक चुनाव है, वहा तक मन जी सकता है। चुनाव कोई भी हो, इससे फर्क नहीं पड़ता—घर चुनो, जंगल चुनो, मित्रता चुनो, शत्रुता चुनो, धन चुनो, धन—विरोध चुनो, कुछ भी चुनो, प्रेम चुनो, घृणा चुनो, क्रोध चुनो,

क्षमा चुनो, कुछ भी चुनो—च्वाइस हो, तो मन जीता है। लेकिन कुछ भी मत चुनो, तो मन तत्काल—तत्काल—गिर जाता है। मन के आधार गिर जाते हैं। च्वाइस मन का आधार है, चुनाव मन का प्राण है।

इसलिए जब तक चुनाव चलता है जीवन में, तब तक आप कितना ही चुनाव बदलते रहें, इससे बहुत फर्क नहीं पड़ता है। संसार छोड़े, मोक्ष चुनें, पदार्थ छोड़े, परमात्मा चुनें; पाप छोड़े, पुण्य चुनें—कुछ भी चुनें। यह सवाल नहीं है कि आप क्या चुनते हैं, सवाल गहरे में यह है कि क्या आप चुनते हैं? अगर चुनते हैं, अगर च्वाइस है, तो द्वंद्व रहेगा। क्योंकि किसी को छोड़ते हैं और किसी को चुनते हैं।

यह भी समझ लेना जरूरी है कि जिसे छोड़ते हैं, उसे पूरा कभी नहीं छोड़ पा सकते हैं। क्योंकि जिसे छोड़ना पड़ता है, उसकी मन में गहरी पकड़ होती है। नहीं तो छोड़ना क्यों पड़ेगा? अगर एक आदमी के मन में धन की कोई पकड़ न हो, तो वह धन का त्याग कैसे करेगा? त्याग के लिए पकड़ अनिवार्य है। अगर एक आदमी की कामवासना में, सेक्स में रुचि न हो, लगाव न हो, आकर्षण न हो, तो वह ब्रह्मचर्य कैसे चुनेगा? और जिसमें आकर्षण है, लगाव है, उसके खिलाफ हम चुन रहे हैं, तो ज्यादा से ज्यादा हम दमन कर सकते हैं, सप्रेशन कर सकते हैं। और कुछ होने वाला नहीं है; दब जाएगा। जिसे हमने इनकार किया, वह हमारे अचेतन में उतर जाएगा। और जिसे हमने स्वीकार किया, वह हमारा चेतन बन जाएगा।

हमारा मन, जिसे अस्वीकार करता है, उसे अंधेरे में ढकेल देता है। हमारे सबके मन के गोडाउन हैं। घर में जो चीज बेकार हो जाती है, उसे हम कबाड़खाने मे डाल देते हैं। ऐसे ही चेतन मन जिसे इनकार कर देता है, उसे अचेतन में डाल देता है। जिसे स्वीकार कर लेता है, उसे चेतन में ले आता है। चेतन मन हमारा बैठकखाना है। ले

किन किसी भी आदमी का घर बैठकखाने में नहीं होता। बैठकखानों में सिर्फ मेहमानों का स्वागत किया जाता है, उसमें कोई रहता नहीं। असली घर बैठकखाने के बाद शुरू होता है। बैठकखाना घर का हिस्सा नहीं है, तो भी चलेगा। कह सकते हैं कि बैठकखाना घर का हिस्सा नहीं है। क्योंकि घर वाले बैठकखाने में नहीं रहते, बैठकखाने में सिर्फ अतिथियों का स्वागत होता है। बैठकखाना सिर्फ फेस है, बैठकखाना सिर्फ एक चेहरा है, दिखावा है घर का, असली घर नहीं है। बैठकखाना एक डिसेप्शन है, एक धोखा है, जिसमें बाहर से आए लोगों को धोखा दिया जाता है कि यह है हमारा घर। हालांकि उसमें कोई रहता नहीं, न उसमें कोई सोता, न उसमें कोई खाता, न उसमें कोई पीता। उसमें कोई नहीं रहता, वह घर है ही नहीं। वह सिर्फ घर का धोखा है। बैठकखाने के बाद घर शुरू होता है।

चेतन मन हमारा, जगत के दिखावे के लिए बैठकखाना है। उससे हम दूसरों से मिलते —जुलते हैं। लेकिन उसके गहरे में हमारा असली जीवन शुरू होता है। जब भी हम चुनाव करते हैं, तो चुनाव से कोई चीज मिटती नहीं। चुनाव से सिर्फ बैठकखाने की चीजें घर के भीतर चली जाती हैं। चुनाव से, सिर्फ जिसे हम चुनते हैं, उसे बैठकखाने में लगा देते हैं। वह हमारा डेकोरेशन है।

इसलिए दिनभर जो आदमी धन को इनकार करता है, कहता है कि नहीं, मैं त्याग को चुना हूं रात सपने में धन को इकट्ठा करता है। जो दिनभर कामवासना से लड़ता है, रात सपने में कामवासना से घिर जाता है। जो दिनभर उपवास करता है, रात राजमहलों में निमंत्रित हो जाता है भोजन के लिए।

सपने में एसर्ट करता है वह जो भीतर छिपा है। वह कहता है, बहुत हो गया दिनभर अब चुनाव, अब हम प्रतीक्षा कर रहे हैं दिनभर से भीतर, अब हमसे भी मिलो। वह जाता नहीं है, वह सिर्फ दबा रहता है।

और एक मजे की बात है कि जो भीतर दबा है, वह शक्ति—संपन्न होता जाता है। और जो बैठकखाने में है, वह धीरे—धीरे निर्बल होता जाता है। और जल्दी ही वह वक्त आ जाता है कि जिसे हमने दबाया है, वह अपनी उदघोषणा करता है; विस्फोट होता है। वह निकल पड़ता है बाहर।

अच्छे से अच्छे आदमी को, जिसकी जिंदगी बिलकुल बढ़िया, सुंदर, स्मूथ, समतल भूमि पर चलती है, उसे भी शराब पिला दें, तो पता चलेगा, उसके भीतर क्या—क्या छिपा है! सब निकलने लगेगा। शराब किसी आदमी में कुछ पैदा नहीं करती। शराब सिर्फ बैठकखाने और घर का फासला तोड़ देती है, दरवाजा खोल देती है।

अभी पश्चिम में एक फकीर था गुरजिएफ। उसके पास जो भी साधक आता, तो पंद्रह दिन तो उसको शराब में डुबाता। कैसा पागल आदमी होगा? नहीं, समझदार था। क्योंकि वह यह कहता है कि जब तक मैं उसे न देख लूं, जिसे तुमने दबाया है, तब तक मैं तुम्हारे साथ कुछ भी काम नहीं कर सकता। क्योंकि तुम क्या कह रहे हो, वह भरोसे का नहीं है। तुम्हारे भीतर क्या पड़ा है, वही जान लेना जरूरी है।

तो एकदम शराब पिलाता पंद्रह दिन, इतना डुबा देता शराब में। फिर उस आदमी का असली चेहरा खोजता कि भीतर कौन—कौन छिपा है, किस—किस को दबाया है! तुम्हारी च्वाइस ने क्या —क्या किया है, इसे जानना जरूरी है, तभी रूपांतरण हो सकता है।

कई लोग तो भाग जाते कि हम यह बरदाश्त नहीं कर सकते। लेकिन गुरजिएफ कहता कि पंद्रह दिन तो जब तक मैं तुम्हें शराब में न डुबा लूं, जब तक मैं तुम्हारे भीतरी घर में न झांक लूं कि तुमने क्या—क्या दबा रखा है, तब तक मैं तुमसे बात भी नहीं करूंगा। क्योंकि तुम जो कहते हो, उसको सुनकर अगर मैं तुम्हारे साथ मेहनत करूं, तो मेहनत व्यर्थ चली जाएगी। क्योंकि तुम जो कहते हो, पक्का नहीं है कि तुम वही हो, भीतर तुम कुछ और हो सकते हो। और अंतिम निष्कर्ष पर, तुम्हारे जो भीतर पड़ा है, वही निर्णायक है।

इसलिए कृष्ण कहते हैं, चुनना मत। क्योंकि चुनाव किया कि भीतर गया वह; जिसे तुमने छोड़ा, दबाया, वह अंदर गया। और जिसे तुमने उभारा और स्वीकारा, वह ऊपर आया। बस, इससे ज्यादा फर्क नहीं पड़ेगा। द्वंद्व बना ही रहेगा। और द्वंद्व क्या है? कांफ्लिक्ट क्या है?

द्वद्व एक, का द्वंद्व। आपने कसम ली है, क्रोध नहीं करेंगे। कसम आपकी चेतन मन में, कांशस माइंड में रहेगी। और क्रोध की ताकतें अचेतन मन में रहेंगी। कल कोई गाली देगा, अचेतन मन कहेगा, करो क्रोध! और चेतन मन कहेगा, कसम खाई है कि क्रोध नहीं करना है। और द्वंद्व खड़ा होगा। लड़ोगे भीतर।

और ध्यान रहे, जब भी लड़ाई होगी, तो अचेतन जीतेगा। इमरजेंसी में हमेशा अचेतन जीतेगा। बेकाम समय में चेतन जीतता हुआ दिखाई पड़ेगा, काम के समय में अचेतन जीतेगा। क्यों? क्योंकि मनोविज्ञान की अधिकतम खोजें इस नतीजे पर पहुंची हैं कि चेतन मन हमारे मन का एक हिस्सा है। अगर हम मन के दस हिस्से करें, तो एक हिस्सा चेतन और नौ हिस्सा अचेतन है। नौगुनी ताकत है उसकी।

तो वह जो नौगुनी ताकत वाला मन है, वह प्रतीक्षा करता है कि कोई हर्जा नहीं। सुबह जब गीता का पाठ करते हो तब कोई फिक्र नहीं, कसम खाओ कि क्रोध नहीं करेंगे। मंदिर जब जाते हो, तब कोई फिक्र नहीं, मंदिर कोई जिंदगी है! कहो कि क्रोध नहीं करेंगे। देख लेंगे दुकान पर! देख लेंगे घर में! जब मौका आएगा असली, तब एकदम चेतन हट जाता है और अचेतन हमला बोल देता है। इसीलिए तो हम कहते हैं, क्रोध करने के बाद आदमी कहता है कि पता नहीं कैसे मैंने क्रोध कर लिया! मेरे बावजूद—इंस्पाइट आफ मी—मेरे बावजूद क्रोध हो गया। लेकिन आपके बावजूद क्रोध कैसे हो सकता है? निश्चित ही, आपने अपने ही किसी गहरे हिस्से को इतना दबाया है कि उसको आप दूसरा समझने लगे हैं, कि वह और है। वह हमला बोल देता है। जब वक्त आता है, वह हमला बोल देता है।

यह जो द्वंद्व है, यह जो काफ्लिक्ट है, यही मनुष्य का नरक है। द्वंद्व नरक है। कांफ्लिक्ट के अतिरिक्त और कोई नरक नहीं है। और हम इसको बढ़ाए चले जाते हैं। जितना हम चुनते जाते हैं, बढ़ाए चले जाते हैं।

तो कृष्ण इस सूत्र में कहते हैं, राग और द्वेष से—द्वंद्व से, कांफ्लिक्ट से—जो बाहर हो जाता है, जो चुनाव के बाहर हो जाता है, वही जीवन के परम सत्य को जान पाता है। और जो द्वंद्व के भीतर घिरा रहता है, वह सिर्फ जीवन के नरक को ही जान पाता है। इस द्वंद्व— अतीत वीतरागता में ही निष्काम कर्म का फूल खिल सकता है। या निष्काम कर्म की भूमिका हो, तो यह द्वंद्वरहित, राग—द्वेषरहित, यह शून्य—चेतना फलित हो सकती है।

चेतना जब शून्य होती है, तभी शुद्ध होती है। यह शून्य का कृष्ण का कहना! चेतना जब शून्य होती है, तभी शुद्ध होती है, जब शुद्ध होती है, तब शून्य ही होती है।

करीब—करीब ऐसा समझें कि एक दर्पण है। दर्पण कब शुद्धतम होता है? जब दर्पण में कुछ भी नहीं प्रतिफलित होता, जब दर्पण में कोई तस्वीर नहीं बनती। जब तक दर्पण में तस्वीर बनती है, तब तक कुछ फारेन, कुछ विजातीय दर्पण पर छाया रहता है। जब तक दर्पण पर कोई तस्वीर बनती है, तब तक दर्पण सिर्फ दर्पण नहीं होता, कुछ और भी होता है। एक तस्वीर निकलती है, दूसरी बन जाती है। दूसरी निकलती है, तीसरी बन जाती है। दर्पण पर कुछ बहता रहता है। लेकिन जब कोई तस्वीर नहीं बनती, जब दर्पण सिर्फ दर्पण ही होता है, तब शून्य होता है।

चेतना सिर्फ दर्पण है। जब तक उस पर कोई तस्वीर बनती रहती है—कभी राग की, कभी विराग की, कभी मित्रता की, कभी शत्रुता की, कभी बाएं की, कभी दाएं की—कोई न कोई तस्वीर बनती रहती है, तो चेतना अशुद्ध होती है। लेकिन अगर कोई तस्वीर नहीं बनती, चेतना द्वंद्व के बाहर, चुनाव के बाहर होती है, तो शून्य हो जाती है। शून्य चेतना में क्या बनता है? जब दर्पण शून्य होता है, तब दर्पण ही रह जाता है। जब चेतना शून्य होती है, तो सिर्फ चैतन्य ही रह जाती है।

वह जो चैतन्य की शून्य प्रतीति है, वही ब्रह्म का अनुभव है। वह जो शुद्ध चैतन्य की अनुभूति है, वही मुक्ति का अनुभव है। शून्य और ब्रह्म, एक ही अनुभव के दो छोर हैं। इधर शून्य हुए, उधर ब्रह्म हुए। इधर दर्पण पर तस्वीरें बननी बंद हुईं कि उधर भीतर से ब्रह्म का उदय हुआ। ब्रह्म के दर्पण पर तस्वीरों का जमाव ही संसार है। हम असल में दर्पण की तरह व्यवहार ही नहीं करते। हम तो कैमरे की फिल्म की तरह व्यवहार करते हैं। कैमरे की फिल्म प्रतिबिंब को ऐसा पकड़ लेती है कि छोड़ती ही नहीं। फिल्म मिट जाती है, तस्वीर ही हो जाती है। अगर हम कोई ऐसा कैमरा बना सकें, बना सकते हैं, जिसमें कि एक तस्वीर के ऊपर दूसरी और दूसरी के ऊपर तीसरी ली जा सके, एक फिल्म पर अगर हजार तस्वीरें, लाख तस्वीरें ली जा सकें, तो जो स्थिति उस फिल्म की होगी, वैसी स्थिति हमारे चित्त की है। तस्वीरों पर तस्वीरें, तस्वीरों पर तस्वीरें इकट्ठी हो जाती हैं। कनफ्यूजन के सिवाय कुछ नहीं शेष रहता। कोई शकल पहचान में भी नहीं आती है कि किसकी तस्वीर है। कुछ पता भी नहीं चलता कि क्या है। एक नाइटमेयरिश, एक दुख—स्वप्न जैसा चित्त हो जाता है।

दर्पण तो फिर भी बेहतर है। एक तस्वीर बनती है, मिट जाती है, तब दूसरी बनती है। हमारा चित्त ऐसा दर्पण है, जो तस्वीरों को पकड़ता ही चला जाता है, इकट्ठा करता चला जाता है; तस्वीरें ही तस्वीरें रह जाती हैं।

उर्दू के किसी कवि की एक पंक्ति है, जिसमें उसने कहा है कि मरने के बाद घर से बस कुछ तस्वीरें ही निकली हैं। मरने के बाद हमारे घर से भी कुछ तस्वीरों के सिवाय निकलने को कुछ और नहीं है। जिंदगीभर तस्वीरों के संग्रह के अतिरिक्त हमारा कोई और कृत्य नहीं है।

कृष्ण कहते हैं, शून्य, निर्द्वंद्व चित्त। छोड़ो तस्वीरों को, जानो दर्पण को। मत करो चुनाव, क्योंकि चुनाव किया कि पकड़ा। पकड़ो ही मत, नो क्लिगिंग। रह जाओ वही, जो हो। उस शून्य क्षण में जो जाना जाता है, वही जीवन का परम सत्य है, परम ज्ञान है।

प्रश्न :
भगवान श्री, इस श्लोक में यह वार्त्तिक मिला, बहुत यथार्थ है। मगर एक मुश्किल पड़ जाती है कि त्रैगुण्यविषया वेदा। इसमें गीता सर्व वेद पर आक्षेप करती है कि वे त्रैगुण्य विषय से युक्त हैं! और दूसरा, उत्तरार्ध में निर्योगक्षेम आत्मवान, तो आत्मवान होना न होना एक आंतरिक भाव है, तो श्रीकृष्ण उसको योगक्षेम प्रवृत्ति की बाह्य घटना से क्यों जोड़ते हुए दिखते हैं? मात्र आत्मवान होने से योगक्षेम की समस्या हल हो सकेगी?

कृष्ण कहते हैं, समस्त वेद सगुण से, तीन गुणों से भरे हैं, निर्गुण नहीं हैं। शब्द निर्गुण नहीं हो सकता; वेद ही नहीं, कृष्ण का शब्द भी निर्गुण नहीं हो सकता। और जब वे कहते हैं समस्त वेद, तो उसका मतलब है समस्त शास्त्र, उसका मतलब है समस्त वचन, उसका मतलब है समस्त ज्ञान, जो कहा गया, वह कभी भी तीन गुणों के बाहर नहीं हो सकता।

इसे ऐसा समझें कि जो भी अभिव्यक्त है, वह गुण के बाहर नहीं हो सकता। सिर्फ अव्यक्त, अनभिव्यक्त, अनमैनिफेस्टेड निर्गुण हो सकता है, व्यक्त तो सदा ही सगुण होगा। असल में व्यक्त होने के लिए गुण का सहारा लेना पड़ता है। व्यक्त होने के लिए गुण की रूपरेखा लेनी पड़ती है। व्यक्त होने के लिए गुण का माध्यम चुनना पड़ता है। जैसे ही कुछ व्यक्त होगा कि गुण की सीमा में प्रवेश कर जाएगा।

वेद का अर्थ है, व्यक्त ज्ञान; वेद का अर्थ है, शब्द में सत्य। जब सत्य को शब्द में रखेंगे, तब सत्य की असीमता शेष न रह जाएगी, वह सीमित हो जाएगा। कितना ही बडा शब्द हो, तो भी सत्य को पूरा न घेर पाएगा, क्योंकि सत्य को पूरा घेरा नहीं जा सकता। कितनी ही बड़ी प्रतिमा हो, तो भी परमात्मा को पूरा न घेर पाएगी, क्योंकि परमात्मा को पूरा घेरा नहीं जा सकता।

सब शब्द, सब व्यक्त सीमा बनाते हैं। गुणों की सीमा बनाते हैं। गुण से ही व्यक्त होगा। एक बीज में वृक्ष निर्गुण हो सकता है, निराकार हो सकता है। है, अभी कोई आकार नहीं है। लेकिन जब बीज फूटेगा और प्रकट होगा, तो वृक्ष आकार ले लेगा।

तो जहां वे कह रहे हैं वेद के संबंध में, वह समस्त वक्तव्य के संबंध में कही गई बात है। उसमें गीता भी समाहित हो गई है। तो ऐसा नहीं है कि गीता वेद की कोई उपेक्षा कर रही है। वेद में भी ऐसे वचन हैं, जो कहेंगे, शब्द से उसे नहीं कहा जा सकता।

समस्त शास्त्रों की गहरी से गहरी कठिनाई यही है कि शास्त्र उसी को कहने की चेष्टा में संलग्न हैं, जो नहीं कहा जा सकता है। शास्त्र उसी को बताने में संलग्न हैं, जिसे बताने के लिए कोई उपाय नहीं है। शास्त्र उसी दिशा में इंगित कर रहे हैं, जो अदिशा है, जो दिशा नहीं है, नो—डायमेंशन है।

अगर मुझे वृक्ष बताना हो, तो मैं इशारा कर दूं कि वह रहा। अगर मुझे तारा बताना हो, तो बता दूं कि वह रहा। लेकिन अगर मुझे परमात्मा बताना हो, तो अंगुली से नहीं बताया जा सकता, मुट्ठी बांधकर बताना पड़ेगा और कहना पड़ेगा, यह रहा। क्योंकि अंगुली तो समव्हेयर, कहीं बताएगी; और जो एवरीव्हेयर है, उसे अंगुली से नहीं बताया जा सकता। अंगुली से बताने में भूल हो जाने वाली है, क्योंकि अंगुली तो कहीं इशारा करती है उसको, बाकी जगह भी तो वही है।

नानक गए मक्का। सो गए रात। पुजारी बहुत नाराज हुए। नानक को पकड़ा और कहा कि बड़े छू मालूम पड़ते हो! पवित्र मंदिर की तरफ, परमात्मा की तरफ पैर करके सोते हो? तो नानक ने कहा कि मैं बड़ी मुसीबत में था; मैं भी बहुत सोचा, कोई उपाय नहीं मिला। तुम्हीं को मैं स्वतंत्रता देता हूं तुम मेरे पैर उस तरफ कर दो, जहां परमात्मा न हो।

वे पुजारी मुश्किल में पड़े होंगे। पुजारी हमेशा नानक जैसे आदमी से मिल जाए, तो मुश्किल में पड़ता है। क्योंकि पुजारी को धर्म का कोई पता नहीं होता। पुजारी को धर्म का कोई पता ही नहीं होता। उसे मंदिर का पता होता है। मंदिर की सीमा है।

मुश्किल में डाल दिया। वही सवाल है नानक का। नानक कहते हैं, मेरे पैर उस तरफ कर दो, जहां परमात्मा न हो, मैं राजी।

कहां करें पैर? कहीं भी करेंगे, परमात्मा तो होगा। मंदिर नहीं होगा, काबा नहीं होगा, परमात्मा तो होगा। तो फिर काबा में जो परमात्मा है, वह उसी परमात्मा से समतुल नहीं हो सकता, जो सब जगह है।

तो काबा का परमात्मा सगुण हो जाएगा। मंदिर का परमात्मा सगुण हो जाएगा। शब्द का परमात्मा सगुण हो जाएगा। शास्त्र का परमात्मा सगुण हो जाएगा। बोला, कहा, प्रकट हुआ कि सगुण हुआ। कृष्ण जो बोल रहे हैं, वह भी सगुण हो जाता है, बोलते ही सगुण हो जाता है।

वेद की निंदा नहीं है वह, वेद की सीमा का निर्देश है। शब्द की निंदा नहीं है वह, शब्द की सीमा का निर्देश है। वचन की निंदा नहीं है वह, वचन की सीमा का निर्देश है। और वह निर्देश करना जरूरी है। लेकिन कितना ही निर्देश करो, आदमी बहरा है। अगर कृष्ण की बात सुन ले कि वेद में जो है, वह सब त्रिगुण के भीतर है, तो वह कहेगा, छोड़ो वेद को, गीता को पकड़ो। क्योंकि वेद में तो निर्गुण निराकार नहीं है, छोड़ो! छोटा हो गया वेद, गीता को पकड़ो।

लेकिन समझ ही नहीं पाया वह। अगर कृष्ण कहीं देखते होंगे, तो वे हंसते होंगे कि तुमने फिर दूसरा वेद बना लिया। यह सवाल वेद का नहीं है, यह सवाल व्यक्त की सीमा का है।

और दूसरी बात पूछी है कि अगर आत्मस्थिति को सीधा ही स्वीकार कर लिया जाए, तो उसे योगक्षेम से क्यों जोड़ते हैं?

जोड़ते नहीं हैं, जुड़ी है। सिर्फ कहते हैं। जोड़ते नहीं हैं, जुड़ी है। जैसे एक दीया जले, तो दीया तो अपने में ही जलता है। अगर आस—पास कोई चीज न हो दिखाई पड़ने को, तो भी जलता है। दीए का जलना, दीए का प्रकाश से भरना, किन्हीं प्रकाशित चीजों पर निर्भर नहीं होता। लेकिन दीया जलता है, तो चीजें प्रकाशित होती हैं। जो भी आस—पास होगा, वह प्रकाशित होगा।

और बड़े मजे की बात है कि आपने कभी भी प्रकाश नहीं देखा है अब तक, सिर्फ प्रकाशित चीजें देखी हैं। प्रकाश नहीं देखा है किसी ने भी आज तक, सिर्फ प्रकाशित चीजें देखी हैं। प्रकाशित चीजों की वजह से आप अनुमान करते हैं कि प्रकाश है। आप सोचेंगे कि मैं क्या बात कह रहा हूं! हम सब ने प्रकाश देखा है। फिर से सोचना, प्रकाश कभी किसी ने देखा ही नहीं।

यह वृक्ष दिखता है सूरज की रोशनी में चमकता हुआ, इसलिए आप कहते हैं, सूरज की रोशनी है। फिर अंधेरा आ जाता है और वृक्ष नहीं दिखता है, आप कहते हैं, रोशनी गई। लेकिन आपने रोशनी नहीं देखी है। देखें आकाश की तरफ, चीजें दिखाई पड़ेगी, रोशनी कहीं दिखाई नहीं पड़ेगी। जहा भी है, जो भी दिखाई पड़ रहा है, वह प्रकाशित है, प्रकाश नहीं।

कृष्ण के कहने का कारण है। वे कहते हैं, जब कोई शून्य आत्मस्थिति को उपलब्ध होता है, तो योगक्षेम फलित होते हैं। आपको योगक्षेम ही दिखाई पड़ेंगे। आपको आत्मस्थिति दिखाई नहीं पड़ेगी। उस आत्मस्थिति के पास जो घटना घटती है योगक्षेम की, वही दिखाई पड़ेगी। जब कोई व्यक्ति आनंद को उपलब्ध होता है, तो आपको उसके भीतर की स्थिति दिखाई नहीं पड़ेगी; उसके चारों तरफ सब आनंद से भर जाएगा, वही दिखाई पड़ेगा। जब कोई भीतर शान को उपलब्ध होता है, तो आपको उसके शान की स्थिति! दिखाई नहीं पड़ेगी, लेकिन उसके चारों तरफ ज्ञान की घटनाएं घटने लगेंगी, वही आपको दिखाई पड़ेगा। भीतर तो शुद्ध अस्तित्व ही रह जाएगा आत्मा का, लेकिन योगक्षेम उसके कांसिक्येंसेस होंगे। जैसे दीया जलेगा, और चीजें चमकने लगेंगी। चीजें न हों तो भी दीया जल सकता है, लेकिन तब आपको दिखाई नहीं पड़ सकता है। अर्जुन आत्मवान होगा, यह उसकी भीतरी घटना है। अर्जुन का आत्मवान होना, चारों तरफ योगक्षेम के फूल खिला देगा, यह उसकी बाहरी घटना है। इसलिए वे दोनों का स्मरण करते हैं। और हम कैसे पहचानेंगे जो बाहर खड़े हैं? वे आत्मवान को नहीं पहचानेंगे, योगक्षेम को पहचानेंगे।

मोहम्मद के बाबत कहा जाता है कि मोहम्मद जहां भी चलते, तो उनके ऊपर आकाश में एक बदली चलती साथ, छाया करती हुई। कठिन मालूम पड़ती है बात। मोहम्मद जहां भी जाएं, तो उनके ऊपर एक बदली चले और छाया करे! लेकिन आदमी के पास शब्द कमजोर हैं, इसलिए जो चीज गद्य में नहीं कही जा सकती, उसे हम पद्य में कहते हैं। पद्य हमारे गद्य की असमर्थता है। जब प्रोज़ में नहीं कह पाते, तो पोएट्री निर्मित करते हैं। और जीवन में जो —जो गहरा है, वह गद्य में नहीं कहा जा सकता, इसलिए जीवन का सब गहरा पद्य में, पोएट्री में कहा जाता है।

यह पोएटिक एक्सप्रेशन है किसी अनुभूति का, मोहम्मद जहां भी जाते, वहा छाया पहुंच जाती। मोहम्मद जहा भी जाते, वहा आस—पास के लोगों को ऐसा लगता जैसे रेगिस्तान, मरुस्थल के आदमी को लगेगा कि जैसे ऊपर कोई बादल आ गया हो और सब छाया हो गई हो। मोहम्मद जहा होते, वहां योगक्षेम फलित होता। महावीर के बाबत कहा

गया है कि महावीर अगर रास्ते से चलते, तो काटे अगर सीधे पड़े होते, तो उलटे हो जाते। कोई कांटा फिक्र नहीं करेगा, संभावना कम दिखाई पड़ती है।

लेकिन जिन्होंने यह लिखा है, उन्होंने कुछ अनुभव किया है। महावीर के आस—पास सीधे कांटे भी उलटे हो जाएं—कांटे नहीं, पर कांटापन। जिंदगी में बहुत काटे हैं, बहुत तरह के काटे हैं। रास्तों पर बहुत काटे हैं। और महावीर के पास जो लोग आए हों, उन्हें अचानक लगा हो कि अब तक जो कांटे सीधे चुभ रहे थे, वे एकदम उलटे हो गए, नहीं चुभ रहे हैं; योगक्षेम फलित हुआ हो, तो कविता कैसे कहे? आदमी कैसे कहे? आदमी कहता है कि ऐसा हो जाता है। लेकिन भूल होती है हमें। हमें तो यही दिखाई पड़ता है। हम महावीर को पहचानेंगे भी कैसे कि वे महावीर हैं न: हम कैसे पहचानेंगे कि बुद्ध बुद्ध हैं?

तो बुद्ध के लिए हमने कहानियां गढ़ी हैं कि बुद्ध जिस गांव से निकलते हैं, वहा केशर की वर्षा हो जाती है। हो नहीं सकती, उस केशर की नहीं, जो बाजार में बिकती है। लेकिन जिन लोगों के गांव से बुद्ध गुजरे हैं, उनको जरूर केशर की सुगंध जैसा, केशर जैसा —उनके पास जो कीमती से कीमती शब्द रहा होगा—उसकी प्रतीति हुई, उसका एहसास हुआ है। कुछ बरसा है उस गांव में जरूर। और आदमी की भाषा में कोई और शब्द नहीं होगा, तो कहा है, केशर बरस गई है।

जब भीतर जीवन प्रकाशित होता है, तो बाहर भी प्रकाश की किरणें लोगों को छूती हैं। वे जब लोगों को छूती हैं, तो योगक्षेम फलित होता है।

इसलिए कृष्ण कहते हैं और ठीक कहते हैं। कहना चाहिए। कहना जरूरी है। क्योंकि एक व्यक्ति के जीवन में भी जब आत्मा की घटना घटती है, तो उसके प्रकाश का वर्तुल दूर—दूर लोक—लोकातर तक फैल जाता है। और एक व्यक्ति के भीतर भी जो स्वर बजता है आत्मा का, तो उसकी स्वरलहरी दूसरों के प्राणों को भी झंकार से भर जाती है। और एक व्यक्ति के जीवन में जब आनंद फलित होता है, तो दूसरों के जीवन में भी आनंद के फूल थोड़े—से जरूर बरस जाते हैं।

इसलिए अर्जुन को तो कहते हैं, तू आत्मवान हो जाएगा, शक्ति—संपन्न हो जाएगा। लेकिन जब शक्ति—संपन्न होगा कोई, भीतर आत्मवान होगा कोई, तो इसे एक और दूसरी तरफ से देखने की कोशिश करें।

जब कोई व्यक्ति आत्महीन होता है, जब कोई व्यक्ति अपनी आत्मा को खो देता है, तो कभी आपने खयाल किया है कि उसके आस—पास दुख, पीड़ा का जन्म होना शुरू हो जाता है! जब कोई एक व्यक्ति अपनी आत्मा को खोता है, तो अपने आस—पास दुख का एक वर्तुल पैदा कर लेता है! निर्भर करेगा कि कितनी उसने आत्मा खोई है।

अगर एक हिटलर जैसा आदमी पृथ्वी पर पैदा हो, तो विराट दुख का वर्तुल चारों ओर फलित होता है। योगक्षेम का पता ही नहीं चलता, सब खो जाता है। उससे उलटा घटित होने लगता है। अकल्याण और अमंगल चारों ओर फैल जाता है। फैलेगा। चंगेज खां जैसा आदमी पैदा होता है, तो जहां से गुजर जाता है, वहां केशर नहीं बरसती, सिर्फ खून! सिर्फ खून ही बहता है।

बुरे आदमियों को हम भलीभांति पहचानते हैं। उनके आस — पास जो घटनाएं घटती हैं, उन्हें भी पहचानते हैं। स्वभावत:, बुरे आदमी के आस—पास जो घटना घटती है, वह बहुत मैटीरियल होती है, बहुत भौतिक होती है, दिखाई पड़ती है।

चंगेज खां निकले आपके गाव से, तो मुश्किल है कि आप न देख पाएं। क्योंकि घटनाएं बहुत भौतिक, मैटीरियल घटेंगी। चंगेज खां जिस गाव से निकलता, उस गांव के सारे बच्चों को कटवा डालता। भालों पर बच्चों के सिर लगवा देता। और जब चंगेज खां से किसी ने पूछा कि तुम क्या कर रहे हो? दस—दस हजार बच्चे भालों पर लटके हैं! तो चंगेज खां ने हंसकर कहा कि लोगों को पता होना चाहिए कि चंगेज खां निकल रहा है।

बुद्ध भी निकलते हैं किसी गाव से, कृष्ण भी निकलते हैं किसी गाव से, जीसस भी निकलते हैं किसी गांव से—घटनाएं इम्मैटीरियल घटती हैं, घटनाएं मैटीरियल नहीं होतीं। इसलिए जिनके पास थोड़ी संवेदनशील चेतना है, वे ही पकड़ पाते हैं। जिनके पास थोड़ा संवेदन से भरा हुआ मन है, जो रिस्पांसिव हैं, वे ही पकड़ पाते हैं।

उसमें जो पकड़ में आता है, उसको कृष्ण कह रहे हैं योगक्षेम। वे जो पकड़ पाते हैं, उनको पता लगता है, सब बदल गया। हवा और हो गई, आकाश और हो गया, सब और हो गया। यह जो सब और हो जाने का अनुभव है, इस अनुभव को कृष्ण कह रहे हैं योगक्षेम। उसे स्मरण दिलाना उचित है।

एक बात और खयाल में ले लेनी जरूरी है कि वे कह रहे हैं, तू शक्ति—संपन्न हो जाएगा।

असल में मनुष्य तब तक शक्ति—संपन्न होता ही नहीं, जब तक स्वयं होता है, तब तक वह शक्ति—विपन्न ही होता है। असल में स्वयं होना, अहंकार—केंद्रित होना, दीन होने की रामबाण व्यवस्था है। जितना मैं अहंकार से भरा हूं जितना मैं हूं, उतना ही मैं दीन हूं। जितना मेरा अहंकार छूटता और मैं आत्मवान होता हूं, जितना ही मैं मिटता, उतना ही मैं सर्व से एक होता हूं। तब शक्ति मेरी नहीं, ब्रह्म की हो जाती है। तब मेरे हाथ मुझसे नहीं चलते, ब्रह्म से चलते हैं। तब मेरी वाणी मुझसे नहीं बोलती, ब्रह्म से बोलती है। तब मेरा उठना—बैठना मेरा नहीं, उसका ही हो जाता है।

स्वभावत:, उससे बड़ी और शक्ति—संपन्नता क्या होगी? जिस दिन व्यक्ति अपने को समर्पित कर देता सर्व के लिए, उस दिन सर्व की सारी शक्ति उसकी अपनी हो जाती है। उस दिन होता है वह शक्ति—संपन्न।

शक्ति यहां पावर का प्रतीक नहीं है। शक्ति उन अर्थों में नहीं, जैसे किसी पद पर पहुंचकर कोई आदमी शक्तिशाली हो जाता है, कि कोई आदमी कल तक सड़क पर था, फिर मिनिस्टर हो गया, तो शक्तिशाली हो गया। यह शक्ति व्यक्ति में नहीं होती, यह शक्ति पद में होती है। इसको कुर्सी से नीचे उतारो, यह फिर विपन्न हो जाता है। यह शक्ति इसमें होती ही नहीं, यह इसके कुर्सी पर बैठने से होती है।

कभी सर्कस में, कार्निवाल में आपने इलेक्ट्रिक चेयर देखी हो, कुर्सी जो इलेक्ट्रिफाइड होती है। उस पर एक लड़की या लड़के को बिठा रखते हैं। वह लड़का भी इलेक्ट्रिफाइड हो जाता है। फिर उस लड़के को छुए, तो शॉक लगता है। वह लड़के का शॉक नहीं है, कुर्सी का शॉक है। लड़के को कुर्सी से बाहर उतारें, गया। मोरारजी भाई कुर्सी पर और मोरारजी भाई कुर्सी के बाहर। इलेक्ट्रिफाइड चेयर! सर्कस है! मगर वह जो कुर्सी पर बैठा हुआ लड़का या लड़की है, जब आपको शॉक लगता है, तो उसकी शान देखें। वह समझता है कि शायद मैं शॉक मार रहा हूं। कुर्सी के शॉक हैं। लेकिन आइडेंटिफाइड हो जाता है आदमी।

पावर नहीं मतलब है कृष्ण की शक्ति का। कृष्ण की शक्ति का मतलब है, एनर्जी, ऊर्जा, जो पद से नहीं आती। असल में जो पद—मात्र छोड़ने से आती है।

अहंकार पद को खोजता है। जो अहंकार को ही छोड़ देता है, उसके सब पद खो जाते हैं। उसके पास कोई पद नहीं रह जाता वह शून्य हो जाता है। उस शून्य में विराट गूंजने लगता है। उस शून्य में विराट उतर आता है। उस शून्य में विराट के लिए द्वार मिल जाता है। तब वह एनर्जी है, पावर नहीं। तब वह ऊर्जा है, शक्ति है, उधार नहीं है। तब वह व्यक्ति मिटा और अव्यक्ति हो गया। तब व्यक्ति नहीं है, परमात्मा है। और ऐसी स्थिति से वापस लौटना नहीं होता।

ध्यान रखें, पावर से वापस लौटना होता है। पद से वापस लौटना होता है, धन से वापस लौटना होता है। जो शक्ति भी किसी कारण से मिलती है और अहंकार की खोज से मिलती है, उससे लौटना होता है। लेकिन जो शक्ति अहंकार को खोकर मिलती है, वह प्वाइंट आफ नो रिटर्न है, उससे वापस लौटना नहीं होता है।

इसलिए एक बार व्यक्ति परमात्मा की शक्ति को जान लेता है, एक हो जाता है, वह सदा के लिए शक्ति—संपन्न हो जाता है। शायद यह कहना ठीक नहीं है कि शक्ति—संपन्न हो जाता है, उचित यही होगा कहना कि वह शक्ति—संपन्नता हो जाता है। शक्ति—संपन्न हो जाता है, तो ऐसा खयाल बनता है कि वह भी बचता है। नहीं, यह कहना ठीक

नहीं है कि वह शक्ति—संपन्न हो जाता है, यही कहना ठीक है कि वह शक्ति हो जाता है। और ऐसी शक्ति अगर पद की है, धन की है, तो योगक्षेम फलित नहीं होंगे। ऐसी शक्ति अगर परमात्मा की है, तो योगक्षेम फलित होंगे।

इसलिए भी योगक्षेम की बात कर लेनी उचित है। क्योंकि ऐसी शक्तियां भी हैं, जिनसे योगक्षेम से उलटा फलित होता है।

पावर—पालिटिक्स है सारी दुनिया में। जब भी कोई आदमी पोलिटिकली पावरफुल होने की यात्रा करता है, तो योगक्षेम फलित नहीं होता है। उससे उलटा ही फलित होता है। अमंगल ही फलित होता है। दुख ही फलित होता है।

तो शक्ति का यह स्मरण रहे, भेद खयाल में रहे, शक्ति का अर्थ पावर नहीं, एनर्जी। शक्ति का अर्थ अहंकार की खोज नहीं, अहंकार का विसर्जन। तो निश्चित ही योगक्षेम फलित होता है।

यावानर्थ उदयाने सर्वत: संप्लुतोदके ।
तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः ।।46।।

क्योंकि मनुष्य का, सब ओर से परिपूर्ण जलाशय के प्राप्त होने पर, छोटे जलाशय में जितना प्रयोजन रहता है, अच्छी प्रकार ब्रह्म को जानने वाले ब्राहमण का भी सब वेदों में उतना ही प्रयोजन रहता है।

कृष्ण कह रहे हैं कि जैसे छोटे—छोटे नदी—तालाब हैं, कुएं—पोखर हैं, झरने हैं, इन झरनों में नहाने से जो आनंद होता है, जो शुचिता मिलती है, ऐसी शुचिता तो सागर में नहाने से मिल ही जाती है अनेक गुना होकर। शब्दों के पोखर में, शास्त्रों के पोखर में जो मिलता है, उससे अनेक गुना ज्ञान के सागर में मिल ही जाता है। वेद में जो मिलेगा—संहिता में, शास्त्र में, शब्द में—वह ज्ञानी को ज्ञान में तो अनंत गुना होकर मिल ही जाता है।

इसमें दो बातें ध्यान रखने जैसी हैं। एक तो यह कि जो सीमा में मिलता है, वह असीम में मिल ही जाता है। इसलिए असीम के लिए सीमित को छोड़ने में भय की कोई भी आवश्यकता नहीं है। अगर ज्ञान के लिए वेद को छोड़ना हो, तो कोई चिंता की बात नहीं है। सत्य के लिए शब्द को छोड़ना हो, तो कोई चिंता की बात नहीं है। अनुभव के लिए शास्त्र को छोड़ना हो, तो कोई चिंता की बात नहीं है—पहली बात। क्योंकि जो मिलता है यहां, उससे अनंत गुना वहां मिल ही जाता है।

दूसरी बात, सागर में जो मिलता है, शान में जो मिलता है, असीम में जो मिलता है, उस असीम में मिलने वाले को सीमित के लिए छोडना बहुत खतरनाक है। अपने घर के कुएं के लिए सागर को छोडना बहुत खतरनाक है। माना कि घर का कुआ है, अपना है, बचपन से जाना, परिचित है, फिर भी कुआ है। घरों में कुएं से ज्यादा सागर हो भी नहीं सकते। सागरों तक जाना हो तो घरों को छोड़ना पड़ता है। घरों में कुएं ही हो सकते हैं।

हम सबके अपने—अपने घर हैं, अपने—अपने वेद हैं, अपने—अपने शास्त्र हैं, अपने— अपने धर्म हैं, अपने—अपने संप्रदाय हैं, अपने— अपने मोहग्रस्त शब्द हैं। हम सबके अपने—अपने—कोई मुसलमान है, कोई हिंदू है, कोई ईसाई है—सबके अपने वेद हैं। कोई इस मूर्ति का पूजक, कोई उस मूर्ति का पूजक; कोई इस मंत्र का भक्त, कोई उस मंत्र का भक्त है। सबके अपने— अपने कुएं हैं।

कृष्ण यहां कह रहे हैं, इनके लिए सागर को छोड़ना खतरनाक है। ही, इससे उलटा, वाइस—वरसा हो सकता है। सागर के लिए इनको छोड़ने में कोई भी हर्ज नहीं है। क्योंकि जो इनमें मिलेगा, वह अनंत गुना होकर सागर में मिल ही जाता है।

इसलिए वह व्यक्ति अभागा है, जो अपने घर के कुएं के लिए—बाइबिल, कुरान, वेद, गीता.. गीता भी! गीता का कृष्ण ने उल्लेख नहीं किया, कैसे करते! क्योंकि जो वे कह रहे थे, वही गीता बनने वाला था। गीता तब तक थी नहीं। मैं उल्लेख करता हूं? गीता भी! जो इनमें मिलता है, इससे अनंत गुना होकर ज्ञान में मिल ही जाता है। इसलिए जो इनके

कारण ज्ञान के लिए रुकावट बनाए इनके पक्ष में ज्ञान को छोड़े, वह अभागा है। लेकिन जो ज्ञान के लिए इन सबको छोड़ दे, वह सौभाग्यशाली है। क्योंकि जो इनमें मिलेगा, वह ज्ञान में मिल ही जाने वाला है।

लेकिन क्या मतलब है? ज्ञान का और वेद का, ज्ञान का और शास्त्र का फासला क्या है? भेद क्या है?

गहरा फासला है। जो जानते हैं, उन्हें बहुत स्पष्ट दिखाई पड़ता है। जो नहीं जानते हैं, उन्हें दिखाई पड़ना बहुत मुश्किल हो जाता है। क्योंकि किन्हीं भी दो चीजों का फासला जानने के लिए दोनों चीजों को जानना जरूरी है। जो एक ही चीज को जानता है, दूसरे को जानता ही नहीं, फासला कैसे निर्मित करे? कैसे तय करे?

हम शास्त्र को ही जानते हैं, इसलिए हम जो फासले निर्मित करते हैं, ज्यादा से ज्यादा दो शास्त्रों के बीच करते हैं। हम कहते हैं, कुरान कि बाइबिल, वेद कि गीता, कि महावीर कि बुद्ध, कि जीसस कि जरथुस्त्र। हम जो फासले तय करते हैं, वे फासले ज्ञान और शास्त्र के बीच नहीं होते, शास्त्र और शास्त्र के बीच होते हैं। क्योंकि हम शास्त्रों को जानते हैं। असली फासला शास्त्र और शास्त्र के बीच नहीं है, असली फासला शास्त्रों और ज्ञान के बीच है। उस दिशा में थोड़ी—सी सूचक बातें खयाल ले लेनी चाहिए।

ज्ञान वह है, जो कभी भी, कभी भी अनुभव के बिना नहीं होता है। ज्ञान यानी अनुभव, और अनुभव तो सदा अपना ही होता है, दूसरे का नहीं होता। अनुभव यानी अपना। शास्त्र भी अनुभव है, लेकिन दूसरे का। शास्त्र भी ज्ञान है, लेकिन दूसरे का। ज्ञान भी ज्ञान है, लेकिन अपना।

मैं अपनी आख से देख रहा हूं, यह ज्ञान है। मैं अंधा हूं आप देखते हैं और मुझे कहते हैं, यह शास्त्र है। नहीं कि आप गलत कहते हैं। ऐसा नहीं कि आप गलत ही कहते हैं। लेकिन आप कहते हैं, आप देखते हैं। आप जो आख से करते हैं, वह मैं कान से कर रहा हूं। फर्क पड़ने वाला है। कान आख का काम नहीं कर सकता।

इसलिए शास्त्र के जो पुराने नाम हैं, वे बहुत बढ़िया हैं। श्रुति, सुना हुआ—देखा हुआ नहीं। स्मृति, सुना हुआ, स्मरण किया हुआ, याद किया हुआ, मेमोराइज्ड—जाना हुआ नहीं। सब शास्त्र श्रुति और स्मृति हैं। किसी ने जाना और कहा। हमने जाना नहीं और सुना। जो उसकी आख से हुआ, वह हमारे कान से हुआ। शास्त्र कान से आते हैं, सत्य आख से आता है। सत्य दर्शन है, शास्त्र श्रुति हैं।

दूसरे का अनुभव, कुछ भी उपाय करूं मैं, मेरा अनुभव नहीं है। ही, दूसरे का अनुभव उपयोगी हो सकता है। इसी अर्थ में उपयोगी हो सकता है—इस अर्थ में नहीं कि मैं उस पर भरोसा का लूं विश्वास कर लूं अंधश्रद्धालु हो जाऊं, इस अर्थ में तो दुरुपयोग ही हो जाएगा, हिन्हेंस बनेगा, बाधा बनेगा—इस अर्थ में उपयोगी हो सकता है कि दूसरे ने जो जाना है, उसे जानने की संभावना का द्वार मेरे लिए भी खुलता है।

जो दूसरे को हो सका है, वह मेरे लिए भी हो सकता है, इसका आश्वासन मिलता है। जो दूसरे के लिए हो सका, वह क्यों मेरे लिए नहीं हो सकेगा, इसकी प्रेरणा। जो दूसरे के लिए हो सका, वह मेरे भीतर छिपी हुई प्यास को जगाने का कारण हो सकता है। लेकिन बस इतना ही। जानना तो मुझे ही पड़ेगा। जानना मुझे ही पड़ेगा, जीना मुझे ही पड़ेगा, उस सागर—तट तक मुझे ही पहुंचना पड़ेगा।

एक और मजे की बात है कि घर में जो कुएं हैं, वे बनाए हुए होते हैं, सागर बनाया हुआ नहीं होता। आपके पिता ने बनाया होगा घर का कुआ, उनके पिता ने बनाया होगा, किसी ने बनाया होगा। जिसने बनाया होगा, उसे एक सीक्रेट का पता है, उसे एक राज का पता है कि कहीं से भी जमीन को तोड़ो, सागर मिल जाता है। कुआ है क्या? जस्ट ए होल, सिर्फ एक छेद है। आप यह मत समझना कि पानी कुआ है। पानी तो सागर ही है, कुआ तो सिर्फ उस सागर में झांकने का आपके आंगन में उपाय है। सागर तो है ही नीचे फैला हुआ। वही है। जहां भी जल है, वहीं सागर है। ही, आपके आंगन में एक छेद खोद लेते हैं आप। कुएं से पानी नहीं खोदते, कुएं से सिर्फ मिट्टी अलग करते हैं, परत तोड देते हैं, एक छेद हो जाता है; अपने ही घर में सागर को झांकने का उपाय हो जाता है।

लेकिन कुआ बनाया हुआ है। और अगर कुआ इसकी खबर लाए—रिमेंबरेंस—कि सागर भी है और सागर की यात्रा करवा दे, तब तो कुआ सहयोगी हो जाता है। और अगर कुआ ही सागर बन जाए और हम सोचें कि यही रहा सागर, तो फिर सागर की, असीम की यात्रा नहीं हो पाती, फिर हम कुएं के किनारे ही बैठे समाप्त होते हैं।

शास्त्र कुएं हैं। जो जानते हैं, खोदते हैं। और शब्द की सीमा में छेद बनाते हैं। जो कहा जा सकता है, उसकी सीमा में छेद बनाते हैं। और अनकहे की थोड़ी—सी झलक, थोड़ा—सा दर्शन करवाते हैं। इस आशा में कि इसको देखकर अनंत की यात्रा पर कोई निकलेगा।

इसलिए नहीं कि इसे देखकर कोई बैठ जाएगा और तृप्त हो जाएगा। कुआ सागर है, सीमा में बंधा। सागर कुआ है, असीम में मुक्त। शास्त्र शान है, सीमा में बंधा। ज्ञान शास्त्र है, असीम में मुक्त।

तो कृष्ण जब वेद की, शब्द की बात कर रहे हैं, तो निंदा नहीं है, सिर्फ निर्देश है। और निर्देश स्मरण में रखने योग्य है।

अभी इतना ही। फिर सांझ बात करेंगे।

प्रवचन 14 : फलाकांक्षारहित कर्म, जीवंत समता और परमपद

ओशो – गीता-दर्शन – भाग एक

अध्याय—1-2 – प्रवचन 14 : फलाकांक्षारहित कर्म, जीवंत समता और परमपद

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ले संगोऽस्थ्यकमर्णि ।।47।।

इससे तेरा कर्म करने मात्र में ही अधिकार होवे, फल में कभी नही, और तू कर्मो के फल की वासना वाला भी मत हो तथा तेरी कर्म न करने में भी प्रीति न होवे।

कर्मयोग का आधार—सूत्र. अधिकार है कर्म में, फल में नहीं; करने की स्वतंत्रता है, पाने की नहीं। क्योंकि करना एक व्यक्ति से निकलता है, और फल समष्टि से निकलता है। मैं जो करता हूं वह मुझसे बहता है, लेकिन जो होता है, उसमें समस्त का हाथ है। करने की धारा तो व्यक्ति की है, लेकिन फल का सार समष्टि का है। इसलिए कृष्ण कहते हैं, करने का अधिकार है तुम्हारा, फल की आकांक्षा अनधिकृत है। लेकिन हम उलटे चलते हैं, फल की आकांक्षा पहले और कर्म पीछे। हम बैलगाड़ी को आगे और बैलों को पीछे बांधते हैं। कृष्ण कह रहे हैं, कर्म पहले, फल पीछे आता है—लाया नहीं जाता। लाने की कोई सामर्थ्य मनुष्य की नहीं है; करने की सामर्थ्य मनुष्य की है। क्यों? ऐसा क्यों है? क्योंकि मैं अकेला नहीं हूं विराट है।

मैं सोचता हूं कल सुबह उठूंगा, आपसे मिलूंगा। लेकिन कल सुबह सूरज भी उगेगा? कल सुबह भी होगी? जरूरी नहीं है कि कल सुबह हो ही। मेरे हाथ में नहीं है कि कल सूरज उगे ही। एक दिन तो ऐसा जरूर आएगा कि सूरज डूबेगा और उगेगा नहीं। वह दिन कल भी हो सकता है।

वैज्ञानिक कहते हैं कि अब यह सूरज चार हजार साल से ज्यादा नहीं चलेगा। इसकी उम्र चुकती है। यह भी बूढ़ा हो गया है। इसकी किरणें भी बिखर चुकी हैं। रोज बिखरती जा रही हैं न मालूम कितने अरबों वर्षों से! अब उसके भीतर की भट्ठी चुक रही है, अब उसका ईंधन चुक रहा है। चार हजार साल हमारे लिए बहुत बड़े हैं, सूरज के लिए ना—कुछ। चार हजार साल में सूरज ठंडा पड़ जाएगा—किसी भी दिन। जिस दिन ठंडा पड़ जाएगा, उस दिन उगेगा नहीं; उस दिन सुबह नहीं होगी। उसकी पहली रात भी लोगों ने वचन दिए होंगे कि कल सुबह आते हैं—निश्चित।

लेकिन छोड़ें! सूरज चार हजार साल बाद डूबेगा और नहीं उगेगा। हमारा क्या पक्का भरोसा है कि कल सुबह हम ही उगेंगे! कल सुबह होगी, पर हम होंगे? जरूरी नहीं है। और कल सुबह भी होगी, सूरज भी उगेगा, हम भी होंगे, लेकिन वचन को पूरा करने की आकांक्षा होगी? जरूरी नहीं है। एक छोटी—सी कहानी कहूं। सुना है मैंने कि चीन में एक सम्राट ने अपने मुख्य वजीर को, बड़े वजीर को फांसी की सजा दे दी। कुछ नाराजगी थी। लेकिन नियम था उस राज्य का कि फांसी के एक दिन पहले स्वयं सम्राट फांसी पर लटकने वाले कैदी से मिले, और उसकी कोई आखिरी आकांक्षा हो तो पूरी कर दे। निश्चित ही, आखिरी आकांक्षा जीवन को बचाने की नहीं हो सकती थी। वह बंदिश थी। उतनी भर आकांक्षा नहीं हो सकती थी।

सम्राट पहुंचा—कल सुबह फांसी होगी—आज संध्या, और अपने वजीर से पूछा कि क्या तुम्हारी इच्छा है? पूरी करूं! क्योंकि कल तुम्हारा अंतिम दिन है। वजीर एकदम दरवाजे के बाहर की तरफ देखकर रोने लगा। सम्राट ने कहा, तुम और रोते हो? कभी मैं कल्पना भी नहीं कर सकता, तुम्हारी आंखें और आंसुओ से भरी!

बहुत बहादुर आदमी था। नाराज सम्राट कितना ही हो, उसकी बहादुरी पर कभी शक न था। तुम और रोते हो! क्या मौत से डरते हो? उस वजीर ने कहा, मौत! मौत से नहीं रोता, रोता किसी और बात से हूं। सम्राट ने कहा, बोलो, मैं पूरा कर दूं। वजीर ने कहा, नहीं, वह पूरा नहीं हो सकेगा, इसलिए जाने दें। सम्राट जिद्द पर अड़ गया कि क्यों नहीं हो सकेगा? आखिरी इच्छा मुझे पूरी ही करनी है।

तो उस वजीर ने कहा, नहीं मानते हैं तो सुन लें, कि आप जिस घोड़े पर बैठकर आए हैं, उसे देखकर रोता हूं। सम्राट ने कहा, पागल हो गए? उस घोड़े को देखकर रोने जैसा क्या है? वजीर ने कहा, मैंने एक कला सीखी थी; तीस वर्ष लगाए उस कला को सीखने में। वह कला थी कि घोड़ों को आकाश में उड़ना सिखाया जा सकता है, लेकिन एक

विशेष जाति के घोड़े को। उसे खोजता रहा, वह नहीं मिला। और कल सुबह मैं मर रहा हूं जो सामने घोड़ा खड़ा है, वह उसी जाति का है, जिस पर आप सवार होकर आए हैं।

सम्राट के मन को लोभ पकड़ा। आकाश में घोड़ा उड़ सके, तो उस सम्राट की कीर्ति का कोई अंत न रहे पृथ्वी पर। उसने कहा, फिक्र छोडो मौत की! कितने दिन लगेंगे, घोड़ा आकाश में उड़ना सीख सके? कितना समय लगेगा न: उस वजीर ने कहा, एक वर्ष। सम्राट ने कहा, बहुत ज्यादा समय नहीं है। अगर घोड़ा उड़ सका तो ठीक, अन्यथा मौत एक साल बाद। फांसी एक साल बाद भी लग सकती है, अगर घोड़ा नहीं उड़ा। अगर उड़ा तो फांसी. से भी बच जाओगे, आधा राज्य भी तुम्हें भेंट कर दूंगा।

वजीर घोड़े पर बैठकर घर आ गया। पत्नी—बच्चे रो रहे थे, बिलख रहे थे। आखिरी रात थी। घर आए वजीर को देखकर सब चकित हुए। कहा, कैसे आ गए? वजीर ने कहानी बताई। पत्नी और जोर से रोने लगी। उसने कहा, तुम पागल तो नहीं हो? क्योंकि मैं भलीभांति जानती हूं तुम कोई कला नहीं जानते, जिससे घोड़ा उड़ना सीख सके। व्यर्थ ही झूठ बोले। अब यह साल तो हमें मौत से भी बदतर हो जाएगा। और अगर मांगा ही था समय, तो इतनी कंजूसी क्या की? बीस, पच्चीस, तीस वर्ष मांग सकते थे! एक वर्ष तो ऐसे चुक जाएगा कि अभी आया अभी गया, रोते—रोते चुक जाएगा। उस वजीर ने कहा, फिक्र मत कर; एक वर्ष बहुत लंबी बात है। शायद, शायद बुद्धिमानी के बुनियादी सूत्र का उसे पता था। और ऐसा ही हुआ। वर्ष बड़ा लंबा शुरू हुआ। पत्नी ने कहा, कैसा लंबा! अभी चुक जाएगा। वजीर ने कहा, क्या भरोसा है कि मैं बचूं वर्ष में?, क्या भरोसा है, घोड़ा बचे? क्या भरोसा है, राजा बचे? बहुत—सी कंडीशंस पूरी हों, तब वर्ष पूरा होगा। और ऐसा हुआ कि न वजीर बचा, न घोड़ा बचा, न राजा बचा। वह वर्ष के पहले तीनों ही मर गए।

कल की कोई भी अपेक्षा नहीं की जा सकती। फल सदा कल है, फल सदा भविष्य में है। कर्म सदा अभी है, यहीं। कर्म किया जा सकता है। कर्म वर्तमान है, फल भविष्य है। इसलिए भविष्य के लिए आशा बांधनी, निराशा बांधनी है। कर्म अभी किया जा सकता है, अधिकार है। वर्तमान में हम हैं। भविष्य में हम होंगे, यह भी तय नहीं। भविष्य में क्या होगा, कुछ भी तय नहीं। हम अपनी ओर से कर लें, इतना काफी है। हम मांगें न, हम अपेक्षा न रखें, हम फल की प्रतीक्षा न करें, हम कर्म करें और फल प्रभु पर छोड़ दें—यही बुद्धिमानी का गहरे से गहरा सूत्र है।

इस संबंध में यह बहुत मजेदार बात है कि जो लोग जितनी ज्यादा फल की आकांक्षा करते हैं, उतना ही कम कर्म करते हैं। असल में फल की आकांक्षा में इतनी शक्ति लग जाती है कि कर्म करने योग्य बचती नहीं। असल में फल की आकांक्षा में मन इतना उलझ जाता है, भविष्य की यात्रा पर इतना निकल जाता है कि वर्तमान में होता ही नहीं। असल में फल की आकांक्षा में चित्त ऐसा रस से भर जाता है कि कर्म विरस हो जाता है, रसहीन हो जाता है।

इसलिए यह बहुत मजे का दूसरा सूत्र आपसे कहता हूं कि जितना फलाकांक्षा से भरा चित्त, उतना ही कर्महीन होता है। और जितना फलाकांक्षा से मुक्त चित्त, उतना ही पूर्णकर्मी होता है। क्योंकि उसके पास कर्म ही बचता है, फल तो होता नहीं, जिसमें बंटवारा कर सके। सारी चेतना, सारा मन, सारी शक्ति, सब कुछ इसी क्षण, अभी कर्म पर लग जाती है।

स्वभावत:, जिसका सब कुछ कर्म पर लग जाता है, उसके फल के आने की संभावना बढ़ जाती है। स्वभावत:, जिसका सब कुछ कर्म पर नहीं लगता, उसके फल के आने की संभावना कम हो जाती है।

इसलिए तीसरा सूत्र आपसे कहता हूं कि जो जितनी फलाकांक्षा से भरा है, उतनी ही फल के आने की उम्मीद कम है। और जिसने जितनी फल की आकांक्षा छोड़ दी है, उतनी ही फल के आने की उम्मीद ज्यादा है। यह जगत बहुत उलटा है। और परमात्मा का गणित साधारण गणित नहीं है, बहुत असाधारण गणित है।

जीसस का एक वचन है कि जो बचाएगा, उससे छीन लिया जाएगा। जो दे देगा, उसे सब कुछ दे दिया जाएगा। जीसस ने कहा है, जो अपने को बचाता है, व्यर्थ ही अपने को खोता है। क्योंकि उसे परमात्मा के गणित का पता नहीं है। जो अपने को खोता है, वह पूरे परमात्मा को ही पा लेता है।

तो जब कर्म का अधिकार है और फल की आकांक्षा व्यर्थ है, ऐसा कृष्ण कहते हैं, तो यह मत समझ लेना कि फल मिलता नहीं, ऐसा भी मत समझ लेना कि फल का कोई मार्ग नहीं है। कर्म ही फल का मार्ग है, आकांक्षा, फल की आकांक्षा, फल का मार्ग नहीं है। इसलिए कृष्ण जो कहते हैं, उससे फल की अधिकतम, आप्टिमम संभावना है मिलने की। और हम जो करते हैं, उससे फल के खोने की मैक्सिमम, अधिकतम संभावना है और लघुतम, मिनिमम मिलने की संभावना है।

जो फल की सारी ही चिंता छोड़ देता है, अगर धर्म की भाषा में कहें, तो कहना होगा, परमात्मा उसके फल की चिंता कर लेता है। असल में छोड़ने का भरोसा इतना बड़ा है, छोड़ने का संकल्प इतना बड़ा है, छोड़ने की श्रद्धा इतनी बड़ी है कि अगर इतनी बड़ी श्रद्धा के लिए भी परमात्मा से कोई प्रत्युत्तर नहीं है, तो फिर परमात्मा नहीं हो सकता है। इतनी बड़ी श्रद्धा के लिए—कि कोई कर्म करता है और फल की बात ही नहीं करता, कर्म करता है और सो जाता है और फल का स्वप्न भी नहीं देखता—इतनी बड़ी श्रद्धा से भरे हुए चित्त को भी अगर फल न मिलता हो, तो फिर परमात्मा के होने का कोई कारण नहीं है। इतनी श्रद्धा से भरे चित्त के चारों ओर से समस्त शक्तियां दौड़ पड़ती हैं।

और जब आप फलाकांक्षा करते हैं, तब आपको पता है, आप अश्रद्धा कर रहे हैं! शायद इसको कभी सोचा न हो कि फलाकांक्षा अश्रद्धा, गहरी से गहरी अनास्था, और गहरी से गहरी नास्तिकता है। जब आप कहते हैं, फल भी मिले, तो आप यह कह रहे हैं कि अकेले कर्म से निश्चय नहीं है फल का, मुझे फलकी आकांक्षा भी करनी पड़ेगी। आप कहते हैं, दो और दो चार जोड़ता तो हूं? जुड़कर चार हों भी। इसका मतलब यह है कि दो और दो जुड़कर चार होते हैं, ऐसे नियम की कोई भी श्रद्धा नहीं है। हों भी, न भी हों!

जितना अश्रद्धालु चित्त है, उतना फलातुर होता है। जितना श्रद्धा से परिपूर्ण चित्त है, उतना फल को फेंक देता है—जाने समष्टि, जाने जगत, जाने विश्व की चेतना। मेरा काम पूरा हुआ, अब शेष काम उसका है।

फल की आकांक्षा वही छोड़ सकता है, जो इतना स्वयं पर, स्वयं के कर्म पर श्रद्धा से भरा है। और स्वभावत: जो इतनी श्रद्धा से भरा है, उसका कर्म पूर्ण हो जाता है, टोटल हो जाता है—टोटल एक्ट। और जब कर्म पूर्ण होता है, तो फल सुनिश्चित है। लेकिन जब चित्त बंटा होता है फल के लिए और कर्म के लिए, तब जिस मात्रा में फल की आकांक्षा ज्यादा है, कर्म का फल उतना ही अनिश्चित है।

सुबह एक मित्र आए। उन्होंने एक बहुत बढ़िया सवाल उठाया। मैं तो चला गया। शायद परसों मैंने कहीं कहा कि एक छोटे—से मजाक से महाभारत पैदा हुआ। एक छोटे—से व्यंग्य से द्रौपदी के, महाभारत पैदा हुआ। छोटा—सा व्यंग्य द्रौपदी का ही, दुर्योधन के मन में तीर की तरह चुभ गया और द्रौपदी नग्न की गई, ऐसा मैंने कहा। मैं तो चला गया। उन मित्र के मन में बहुत तूफान आ गया होगा। हमारे मन भी तो बहुत छोटे—छोटे प्यालियों जैसे हैं, जिनमें बहुत छोटे—से हवा के झोंके से तूफान आ जाता है—चाय की प्याली से ज्यादा नहीं! तूफान आ गया होगा। मैं तो चला गया, मंच पर वे चढ़ आए होंगे। उन्होंने कहा, तद्दन खोटी बात छे, बिलकुल झूठी बात है, द्रौपदी कभी नग्न नहीं की गई।

द्रौपदी नग्न की गई; हुई नहीं—यह दूसरी बात है। द्रौपदी पूरी तरह नग्न की गई; हुई नहीं—यह बिलकुल दूसरी बात है। करने वालों ने कोई कोर—कसर न छोड़ी थी। करने वालों ने सारी ताकत लगा दी थी। लेकिन फल आया नहीं, किए हुए के अनुकूल नहीं आया फल—यह दूसरी बात है।

असल में, जो द्रौपदी को नग्न करना चाहते थे, उन्होंने क्या रख छोड़ा था। तरफ से कोई कोर—कसर न थी। लेकिन हम सभी कर्म करने वालों को, अज्ञात भी बीच में उतर आता है, इसका कभी कोई पता नहीं है। वह जो कृष्ण की कथा है, वह अज्ञात के उतरने की कथा है। अज्ञात के भी हाथ हैं, जो हमें दिखाई नहीं पड़ते।

हम ही नहीं हैं इस पृथ्वी पर। मैं अकेला नहीं हूं। मेरी अकेली आकांक्षा नहीं है, अनंत आकांक्षाए हैं। और अनंत की भी आकांक्षा है। और उन सब के गणित पर अंततः तय होगा कि क्या हुआ। अकेला दुर्योधन ही नहीं है नग्न करने में, द्रौपदी भी तो है जो नग्न की जा रही है। द्रौपदी की भी तो चेतना है, द्रौपदी का भी तो अस्तित्व है। और अन्याय होगा यह कि द्रौपदी वस्तु की तरह प्रयोग की जाए। उसके पास भी चेतना है और व्यक्ति है, उसके पास भी संकल्प है। साधारण स्त्री नहीं है द्रौपदी।

सच तो यह है कि द्रौपदी के मुकाबले की स्त्री पूरे विश्व के इतिहास में दूसरी नहीं है। कठिन लगेगी बात। क्योंकि याद आती है सीता की, याद आती है सावित्री की। और भी बहुत यादें हैं। फिर भी मैं कहता हूं द्रौपदी का कोई मुकाबला ही नहीं है। द्रौपदी बहुत ही अद्वितीय है। उसमें सीता की मिठास तो है ही, उसमें क्लियोपेट्रा का नमक भी है। उसमें क्लियोपेट्रा का सौंदर्य तो है ही, उसमें गार्गी का तर्क भी है। असल में पूरे महाभारत की धुरी द्रौपदी है। वह सारा युद्ध उसके आस—पास हुआ है।

लेकिन चूंकि पुरुष कथाएं लिखते हैं, इसलिए कथाओं में पुरुष—पात्र बहुत उभरकर दिखाई पड़ते हैं। असल में दुनिया की कोई महाकथा स्त्री की धुरी के बिना नहीं चलती। सब महाकथाएं स्त्री की धुरी पर घटित होती हैं। वह बड़ी रामायण सीता की धुरी पर घटित हुई है, उसमें केंद्र में सीता है। राम और रावण तो ट्राएंगल के दो छोर हैं, धुरी पर सीता है।

ये कौरव और पांडव और यह सारा पूरा महाभारत और यह सारा युद्ध द्रौपदी की धुरी पर घटा है। उस. युग की और सारे युगों की सुंदरतम स्त्री है वह। नहीं, आश्चर्य नहीं है कि दुर्योधन ने भी उसे चाहा हो। असल में, उस युग में कौन पुरुष होगा जिसने उसे न चाहा हो! उसका अस्तित्व उसके प्रति चाह पैदा करने वाला था। दुर्योधन ने भी उसे चाहा है और फिर वह चली गई अर्जुन के हाथ। और यह भी बड़े मजे की बात है कि द्रौपदी को पांच भाइयों में बांटना पड़ा। कहानी बडी सरल है, उतनी सरल घटना नहीं हो सकती। कहानी तो इतनी ही सरल है कि अर्जुन ने आकर बाहर से कहा कि मां देखो, हम क्या ले आए हैं! और मां ने कहा, जो भी ले आए हो, वह पांचों भाई बांट लो। लेकिन इतनी सरल घटना हो नहीं सकती। क्योंकि जब बाद में मां को भी तो पता चला होगा कि यह मामला वस्तु का नहीं, स्त्री का है। यह कैसे बांटी जा सकती है! तो कौन—सी कठिनाई थी कि कुंती कह देती कि भूल हुई। मुझे क्या पता कि तुम पत्नी ले आए हो!

नहीं, लेकिन मैं जानता हूं कि जो संघर्ष दुर्योधन और अर्जुन के बीच होता, वह संघर्ष पांच भाइयों के बीच भी हो सकता था। द्रौपदी ऐसी थी, वे पांच भाई भी कट—मर सकते थे उसके लिए। उसे बांट देना ही सुगमतम राजनीति थी। वह घर भी कट सकता था। वह महायुद्ध, जो पीछे कौरवों—पांडवों में हुआ, वह पांडवों—पांडवों में भी हो सकता था।

इसलिए कहानी मेरे लिए उतनी सरल नहीं है। कहानी बहुत प्रतीकात्मक है और गहरी है। वह यह खबर देती है कि स्त्री वह ऐसी थी कि पांच भाई भी लड़ जाते। इतनी गुणी थी, साधारण नहीं थी, असाधारण थी। उसको नग्न करना आसान बात नहीं थी, आग से खेलना था। तो अकेला दुर्योधन नहीं है कि नग्न कर ले। द्रौपदी भी है।

और ध्यान रहे, बहुत बातें हैं इसमें, जो खयाल में ले लेने जैसी हैं। जब तक कोई स्त्री स्वयं नग्न न होना चाहे, तब तक इस जगत में कोई पुरुष किसी स्त्री को नग्न नहीं कर सकता है, नहीं कर पाता है। वस्त्र उतार भी ले, तो भी नग्न नहीं कर सकता है। नग्न होना बड़ी घटना है वस्त्र उतरने से, निर्वस्त्र होने से नग्न होना बहुत भिन्न घटना है। निर्वस्त्र करना बहुत कठिन बात नहीं है, कोई भी कर सकता है, लेकिन नग्न करना बहुत दूसरी बात है। नग्न तो कोई स्त्री तभी होती है, जब वह किसी के प्रति खुलती है स्वयं। अन्यथा नहीं होती; वह ढंकी ही रह जाती है। उसके वस्त्र छीने जा सकते हैं, लेकिन वस्त्र छीनना स्त्री को नग्न करना नहीं है। यह भी।

और यह भी कि द्रौपदी जैसी स्त्री को नहीं पा सका दुर्योधन। उसके व्यंग्य तीखे पड़ गए उसके मन पर। बड़ा हारा हुआ है। हारे हुए व्यक्ति—जैसे कि क्रोध में आई हुई बिल्लियां खंभे नोचने लगती हैं—वैसा करने लगते हैं। और स्त्री के सामने जब भी पुरुष हारता है—और इससे बड़ी हार पुरुष को कभी नहीं होती। पुरुष पुरुष से लड ले, हार—जीत होती है। लेकिन पुरुष जब स्त्री से हारता है किसी भी क्षण में, तो इससे बड़ी कोई हार नहीं होती।

तो दुर्योधन उस दिन उसे नग्न करने का जितना आयोजन करके बैठा है, वह सारा आयोजन भी हारे हुए पुरुष—मन का है। और उस तरफ जो स्त्री खड़ी है हंसने वाली वह कोई साधारण स्त्री नहीं है। उसका भी अपना संकल्प है, अपना विल है। उसकी भी अपनी सामर्थ्य है; उसकी भी अपनी श्रद्धा है; उसका भी अपना होना है। उसकी उस श्रद्धा में, वह जो कथा है, वह कथा तो काव्य है कि कृष्ण उसकी साड़ी को बढाए चले जाते हैं। लेकिन मतलब सिर्फ इतना है कि जिसके पास अपना संकल्प है, उसे परमात्मा का सारा संकल्प तत्काल उपलब्ध हो जाता है। तो अगर परमात्मा के हाथ उसे मिल जाते हैं, तो कोई आश्चर्य नहीं।

तो मैंने कहा, और मैं फिर से कहता हूं, द्रौपदी नग्न की गई, लेकिन हुई नहीं। नग्न करना बहुत आसान है, उसका हो जाना बहुत और बात है। बीच में अज्ञात विधि आ गई, बीच में अज्ञात कारण आ गए। दुर्योधन ने जो चाहा, वह हुआ नहीं। कर्म का अधिकार था, फल का अधिकार नहीं था।

यह द्रौपदी बहुत अनूठी है। यह पूरा युद्ध हो गया। भीष्म पड़े हैं शथ्या पर—बाणों की शथ्या पर—और कृष्य कहते हैं पांडवों को कि पूछ लो धर्म का राज! और वह द्रौपदी हंसती है। उसकी हंसी पूरे महाभारत पर छाई है। वह हंसती है कि इनसे पूछते हैं धर्म का रहस्य! जब मैं नग्न की जा रही थी, तब ये सिर झुकाए बैठे थे। उसका व्यंग्य गहरा. है। वह स्त्री बहुत असाधारण है।

काश! हिंदुस्तान की स्त्रियों ने सीता को आदर्श न बनाकर द्रौपदी को आदर्श बनाया होता, तो हिंदुस्तान की स्त्री की शान और होती। लेकिन नहीं, द्रौपदी खो गई है। उसका कोई पता नहीं है। खो गई। एक तो पांच पतियों की पत्नी है, इसलिए मन को पीड़ा होती है। लेकिन एक पति की पत्नी होना भी कितना मुश्किल है, उसका पता नहीं है। और जो पांच पतियों को निभा सकी है, वह साधारण स्त्री नहीं है, असाधारण है, सुपर धमन है। सीता भी अतिमानवीय है, लेकिन टू धमन के अर्थों में। और द्रौपदी भी अतिमानवीय है, लेकिन सुपर धमन के अर्थों में।

पूरे भारत के इतिहास में द्रौपदी को सिर्फ एक आदमी ने प्रशंसा दी है। और एक ऐसे आदमी ने जो बिलकुल अनपेक्षित है। पूरे भारत के इतिहास में डाक्टर राम मनोहर लोहिया को छोड़कर किसी आदमी ने द्रौपदी को सम्मान नहीं दिया है, हैरानी की बात है। मेरा तो लोहिया से प्रेम इस बात से हो गया कि पांच हजार साल के इतिहास में एक आदमी, जो द्रौपदी को सीता के ऊपर रखने को तैयार है।

यह जो मैंने कहा, आदमी करता है कर्म फल की अति आकांक्षा से, कर्म भी नहीं हो पाता और फल की अति आकांक्षा से दुराशा और निराशा ही हाथ लगती है। कृष्ण ने यह बहुत बहुमूल्य सूत्र कहा है। इसे हृदय के बहुत कोने में सम्हालकर रख लेने जैसा है। करें कर्म, वह हाथ में है, अभी है, यहीं है। फल को छोडें। फल को छोडने का साहस दिखलाए। कर्म को करने का संकल्प, फल को छोड़ने का साहस, फिर कर्म निश्चित ही फल ले आता है। लेकिन आप उस फल को मत लाएं, वह तो कर्म के पीछे छाया की तरह चला आता है। और जिसने छोड़ा भरोसे से, उसके छोड़ने प्रे ही, उसके भरोसे में ही, जगत की सारी ऊर्जा सहयोगी हो जाती है।

जैसे ही हम मांग करते हैं, ऐसा हो, वैसे ही हम जगत—ऊर्जा के विपरीत खड़े हो जाते हैं और शत्रु हो जाते हैं। जैसे ही हम कहते हैं, जो तेरी मर्जी; जो हमें करना था, वह हमने कर लिया, अब तेरी मर्जी पूरी हो, हम जगत—ऊर्जा के प्रति मैत्री से भर जाते हैं। और जगत और हमारे बीच, जीवन—ऊर्जा और हमारे बीच, परमात्मा और हमारे बीच एक हार्मनी, एक संगीत फलित हो जाता है। जैसे ही हमने कहा कि नहीं, किया भी मैंने, जो चाहता हूं वह हो भी, वैसे ही हम जगत के विपरीत खड़े हो गए हैं। और जगत के विपरीत खड़े होकर सिवाय निराशा के, असफलता के कभी कुछ हाथ नहीं लगता है। इसलिए कर्मयोगी के लिए कर्म ही अधिकार है। फल! फल परमात्मा का प्रसाद है।

योगस्थ: कुरु कमीणि संगं त्यक्त्वा धनंजय ।
सिद्दयसिद्धयों समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।।48।।

हे धनंजय, आसक्ति को त्यागकर, सिद्धि और असिद्धि में समान बुद्धि वाला होकर, योग में स्थित हुआ कर्मों को कर। यह समत्वभाव ही योग नाम से कहा जाता है।

समता ही योग है—इक्विलिब्रियम, संतुलन, संगीत। दो के बीच चुनाव नहीं, दो के बीच समभाव, विरोधों के बीच चुनाव नहीं, अविरोध, दो अतियों के बीच, दो पोलेरिटीज के बीच, दो ध्रुवों के बीच पंसद—नापसंद नहीं, राग—द्वेष नहीं, साक्षीभाव। समता का अर्थ ठीक से समझ लेना दाएं? बीच, राइट लेफ्ट के बीच वह पूरे वक्त अपने को सम जरूरी है, क्योंकि कृष्ण कहते हैं, वही योग है। कर रहा है।

समत्व कठिन है बहुत। चुनाव सदा आसान है। मन कहता है, इसे चुन लो, जिसे चुनते हो, उससे विपरीत को छोड़ दो। कृष्ण कहते हैं, चुनो ही मत। दोनों समान हैं, ऐसा जानो। और जब दोनों समान हैं, तो चुनेंगे कैसे? चुनाव तभी

तक हो सकता है, जब असमान हों। एक हो श्रेष्ठ, एक हो अश्रेष्ठ, एक में दिखती हो सिद्धि, एक में दिखती हो असिद्धि; एक में दिखता हो शुभ, एक में दिखता हो अशुभ। कहीं न कहीं कोई तुलना का उपाय हो, कंपेरिजन हो, तभी चुनाव है। अगर दोनों ही समान हैं, तो चुनाव कहां?

चौराहे पर खड़े हैं। अगर सभी रास्ते समान हैं, तो जाना कहां? जाएंगे कैसे? चुनेंगे कैसे? खड़े हो जाएंगे। लेकिन अगर एक रास्ता ठीक है और एक गलत, तो जाएंगे, गति होगी। जहां भी असमान दिखा, तत्काल चित्त यात्रा पर निकल जाता है—दि वेरी मोमेंट। यहां पता चला कि वह ठीक, पता नहीं चला कि चित्त गया। पता चला कि वह गलत, पता नहीं चला कि चित्त लौटा। पता लगा प्रीतिकर, पता लगा अप्रीतिकर, पता लगा श्रेयस, पता लगा अश्रेयस—यहां पता लगा मन को, कि मन गया। पता लगना ही मन के लिए तत्काल रूपांतरण हो जाता है। और समता उसे उपलब्ध होती है, जो बीच में खड़ा हो जाता है।

कभी रस्सी पर चलते हुए नट को देखा? नट चुन सकता है, किसी भी ओर गिर सकता है। गिर जाए, झंझट के बाहर हो जाए। लेकिन दोनों गिराव के बीच में सम्हालता है। अगर वह झुकता भी दिखाई पडता है आपको, तो सिर्फ अपने को सम्हालने के लिए, झुकने के लिए नहीं। और आप अगर सम्हले भी दिखते हैं, तो सिर्फ झुकने के लिए। आप अगर एक क्षण चौरस्ते पर खड़े भी होते हैं, तो चुनने के लिए, कि कौन—से रास्ते से जाऊं! अगर एक क्षण विचार भी करते हैं, तो चुनाव के लिए, कि क्या ठीक है! क्या करूं, क्या न करूं! क्या अच्छा है, क्या बुरा है! किससे सफलता मिलेगी, किससे असफलता मिलेगी! क्या होगा लाभ, क्या होगी हानि! अगर चिंतन भी करते हैं कभी, तो चुनाव के लिए।

नट को देखा है रस्सी पर! झुकता भी दिखता है, लेकिन झुकने के लिए नहीं। जब वह बाएं झुकता है, तब आपने कभी खयाल किया है, कि बाएं वह तभी झुकता है, जब दाएं गिरने का डर पैदा होता है। दाएं तब झुकता है, जब बाएं गिरने का डर पैदा होता है। वह दाएं गिरने के डर को बाएं झुककर बैलेंस करता है। बाएं और दांए के बीच, राइट और लेफ्ट के बीच वह पूरे वक्त अपने को सम करता रहा है।

निश्चित ही, यह समता जड़ नहीं है, जैसा कि पत्थर पड़ा हो। जीवन में भी समता जड़ नहीं है, जैसा पत्थर पड़ा हो। जीवन की समता भी नट जैसी समता ही है—प्रतिपल जीवित है, सचेतन है, गतिमान है।

दो तरह की समता हो सकती है। एक आदमी सोया पड़ा है गहरी सुषुप्ति में, वह भी समता को उपलब्ध है। क्योंकि वहां भी कोई चुनाव नहीं है। लेकिन सुषुप्ति योग नहीं है। एक आदमी शराब पीकर रास्ते पर पडा है, उसे भी सिद्धि और असिद्धि में कोई फर्क नहीं है। लेकिन शराब पी लेना समता नहीं है, न योग है। यद्यपि कई लोग शराब पीकर भी योग की भूल में पड़ते हैं।

तो गांजा पीने वाले योगी भी हैं, चरस पीने वाले योगी भी हैं। और आज ही हैं, ऐसा नहीं है, अति प्राचीन हैं। और अभी तो उनका प्रभाव पश्चिम में बहुत बढ़ता जाता है। अभी तो बस्तियां बस गई हैं अमेरिका में, जहां लोग चरस पी रहे हैं। मैस्कलीन, लिसर्जिक एसिड, मारिजुआना, सब चल रहा है। वे भी इस खयाल में हैं कि जब नशे में धुत होते हैं, तो समता सध जाती है, क्योंकि चुनाव नहीं रहता।

कृष्ण अर्जुन को ऐसी समता को नहीं कह रहे हैं कि तू बेहोश हो जा! बेहोशी में भी चुनाव नहीं रहता, क्योंकि चुनाव करने वाला नहीं रहता। लेकिन जब चुनाव करने वाला ही न रहा, तो चुनाव के न रहने का क्या प्रयोजन है न: क्या अर्थ है न: क्या उपलब्धि है?

नहीं, चुनाव करने वाला है, चाहे तो चुनाव कर सकता है, नहीं करता है। और जब चाहते हुए चुनाव नहीं करता कोई, जानते हुए जब दो विरोधों से अपने को बचा लेता है, बीच में खड़ा हो जाता है, तो योग को उपलब्ध होता है, समाधि को उपलब्ध होता है।

सुषुप्ति और समाधि में बड़ी समानता है। चाहें तो हम ऐसी परिभाषा कर सकते हैं कि सुषुप्ति मूर्च्छित समाधि है। और ऐसी भी कि समाधि जाग्रत सुषुप्ति है। बड़ी समानता है। सुषुप्ति में आदमी प्रकृति की समता को उपलब्ध हो जाता है, समाधि में व्यक्ति परमात्मा की समता को उपलब्ध होता है।

इसलिए दुनिया में बेहोशी का जो इतना आकर्षण है, उसका मौलिक कारण धर्म है। शराब का जो इतना आकर्षण है, उसका मौलिक कारण धार्मिक इच्छा है।

आप कहेंगे, क्या मैं यह कह रहा हूं कि धार्मिक आदमी को शराब पीनी चाहिए? नहीं, मैं यही कह रहा हूं कि धार्मिक आदमी को शराब नहीं पीनी चाहिए, क्योंकि शराब धर्म का सब्स्टीटयूट बन सकती है। नशा धर्म का परिपूरक बन सकता है। क्योंकि वहां भी एक तरह की समता, जड़ समता उपलब्ध होती है।

कृष्ण जिस समता की बात कर रहे हैं, वह सचेतन समता की बात है। उस युद्ध के क्षण में तो बहुत सचेतन होना पड़ेगा न! युद्ध के क्षण में तो बेहोश नहीं हुआ जा सकता, मारिजुआना और एल एस डी नहीं लिया जा सकता, न चरस पी जा सकती है। युद्ध के क्षण में तो पूरा जागना होगा।

कभी आपने खयाल किया हो, न किया हो! जितने खतरे का क्षण होता है, आप उतने ही जागे हुए होते हो।

अगर हम यहां बैठे हैं, और यहां जमीन पर मैं एक फीट चौड़ी और सौ फीट लंबी लकड़ी की पट्टी बिछा दूं और आपसे उस पर चलने को कहूं, तो कोई गिरेगा उस पट्टी पर से? कोई भी नहीं गिरेगा। बच्चे भी निकल जाएंगे, के भी निकल जाएंगे, बीमार भी निकल जाएंगे, कोई नहीं गिरेगा। लेकिन फिर उस पट्टी को इस मकान की छत पर और दूसरे मकान की छत पर रख दें। वही पट्टी। है, एक फीट चौड़ी है। ज्यादा चौड़ी नहीं हो गई, कम चौड़ी नहीं की, उतनी ही लंबी है। फिर हमसे कहा जाए, चलें इस पर! तब कितने लोग चलने को राजी होंगे?

गणित और विज्ञान के हिसाब से कुछ भी फर्क नहीं पड़ा है। पट्टी वही है, आप भी वही हैं। खतरा क्या है? डर क्या है? और जब आप नीचे निकल गए थे चलकर और नहीं गिरे थे, तो अभी गिर !, जाएंगे, इसकी संभावना क्या है?

नहीं, लेकिन आप कहेंगे, अब नहीं चल सकते। क्यों? क्योंकि जमीन पर चलते वक्त जागने की कोई भी जरूरत न थी, सोए—सोए भी चल सकते थे। अब इस पर जागकर चलना पड़ेगा; खतरा नीचे खड़ा है। इतना जागकर चलने का भरोसा नहीं है कि सौ फीट तक जागे रह सकेंगे। एक—दों फीट चलेंगे, होश खो जाएगा। कोई फिल्मी गाना बीच में आ जाएगा, कुछ और आ जाएगा; जमीन पर हो जाएंगे। नीचे एक कुत्ता ही भौंक देगा, तो सब समता समाप्त हो जाएगी। तो आप कहेंगे, नहीं, अब नहीं चल सकते। अब क्यों नहीं चल सकते हैं? अब एक नई जरूरत—खतरे में जागरण चाहिए। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि युद्ध का इतना आकर्षण भी खतरे का आकर्षण है। इसलिए कभी आपने खयाल किया, जब दुनिया में युद्ध चलता है, तो लोगों के चेहरों की रौनक बढ़ जाती है, घटती नहीं। और जो आदमी कभी आठ बजे नहीं उठा था, वह पांच बजे उठकर रेडियो खोल लेता है। पांच बजे से पूछता है, अखबार कहां है? जिंदगी में एक पुलक आ जाती है! बात क्या है? युद्ध के क्षण में इतनी पुलक?

युद्ध का खतरा हमारी नींद को थोडा कम करता है। हम थोड़े जागते हैं। जागने का अपना रस है। इसलिए दस—पंद्रह साल में सोई हुई मनुष्यता को एक युद्ध पैदा करना पड़ता है, क्योंकि और कोई रास्ता नहीं है। और किसी तरह जागने का उपाय नहीं है। और जब युद्ध पैदा हो जाता है, तो रौनक छा जाती है। जिंदगी में रस, पुलक और गति आ जाती है।

युद्ध के इस क्षण में कृष्ण बेहोशी की बात तो कह ही नहीं सकते हैं, वह वर्जित है, उसका कोई सवाल ही नहीं उठता है। फिर कृष्ण जिस समता की बात कर रहे हैं, जिस योग की, वह क्या है? वह है, दो के बीच, द्वंद्व के बीच निर्द्वंद्व, अचुनाव, च्वाइसलेसनेस। कैसे होगा यह? अगर आपने द्वंद्व के बीच निर्द्वंद्व होना भी चुना, तो वह भी चुनाव है।

इसे समझ लें। यह जरा थोड़ा कठिन पड़ेगा।

अगर आपने दो द्वंद्व के बीच निर्द्वंद्व होने को चुना, तो दैट टू इज ए च्वाइस, वह भी एक चुनाव है। निर्द्वंद्व आप नहीं हो सकते। अब आप नए द्वंद्व में जुड रहे हैं—द्वंद्व में रहना कि निर्द्वंद्व रहना। अब यह द्वंद्व है, अब यह काम्फ्लिक्ट है। अगर आप इसका चुनाव करते हैं कि निर्द्वंद्व रहेंगे हम, हम द्वंद्व में नहीं पड़ते, तो यह फिर चुनाव हो गया। अब जरा बारीक, और नाजुक बात हो गई। लेकिन निर्द्वंद्व. को कोई चुन ही नहीं सकता। निर्द्वंद्व अचुनाव में खिलता है; वह आपका

चुनाव नहीं है। अचुनाव में निर्द्वंद्व का फूल खिलता है; आप चुन नहीं सकते। तो आपको द्वंद्व और निर्द्वंद्व में नहीं चुनना है।

गीता के इस सूत्र को पढ़कर अनेक लोग मेरे पास आकर कहते हैं कि हम कैसे समतावान हों? यानी मतलब, हम समता को कैसे चुनें? कृष्ण तो कहते हैं कि समता योग है, तो हम समता को कैसे पा लें?

वे समता को चुनने की तैयारी दिखला रहे हैं। कृष्ण कहते हैं, चुना कि समता खोई। फिर तुमने द्वंद्व बनाया—असमता और समता का द्वंद्व बना लिया। असमता छोड़नी है, समता चुननी है! इससे क्या फर्क पड़ता है कि तुम द्वंद्व का पेयर कैसा बनाते हो? बादशाह और गुलाम का बनाते हो, कि बेगम और बादशाह का बनाते हो —इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। आप द्वंद्व बनाए बिना रह नहीं सकते। और जो द्वंद्व बनाता है, वह समता को उपलब्ध नहीं होता है। फिर कैसे पृ क्या है रास्ता?

रास्ता एक ही है कि द्वंद्व के प्रति जागे, कुछ करें मत, जस्ट बी अवेयर। जानें कि एक रास्ता यह और एक रास्ता यह और यह मैं, तीन हैं यहां। यह रही सफलता, यह रही विफलता और यह रहा मैं। यह तीसरा मैं जो हूं, इसके प्रति जागे। और जैसे ही इस तीसरे के प्रति जागेंगे, जैसे ही यह थर्ड फोर्स, यह तीसरा तत्व नजर में आएगा, कि न तो मैं सफलता हूं, न मैं विफलता हूं। विफलता भी मुझ पर आती है, सफलता भी मुझ पर आती है। सफलता भी चली जाती है, विफलता भी चली जाती है। सुबह होती है, सूरज खिलता है, रोशनी फैलती है। मैं रोशनी में खड़ा हो जाता हूं। फिर सांझ होती, अंधेरा आता है, फिर अंधेरा मेरे ऊपर छा जाता है। लेकिन न तो मैं प्रकाश हूं, न मैं अंधेरा हूं। न तो मैं दिन हूं न मैं रात हूं। क्योंकि दिन भी मुझ पर आकर निकल जाता है और फिर भी मैं होता हूं। रात भी मुझ पर होकर निकल जाती है, फिर भी मैं होता हूं। निश्चित ही, रात और दिन से मैं अलग हूं, पृथक हूं, अन्य हूं।

यह बोध कि मैं भिन्न हूं द्वंद्व से, द्वंद्व को तत्काल गिरा देता है और निर्द्वंद्व फूल खिल जाता है। वह समता का फूल योग है। और जो समता को उपलब्ध हो जाता है, उसे कुछ भी और उपलब्ध करने को बाकी नहीं बचता है।

इसलिए कृष्ण कहते हैं, अर्जुन, तू समत्व को उपलब्ध हो। छोड़ फिक्र सिद्धि की, असिद्धि की, सफलता, असफलता की, हिंसा—अहिंसा की, धर्म की, अधर्म की, क्या होगा, क्या नहीं होगा; ईदर आर छोड़! तू अपने में खड़ा हो। तू जाग। तू जागकर द्वंद्व को देख। तू समता में प्रवेश कर। क्योंकि समता ही योग है।

दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनंजय।
बुद्धौ शरणमन्सिव्छ कृपणा: फलहेतवः ।।49।।

हम समत्व रूप बुद्धियोग से सकाम कर्म अत्यंत तुच्छ है, हसलिए हे धनंजय, समत्वबुद्धियोग का आश्रय ग्रहण कर, क्योंकि फल की वासना वाले अत्यंत दीन हैं।

कृष्ण कहते है, धनंजय, बुद्धियोग को खोजो। मैंने जो अभी कहा, द्वंद्व को छोड़ो, स्वयं को खोजो; उसी को कृष्ण कहते हैं, बुद्धि को खोजो। क्योंकि स्वयं का जो पहला परिचय है, वह बुद्धि है। स्वयं का जो पहला परिचय है। अपने से परिचित होने चलेंगे, तो द्वार पर ही जिससे परिचय होगा, वह बुद्धि है। स्वयं का द्वार बुद्धि है। और स्वयं के इस द्वार में से प्रवेश किए बिना कोई भी न आत्मवान होता है, न ज्ञानवान होता है। यह बुद्धि का द्वार है। लेकिन बुद्धि के द्वार पर हमारी दृष्टि नहीं जाती, क्योंकि बुद्धि से हमेशा हम कर्मों के चुनाव का काम करते रहते हैं।

बुद्धि के दो उपयोग हो सकते हैं। सब दरवाजों के दो उपयोग होते हैं। प्रत्येक दरवाजे के दो उपयोग हैं। होंगे ही। सब दरवाजे इसीलिए बनाए जाते हैं, उनसे बाहर भी जाया जा सकता है, उनसे! भीतर भी जाया जा सकता है। दरवाजे का मतलब ही यह होता है कि उससे बाहर भी जाया जा सकता है, उससे भीतर भी जाया जा। सकता है। जिससे भी बाहर जा सकते हैं, उससे ही भीतर भी जा सकते हैं। लेकिन हमने अब तक बुद्धि के दरवाजे का एक ही उपयोग किया है—बाहर जाने का। हमने अब तक उसका एक्जिट का उपयोग किया है, एंट्रेंस का उपयोग नहीं किया। जिस दिन आदमी बुद्धि का एंट्रेंस की तरह, प्रवेश की तरह उपयोग करता है, उसी दिन—उसी दिन—जीवन में क्रांति फलित हो जाती है।

अर्जुन भी बुद्धि का उपयोग कर रहा है। ऐसा नहीं कि नहीं कर रहा है, कहना चाहिए, जरूरत से ज्यादा ही कर रहा है। इतना ज्यादा कर रहा है कि कृष्ण को भी उसने दिक्कत में डाला हुआ है। बुद्धि का भलीभांति उपयोग कर रहा है। निर्बुद्धि नहीं है, बुद्धि काफी है। वह काफी बुद्धि ही उसे कठिनाई में डाले हुए है। निर्बुद्धि वहां और भी बहुत हैं, वे परेशान नहीं हैं।

लेकिन बुद्धि का वह एक ही उपयोग जानता है। वह बुद्धि का उपयोग कर रहा है कि यह करूं तो ठीक, कि वह करूं तो ठीक? ऐसा होगा, तो क्या होगा? वैसा होगा, तो क्या होगा? वह बुद्धि का उपयोग कर रहा है बहिर्जगत के संबंध में, वह बुद्धि का उपयोग कर रहा है फलों के लिए; वह बुद्धि का उपयोग कर रहा है कि कल क्या होगा? परसों क्या होगा? संतति कैसी होगी? कुरल नाश होगा? क्या होगा? क्या नहीं होगा? वह बुद्धि का सारा उपयोग कर रहा है। सिर्फ एक उपयोग नहीं कर रहा है — भीतर प्रवेश का। कृष्ण उससे कहते हैं, धनंजय, कर्म के संबंध में ही सोचते रहना बड़ी निकृष्ट उपयोगिता है बुद्धि की। उसके संबंध में भी सोचो, जो कर्म के संबंध में सोच रहा है। कर्म को ही देखते रहना, बाहर ही देखते रहना, बुद्धि का अत्यल्प उपयोग है —निकृष्टतम!

अगर इसे ऐसा कहें कि व्यवहार के लिए ही बुद्धि का उपयोग करना—क्या करना, क्या नहीं करना—बुद्धि की क्षमता का न्यूनतम उपयोग है। और इसलिए हमारी बुद्धि पूरी काम में नहीं। आती, क्योंकि उतनी बुद्धि की जरूरत नहीं है। जहां सुई से काम चल जाता है, वहां तलवार की जरूरत ही नहीं पड़ती।

अगर वैज्ञानिक से पूछें, तो वह कहता है कि श्रेष्ठतम मनुष्य भी अपनी बुद्धि के पंद्रह प्रतिशत से ज्यादा का उपयोग नहीं करते हैं, कुल पंद्रह प्रतिशत, वह भी श्रेष्ठतम! श्रेष्ठतम यानी कोई आइंस्टीन या कोई बर्ट्रेंड रसेल। तो जो दुकान पर बैठा है, वह आदमी कितनी करता है? जो दफ्तर में काम कर रहा है, वह आदमी कितनी करता है? जो स्कूल में पढ़ा रहा है, वह आदमी कितना काम करता है बुद्धि से? दो—ढाई परसेंट, इससे ज्यादा नहीं। दों—ढाई परसेंट भी पूरी जिंदगी नहीं करता आदमी उपयोग, केवल अठारह साल की उम्र तक। अठारह साल की उम्र के बाद तो मुश्किल से ही कोई उपयोग करता है। क्योंकि कई बातें बुद्धि सीख लेती है,। कामचलाऊ सब बातें बुद्धि सीख लेती है, फिर उन्हीं से काम चलाती रहती है जिंदगीभर।

अठारह साल के बाद मुश्किल से आदमी मिलेगा, जिसकी बुद्धि बढ़ती है। आप कहेंगे, गलत। सत्तर साल के आदमी के पास अठारह साल के आदमी से ज्यादा अनुभव होता है। अनुभव ज्यादा होता है, बुद्धि ज्यादा नहीं होती, अठारह साल की ही बुद्धि होती है। उसी बुद्धि से वह, उसी चम्मच से वह अनुभव को इकट्ठा करता चला जाता है। चम्मच बड़ी नहीं करता, चम्मच वही रहती है, बस उससे अनुभव को इकट्ठा करता चला जाता है। अनुभव का ढेर बढ़ जाता है उसके पास, बाकी चम्मच जो उसकी बुद्धि की होती है, वह अठारह साल वाली ही होती है।

दूसरे महायुद्ध में तो बड़ी कठिनाई हुई। कठिनाई यह हुई कि दूसरे महायुद्ध में अमेरिका को जांच—पड़ताल करनी पड़ी कि हम जिन सैनिकों को भेजते हैं, उनका आई क्यू. कितना है, उनका बुद्धि—माप कितना है। युद्ध में भेज रहे हैं, तो उनकी बुद्धि की जांच भी तो होनी चाहिए! शरीर की जांच तो हो जाती है कि यह आदमी ताकतवर है, लड़ सकता है, सब ठीक। लेकिन अब युद्ध जो है, वह शरीर से नहीं चल रहा है, मस्कुलर नहीं रह गया है। अब युद्ध बहुत कुछ मानसिक हो गया है। बुद्धि कितनी है?

तो बड़ी हैरानी हुई। युद्ध के मैदान के लिए जो सैनिक भर्ती हो रहे थे, उनकी जांच करने से पता चला कि उन सभी सैनिकों की जो औसत बुद्धि की उम्र है, वह तेरह साल से ज्यादा की नहीं है। तेरह साल! उसमें युनिवर्सिटी के ग्रेजुएट हैं, उसमें मैट्रिक से कम पढ़ा—लिखा तो कोई भी नहीं है। कहना चाहिए, पढ़े—लिखे से पढ़ा—लिखा वर्ग है। उसकी उम्र भी उतनी ही है जितनी तेरह साल के बच्चे की होनी चाहिए—बुद्धि की। बड़ी चौंकाने वाली, बड़ी घबराने वाली बात है। मगर कारण है। और कारण यह है कि बाहर की दुनिया में जरूरत ही नहीं है बुद्धि की इतनी।

इसलिए जब कृष्ण कहते हैं तो बहुत मनोवैज्ञानिक सत्य कह रहे हैं वह कि निकृष्टतम उपयोग है कर्म के लिए बुद्धि का। निकृष्टतम! बुद्धि के योग्य ही नहीं है वह। वह बिना बुद्धि के भी हो सकता है। मशीनें आदमी से अच्छा काम कर लेती हैं।

सच तो यह है कि आदमी रोज मशीनों से हारता जा रहा है, और धीरे—धीरे आदमियों को कारखाने, दफ्तर के बाहर होना पड़ेगा। मशीनें उनकी जगह लेती चली जाएंगी। क्योंकि आदमी उतना अच्छा काम नहीं कर पाता, जितना ज्यादा अच्छा मशीनें कर लेती हैं। उसका कारण सिर्फ एक ही है कि मशीनों के पास बिलकुल बुद्धि नहीं है। भूल—चूक के लिए भी बुद्धि होनी जरूरी है। गलती करने के लिए भी बुद्धि होनी जरूरी है। मशीनें गलती करती ही नहीं। करती चली जाती हैं, जो कर रही हैं।

हम भी सत्रह—अठारह साल की उम्र होते—होते तक मेकेनिकल हो जाते हैं। दिमाग सीख जाता है क्या करना है, फिर उसको करता चला जाता है।

एक और बुद्धि का महत उपयोग है—बुद्धियोग—बुद्धिमानी नहीं, बुद्धिमत्ता नहीं, इंटलेक्यूअलिज्म नहीं, सिर्फ बौद्धिकता नहीं। बुद्धियोग का क्या मतलब है कृष्य का? बुद्धियोग का मतलब है, जिस दिन हम बुद्धि के द्वार का बाहर के जगत के लिए नहीं, बल्कि स्वयं को जानने की यात्रा के लिए प्रयोग करते हैं। तब सौ प्रतिशत बुद्धि की जरूरत पड़ती है। तब स्वयं—प्रवेश के लिए समस्त बुद्धिमत्ता पुकारी जाती है।

अगर बायोलाजिस्ट से पूछें, तो वह कहता है, आदमी की आधी खोपड़ी बिलकुल बेकाम पड़ी है, आधी खोपड़ी का कोई भी हिस्सा काम नहीं कर रहा है। बड़ी चिंता की बात है जीव—शास्त्र के लिए कि बात क्या है? इसकी शरीर में जरूरत क्या है? यह जो सिर का बड़ा हिस्सा बेकार पड़ा है, कुछ करता ही नहीं, इसको काट भी दें तो चल सकता है, आदमी में कोई फर्क नहीं पड़ेगा; पर यह है क्यों? क्योंकि प्रकृति कुछ भी व्यर्थ तो बनाती नहीं। या तो यह हो सकता है कि पहले कभी आदमी पूरी खोपड़ी का उपयोग करता रहा हो, फिर भूल—चूक हो गई हो कुछ, आधी खोपड़ी के द्वार—दरवाजे बंद हो गए है। या यह हो सकता है। कि आगे संभावना है कि आदमी के मस्तिष्क में और बहुत कुछ पोटेंशियल है। बीज रूप है, जो सक्रिय हो और काम करे।

दोनों ही बातें थोड़ी दूर तक सच हैं। ऐसे लोग पृथ्वी पर हो चुके हैं, बुद्ध या कृष्ण या कपिल या कणाद, जिन्होंने पूरी—पूरी बुद्धि का उपयोग किया। ऐसे लोग भविष्य में भी होंगे, जो इसका पूरा—पूरा उपयोग करें। लेकिन बाहर के काम के लिए थोड़ी—सी ही बुद्धि से काम चल जाता है। वह न्यूनतम उपयोग है—निकृष्टतम।

अर्जुन को कृष्ण कहते हैं, धनंजय, तू बुद्धियोग को उपलब्ध हो। तू बुद्धि का भीतर जाने के लिए, स्वयं को जानने के लिए, उसे जानने के लिए जो सब चुनावों के बीच में चुनने वाला है, जो सब करने के बीच में करने वाला है, जो सब घटनाओं के बीच में साक्षी है, जो सब घटनाओं के पीछे खड़ा है दूर, देखने वाला द्रष्टा है, उसे तू खोज। और जैसे ही उसे तू खोज लेगा, तू समता को उपलब्ध हो जाएगा। फिर ये बाहर की चिंताएं—ऐसा ठीक, वैसा गलत—तुझे पीड़ित और परेशान नहीं करेंगी। तब तू निश्चित भाव से जी सकता है। और वह निश्चितता तेरी समता से आएगी, तेरी बेहोशी से नहीं।

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे मुकृतदुष्कृते ।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योग: कर्मसु कौशलम्।।50।।

बुद्धियुक्त पुरूष पुण्य—पाप दोनों को हम लोक में ही त्याग देता है, अर्थात उनसे लिपायमान नहीं होता। इससे बुद्धियोग के लिए ही चेष्टा कर। यह बुद्धिरूप योग ही कर्मों में

कुशलता है अर्थात कर्म बंधन से छूटने का उपाय है।

सांख्यबुद्धि को उपलब्ध व्यक्ति पाप—पुण्य से निवृत्त हो जाता है। सांख्यबुद्धि को उपलब्ध व्यक्ति कर्म की कुशलता को उपलब्ध हो जाता है। और कर्म की कुशलता ही, कृष्ण कहते हैं, योग है।

इसमें बहुत—सी बातें हैं। एक तो, सांख्यबुद्धि। इसके पहले सूत्र में मैंने कहा कि बुद्धि का प्रयोग प्रवेश के लिए, बहिर्यात्रा के लिए नहीं, अंतर्यात्रा के लिए है। जिस दिन कोई व्यक्ति अपने विचार का उपयोग अंतर्यात्रा के लिए करता है, उस दिन सांख्य को उपलब्ध होता है। जिस दिन भीतर पहुंचता है, स्वयं में जब खड़ा हो जाता है—स्टैंडिंग इन

वनसेल्फ—जब अपने में ही खड़ा हो जाता है, जब स्वयं में और स्वयं के खड़े होने में रत्तीभर का फासला नहीं होता; जब हम वहीं होते हैं जहा हमारा सब कुछ होना है, जब हम वही होते हैं जो हम हैं, जब हम ठीक अपने प्राणों की ज्योति के साथ एक होकर खड़े हो जाते हैं—इसे सांख्यबुद्धि कृष्ण कहते हैं।

मैंने पीछे आपसे कहा कि सांख्य परम ज्ञान है, दि सुप्रीम डॉक्ट्रिन। उससे बड़ा कोई सिद्धात नहीं है। धबर्ट बेनॉयट ने एक किताब लिखी है। किताब का नाम है, दि सुप्रीम डॉक्ट्रिन। लेकिन उसे सांख्य का कोई पता नहीं है। उसने वह किताब झेन पर लिखी है। लेकिन जो भी लिखा है वह सांख्य है। परम सिद्धात क्या है? सांख्य को परम जान कृष्ण कहते हैं, क्या बात है? ज्ञानों में श्रेष्ठतम ज्ञान सांख्य क्यों है?

दो तरह के ज्ञान हैं। एक ज्ञान, जिससे हम ज्ञेय को जानते हैं। और एक दूसरा ज्ञान, जिससे हम शांता को जानते हैं। एक ज्ञान, जिससे हम आब्जेक्ट को जानते हैं—वस्तु को, विषय को। और एक ज्ञान,। जिससे हम सब्जेक्ट को जानते हैं, जानने वाले को ही जानते हैं जिससे। ज्ञान दो हैं। पहला ज्ञान साइंस बन जाता है, आब्जेक्टिव नालेज। दूसरा ज्ञान सांख्य बन जाता है, सब्जेक्टिव नालेज।

मैं आपको जान रहा हूं यह भी एक जानना है। लेकिन मैं आपको कितना ही जानूं, तब भी पूरा न जान पाऊंगा। मैं आपको कितना ही जानूं, मेरा जानना राउंड अबाउट होगा; मैं आपके आस—पास घूमकर जानूंगा, आपके भीतर नहीं जा सकता। अगर मैं आपके शरीर की चीर—फाड़ भी कर लूं, तो भी बाहर ही जानूंगा, तो भी भीतर नहीं जा सकता। अगर मैं आपके मस्तिष्क के भी टुकड़े—टुकड़े कर लूं, तो भी बाहर ही रहूंगा, भीतर नहीं जा सकता। उन अर्थों में मैं आपके भीतर नहीं जा सकता, जिन अर्थों में आप अपने भीतर हैं। यह इंपासिबिलिटी है।

आपके पैर में दर्द हो रहा है। मैं समझ सकता हूं क्या हो रहा है। मेरे पैर में भी दर्द हुआ है। नहीं हुआ है, तो मेरे सिर में दर्द हुआ है, तो भी मैं अनुमान कर सकता हूं कि आपको क्या हो रहा है। अगर कुछ भी नहीं हुआ है, तो भी आपके चेहरे को देखकर समझ सकता हूं कि कोई पीड़ा हो रही है। लेकिन सच में आपको क्या हो रहा है, इसे मैं बाहर से ही जान सकता हूं। वह इनफरेंस है, अनुमान है। मैं अनुमान कर रहा हूं कि ऐसा कुछ हो रहा है। लेकिन जैसे आप अपने दर्द को जान रहे हैं, वैसा जानने का मेरे लिए आपके बाहर से कोई भी उपाय नहीं है।

लीबनिज हुआ एक बहुत बड़ा गणितज्ञ और विचारक। उसने आदमी के लिए एक शब्द दिया है, मोनोड। वह कहता है, हर आदमी एक बंद मकान है, जिसमें कोई द्वार—दरवाजा—खिड़की भी नहीं है। मोनोड का मतलब है, विंडोलेस सेल—एक बंद मकान, जिसमें कोई खिड़की भी नहीं है, जिसमें से घुस जाओ और भीतर जाकर जान लो कि क्या हो रहा है!

आप प्रेम से भरे हैं। क्या करें कि हम आपके प्रेम को जान लें बाहर से? कोई उपाय नहीं है। कोई उपाय नहीं है। निर—उपाय है। हां, लेकिन कुछ—कुछ जान सकते हैं। पर वह जो जानना है, वह ठीक नहीं है कहना कि ज्ञान है।

तो बर्ट्रेंड रसेल ने दो शब्द बनाए हैं। एक को वह कहता है नालेज, और एक को कहता है एक्येनटेंस। एक को वह कहता है ज्ञान, और एक को कहता है परिचय। तो दूसरे का हम ज्यादा से ज्यादा परिचय कर सकते हैं, एक्येनटेंस कर सकते हैं; दूसरे का ज्ञान नहीं हो सकता। और दूसरे का जो परिचय है, उसमें भी इतने मीडियम हैं बीच में कि वह ठीक है, इसका कभी भरोसा नहीं हो सकता है।

आप वहा बैठे हैं बीस गज की दूरी पर। मैंने आपके चेहरे को कभी नहीं देखा, हालाकि अभी भी देख रहा हूं। फिर भी आपके चेहरे को नहीं देख रहा हूं। आपके पास से ये प्रकाश की किरणें, आपके चेहरे को लेकर मेरी आंखों के भीतर जा रही हैं। फिर आंखों के भीतर ये प्रकाश की किरणें मेरी आंखों के तंतुओं को हिला रही हैं। फिर वे आंखों के तंतु मेरे भीतर जाकर मस्तिष्क के किसी रासायनिक द्रव्य में कुछ कर रहे हैं, जिसको अभी वैज्ञानिक भी नहीं कहते कि क्या कर रहे हैं। वे कहते हैं, समथिंग। अभी पक्का नहीं होता कि वे वहां क्या कर रहे हैं! उनके कुछ करने से मुझे आप दिखाई पड़ रहे हैं। पता नहीं, आप वहा हैं भी या नहीं। क्योंकि सपने में भी आप मुझे दिखाई पड़ते हैं और नहीं होते हैं; सुबह पाता हूं, नहीं हैं। अभी आप दिखाई पड़ रहे हैं, पता नहीं, हैं या नहीं! क्योंकि कौन कह सकता है कि जो मैं देख रहा हूं, वह सपना नहीं है! कौन कह सकता है कि जो मैं देख रहा हूं, वह सपना नहीं है!

फिर पीलिया का मरीज है, उसे सब चीजें पीली दिखाई पड़ती हैं। कलर ब्लाइंड लोग होते हैं—दस में से एक होता है, यहां भी कई लोग होंगे—उनको खुद भी पता नहीं होता। कुछ लोग रंगों के प्रति अंधे होते हैं। कोई किसी रंग के प्रति अंधा होता है। पता नहीं चलता, बहुत मुश्किल है पता चलना। क्योंकि अभाव का पता चलना बहुत मुश्किल है।

बर्नार्ड शा हरे रंग के प्रति अंधा था—साठ साल की उम्र में पता चला। साठ साल तक उसे पता ही नहीं था कि हरा रंग उसे दिखाई ही नहीं पड़ता! उसे हरा और पीला एक—सा दिखाई पड़ता था। कभी कोई मौका ही नहीं आया कि जिसमें जांच—पड़ताल हो जाती। वह तो साठवीं वर्षगांठ पर किसी ने एक सूट उसे भेंट भेजा। हरे रंग का सूट था। टाई भेजना भूल गया होगा। तो बर्नार्ड शा न सोचा कि टाई भी खरीद लाएं, तो पूरा हो जाए। तो बाजार में टाई खरीदने गया, पीले रंग की टाई खरीद लाया।

सेक्रेटरी ने रास्ते में कहा कि आप यह क्या कर रहे हैं, बड़ी अजीब मालूम पड़ेगी! पीले रंग की टाई और हरे रंग के कोट पर? बर्नार्ड शा ने कहा, पीला और हरा! क्या दोनों बिलकुल मैच नहीं करते? दोनों बिलकुल एक जैसे नहीं हैं? उसने कहा कि आप मजाक तो नहीं कर रहे हैं? बर्नार्ड शा आदमी मजाक करने वाला था। पर उसने कहा कि नहीं, मजाक नहीं कर रहा। तुम क्या कह रहे हो! ये दोनों अलग हैं? ये दोनों एक ही रंग हैं! तब आख की जांच करवाई, तो पता चला कि उसकी आख को हरा रंग दिखाई ही नहीं पड़ता। वह ब्लाइंड है हरे रंग के प्रति।

तो जो मुझे दिखाई पड़ रहा है, वह सच में है? वैसा ही है जैसा दिखाई पड़ रहा है? कुछ पक्का नहीं है। जो हमें दिखाई पड़ रहा है, वह सिर्फ एज़म्शन है। हम मानकर चल सकते हैं कि है। एक बडी दूरबीन ले आएं, एक बड़ी खुर्दबीन ले आएं और आपके चेहरे पर लगाकर देखें।

ऐसी मजाक मैंने सुनी है। एक वैज्ञानिक ने एक बहुत सुंदर स्त्री से विवाह किया। और जाकर अपने मित्रों से, वैज्ञानिकों से कहा कि बहुत सुंदर स्त्री से प्रेम किया है। उन वैज्ञानिकों ने कहा, ठीक से देख भी लिया है? खुर्दबीन लगाई थी कि नहीं? क्योंकि भरोसा क्या है! उसने कहा, क्या पागलपन की बात करते हो ना कहीं स्त्री के सौंदर्य को खुर्दबीन लगाकर देखा जाता है! उन्होंने कहा, तुम ले आना अपनी सुंदर स्त्री को।

मित्र, सिर्फ मजाक में, मिलाने ले आया। उन सबने एक बड़ी खुर्दबीन रखी, सुंदर स्त्री को दूसरी तरफ बिठाया। उसके पति को बुलाया कि जरा यहा से आकर देखो। देखा तो एक चीख निकल गई उसके मुंह से। क्योंकि उस तरफ तो खाई—खड्डे के सिवाय कुछ दिखाई नहीं पड़ता था। स्त्री के चेहरे पर इतने खाई—खड्डे!

लेकिन खुर्दबीन चाहिए; आदमी के चेहरे पर भी हैं। बड़ी खुर्दबीन से जब देखो तो ऐसा लगता है कि खाई—पहाड़, खाई—पहाड़, ऐसा दिखाई पडता है। सत्य क्या है? जो खुर्दबीन से दिखता है वह? या जो खाली आख से दिखता है वह? अगर सत्य ही होगा, तो खुर्दबीन वाला ही ज्यादा होना चाहिए, खाली आख की बजाय। उसको वैज्ञानिक बड़े इंतजाम से बनाते हैं।

जो हमें दिखाई पड रहा है, वह सिर्फ एक्नेनटेंस है, कामचलाऊ, यूटिलिटेरियन! उपयोगी है, सत्य नहीं है। इसलिए दूसरे से हम सिर्फ परिचित ही हो सकते हैं। उस परिचय को कभी ज्ञान मत समझ लेना।

इसलिए कृष्ण अर्जुन से कहते हैं, परम—ज्ञान है सांख्य। सांख्य का मतलब है, दूसरे को नहीं, उसे जानो जो तुम हो। क्योंकि उसे ही तुम भीतर से, इंटिमेटली, आंतरिकता से, गहरे में जान सकते हो। उसको बाहर से जानने की जरूरत नहीं है। उसमें तुम उतर सकते हो, डूब सकते हो, एक हो सकते हो।

इसलिए इस मुल्क में, हमारे मुल्क में तो हम ज्ञान कहते ही सिर्फ आत्मज्ञान को हैं। बाकी सब परिचय है। साइंस ज्ञान नहीं है इन अर्थों में। साइंस का जो शब्द है अंग्रेजी में, उसका मतलब होता है ज्ञान, उसका मतलब भी टु नो है। साइंस का मतलब अंग्रेजी में होता है ज्ञान। लेकिन हम अपने मुल्क में साइंस को ज्ञान नहीं कहते, हम उसे विज्ञान कहते हैं, हम कहते हैं, विशेष ज्ञान। ज्ञान नहीं, स्पेसिफिक नालेज। ज्ञान नहीं, क्योंकि ज्ञान तो है वह जो स्वयं को जानता है। यह विशेष ज्ञान है, जिससे जिंदगी में काम चलता है। एक स्पेसिफिक नालेज है, एक्येनटेंस है, परिचय है।

इसलिए हमारा विज्ञान शब्द अंग्रेजी के साइंस शब्द से ज्यादा मौजूं है, वह ठीक है। क्योंकि वह एक—वि—विशेषता जोड़कर यह कह देता है कि ज्ञान नहीं है, एक तरह का ज्ञान है। एक तरह का ज्ञान है, ए टाइप आफ नालेज। लेकिन सच में ज्ञान तो एक ही है। और वह है उसे जानना, जो सबको जानता है।

यह भी स्मरण रखना जरूरी है कि जब मैं उसे ही नहीं जानता, जो सबको जानता है, तो मैं सबको कैसे जान सकता हूं! जब मैं अपने को ही नहीं जानता कि मैं कौन हूं, तो मैं आपको कैसे जान सकता हूं कि आप कौन हैं! अभी जब मैंने इस निकटतम सत्य को नहीं जाना—दि मोस्ट इंटिमेट, दि नियरेस्ट—जिसमें इंचभर का फासला नहीं है, उस तक को भी नहीं जान पाया, तो आप तो मुझसे बहुत दूर हैं, अनंत दूरी पर हैं। और अनंत दूरी पर हैं। कितने ही पास बैठ जाएं, घुटने से घुटना लगा लें, छाती से छाती लगा लें, दूरी अनंत है—इनफिनिट इज दि डिस्टेंस। कितने ही करीब बैठ जाएं, दूरी अनंत है। क्योंकि भीतर प्रवेश नहीं हो सकता; फासला बहुत है, उसे पूरा नहीं किया जा सकता।

सभी प्रेमियों की तकलीफ यही है। प्रेम की पीडा ही यही है कि जिसको पास लेना चाहते हैं, न ले पाएं, तो मन दुखता रहता है कि पास नहीं ले पाए। और पास ले लेते हैं, तो मन दुखता है कि पास तो आ गए, लेकिन फिर भी पास कहां आ पाए! दूरी बनी ही रही वे प्रेमी भी दुखी होते हैं, जो दूर रह जाते हैं, और उनसे भी ज्यादा दुखी वे होते हैं, जो निकट आ जाते हैं। क्योंकि कम से कम दूर रहने में एक भरोसा तो रहता है कि अगर पास आ जाते, तो आनंद आ जाता। पास आकर पता चलता है कि डिसइलूजनमेंट हुआ। पास आ ही नहीं सकते। तीस साल पति—पत्नी साथ रहें, पास आते हैं? विवाह के दिन से दूरी रोज बड़ी होती है, कम नहीं होती। क्योंकि जैसे—जैसे समझ आती है, वैसे—वैसे पता चलता है, पास आने का कोई उपाय नहीं मालूम होता।

हर आदमी एक मोनोड है—अपने में बंद, आईलैंड; कहीं से खुलता ही नहीं। जितने निकट रहते हैं, उतना ही पता चलता है कि परिचय नहीं है, अपरिचित हैं बिलकुल। कोई पहचान नहीं हो पाई। मरते दम तक भी पहचान नहीं हो पाती। असल में जो आदमी दूसरे की पहचान को निकला है अपने को बिना जाने, वह गलत है, वह गलत यात्रा कर रहा है, जो कभी सफल नहीं हो सकती।

सांख्य स्वयं को जानने वाला ज्ञान है। इसलिए मैं कहता हूं दि सुप्रीम साइंस, परम ज्ञान। और कृष्ण कहते हैं, धनंजय, अगर तूर इस परम ज्ञान को उपलब्ध होता है, तो योग सध गया समझ, फिर कुछ और साधने को नहीं बचता। सब सध गया, जिसने स्वयं को जाना। सब मिल गया, जिसने स्वयं को पाया। सब खुल गया, जिसने स्वयं को खोला। तो अर्जुन से वे कहते हैं, सब मिल जाता है, सब योग सांख्यबुद्धि को उपलब्ध व्यक्ति को उपलब्ध है। और योग कर्म की कुशलता बन जाती है।

योग कर्म की कुशलता क्यों है? व्हाय? क्यों? क्यों कहते हैं, योग कर्म की कुशलता है? क्योंकि हम तो योगियों को सिर्फ कर्म से भागते देखते हैं। कृष्ण बडी उलटी बात कहते हैं। असल में उलटी बात कहने के लिए कृष्ण जैसी हिम्मत ही चाहिए, नहीं तो उलटी बात कहना बहुत मुश्किल है। लोग सीधी—सीधी बातें कहते रहते हैं। सीधी बातें अक्सर गलत होती हैं। अक्सर गलत होती हैं।

क्योंकि सीधी बातें सभी लोग मानते हैं। और सभी लोग सत्य को नहीं मानते हैं। सभी लोग, जो कनवीनिएंट है, सुविधापूर्ण है, उसको मानते हैं।

कृष्ण बड़ी उलटी बात कह रहे हैं। वे कह रहे हैं, योगी कर्म की कुशलता को उपलब्ध हो जाता है। योग ही कर्म की कुशलता है। हम तो योगी को भागते देखते हैं। एक ही कुशलता देखते हैं— भागने की। एक ही एफिशिएसी है उसके पास, कि वह एकदम रफू हो जाता है कहीं से भी। रफू शब्द तो आप समझते हैं न? कंबल में या शाल में छेद हो जाता है न। तो उसको रफू करने वाला ठीक कर देता है। छेद एकदम रफू हो जाता है। रफू मतलब, पता ही नहीं चलता कि कहां है। ऐसे ही संन्यासी रफू होना जानता है। बस एक ही कुशलता है—रफू होने की। और तो कोई कुशलता संन्यासी में, योगी में दिखाई नहीं पड़ती।

तो फिर ये कृष्ण क्या कहते हैं? ये किस योगी की बात कर रहे हैं? निश्चित ही, ये जिस योगी की बात कर रहे हैं, वह पैदा नहीं हो पाया है। जिस योगी की ये बात कर रहे हैं, वह योगी चूक गया। असल में योगी तो वह पैदा हो पाया है,

जो अर्जुन को मानता है, कृष्ण को नहीं। अर्जुन भी रफू होने के लिए बड़ी उत्सुकता दिखला रहे हैं। वह भी कहते हैं, रफू करो भगवान! कहीं से रास्ता दे दो, मैं निकल जाऊं। फिर लौटकर न देखूं। बड़े उपद्रव में उलझाया हुआ है। यह सब क्या देख रहा हूं! मुझे बाहर निकलने का रास्ता बता दो।

कृष्ण उसे बाहर ले जाने का उपाय नहीं, और भी अपने भीतर ले जाने का उपाय बता रहे हैं। इस युद्ध के तो बाहर ले जा नहीं रहे। वह इस युद्ध के भी बाहर जाना चाहता है। इस युद्ध के तो भीतर ही खड़ा रखे हुए हैं, और उससे उलटा कह रहे हैं कि जरा और भीतर चल—युद्ध से भी भीतर, अपने भीतर चल। और अगर तू अपने भीतर चला जाता है, तो फिर भागने की कोई जरूरत नहीं। फिर तू जो भी करेगा, वही कुशल हो जाएगा—तू जो भी करेगा, वही। क्योंकि जो व्यक्ति भीतर शांत है, और जिसके भीतर का दीया जल गया, और जिसके भीतर प्रकाश है, और जिसके भीतर मृत्यु न रही, और जिसके भीतर अहंकार न रहा, और जिसके भीतर असंतुलन न रहा, और जिसके भीतर सब समता हो गई, और जिसके भीतर सब ठहर गया, सब मौन, सब शात हो गया—उस व्यक्ति के कर्म में कुशलता न होगी, तो किसके होगी?

अशांत है हृदय, तो कर्म कैसे कुशल हो सकता है? कंपता है, डोलता है मन, तो हाथ भी डोलता है। कंपता है, डोलता है चित्त, तो कर्म भी डोलता है। सब विकृत हो जाता है। क्योंकि भीतर ही सब डोल रहा है, भीतर ही कुछ थिर नहीं है। शराबी के पैर जैसे कंप रहे, ऐसा भीतर सब कंप रहा है। बाहर भी सब कैप जाता है। कैप जाता है, अकुशल हो जाता है।

भीतर जब सब शात है, सब मौन है, तो अकुशलता आएगी कहां से? अकुशलता आती है—भीतर की अशांति, भीतर के तनाव, टेंशन, एंग्जाइटी, भीतर की चिंता, भीतर के विषाद, भीतर गड़े हैं जो काँटे दुख के, पीड़ा के, चिंता के—वे सब कंपा डालते हैं। उनसे जो आह उठती है, वह बाहर सब अकुशल कर जाती है। लेकिन भीतर अगर वीणा बजने लगे मौन की, समता की, तो अकुशलता के आने का उपाय कहां है? बाहर सब कुशल हो जाता है। फिर तब ऐसा आदमी जो भी करता है, वह मिडास जैसा हो जाता है।

कहानी है यूनान में कि मिडास जो भी छूता, वह सोने का हो जाता। जो भी छू लेता, वह सोने का हो जाता। मिडास तो बड़ी मुश्किल में पड़ा इससे, क्योंकि सोना पास में न हो तो ही ठीक। थोड़ा हो, तो भी चल जाए। मिडास जैसा हो जाए तो मुश्किल हो गई। क्योंकि सोना न तो खाया जा सकता, न पीया जा सकता। पानी छुए मिडास, तो सोना हो जाए; खाना छुए तो सोना हो जाए। पत्नी उससे दूर भागे, बच्चे उससे दूर बचें। सभी सोने वालों की पत्नियां और बच्चे दूर भागते हैं। छुए, तो सोना हो जाएं। मिडास का टच—पत्नी को अगर गले लगा ले प्रेम से, तो वह मरी, सोना हो गई।

तो जहां भी सोने का संस्पर्श है, वहां प्रेम मर जाता है; सब सोना हो जाता है, सब पैसा हो जाता है। मिडास तो बड़ी मुश्किल में पड़ा। क्योंकि वह जो छूता था, वह जीवित भी हो, तो मुर्दा सोना हो जाए।

लेकिन मैं यह कह रहा हूं कि कृष्ण एक और तरह की कीमिया, और तरह की अल्केमी बता रहे हैं। वे यह बता रहे हैं कि भीतर अगर समता है, और भीतर अगर सांख्य है, और भीतर अगर सब मौन और शात हो गया है, तो हाथ जो भी छूते हैं, वह कुशल हो जाता है; जो भी करते हैं, वह कुशल हो जाता है। फिर जो होता है, वह सभी सफल है। सफल ही नहीं, कहना चाहिए, सुफल भी है। सुफल और बात है। सफल तो चोर भी होता है, लेकिन सुफल नहीं होता। सफल का तो इतना ही मतलब है कि काम करते हैं फल लग जाता है। लेकिन कड़वा लगता है, जहरीला भी लगता है। सुफल का मतलब है, अमृत का फल लगता है। भीतर जब सब ठीक है, तो बाहर सब ठीक हो जाता है। इसे कृष्ण ने योग की कुशलता कहा है।

और यह पृथ्वी तब तक दीनता, दुख और पीड़ा से भरी रहेगी, जब तक अयोगी कुशलता की कोशिश कर रहे हैं कर्म की; और योगी पलायन की कोशिश कर रहे हैं। जब तक योगी भागेंगे और अयोगी जमकर खड़े रहेंगे, तब तक यह दुनिया उपद्रव बनी रहे, तो आश्चर्य नहीं है। इससे उलटा हो, तो ज्यादा स्वागत योग्य है। अयोगी भागें तो भाग जाएं, योगी टिके और खड़े हों और जीवन के युद्ध को स्वीकार करें।

जीवन के युद्ध में नहीं है प्रश्न। युद्ध भीतर है, वह है कष्ट। द्वंद्व भीतर है, वह है कष्ट। वहां निर्द्वंद्वता, वहां मौन, वहां शाति, तो बाहर सब कुशल हो जाता है।

एक श्लोक और।

कर्मजं बुद्धियुक्कुा हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः।
जन्मबन्धविनिर्मुक्ता: यदं गच्छन्त्व नामयम् ।।51।।

क्योंकि बुद्धियोगयुक्त ज्ञानीजन कर्मों से उत्पन्न होने वाले फल को त्यागकर, जन्मरूप बंधन मे छूटे हुए निर्दोष, अर्थात अमृतमय परमपद को प्राप्त होते हैं।

जो भी ऐसे ज्ञान को उपलब्ध हो जाता है, जो भी ऐसी निष्ठा को, ऐसी श्रद्धा को, ऐसे अनुभव को उपलब्ध हो जाता है जहां द्वंद्व नहीं है, वैसा व्यक्ति जन्म के, मृत्यु के घेरे से मुक्त होकर परमपद को पा लेता है।

इसे थोड़ा—सा खोलना पड़ेगा।

एक तो, जन्म—मृत्यु से मुक्त हो जाता है, इसका ऐसा मतलब नहीं है कि अभी जन्म—मृत्यु में है। है तो अभी भी नहीं, ऐसा प्रतीत करता है कि है। जन्म—मृत्यु से मुक्त हो जाता है, इसका मतलब यह नहीं कि पहले बंधा था और अब मुक्त हो जाता है। नहीं, ऐसा बंधा तो पहले भी नहीं था, लेकिन मानता था कि बंधा हूं। और अब जानता है कि नहीं बंधा हूं। पहला तो यह खयाल ले लेना जरूरी है। जो घटना घटती है जन्म और मृत्यु से मुक्ति की, वह वास्तविक नहीं है, क्योंकि जन्म और मृत्यु ही वास्तविक नहीं हैं। जो घटना घटती है, वह एक असत्य का, एक अज्ञान का निराकरण है।

जैसे कि मैं एक गणित करता हूं दो और दो पांच जोड़ लेता हूं। मैं कितना ही दो और दो पांच जोड़ दो और दो पांच होते नहीं हैं। जब मैं दो और दो पांच जोड़ रहा हूं तब भी दो और दो चार ही हैं। यानी मेरे जोड़ने से कोई दो और दो पांच नहीं हो जाते। एक कमरे में कुर्सियां रखी हैं दो और दो, और मैं जोड़कर बाहर आता हूं और कहता हूं कि पाच हैं, तो भी कमरे में पांच कुर्सियां नहीं हो जातीं। कमरे में कुर्सियां चार ही होती हैं। भूल जोड़ की है। जोड़ की भूल, अस्तित्व की भूल नहीं बनती।

तो सांख्य का कहना है कि जो गलती है, वह अस्तित्व में नहीं है। जो गलती है, वह हमारी समझ में है। वह जोड़ की भूल है। ऐसा नहीं है कि जन्म और मृत्यु हैं। ऐसा हमें दिखाई पड़ रहा है कि हैं। हमारे दिखाई पड़ने से हो नहीं जातीं।

फिर कल मुझे पता चलता है कि नहीं, दो और दो पांच नहीं होते, दो और दो चार होते हैं। मैं फिर लौटकर कमरे में जाता हूं और मैं देखता हूं कि ठीक, दो और दो चार ही हैं। और मैं बाहर आकर कहता हूं कि जब गणित ठीक आ जाता है किसी को, तो कुर्सियां पांच नहीं रह जातीं, चार हो जाती हैं। ऐसा ही—ठीक ऐसा ही—ऐसा ही समझना है। जो भूल है, वह ज्ञान की भूल है, इरर आफ नोइंग। वह भूल एक्सिस्टेंशियल नहीं है, अस्तित्वगत नहीं है। क्योंकि अस्तित्वगत अगर भूल हो, तो सिर्फ जानने से नहीं मिट सकती है।

अगर कुर्सियां पांच ही हो गई हों, तो फिर मैं दो और दो चार कर लूं इससे चार नहीं हो जातीं। कुर्सियां दो और दो चार होने से चार तभी हो सकती हैं, जब वे चार रही ही हों उस समय भी, जब मैं पांच गिनता था। वह मेरे गिनने की भूल थी।

जीवन और मरण आत्मा का होता नहीं, प्रतीत होता है, एपियरेंस है, दिखाई पड़ता है, गणित की भूल है। मैंने पीछे आपसे बात कही, इसे थोड़ा और आगे ले जाना जरूरी है। हम दूसरे को मरते देख लेते हैं, तो सोचते हैं, मैं भी मरूंगा। यह इमिटेटिव मिसअंडरस्टैंडिग है। और चूंकि जिंदगी में हम सब इमिटेशन से सीखते हैं, नकल से सीखते हैं, तो मृत्यु भी नकल से सीख लेते हैं। यह नकल है। नकल चोरी है बिलकुल। जैसे कि बच्चे स्कूल में दूसरे की कापी में से

उतारकर उत्तर लिख लेते हैं। उनको हम चोर कहते हैं। हम सब चोर हैं, जिंदगी में हमारे अधिकतम अनुभव चोरी के हैं। मृत्यु जैसा बड़ा अनुभव भी चुराया हुआ है। किसी को मरते देखा, कहा कि अब हम भी मरेंगे।

आपने अपने को कभी मरते देखा है? किसी को मरते देखा; सोचा, हम भी मरेंगे। नकल कर ली। फिर रोज कोई न कोई मर रहा है—एक मरा, दो मरे, तीन मरे, चार मरे, पांच मरे। फिर पता चला कि सबको मरना ही पड़ता है। पहले जो भी हुए, सब मरे। तो फिर पक्का होता जाता है अनुमान, गणित तय होता जाता है कि नहीं, मरना ही है।

मृत्यु है, यह अनुभूत सत्य नहीं है। यह एक्सपीरिएंस्त थ नहीं है कि मृत्यु है। यह अनुमानजन्य, इनफरेंशियल है। यह चारों तरफ देख लिया कि ऐसा होता है, इसलिए मृत्यु है।

आपने अपना जन्म देखा? यह बड़े मजे की बात है, आप जन्मे और आपको अपने जन्म का भी पता नहीं? छोड़े, मृत्यु अभी आने वाली है, भविष्य में है, इसलिए भविष्य का अभी हम कैसे पक्का करें! लेकिन जन्म तो कम से कम अतीत में है। आप जन्मे हैं। आपको जन्म का भी पता नहीं है कि आप जन्मे हैं! बड़ी मजेदार बात है। मृत्यु का न पता हो, समझ में आता है। क्योंकि मृत्यु अभी भविष्य है, पता नहीं होगी कि नहीं होगी'। लेकिन जन्म तो हो चुका है। पर आपको जन्म का भी कोई पता नहीं। और आप ही जन्मे और आपको ही अपने जन्म का पता नहीं है!

असल में आपको अपना ही पता नहीं है, जन्म वगैरह का पता कैसे हो! इतनी बड़ी घटना जन्म की घट गई, और आपको पता नहीं है! असल में आपको जीवन की किसी घटना का—गहरी घटना का —कोई भी पता नहीं है। आपको तो जो सिखा दिया गया है, वही पता है। स्कूल में गणित सिखा दिया गया, मां—बाप ने भाषा सिखा दी, फिर धर्म—मंदिर में धर्म की किताब सिखा दी, फिर किसी ने हिंदू—मुसलमान सिखा दिया, फिर किसी ने कुछ और सिखा दिया—वह सब सीखकर खड़े हो गए हैं। मगर आपको जिंदगी का कुछ भी गहरा अनुभव नहीं है, जन्म तक का कोई अनुभव नहीं है!

तो ध्यान रहे, जब जन्म से गुजरकर आपको जन्म का अनुभव नहीं मिला, तो पक्का समझना कि मृत्यु से भी आप गुजर जाओगे और आपको अनुभव नहीं मिलेगा। क्योंकि वह भी इतनी ही गहरी घटना है, जितनी जन्म है। वह दरवाजा वही है, जन्म से आप आए थे, मृत्यु से आप लौटेंगे —दि सेम डोर। दरवाजा अलग नहीं है, दरवाजा वही है। इधर आए थे, उधर जाएंगे। और दरवाजे को देखने की आपकी आदत नहीं है। आख बंद करके निकल जाते हैं। अभी निकल आए हैं आख बंद करके, अब फिर आख बंद करके निकल जाएंगे।

तो ये जन्म और मृत्यु जन्म भी, लोग हमसे कहते हैं कि आपका हुआ। वह भी कथन है। मृत्यु भी हम देखते हैं कि होती है, वह अनुमान है। जन्म किसी ने बताया, मृत्यु का अनुमान हमने किया है। लेकिन न हमें जन्म का कोई पता है, न हमें मृत्यु का कोई पता है। तो ये जन्म और मृत्यु होते हैं, ये बड़े इमिटेटिव कनक्लजंस हैं; ये नकल से ली गई निष्पत्तिया हैं।

सांख्य कहता है कि काश! तुम एक बार जन्म लो जानते हुए। काश! तुम एक बार मरो जानते हुए। फिर तुम दुबारा न कहोगे कि जन्म और मरण होता है। और अभी मृत्यु को तो देर है, और जन्म हो चुका, लेकिन जीवित अभी आप हैं। सांख्य कहता है, अगर तुम जीवित रहो जानते हुए, तो भी छुटकारा हो जाएगा। छुटकारे का मतलब ही इतना है कि वह जो भ्रांति हो रही है, विचार से जो निष्कर्ष लिया जा रहा है, वह गलत सिद्ध होता है।

तो जो सांख्यबुद्धि को उपलब्ध हो जाते हैं, कृष्ण कहते हैं, अर्जुन, वे जन्म—मृत्यु से मुक्त हो जाते हैं। ठीक होता कहना कि वे कहते कि वे जन्म—मृत्यु की गलती से मुक्त हो जाते हैं। परमपद को उपलब्ध होते हैं।

वह परमपद कहां है? जब भी हम परमपद की बात सोचते हैं, तो कहीं ऊपर आकाश में खयाल आता है। क्योंकि पद जो हैं हमारे, वे जमीन से जितने ऊंचे होते जाते हैं, उतने बड़े होते जाते हैं।

पट्टाभि सीतारमैया ने एक संस्मरण लिखा है। लिखा है कि मद्रास में एक मजिस्ट्रेट था अंग्रेज। वह अपनी अदालत में एक ही कुर्सी रखता था, खुद के बैठने के लिए। बाकी कुर्सियां थीं, लेकिन वह बगल के कमरे में रखता था। नंबर डाल

रखे थे। क्योंकि वह कहता था, आदमी देखकर कुर्सी देनी चाहिए। तो एक नंबर का एक मोढ़ा था छोटा—सा, बिलकुल गरीब आदमी आ जाए—बहुत गरीब आ जाए, तब तो खड़े —खड़े चल जाए—बाकी थोड़ा, जिसको एकदम गरीब न भी कहा जा सके, उसको नंबर एक का मोढ़ा। फिर नंबर दो का मोढ़ा, फिर नंबर तीन की कुर्सी, फिर चार की—ऐसे सात नंबर की कुर्सियां थीं।

एक दिन एक आदमी आया—पट्टाभि सीतारमैया ने लिखा है—कि एक दिन बड़ी मुश्किल हो गई। एक बड़ा धोखे से भरा आदमी आ गया। आदमी आया तो मजिस्ट्रेट ने देखा उसको, तो सोचा कि खड़े —खड़े चल जाएगा।

सोचना पड़ता है, कौन आदमी आया! आपको भी सोचना पड़ता है, कहा बिठाएं! क्या करें! क्या न करें! आदमी देखकर जगह बनानी पड़ती है। आदमी के लिए कोई जगह नहीं बनाता, जैसा दिखाई पड़ता है, उसके लिए जगह बनानी पड़ती है।

पर जैसे ही पास आया और जैसे ही उसने ऊपर आख उठाई, तो देखा कि एक कीमती चश्मा लगाए हुए है। उसने कहा कि जाओ, नंबर एक; चपरासी को कहा कि नंबर एक। चपरासी भीतर भागा गया। वह का पास आकर खड़ा हुआ। जब उसने सिर ऊंचा किया—झुकी है कमर उसकी—तो देखा, गले में सोने की चेन है। तब तक मोढ़ा लिए चपरासी आता था। उसने कहा, रुक—रुक! नंबर दो ला। तब तक उस बूढे ने कोट उठाकर घड़ी देखी। तब तक चपरासी नंबर दो लाता था। मजिस्ट्रेट ने कहा, रुक—रुक।

उस बुढ़े के ने कहा, मैं बुढ़ा का आदमी हूं, जो आखिरी नंबर हो, वही बुला लो। क्योंकि अभी और भी बहुत बातें हैं। तुम्हें शायद पता नहीं कि सरकार ने मुझे राय बहादुर— की पदवी दी है। और तुम्हें शायद यह भी पता नहीं कि मैं यहां आया ही इसलिए हूं कि कुछ लाख रुपया सरकार को दान करना चाहता हूं। नंबर आखिरी कुर्सी जो हो, तू बुला ले। बार—बार चपरासी को दिक्कत दे रहे हो। और मैं बूढ़ा आदमी हूं।

तो हमारे पद जो हैं, वे जमीन से ऊंचे उठते हैं। ऐसा ऊपर उठते जाते हैं सिंहासन। तो उसी सिंहासन के आखिरी छोर पर कहीं आकाश में परमपद हमारे खयाल में है, कि परमपद जो है, वह कहीं समव्हेअर अप, ऊपर है।

जिस परमपद की कृष्ण बात कर रहे हैं, वह समव्हेअर इन— ऊपर की बात नहीं है वह, वह कहीं भीतर—उस जगह, जिसके और भीतर नहीं जाया जा सकता, उस जगह, जो आंतरिकता का अंत है। जो इनरमोस्ट कोर, वह जो भीतरी से भीतरी जगह है, वह जो भीतरी से भीतरी मंदिर है चेतना का, वहीं परमपद है। सांख्य को उपलब्ध व्यक्ति उस परम मंदिर में प्रविष्ट हो जाते हैं।

शेष फिर कल।

प्रवचन 15 : मोह-मुक्ति, आत्म-तृप्ति और प्रज्ञा की थिरता

ओशो – गीता-दर्शन – भाग एक

अध्याय—1-2 – प्रवचन 15 : मोह-मुक्ति, आत्म-तृप्ति और प्रज्ञा की थिरता

यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितश्ष्यिति।
तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च।।52।।

और हे अर्जुन, जिस काल में तेरी बुद्धि मोहरूय दलदल को बिलकुल तर जायेगी, तब तू सुनने योग्य और सुने न् के वैराग्य को प्राप्त होगा।

मोहरूपी कालिमा से जब बुद्धि जागेगी, तब वैराग्य फलित होता है। मोहरूपी कालिमा से! मनुष्य के आस—पास कौन—सा अंधकार है?

एक तो वह अंधकार है, जो दीयों के जलाने से मिट जाता है। धर्म से उस अंधकार का कोई भी संबंध नहीं है। वह हो तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता है, नहीं हो तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता है। फिर धर्म किस अंधकार को मिटाने के लिए चेष्टारत है?

एक और भी अंधकार है, जो मनुष्य के शरीर को नहीं घेरता, वरन मनुष्य की चेतना को घेर लेता है। एक और भी अंधकार है, जो मनुष्य की आत्मा के चारों तरफ घिर जाता है। उस अंधकार को कृष्ण कह रहे हैं, मोहरूपी कालिमा। तो अंधकार और मोह इन दो शब्दों को थोड़ा गहरे में समझना उपयोगी है।

अंधकार का लक्षण क्या है? अंधकार का लक्षण है कि दिखाई नहीं पड़ता जहा, जहां देखना खो जाता है, जहा देखना संभव नहीं हो पाता, जहा आंखों पर परदा पड़ जाता है —एक। दूसरा, जहां दिखाई न पड़ने से कोई मार्ग नहीं मालूम पड़ता, कहां जाएं! क्या करें! तीसरा, जहा दिखाई न पड़ने से प्रतिपल किसी भी चीज से टकरा जाने की संभावना हो जाती है। अंधकार हमारी दृष्टि का खो जाना है।

मोह में भी ऐसा ही घटित होता है। इसलिए मोह को अंधकार कहने की सार्थकता है। मोह में जो हम करते हैं, मोह में जो हम होते हैं, मोह में जैसे हम चलते हैं, मोह में जो भी हमसे निकलता है, वह ठीक ऐसा ही है, जैसे अंधेरे में कोई टटोलता हो। नहीं कुछ पता होता, क्या कर रहे हैं! नहीं कुछ पता होता, कौन हो रहा है! नहीं कुछ पता होता, कौन—सा रास्ता है! कौन — सा मार्ग है! आंखें नहीं होती हैं। मोह अंधा है। और मोह का अंधापन आध्यात्मिक अंधापन है, स्प्रिचुअल ब्लाइंडनेस है।

सुना है मैंने, एक आदमी के मकान में आग लग गई है। भीड़ इकट्ठी है। वह आदमी छाती पीटकर रो रहा है, चिल्ला रहा है स्वभावत:, उसके जीवनभर की सारी संपदा नष्ट हुई जा रही है जिसे उसने जीवन समझा है, वही नष्ट हुआ जा रहा है। जिसके आधार पर वह खड़ा था, वह आधार गिरा जा रहा है। जिसके आधार पर उसके मैं में शक्ति थी, बल था; जिसके आधार पर — कुछ था, समबडी था, वह सब बिखरा जा रहा है।

जान सोलिज ने एक किताब लिखी है, अरेस्ट्रोस। उसमें कुछ कीमती वचन लिखे हैं। उसमें एक कीमती वचन है, नोबडी वांट्स टु बी नोबडी। नोबडी वांट्स टु बी नोबडी। ठीक ठीक अनुवाद मुश्किल है। कोई भी नहीं चाहता कि ना—कुछ हो। सभी चाहते हैं समबडी हों, कुछ हों।

उसकी समबडीनेस बिखरी जा रही है, उस आदमी की। वह कुछ था इस मकान के होने से। और जिनका भी कुछ होना किसी चीज के होने पर निर्भर है, किसी दिन ऐसा ही रुदन, ऐसी ही पीड़ा उन्हें घेर लेती है। क्योंकि वे सब जो बाहर की संपदा पर टिके हैं किसी दिन बिखरते हैं, क्योंकि बाहर कुछ भी टिकने वाला नहीं है। वह उसी के मकान में आग लग गई हो, ऐसा नहीं, सभी के बाहर के मकानों में आग लग जाती है। असल में बाहर जो भी है वह आग पर चढा हुआ ही है।

तो छाती पीटता है, रोता है। स्वाभाविक है। फिर पड़ोस में से कोई दौड़ा हुआ आता है और कहता है, व्यर्थ रो रहे हो तुम। तुम्हारे लड़के ने मकान तो कल बेच दिया। उसका बयाना भी हो गया है। क्या तुम्हें पता नहीं? बस, आंसू तिरोहित हो गए। उस आदमी का छाती पीटना बंद हो गया। जहा रोना था, वहां वह हंसने लगा, मुस्कुराने लगा। सब एकदम बदल गया।

अभी भी आग लगी है, मकान जल रहा है; वैसा ही जैसा क्षणभर पहले जलता था। फर्क कहां पड़ गया? मकान अब मेरा नहीं रहा, अपना नहीं रहा। मोह का जो जोड़ था मकान से वह टूट गया है। अब भी मकान में आग है, लेकिन अब आंख में आंसू —नहीं हैं। आंख में जो आंसू थे, वे मकान के जलने की वजह से थे? मकान अब भी जल रहा है। आंख में जो आंसू थे वे मेरे के की वजह से थे। मेरा अब नहीं जल रहा है, आंखें साफ हो हैं। अब आंसुओ की परत आंख पर नहीं है। अब उस आदमी ठीक—ठीक दिखाई पड़ रहा है। अभी उसे कुछ भी दिखाई नहीं पड़ रहा था।

उधर आग की लपटें थीं, तो इधर आंख में भी तो आंसू थे सब धुंधला था, सब अंधेरा था। अब तक उसके हाथ—पैर कंपते थे, अब हाथ—पैर का कंपन चला गया। अब वह आदमी ठीक वैसा ही हो गया है, जैसे और लोग हैं। और कह रहा है, ठीक, जो हो गया, ठीक है।

तभी उसका लड़का दौड़ा हुआ आता है। और वह कहता है, बात तो हुई थी, लेकिन बयाना नहीं हो पाया। बेचने की बात चली थी, लेकिन हो नहीं पाया। और अब इस जले हुए मकान को कौन खरीदने वाला है!

फिर आंसू वापस लौट आए; फिर छाती पीटना शुरू हो गया। मकान अब भी वैसा ही जल रहा है! मकान को कुछ भी पता नहीं चला कि इस बीच सब बदल गया है। सब फिर बदल गया है। मोह फिर लौट आया है। आंखें फिर अंधी हो गई हैं। फिर मेरा जलने लगा है।

इस जीवन में मोह ही जलता है, मोह ही चिंतित होता है, मोह ही तनाव से भरता है, मोह ही संताप को उपलब्ध होता है, मोह ही भटकाता है, मोह ही गिराता है। मोह ही जीवन का दुख है।

इसे कृष्य मोह कह रहे हैं। बुद्ध ने इसे तृष्णा कहा है, तनहा कहा है। इसे कोई और नाम दें, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। इसके भीतरी रहस्य में एक गुण है, और वह यह कि जो मेरा नहीं है, वह मेरा मालूम होने लगता है। मोह की जो हिप्नोसिस है, मोह का जो सम्मोहन है, वहा जो मेरा नहीं है, वह मेरा मालूम होने लगता है, और जो मेरा है, उसका कुछ पता ही नहीं चलता।

मोह के अंधकार का जो गुणधर्म है, वह यह है कि जो मेरा नहीं है, वह मेरा मालूम होता है। और जो मेरा है, वह मेरा नहीं मालूम होता है। एक रिवर्सन, एक विपर्यय हो जाता है। चीजें सब उलटी हो जाती हैं।

मकान मेरा कैसे हो सकता है? मैं नहीं था, तब भी था। मैं नहीं रहूंगा, तब भी रहेगा। जमीन मेरी कैसे हो सकती है? मैं नहीं था, तब भी थी। मैं नहीं रहूंगा, तब भी होगी। और जमीन को बिलकुल पता नहीं है कि मेरी है। और मेरा मोह एक सम्मोहन का जाल फैला लेता है—मेरा बेटा है, मेरी पत्नी है, मेरे पिता हैं, मेरा धर्म है, मेरा धर्मग्रंथ है, मेरा मंदिर है, मेरी मस्जिद है—मैं के आस—पास एक बड़ा जाल खड़ा हो जाता है। वह जो मैं का फैलाव है, वही मोह का अंधकार है।

असल में मैं जो है, उसे ठीक ऐसा समझें कि वह अंधेरे का दीया है। जैसे दीए से रोशनी गिरती है, ऐसे मैं से अंधकार गिरता है। जैसे दीया जलता है, तो प्रकाश हो जाता है, ऐसे मैं जलता है, तो अंधकार हो जाता है। जितना सघन मैं, उतनी डार्कनेस, उतना निबिड अंधकार चारों ओर फैलता चला जाता है। जो आदमी मैं में ही जीता है, वह अंधकार में जीता है—मोह—निशा में।

तो कृष्ण कहते हैं, इस मोह की कालिमा से जो मुक्त हो जाता है, वैसा व्यक्ति वैराग्य को उपलब्ध होता है। लेकिन कृष्ण जिसे वैराग्य कहते हैं, हम आमतौर से उसे वैराग्य नहीं कहते हैं। इसलिए इस बात को भी ठीक से समझ लेना जरूरी है।

हम तो वैराग्य जिसे कहते हैं, वह राग की विपरीतता को कहते हैं। विपरीत राग को कहते हैं वैराग्य, हम जिसे वैराग्य कहते हैं। मकान मेरा है, ऐसा जानना राग है—हमारी बुद्धि में। मकान मेरा नहीं है, ऐसा जानना वैराग्य है—हमारी बुद्धि में। लेकिन मेरा है या मेरा नहीं है, ये दोनों एक ही चीज के दो छोर हैं। कृष्ण इसे वैराग्य नहीं कहते। यह विपरीत राग है। यह राग से मुक्ति नहीं है। नहीं, मेरा नहीं है।

रामतीर्थ अमेरिका से वापस लौटे, टेहरी गढ़वाल में मेहमान थे। उनकी पत्नी मिलने आई। खिड़की से देखा पत्नी को आते हुए, तो खिड़की बंद करके द्वार बंद कर लिया। एक मित्र साथ ठहरे हुए थे, सरदार पूर्ण सिंह। उन्होंने कहा, दरवाजा क्यों बंद करते हैं? क्योंकि मैंने आपको. किसी भी स्त्री के लिए कभी दरवाजा बंद करते नहीं देखा! पूर्ण सिंह जानते हैं कि जो आ रही है, उनकी पत्नी है—या थी। रामतीर्थ ने कहा, वह मेरी कोई भी नहीं है। पर पूर्ण सिंह ने कहा कि और भी जो स्त्रियां आती हैं, वे भी आपकी कोई नहीं हैं। लेकिन उन और कोई नहीं स्त्रियों के लिए कभी द्वार बंद नहीं किया! नहीं, यह स्त्री जरूर आपकी कोई है—विशेष आयोजन करते हैं, द्वार बंद करते हैं! रामतीर्थ ने कहा, वह मेरी पत्नी थी; लेकिन मेरी कोई पत्नी नहीं है। पूर्ण सिंह ने कहा, अगर वह पत्नी नहीं है, तो उसके साथ वैसा ही व्यवहार करें, जैसा किसी भी स्त्री के साथ करते हैं। द्वार खोलें!

यह व्यवहार विशेष है, यह विपरीत राग का व्यवहार है। एक भ्रम था कि मेरी पत्नी है, अब एक भ्रम है कि मेरी पत्नी नहीं है। लेकिन अगर पहला भ्रम गलत था, तो दूसरा भ्रम सही कैसे हो सकता है? वह पहले पर ही खड़ा है, वह पहले का ही एक्सटेंशन है; वह उसी का विस्तार है।

पहला भ्रम तो हमारी समझ में आ जाता है। दूसरा भ्रम विरागी का भ्रम है—संन्यासी का, त्यागी का—वह जरा हमारी समझ में मुश्किल से आता है। लेकिन साफ है बात कि यह पत्नी विशेष है, यह साधारण नहीं है। इस स्त्री के प्रति रामतीर्थ की कोई दृष्टि है। किसी दिन रामतीर्थ ने इस स्त्री के लिए उठकर द्वार खोला होता, अब उठकर द्वार बंद कर रहे हैं। लेकिन इस स्त्री के लिए उठते जरूर हैं। किसी दिन द्वार खोलने उठे होते, अपनी पत्नी है; आज द्वार बंद करने उठे हैं, अपनी पत्नी नहीं है। लेकिन द्वार तक रामतीर्थ को उठना पड़ता है, वैराग्य नहीं है।

पूर्ण सिंह ने कहा कि अगर आप द्वार नहीं खोलते हैं, तो मैं नमस्कार करता हूं। मेरे लिए आपका सब ब्रह्मज्ञान व्यर्थ हो गया। मैं जाता हूं। यह कैसा ब्रह्मज्ञान है! क्योंकि किसी स्त्री से आपने नहीं कहा अब तक रुकने के लिए। सभी स्त्रियों में ब्रह्म दिखाई पड़ा। आज इस स्त्री में कौन—सा कसूर हो गया है कि ब्रह्म नहीं है!

रामतीर्थ को भी चुभी बात; खयाल में पड़ी। द्वार तो खोल दिया। लेकिन विचारशील व्यक्ति थे। यह तो दिखाई पड़ गया कि वैराग्य फलित नहीं हुआ है। क्योंकि वैराग्य का अर्थ ही यह है कि जहां न राग रहा हो, न विराग रहा हो। वैराग्य भी न रहा हो, वहीं वैराग्य है। मोह की निशा पूरी ही खो गई हो। मेरा खो गया हो, मेरा नहीं है, यह भी खो गया हो। जहां वैराग्य भी नहीं है, वहीं वैराग्य है।

रामतीर्थ को भी दिखाई तो पड़ गया। समझ मै तो आ गया। उसी दिन उन्होंने गेरुए वस्त्र छोड़ दिए। यह जानकर आपको हैरानी होगी कि रामतीर्थ ने जिस दिन जल—समाधि ली, उस दिन वे गेरुए वस्त्र नहीं पहने हुए थे। उस दिन उन्होंने साधारण वस्त्र पहन लिए थे। क्योंकि यह उनको भी यह साफ हो गया था कि यह वैराग्य नहीं है। वैराग्य का अर्थ, जहां न राग रह गया, न विराग रह गया। न जहां किसी चीज का आकर्षण है, न विकर्षण है, न अट्रैक्यान है, न रिपल्शन है। जहां न किसी चीज के प्रति खिंचाव है, न विपरीत भागना है। न जहां किसी चीज का बुलावा है, न विरोध है। जहां व्यक्ति थिर हुआ, सम हुआ; जहा पक्ष और विपक्ष एक से हो गए, वहा वैराग्य फलित होता है।

लेकिन इसे विराग क्यों कहते हैं? वैराग्य क्यों कहते हैं? क्योंकि जहां वैराग्य भी नहीं है, वहा वैराग्य क्यों कहते हैं? कोई उपाय नहीं है। शब्द की मजबूरी है, और कोई बात नहीं है। आदमी के पास सभी शब्द द्वंद्वात्मक हैं, डायलेक्टिकल हैं। आदमी की भाषा में ऐसा शब्द नहीं है जो

नान—डायलेक्टिकल हो, द्वंद्वात्मक न हो। मनुष्य ने जो भाषा बनाई है, वह मन से बनाई है। मन द्वंद्व है। इसलिए मनुष्य जो भी भाषा बनाता है, उसमें विपरीत शब्दों में भाषा को निर्मित करता है।

बड़े मजे की बात है कि हमारी भाषा बन ही नहीं सकती विपरीत के बिना। क्योंकि बिना विपरीत के हम परिभाषा नहीं कर सकते, डेफिनीशन नहीं कर सकते। अगर कोई आपसे पूछे कि अंधेरा यानी क्या? तो आप कहते हैं, जो प्रकाश नहीं है। बड़ी सर्कुलर डेफिनीशन है। कोई पूछे, प्रकाश यानी क्या? तो आप कहते हैं, जो अंधेरा नहीं है। न आपको अंधेरे का पता है कि क्या है, न प्रकाश का पता है कि क्या है। अंधेरे को जब पूछते हैं, क्या है? तो कह देते हैं, प्रकाश नहीं है। और जब पूछते हैं, प्रकाश क्या है? तो कह देते हैं, अंधेरा नहीं है। यह कोई परिभाषा हुई? यह कोई डेफिनीशन हुई? परिभाषा तो तभी हो सकती है, जब कम से कम एक का तो पता हो!

मैंने सुना है, एक आदमी एक अजनबी गांव में गया। उसने पूछा कि अ नाम का आदमी कहां रहता है? तो लोगों ने कहा, ब नाम के आदमी के पड़ोस में। पर उसने कहा, मुझे ब का भी कोई पता नहीं, ब कहां रहता है? उन्होंने कहा, अ के पड़ोस में। पर उसने कहा कि इससे कुछ हल नहीं होता, क्योंकि न मुझे अ का पता है, न ब का पता है। मुझे ठीक—ठीक बताओ, अ कहा रहता है? उन्होंने कहा, ब के पड़ोस में। लेकिन ब कहां रहता है? उन्होंने कहा, अ के पड़ोस में।

आदमी से पूछा, चेतना क्या है? वह कहता है, पदार्थ नहीं। उससे पूछो, पदार्थ क्या है? वह कहता है, चेतना नहीं। माइंड क्या है? मैटर नहीं। मैटर क्या है? माइंड नहीं। बड़े से बड़ा दार्शनिक भी इसको परिभाषा कहता है, इसको डेफिनीशन कहता है। यह डेफिनीशन हुई? धोखा हुआ, डिसेपान हुआ—परिभाषा न हुई। क्योंकि इसमें से एक का भी पता नहीं है।

लेकिन आदमी को कुछ भी पता नहीं है, काम तो चलाना पड़ेगा। इसलिए आदमी बेईमान शब्दों को रखकर काम चलाता है। उसके सब शब्द डिसेप्टिव हैं। उसके किसी शब्द में कोई भी अर्थ नहीं है। क्योंकि अपने शब्द में वह जिस शब्द से अर्थ बताता है, उस शब्द में भी उसको कोई अर्थ नहीं है। उसकी सब परिभाषाएं सर्कुलर हैं, वर्तुलाकार हैं। वह कहता है, बाएं यानी क्या! वह कहता है, दाएं जो नहीं है। और दाएं? वह कहता है, बाएं नहीं। लेकिन इनमें से किसी का पता है कि बायां क्या है?

यह आदमी की भाषा डायलेक्टिकल है। डायलेक्टिकल का मतलब यह कि जब आप पूछें अ क्या, तो वह ब की बात करता है; जब पूछें ब क्या, तो वह अ की बात करने लगता है। इससे भ्रम पैदा होता है कि सब पता है। पता कुछ भी नहीं है, सिर्फ शब्द पता हैं। लेकिन बिना शब्दों के काम नहीं चल सकता। राग है तो विराग है। लेकिन तीसरा शब्द कहां से लाएं? और तीसरा शब्द ही सत्य है। वह कहा से लाएं?

महावीर कहते हैं, वीतराग। लेकिन उससे भी कोई फर्क नहीं पड़ता। वीतराग का भी मतलब राग के पार हो जाना, बियांड अटैचमेंट होता है। विराग का भी मतलब वही होता है कि राग के बाहर हो जाना। कोई फर्क नहीं पड़ता। हम कोई भी शब्द बनाएंगे, वह किसी शब्द के विपरीत होगा। वह तीसरा नहीं होता, वह हमेशा दूसरा ही होता है। और सत्य तीसरा है। इसलिए दूसरे शब्द को कामचलाऊ रूप से उपयोग करते हैं। कृष्ण भी कामचलाऊ उपयोग कर रहे हैं।

इसलिए वैराग्य का अर्थ राग की विपरीतता मत समझ लेना। वैराग्य का अर्थ है, द्वंद्व के पार, राग और विराग के पार जो हो गया, जिसे न अब कोई चीज आकर्षित करती है, न विकर्षित करती है। क्योंकि विकर्षण आकर्षण का ही शीर्षासन है। क्योंकि विकर्षण आकर्षण का ही शीर्षासन है। वह सिर के बल खड़ा हो गया आकर्षण है। और मोह की अंध—निशा टूटे तो। शर्त साफ है। वैराग्य को कौन उपलब्ध होता है? मोह की अंध—निशा टूटे तो, मोह की कालिमा बिखरे तो।

लेकिन हम क्या करते हैं? हम मोह की कालिमा नहीं तोड़ते, मोह के खिलाफ अमोह को साधने लगते हैं। हम मोह की कालिमा नहीं तोड़ते, मोह के खिलाफ, विरोध में अमोह को साधने लगते हैं। हम कहते हैं, घर में मोह है, तो घर छोड दो, जंगल चले जाएं। लेकिन जिस आदमी में मोह था, आदमी में था कि घर में था?

अगर घर में मोह था, तो आदमी चला जाए तो मोह के बाहर हो जाएगा। अगर घर मोह था। लेकिन घर को कोई भी मोह नहीं है आपसे, मोह आपको है घर से। और आप भाग रहे हैं और घर वहीं का वहीं है। आप जहां भी जाएंगे, मोह

वहीं पहुंच जाएगा। वह आपके साथ चलेगा, वह आपकी छाया है। फिर आश्रम से मोह हो जाएगा—मेरा आश्रम। क्या फर्क पड़ता है? मेरा घर, मेरा आश्रम—क्या फर्क पड़ता है? मेरा बेटा, मेरा शिष्य —क्या फर्क पडता है? मोह नया इंतजाम कर लेगा, मोह नई गृहस्थी बसा लेगा।

यह बड़ी मजेदार बात है कि गृह का अर्थ घर से नहीं है। गृह का अर्थ उस मोह से है, जो घर को बसा लेता है, दैट व्हिच बिल्ट्स दि होम। होम से मतलब नहीं है गृह का, उससे मतलब है, जो घर को बनाता है। वह कहीं भी घर को बना लेगा। वह झाडू के नीचे बैठेंगे, तो मेरा हो जाएगा।. महल होगा, तो मेरा होगा। लंगोटी होगी, तो मेरी हो जाएगी। और मेरे को कोई दिक्कत नहीं आती कि बडा मकान हो कि छोटा हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। मेरे का आयतन कितना है, इससे मेरे के होने में कोई फर्क नहीं पड़ता। मेरा, आयतन पर निर्भर नहीं है।

इसे ऐसा समझें, एक आदमी दो लाख रुपए की चोरी करे और एक आदमी दो पैसे की चोरी करे, तो क्या आप समझते हैं कि दो पैसे की चोरी छोटी चोरी है और दो लाख रुपए की चोरी बड़ी चोरी है? आयतन बड़ा है, चोरी बराबर है। दो लाख की चोरी उतनी ही चोरी है, जितनी दो पैसे की चोरी है। क्योंकि चोरी करने में जो भी घटना घटती है, वह दो पैसे में भी घट जाती है, दो लाख में भी घट जाती है। चोर तो आदमी हो ही जाता है दो पैसे में उतना ही, जितना दो लाख में। ही, अदालत दो पैसे के चोर को छोटा चोर कहे, दो लाख के चोर को बड़ा चोर कहे, सजा कम—ज्यादा करे, वह बात अलग है। क्योंकि अदालत को चोरी से मतलब नहीं है, दो लाख से मतलब है। अदालत क्वांटिटी पर जीती है।

धर्म का क्वांटिटी से, परिमाण से कोई संबंध नहीं। धर्म का क्वांलिटी से संबंध है, गुण से संबंध है। धर्म कहेगा, दो पैसे की चोरी या दो लाख की चोरी, बराबर चोरी है। इसमें कोई फर्क नहीं। गणित में होगा फर्क, धर्म में कोई भी फर्क नहीं है। धर्म के लिए चोरी हो गई। आदमी चोर है।

सच तो यह है कि धर्म को और थोड़ा गहरे में उतरें, तो अगर दो लाख और दो पैसे की चोरी में कोई फर्क नहीं है, तो दो लाख की चोरी और चोरी करने के विचार में भी कोई फर्क हो सकता है? धर्म के लिए कोई फर्क नहीं है। चोरी की या चोरी करने का विचार किया, कोई अंतर नहीं है, बात घटित हो गई। हम जो करते हैं, वह भी हमारे जीवन का हिस्सा हो जाता है। जो हम करने की सोचते हैं, वह भी हमारे जीवन का हिस्सा हो जाता है।

यह जान सोलिज की जिस किताब का मैंने नाम लिया अरेस्ट्रोस, उसमें उसका एक वचन और है कि आदमी अपने कर्मों से ही नहीं बंधता—सिर्फ कर्मों से नहीं बंधता—बल्कि जो उसने करना चाहा और नहीं किया, उससे भी बंध जाता है।

हम सिर्फ चोरी से ही नहीं बंधते—की गई चोरी से—नहीं की गई चोरी से, सोची गई चोरी से भी उतने ही बंध जाते हैं। की गई चोरी से दूसरे को भी पता चलता है, न की गई चोरी से जगत को पता नहीं चलता, लेकिन परमात्मा को पूरा पता चलता है। क्योंकि परमात्मा से हमारे संबंध भाव के हैं, कृत्य के नहीं। करने के नहीं हैं हमारे संबंध परमात्मा से, करने के संबंध जगत से हैं, समाज से हैं, बाहर से हैं। होने के संबंध हैं हमारे परमात्मा से—बीइंग के, डूइंग के नहीं।

और होने में क्या फर्क पड़ता है? मैंने चोरी की कल्पना की या मैंने चोरी की, इससे होने में कोई फर्क नहीं पडता, चोर मैं हो गया परमात्मा की तरफ तो चोरी की खबर पहुंच गई कि यह आदमी चोर है। हां, जगत तक खबर नहीं पहुंची। जगत तक खबर पहुंचने में देर लगेगी। जगत तक खबर पहुंचने में चोरी का विचार ही नहीं, चोरी को हाथ का भी सहयोग लेना होगा। जगत तक पहुंचने में भाव ही नहीं, पौदगलिक कृत्य, मैटीरियल एक्ट भी करना होगा। इससे चोरी बढ़ती नहीं, सिर्फ चोरी प्रकट होती है; अनमैनिफेस्ट चोरी मैनिफेस्ट होती है; अव्यक्त चोरी व्यक्त होती है। बस और कोई फर्क नहीं पडता। लेकिन अव्यक्त चोरी उतनी ही चोरी है, जितनी व्यक्त चोरी है, जहा तक धर्म का संबंध है।

तो यह सवाल नहीं है कि आपके पास कितना बड़ा मकान है, कि मकान नहीं है, झोपड़ा है। यह सवाल नहीं है कि आपके पास करोड़ों रुपए हैं, कि कौड़िया हैं। यह सवाल नहीं है। सवाल यह है कि आपके पास मेरा कहने का भाव है या नहीं है।

वही मेरे का भाव मोह की निशा है, मोह का अंधकार है। जब तक आप कह सकते हैं मेरा, चाहे यह मेरा किसी भी चीज से जुड़ता हों—मेरा धर्म—फर्क नहीं पड़ता, मोह की निशा जारी है। आप कह सकते हैं हिंदू मुसलमान मेरा, कुरान, बाइबिल, गीता मेरी, मंदिर—मस्जिद मेरा।

हम अजीब लोग हैं। सारी दुनिया के धर्म चिल्लाते हैं कि जिसे परमात्मा को पाना हो, उसे मेरे को छोड़ना पड़ेगा। और हम इतने कुशल हैं कि हम परमात्मा को भी मेरा बना लेते हैं कि मेरा! वह परमात्मा तेरा, यह परमात्मा मेरा।

मैंने सुना है कि किसी गाव में एक बहुत मजेदार घटना घटी। गणेशोत्सव था और गणेश का जुलूस निकल रहा था। लेकिन पूरे गांव के लोगों के हर मोहल्ले के गणेश होते थे। अब गणेश हर मोहल्ले के होते, कोई ब्राह्मणों का गणेश होता, कोई भंगियों का गणेश होता, कोई चमारों का गणेश होता, कोई लोहारों का, कोई तेलियों का। लेकिन नियम था, डिसिप्लिन थी गणेशों की भी एक। और वह यह थी कि ब्राह्मणों का गणेश पहले चलता, फिर उसके बाद किसी का, फिर किसी का; ऐसी प्रोसेशन में व्यवस्था थी।

लेकिन एक वर्ष ऐसा हुआ कि ब्राह्मणों के गणेश जरा समय से देर से पहुंचे। ब्राह्मणों के गणेश थे; समय में जरा देर दिखानी ही चाहिए! आदमी के बड़े होने का पता ही चलता है कि वह समय से जरा देर से पहुंचे। जितना बड़ा नेता, उतनी देर से पहुंचता है। जरा देर से पहुंचे ब्राह्मणों के गणेश, और तेलियों के गणेश जरा पहले पहुंच गए। गरीब गणेश थे, वह जरा पहले पहुंच गए, समय से पहुंच गए कि कहीं जुलूस न निकल जाए। क्योंकि तेलियों के गणेश के लिए कोई जुलूस रुकेगा नहीं। उनको तो समय पर पहुंचना ही चाहिए, वे समय पर पहुंचे।

फिर समय से बहुत देर हो गई, जुलूस निकालना जरूरी था, रात हुई जाती थी, तो तेलियों के गणेश ही आगे हो गए। पीछे से आए ब्राह्मणों के गणेश! तो ब्राह्मणों ने कहा, हटाओ तेलियों के गणेश को! तेलियों का गणेश और आगे? यह कभी नहीं हो सकता। बेचारे तेलियों के गणेश को पीछे हटना पड़ा।

हिंदू के भी देवता हैं, मुसलमान के भी। हिंदुओं में भी हिंदुओं के हजार देवता हैं। एक देवता भी तेलियों और ब्राह्मणों का होकर, अलग हो जाता है। भगवान मेरे को छोड़ने से मिलता है। और हम इतने कुशल हैं कि भगवान को भी मेरे की सीमाओं में बांधकर खड़ा कर देते हैं। मंदिर जलता है, तो किसी मुसलमान को पीड़ा नहीं होती, खुशी होती है। मस्जिद जलती है, तो किसी हिंदू को पीडा नहीं होती; खुशी होती है। और हर हालत में भगवान ही जलता है। लेकिन मेरे की वजह से दिखाई नहीं पड़ता। मेरा अंधा कर जाता है। वह मेरा अंधकार है।

किसी भी तरह के मेरे का भाव मोह की निशा है। इसके प्रति जागना है, भागना नहीं है। भागे कि मैं की विपरीतता शुरू हुई, कि फिर मैं कहीं और निर्माण होगा। फिर वह वहा जाकर अपने को निर्मित कर लेगा।

मैं जो है, बड़ी क्रिएटिव फोर्स है, मैं जो है, बड़ी सृजनात्मक शक्ति है। वास्तविक नहीं, स्वप्न का सृजन करती है, ड्रीम क्रिएटिंग। स्वप्न का निर्माण करती है, लेकिन करती है। बहुत हिप्नोटिक है। जहां भी खड़ी हो जाती है, वहां एक संसार बन जाता है।

सच तो यह है कि मेरे के कारण ही संसार है। जिस दिन मेरा नहीं है, उस दिन संसार कहीं भी नहीं है। मेरे के कारण ही गृह है, गृहस्थी है। जिस दिन मेरा नहीं है, उस दिन कहीं कोई गृह नहीं है, कहीं कोई गृहस्थी नहीं है। संन्यासी वह नहीं है, जो घर छोड्कर भाग गया; संन्यासी वह है, जिसके भीतर घर को बनाने वाला बिखर गया। जिसके भीतर से वह निर्माण करने वाली मोह की जो तंद्रा थी, वह खो गई है।

इसे कृष्ण कहते हैं, इस मोह की निशा को जो छोड़ देता है और जिसकी बुद्धि वैराग्य को उपलब्ध हो जाती है, उसके जीवन में, उसके जीवन में फलित होता है—कहें उसे मोक्ष, कहें उसे ज्ञान, कहें उसे आनंद, कहें उसे परमात्मा, कहें उसे ब्रह्म, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। वे सिर्फ नामों के भेद हैं।

श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला ।

समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि ।।53।।

और जब तेरी अनेक प्रकार के सिद्धांतों को सुनने से विचलित हुई बुद्धि परमात्मा के स्वरूप में अचल और स्थिर ठहर जाएगी, तब तू समत्वरूप योग को प्राप्त होगा।

जैसी बुद्धि है, निश्चल नहीं है। जैसी बुद्धि है, दृढ़ नहीं है। जैसी बुद्धि है, वेवरिंग, कंपित, कंपती हुई, लहराती हुई है। जैसी बुद्धि है वह ऐसी है, जैसे तूफान और आधी में दीए की ज्योति होती है। एक क्षण भी एक जगह नहीं, एक क्षण में भी अनेक जगह। क्षण के शुरू में कहीं होती है, तो क्षण के अंत में कहीं। एक क्षण को भी आश्वस्त नहीं कि बचेगी, बुझती—जलती मालूम पड़ती है। झोंके हवा के— और ज्योति अब गई, अब गई, ऐसी ही होती रहती है।

कीर्कगार्ड ने मनुष्य को कहा है, ए ट्रेंबलिग, एक कंपन। पूरे समय—जन्म से लेकर मृत्यु तक—एक कंपन, जहां सब कंप रहा है, जहां सब भूकंप है। जहां भीतर कोई थिरता नहीं, कोई दृढ़ता नहीं। जो हम बाहर से चेहरे बनाए हुए हैं, वे झूठे हैं। हमारे बाहर के चेहरे ऐसे लगते हैं, बड़े अकंप हैं। सचाई वैसी नहीं है; भीतर सब कंपता हुआ है। बहादुर से बहादुर आदमी भीतर भय से कंप रहा है। बहादुर से बहादुर आदमी भीतर भय से कंप रहा है।

स्टैलिन था। नाम ही उसको स्टैलिन इसलिए दिया—मैन आफ स्टील, लौहपुरुष। नाम नहीं है उसका असली वह, दिया हुआ नाम है—लौहपुरुष, स्टैलिन, स्टील का आदमी। लेकिन खुश्चेव ने अभी संस्मरण लिखे हैं। तो उसमें लिखा है कि वह इतना भयभीत आदमी था, जिसका कोई हिसाब नहीं। और एक दिन तो खुश्चेव से उसने कहा कि अब तक तो मैं दूसरों से डरता था, अब तो मैं अपने से भी डरने लगा हूं। डर भारी था।

स्टैलिन कभी भी भोजन नहीं कर सकता था सीधा, जब तक कि दो—चार को खिलाकर न देख ले। अपनी लड़की पर भी भरोसा नहीं था, कि जो खाना बना है, उसमें जहर तो नहीं है! खुश्चेव ने लिखा है, हम सब को उसका भोजन पहले चखना पड़ता था। हम भी कंपते हुए चखते थे कि जिससे स्टैलिन घबड़ा रहा है, लौहपुरुष, वह हमकी चखना पड़ रहा है! लेकिन मजबूरी थी। पहले चार को भोजन करवा लेता सामने बिठाकर। जब देख लेता कि चारों जिंदा हैं, तब भोजन करता। भोजन करना भी निश्चितता न रही।

घर से बाहर नहीं जाता था। समझा तो यह जाता है कि उसने एक डबल आदमी रख छोड़ा था, अपनी शकल का एक आदमी और रख छोड़ा था, जो सामूहिक जलसों में सम्मिलित होता था। हिटलर ने भी एक डबल रख छोड़ा था। सामूहिक जलसे में कहां—कब गोली लग जाएगी! सब इंतजाम है, फिर भी डर है। इंतजाम भारी था। स्टैलिन और हिटलर के पास जैसा इंतजाम था, ऐसा पृथ्वी पर किसी आदमी के पास कभी नहीं रहा। एक—एक आदमी की तलाशी ले ली जाती थी। हजारों सैनिकों के बीच में थे। सब तरह का इंतजाम था। लेकिन फिर भी आखिरी इंतजाम यह था कि जो आदमी सलामी ले रहा है जनता की, वह असली स्टैलिन नहीं है। वह एक नकली अभिनेता है, जो स्टैलिन का काम कर रहा है। स्टैलिन तो अपने घर में बैठा हुआ देख रहा है, खबर सुन रहा है कि क्या हो रहा है।

कैसी विडंबना है कि स्टैलिन और हिटलर जैसे आदमी इसी यश को पाने के लिए इतना श्रम करते हैं! और फिर कोई अभिनेता नमस्कार लेता है जाकर। पत्नी को भी कमरे में सुला नहीं सकते। क्योंकि रात कब गरदन दबा देगी, कुछ पता नहीं।

खूब स्टील के आदमी हैं! तो घास—फूस का आदमी कैसा होता है 2: भूसे से भरा आदमी कैसा होता है? और अगर स्टैलिन इतने भूसे से भरे हैं, तो हमारी क्या हालत होगी? हम तो स्टैलिन नहीं हैं, हम तो स्टील के आदमी नहीं हैं। स्टील के आदमी की यह हालत हो, तो हमारी क्या हालत होगी?

नहीं, एक चेहरा, एक मास्क, एक मुखौटा है, जो ऊपर से बिलकुल थिर है। भीतर असली चेहरा पूरे वक्त कैप रहा है। वहां कंपन ही चल रहा है। वहा बहादुर से बहादुर आदमी भीतर भयभीत है। वहा तथाकथित ज्ञानी से ज्ञानी, भीतर गहरे में अज्ञान से कैप रहा है। यहां वह कह रहा है कि मुझे पता है, ब्रह्म है। और वहां भीतर वह जान रहा है, मुझे कुछ भी पता नहीं। यह भी पता नहीं है कि मैं भी हूं। बाहर वह दिखला रहा है अधिकार, कि मुझे मालूम है। भीतर

उसे कुछ भी मालूम नहीं है। भीतर अज्ञान खाए जा रहा है। बाहर से वह कह रहा है, आत्मा अमर है। और भीतर मौत मुंह बाए मालूम पड़ती है।

ऐसी जो हमारी बुद्धि है, जो दृढ़ नहीं है। लेकिन दृढ़ का क्या मतलब है? फिर वही कठिनाई है शब्दों की। दृढ़ का क्या मतलब है ई जिसको हम दृढ़ आदमी कहते हैं, क्या उसके भीतर कंपन नहीं होता? असल में जितनी दृढ़ता आदमी बाहर से दिखाता है, उतना ही भीतर कंपित होता है। असल में दृढ़ता जो है, वह सेफ्टी मेजर है, वह भीतर के कंपन को झुठलाने के लिए आयोजन है।

एडलर ने इस संबंध में बडी मेहनत की है। शायद मनुष्य जाति के इतिहास में इस दिशा में एडलर की खोज सर्वाधिक कीमती है। एडलर कहता है कि एक बड़ी अजीब घटना आदमी के साथ घटती है कि आदमी जो भीतर होता है, उससे ठीक उलटा बाहर आयोजन करता है, दि एग्जेक्ट कानट्रेरी, ठीक उलटा आयोजन करता है। जितना मनुष्य भीतर हीनता से पीड़ित होता है, उतना बाहर श्रेष्ठता का आयोजन करता है।

सभी राजनीतिज्ञ इनफीरिअरिटी कांप्लेक्स से पीड़ित होते हैं। होंगे ही, अन्यथा राजनीतिज्ञ होना मुश्किल है। राजनीतिज्ञ होने के लिए जरूरी है कि भीतर हीनता का भाव हो कि मैं कुछ भी नहीं हूं। तभी आदमी दौड़कर सिद्ध करता है कि देखो, मैं कुछ हूं। यह आपको कम सिद्ध करता है, अपने को ज्यादा सिद्ध करता है—अपने सामने—कि नहीं, गलत थी वह बात कि मैं कुछ नहीं हूं। देखो, मैं कुछ हूं।

एडलर का कहना है कि बड़े से बड़े जो संगीतज्ञ हुए हैं जगत में, वे वे ही लोग हैं, जिनके बचपन में कान कमजोर होते हैं। कमजोर कान का आदमी संगीतज्ञ हो जाता है। कमजोर आंख के आदमी चित्रकार हो जाते हैं।

लेनिन कुर्सी पर बैठता था, तो उसके पैर जमीन नहीं छूते थे। पैर बहुत छोटे थे, ऊपर का हिस्सा बहुत बड़ा था। लेकिन बड़ी से बड़ी कुर्सी पर वह आदमी बैठ सका। उसने सिद्ध करके बता दिया कि तुम्हारे पैर अगर जमीन को छूते हैं, तो कोई बात नहीं, कोई फिक्र नहीं, हम कुर्सी को आसमान से छूकर बताए देते हैं। एडलर कहेगा कि लेनिन की इस महत्वाकांक्षा में उसके पैरों का छोटा होना ही कारण था, वह हीनता ही उसको पीड़ित कर रही थी। पैर बहुत छोटे थे, साधारण कुर्सी पर भी लटक जाते थे, जमीन पर नहीं पहुंचते थे।

बर्नार्ड शा ने मजाक में कहा है कि छोटे पैर से क्या फर्क! छोटा हो पैर कि बड़ा हो, जमीन पर आदमी खड़ा हो, तो सभी के पैर जमीन पर पहुंच जाते हैं। क्या फर्क पड़ता है छोटे—बड़े पैर से? जमीन पर खड़ा हो, तो सभी के पैर जमीन पर पहुंच जाते हैं।

वह तो ठीक है। लेकिन छोटे पैर से फर्क पडता है, आदमी कुर्सी पर पहुंच जाता है। क्योंकि जब तक कुर्सी पर नहीं पहुंच जाता, तब तक उसके प्राण पीड़ित होते रहते हैं कि पैर छोटे हैं, पैर छोटे हैं, पैर छोटे हैं। वही पीड़ा उसको विपरीत यात्रा पर ले जाती है।

तो एडलर से अगर पूछें कि दृढ़ता का क्या मतलब है? तो एडलर और कृष्ण के मतलब में फर्क है, वह मैं समझाना चाहता हूं। एडलर कहेगा, दृढ़ता का मतलब कि आदमी वीकलिंग है, भीतर कमजोर है। आदमी भीतर कमजोर है, इसलिए बाहर से दृढ़ता आरोपित कर रहा है। आदमी भीतर घास—फूस का है, इसलिए बाहर से स्टैलिन है। आदमी भीतर से कुछ नहीं है, इसलिए बाहर से सब कुछ बनने की कोशिश में लगा है। क्या कृष्ण भी इसी दृढ़ता की बात कर रहे हैं? अगर इसी दृढ़ता की बात कर रहे हैं, तो दो कौड़ी की है।

नहीं, इस दृढ़ता की वे बात नहीं कर रहे हैं। एक और दृढता है, जो भीतर की कमजोरी को दबाने से उपलब्ध नहीं होती, जो भीतर के चित्त के विपरीत आयोजन करने से उपलब्ध नहीं होती, बल्कि भीतर के कंपित चित्त के विदा हो जाने से उपलब्ध होती है।

दो तरह की दृढ़ताएं हैं। एक दृढ़ता वह है, जिसमें मेरे भीतर कमजोरी तो मौजूद रहती है, और उसकी छाती पर सवार होकर मैं दृढ़ हो जाता हूं। और एक ऐसी दृढ़ता है, जो मेरी कमजोरी बिखर जाती है, विलीन हो जाती है, उसके अभाव

में जो मेरे भीतर छूट जाती है। लेकिन उसे हम क्या कहें? उसे दृढ़ता कहना ठीक नहीं है, क्योंकि सच तो यह है कि दृढता पहले वाली ही है। वह एडलर ठीक कहता है। उसे हम क्या कहें, जो कमजोरी के विसर्जन पर बचती है?

एक तो स्वास्थ्य वह है, जो भीतर बीमारी को दबाकर प्रकट होता है। और एक स्वास्थ्य वह है, जो बीमारी के अभाव पर, एब्सेंस में प्रकट होता है। लेकिन जो बीमारी के अभाव में प्रकट होता है, उस स्वास्थ्य को हम क्या कहें? क्योंकि हम एक ही तरह के स्वास्थ्य से परिचित हैं, जो बीमारी को? प्रक्रिया को इसलिए हम दवा कहते हैं। दवाई—दबाने वाली। जिससे हम बीमारी को दबाते रहते हैं, उसको हम दवा कहते हैं।

लेकिन एक और स्वास्थ्य है, जो बीमारी का अभाव है—दबाव नहीं, सप्रेशन नहीं—एब्सेंस। लेकिन अगर हम मेडिकल साइंस से पूछने जाएं, तो वह कहेगी कि नहीं, हम ऐसे किसी स्वास्थ्य को नहीं जानते हैं, जो बीमारी का अभाव है। हम तो ऐसे ही स्वास्थ्य को जानते हैं, जो बीमारी से लड़कर उपलब्ध होता है।

इसलिए अगर आप किसी चिकित्सक से जाकर कहें कि मुझे स्वस्थ होना है, तो वह कहेगा, हम कुछ रास्ता नहीं बता सकते हैं। हमसे तो यह पूछो कि कौन—सी बीमारी है, उसे अलग करना है, उसे मिटाना है, तो हम रास्ता बता सकते हैं।

इसलिए आज तक दुनिया की कोई भी मेडिकल साइंस, चाहे वह आयुर्वेद हो और चाहे वह एलोपैथी हो और चाहे होमियोपैथी हो और चाहे यूनानी हो और चाहे कोई और हो, कोई भी पैथी हो, वह अब तक स्वास्थ्य की परिभाषा नहीं कर पाई, सिर्फ बीमारियों की परिभाषा कर पाई है। उससे पूछो कि स्वास्थ्य क्या है? तो वह कहेगी, हमें पता नहीं। हमसे पूछो कि बीमारियां क्या हैं, तो हम बता सकते हैं, टी. बी का मतलब यह, कैंसर का मतलब यह, क्यू का मतलब यह। लेकिन स्वास्थ्य का क्या मतलब है? स्वास्थ्य का हमें कोई पता नहीं है।

हीनता को दबाकर एक श्रेष्ठता प्रकट होती है, यह श्रेष्ठता सदा ही नीचे की हीनता पर कंपती रहती है। सदा भयभीत, सदा अपने को सिद्ध करने को आतुर, सदा अपने को तर्क देने को चेष्टारत, सदा संदिग्ध, सदा भीतर से भयग्रस्त।

और एक ऐसी भी श्रेष्ठता है—असंदिग्ध, अपने को सिद्ध करने को आतुर नहीं, अपने को प्रमाणित करने के लिए चेष्टारत नहीं, जिसे अपने होने का पता ही नहीं।

अब ध्यान रहे, जिस दृढ़ता का आपको पता है, वह एडलर वाली दृढ़ता होगी। और जिस दृढता का आपको पता ही नहीं है, वह कृष्य वाली दृढता होगी। जिस दृढ़ता का पता है पता चलेगा कैसे? पता हमेशा कंट्रास्ट में चलता है। स्कूल में शिक्षक लिखता है सफेद खड़िया से काले ब्लैक—बोर्ड पर। सफेद दीवार पर भी लिख सकता है, लिख जाएगा, पता नहीं चलेगा। लेकिन काले ब्लैक—बोर्ड पर लिखता है, लिखता है, दिखाई पड़ता है। काले पर लिखता ही इसीलिए है कि दिखाई पड़ सके। जितना काला ब्लैक—बोर्ड, उतने अक्षर साफ दिखाई पड़ते है।

जितना हीन आदमी, उतनी श्रेष्ठता दिखाई पड़ती है। जितना श्रेष्ठ आदमी, उतनी श्रेष्ठता सफेद दीवार पर सफेद अक्षरों जैसी लीन हो जाती है, दिखाई नहीं पड़ती है। कंट्रास्ट में, विरोध में दिखाई पड़ती है।

अगर आपको पता चलता है कि मैं स्वस्थ हूं, तो समझना कि बीमारी कहीं दबी है। अगर आपको पता चलता है, मैं ज्ञानी हूं, तो समझना कि अज्ञान कहीं दबा है। अगर आपको पता चलता है कि मैं दृढ़ चित्तवान हूं, तो समझना कि भीतर भूसा कहीं भरा है। अगर पता ही नहीं चलता।

इसलिए उपनिषद कहते हैं कि जो कहता है, मैं जानता हूं, समझना कि नहीं जानता है। इसलिए उपनिषद एक अदभुत वचन कहते हैं। शायद इससे ज्यादा करेजियस स्टेटमेंट, इससे ज्यादा साहसी वक्तव्य पृथ्वी पर कभी नहीं दिया गया है। उपनिषद कहते हैं कि ज्ञानी को क्या कहें! अज्ञानी तो भटक ही जाते हैं अंधकार में, जानी महा—अंधकार में भटक जाते हैं, ग्रेटर डार्कनेस। अज्ञानी तो भटकते ही हैं अंधकार में, ज्ञानी महा— अंधकार में भटक जाते हैं। किन ज्ञानियों की बात कर रहा है उपनिषद? उन ज्ञानियों की बात कर रहा है, जिन्हें ज्ञान का पता है कि ज्ञान है।

जिन्हें दृढ़ता का पता है, वे दृढ़ नहीं हैं। कृष्ण जिस दृढ़ता की बात कह रहे हैं, उसे एडलर की दृढता से बिलकुल भिन्न जान लेना। कृष्ण का मनोविज्ञान बहुत और है। वह विपरीत पर खड़ा हुआ नहीं है। क्योंकि जो विपरीत पर खड़ा हुआ मकान है, किसी भी दिन गिर जाएगा; उसका कोई भरोसा नहीं है। जो प्रतिकूल पर ही निर्मित है, वह अपने शत्रु पर ही आधार बनाए है। स्वभावत:, अपने ही शत्रु के कंधे पर हाथ रखकर जो बलशाली हुआ है, वह कितनी देर बलशाली रहेगा? जो अपने ही विपरीत को अपनी बुनियाद में आधारशिला के पत्थर बनाया है, उसके शिखर कितनी देर तक आकाश में, सूर्य की रोशनी में उन्नत रहेंगे? कितनी देर तक?

नहीं, यह नहीं हो सकता ज्यादा देर। और जितनी देर ये शिखर ऊपर उन्नत दिखाई भी पड़ेंगे, उतनी देर नीचे बुनियाद में पूरे समय संघर्ष है, पूरे समय द्वंद्व है, पूरे समय प्राणों में कंपन है, वेवरिंग है, ट्रेबलिंग है। वहां कंपन चलता ही रहेगा, वहा भय हिलता ही रहेगा, वहा पानी की धार कंपती ही रहेगी। यह रेत पर बनाया हुआ मकान है। रेत पर भी नहीं, पानी पर बनाया हुआ मकान है। यह अब गिरा, अब गिरा, अब गिरा—भीतर आप जानते ही रहेंगे; अब गिरा, अब गिरा, अब गिरा—भीतर आप डरते ही रहेंगे। जितना भीतर डरेंगे, उतनी बाहर दृढ़ता दिखलाएंगे—अपने को धोखा देने के लिए, दूसरों को धोखा देने के लिए।

लेकिन कृष्ण जिस दृढ़ता की बात कर रहे हैं, वह प्रवंचना नहीं है, वह रूपांतरण है। लेकिन वह कब फलित होता है? वह तभी फलित होता है, वह तभी फलित होता है, जब चित्त राग और विराग से, जब बुद्धि चुनाव से, और जब मन विषयों के बीच कंपन को छोड़कर अकंप हो जाता है, जब मन इच्छाओं के बीच कंपन को छोड़कर अनिच्छा को उपलब्ध हो जाता है। अनिच्छा का मतलब विपरीत इच्छा नहीं, इच्छा के अभाव को उपलब्ध हो जाता है। तब वे कहते हैं कि अर्जुन, ऐसी अकंप चित्त की दशा में जीवन की संपदा की उपलब्धि है। तब चित्त दृढ़ है। तब चित्त पानी पर नहीं, चट्टानों पर है। और तब आकाश में शिखर उठ सकता है। और तब पताका, जीवन की, अस्तित्व की ऊंचाइयों में फहरा सकती है।

अर्जुन उवाच

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव ।

स्थितधीः कीं प्रभाषेत किमासीत ब्रजेत किम् ।।54।।

इस प्रकार भगवान के वचनों को सुनकर अर्जुन ने पूछा : हे केशव, समाधि में स्थित प्रज्ञा वाले पुरूष का क्या लक्षण है और स्थिरबुद्धि पुरूष कैसे बोलता है। कैसे बैठता है, कैसे चलता है?

अर्जुन पहली बार, अब तक अर्जुन का जो वर्तुल— व्यक्तित्व था, उससे उठकर प्रश्न पूछ रहा है। पहली बार। अब तक जो भी उसने पूछा था, वह पुराना आदमी पूछ रहा था, वह पुराना अर्जुन पूछ रहा था। पहली बार उसके प्रश्न ने कृष्ण को छूने की कोशिश की है पहली बार। इस वचन से पहली बार वह कृष्ण के निकट आ रहा है। पहली बार अर्जुन अर्जुन की तरह नहीं पूछ रहा है, पहली बार अर्जुन कृष्ण के निकट होकर पूछ रहा है। पहली बार कृष्ण अर्जुन के भीतर प्रविष्ट हुए प्रतीत होते हैं।

यह सवाल गहरा है। वह पूछता है, स्थितप्रज्ञ किसे कहते हैं? किसे कहते हैं, जिसकी प्रज्ञा स्थिर हो गई? वह कौन है? वह कौन है जिसके शान की ज्योति थिर हो गई? वह कौन है जिसकी चेतना का दीया अकंप है? वह कौन है जिसे समाधिस्थ कहते हैं? उसकी भाषा क्या है? वह उठता कैसे है? वह चलता कैसे है? वह बोलता कैसे है? उसका होना क्या है? उसका व्यवहार क्या है? उसे हम कैसे पहचानें?

दो बातें वह पूछ रहा है। एक तो वह यह पूछ रहा है, प्रज्ञा का स्थिर हो जाना, स्थित हो जाना, ठहर जाना क्या है? लेकिन वह घटना तो बहुत आंतरिक है। वह घटना तो शायद स्वयं पर ही घटेगी, तभी पता चलेगा। वह शायद कृष्ण भी नहीं बता पाएंगे कि क्या है। इसलिए अर्जुन तत्काल—और इसमें अर्जुन बहुत ही बुद्धिमानी का सबूत देता है। एक बहुत इंटेलिजेंट, बहुत ही विचार का, विवेक का सबूत देता है। प्रश्न के पहले हिस्से में पूछता है कि प्रज्ञा का थिर हो

जाना क्या है कृष्ण? लेकिन जैसे किसी अनजान मार्ग से उसको भी एहसास होता है कि प्रश्न शायद अति—प्रश्न है, शायद प्रश्न का उत्तर नहीं हो सकता है। क्योंकि घटना इतनी आंतरिक है कि शायद बाहर से न बताई जा सके।

इसलिए ठीक प्रश्न के दूसरे हिस्से में वह यह पूछता है कि बताएं यह भी कि बोलता कैसे है वह, जिसकी प्रज्ञा थिर हो गई? समाधि को उपलब्ध हुआ, समाधिस्थ है, वह बोलता कैसे? डोलता कैसे? चलता कैसे? उठता कैसे? उसका व्यवहार क्या है? इस दूसरे प्रश्न में वह यह पूछता है कि बाहर से भी अगर हम जानना चाहें, तो वह कैसा है? भीतर से जानना चाहें, तो क्या है? वह घटना क्या है? वह हैपनिंग क्या है? जिसको समाधिस्थ कहते हैं, वह घटना क्या है न: यह भीतर से। लेकिन अगर यह न भी हो सके, तो जब किसी व्यक्ति में वैसी घटना घट जाती है, तो उसके बाहर क्या—क्या फलित होता है? उस घटना के चारों तरफ जो परिणाम होते हैं, वे क्या हैं?

यह प्रश्न पहला प्रश्न है, जिसने कृष्ण को आनंदित किया होगा। यह पहला प्रश्न है, जिसने कृष्ण के हृदय को पुलकित कर दिया होगा। अब तक के जो भी प्रश्न थे, अत्यंत रोगग्रस्त चित्त से उठे प्रश्न थे। अब तक जो प्रश्न थे, वे अर्जुन के जस्टीफिकेशन के लिए थे। वह जो चाहता था, उसके ही समर्थन के लिए थे। अब तक जो प्रश्न थे, उनमें अर्जुन ने चाहा था कि कृष्ण, वह जैसा है, वैसे ही अर्जुन के लिए कोई कंसोलेशन, कोई सांत्वना बन जाएं।

अब यह पहला प्रश्न है, जिससे अर्जुन उस मोह को छोड़ता है कि मैं जैसा हूं वैसे के लिए सांत्वना हो। यह पहला प्रश्न है जिससे वह पूछता है कि चलो, अब मैं उसको ही जानूं र जैसे आदमी के लिए तुम कहते हो, जैसे आदमी को तुम चाहते हो। जिस मनुष्य के आस—पास तुम्हारे इशारे हैं, अब मैं उसको ही जानने के लिए आतुर हूं। छोडूं उसे, जो अब तक मैंने पकड रखा था।

इस प्रश्न से अर्जुन की वास्तविक जिज्ञासा शुरू होती है। अब तक अर्जुन जिज्ञासा नहीं कर रहा था। अब तक अर्जुन कृष्ण को ऐसी जगह नहीं रख रहा था, जहां से उनसे उसे कुछ सीखना, जानना है। अब तक अर्जुन कृष्ण का उपयोग एक जस्टीफिकेशन, एक रेशनलाइजेशन, एक युक्तियुक्त हो सके उसका अपना ही खयाल, उसके लिए कर रहा था।

इसे समझ लेना उचित है, तो आगे— आगे समझ और स्पष्ट हो सकेगी।

हम अक्सर जब प्रश्न पूछते हैं, तो जरूरी नहीं कि वह प्रश्न जिज्ञासा से आता हो। सौ में निन्यानबे मौके पर प्रश्न जिज्ञासा से नहीं आता। सौ में निन्यानबे मौके पर प्रश्न सिर्फ किसी कनफमेंशन के लिए, किसी दूसरे के प्रमाण को अपने साथ जोड़ लेने के लिए आता है।

बुद्ध एक दिन एक गाव में प्रविष्ट हुए। एक आदमी ने पूछा, ईश्वर है? बुद्ध ने कहा, नहीं, कहीं नहीं है, कभी नहीं था, कभी नहीं होगा। स्वभावत:, वह आदमी कैप गया। कंप गया। उसने कहा, क्या कहते हैं आप? ईश्वर नहीं है? बुद्ध ने कहा, बिलकुल नहीं है। सब जगह खोज डाला; मैं कहता हूं, नहीं है।

फिर दोपहर एक आदमी उस गांव में आया और उसने पूछा कि जहां तक मैं सोचता हूं ईश्वर नहीं है। आपका क्या खयाल है न: बुद्ध ने कहा, ईश्वर नहीं है? ईश्वर ही है। उसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। उस आदमी ने कहा, क्या कहते हैं! मैं तो यह सोचकर आया कि बुद्ध नास्तिक हैं।

साझ को एक और आदमी आया और उस आदमी ने बुद्ध से कहा कि मुझे कुछ भी पता नहीं है कि ईश्वर है या नहीं। आप क्या कहते हैं? बुद्ध ने कहा, मैं भी कुछ न कहूंगा। मैं भी चुप रहूंगा। उसने कहा कि नहीं—नहीं, कुछ तो कहें! बुद्ध ने कहा कि मैं कुछ न कहूंगा।

इन तीन को तो छोड़ दें, कठिनाई में पड़ गया बुद्ध का भिक्षु आनंद। वह तीनों समय साथ था, सुबह भी, दोपहर भी, सांझ भी। उसका कष्ट हम समझ सकते हैं। सोचा न था कभी कि बुद्ध और ऐसे इनंकसिस्टेंट, इतने असंगत कि सुबह कुछ, दोपहर कुछ, सांझ कुछ। लेकिन कसिस्टेंट सिर्फ बुद्धओं के सिवाय और कोई भी नहीं हो सकते। सिर्फ बुद्धिहीन संगत हो सकते हैं। बुद्धिमान के उत्तर असंगत होंगे ही। क्योंकि हर उत्तर किसी को दिया गया है, कोई उत्तर सभी को नहीं दिया गया है।

आनंद ने बुद्ध से कहा कि मुझे परेशानी में डाल दिया। रात सोते समय मुझे नींद न आएगी, पहले मेरा उत्तर दो! सही क्या है? इन तीनों में कौन—सी बात ठीक है? या कि चौथी बात ठीक है?

बुद्ध ने कहा, तुझे क्या मतलब! जिनसे मैंने बात की थी, उनसे मतलब पूरा हो गया। तेरा न सवाल था, न तेरे लिए जवाब है। तूने पूछा नहीं था, तूने सुना क्यों? उसने कहा, और मजा करते हैं आप! मेरे पास कान हैं, मैं बहरा नहीं हूं। मैं पास ही मौजूद था। सुनाई मुझे पड़ गया। तो बुद्ध ने कहा, जो दूसरे के लिए कहा गया हो, उसे सुनना उचित नहीं है। तुझे क्या जरूरत थी? पर उसने कहा, जरूरत थी या नहीं, मुझे सुनाई पड़ गया और मैं बेचैन हूं। तीन उत्तर एक दिन में! आप कहना क्या चाहते हैं?

बुद्ध ने कहा, मैंने तीन उत्तर नहीं दिए। मैंने तो उत्तर एक ही दिया है कि मैं तुम्हें कन्फर्म न करूंगा। मैं तुम्हारी ही में ही न भरूंगा। मैंने तो उत्तर एक ही दिया है दिनभर। सुबह जो आदमी आया था, वह चाहता था कि मैं कह दूं कि ही, ईश्वर है, ताकि जिस ईश्वर को वह मानता है, उसको मेरा भी सहारा मिल जाए। ताकि वह आश्वस्त हो जाए कि चलो, मैं ठीक हूं, बुद्ध भी यही कहते हैं। वह सिर्फ मेरा उपयोग करना चाहता था। वह मुझसे सीखने नहीं आया था। वह मुझसे जानने नहीं आया था। वह जानता ही था, वह सीखा ही हुआ था। वह सिर्फ मेरा और साथ चाहता था, वह सिर्फ एक सर्टिफिकेट और चाहता था, एक प्रमाणपत्र और चाहता था कि जो मैं कहता हूं वही बुद्ध भी कहते हैं! मैं ठीक हूं, क्योंकि बुद्ध भी यही कहते हैं! वह सिर्फ अपने अहंकार के लिए एक युक्ति और खोज रहा था। वह बुद्ध का भी अपने अहंकार के लिए शोषण कर रहा था।

दोपहर जो आदमी आया था, वह नास्तिक था। वह भी आश्वस्त था कि उसे पक्का पता है। उसकी कोई जिज्ञासा न थी। जिन्हें पक्का पता है, उनकी कोई जिज्ञासा नहीं होती। जिन्हें पक्का ही पता है, उन्हें जिज्ञासा कैसे हो सकती है? और मजा यह है कि जिन्हें पक्का पता है, वे भी जिज्ञासा करते हैं। तब उनका पक्का पता बहुत कच्चे पते पर खड़ा है। पर वह कच्चा पता बहुत नीचे है। पक्का ऊपर है, कच्चा नीचे है। इसलिए वह कच्चा उनको धक्के देता रहता है कि और पक्का कर लो, और पक्का कर लो। पक्का नहीं है, पता कुछ भी नहीं है, लेकिन भ्रम है कि पता है।

अर्जुन अभी ऐसे बोलता रहा, इस प्रश्न के पहले तक, जैसे उसे पता है कि क्या ठीक है, क्या गलत है! चाहता था इतना कि कृष्ण और हामी भर दें, गवाह बन जाएं, तो कल वह जगत को कह सके कि मैं ही नहीं भागा था, कृष्ण ने भी कहा था। मैंने ही युद्ध नहीं छोड़ा था, कृष्ण से पूछो! रिस्पासिबिलिटी बांटना चाहता था, दायित्व बांटना चाहता था।

ध्यान रहे, जो दायित्व बांटना चाहता है, उसके भीतर कंपन है। पक्का उसको भी नहीं है, इसीलिए तो दूसरे का सहारा चाहता है। लेकिन यह बताना भी नहीं चाहता कि मुझे पता नहीं है। यह अहंकार भी नहीं छोड़ना चाहता कि मुझे पता नहीं है।

अर्जुन पूरे समय ऐसे बोल रहा है कि जैसे उसे भलीभांति पता, है। धर्म क्या है, अधर्म क्या है! श्रेयस क्या है, अश्रेयस क्या है! जगत का किससे लाभ होगा, किससे नहीं होगा! मरेगा कोई, नहीं मरेगा! सब उसे पता है। पता बिलकुल नहीं है, लेकिन अहंकार कहता है, पता है। इसी अहंकार में वह एक टेक कृष्ण की भी लगवा लेना चाहता था। तुम भी बन जाओ उस लंगड़े की बैसाखी, यही वह चाहता था।

कृष्ण जैसे लोग किसी की बैसाखी नहीं बनते। क्योंकि किसी लंगड़े की बैसाखी बनना, उसको लंगड़ा बनाए रखने के लिए व्यवस्था है। कृष्ण जैसे लोग तो सब बैसाखियां छीन लेते हैं। वे लंगड़े को पैर देना चाहते हैं, बैसाखी नहीं देना चाहते। इसलिए कृष्ण ने अभी इस बीच उसकी सब बैसाखियां छीन लीं, जो उसके पास थीं, वे भी।

अब वह पहली दफा, पहली बार कृष्ण से जिज्ञासा कर रहा है, जिसमें अपने लिए समर्थन नहीं मांग रहा है। अब वह उन्हीं से पूछ रहा है कि समाधिस्थ कौन है कृष्ण? किसे हम कहते हैं कि उसकी प्रज्ञा ठहर गई? और जब किसी की प्रज्ञा ठहर जाती है, तो उसका आचरण क्या है? और जब किसी के अंतस में ज्योति ठहर जाती है, तो उसके बाहर के आचरण पर क्या परिणाम होते हैं? मुझे उस संबंध में बताएं। अब वह पहली बार हबल है, पहली बार विनीत है।

और जहां विनय है, वहीं जिज्ञासा है। और जहां विनय है, वहां शान का द्वार खुलता है। जहा अपने अज्ञान का बोध है, वहीं से मनुष्य ज्ञान की तरफ यात्रा शुरू करता है। इस वचन में कृष्ण ज्ञानी और अर्जुन अज्ञानी, ऐसी अर्जुन की प्रतीति पहली बार स्पष्ट है। इसके पहले अर्जुन भी ज्ञानी है। कृष्ण भी होंगे, नंबर दो के। नंबर एक वह खुद था अब तक। बड़ा कठिन है, दूसरे आदमी को नंबर एक रखना बड़ा कठिन है।

मैंने सुना है, गांधी गोलमेज—कांफ्रेंस के लिए गए लंदन। तो उनका एक भक्त बर्नार्ड शा को मिलने गया। और बर्नार्ड शा को कहा उस भक्त ने कि गांधी जी को आप महात्मा मानते हैं या नहीं? भक्तों को बड़ी चिंता होती है कि उनके महात्मा को कोई दूसरा महात्मा मानता है कि नहीं! खुद ही संदेह होता है भीतर, इसलिए दूसरे से भी पक्की गारंटी करवाना चाहते हैं। अब बर्नार्ड शा से पूछने जाने की क्या जरूरत है भक्त को? इसको खुद ही शक रहा होगा। सोचा, चलो, बर्नार्ड शा से पूछ लें। और सोचा होगा यह भी कि शिष्टाचारवश भी कम से कम बर्नार्ड शा कुछ ऐसा तो कह नहीं सकता कि नहीं हैं।

लेकिन बर्नार्ड शा जैसे लोग शिष्टाचार नहीं पालते, सत्याचार पालते हैं। और सत्याचार बड़ी और बात है। और शिष्टाचार तो सब दिखावा है। बर्नार्ड शा ने कहा, महात्मा हैं तुम्हारे गांधी, बिलकुल हैं, लेकिन नंबर दो के हैं। भक्त ने कहा, नंबर दो के? नंबर एक का महात्मा कौन है? बर्नार्ड शा ने कहा, मैं! बर्नार्ड शा ने कहा, मैं झूठ न बोल सकूंगा। मैं अपने से ऊपर किसी को रख ही नहीं सकता हूं। ऐसी मेरी स्पष्ट प्रतीति है।

भक्त तो बहुत घबड़ा गया कि कैसा अहंकारी आदमी है! लेकिन बर्नार्ड शा बड़ा ईमानदार आदमी है। नंबर एक कोई भी अपने को रखता है। वह जो कहता है, चरणों की धूल हूं वह भी नंबर एक ही रखता है अपने को। यह चरणों की धूल वगैरह सब शिष्टाचार है।

बर्नार्ड शा ने कहा, सचाई यह है कि ज्यादा से ज्यादा नंबर दो रख सकता हूं तुम्हारे महात्मा को। नंबर एक तो तय ही है। उसकी कोई बात ही मत करो। उसमें कोई शक—शुबहा नहीं है मुझे। मैं नंबर एक हूं।

व्यंग्य कर रहा था गहरा पूरी मनुष्य जाति पर। और कभी—कभी ऐसा होता है कि बहुत बुद्धिमान जो नहीं कह पाते, वह व्यंग्य करने वाले कह जाते हैं।

अरबी में एक कहावत है कि परमात्मा जब भी किसी आदमी को बनाता है, तो दुनिया में धक्का देने के पहले उसके कान में एक मजाक कर देता है। उससे कह देता है, तुझसे अच्छा आदमी कभी भी नहीं बनाया। बस उस मजाक में सभी आदमी जीते हैं। जिंदगीभर कान में वह गूंजती रहती है परमात्मा की बात कि मुझसे अच्छा कोई भी नहीं! मगर वह दिल में ही रखनी पड़ती है, क्योंकि बाकी को भी यही कह दिया है उसने। उसको अगर जोर से कहिए, तो झगड़े के सिवाय कुछ हो नहीं सकता। इसलिए मन में अपने—अपने हर आदमी समझता है। दूसरे से शिष्टाचार की बातें करता है, मन में सत्य को जानता है, कि सत्य मुझे पता है।

अभी जो भी प्रश्न पूछे जा रहे थे कृष्ण से, कृष्ण भी समझते हैं कि उनमें अर्जुन अभी तक नंबर एक है। इस पूरे बीच उसके नंबर एक को गिराने की उन्होंने सब तरफ से कोशिश की है। और उसको चाहा है कि वह समझे कि स्थिति क्या है! व्यर्थ ही अपने को नंबर एक न माने। क्योंकि नंबर एक को केवल वही उपलब्ध होता है, जिसको अपने नंबर एक होने का कोई पता नहीं रह जाता। वह हो जाता है। जिसको पता रहता है, वह कभी नहीं हो पाता। पहली दफे अर्जुन विनम्र हुआ है। अब उसकी हंबल इंक्वायरी शुरू होती है। अब वह पूछता है कि बताओ कृष्ण! और इस पूछने में बड़ी विनम्रता है।

प्रश्न :

भगवान श्री, जैसा कि आपने बताया, स्थितप्रज्ञता एक आंतरिक घटना है। और स्थितप्रज्ञ पुरुष जो जीवन जीता है, वह कोई पैटर्न में तो जीता नहीं है, कोई निश्चित पैटर्न बनाकर नहीं जीता है। जैसे कि बुद्ध के तीनों उत्तर अलग रहे। तो बाहर से भी हम कैसे निश्चित कर पाएं कि वह स्थितप्रज्ञ है?

ठीक पूछते हैं। जिस व्यक्ति के भीतर जीवन में सत्य की किरणें फैल जाती हैं, सत्य का सूर्य जगता है, और जिसकी आंतरिक चेतना जागृति को, पूर्ण जागृति को उपलब्ध हो जाती है, उसका जीवन स्पांटेनियस हो जाता है, सहज हो जाता है, सहज—स्फूर्त हो जाता है। उसके जीवन में किसी पैटर्न को, किसी ढांचें को खोजना मुश्किल है। उसके जीवन में कोई बंधी—बंधाई रेखाएं नहीं होतीं। उस व्यक्ति का जीवन रेल की पटरियों पर दौड़ता हुआ जीवन नहीं होता; गंगा की तरह भागता हुआ, स्वतंत्रता से भरा जीवन होता है। वहां कोई रेल की पटरियां नहीं होतीं बंधी हुई, कि जिन पर ही चलता है वैसा व्यक्ति।

लेकिन फिर भी कुछ बातें कही जा सकती हैं। क्योंकि उसके नो—पैटर्न में भी एक बहुत गहरा पैटर्न होता है। उसके न—ढांचे में भी,उसके ढांचे के अभाव में भी, एक गहरी आंतरिक व्यवस्था होती है, एक इनर डिसिप्लिन होती है। ऊपर तो कोई ढांचा नहीं होता।

अब जैसे इतना तो कहा ही जा सकता है कि उसका जीवन सहज—स्फूर्त होता है, स्पांटेनियस होता है। यह भी सूचना हो गई। यह भी सूचना हो गई। बुद्ध सुबह कुछ कहते हैं, दोपहर कुछ कहते हैं, सांझ कुछ कहते हैं। पैटर्न नहीं है, फिर भी पैटर्न है। ढांचा नहीं है। सुबह जो कहा था, वही दोपहर नहीं दोहराया।

बुद्ध जैसे व्यक्ति मरकर नहीं जीते हैं, जीकर ही जीते हैं। सुबह जो कहा था, उसको सिर्फ वही दोहराएगा, जो दोपहर तक मरा हुआ है। जो दोपहर तक जीया है, वह फिर से उत्तर देगा, फिर रिस्पांड करेगा। उसका उत्तर सदा नया होगा। नए का मतलब यह है कि वह पुराने उत्तर को दोहराएगा नहीं। आप पूछेंगे, फिर उत्तर उसमें प्रतिध्वनित होगा। वह जो भी हो!

लेकिन इन तीन अलग—अलग घटनाओं में, इन तीन असंगतियों में, इस इनकंसिस्टेंसी में भी एक भीतरी कंसिस्टेंसी है। सुबह भी बुद्ध सहज उत्तर देते हैं, दोपहर भी, साझ भी। सुबह भी देख लेते हैं कि वह आदमी सिर्फ प्रमाण चाह रहा है, दोपहर भी देख लेते हैं कि प्रमाण चाह रहा है, सांझ भी देख लेते हैं कि प्रमाण चाह रहा है। सुबह भी उसे डगमगा देते, दोपहर भी डगमगा देते, सांझ भी डगमगा देते।

बुद्ध के ऊपर कोई मृत ढांचा नहीं है, लेकिन एक जीवंत धारा है। पर उस जीवंत— धारा के संबंध में कुछ इशारे किए जा सकते हैं। जैसे एक इशारा यही किया जा सकता है कि स्थितप्रज्ञ का जीवन सहज—स्फूर्त, तत्क्षण—स्फूर्त, स्पांटेनियस है। इसलिए दो स्थितप्रज्ञ के जीवनों को ऊपर से बिलकुल अलग—अलग होते हुए भी, भीतर की एकता को जांचा जा सकता है, पहचाना जा सकता है।

जैसा मैंने पीछे कहा, तो कई मित्रों ने मुझे पूछा कि ऐसा कैसे हो सकता है! मैंने कहा कि महावीर और बुद्ध एक बार एक ही गाव में एक ही धर्मशाला में ठहरे। अब एक ही धर्मशाला में दो स्थितप्रज्ञ—ऐसा कम होता है। एक ही बार पृथ्वी पर दो स्थितप्रज्ञ मुश्किल से होते हैं। एक ही धर्मशाला में, एक ही गाव में—बहुत रेयर फिनामिनन, बड़ी अदभुत घटना है। तो मुझसे मित्रों ने पूछा कि क्या इतने अहंकारी रहे होंगे कि मिले नहीं?

हमको ऐसा ही सूझता है एकदम से। क्योंकि हम जब नहीं मिलते किसी से, तो सिर्फ अहंकार के कारण नहीं मिलते। और हमारे पास कोई कारण नहीं होता। क्यों मिलें हम? लेकिन हमको यह पता ही नहीं होता कि अहंकार न बचा हो, तो मिलना कैसे हो सकता है। क्योंकि मिलने वाला भी अहंकार है, न मिलने वाला भी अहंकार है। हमें खयाल में नहीं आती वह बात।

मिले कौन? होना तो चाहिए न कोई—मिलने के लिए भी, न मिलने के लिए भी। बुद्ध हैं कहां! महावीर हैं कहां! किससे मिलना है? कोई पराया बचा है, जिससे मिलना है? बुद्ध अगर बचे होते, तो चले जाते महावीर से मिलने, या इनकार करते मिलने से।

यह बड़े मजे की बात है कि न मिले, न इनकार किया मिलने से। वह हुआ ही नहीं, बस, इट डिडन्ट हैपेन—बस, यह हुआ ही नहीं। इसका कोई उपाय ही नहीं है। क्योंकि कौन मिले? किससे मिले? मिलने के लिए भी अहंकार चाहिए। और फिर किसलिए मिले? कोई कारण चाहिए।

हां, अगर अहंकार होता, तो शायद एक ही धर्मशाला में ठहरने से भी इनकार कर देते। कहते कि वहां हम नहीं ठहरते। ठहर गए। अगर कोई पकड़कर ले जाता, तो चले जाते। रुकते भी नहीं, रोकते भी नहीं कि नहीं जाते। कोई पकड़कर नहीं ले गया। किसी ने दोनों को खींचा नहीं।

असल में दोनों के आस —पास अहंकारियों का इतना बड़ा जाल रहा होगा कि उसने दीवार का काम किया होगा। दोनों के आस—पास अहंकारियों का इतना जाल रहा होगा कि उसने सख्त भक्तों ने न चलने दी होगी—मिलने की। ऐसा कैसे हो सकता है! अगर बुद्ध के भक्तों ने महावीर के भक्तों से कहा होगा कि मिलाने महावीर को ले आओ, तो उन्होंने कहा होगा, हम ले आएं? तुम ले आओ अपने बुद्ध को, मिलाना हो तो। उन्होंने कहा होगा, यह कैसे हो सकता है कि बुद्ध को हम लेकर आएं! बुद्ध नहीं आ सकते। मगर यह बातचीत भक्तों में चली होगी। यह उनमें चली होगी, जो चारों तरफ घेरकर खड़े हैं। वे सदा खड़े हैं।

इस दुनिया में बुद्ध, महावीर, कृष्ण और मोहम्मद और ईसा के बीच कोई दीवार नहीं है, दीवार है, भक्तों के कारण, वे जो घेरकर खड़े हैं। भयंकर दीवार है। हा, बुद्ध अगर तोड़ना चाहते, तो दीवार को तोड़ सकते थे। लेकिन तोड़ने का भी कोई कारण नहीं है। महावीर अगर चाहते कि मिलना है, तो मिल सकते थे। लेकिन महावीर और बुद्ध चाह से नहीं जीते, एकदम डिजायरलेस, अचाह से जीते हैं। मिलना हो जाता, तो हो जाता। नहीं हुआ, तो नहीं हुआ। राह पर चलते मिल जाते, तो मिल जाते। नहीं मिले, तो नहीं मिले। मगर दोनों बिलकुल एक जैसे हैं। दोनों बिलकुल एक जैसे हैं।

एक और मित्र ने इस संबंध में मुझे चिट्ठी लिखकर भेजी है कि आप कहते हैं कि महावीर और बुद्ध जो कहते हैं, वह बिलकुल एक है। तो क्या बुद्ध और महावीर को दिखाई नहीं पड़ा यह कि एक है न: बिलकुल दिखाई पड़ता था। बिलकुल दिखाई पड़ता था। तो उन्होंने पूछा है कि अगर दिखाई पड़ता था, तो उन्होंने कह क्यों नहीं दिया कि एक है!

उन्होंने नहीं कहा, आप पर कृपा करके। क्योंकि अगर बुद्ध और महावीर कह दें कि बिलकुल एक है, तो आप सिर्फ कनक्फ्यूज होंगे और कुछ भी नहीं हो सकता, आप सिर्फ विभमित होंगे, और कुछ भी नहीं हो सकता।

इसलिए महावीर क्हे चले जाते हैं कि जो मैं कह रहा हूं वही ठीक है। जो बुद्ध.. बेकार है। यह जो मैं कह रहा हूं यही ठीक है। आप इतने कमजोर चित्त हैं कि अगर महावीर इतने अतिशय से न बोलें, तो आपके चित्त पर कोई परिणाम ही होने वाला नहीं है। क्योंकि आप इतने कमजोर हैं कि अगर महावीर को आप देखें कि वह कहें, यह भी ठीक, वह भी ठीक, यह भी ठीक, वह भी ठीक, सभी ठीक, तो आप भाग खड़े होंगे। आप तो खुद ही कमजोर हैं। आप तो चले ही जाएंगे कि जब सभी ठीक है, तो फिर ठीक है, हम भी ठीक हैं। आप उससे जो निष्कर्ष निकालेंगे, वह यह कि फिर हम भी ठीक! फिर हम जाते हैं।

अगर महावीर को ज्ञानियों के बीच में बोलना पड़े, तो महावीर कहेंगे, सभी ठीक। अगर बुद्ध को ज्ञानियों के बीच में बोलना पड़े, बुद्ध कहेंगे, सभी ठीक। अगर ज्ञानियों के बीच में बोलना पड़े, तो बुद्ध बोलेंगे ही नहीं, महावीर बोलेंगे ही नहीं। इतना भी नहीं कहेंगे कि सभी ठीक। लेकिन बोलना पड़ता है अज्ञानियों के बीच में। ये बुद्ध और महावीर की पीड़ा आपको पता नहीं है। बोलना पड़ता है उनके बीच में, जिन्हें कुछ भी पता नहीं है। उनके लिए इस तरह के एकोल्युट स्टेटमेंट, इस तरह के निरपेक्ष वचन कि सभी ठीक, सिर्फ व्यर्थ होंगे, अर्थहीन होंगे। उनके लिए कहना पड़ता है, यही ठीक। और इतने जोर से कहना पड़ता है कि महावीर के व्यक्तित्व का वजन और गरिमा और महिमा, उस यही ठीक के बीच जुड़ जाए, तो शायद आप दो कदम उठाएं।

ही, महावीर भलीभांति जानते हैं कि जिस दिन आप पहुंचेंगे, जान लेंगे, सभी ठीक। लेकिन वह उस दिन के लिए छोड़ दिया जाता है। उसके लिए कोई अभी चिंता करने की जरूरत नहीं है।

पहाड़ पर आप चल रहे हैं। मैं अपने रास्ते को कहता हूं, यही ठीक। आप कहते हैं, उस रास्ते के बाबत क्या खयाल है, वह जो वहां से जा रहा है? मैं कहता हूं बिलकुल गलत! जब मैं कहता हूं, बिलकुल गलत, तो मेरा मतलब यह नहीं होता कि वह बिलकुल गलत। मैं भलीभांति जानता हूं, उससे भी लोग पहुंचे हैं। लेकिन हजार रास्ते जा रहे हैं पहाड़ पर। और आप चल सकते हैं सिर्फ एक पर, हजार पर नहीं। और अगर आपको हजार ही ठीक दिखाई पड़ जाएं, तो संभावना यह नहीं है कि आप हजार पर चलें, संभावना यही है कि आप एक पर भी न चलें। दो कदम एक पर चलें,

फिर दो कदम दूसरे पर चलें, फिर दो कदम तीसरे पर चलें। जैसा आपका चित्त है डावाडोल, वह रास्ते बदलता रहे और आप पहाड़ के नीचे ही भटकते रहें।

हजार रास्ते भी पहुंच जाते हैं पहाड़ पर, लेकिन हजार रास्तों से चलकर कोई भी नहीं पहुंचता। अनंत रास्ते पहुंचते हैं परमात्मा तक, लेकिन अनंत रास्तों से कोई भी नहीं पहुंचता। पहुंचने वाले सदा एक ही रास्ते से पहुंचते हैं।

तो महावीर जिस रास्ते पर खड़े हैं, उचित है कि वे कहें, इसी रास्ते से पहुंच जाओगे, आ जाओ। और जरूरी है कि आपको इस रास्ते पर चलने के लिए भरोसा और निष्ठा आ सके, वे कहें कि बाकी कोई रास्ता नहीं पहुंचाता है।

महावीर को आपकी वजह से भी असत्य बोलने पड़ते हैं। और बुद्ध को भी आपकी वजह से असत्य बोलने पड़ते हैं। मनुष्य के ऊपर जो अनुकंपा है ज्ञानियो की, उसकी वजह से उन्हें ढेर असत्य बोलने पड़ते हैं। लेकिन इस भरोसे में वे असत्य बोले जाते हैं कि आप एक से भी चढ़कर जब शिखर पर पहुंच जाएंगे, तब आप खुद ही देख लेंगे कि सभी रास्ते यहीं ले आए हैं।

अब जैसे पूछा है कि क्या ढांचा होगा,? ढांचा कोई नहीं होगा। लेकिन जैसे यह बात कृष्ण भी कहेंगे कि इस रास्ते से चलो, बुद्ध भी कहेंगे कि इस रास्ते से चलो, महावीर भी कहेंगे कि इस रास्ते से चलो, शंकर भी कहेंगे कि इस रास्ते से चलो। और अगर झंझट बनी और शंकर से किसी ने पूछा, बुद्ध के रास्ते के बाबत क्या खयाल है? तो वे कहेंगे, बिलकुल गलत। और बुद्ध से अगर किसी ने पूछा कि महावीर के रास्ते के बाबत क्या खयाल है? तो बुद्ध कहेंगे, बिलकुल गलत। और महावीर से किसी ने पूछा कि बुद्ध के रास्ते के बाबत क्या खयाल है? तो महावीर कहेंगे, भटकना हो तो बिलकुल ठीक। इस मामले में तो बिलकुल एक ही बात होगी।

यह जो... ऊपर से ढांचे नहीं दिखाई पड़ेंगे, लेकिन अगर बहुत गहरे में खोज—बीन की, तो बहुत जीवंत पैटर्न, लिविंग पैटर्न होंगे। पैटर्न भी डेड और लिविंग हो सकते हैं।

एक चित्रकार एक चित्र बनाता है, वह डेड होता है। लेकिन एक चित्र प्रकृति बनाती है, वह लिविंग होता है। एक चित्रकार भी एक वृक्ष बनाता है, लेकिन वह मरा होता है। एक वृक्ष प्रकृति भी बनाती है, लेकिन वह जीवंत होता है। वह प्रतिपल बदल रहा है। कुछ पत्ते गिर रहे, कुछ आ रहे, कुछ जा रहे, कुछ फूट रहे, हवाएं हिला रही हैं।

एक सूर्य सुबह उगता है, और एक वानगाग भी सूर्योदय का चित्र बनाता है। लेकिन वानगाग के सूर्योदय का चित्र ठहरा हुआ है, स्टैटिक, स्टैगनेंट है। सुबह का सूरज कभी नहीं ठहरता है, उगता ही चला जाता है, कहीं नहीं ठहरता। इतना उगता चला जाता है कि डूब जाता है, एक क्षण नहीं ठहरता है।

जिंदगी में जो पैटर्न हैं, वे सब जीवित हैं। वे ऐसे ही हैं जैसे किसी वृक्ष के नीचे खड़े हो जाएं। पत्तों से छनकर धूप की किरणें आती हैं। वृक्ष में हवाएं दौड़ती हैं, नीचे छाया और धूप का एक जाल बन जाता है। वह प्रतिपल कंपता रहता है, बदलता रहता है—प्रतिपल। स्थितप्रज्ञ की प्रज्ञा तो स्थिर होती है, लेकिन उसके जीवन का पैटर्न बिलकुल जीवंत होता है, वह प्रतिपल बदलता रहता है।

कृष्ण से ज्यादा बदलता हुआ व्यक्ति खोजना मुश्किल है। नहीं तो हम सोच ही नहीं सकते कि एक ही आदमी बांसुरी भी बजाए और एक ही आदमी सुदर्शन चक्र लेकर भी खड़ा हो जाए। और एक ही आदमी गोपियों के साथ नाचे भी, और इतना कोमल, और वही आदमी युद्ध के लिए इतना सख्त हो जाए। और वही आदमी नदी में स्नान करती स्त्रियों के कपड़े लेकर वृक्ष पर चढ़ जाए, और वही आदमी नग्न होती द्रौपदी के लिए वस्त्र बढाता रहे, बढ़ा दे। यह एक ही आदमी इतने बदलता पैटर्न!

जिन्होंने कृष्ण को गोपियों के वस्त्र उठाकर वृक्ष पर बैठते देखा होगा, क्या वे सोच सकते थे कभी कि किसी नग्न होती स्त्री के यह वस्त्र बढ़ाएगा? यह आदमी! भूलकर ऐसा नहीं सोच सकते थे। कोई सोच सकता था कि यह आदमी, जो मोर के पंख बांधकर और स्त्रियों के बीच नाचता है, यह आदमी कभी युद्ध के लिए जगत की सबसे मुखर वाणी बन जाएगा? कोई सोच भी नहीं सकता था। मोर के पंखों से और युद्धों का कोई संबंध है, कोई संगति है?

लेकिन यह मृत आदमी नहीं है, मोर के पंख इसे बांधते नहीं।यह मृत आदमी नहीं है, बांसुरी की धुन इसे बांधती नहीं। यह मृत आदमी नहीं है, यह जीवित आदमी है।

और जीवित आदमी का मतलब ही है, रिस्पांसिव। जगत जो भी स्थिति ला देगा, उसमें उत्तर देगा और उत्तर रेडीमेड नहीं होंगे। स्थितप्रज्ञ के उत्तर कभी भी रेडीमेड नहीं हैं, तैयार नहीं हैं। उन पर सैमसन की सील नहीं होती, वे रेडीमेड कपडे नहीं हैं। बने—बनाए नहीं हैं कि बस कोई भी पहन ले। वह प्रतिपल, प्रतिपल जीवन को दिए गए उत्तर से, प्रतिपल जीवन के प्रति हुई संवेदना से, सब कुछ निकलता है। इसलिए एक अनुशासन नहीं है ऊपर, लेकिन भीतर एक गहरा अनुशासन है।

और एक बात और। जिनके जीवन में ऊपर अनुशासन होता है, उनके जीवन में ऊपर अनुशासन इसलिए होता है कि उन्हें इनर डिसिप्लिन का भरोसा नहीं है। उनके भीतर कोई डिसिप्लिन नहीं है। जिन्हें भीतर के अनुशासन का कोई भरोसा नहीं है, वे ऊपर से अनुशासन बांधकर चलते हैं। लेकिन जिनके भीतर के अनुशासन का जिन्हें भरोसा है, वे ऊपर से बिलकुल स्वतंत्र होकर चलते हैं। कोई डर ही नहीं है। कोई डर ही नहीं है। वे तैयार होकर नहीं जीते, वे जीते हैं, क्योंकि वे तैयार हैं। जो भी स्थिति आएगी, उसमें उत्तर उनसे आएगा। उस उत्तर के लिए पहले से तैयार होने की कोई भी जरूरत नहीं है।

श्री भगवानवाच

प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्यारर्थ मनोगतान् ।

आत्मन्येवात्मना तुष्ट: स्थिख्सस्लदोव्यते ।।55।।

उसके उपरांत श्री कृष्ण भगवान बोले : हे अर्जुन, जिस काल में यह युवक मन में स्थित संपूर्ण कामनाओं को त्याग देता है, उस काल में आत्मा से ही आत्मा में संतुष्ट हुआ, स्थिर प्रज्ञा वाला कहा जाता है।

स्वरूप से संतुष्ट—टु बी कंटेंट विद वनसेल्फ—इसे पहला स्थितप्रज्ञ का लक्षण कृष्ण कहते हैं। हम कभी भी स्वयं से संतुष्ट नहीं हैं। अगर हमारा कोई भी लक्षण कहा जा सके, तो वह है, स्वयं से असंतुष्ट। हमारे जीवन की पूरी धारा ही स्वयं से असंतुष्ट होने की धारा है। अकेले में हमें कोई छोड़ दे, तो अच्छा नहीं लगता, क्योंकि अकेले में हम अपने ही साथ रह जाते हैं। हमें कोई दूसरा चाहिए, कंपनी चाहिए, साथ चाहिए। तभी हमें अच्छा लगता है, जब कोई और हो।

और बड़े मजे की बात है कि दो आदमियों को साथ होकर अच्छा लगता है और इन दोनों आदमियों को ही अकेले में बुरा लगता है। जो अपने साथ ही आनंदित नहीं है, वह दूसरे को आनंद दे पाएगा? और जो अपने को भी इस योग्य नहीं मानता कि खुद को आनंद दे पाए, वह दूसरे को आनंद कैसे दे पा सकता है? करीब—करीब हमारी हालत ऐसी है कि जैसे भिखारी रास्ते पर मिल जाएं और एक—दूसरे के सामने भिक्षा—पात्र फैला दें। दोनों भिखारी!

मैंने सुना है, एक गांव में दो ज्योतिषी रहते थे। सुबह दोनों निकलते थे, तो एक—दूसरे को अपना हाथ दिखा देते थे कि आज कैसा धंधा चलेगा!

हम सब स्वयं से बिलकुल राजी नहीं हैं। एक क्षण अकेलापन भारी हो जाता है। जितना हम अपने से ऊब जाते हैं, उतना हम किसी से नहीं ऊबते। रेडियो खोलो, अखबार उठाओ, मित्र के पास जाओ, होटल में जाओ, सिनेमा में जाओ, नाच देखो, मंदिर में जाओ—कहीं न कहीं जाओ, अपने साथ मत रही। अपने साथ बड़ा.।

कृष्ण पहला सूत्र देते हैं, स्वयं से संतुष्ट, स्वयं से तृप्त। स्वभावत:, जो अपने से तृप्त नहीं है, उसकी चेतना सदा दूसरे की तरफ बहती रहेगी, उसकी चेतना सदा दूसरे की तरफ कंपती रहेगी। असल में जहां हमारा संतोष है, वहीं हमारी चेतना की ज्योति ढल जाती है। मिलता है वहा या नहीं, यह दूसरी बात है। लेकिन जहां हमें संतोष दिखाई पड़ता है, हमारे प्राणों की धारा उसी तरफ बहने लगती है।

तो हम चौबीस घंटे बहते रहते हैं यहां—वहां। एक जगह को छोड्कर—अपने में होने को छोड्कर—हमारा होना सब तरफ डांवाडोल होता है। फिर जिसके पास भी बैठ जाते हैं, थोड़ी देर में वह भी उबा देता है। मित्र से भी ऊब जाते हैं, प्रेमी से भी ऊब जाते हैं, क्लब से भी ऊब जाते हैं, खेल से भी ऊब जाते हैं, ताश से भी ऊब जाते हैं। तो फिर विषय बदलने पड़ते हैं। फिर दौड़ शुरू होती है—जल्दी बदलो—नए सेंसेशन की, नई संवेदना की। सब पुराना पड़ता जाता है—नया लाओ, नया लाओ, नया लाओ। उसमें हम दौड़ते चले जाते हैं।

लेकिन कभी यह नहीं देखते कि जब मैं अपने से ही असंतुष्ट हूं? तो मैं कहां संतुष्ट हो सकूंगा? जब मैं भीतर ही बीमार हूं, तो मैं किसी के भी साथ होकर कैसे स्वस्थ हो सकूंगा? जब दुख मेरे भीतर ही है, तब किसी और का सुख मुझे कैसे भर पाएगा?

हां, थोड़ी देर के लिए धोखा हो सकता है। लोग मरघट ले जाते हैं किसी को, कंधे पर रखकर उसकी अर्थी को, तो रास्ते में कंधा बदल लेते हैं। एक कंधा दुखने लगता है, तो दूसरे कंधे पर अर्थी कर लेते हैं। लेकिन अर्थी का वजन कम होता है? नहीं, दुखा हुआ कंधा थोड़ी राहत पा लेता है। नए कंधे पर थोड़ी देर भ्रम होता है कि ठीक है। फिर दूसरा कंधा दुखने लगता है। सिर्फ वजन के ट्रांसफर से कुछ अंतर पड़ता है? नहीं कोई अंतर पड़ता। अपने पर वजन है, तो कंधे बदलने से कुछ न होगा। और भीतर दुख है, तो साथी बदलने से कुछ न होगा। और भीतर दुख है, तो जगह बदलने से कुछ न होगा।

दूसरे में संतोष खोजना ही प्रज्ञा की अस्थिरता है, स्वयं में संतोष पा लेना ही प्रज्ञा की स्थिरता है। लेकिन स्वयं में संतोष वही पा सकता है, जो—दूसरे में संतोष नहीं मिलता है—इस सत्य को अनुभव करता है। जब तक यह भ्रम बना रहता है कि मिल जाएगा—इसमें नहीं मिलता तो दूसरे में मिल जाएगा, दूसरे में नहीं मिलता तो तीसरे में मिल जाएगा—जब तक यह भ्रम बना रहेगा, तब तक जन्मों—जन्मों तक प्रज्ञा अस्थिर रहेगी। जब तक यह इलूजन, जब तक यह भ्रम पीछा करेगा कि कोई बात नहीं, इस स्त्री में सुख नहीं मिला, दूसरी में मिल सकता है, इस पुरुष में सुख नहीं मिला, दूसरे में मिल सकता है, इस मकान में सुख नहीं मिला, दूसरे में मिल सकता है, इस कार में सुख नहीं मिला, दूसरी कार में मिल सकता है—जब तक यह भ्रम बना रहेगा कि बदलाहट में मिल सकता है, तब तक प्रज्ञा डोलती ही रहेगी, कंपित होती ही रहेगी। यह विषयों की आकांक्षा, यह भ्रामक दूर के ढोल का सुहावनापन, यह चित्त को कंपाता ही रहेगा।

लेकिन आदमी बहुत अदभुत है। अगर उसका सबसे अदभुत कोई रहस्य है, तो वह यही है कि वह अपने को धोखा देने में अनंत रूप से समर्थ है। इनफिनिट उसकी सामर्थ्य है धोखा देने की। एक चीज से धोखा टूट जाए, टूट ही नहीं पाता कि उसके पहले वह अपने धोखे का दूसरा इंतजाम कर लेता है।

बर्नार्ड शा ने कहीं कहा है, कि कैसा मजेदार है मन! एक जगह भ्रम के तंबू उखड नहीं पाते कि मन तत्काल दूसरी जगह खूंटियां गाड़कर इंतजाम शुरू कर देता है। सच तो यह है कि मन इतना होशियार है कि इसके पहले कि एक जगह से तंबू उखड़े, वह दूसरी जगह खूंटियां गाड़ चुका होता है।

और हम सब इसको समझ लेते हैं। अगर पत्नी देखती है कि पति थोड़ी कम उत्सुकता ले रहा है, तो वह किसी बहुत गहरे इसटिंक्टिव आधार पर समझ जाती है कि खूंटियां किसी और स्त्री पर गड़नी शुरू हो गई होंगी। तत्काल! तत्काल कोई उसे गहरे में बता जाता है, कहीं खूंटियां और गड़नी शुरू हो गई हैं। और सौ में निन्यानबे मौके पर बात सही होती है। सही इसलिए होती है कि सौ में निन्यानबे मौके पर आदमी स्थितप्रज्ञ नहीं हो जाता। और मन बिना खूंटियां गाड़े जी नहीं सकता।

ही, एक मौके पर गलत होती है। कभी किसी बुद्ध के मौके पर गलत हो जाती है। यशोधरा ने भी सोची होगी पहली बात तो यही कि कुछ गड़बड़ है। जरूर कोई दूसरी स्त्री बीच में आ गई, अन्यथा भाग कैसे सकते थे!

इसलिए बुद्ध जब बारह साल बाद घर लौटे, तो यशोधरा बहुत नाराज थी, बड़ी क्रुद्ध थी। क्योंकि वह यह सोच ही नहीं सकती कि मन ने कहीं खूंटियां ही न गाड़ी हों, खूंटियां ही उखाड़ दी हों सब तरफ से। और फिर भी बड़े मजे की बात

है कि एक स्त्री को इसमें ही ज्यादा सुख मिलेगा कि कोई किसी दूसरी स्त्री पर खूंटियां गाड़ ले। इसमें ही ज्यादा पीड़ा होगी कि अब खूंटिया गाड़ी ही नहीं हैं। क्योंकि यह बिलकुल समझ के बाहर मामला हो जाता है।

कृष्ण से अर्जुन ने जो बात पूछी है, उसके लिए पहला उत्तर बहुत ही गहरा है, मौलिक है, आधारभूत है। जब तक चित्त सोचता है कि कहीं और सुख मिल सकता है, तब तक चित्त स्वयं से असंतुष्ट है। जब तक चित्त स्वयं से असंतुष्ट है, तब तक दूसरे की आकांक्षा, दूसरे की अभीप्सा उसकी चेतना को कंपित करती रहेगी, दूसरा उसे खींचता रहेगा। और उसके दीए की लौ दूसरे की तरफ दौड़ती रहेगी, तो थिर नहीं हो सकती। जैसे ही—दूसरे में सुख नहीं है—इसका बोध स्पष्ट हो जाता है, जैसे ही दूसरे पर खूंटियां गाड़ना मन बंद कर देता है, वैसे ही सहज चेतना अपने में थिर हो जाती है। स्थिरधी की घटना घट जाती है।

बायरन ने शादी की। मुश्किल से शादी की। कोई साठ स्त्रियों से उसके संबंध थे। हमें लगेगा, कैसा पुरुष था! लेकिन अगर हमें लगता है, तो हम धोखा दे रहे हैं। असल में ऐसा पुरुष खोजना कठिन है जो साठ स्त्रियों से भी तृप्त हो जाए। यह दूसरी बात है कि समाज का भय है, हिम्मत नहीं जुटती, व्यवस्था है, कानून है, और फिर उपद्रव हैं बहुत।

लेकिन बायरन को एक स्त्री ने मजबूर कर दिया शादी के लिए। उसने कहा, पहले शादी, फिर कुछ और। पहले शादी, अन्यथा हाथ भी मत छूना। शादी की। चर्च में घंटियां बज रही हैं, मोमबत्तियां जली हैं, मित्र विदा हो रहे हैं, शादी करके बायरन उतर रहा है सीढ़ियों पर अपनी नव—वधू का हाथ हाथ में लिए हुए। और तभी सड़क से एक स्त्री जाती हुई दिखाई पड़ती है। और उसका हाथ छूट गया। और उसकी पत्नी ने चौंककर देखा, और बायरन वहा नहीं है। शरीर से ही है, मन उसका उस स्त्री के पीछे चला गया है। उसकी पत्नी ने कहा, क्या कर रहे हैं आप? बायरन ने कहा, अरे, तुम हो? लेकिन जैसे ही तुम्हारा हाथ मेरे हाथ में आया, तुम मेरे लिए अचानक व्यर्थ हो गई हो। मेरा मन एक क्षण को उस स्त्री के पीछे चला गया। और मैं कामना करने लगा कि काश! वह स्त्री मिल जाए।

ईमानदार आदमी है। नहीं तो पहले ही दिन विवाहित स्त्री से इतनी हिम्मत बहुत मुश्किल है कहने की। साठ साल के बाद भी मुश्किल पड़ती है कहना। पहला दिन, पहला दिन भी नहीं, अभी सीढ़ियां ही उतर रहा है चर्च की। वह स्त्री तो चौंककर खड़ी हो गई। लेकिन बायरन ने कहा कि जो सच है वही मैंने तुमसे कहा है।

ऐसा ही है सच हम सब के बाबत। कभी आपने सोचा है कि जिस कार के लिए आप दीवाने थे और कई रात नहीं सोए थे, वह पोर्च में आकर खड़ी हो गई है। फिर! फिर कल दूसरी कोई कार सड़क पर चमकती हुई निकलती है और उसकी चमक आंखों में समा जाती है। फिर वही पीड़ा है। जिस मकान के लिए आप दीवाने थे कि पता नहीं उसके भीतर पहुंचकर कौन—से स्वर्ग में प्रवेश हो जाएगा। उसमें प्रवेश हो गया है। और प्रवेश होते ही मकान भूल—गया और कोई स्वर्ग नहीं मिला। और फिर स्वर्ग कहीं और दिखाई पड़ने लगा। मृग—मरीचिका है। सदा सुख कहीं और है और चित्त दौड़ता रहता है।

कृष्ण कहते हैं, जब सुख यहीं है भीतर, अपने में, तभी प्रज्ञा की स्थिरता उपलब्ध होती है।

अभी इतना ही। फिर सांझ।

प्रवचन 16 : विषय-त्याग नहीं—रस-विसर्जन मार्ग है
ओशो – गीता-दर्शन – भाग एक
अध्याय—1-2 – प्रवचन 16 : विषय-त्याग नहीं—रस-विसर्जन मार्ग है

दुः खेष्यनुद्धईग्रमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरूच्यते ।।56।।
तथा दुखों की प्राप्ति में उद्वेगरीहत है मन जिसका और सुखों की प्राप्ति में दूर हो गई है स्पृहा जिसकी, तथा नष्ट हो गई है— राग, भय और क्रोध जिसके, ऐसा मुनि स्थिर—बुद्धि कहा जाता है।
समाधिस्थ कौन है? स्थितधी कौन है? कौन है जिसकी प्रज्ञा थिर हुई? कौन है जो चंचल चित्त के पार हुआ? अर्जुन ने उसके लक्षण पूछे हैं। कृष्ण इस सूत्र में कह रहे हैं, दुख आने पर जो उद्विग्न नहीं होता.।

दुख आने पर कौन उद्विग्न नहीं होता है? दुख आने पर सिर्फ वही उद्विग्न नहीं होता, जिसने सुख की कोई स्पृहा न की हो, जिसने सुख चाहा न हो। जिसने सुख चाहा हो, वह दुख आने पर उद्विग्न होगा ही। जो चाहा हो और न मिले, तो उद्विग्नता होगी ही। सुख की चाह जहा है, वहां दुख की पीड़ा भी होगी ही। जिसे सुख के फूल चाहिए, उसे दुख के काटो के लिए तैयार होना ही पड़ता है। इसलिए पहली बात कहते हैं, दुख आने पर जो उद्विग्न नहीं होता। और दूसरी बात कहते हैं, सुख की जिसे स्पृहा नहीं है, सुख की जिसे आकांक्षा नहीं है।

ये एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। सुख की आकांक्षा है, तो दुख की उद्विग्नता होगी। सुख की आकांक्षा नहीं है, तो दुख असमर्थ है फिर उद्विग्न करने में।

दुख को तो कोई भी नहीं चाहता है, दुख आता है। सुख को सभी चाहते हैं। इसलिए दुख को आने का एक ही रास्ता है, सुख की आडू में; और तो कोई रास्ता भी नहीं है। दुख को तो कोई बुलाता नहीं, निमंत्रण नहीं देता। दुख को तो कोई कहता नहीं कि आओ। दुख का अतिथि द्वार पर आए, तो कोई भी द्वार बंद कर लेता है। दुख का तो कोई स्वागत नहीं करता। फिर भी दुख आता तो है। तो दुख कहां से आता है?

दुख, सुख की आडू में आता है, वही है मार्ग। अगर बहुत ठीक से समझें, तो दुख सुख की ही छाया है। और भी गहरे में समझें, तो जो ऊपर से सुख दिखाई पड़ता है, वह भीतर से दुख सिद्ध होता है। कहें कि सुख केवल दिखावा है, दुख स्थिति है।

जैसे एक आदमी मछली मार रहा है नदी के किनारे बैठकर, तो कांटे में आटा लगा लेता है। आटे को लटका देता है पानी में। कोई मछली काटे को पकड़ने को न आएगी। कोई मछली क्यों कांटे को पकड़ेगी? लेकिन आटे को तो कोई भी मछली पकडना चाहती है। मछली सदा आटा ही पकड़ती है, लेकिन आटे के पकड़े जाने में मछली काटे में पकड़ी जाती है। आटा धोखा सिद्ध होता है, आवरण सिद्ध होता है, काटा भीतर का सत्य सिद्ध होता है।

सुख आटे से ज्यादा नहीं है। हर सुख के आटे में दुख का काटा है। और सुख भी तभी तक मालूम पड़ता है, जब तक आटा दूर है और मछली के मुंह में नहीं है—तभी तक! मुंह में आते ही तो काटा मालूम पड़ना शुरू हो जाता है।

तो सुख सिर्फ दिखाई पड़ता है, मिलता सदा दुख है। और जिसने सुख चाहा हो, उसे दुख मिल जाए, वह उद्विग्न न हो! तो फिर उद्विग्न और कौन होगा? जिसने सुख मांगा हो और दुख आ जाए, जिसने जीवन मांगा हो और मृत्यु आ जाए, जिसने सिंहासन मांगे हों और सूली आ जाए—वह उद्विग्न नहीं होगा? उद्विग्न होगा ही। अपेक्षा के प्रतिकूल उद्विग्नता निर्मित होती है।

और भी एक बात समझ लेने जैसी है कि असल में जो सुख मांग रहा है, वह भी उद्विग्नता मांग रहा है। शायद इसका कभी खयाल न किया हो। खयाल तो हम जीवन में किसी चीज का नहीं करते। आंख बंद करके जीते हैं। अन्यथा कृष्ण को कहने की जरूरत न रह जाए। हमें ही दिखाई पड़ सकता है।

सुख भी एक उद्विग्नता है। सुख भी एक उत्तेजना है। ही, प्रीतिकर उत्तेजना है। है तो आदोलन ही, मन थिर नहीं होता सुख में भी, कंपता है। इसलिए कभी अगर बड़ा सुख मिल जाए, तो दुख से भी बदतर सिद्ध हो सकता है। कभी आटा भी बहुत आ जाए मछली के मुंह में, तो कांटे तक नहीं पहुंचती; आटा ही मार डालता है, कांटे तक पहुंचने की जरूरत नहीं रह जाती।

एक आदमी को लाटरी मिल जाती है और हृदय की गति एकदम से बंद हो जाती है। लाख रुपया! हृदय चले भी तो कैसे चले! इतने जोर से चल नहीं सकता, जितने जोर से लाख रुपये के सुख में चलना चाहिए। इतने जोर से नहीं चल सकता है, इसलिए बंद हो जाता है। बड़ी उत्तेजना की जरूरत थी। हृदय नहीं चाहिए था, लोहे का फेफड़ा चाहिए था, तो लाख रुपये की उत्तेजना में भी धड़कता रहता। लाख रुपये अचानक मिल जाएं, तो सुख भी भारी पड़ जाता है।

खयाल में ले लेना जरूरी है कि सुख भी उत्तेजना है; उसकी भी मात्राएं हैं। कुछ मात्राओं को हम सह पाते हैं। आमतौर से सुख की मात्रा किसी को मारती नहीं, क्योंकि मात्रा से ज्यादा सुख आमतौर से उतरता नहीं।

यह बहुत मजे की बात है कि मात्रा से ज्यादा दुख आदमी को नहीं मार पाता, लेकिन मात्रा से ज्यादा सुख मार डालता है। दुख को सहना बहुत आसान है, सुख को सहना बहुत मुश्किल है। सुख मिलता नहीं है, इसलिए हमें पता नहीं है। दुख को सहना बहुत आसान है, सुख को सहना बहुत मुश्किल है। क्यों? क्योंकि दुख के बाहर सुख की सदा आशा बनी रहती है। उस उत्तेजना के बाहर निकलने की आशा बनी रहती है। उसे सहा जा सकता है।

सुख के बाहर कोई आशा नहीं रह जाती, मिला कि आप ठप्प हुए, बंद हुए। मिलता नहीं है, यह बात दूसरी है। आप जो चाहते हैं, वह तत्काल मिल जाए, तो आपके हृदय की गति वहीं बंद हो जाएगी। क्योंकि सुख में ओपनिंग नहीं है, दुख में ओपनिंग है। दुख में द्वार है, आगे सुख की आशा है, जिससे जी सकते हैं। सुख अगर पूरा मिल जाए, तो आगे फिर कोई आशा नहीं है, जीने का उपाय नहीं रह जाता। सुख भी एक गहरी उत्तेजना है।

मैंने सुना है, एक आदमी को लाटरी मिल गई है। उसकी पत्नी बहुत चिंतित और परेशान है, घबड़ा गई है। उस आदमी के हाथ में कभी सौ रुपये नहीं आए, इकट्ठे पांच लाख रुपये! पास में चर्च है। वह पादरी के पास गई है और उसने प्रार्थना की, पांच लाख की लाटरी मिल गई है, पति दफ्तर से लौटते होंगे। क्लर्क हैं, सौ रुपये से ज्यादा कभी देखे नहीं हैं हाथ में, पांच लाख! उन्हें किसी तरह इस सुख से बचाओ। कहीं कुछ हानि न हो जाए!

पादरी ने कहा, घबड़ाओ मत, एकदम से सुख पड़े तो खतरा हो सकता है, इंस्टालमेंट में पड़े तो खतरा नहीं हो सकता। हम आते हैं, हम खंड—खंड सुख देने का इंतजाम करते हैं।

पादरी बुद्धिमान था, आ गया, बैठ गया। पति घर लौटा। पादरी ने सोचा, पांच लाख इकट्ठा कहना ठीक नहीं, पचास हजार से शुरू करो। तो उसने पति को कहा कि सुना तुमने, पचास हजार लाटरी में मिले हैं! फिर आंखों की तरफ देखा कि इतना पचा जाए तो फिर और पचास हजार की बात करूं! लेकिन उस आदमी ने कहा, सच! अगर पचास हजार मुझे मिले हैं, यह सच है, तो पच्चीस हजार चर्च को दान देता हूं। पादरी का हार्ट—फेल हो गया। पच्चीस हजार! पांच पैसे कोई चर्च को देता नहीं था।

सुख का आघात अगर आकस्मिक हो, तीव्र हो, तो जीवनधारा तक टूट सकती है। तार टूट सकते हैं।

सुख भी उत्तेजना है—प्रीतिकर। अपने आप में तो सिर्फ उत्तेजना है। हमारे मनोभाव में प्रीतिकर है, क्योंकि हमने उसे चाहा है। इसलिए एक और बात ध्यान में रख लेनी जरूरी है कि सब सुख कनवर्टिबल हैं, दुख बन सकते हैं। और सब दुख सुख बन सकते हैं। कुल सवाल इतना है कि चाह है। चाह का फर्क हो जाना चाहिए। एक आदमी पहली दफा शराब पीता है, तो प्रीतिकर नहीं होता स्वाद। स्वाद तिक्त ही होता है, अप्रीतिकर ही होता है। इसलिए टेस्ट डेवलप करना होता है। शराब पीने वाले को स्वाद विकसित करना पड़ता है। फिर—फिर पीता है—मित्रों की शान में, लोगों की तारीफ में, कि मैं कोई कमजोर तो नहीं हूं —पीता है, अभ्यास हो जाता है। फिर वह तिक्त स्वाद भी प्रीतिकर लगने लगता है।

सिगरेट कोई पहली दफा पीता है, तो खांसी ही आती है, तकलीफ ही होती है। फिर सिगरेट के साथ जुड़ी है अकड़, सिगरेट के साथ जुड़ा है अहंकार, सिगरेट के साथ शान के प्रतीक जुड़े हैं। उस शान के लिए आदमी उस दुख को झेलता है और अभ्यासी हो जाता है। फिर वह सिगरेट का गंदा स्वाद— धुएं में कोई और ' अच्छा स्वाद हो भी नहीं सकता—प्रीतिकर लगने लगता है, सुख हो जाता है। दुख का भी अभ्यास सुख बना सकता है। और सुख के अभ्यास से भी दुख निकल आता है।

आए हैं आप मेरे पास, मैंने गले आपको लगा लिया, बहुत प्रीतिकर लगा है क्षणभर को। लेकिन मिनिट होने लगा, अब आप घबड़ा रहे हैं। दो मिनिट होने लगे, अब आप छूटना चाहते हैं। तीन मिनिट हो गए, अब आप कहते हैं, छोड़िए भी। चार मिनिट हो गए, अब आप घबड़ाते हैं कि कहीं मैं पागल तो नहीं हूं! पांच मिनिट हो गए, अब आप पुलिस वाले को चिल्लाते हैं!

यह हुआ क्या? पहले क्षण में कह रहे थे, हृदय से मिलकर बड़ा आनंद मिला है। पांच मिनिट में आनंद खो गया! अगर मिला था, तो पांच मिनिट में हजार गुना हो जाना चाहिए था। जब एक सेकेंड में इतना मिला, तो दूसरे में और ज्यादा, तीसरे में और ज्यादा। नहीं, वह पहले सेकेंड में भी मिला नहीं था, सिर्फ सोचा गया था। दूसरे सेकेंड में समझ बढ़ी, तीसरे में समझ और बढ़ी—पाया कि कुछ भी नहीं है। जिन हाथों को हम हाथों में लेने को तरसते हैं, थोडी देर में सिवाय पसीने के उनसे कुछ भी नहीं निकलता है।

सब सुख की उत्तेजनाएं परिचित होने पर दुख हो जाती हैं, सब दुख की उत्तेजनाएं परिचित होने पर सुख बन सकती हैं। सुख और दुख कनवर्टिबल हैं, एक—दूसरे में बदल सकते हैं। इसलिए बहुत गहरे में दोनों एक ही हैं, दो नहीं हैं। क्योंकि बदलाहट उन्हीं में हो सकती है, जो एक ही हों। सिर्फ हमारे मनोभाव में फर्क पड़ता है, चीज वही है, उसमें कोई अंतर नहीं पडता है।

इसलिए कृष्ण ने दो सूत्र कहे। पहला कि दुख में जो उद्विग्न न हो, दुख में जो अनुद्विग्नमना हो, दूसरा—सुख की जिसे स्पृहा न हो, जो सुख की आकांक्षा और मांग किए न बैठा हो। तीसरी बात—क्रोध, भय जिसमें न हों।

यहां एक बात बहुत ठीक से ध्यान में ले लें, क्योंकि उसके ध्यान में न होने से सारे मुल्क में बड़ी नासमझी है। कृष्ण कह रहे हैं कि जिसमें क्रोध और भय न हों, वह समाधिस्थ है। वे यह नहीं कह रहे हैं कि जो क्रोध और भय को छोड़ दे, वह समाधिस्थ हो जाता है—वे यह नहीं कह रहे हैं। वे यह कह रहे हैं, जो समाधिस्थ है, उसमें क्रोध और भय नहीं पाए जाते हैं। इन दोनों बातों में गहरा फर्क है। क्रोध और भय जो छोड़ दे, वह समाधिस्थ हो जाता है—ऐसा वे नहीं कह रहे हैं। जो समाधिस्थ हो जाता है, उसका क्रोध और भय छूट जाता है—ऐसा वे कह रहे हैं।

आप कहेंगे, इसमें क्या फर्क पड़ता है? ये दोनों एक ही बात हैं। ये दोनों एक बात नहीं हैं। ये बहुत फासले पर हैं, विपरीत बातें हैं। जिस आदमी ने सोचा कि क्रोध और भय छोड़ने से समाधि मिल जाती है, वह क्रोध और भय को छोड़ने में ही लगा रहेगा, समाधि को कभी नहीं पा सकता। और जिस आदमी ने सोचा कि क्रोध और भय को छोड़ने से समाधि मिल जाती है, वह क्रोध और भय से लड़ेगा। और क्रोध से लड़कर आदमी क्रोध के बाहर नहीं होता। भय से लड़कर आदमी भय के बाहर नहीं होता। भय से लड़कर आदमी और सूक्ष्म भयों में उतर जाता है। क्रोध से लड़कर आदमी और सूक्ष्म तलों पर क्रोधी हो जाता है।

मैंने एक कहानी सुनी है। मैंने सुना है कि एक आदमी की ख्याति हो गई कि उसने क्रोध पर विजय पा ली है। उसका एक मित्र उसके परीक्षण के लिए गया। सुबह थी, सर्दी थी अभी, लेकिन सूरज उग आया था। शायद साधु चार बजे रात से उठ आया होगा। आग जलाकर आग तापता था। फिर आग भी बुझ गई थी, फिर राख ही रह गई थी। अब भी साधु बैठा था। मित्र आया, उसने पास आकर नमस्कार किया और कहा कि थोड़ी—बहुत आग बची या नहीं? साधु ने कहा, नहीं, देखते नहीं, अंधे हो? कोई आग नहीं है, राख ही राख है। वह आदमी हंसा। उसने कहा कि नहीं बाबा जी, थोड़ी—बहुत तो बची ही होगी, राख के नीचे दबी होगी। साधु ने कहा, आदमी कैसे हो? मैं कहता हूं, नहीं है आग। उस आदमी ने कहा, जरा कुरेदकर तो देखें, शायद कहीं कोई चिनगारी पडी ही हो! साधु का हाथ अपने चिमटे पर चला गया। उसने कहा, तू आदमी है कि जानवर? मैं कहता हूं, नहीं है कोई आग। उस आदमी ने कहा, बाबा जी, अब तो चिनगारी ही नहीं, लपट बन गई है।

वह जिस आग की बात कर रहा है, वह क्रोध है। वह जिस राख की बात कर रहा है, वह ऊपर का दमन है। एक छोटी—सी चर्चा, पता नहीं उस राख में आग थी या नहीं, लेकिन साधु में काफी आग थी, वह निकल आई। जरा—सी चोट और वह निकल आई। उस आदमी ने कहा, मैंने भी यही सुना था कि राख ही राख बची है, आग नहीं बची है। यही देखने आया था। लेकिन आग काफी बची है। राख ऊपर का ही धोखा है, भीतर आग है।

क्रोध से जो लड़ेगा, वह ज्यादा से ज्यादा क्रोध को भीतर दबाने में समर्थ हो सकता है। भय से जो लड़ेगा, वह ज्यादा से ज्यादा निर्भय होने में समर्थ हो सकता है, अभय होने में नहीं। निर्भय का इतना ही मतलब है कि भय को भीतर दबा दिया है। भय आता भी है तो कोई फिक्र नहीं, हम डटे ही रहते हैं। अभय का मतलब बहुत और है। अभय का मतलब है, भय का अभाव। निर्भय का अर्थ, भय के बावजूद भी डटे रहने की हिम्मत। अभय का मतलब, फियरलेसनेस। निर्भय का मतलब, ब्रेवरी। बड़े से बडा बहादुर आदमी भी भयभीत होता है, अभय नहीं होता। अभय होने का मतलब, भय है ही नहीं, निर्भय होने का भी उपाय नहीं है। भय बचा ही नहीं है।

जो आदमी लक्षण को लक्षण हैं ये। ये कृष्ण लक्षण गिना रहे हैं, काजेज नहीं, कांसिक्येंसेज गिना रहे हैं। ये कारण नहीं गिना रहे हैं, लक्षण गिना रहे हैं कि अगर क्रोध न हो, अगर भय न हो, तो ऐसा आदमी स्थितधी है।

लेकिन हम आमतौर से उलटा कर लेते हैं। हम कह सकते हैं कि एक आदमी का शरीर अगर गरम न हो, तो उस आदमी को बुखार नहीं है। ठीक, इसमें कोई अड़चन नहीं मालूम पड़ती है। एक आदमी का शरीर गरम न हो, तो उसे बुखार नहीं है। लेकिन एक आदमी का शरीर गरम हो, तो उसके शरीर को ठंडा करने से बुखार नहीं जाता; पानी डालने से बुखार नहीं जाता। बुखार अगर पानी डालकर मिटाने की कोशिश की, तो बीमारी के जाने की उम्मीद कम, बीमार के जाने की उम्मीद ज्यादा है।

नहीं, शरीर पर बुखार जब देखता है चिकित्सक, टेंपरेचर देखता है, तो यह जानने के लिए देखता है कि बीमारी कितनी है भीतर, जिससे इतना उत्ताप बाहर है। उत्ताप सिर्फ लक्षण है। उत्ताप बीमारी नहीं है। शरीर कहीं भीतर गहन संघर्ष में पड़ा है, उस संघर्ष के कारण उत्तप्त हो गया है। शरीर के सेल, शरीर के कोष्ठ कहीं लड रहे हैं भीतर दुश्मनों की तरह। कहीं भीतर कोई लड़ाई जारी है। कोई कीटाणु भीतर घुस गए हैं, जो शरीर के कीटाणुओं से लड़ रहे हैं। शरीर के रक्षक और शरीर के शत्रुओं के बीच कहीं गहरा संघर्ष है। उस संघर्ष की वजह से सारा शरीर उत्तप्त हो गया है। उत्तप्त होना सिर्फ लक्षणा है, सिम्पटम है, बीमारी नहीं है। और अगर गरम होने को ही कोई बीमारी समझ ले, तो ठंडा करना इलाज है। तो पानी डालें। बुखार तो नहीं, बीमार चला जाएगा।

नहीं, इतना ही समझें कि बुखार है, तो भीतर बीमारी है। अब बीमारी को अलग करें। और बीमारी अलग हुई, यह तब जानें, जब शरीर पर बुखार न रह जाए। तो चिकित्सक कहता है, जब शरीर पर गरमी नहीं है तब आदमी स्वस्थ है। लेकिन शरीर पर गरमी घटाने का उपाय स्वास्थ्य की विधि नहीं है।

कृष्ण जब कह रहे हैं कि भय नहीं रह जाता, क्रोध नहीं रह जाता, तो समझना कि क्रोध और भय टेंपरेचर हैं। जो बीमार आदमी के, डिजीज्ड माइंड के, भीतर जिसका मन आपस में लड़ रहा है, कलह से भरा है—कलहग्रस्त मन में क्रोध का बुखार होता है। कलहग्रस्त मन में कमजोरी आ जाती है। स्वयं से लड़कर आदमी टूट जाता है, अपनी शक्ति को खोता है और इसलिए भयभीत हो जाता है। क्रोध और भय, स्वयं जब आदमी मन में संघर्ष में पड़ा होता है, तब लक्षणाएं हैं। वे खबर देती हैं कि आदमी भीतर बीमार है, चित्त रुग्ण है। बस, इतनी ही खबर। और जब क्रोध और भय नहीं होते, तब खबर मिलती है कि भीतर चित्त स्वस्थ है। चित्त का स्वास्थ्य समाधि है, अंतर—स्वास्थ्य समाधि है।

इस भेद को इसलिए आपसे कहना चाहा कि आप क्रोध और भय से मत लड़ने लग जाना। क्रोध और भय को देखना, जानना, पहचानना। उनकी पहचान से पता चलेगा कि भीतर समाधि नहीं है। फिर समाधि लाने के उपाय अलग ही हैं। समाधि लाने के उपाय करना। समाधि आ जाएगी, तो क्रोध और भय चले जाएंगे। टेंपरेचर कहेगा कि नहीं, थर्मामीटर बताएगा कि नहीं। जब क्रोध और भय मालूम न पड़े, तब समझना कि समाधि फलित हुई है।

लेकिन हम इससे उलटा कर लेते हैं, क्रोध और भय को दबा लेते हैं। दबाने से एक खतरा है। वह खतरा यह है कि समाधि तो भीतर फलित नहीं होती, दबे हुए क्रोध और भय के कारण हमें पता भी नहीं चलता कि भीतर समाधि नहीं है। हम लक्षणों में धोखा दे लेते हैं।

मैंने गुरजिएफ का नाम बीच में लिया था। और मैंने कहा कि गुरजिएफ के कोई पास आता, तो वह शराब पिलाता। वह न केवल शराब पिलाता, बल्कि जब कोई आदमी साधना के लिए उसके पास आता, तो वह अजीब— अजीब तरह के टेंपटेशन पैदा करता। वह अजीब सिचुएशस, स्थितियां पैदा करता। वह एक आदमी को इस हालत में ला देता कि उसको पता ही न चले कि उसको क्रोध दिलाया जा रहा है, उसका पूरा क्रोध कावा देता। वह ऐसी हालत पैदा कर देता कि वह आदमी बिलकुल पागल होकर क्रुद्ध हो जाए। और जब वह पूरे क्रोध में आ जाता, तब वह उस आदमी को कहता कि जरा जागकर देख कि कितना क्रोध है तेरे भीतर! जब तू आया था तब इतना क्रोध नहीं था। लेकिन तू यह मत समझना कि यह क्रोध अभी आ गया है। यह था तब भी, लेकिन भीतर दबा था, अब प्रकट हुआ है। इसे पहचान ले, क्योंकि यही लक्षण है।

हमें पता ही नहीं चलता कि हमारे भीतर कितना दबा है। आमतौर से हम समझते हैं कि कभी—कभी कोई हमें क्रोधित करवा देता है। यह बड़ी झूठी समझ है। कोई दुनिया में किसी को क्रोधित नहीं करवा सकता, जब तक कि भीतर क्रोध मौजूद न हो। दूसरे लोग तो केवल निमित्त बन सकते हैं, खूंटियां बन सकते हैं, कोट आपका ही याता है, कोट खूंटी का नहीं होता। आपके पास कोट होता है, तो आप टांग देते हैं। आप यह नहीं कह सकते कि इस खूंटी ने कोट टंगवा लिया। कोट तो था ही—चाहे हाथ पर टांगते, चाहे सांकल पर टांगते, चाहे खीली पर टांगते, चाहे कंधे पर टांगते—कही न कहीं टांगते। कोट तो था ही आपके पास, खूंटी ने सिर्फ रास्ता दिया, आपका कोट टांग लिया। खूंटी जिम्मेवार नहीं है, जिम्मेवार आप ही हैं। खूंटी सिर्फ निमित्त है।

एक आदमी मुझे गाली देता है। आग भड़क उठती है, क्रोध आ जाता है। तो मैं कहता हूं? इस आदमी ने क्रोध पैदा करवा दिया। यह आदमी क्रोध पैदा करवा सकता है? तो मैं आदमी हूं कि मशीन हूं कि इसने बटन दबाई और क्रोध पैदा हो गया।

नहीं, क्रोध मेरे भीतर उबल रहा है, यह आदमी सिर्फ निमित्त है। और ऐसा मत कहिए कि यह आदमी मुझको खोज रहा है। असलियत तो यह है कि मैं इस आदमी को खोज रहा हूं। अगर यह न मिले, तो मैं मुसीबत में पड़ जाऊंगा। यह मिल जाता है, तो मैं हल्का हो जाता हूं अनबर्डन्ह हो जाता हूं, बोझ उतर जाता है।

जैसे एक कुएं में हम बालटी डालते हैं। फिर बालटी में पानी भरकर आ जाता है। लेकिन कुएं में पानी तो होना चाहिए न! बालटी खाली कुएं से पानी नहीं ला सकती, सूखे कुएं से पानी नहीं ला सकती। खड़खड़ाकर लौट आएगी। कह देगी, नहीं है। दूसरे आदमी की गाली ज्यादा से ज्यादा बालटी बन सकती है मेरे भीतर। लेकिन क्रोध वहां होना चाहिए, तब उस बालटी में भरकर बाहर आ जाएगा।

सब भरा है भीतर। दबा—दबाकर बैठे हैं। बहुत कागजी दबाव है, बड़ा दबाव नहीं है। जरा खरोंच दो, अभी उभर पड़ेगा। लेकिन उसे देखना जरूरी है।

तो कृष्ण की इस बात से यह मत समझ लेना कि क्रोध को दबा लिया, भय को दबा लिया, तो निश्चित हो गए, समाधिस्थ हो गए, स्थितधी हो गए! इतना सस्ता मामला नहीं है। दबाने की बजाय क्रोध को उभारकर ही देखना। और जब कोई गाली दे, तो अपने भीतर देखना, कितना उभरता है! और जब कोई गाली दे, तो उसे धन्यवाद देना कि तेरी बड़ी कृपा! तू अगर बालटी न लाता, तो अपने कुएं की खबर ही न मिलती। ऐसा कभी—कभी बालटी ले आना।

कबीर ने कहा है, निंदक नियरे राखिए, आंगन कुटी छवाय। साधुओं से कबीर ने कहा है कि साधुओ! अपने निंदक को आंगन—कुटी छवाकर अपने पड़ोस में ही बसा लो, कि जैसे ही तुम बाहर निकलो, वह बालटी डाल दे और तुम्हारे भीतर जो पड़ा है, वह तुम्हें दिखाई पड़ जाए। क्योंकि उसे तुम देख लो, उसे तुम पहचान लो, तो तुम्हें अपनी असली स्थिति का बोध हो। और जिसे अपनी असली स्थिति का बोध नहीं है, वह अपनी परम स्थिति को कभी प्राप्त नहीं हो

सकता है। जो अपनी वास्तविक, यथार्थ स्थिति को जानता है आज के क्षण में, वह अपनी परम स्थिति को, परम स्वभाव को भी उपलब्ध करने की यात्रा पर निकल सकता है।

क्रोध और भय इंगित हैं, सूचक हैं, सिंबालिक हैं, सिंप्टमैटिक हैं। उनसे डायग्नोसिस कर लेना। उनसे अपना निदान कर लेना कि ये हैं, तो मेरे भीतर समाधि नहीं है। लेकिन इनको दबाकर मत सोच लेना कि इनको दबाने से समाधि हो जाती है। नहीं, समाधि आएगी तो ये नहीं हो जाएंगे। इनके दबाने से समाधि फलित नहीं होगी। इसलिए कृष्ण ने बहुत ठीक सूत्र कहे, दुख उद्विग्न न करे, सुख की आकांक्षा न हो, क्रोध उत्तप्त न करे, भय कंपाए नहीं, तो जानना अर्जुन कि ऐसा व्यक्ति समाधिस्थ है।

प्रश्न :

भगवान श्री, स्थितप्रज्ञ के गुण—लक्षण कहते हुए आपने यह तो विशदता की कि उसकी सेंसिटिविटी ब्लंट नहीं होती। तो स्थितप्रज्ञ मनुष्य सुख में विगतस्पृह रहेगा और दुख में अनुद्विग्नमन रहेगा। तो इसमें एक बाधा पड़ जाती है। अगर वह सुख को सुख की भांति और कष्ट को कष्ट की भांति न ले, तो उसकी संवेदना को ह्यूमन, मानवीय कैसे कहें? स्थितप्रज्ञ होना क्या सुपर ह्यूमन फिनामिनन है?

जिसकी प्रज्ञा जागी, थिर हुई, अकंप हुई, क्या उसे कष्ट का पता नहीं चलेगा?

अब यहां एक नया शब्द बीच में आया है, जो अभी चर्चा में नहीं था। सुख था, दुख था, कष्ट नहीं था। इनके फासले को समझना जरूरी होगा।

कष्ट तथ्य है, दुख व्याख्या है। पैर में काटा चुभता है, तो चुभन तथ्य है, फैक्ट है, स्थितप्रज्ञ को भी होगी। स्थितप्रज्ञ मर नहीं गया है कि पैर में काटा चुभे तो पता नहीं चले। पता चलेगा। शायद आपसे ज्यादा पता चलेगा। क्योंकि उसकी प्रज्ञा ज्यादा शात है, ज्यादा संवेदनशील है। उसकी अनुभूति की क्षमता आपसे गहरी और घनी है। उसका बोध, उसकी सेंसिटिविटी आपसे प्रगाढ़ है, अनंत गुना प्रगाढ़ है। शायद आपको जो काटा चुभा है, इस तरह कभी पता ही नहीं चला होगा, जैसा उसको पता चलेगा। क्योंकि पता चलना ध्यान की क्षमता पर निर्भर होता है।

एक युवक खेल रहा है हाकी मैदान में। पैर पर चोट लग गई है हाकी की। खून बह रहा है अंगूठे से। नाखून टूट गया है। उसे कुछ पता नहीं है। सारे देखने वाले देख रहे हैं कि पैर से खून टपक रहा है। वह दौड़ रहा है, और खून की बिंदुओं की कतार बन जाती है। फिर खेल खत्म हुआ और वह पैर पकड़कर बैठ गया है। और वह कह रहा है कि कब यह चोट लग गई? मुझे कुछ पता नहीं है! क्या हुआ? चोट लगी और पता नहीं चला!

असल में जब चोट लगी, तब उसकी अटेंशन कहीं और थी, ध्यान कहीं और था। और ध्यान के बिना पता नहीं चल सकता। अंगूठे तक पहुंचने के लिए ध्यान उसके पास था ही नहीं। ध्यान एंगेब्द था, आकुपाइड था, पूरा का पूरा संलग्न था खेल में। अभी ध्यान के पास सुविधा न थी कि अंगूठे तक जाए। तो अंगूठा पड़ा रहा, चिल्लाता रहा कि चोट लगी है, चोट लगी है। लेकिन कहीं कोई सुनवाई न थी। सुनने वाला मौजूद नहीं था। सुनने वाला उस यात्रा पर जाने को राजी नहीं था, जहां अंगूठा है। सुनने वाला अभी कहीं और था, व्यस्त था। फिर खेल बंद हुआ; व्यस्तता समाप्त हुई। सुनने वाला, ध्यान, अटेंशन वापस आया। अब फुर्सत थी। वह पैर की तरफ भी गया। वहां पता चला कि खून बह रहा है, चोट लग गई है, दर्द है।

तो स्थितप्रज्ञ की प्रज्ञा तो पूरे समय अव्यस्त है, अनआकुपाइड है। जिस व्यक्ति का चित्त बिलकुल शांत है, उसकी चेतना हमेशा अव्यस्त है। उसकी चेतना कहीं भी उलझी नहीं है, सदा अपने में है। तो उसके पैर में अगर कांटा गड़ेगा, तो अनंत गुना अनुभव उसे होगा, जितना हमें होता है। कष्ट तथ्य है, वह जानेगा कि पैर में कष्ट है। लेकिन पैर में कष्ट उसका, मुझमें दुख है, ऐसी व्याख्या नहीं बनेगा। पैर का कष्ट एक घटना है—बाहर, दूर, अलग।

ध्यान रहे, कष्ट और हमारे बीच सदा फासला है, दुख और हमारे बीच फासला नहीं है। जब हम कष्ट से आइडेंटिफाइड होते हैं, जब कष्ट ही मैं हो जाता हूं, तब कष्ट दुख बनता है। वह कहेगा, पैर में चोट है, पैर में काटा गड़ रहा है। वह उपाय करेगा कि काटे को निकाले, पैर के लिए इंतजाम करे। लेकिन इससे उद्विग्न नहीं है।

अब यह भी बड़े मजे की बात है कि अगर पैर में कष्ट है, तो उद्विग्न होने से कम नहीं होगा। जितना उद्विग्न आदमी होगा, उतना कम करने के उपाय कम कर सकेगा। जितना अनुद्विग्न आदमी होगा, उतने शीघ्र उपाय कर सकेगा।

मैं एक गांव में ठहरा था। मेरे पड़ोस के मकान में आग लग गई। एक बहुत मजेदार दृश्य देखने को मिला। तीन मंजिल मकान है। पूरे मकान पर टीन ही टीन छाए हुए हैं। दूसरे मंजिल पर आग लगी। बीड़ी के पत्ते रखे हुए हैं। मकान मालिक इतना उद्विग्न हो गया कि वह तीसरी मंजिल पर चढ़ गया, जहां उसकी टंकी है पानी की। और उसने टंकी से बालटिया लेकर पानी फेंकना शुरू कर दिया तीसरी मंजिल से। सारा मकान टीन से छाया हुआ है। टीन आग की तरह लाल तप रहे हैं। वह पानी उन टीनों पर गिरे और वह पानी जाकर नीचे खड़े लोगों पर गिरे, जो घर से बच्चों को निकाल रहे हैं, सामान निकाल रहे हैं। जिस पर वह पानी गिर जाए, वही चीखकर भागे कि मार डाला! फिर कोई उसके पास आने को तैयार न हुआ।

भीड़ खड़ी है, सारे लोग नीचे से चिल्ला रहे हैं, तुम यह क्या पागलपन कर रहे हो! पानी डालना बंद करो, नहीं तो तुम्हारे बच्चे अंदर मर जाएंगे। तुम्हारे घर से एक चीज न निकाली जा सकेगी। लेकिन वह आदमी बस इतना ही चिल्ला रहा है, बचाओ! आग लग गई! बचाओ! आग लग गई! और पानी डालता चला जा रहा है। उस आदमी ने—आग ने नहीं—उस पूरे मकान को जलवा त्. दिया। क्योंकि एक आदमी भी बुझाने की स्थिति में भीतर नहीं जा सका। एक बच्चा भी मरा, आग से नहीं, उसके पानी से। उस तक पहुंचने का भी कोई उपाय न रहा कि कैसे उस तक कोई चढ़कर जाए! उसका पानी इतने जोर से आता था कि कौन वहा चढकर जाए! बांसों से लोगों ने दूसरे मकानों पर चढ़कर उस पर चोट की कि भाई साहब! यह क्या कर रहे हो? वह बांस को ऐसा अलग कर दे और कहे कि बचाओ! आग लगी है! और पानी डालता रहा।

यह उद्विग्न चित्त आत्मघाती हो जाता है। अनुद्विग्न चित्त, जो उचित है, वह करता है। कष्ट हो सिर्फ, दुख न हो, तो उद्विग्न नहीं होते आप, सिर्फ कष्ट के बोध से भरे होते हैं। दुख मानसिक व्याख्या है, कष्ट तथ्य है। ठीक ऐसे ही अकष्ट तथ्य है, सुख मानसिक व्याख्या है।

स्थितप्रज्ञ कष्ट और अकष्ट को भलीभांति जानता है। कीटों पर लिटाइए, तो उसे पता चलता है कि काटे हैं; और गद्दी पर बिठाइए, तो उसे पता चलता है कि गद्दी है। लेकिन गद्दी पर बैठने की वह आकांक्षा नहीं बांध लेता, गद्दी पर बैठकर वह पागल नहीं हो जाता, गद्दी से वह एक नहीं हो जाता। गद्दी सुख नहीं बनती, मानसिक व्याख्या नहीं बनती, एक भौतिक तथ्य होती है। काटे भी एक भौतिक तथ्य होते हैं।

स्थितधी अनुभव में, अनुभूति में, तथ्यों के जानने में पूरी तरह संवेदनशील होता है। लेकिन व्याख्या जो हम करते हैं, वह नहीं करता है। मृत्यु उसकी भी आती है। हम दुखी होते हैं, वह दुखी नहीं होता। वह मृत्यु को देखता है कि मृत्यु आती है। बुढ़ापा उसका भी आता है। ऐसा नहीं कि उसे पता नहीं चलता कि अब बुढ़ापा आ गया। लेकिन वह बुढ़ापे को देखता है कि जीवन का एक तथ्य है और आता है। वह जवानी को जाते देखता, बुढ़ापे को आते देखता। बुढ़ापे के कष्ट होंगे, शरीर जीर्ण—जर्जर होगा। लेकिन शरीर होगा, स्थितधी को ऐसा नहीं लगता कि मैं हो रहा हूं। लेकिन जब हम बूढ़े होते हैं, तो ऐसा नहीं लगता कि शरीर बूढा हो रहा है, ऐसा लगता है कि मैं बूढ़ा हो रहा हूं।

हमारे प्रत्येक तथ्य में हमारा मैं तत्काल समाविष्ट हो जाता है। जीवन का कोई तथ्य हमारे मैं की व्याख्या के बाहर नहीं छूटता। हम प्रत्येक तथ्य को तत्काल व्याख्या, इंटरप्रिटेशन बना लेते हैं। स्थितप्रज्ञ की कोई व्याख्या नहीं है। वह अ को अ कहता है, ब को ब कहता है। वह कहीं भी अपने को जोड़ नहीं लेता है। और चूंकि जोड़ता नहीं, इसलिए सदा बाहर खड़े होकर हंस सकता है।

मैंने सुना है, इपिक्टेटस यूनान में, जिसको कृष्ण समाधिस्थ कहें, ऐसा एक व्यक्ति हुआ। वह कहता था, मुझे मार डालो तो भी मैं हंसता रहूंगा, मुझे काट डालो तो भी मैं हंसता रहूंगा। सम्राट ने उसे पकड़ बुलाया और कहा कि छोड़ो

ये बातें। हम बातें नहीं मानते, हम कृत्य मानते हैं। दो पहलवान बुलवाए, जंजीरें बांधकर इपिक्टेटस को डाल दिया और कहा कि इसका एक पैर उखाड़ो। उन पहलवानों ने उसका एक पैर उखाड़ने के लिए पैर मोड़ा। इपिक्टेटस ने कहा कि बिलकुल ठीक, जरा और। अभी तुम जितना कर रहे हो, इससे सिर्फ कष्ट हो रहा है, पैर टूटेगा नहीं। जरा और, बस जरा और कि टूट जाएगा!

सम्राट ने कहा, तू पागल तो नहीं है! अपने ही पैर को तोड़ने की तरकीब बता रहा है! इपिक्टेटस ने कहा कि मुझे ज्यादा ठीक से पता चल रहा है, उन बेचारों को क्या पता चलेगा। दूसरे का पैर मरोड़ रहे हैं। मैं इधर भीतर जान रहा हूं कि तकलीफ बढ़ती जा रही है, तकलीफ बढ़ती जा रही है, बढ़ती जा रही है। अब ठीक वह जगह है, जहां हड्डी टूट जाएगी। पर सम्राट ने कहा, तेरा पैर हम तोड़ रहे हैं!

इपिक्टेटस ने कहा कि अगर मुझे तोड़ रहे होते, तो बात और होती। मेरे पैर को ही तोड़ रहे हैं न? तो मेरे पैर को आप नहीं तोडेंगे, तो कल मौत तोड देगी। और आप तो सिर्फ पैर ही तोड़ रहे हैं, फुटकर, मौत होलसेल तोड़ देगी, सभी कुछ टूट जाएगा। एक पैर तोड़ रहे हैं, दूसरा तो बचा है। इपिक्टेटस से हम भीतर कह रहे हैं कि देखो बेटे, एक ही टूट रहा है, अभी दूसरा बचा है। अभी तुम इसको ही तुड़वा दो ठीक से।

फिर यह भी हम अनुभव कर रहे हैं—उसने कहा —कि जितनी देर लगेगी टूटने में, उतनी देर कष्ट होगा। तुम्हारा प्रयोग भी न हो पाएगा, हमारा प्रयोग भी न हो पाएगा। आज मौका आ गया है। कहा हमने सदा है कि कोई तोड़ डाले हमें, तो कुछ न होगा। आज देखने का अवसर तुमने जुटा दिया। तुम भी देख लोगे, हम भी देख लेंगे कि कष्ट दुख बनता है या नहीं बनता है।

कष्ट— अकष्ट अलग बात है, सुख और दुख बिलकुल अलग बात है। सुख और दुख मनुष्य की व्याख्या है। इसलिए जब आप पूछ रहे हैं कि क्या ऐसा आदमी सुपर धमन हो जाएगा?

निश्चित ही। सुपर धमन इन अर्थों में नहीं कि उसे काटे नहीं चुभेंगे। इन अर्थों में भी अतिमानवीय नहीं कि उसे बीमारी होगी, तो पीड़ा नहीं होगी। अतिमानवीय इन अर्थों में नहीं कि मौत आएगी, बुढ़ापा आएगा, तो वह का नहीं होगा। नहीं, अतिमानवीय इन अर्थों में कि वह व्याख्या जो मनुष्य की करने की आदत है, नहीं करेगा। वह मनुष्य की व्याख्या करने की आदत के बाहर होगा। इन अर्थों में वह अतिमानव है, सुपरमैन है।

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम् ।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ।।57।।

यदा संहरते चायं कूर्माऽङ्गानीव सर्वशः।
ड़न्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ।।58।।

और जो पुरुष सर्वत्र स्नेहरहित हुआ उस— उस शुभ तथा अशुभ वस्तुओं को प्राप्त होकर न प्रसन्न होता है और न द्वेष करता है, उसकी प्रज्ञा स्थिर है।

और कछुआ अपने अंगों को जैसे समेट लेता है, वैसे ही यह पुरुष जब सब ओर से अपनी इंद्रियों को इंद्रियों के विषयों से समेट लेता है, तब उसकी प्रज्ञा स्थिर होती है।

हर्ष में, विषाद में, अनुकूल में, प्रतिकूल में भेद नहीं। लेकिन यह अभेद कब फलित होगा? कृष्ण कहते हैं, जैसे कछुआ अपने अंगों को कभी भी भीतर सिकोड़ लेता है, जैसे कछुआ अपने अंगों को सिकोड़ना जानता है, ऐसा ही समाधिस्थ पुरुष विषयों से अपनी इंद्रियों को सिकोड़ना जानता है। थोडी नाजुक बात है, थोड़ी डेलिकेट बात है।

यहां इंद्रियों को सिकोड़ना.? योग की दृष्टि में इंद्रियों के दो रूप हैं। एक इंद्रिय का वह रूप जो हमें बाहर से दिखाई पड़ता है, कहें इंद्रिय का शरीर। एक इंद्रिय का वह रूप जो हमें दिखाई नहीं पड़ता है, लेकिन इंद्रिय का प्राण है, कहें इंद्रिय का प्राण या आत्मा इंद्रिय की।

एक मेरी आँख है। इंस्ट्रूरमेंट है आंख का। इस आंख के संबंध में चिकित्सक आंख का सब कुछ बता सकता है। आंख को काट-पीट करके, सर्जरी करके, एक-एक रग-रेशे की खबर ले आ सकता है। लेकिन यह सिर्फ आंख शरीर है आंख का। वस्तुत: यह इंद्रिय नहीं है। सिर्फ इंद्रिय की बाह्य रूप-आकृति है। इंद्रिय तो। और है। इस आंख के पीछे देखने की जो वासना है, देखने की जो। आकांक्षा है, वह इंद्रिय है, वह प्राण है। उसका किसी चिकित्सक को आंख के काटने-पीटने से कुछ पता नहीं चल सकता।

प्रत्येक इंद्रिय का शरीर है और प्रत्येक इंद्रिय का प्राण है। आंख सिर्फ देखने का काम ही नहीं करती, देखने की आकांक्षा, देखने का रस भी उसके पीछे छिपा है। देखने की वासना भी उसके पीछे हिलोरें लेती है। वही वासना असली इंद्रिय है।

कृष्ण को समझने के लिए समस्त इंद्रियों के इन दो हिस्सों को समझ लेना जरूरी है। अन्यथा आदमी आंख फोड़ने लग जाए। इंद्रिया सिकोड़ने का क्या मतलब-आंख फोड़ लें? इंद्रियां सिकोड़ने का क्या मतलब-कान फोड़ लें? इंद्रियां सिकोड़ने का क्या मतलब-जीभ काट डालें? और आप सोचते हों कि नहीं, ऐसा तो कोई भी नहीं समझता, तो गलत सोचते हैं।

जमीन पर अधिक लोगों ने ऐसा ही सोचा है। ऐसा ही सोचा है। ऐसे साधु हुए हैं, जिन्होंने आंखे फोडी हैं। ऐसे साधु हुए हैं, जिन्होंने कान फोड़े हैं। ऐसे साधु हुए हैं, जिन्होंने पैर काट डाले हैं। ऐसे साधु हुए हैं, जिन्होंने जननेंद्रिया काट डाली हैं। मध्ययुग में योरोप में एक बहुत बड़ा ईसाइयों का संप्रदाय था, जिसने लाखों लोगों की जननेंद्रिया कटवा डालीं। स्त्रियों के स्तन कटवा डाले, पुरुषों की जननेंद्रियां कटवा डालीं।

लेकिन क्या आंख के फूट जाने से देखने की वासना फूट जाती है? क्या जननेंद्रिय के कट जाने से काम की वासना कट जाती है? तब तो सभी के कामवासना के बाहर हो जाएं!

नहीं, इंद्रिय कट जाने से सिर्फ अभिव्यक्ति का माध्यम कट जाता है। और अभिव्यक्त होने की जो प्रबल वासना थी भीतर, वह और विक्षिप्त होकर दौड़ने लगती है। मार्ग न मिलने से वह और पागल हो जाती है, द्वार न मिलने से और विक्षिप्त हो जाती है। हां, दूसरों को पता चलना बंद हो जाता है। वह वासना प्रेत बन जाती है, उसके पास शरीर नहीं रह जाता।

कृष्ण जिस इंद्रिय को सिकोड़ने की बात कर रहे हैं, और कछुए से जो उदाहरण दे रहे हैं; कछुए के उदाहरण को बहुत मत खींच लेना। गीता पर टीका लिखने वालों ने बहुत खींचा है। आदमी कछुआ नहीं है। कोई उदाहरण पूरे नहीं होते। सब उदाहरण सिर्फ सूचक होते हैं-जस्ट ए इडिकेशन-एक इशारा, जिससे बात समझ में आ जाए, बस। जैसे कछुआ अपनी इंद्रियों को सिकोड़ लेता है, ऐसा ही स्थितप्रज्ञ, वे जो भीतर की रस इंद्रियां हैं, उन्हें सिकोड़ लेता है। लेकिन रस इंद्रियों का जो बाह्य-शरीर है, उसे सिकोड़ने का कोई मतलब नहीं है। उसे सिकोड़ने का मतलब तो सिर्फ मरना है। और उसे काटकर भीतर का रस नहीं कटता। ही, भीतर का रस कट जाए, तो वह इंद्रिय शुद्ध इंस्टूमेंट रह जाती है-वासना का नहीं, सिर्फ व्यवहार का।

आंख तब देखती है बिना देखने की वासना के। तब जो आंख के सामने आ जाता है, वह देखा जाता है। लेकिन तब आंख कुछ आंख के सामने आ जाए, इसकी आकांक्षा से पीड़ित नहीं होती है। तब जो भोजन सामने आ जाता है, वह कर लिया जाता है। तब जीभ उस भोजन को करने में सहयोग देती है, लार छोड़ती है। लेकिन जो भोजन सामने नहीं है, जीभ फिर उसके लिए लार नहीं टपकाती है। फिर जो कान में पड़ जाता है, वह सुन लिया जाता है। लेकिन फिर कान तड़पते नहीं हैं किसी को सुनने के लिए। नहीं, तब इंद्रियां सिर्फ व्यवहार के माध्यम रह जाती हैं।

ध्यान रहे, जब इंद्रियां व्यवहार के माध्यम रहती हैं, तब वे केवल बाहर से सेंस डेटा इकट्ठा करती हैं, बस। जब इंद्रियां सिर्फ व्यवहार का माध्यम होती हैं, तो बाहर के जगत से तथ्यों की सूचना भीतर देती है। और जब इंद्रियां वासना के माध्यम बनती हैं, तब वासनाओं को बाहर ले जाकर विषयों से जोड़ने के उपयोग में लाई जाती हैं। ये दोनों अलग-अलग फंक्यान हैं, ये दोनों अलग-अलग काम हैं। यह तो आंख का काम है कि वह बताए कि सामने दरख्त है। यह आंख का काम है कि वह बताए कि सामने पत्थर है। यह आंख का काम है कि वह खबर दे कि सामने क्या है। लेकिन जब आॅख वासना से भरती है, तो बहुत मजेदार है।

तुलसीदास भागे हैं पत्नी को खोजने। उस वक्त उनकी आंख फंक्यानल नहीं है, उस वक्त सांप को वे रस्सी समझ लेते हैं। आंख अपना फंक्यान नहीं कर पा रही है। वासना इतनी तीव्र है, रस्सी को ही देखना चाहती है। इसलिए सांप को भी रस्सी देख लेती है। रस्सी ही चाहती है उस वक्त, एक क्षण चैन नहीं है। सामने के दरवाजे से जाएंगे, उचित नहीं; अभी पत्नी को आए देर भी नहीं हुई, वे पीछे —पीछे ही चले आए हैं।

नदी पार करते हैं, तो एक मुरदे की लाश को लकड़ी समझकर सहारा लेकर नदी पार कर जाते हैं। आंख अपना फंक्यानल काम नहीं कर पा रही है। आंख जो करने के लिए बनी है, वह नहीं कर पा रही है कि लाश है। न, मन कह रहा है, कहां लाश! मन को लाश से कोई लेना—देना नहीं है। मन को पहुंचना है उस पार। उस पार भी नहीं पहुंचना है, वह जो पत्नी चली गई है, उस तक पहुंचना है। अब मन बिलकुल आंखों का उपयोग नहीं कर रहा है। आंखें बिलकुल अंधी हो गई हैं। लाश का सहारा लेकर, लकड़ी समझकर, पार हो जाते हैं। सांप को पकड़कर छत पर चढ़ जाते हैं। अब यहां अगर हम ठीक से समझें, तो आंख का जो व्यवहार; है, जिसके लिए आंख है, वह नहीं हो रहा है। बल्कि आंख के पीछे जो वासना है, वह वासना आंख पर हावी है। आंख वासना से आब्सेस्ट है। वासनाग्रस्त आंख अंधी हो जाती है। वह वही देखती है, जो देखना चाहती है, वह नहीं देखती, जो है।

कृष्ण जब कहते हैं, कछुए की तरह इंद्रियों को सिकोड़ लेता है स्थितधी, तो मतलब यह नहीं है कि आंखें फोड़ लेता है, कि आंखें बंद कर लेता है। मतलब इतना ही है कि आंखों से सिर्फ आंखों का ही काम लेता है। सिर्फ देखता ही है आंखों से, वही देखता है, जो है। कानों से वही सुनता है, जो है। हाथों से वही छूता है, जो है। विषयों पर वासना को आरोपित नहीं करता। विषयों पर वासना के सपनों के भवन नहीं बनाता। विषयों को आपूरित नहीं कर देता। सुना है मैंने कि मजनू को उसके गांव के राजा ने बुलाया और कहा, तू बिलकुल पागल है, साधारण—सी स्त्री है लैला।

शायद आपको भी खयाल न हो, क्योंकि मजनू इतना लैला—लैला चिल्लाया है कि ऐसा खयाल पैदा हो गया है कि लैला कोई बहुत सुंदर स्त्री रही होगी। लैला बहुत साधारण स्त्री है।

सम्राट ने बुलाकर कहा कि तू पागल है। बहुत साधारण—सी स्त्री है, उसके पीछे तू दीवाना है? उससे अच्छी स्त्रियां मैं तुझे बुलाए देता हूं; कोई भी चुन ले। सम्राट ने नगर की बारह सुंदरतम लड़कियों को लाकर खड़ा कर दिया। मजनू पर उसे दया आ गई। मजनू हंसने लगा। उसने कहा कि कहां लैला और कहां ये स्त्रियां! आपका दिमाग तो ठीक है? लैला के चरणों में भी तो ये कोई नहीं बैठ सकतीं! सम्राट ने कहा, दिमाग मेरा ठीक है कि तेरा ठीक है! मजनू ने कहा, कुछ भी हो, दिमाग से लेना—देना क्या है! लेकिन एक बात आपसे कहे देता हूं अब दोबारा यह बात मत उठाना।

क्योंकि लैला के सौंदर्य को देखने के लिए मजनू की आंख चाहिए। मजनू के पास कौन—सी आंख है? कोई और तरह की आंख है? आंख तो ऐसी ही है, जैसी मेरी है, आपकी है, उस राजा के पास थी। आंख तो जैसी सब की है वैसी उसकी भी है। लेकिन आंख वासनाग्रस्त है। आंख आंख का काम नहीं कर रही है, पीछे जो आंख की वासना की इंद्रिय है, वह हावी है। आंख वही देख रही है, जो वासना दिखाना चाह रही है।

इस भीतर की अंतर—इंद्रिय को सिकोड़ लेने की बात है— अंतर—इंद्रिय को, दिस इनर इंस्टूमेंट, यह जो भीतर है हमारे।

इस फासले को ठीक से हमें समझ लेना चाहिए। जब हाथ से मैं जमीन छूता हुं तब मेरा हाथ क्या वही काम करता है! जब हाथ से मैं पत्थर छूता हूं तब भी वही करता है! जब हाथ से मैं किसी उसको छूता हूं जिसको मैं छूना चाहता हूं तब हाथ वही काम करता है? नहीं, हाथ के काम में फर्क पड़ गया है। जब मैं जमीन को छूता हूं तो सिर्फ छूता हूं। कोई

वासना नहीं है वह, सिर्फ स्पर्श है, एक भौतिक घटना है, एक मानसिक आरोपण नहीं। लेकिन जब मैं किसी को प्रेम करता हूं और उसके हाथ को छूता हूं? तब सिर्फ भौतिक घटना है?

नहीं, तब एक मानसिक घटना भी है। हाथ सिर्फ छू ही नहीं रहा है, हाथ कुछ और भी कर रहा है। हाथ कोई सपना भी देख रहा है। हाथ किसी ड्रीम में उतर रहा है। हाथ अपने स्पर्श करने के ही अकेले काम को नहीं कर रहा है, स्पर्श के आस—पास काव्य भी बुन रहा है, कविता भी गढ़ रहा है।

वह भीतरी, वह जो भीतरी हाथ है, जो यह कर रहा है, इस भीतरी हाथ के सिकोड़ लेने की बात कृष्ण कह रहे है—कि स्थितधी अंतर—इंद्रियों को ऐसे ही सिकोड़ लेता है, जैसे कछुआ बहिर—इद्रियों को सिकोड़ लेता है।

लेकिन आदमी को बहिर—इद्रिया सिकोड़नी नहीं हैं। बहिर—इंद्रियां परमात्मा की बड़ी से बड़ी देन हैं। उनके कारण ही जगत का विराट हम तक उतरता है, उनके द्वार से ही हम परिचित होते हैं प्रकाश से। उनके द्वार से ही आकाश से, उनके द्वार से ही फूलों से, उनके द्वार से ही मनुष्य के सौंदर्य से, उनके द्वार से ही जगत में जो भी है, उससे हम परिचित होते हैं।

नहीं, इंद्रियां तो द्वार हैं। लेकिन इन द्वार से सिर्फ जो बाहर है, वह भीतर जाए, तब तक ये द्वार विक्षिप्त नहीं हैं। और जब भीतर का मन इन द्वार से बाहर जाकर हमले करने लगता है, और चीजों पर आरोपित होने लगता है, और आग्रह निर्मित करने लगता है, और कल्पनाएं सजाने लगता है, और सपने निर्माण करने लगता है, तब, तब हम एक जाल में खो जाते हैं, जो जाल बाहर की इंद्रियों का नहीं है, अंतर—इंद्रियों का है।

अंतर—इंद्रियों को सिकोड़ लेता है स्थितधी। कैसे सिकोड़ लेता होगा? क्योंकि बहिर—इद्रियों को सिकोड़ना तो बहुत आसान समझ में आता है। यह हाथ फैला है, इसको सिकोड़ लिया। इसके लिए कोई स्थितप्रश होने की जरूरत नहीं है। कछुआ स्थितप्रज्ञ नहीं है, नहीं तो सभी आदमी कछुए हो जाएं और स्थितप्रज्ञ हो जाएं।

लेकिन बहुत लोगों ने कछुआ बनने की कोशिश की है। कई साधु, संन्यासी, साधक, त्यागी, योगी, कछुआ बनने की कोशिश में लगे रहे हैं कि कैसे इंद्रियों को सिकोड़ लें। कछुआ बनने से कोई हल नहीं है। कछुआ तो सिर्फ एक प्रतीक था, और अच्छा प्रतीक था। शायद कृष्ण जिस दुनिया में थे, इससे अच्छा प्रतीक और कोई मिल नहीं सकता था। आज भी नहीं है। आज भी हम खोजें कोई दूसरा सल्लीटयूट, तो बहुत मुश्किल है। कछुआ बिलकुल ठीक से बात कह जाता है—ऐसा कुछ, भीतर के जगत में। लेकिन वह भीतर के जगत में होगा कैसे?

बाहर की इंद्रियां सिकोड़ना बहुत आसान है। आंखें फोड़ लेना कितना आसान है, लेकिन देखने का रस छोडना कितना कठिन है! सच तो यह है कि आंखें फोड़ लो, तभी पहली दफा पता चलता है कि देखने का रस कितना है! रात आंख तो बंद हो जाती है, लेकिन सपने तो बंद नहीं होते। और दिनभर जो नहीं देखा, वह भी रात में दिखाई पड़ता है। आंख फोड़ लेंगे, तो क्या होगा? इतना ही होगा कि सपने चौबीस घंटे चलने लगेंगे। और क्या होगा?

सपनों पर बहुत खोजबीन हुई है। जब आप रात सपना देखते हैं, तो अब तो बाहर से भी पता चल जाता है कि आप सपना देख रहे हैं कि नहीं। अब तो यंत्र बन गए हैं, जो आपकी आंखों पर लगा दिए जाते हैं रात में, और रातभर अंकित करते रहते हैं कि इस आदमी ने कब सपना देखा, कब नहीं देखा। क्योंकि जब आप सपना देखते हैं, तब बंद आंख में भी आंख तेजी से चलने लगती है। बंद आंख है, देखने को कुछ नहीं है वहां, लेकिन आंख तेजी से चलने लगती है। उसके मूवमेंट्स रैपिड हो जाते हैं। इतनी तेजी से आंख चलने लगती है, जैसे सच में वह देख रही है अब।

तो वह उसकी आंख की गति ऊपर से पकड़ ली जाती है, वह ग्राफ बन जाता है कि आंख कब कितनी तेजी से चली। रात में कितनी बार आपने सपने देखे, वह सब ग्राफ बता देता है। अब तो धीरे— धीरे, धीरे—धीरे समझ में आ रहा है कि किस तरह का सपना देखा! ग्राफ से वह भी पर्तो चलने लगा है। क्योंकि जब आप सेक्यूअल सपना देखते हैं, जब आप कामुक सपना देखते हैं—और सौ में से कम से कम पचास सपने कामुक होते हैं सभी के, साधारणत: सभी के; जो असाधारण हैं, उनके जरा और ज्यादा परसेंटेज में होते हैं; पचास प्रतिशत कामुक सपने—तब तो आंख ही नहीं, जननेंद्रिय भी तत्काल प्रभावित हो जाती है। उस पर भी मशीन लगाई जा सकती है, वह भी खबर कर देती है ग्राफ

पर। अब कोई भी नहीं है, आप बिलकुल अकेले हैं अपने सपने में। न कोई विषय है, न कोई स्त्री है, न कोई पुरुष है, न कोई भोजन है—कुछ भी नहीं है। निपट अकेले हैं, सब इंद्रियां बंद हैं। फिर यह भीतर कौन गति कर रहा है? ये अंतर—इंद्रियां हैं, जो भीतर गति कर रही हैं। और इनकी भीतरी गति के कारण इनकी बहिर—इंद्रिय भी प्रभावित हो जाती है। काट डालें पूरे आदमी को, तो भी कोई फर्क नहीं पड़ेगा। पता नहीं चलेगा बस, सब भीतर— भीतर धुआ होकर घूमने लगेगा। अक्सर सज्जन आदमियों के भीतर सब धुआ हो जाता है, भीतर घूमने लगता है। बुरे आदमी जो बाहर कर लेते हैं, अच्छे आदमी भीतर करते रहते हैं। धर्म की दृष्टि से कोई भी फर्क नहीं है।

इन भीतर की इंद्रियों को कैसे सिकोड़ेंगे? एक छोटा—सा सूत्र, फिर हम दूसरा श्लोक लें। बहुत छोटा—सा सूत्र है भीतर की इंद्रियों को सिकोड़ने का।

एक दिन बुद्ध बैठे हैं ऐसे ही किसी सांझ; बहुत लोग उन्हें सुनने आ गए हैं। एक आदमी सामने ही बैठा हुआ पैर का अंगूठा हिला रहा है। बुद्ध ने बोलते बीच में उस आदमी से कहा कि क्यों भाई, यह पैर का अंगूठा क्यों हिलाते हो? वह आदमी भी चौंका, और लोग भी चौंके, कि कहां बात चलती थी, कहां उस आदमी के पैर का अंगूठा! बुद्ध ने कहा, यह पैर का अंगूठा क्यों हिल रहा है? उस आदमी का तत्काल अंगूठा रुक गया। उस आदमी ने कहा, आप भी कैसी बातें देख लेते हैं! छोड़िए भी। बुद्ध ने कहा, नहीं, छोडूंगा नहीं। जानना ही चाहता हूं अंगूठा क्यों हिलता था? तुम्हारे इतने सवालों के जवाब मैंने दिए, आज पहली दफे मैंने सवाल पूछा है; मुझे उत्तर दो। उस आदमी ने कहा, अब आप पूछते हैं, तो मुश्किल में डालते हैं। सच बात यह है कि मुझे पता ही नहीं था कि पैर का अंगूठा हिल रहा है, और जैसे ही पता चला, रुक गया। तो

बुद्ध ने कहा, जो अंतर-कंपन हैं, वे पता चलते ही रुक जाते हैं। अंतर-कंपन जो हैं, वे पता चलते ही रुक जाते हैं।

तो भीतर की इंद्रियों को सिकोड़ना नहीं पड़ता, सिर्फ इसका पता चलना कि भीतर इंद्रिय है और गति कर रही है, इसका बोध ही उनका सिकुड़ना हो जाता है-दि वेरी अवेयरनेस। जैसे ही पता चला कि यह भीतर काम की वासना उठी, कुछ करें मत, सिर्फ देखें। आंख बंद कर लें और देखें, यह भीतर काम की वासना उठी। यह काम की वासना चली जननेंद्रिय के केंद्रों की तरफ-सिर्फ देखें। दो सेकेंड से ज्यादा नहीं, और आप अचानक पाएंगे, सिकुड़ गई। यह क्रोध उठा, चला यह बाहर की इंद्रियों को पकड़ने। सिर्फ देखें; आंख बंद कर लें और देखें; और आप पाएंगे, वापस लौट गया। यह किसी को देखने की इच्छा जगी और आंख तड़पी। देखें, चली भीतर की इंद्रिय बाहर की इंद्रिय को पकड़ने। देखें-सिर्फ देखें-और आप पाएंगे कि वापस लौट गई।

भीतर की इंद्रियां इतनी संकोचशील है कि जरा-सी भी चेतना नहीं सह पातीं। उनके लिए अचेतना जरूरी माध्यम है-मूर्च्छा। इसलिए जो अपने भीतर की इंद्रियों के प्रति जागने लगता है, उसकी भीतर की इंद्रियां सिकुड़ने लगती हैं, अपने आप सिकुड़ने लगती हैं। बाहर की इंद्रियां बाहर पड़ी रह जाती हैं, भीतर की इंद्रियां सिकुड़कर अंदर चली जाती हैं। ऐसी स्थिति व्यक्ति की समाधिस्थ। स्थिति बन जाती है।

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः ।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ।।59।।
यद्दपि इंद्रियों द्वारा विषयों को न ग्रहण करने वाले देहाभिमानी तपस्वी पुरुष के भी विषय तो निवृत्त हो जाते है, परंतु रस निवृत्त नही होता। परंतु इस पुरूष का रस भी परमात्मा को सक्षम करके निवृत्त हो जाता है।

देहाभिमानी तपस्वी के.......।

तपस्वी और देहाभिमानी? असल. में देहाभिमान दो तरह का हो सकता है-भोगी का, तपस्वी का। लेकिन दोनों की स्थिति देहाभिमान की है, बाडी ओरिएंटेशन की है। क्योंकि भोगी भी मानता है कि जो करूंगा वह शरीर से, और तपस्वी भी मानता है कि जो करूंगा वह शरीर से। भोगी भी मानता है कि शरीर ही द्वार है सुख का, त्यागी भी मानता है कि शरीर ही द्वार है सुख का। सुख की धारणाएं उनकी अलग हैं। भोगी शरीर से ही विषयों तक पहुंचने की कोशिश करता है, त्यागी शरीर से ही विषयों से छूटने की कोशिश करता है। लेकिन शरीर ओरिएंटेशन है, शरीर ही आधार है दोनों का। और दोनों बड़े देहाभिमानी हैं, बाडी-सेंट्रिक हैं, शरीर-केंद्रित हैं। दोनों की दृष्टि शारीरिक है।

इस तथ्य को पहले समझें, फिर दूसरा हिस्सा खयाल में लाया जा सकता है। दोनों की स्थिति शारीरिक है। एक आदमी सोचता है, शरीर से इंद्रियों को तृप्त कर लें। सारा जगत सोचता है।

मुझसे कोई पूछता था कि चार्वाक का कोई संप्रदाय क्यों न बना? उसके शास्त्र क्यों न बचे? उसके मंदिर क्यों न निर्मित हुए? उसका कोई पंथ, उसका कोई संप्रदाय क्यों नहीं है?

तो मैंने उस आदमी को कहा कि शायद तुम सोचते हो कि उसके पास अनुयायी कम हैं इसलिए, तो गलत सोचते हो। असल में संप्रदाय सिर्फ माइनर ग्रुप्स के बनते हैं; मेजर ग्रुप का संप्रदाय नहीं बनता। जो अल्पमतीय होते हैं, उनका संप्रदाय बनता है; जो बहुमतीय होते हैं, वे बिना संप्रदाय के जीते हैं। बहुमत को संप्रदाय बनाने की जरूरत नहीं होती। बहुमत को संप्रदाय बनाने की क्या जरूरत है? अल्पमत संप्रदाय बनाता है। करोड़ आदमी हैं, दस आदमी एक मत के होंगे, तो संप्रदाय बनाएंगे, बाकी क्यों बनाएंगे? चार्वाक का संप्रदाय इसीलिए नहीं बना कि सारी पृथ्वी चार्वाक की है। सब चार्वाक हैं, नाम कुछ भी रखे हों।

इसलिए चार्वाक शब्द बड़ा अच्छा है, वह बना है चारु-वाक से, जो वचन सभी को प्रिय लगते हैं। चार्वाक का मतलब, जो बातें सभी को प्रीतिकर हैं। चार्वाक का एक दूसरा नाम है, लोकायत। लोकायत का मतलब है, लोक को मान्य, जो सबको मान्य है। बड़ी अजीब बात है। जो सबको मान्य है, ऐसा विचार लोकायत है। जो सबको प्रीतिकर है, मधुर है, ऐसा विचार चार्वाक है। नहीं, कोई मंदिर नहीं, कोई संप्रदाय नहीं बना, क्योंकि सभी उसके साथ हैं।

क्या, चार्वाक कहता क्या है? वह कहता यह है कि सब सुख ऐंद्रिक हैं। इंद्रिय के अतिरिक्त कोई सुख नहीं है। सुख यानी ऐंद्रिक होना। सुख चाहिए तो इंद्रिय से ही मिलेगा। ही, वह कहता है, यह बात सच है कि दुख भी इंद्रिय से मिलते हैं। यह बिलकुल ठीक ही है, जहा से सुख मिलेगा, वहीं से दुख भी मिलेगा। लेकिन वह कहता है, कोई भी पागल भूसे के कारण गेहूं को नहीं फेंक देता। कोई भी पागल कीटों के कारण फूल को नहीं छोड़ देता। तो दुख के कारण सुख को छोड़ने की कोई भी जरूरत नहीं है। बुद्धिमान दुख को कम करता और सुख को बढ़ाता चला जाता है। लेकिन सब सुख ऐंद्रिक हैं।

क्या इस बात पर आपको कभी भी शक हुआ है कि सब सुख ऐंद्रिक हैं 7' अगर शक नहीं हुआ, तो कृष्ण को समझना बहुत मुश्किल हो जाएगा। हम सब का भी भरोसा यही है कि सब सुख ऐंद्रिक हैं। हमने कोई सुख जाना भी नहीं है, जो इंद्रिय के बाहर जाना हो। स्वाद जाना है, संगीत जाना है, दृश्य देखे हैं, गंध थी है, सौंदर्य देखा है—जो भी, वह सब इंद्रियों से देखा है। वह सब ऐंद्रिक हैं। इंद्रिय के अतिरिक्त हमने और कुछ जाना नहीं है। हम इंद्रियों के अनुभव का ही जोड़ हैं।

इसीलिए तो हमें आत्मा का कोई पता नहीं चलता। क्योंकि इंद्रिय का अनुभव ही जिसकी सारी संपदा है, वह शरीर के ऊपर किसी भी तत्व को नहीं जान सकता है। यह तो हमारी स्थिति है। यह हमारी देहाभिमानी भोगी की स्थिति है।

फिर अगर कभी कोई देहाभिमानी भोगी देह को भोगते— भोगते ऊब जाता है..। हर चीज को भोगते— भोगते ऊब आ जाती है। सभी चीजों से चित्त ऊब जाता है। अगर स्वर्ग में भी बिठा दिया जाए आपको, तो ऊब जाएगा। ऐसा मत सोचना कि स्वर्ग में बैठे हुए लोग जम्हाई नहीं लेते, लेते हैं। वहां भी ऊब जाएंगे।

बर्ट्रेड रसेल ने तो कहीं मजाक में कहा है कि मैं स्वर्ग से बहुत डरता हूं। सबसे बड़ा डर यह है कि इटरनल है स्वर्ग, फिर वहा से लौटना नहीं है। उसने कहा, इससे बहुत डर लगता है। दूसरा, उसने कहा कि वहां सुख ही सुख है, सुख ही सुख है, तो फिर ऊब नहीं जाएंगे सुख से? मिठास भी उबा देती है; बीच—बीच में नमकीन की जरूरत पड़ जाती है। सुख भी उबा देता है; बीच—बीच में दुख की भी जरूरत पड़ जाती है। सब एकरसता मोनोटोनस हो जाती है और उबा देती है। कितना ही सुंदर संगीत हो, बजता रहे, बजता रहे, तो फिर सिर्फ नींद ही ला सकता. है, और कुछ नहीं कर सकता।

तो देहाभिमानी भोगी ऊब जाता है, इंद्रियों के सुखों से ऊब जाता है, तो वह इंद्रियों की शत्रुता करने लगता है। वह देहाभिमानी भोगी की जगह देहाभिमानी त्यागी बन जाता है। फिर जिस—जिस इंद्रिय से उसने सुख पाया है, उस—

उस इंद्रिय को सताता है। और कहता है, अब इससे विपरीत चलकर सुख पा लेंगे। लेकिन मानता है इंद्रिय को ही आधार अब भी।

तो कृष्ण कहते हैं, ऐसा व्यक्ति ज्यादा से ज्यादा विषयों को छोड़ सकता है, लेकिन रस से मुक्त नहीं होता। अब आंख फोड़ डालेंगे, तो दिखाई पड़ने वाले आब्जेक्ट से तो मुक्त हो ही जाएंगे। जब दिखाई ही नहीं पड़ेगा, तो दिखाई पड़ने वाला विषय तो खो ही जाएगा। जब कान ही न होंगे, तो वीणा तो खो ही जाएगी, सुनाई पड़ने वाला विषय तो खो ही जाएगा। लेकिन क्या रस खो जाएगा? रस, विषय से अलग बात है। विषय बाहर है, रस भीतर है, इंद्रियां बीच में हैं। इंद्रियां सेतु हैं, ब्रिजेज हैं; रस और विषय के बीच में बना हुआ सेतु हैं। रस को ले जाती हैं विषय तक, विषय को लाती हैं रस तक। इंद्रियां बीच के द्वार, मार्ग, पैसेज हैं। इंद्रिय तोड़ दें, तो ठीक है, विषय से रस का संबंध टूट जाएगा। लेकिन रस तो नहीं टूट जाएगा। रस भीतर निर्मित रह जाएगा—अपनी जगह तड़पता, अपनी जगह कूदता, विषयों की मांग करता, लेकिन विषयों तक पहुंचने में असमर्थ, इंपोटेंट; क्लीव हो जाएगा रस। पुंसत्व खो देगा, द्वार खो देगा, मार्ग खो देगा, विक्षिप्त हो जाएगा, लेकिन भीतर घूमने लगेगा। अब वह रस भीतर कल्पना के विषय निर्मित करेगा। क्योंकि जब वास्तविक विषय नहीं मिलते, जब एक्चुअल आब्जेक्ट्स नहीं मिलते, तब चित्त कल्पित विषय निर्मित करना शुरू कर देता है।

दिनभर उपवास करके देखें, तो रात सपने में पता चल जाता है, कि दिनभर किया उपवास तो रातभर सपने में भोजन करना पड़ता है। रस भीतर विषय निर्मित करने लगता है। वह कहता है, कोई फिक्र नहीं। बाहर नहीं मिला, भीतर कर लेते हैं।

असल में, रस इतना प्रबल है कि अगर विषय न हों, तो वह काल्पनिक विषयों को निर्मित कर लेता है। सेतु टूट जाए तो भीतर ही विषय बना लेता है, आटो इरोटिक हो जाता है। दूसरे की जरूरत ही नहीं रह जाती, वह आत्ममैथुन में रत हो जाता है। अपने ही रस को अपना ही विषय बनाकर भीतर ही जीने लगता है। पागल, विक्षिप्त, न्यूरोटिक हो जाता है।

कृष्ण जो कह रहे हैं कि विषय तो टूट जाएंगे, छूट जाएंगे देहाभिमानी त्यागी के, लेकिन रस नहीं छूटेंगे। और असली सवाल विषयों का नहीं है, असली सवाल रसों का है। असली सवाल इसका नहीं है कि बाहर कोई बड़ा मकान है, असली सवाल इसका है कि मेरे भीतर बड़े मकान की चाह है। असली सवाल यह नहीं है कि बाहर सौंदर्य है; असली सवाल यह है कि मेरे भीतर सौंदर्य की मालकियत की आकांक्षा है। असली सवाल यह नहीं है कि बाहर

फूल है, असली सवाल यह है कि मेरे हाथ में फूल को तोड़ने की हिंसा है। असली सवाल फूल नहीं है, रहे फूल; अगर मेरे हाथ में तोड़ने की हिंसा नहीं है, तो मैं निकल जाऊंगा फूल के पास से। फूल कभी कहता नहीं कि आओ, तोड़ो। फूल बुलाता नहीं, फूल। !' निमंत्रण नहीं देता, मैं ही जाता हूं।

रस! कीमती क्या है, विषय या रस? अगर विषय कीमती है, तो तपश्चर्या बहुत मैटीरियल होगी, शारीरिक होगी, फिजिकल होगी। और अगर रस, तो फिर तपश्चर्या मनोवैज्ञानिक होगी, फिर तपश्चर्या आंतरिक होगी। और मैंने जैसा कहा कि कृष्ण गहरे मनोवैज्ञानिक हैं, इसलिए साधक के इस मामले में भी वह जो। फिजिकल, वह जो भौतिक साधक है, उसकी गहरी व्यंगना और गहरी मजाक कर रहे हैं। वे यह कह रहे हैं कि उसके विषय छूट जाते हैं, रस नहीं छूटता। और देहाभिमानी कहकर जितनी कडी आलोचना हो सकती है, उतनी उन्होंने कर दी है। देहाभिमानी तपस्वी! अब देहाभिमानी और तपस्वी कहते हैं!

नहीं, देह को मानने वाला तपस्वी.....। उसको भी तपस्वी कह रहे हैं, क्योंकि तपश्चर्या तो बहुत करता है—व्यर्थ करता है, करता बहुत है। असफल होता है, चेष्टा बहुत करता है। श्रम में कमी नहीं बाहर से छोड़ दिए जाएं और सारे रस भीतर रह जाएं, तो इससे सिर्फ साइकोसिस, विक्षिप्तता पैदा होती है, विमुक्तता पैदा नहीं होती।

समाधिस्थ व्यक्ति के विषय नहीं, रस छूट जाते हैं। और जिस दिन रस छूटते हैं, उस दिन विषय विषय नहीं रह जाते। क्योंकि वे विषय इसीलिए मालूम पड़ते थे कि रस उनको विषय बनाते थे। जिस दिन रस छूट जाते हैं, उस दिन विषय वस्तुएं रह जाते हैं, विषय नहीं—थिंग्स। क्योंकि उनसे अब कोई रस का संबंध नहीं रह जाता।

समाधिस्थ व्यक्ति रसों के विसर्जन में उत्सुक है, विषयों के त्याग में नहीं। त्याग हो जाता है, यह दूसरी बात है। लेकिन असली सवाल आंतरिक रसों के विसर्जन का है। इसलिए यह लक्षण भी वे गिनाते हैं कि समाधिस्थ व्यक्ति रसों से मुक्त हो जाता है, विषयों की उसे जरा भी चिंता नहीं है।

यह ध्यान में ले लेना जरूरी है, क्योंकि यही कृष्ण के ऊपर बड़े से बड़ा आक्षेप रहा है। क्योंकि कृष्ण को आम्र —कुंजों में नाचते देखकर बड़ी कठिनाई पड़ेगी देहाभिमानी तपस्वी को, कि यह क्या हो रहा है! उसकी पीड़ा का अंत न रहेगा। उसका वश चले तो वह पुलिस में रिपोर्ट लिखाने भागेगा। यह क्या हो रहा है? ये कृण और नाच रहे हैं? कृष्ण को समझ पाना उसे मुश्किल हो जाएगा। उसके खयाल में भी नहीं आ सकता कि किसी व्यक्ति के रस अगर भीतर सिकुड़ गए हों, तो बाहर के विषयों से कोई भी सेतु नहीं बनता। सेतु बनाने वाला ही खो गया है। तब न कोई भागना है, न कोई चाहना है।

इसलिए कृष्ण के जीवन में अदभुत घटनाएं घटती हैं। जिस वृदावन में वे नाचे हैं, उस वृंदावन को जब छोड्कर चले गए हैं, तो लौटकर भी नहीं देखा है। वासनाग्रस्त चित्त होता, तो छोड्कर जाना बहुत मुश्किल पड़ता। वासनाग्रस्त चित्त होता, तो स्मृतियां बड़ी पीड़ा देतीं। वासनाग्रस्त चित्त होता, तो लौट—लौटकर वृंदावन मन को घेरता, सपनों में आता।

नहीं, वृंदावन जैसे था ही नहीं—गया। जैसे पृथ्वी के नक्शे पर अब नहीं है। जिन्होंने वृंदावन में उनके आस—पास नृत्य करके उनको प्रेम किया था, उनकी पीड़ा का अंत नहीं है। वहां रस भी रहा होगा। इसलिए उनका मन तो वृंदावन और द्वारिका के बीच ब्रिज बनाने की चेष्टा में लगा ही है, सेतु बनाना ही चाहता है। लेकिन कृष्ण को? कृष्य को जैसे कोई बात ही नहीं है, सब समाप्त हो गया। जहा थे, वहा थे। जहा नहीं हैं, वहा नहीं हैं। वृंदावन नहीं है। वह नक्शे से गिर गया। रस न हो भीतर, तो ही यह संभव है। रस भीतर हो, तो यह कतई संभव नहीं है।

खूबी है यह कि जितना रस, वासना से भरा हुआ व्यक्ति हो, उतना विषय के निकट होने पर पीड़ित नहीं होता, जितना दूर होने पर पीडित होता है। जिसे हम चाहते हैं, वह पास रहे, तो उसकी याद नहीं आती है। जिसे हम चाहते हैं, वह दूर हो, तभी उसकी याद आती है। जिसे हम चाहते हैं, वह पास हो, तब तो भूलना बहुत आसान है। जिसे हम चाहते हैं, जब वह पास न हो, तब भूलना बहुत कठिन है।

लेकिन कृष्ण उलटे हैं। जो पास है, उसे वे पूरी तरह याद रखते हैं। हम, जो पास है, उसे बिलकुल भूल जाते हैं; जो दूर है, उसे पूरी तरह याद रखते हैं। कृष्ण, जो पास है, उसे पूरी तरह याद रखते हैं। वह उनकी चेतना में पूरा का पूरा है। उसी से तो भ्रम पैदा होता है। उसी से तो प्रत्येक को लगता है कि इतनी अटेंशन मुझे दी, इतना ध्यान मेरी तरफ दिया, फिर मुझे इस तरह भूल गए, तो बड़ी गैर—वफादारी है।

उसे पता नहीं है कि कृष्ण जहा हैं, वहीं उनका पूरा ध्यान है। वे जहा हैं, वहा पूरे हैं; उनकी उपस्थिति पूरी है। पत्थर को भी देखते हैं, तो पूरे ध्यान से देखते हैं। पत्थर भूल में नहीं पड़ता, यह बात दूसरी है। लेकिन आदमी को देख लेते हैं, तो भूल में पड़ जाता है। स्त्री को देख लेते हैं, तो और भी भूल में पड़ जाती है। फिर वह तड़पती है, रोती है, चिल्लाती है। उसे पता नहीं है कि कृष्ण गए, तो गए। वहा भीतर कोई सेतु नहीं बनता, वहा भीतर कोई रस नहीं है। इस तथ्य को न समझे जाने से कृष्ण के संबंध में भारी भूल हुई है। जिस स्थितधी की वे बात कर रहे हैं, वैसी थिरता चेतना की स्वयं उनमें पूरी तरह फलित हुई है।

यततो ह्यपि कौन्तेय पुरूषस्य वियश्चितः ।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः ।।60।।
और हे अर्जुन, इसलिए यत्न करते हुए बुद्धिमान पुरुष के भी मन को यह प्रमथन स्वभाव वाली इंद्रियां बलात्कार से हर लेती हैं।

तानि सर्वीणि संयम्य युकृत आसीत मत्पर ।
वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठित ।।61।।
इसलिए मनुष्य को चाहिए कि उन संपूर्ण इंद्रियों को वश में करके समाहित चित्त हुआ मेरे परायण स्थित होवे। क्योंकि जिस युवक के इंद्रियां वश में होती है, उसकी ही प्रज्ञा स्थिर होती है।

एक चेतावनी कृष्ण देते हैं, वह यह कि इंद्रियां भी व्यक्ति को खींचती हैं विषयों की ओर। इस बात को थोड़ा गहरे में समझना आवश्यक है। इंद्रियां भी व्यक्ति को खींचती हैं विषयों की ओर। साधक को भी इंद्रियां गिरा देती हैं।

इंद्रियां कैसे गिराएंगी? क्या इंद्रियों के पास अपनी कोई व्यक्ति की आत्मा से अलग शक्ति है? क्या इंद्रियों के पास अपनी कोई अलग ऊर्जा है? क्या इंद्रियां इतनी बलवान हैं स्वतंत्र रूप से कि व्यक्ति की आत्मा को गिराएंगी?

नहीं, इस कारण नहीं। इंद्रियों के पास कोई भी शक्ति नहीं है। इंद्रियां व्यक्ति से स्वतंत्र अस्तित्ववान भी नहीं हैं। लेकिन फिर भी इंद्रियां गिरा सकती हैं, गिराने का कारण बहुत दूसरा है।

वह दूसरा यह है कि इंद्रियां मैकेनिकल हैबिट्स हैं, यांत्रिक आदतें हैं। और आपने जन्मों—जन्मों में जिस इंद्रिय की जो आदत बनाई है जो कंडीशनिंग की है उसकी, जब—आप बदलते हैं तो उसे कुछ भी पता नहीं होता कि आप बदल गए हैं। वह अपनी पुरानी आदत को दोहराए चली जाती है। इंद्रियां यंत्र हैं, उन्हें कुछ पता नहीं होता। आपने एक ग्रामोफोन पर रिकार्ड चढ़ा दिया। रिकार्ड गाए चला जा रहा है। आधा गीत हो गया, अब आपका मन बिलकुल सुनने को नहीं है, लेकिन रिकार्ड गाए चला जा रहा है। अब रिकार्ड को कोई भी पता नहीं है कि अब आपका मन सुनने का नहीं है। रिकार्ड को पता हो भी नहीं सकता। रिकार्ड तो सिर्फ यंत्र की तरह चल रहा है। लेकिन उठकर आप रिकार्ड को बंद कर देते हैं, क्योंकि रिकार्ड को कभी आपने अपना हिस्सा नहीं समझा।

इंद्रियों के यंत्र के साथ एक दूसरी आइडेंटिटी है कि आप इंद्रियों को अपना ही समझते हैं। इसलिए इंद्रियां जब चलती चली जाती हैं, तो अपना ही समझने के कारण आप भी उनके पीछे चल पड़ते हैं। आप उनको यंत्र की तरह बंद नहीं कर पाते।

अब एक आदमी है, उसे सिगरेट पीने की यांत्रिक आदत पड़ गई है, या शराब पीने की। कसम खाता है, नहीं पीऊंगा। निर्णय करता है, नहीं पीऊंगा। लेकिन उसकी इंद्रियों को कोई पता नहीं उनके पास बिल्ट —इन —प्रोसेस हो गई है। तीस साल से वह पी रहा है, चालीस साल से वह पी रहा है। इंद्रियों का एक नियमित ढांचा हो गया है कि हर आधे घंटे में सिगरेट चाहिए। हर आधे घंटे पर यंत्र की घंटी बज जाती है, सिगरेट लाओ। तो आदमी कहता है, तलब! तलब लग गई है। तलब वगैरह क्या लगेगी! वह कहता है, सिगरेट पुकारती है। सिगरेट क्या पुकारेगी!

नहीं, चालीस—पचास वर्ष का यांत्रिक जाल है इंद्रियों का। हर आधे घंटे पर सिगरेट मिलती रही है, इंद्रियों के पास व्यवस्था हो गई है। उनके पास बिल्ट—इन—प्रोग्रेम है। उनके पास चौबीस घंटे की योजना है कि जब आधा घंटा हो जाए तब आपको खबर कर दें कि अब सिगरेट चाहिए। पूरा शरीर! और इंद्रियों के साथ पूरा शरीर है।

तो जब सिगरेट चाहिए, तब शरीर के अनेक अंगों से यह खबर आएगी कि सिगरेट चाहिए। होंठ कुछ पकड़ने को आतुर हो जाएंगे, फेफड़े कुछ खींचने को आतुर हो जाएंगे, खून निकोटिन लेने के लिए प्यासा हो जाएगा नाक कुछ छोड़ने को आतुर हो जाएगी। मन किसी,चीज में व्यस्त होने को आतुर हो जाएगा। यह इकहरी घटना नहीं है, कांप्लेक्स है, इसमें पूरा शरीर संयुक्त है। और पूरा शरीर इंतजार करने लगेगा कि लाओ। सब तरफ से दबाव पड़ने लगेगा कि लाओ।

चालीस-पचास साल का दबाव है। और आपने जो निर्णय लिया है सिगरेट न पीने का, वह सिर्फ चेतन मन से लिया है। और यह दबाव चालीस साल का अचेतन मन के गहरे कोनों तक पहुंच गया है। इसकी बड़ी ताकत है। और मन जल्दी बदलने को राजी नहीं होता, क्योंकि अगर मन जल्दी बदलने को राजी हो, पूरा मन, तो आदमी जिंदा नहीं रह सकता। इसलिए मन को बहुत आर्थोडाक्सी दिखलानी पड़ती है। मन को पूरी कोशिश करनी पड़ती है कि जो चीज चालीस साल सीखी है, वह एक सेकेंड में छोड़ोगे! तब तो जिंदगी बहुत मुश्किल में पड़ जाए।

एक आदमी चालीस साल एक स्त्री को प्रेम करता रहा, जरा-सा गुस्सा आता है, कहता है, छोड़ देंगे! लेकिन कोई छोड़ता-वोड़ता नहीं, क्योंकि वह चालीस साल जो पकड़ा है, उसका वजन ज्यादा है। और अगर ऐसा छोड़ना होने लगे, तो जिंदगी एकदम अस्तव्यस्त हो जाए। इसलिए मन कहता है, जिसको चालीस साल पकड़ा है, कम से कम चालीस साल छोड़ो।

फिर मन के भी संकल्प के क्षण हैं और संकल्पहीनता के क्षण हैं। मन कभी एक ही स्थिति में नहीं होता। कभी वह संकल्प के शिखर पर होता है, तब ऐसा लगता है कि दुनिया की कोई ताकत नहीं रोक सकती। कभी वह विषाद के गड्ढे में होता है, तब ऐसा लगता है, कोई जरा-सा धक्का दे जाएगा तो मर जाऊंगा।

तो जब वह संकल्प के शिखर पर होता है, तब वह कहता है, ठीक है, छोड़ देंगे। घंटेभर बाद जब विषाद में उतर जाता है, वह कहता है, क्या छोड़ना है! कैसे छोड़ सकते है! नहीं छूट सकती है, अपने वश की बात नहीं है। इस जन्म में नहीं हो सकता है। यह कहता जाता है भीतर, हाथ तब तक सिगरेट को खोल लेते हैं, हाथ तब तक मुंह में लगा देते हैं, दूसरा हाथ माचिस जला देता है। जब तक वह भीतर यह सोच ही रहा है, नहीं हो सकता, तब तक शरीर पीना ही शुरू कर देता है। तब वह जागकर देखता है, क्या हो गया यह? यह तो फिर सिगरेट पी ली? नहीं, यह नहीं हो सकता है! तब निर्णय पक्का हो जाता है कि यह हो ही नहीं सकता है।

इसलिए कृष्ण कहते हैं कि इंद्रियां खींच-खींचकर गिरा देती हैं साधक को।

इंद्रियां क्या गिराएंगी! साधक का ही अतीत में इंद्रियों को दिया गया बल, साधक का ही इंद्रियों को दिया गया अभ्यास, साधक की ही इंद्रियों को दी गई कंडीशनिंग, संस्कार...।

और संस्कार बड़ी प्रबल चीज है। हम सब संस्कार से जीते हैं। हम चेतना से नहीं जीते, हम जीते संस्कार से हैं। संस्कार बड़ी प्रबल चीज है। इतनी प्रबल चीज है कि जब संस्कार की सारी स्थिति भी चली जाती है, अकेला संस्कार रह जाता है, तो अकेला संस्कार भी काम करता रहता है।

मैंने सुना है, विलियम जेम्स एक बहुत बड़ा मनोवैज्ञानिक अमेरिका में हुआ। वह संस्कार पर बड़ा काम कर रहा था। असल में जो मनोविज्ञान संस्कार पर काम नहीं करता, वह मनोविज्ञान बन ही नहीं सकता। क्योंकि बहुत गहरी पकड़ तो मनुष्य की कंडीशनिंग की है। सारी पकड़ तो वहां है, जहां आदमी जकड़ा हुआ है; जहां अवश, हेल्पलेस हो जाता है। तो वह कंडीशनिंग पर काम कर रहा है। वह एक दिन होटल में बैठा हुआ है, एक मित्र से बात कर रहा है। और उसने कहा कि इतना अजीब जाल है संस्कार का मनुष्य का कि जिसका कोई हिसाब नहीं है।

तभी उसने देखा कि सामने पहले महायुद्ध का रिटायर हुआ मिलिट्री का एक कैप्टन चला जा रहा है। अंडों की एक टोकरी लिए हुए है। उसे सूझा कि ठीक उदाहरण है। विलियम जेम्स ने होटल के भीतर से चिल्लाकर जोर से कहा, अटेंशन। वह मिलिट्री का आदमी अंडे छोड़कर अटेंशन खड़ा हो गया। सारे अंडे जमीन पर गिर पड़े। रिटायर हुए भी वर्षों हो गए उसे। लेकिन अटेंशन ने बिलकुल बंदूक के ट्रिगर की तरह काम किया। गोली चल गई।

वह आदमी बहुत नाराज हुआ कि तुम किस तरह के आदमी हो, यह कोई मजाक है? सारे अंडे फूट गए! लेकिन विलियम जेम्स ने कहा, तुमसे किसने कहा कि तुम अटेंशन हो जाओ। हमें अटेंशन कहने का हक है। तुमसे ही कहा, यह तुमने कैसे समझा? और तुमसे भी कहा, तो तुम्हें होने की मजबूरी किसने कही कि तुम हो जाओ! उस आदमी ने कहा, यह सवाल कहा है, यह कोई सोचने की बात है! ये पैर वर्षों तक अटेंशन सुने हैं और अटेंशन हुए हैं। इसमें कोई गैप ही नहीं है बीच में। उधर अटेंशन, इधर अटेंशन घटित होता है।

करीब-करीब, वह जो कृष्ण कह रहे हैं, वह एक बहुत मनोवैज्ञानिक सत्य है, कि आदमी की इंद्रियां, उसकी कंडीशनिंग- और एक जन्म की नहीं, अनेक जन्मों की। हमने वही-वही, वही-वही किया है। हम वही-वही करते रहे हैं। हम उसी जाल में घूमते रहे हैं। हम रोज एनफोर्समेंट कर रहे है। हमने जो किया है, उसको हम रोज बल दे रहे हैं। और फिर जब हम निर्णय लेते हैं कभी, तो हम इसका कोई खयाल ही नहीं करते कि जिन इंद्रियों के खिलाफ हम निर्णय ले रहे हैं, उनका बल कितना है! उसकी कोई तौल नहीं करते कभी। बिना तौले निर्णय ले लेते हैं। फिर पराजय के सिवाय हाथ में कुछ भी नहीं लगता।

तो जो साधक सीधा इंद्रियों को बदलने में लग जाएगा और जल्दी निर्णय लेगा, वह खतरे में पड़ेगा ही। इंद्रियां उसे रोज-रोज पटकेंगी। उसकी ही इंद्रियां। मजा तो यही है, किसी और की हों, तो भी कोई बात है। अपनी ही इंद्रियां! लेकिन फिर क्या रास्ता है? क्योंकि कंडीशनिंग तो बहुत पुरानी है। संस्कार बहुत पुराने हैं, जन्मों-rएrजन्मों के हैं।

अनंत जन्मों के हैं। सब इतना सख्ती से मजबूत हो गया है कि जैसे एक लोहे की जैकेट हमारे चारों तरफ कसी हो, जिसमें से हिलना-डुलना भी संभव नहीं है। लोहा है चारों तरफ आदतों का। कैसे होगा?

तब तक न होगा, जब तक हम इंद्रियों को बिलकुल ध्यान में ही न लें और निर्णय अलग किए चले जाएं, उनका ध्यान ही न लें। इसकी फिक्र ही न करें कि चालीस साल मैंने सिगरेट पी, और निर्णय ले लें एक क्षण में कि अब सिगरेट नहीं पीऊंगा, तो कभी नहीं होगा। एक क्षण के निर्णय चालीस साल की आदतों के मुकाबले नहीं टिकने वाले। क्षण का निर्णय क्षणिक है। टूट जाएगा। इंद्रियां पटक देंगी वापस उसी जगह। फिर क्या करना होगा?

असल में जिन इंद्रियों के साथ हमने जो किया है, उनको अनकंडीशड करना होता है। उनको संस्कारमुक्त करना होता है 1 जिनकी हमने कंडीशनिंग की है, जब उनको संस्कारित किया है, तो उनको गैर-संस्कारित करना होता है। और गैर-संस्कारित इंद्रियां सहयोगी हो जाती हैं। क्योंकि इंद्रियों को कोई मतलब नहीं है कि आप सिगरेट पीओ, कि शराब पीओ। कोई मतलब नहीं है। सिगरेट पीने जैसी दूसरी अच्छी चीजें भी इंद्रियां वैसे ही पकड़ लेती हैं।

एक आदमी रोज भजन करतीं है, प्रार्थना करता है सुबह। एक दिन नहीं करता है, तो दिनभर तकलीफ मालूम पड़ती है। इससे यह मत समझ लेना आप कि यह तकलीफ कुछ इसलिए मालूम पड़ रही है कि प्रार्थना में उनको बड़ा आनंद मिल रहा था। क्योंकि जिसको प्रार्थना में आनंद मिल गया, उसके तो चौबीस घंटे आनंद से भर जाते हैं। जिसको एक बार भी प्रार्थना में आनंद मिल गया, उसकी तो बात ही और है।

लेकिन आमतौर से तो प्रार्थना न करने से दुख मिलता है, करने से आनंद नहीं मिलता। यह बड़े मजे की बात है, न करने से दुख मिलता है। वह दुख हैबिचुअल है, वह वैसा ही है जैसा सिगरेट का। उसमें कोई बहुत फर्क नहीं है। रोज करते हैं, रोज आदतें कहती हैं, करो। नहीं किया, तो जगह खाली छूट जाती है। दिनभर वह खाली जगह भीतर ठक-ठक करती रहती है कि आज प्रार्थना नहीं की! फिर काम किया-आज प्रार्थना नहीं की! अब बड़ी मुश्किल हो गई। सिगरेट भी हो तो अभी जला लो और पी लो। अब सुबह तो कल आएगी।

अनकडीशनिग! जैसे-जैसे बांधा है, वैसे-वैसे खोलना भी पड़ता है। जैसे-जैसे आदत बनाई है, वैसे-वैसे आदत बिखरानी भी पड़ती है। इंद्रियों को निर्मित किया है, उनको अनिर्मित भी करना होता है।

इस अनिर्मित करने के लिए कृष्ण एक बहुत अदभुत सुझाव देते हैं। वे इस सूत्र में कहते हैं कि जो इतनी पुरुष है, वह सारा बोझ अपने ही ऊपर नहीं ले लेता।

असल में ज्ञानी पुरुष, ठीक से समझो, तो बोझ अपने ऊपर लेता ही नहीं। वह बोझ बहुत कुछ तो परमात्मा पर छोड़ देता है। सच तो यह है कि वह पूरा ही बोझ परमात्मा पर छोड़ देता है। और जो पुरानी आदतें हमला करती हैं, उनको वह पिछले कर्मों का फल मानकर साक्षीभाव से झेलता है। उनसे कोई दुख भी नहीं लेता। कहता है कि ठीक। कल मैंने किया था, इसलिए ऐसा हुआ।

बुद्ध एक गांव से निकलते। कुछ लोग गाली देते। वे हंसकर आगे बढ़ जाते। फिर कोई भिक्षु उनसे पूछता, उन्होंने गाली दी, आपने उत्तर नहीं दिए? बुद्ध कहते, कभी मैंने उनको गाली दी होंगी, वे उत्तर दे गए हैं। अब और आगे का सिलसिला क्या जारी रखना! जरूर मैंने उन्हें कभी गाली दी होंगी, नहीं तो वे क्यों कष्ट करते? अकारण तो कुछ भी घटित नहीं होता है। कभी मैंने गाली दी होंगी, उत्तर बाकी रह गया था, अब वे उत्तर दे गए हैं। अब मैं उनको फिर गाली दूं, फिर आगे का सिलसिला होता है। सौदा पट गया। लेन-देन हो गया। अब मैं खुश हूं। अब आगे उनसे कुछ लेना-देना न रहा। अब मैं आगे चलता हूं।

कृष्ण कहते हैं, ऐसा व्यक्ति, जो हमले होते हैं, उन हमलों को अतीत कर्मों की श्रृंखला मानता है। और उनको साक्षीभाव से और शांतभाव से झेल लेता है। और जो संघर्ष है, समाधिस्थ होने की जो यात्रा है, उसमें वह परमात्मा को, प्रभु को, जीवन-तत्व को, जीवन-ऊर्जा को सहयोगी बनाता है। वह इतना नही कहता कि मै ही लड़ लूंगा, मैं ही कर लूंगा।

कभी इस तत्व को थोड़ा-सा समझ ले और प्रयोग करके देखें। सिगरेट मै पीता हूं तो मैं सोचता हूं, मैं ही सिगरेट छोडूंगा। लेकिन मेरा सिगरेट पीने वाला पचास साल पुराना है और मेरा सिगरेट छोड़ने वाला मैं एक क्षण का है। तो मेरा सिगरेट छोड़ने वाला मैं हार जाएगा। लेकिन मैं कहता हूं सिगरेट पीने वाला पचास साल पुराना है, इंद्रियों की आदत मजबूत है, हमला बार-बार होगा; आज का एक क्षण का मैं तो बहुत कमजोर हूं-मैं परमात्मा पर छोड़ता हूं तू ही मुझे सिगरेट पीना छुड़ा दे।

यह भी अहंकार नहीं लेता हूं कि मैं छोडूंगा। क्योंकि जो यह अहंकार लेगा कि मैं छोडूंगा, तो वह अहंकार कहा जाएगा जिसने पचास साल कहा है कि मैं पीता हूं। उस अहंकार के मुकाबले यह छोड़ने वाला अहंकार छोटा पड़ेगा और हारेगा। इस छोड़ने वाले अहंकार को परमात्मा के चरणों में रखना जरूरी है। इसे कह देना जरूरी है कि तू सम्हाल। सिगरेट मैंने पी, अब छोड़ना चाहता हूं। लेकिन अकेला बहुत कमजोर हूं। तू साथ देना। जब मैं सिगरेट पीऊं, तब तू साथ देना।

और जब सिगरेट पीने का वापस जोर आए, तब यह मत सोचना कि अब क्या करूं और क्या न करूं! तब बजाय सिगरेट के पक्ष-विपक्ष में सोचने के परमात्मा के समर्पण की तरफ ध्यान देना। ध्यान देना कि अब वह सिगरेट फिर पुकार रही है, अब तू सम्हाल! और जैसे ही परमात्मा का स्मरण और समर्पण का स्मरण, जैसे ही विराट के प्रति समर्पण का स्मरण, कि ऊर्जा इतनी हो जाती है, अनंत की ऊर्जा हो जाती है, कि पचास साल क्या पचास जन्मों की आदत भी कमजोर हो जाती है। टूट जाती है।

एक छोटी-सी घटना, उससे आपको स्मरण आ जाए। कोई उन्नीस सौ दस में एक वैज्ञानिकों का अन्वेषक-मंडल उत्तरी ध्रुव पर यात्रा पर गया। उत्तरी ध्रुव में तीन महीने तक वे लोग फंस गए बर्फ में और लौट न सके। भोजन चुक गया। बड़ी मुश्किल थी, बड़ी कठिनाई थी।

लेकिन सबसे बड़ी कठिनाई तब हुई, जब सिगरेट चुक गई। लोग कम रोटी लेने को राजी थे, लेकिन कम सिगरेट लेने को राजी, नहीं थे। लोग कम पानी पीने को राजी थे, लेकिन कम सिगरेट लेने को राजी नहीं थे। लेकिन कोई उपाय न था। नावें फंसी थीं बर्फ में। और तीन महीने से पहले निकलने की संभावना न थी। और तीन महीने सब चलाना था। नहीं माने। तो भोजन तो किसी तरह चला थोड़ा- थोड़ा देकर, लेकिन सिगरेट सबसे पहले चुक गई। क्योंकि कोई सिगरेट कम करने को राजी न था।

फिर एक बड़ा खतरा आया। और वह खतरा यह आया कि लोगों ने नावों की रस्सियां काट-काटकर सिगरेट बनाकर पीना शुरू कर दिया। तब तो जो जहाज का कप्तान था, उसने कहा कि तुम क्या कर रहे हो यह? अगर नावों की रस्सियां कट गईं, तो फिर तीन महीने के बाद भी छुटकारा नहीं है। क्योंकि फिर ये नावें चलेंगी कैसे? पर लोगों ने कहा कि तीन महीना! तीन महीने के बाद छुटकारा होगा कि नहीं होगा, यह कुछ भी पक्का नहीं है। सिगरेट अभी चाहिए। और हम बिना सिगरेट के तीन महीने बचेंगे, यह कहां पक्का है? और तीन महीने तड़पना और रस्सियां बंधी हैं पास में जिनको पीया जा सकता है। सिगरेट तो नहीं होतीं, लेकिन फिर भी धुआ तो निकाला ही जा सकता है। तो नहीं, असंभव है। बहुत समझाया, तो रात चोरी से रस्सियां कटने लगीं।

फिर जब वह नाव लौटी, तो उसके कप्तान ने जो वक्तव्य दिया, उसने कहा कि सबसे कठिन कठिनाई जो तीन महीने में आई, वह यह थी कि लोग सिगरेट की जगह रस्सियां पी गए, कपड़े जलाकर पी गए, किताबें जलाकर पी गए। जो भी मिला, उसको पीते चले गए।

एक आदमी अखबार में पढ़ रहा था। एक स्टुअर्ट पैरी नाम का आदमी अखबार में यह पढ़ रहा था। पढ़कर उसे खयाल आया- वह भी चेन स्मोकर था, जब पढ़ रहा था, तब सिगरेट पी ही रहा था-उसे खयाल आया कि मेरी भी यही हालत होती क्या?' क्या मैं भी रस्सी पी जाता? उसने कहा कि नहीं, मैं कैसे रस्सी पी सकता था? आप भी कहेंगे कि मैं कैसे रस्सी पी सकता था? पर उसने कहा कि वहा भी तीस-चालीस लोग थे, कोई हिम्मत न जुटा पाया, सबने पी! क्या मै भी पी जाता!

उसकी आधी जली हुई सिगरेट थी। उसने ऐश-ट्रे पर नीचे रख दी और उसने कहा कि परमात्मा, अब तू सम्हाल। अब यह सिगरेट आधी रखी है नीचे। और अब मैं इसे उसी दिन उठाऊंगा, जिस दिन मेरा तुझ पर भरोसा खो जाए। और जब मैं इसे उठाने लगू तो मेरी तो कोई ताकत नहीं है, क्योंकि मैं अपने को अच्छी तरह जानता हूं कि मैं तो एक सिगरेट से दूसरी सिगरेट जलाता हूं। मैं अपने को भलीभांति जानता हूं, जैसा मैं आज तक रहा हूं, मैं भलीभांति जानता हूं कि यह सिगरेट नीचे नहीं रह सकती, मैं इसे उठा ही लूंगा। मैं अपनी कमजोरी से परिचित हूं। मेरे भीतर मुझे कोई सुरक्षा का उपाय नहीं है। मेरे भीतर मेरे परिचय में मेरे पास कोई संकल्प नहीं है जो मैं सिगरेट से बच सकूं। लेकिन मेरे मन को पीड़ा भी बहुत है। और मैं यह भी नहीं सोच पा सकता कि इतना कमजोर, इतना दीन हूं कि सिगरेट भी नहीं छोड़ सकूंगा, तो फिर मैं और क्या छोड़ सकता हूं। मैं तेरे ऊपर छोड़ता हूं। अब तू ही खयाल रखना। जब तू ही साथ छोड़ देगा, तो ही सिगरेट उठाऊंगा। हा! उठाने के पहले एक दफे तेरी तरफ आंख उठा लूंगा!

फिर तीस साल बीत गए। उस आदमी ने उन्नीस सौ चालीस में वक्तव्य दिया है कि तीस साल बीत गए—सिगरेट आधी वहीं रखी है। जब भी उठाने का स्टुअर्ट पैरी का मन होता है, तभी ऊपर की तरफ देखता हूं कि क्या इरादे हैं? सिगरेट वहा रह जाती है, पैरी यहां रह जाते हैं। तीस साल हो गए, अभी उठाई नहीं। और अब तीस साल काफी वक्त है, स्टुअर्ट पैरी ने कहा, अब मैं कह सकता हूं कि जो भरोसा, जो ट्रस्ट मैंने परमात्मा पर किया था, वह पूरा हुआ है।

तो कृष्ण अर्जुन से कह रहे हैं कि स्थितप्रज्ञ छोड़ देता है। उस गहरी साधना में लगा व्यक्ति, संयम की उस यात्रा पर निकला व्यक्ति अपने पर ही भरोसा नहीं रख लेता, वह परम तत्व पर भी छोड़ देता है, समर्पण कर देता है। वह समर्पण ही असंयम के क्षणों में, कमजोरी के क्षणों में सहारा बनता है। वह हेल्पलेसनेस ही, वह निरुपाय दशा ही—यह जान लेना कि मैं कमजोर हूं—बड़ी शक्ति सिद्ध होती है। और यह मानते रहना कि मैं बड़ा शक्तिशाली हूं बड़ी कमजोरी सिद्ध होती है।

इंद्रियां गिरा देती हैं उस संयमी को, जो अहंकारी भी है। इंद्रियां नहीं गिरा पातीं उस संयमी को, जो अहंकारी नहीं है, विनम्र है। जो अपनी कमजोरियों को स्वीकार करता है। जो उनको दबाता नहीं, जो उनको झुठलाता नहीं, लेकिन जो परमात्मा के हाथों में उनको भी समर्पित कर देता है। ऐसा संयमी व्यक्ति धीरे—धीरे रसों से, इंद्रियों के दबाव से, अतीत के किए गए संस्कारों के प्रभाव से, आदतों से, यांत्रिकता से—सभी से मुक्त हो जाता है। और तभी स्थितप्रज्ञ की स्थिति में आगमन शुरू होता है। तभी वह स्वयं में थिर हो पाता है।

आज इतना ही। शेष कल सुबह।

प्रवचन 17 : मन के अधोगमन और ऊर्ध्वगमन की सीढियां

ओशो – गीता-दर्शन – भाग एक

अध्याय—1-2 – प्रवचन 17 : मन के अधोगमन और ऊर्ध्वगमन की सीढियां

ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते ।
संगात्संजायते कामः कामान्क्रोधोऽभिजायते ।।62 ।।

विषयों को चिंतन करने वाले पुरूष की उन विषयों में आसक्ति हो जाती है। और आसक्ति से उन विषयों की कामना उत्पन्न होती है। और कामना में विध्न पड़ने से क्रोध उत्पन्‍न होता है।

क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः ।
स्मृतिभ्रंशादबुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ।।63 ।।

क्रोध से मोह उत्पन्न होता है। और मोह से स्मरणशक्ति भ्रमित हो जाती है। और स्मरणशक्ति के भ्रमित हो जाने से बुद्धि अर्थात ज्ञानशक्ति का नाश हो जाता है। और बुद्धि के नाश होने से यह पुरुष अपने श्रेय साधन से गिर जाता है।

मनुष्य के मन की भी अपनी श्रृंखलाएं हैं। मनुष्य के मन के भी ऊर्ध्वगमन और अधोगमन के नियम हैं। मनुष्य के मन का अपना वितान है। यहां मनुष्य के मन का अधोगमन कैसे होता है, कैसे वह पतन के मार्ग पर एक—एक सीढ़ी उतरता है, कृष्ण उन सीढ़ियों का पूरा ब्योरा दे रहे हैं।

सूक्ष्मतम होता है प्रारंभ, स्थूलतम हो जाता है अंत। मन के बहुत गहरे में उठती है लहर, फैलती है, और पूरे मन को ही नहीं, पूरे आचरण को, पूरे व्यक्तित्व को ग्रसित कर लेती है। सूक्ष्म उठी इस लहर को इसके स्थूल तक पहुंचने की जो पूरी प्रक्रिया है, जो उसे पहचान लेता है, वह उससे बच भी सकता है, वह उसके पार भी जा सकता है।

कहां से मन का पतन शुरू होता है? कहा से मन संसार—उन्मूख होता है? कहां से मन स्वयं को खोना शुरू करता है?

तो कृष्ण ने कहा है कि विषय के चिंतन से, वासना के विचार से। जो पहला वर्तुल, जहा से पकड़ा जा सकता है, वह है विचार का वर्तुल—सूक्ष्मतम, जहां से हम पकड़ सकते हैं। विषय की इच्छा, विषय का विचार, भोग की कामना उठती है मन में। विषय का संग करने की आकांक्षा जगती है मन में। व्रह पहली लहर है, जहा से सब शुरू होता है। काम की जो बीज—स्थिति है, वह विषय का विचार है। संग की कामना पैदा होती है, भोग की कामना पैदा होती है। राह पर देखते हैं भागती एक कार को। चमकती हुई, आंखों में कौंधकर निकल जाती है। देखते हैं एक सुंदर स्त्री को; देखते हैं एक सुंदर बलिष्ठ पुरुष को; आंख में एक कौंध—और व्यक्ति निकल जाता है। वह जो सुंदर स्त्री या सुंदर पुरुष या सुंदर कार या सुंदर भवन दिखाई पड़ा है—तत्क्षण भीतर खोजने की जरूरत है—जैसे ही वह दिखाई पड़ा है, क्या आपको सिर्फ दिखाई ही पड़ा है, सिर्फ आपने देखा ही, या देखने के साथ ही मन के किसी कोने में चाह ने भी जन्म लिया! सिर्फ देखा ही या चाहा भी! दिखाई पड़ी है एक सुंदर स्त्री, देखी ही या भीतर कोई और भी कंपन उठा—चाह का भी, माग का भी, पा लेने का भी, पजेस करने का भी। अगर सिर्फ देखा, तो बात आई और गई हो गई। सिर्फ बहिर—इंद्रियों ने भाग लिया। आंख ने देखा, मन ने खबर की, कोई जाता है। लेकिन चाहा भी, तो जो देखा, वहीं बात समाप्त नहीं हो गई। मन में वर्तुल शुरू हो गए, मन में लहरें शुरू हो गईं। देखने तक बात समाप्त नहीं हुई; भीतर चाह ने भी जन्म लिया, मांग भी उठी। आप कहेंगे, नहीं, मांगा नहीं, चाहा नहीं, देखा, सिर्फ इतना हुआ मन में कि सुंदर है। इस बात को ठीक से समझ लेना जरूरी है। इतना भी मन में उठा कि सुंदर है, तो चाह ने अपने अंकुर फैलाने शुरू कर दिए। क्योंकि सुंदर का कोई और मतलब नहीं होता। सुंदर का इतना ही मतलब होता है, जिसे चाहा जा सकता है। सुंदर का और कोई मतलब नहीं होता। असुंदर का इतना ही मतलब होता है, जिसे नहीं चाहा जा सकता।

सुंदर है, इस वक्तव्य में चाह कहीं दिखाई नहीं पड़ती, यह वक्तव्य बडा निर्दोष मालूम पड़ता है। यह वक्तव्य सिर्फ स्टेटमेंट आफ फैक्ट मालूम पड़ता है। नहीं, लेकिन यह सिर्फ तथ्य का वक्तव्य नहीं है। इसमें आप संयुक्त हो गए। क्योंकि चीजें अपने आप में न सुंदर हैं, न असुंदर हैं, चीजें सिर्फ हैं। आपने व्याख्या डाल दी।

एक स्त्री निकली है राह से; वह सिर्फ है। सुंदर और असुंदर देखने वाले की व्याख्या है। सुंदर—असुंदर उसमें कुछ भी नहीं है। व्याख्याएं बदलती हैं, तो सौंदर्य बदल जाते हैं। चीन में चपटी नाक सुंदर हो सकती है, भारत में नहीं हो सकती। चीन में उठे हुए गाल की हड्डियां सुंदर हैं, भारत में नहीं हैं। अफ्रीका में चौड़े ओंठ सुंदर हैं और स्त्रिया पत्थर

लटकाकर अपने ओंठों को चौड़ा करती हैं। सारी दुनिया में कहीं चौड़े ओंठ सुंदर नहीं हैं, पतले ओंठ सुंदर हैं। वे हमारी व्याख्याएं हैं, वे हमारी सांस्कृतिक व्याख्याएं हैं। एक समाज ने क्या व्याख्या पकड़ी है, इस पर निर्भर करता है। फिर फैशन बदल जाते है, सौंदर्य बदल जाता है। तथ्य वही के वही रहते हैं।

अफ्रीका में जो स्त्री पागल कर सकती है पुरुषों को, वही भारत में सिर्फ पागलों को आकर्षित कर सकती है। क्या हो गया! स्त्री वही है, तथ्य वही है, लेकिन व्याख्या करने वाले दूसरे हैं। जब हम कहते हैं, सुंदर है, तभी हम सम्मिलित हो गए, तभी तथ्य नहीं रहा। बुद्ध एक वृक्ष के नीचे विश्राम कर रहे हैं। रात है पूर्णिमा की। गांव से कुछ मनचले युवक एक वेश्या को लेकर पूर्णिमा की रात मनाने आ गए हैं। उन्होंने वेश्या को नग्न कर लिया है, उसके वस्त्र छीन लिए हैं। वे सब शराब में मदहोश हो गए हैं, वे सब नाच—कूद रहे हैं। उनको बेहोश हुआ देखकर वेश्या भाग निकली।

थोड़ा होश आया, तो देखा, जिसके लिए नाचते थे, वह बीच में नहीं है। खोजने निकले। जंगल है, किससे पूछें? आधी रात है। फिर उस वृक्ष के पास आए, जहां बुद्ध बैठे हैं। तो उन्होंने कहा, यह भिक्षु यहां बैठा है, यही तो रास्ता है एक जाने का। अभी तक कोई दोराहा भी नहीं आया। वह स्त्री जरूर यहीं से गुजरी होगी। तो उन्होंने बुद्ध को कहा कि सुनो भिक्षु, यहां से कोई एक नग्न सुंदर युवती भागती हुई निकली है? देखी है?

बुद्ध ने कहा, कोई निकला जरूर, लेकिन युवती थी या युवक, कहना मुश्किल है। क्योंकि व्याख्या करने की मेरी कोई इच्छा नहीं। कोई निकला है जरूर, सुंदर था या असुंदर, कहना मुश्किल है। क्योंकि जब अपनी चाह न रही, तो किसे सुंदर कहें, किसे असुंदर कहें!

सौंदर्य चुनाव है, सौंदर्य निर्णय है। असल में जैसे ही सुंदर कहा, मन के किसी कोने पर बनना शुरू हो गया भाव—कि मिले। सौंदर्य पसंदगी की शुरुआत है। वह वक्तव्य सिर्फ तथ्य का नहीं, वह वक्तव्य वासना का है। वासना छा गई है तथ्य पर, वह कहती है, सुंदर है।

हम साधारणतया कहेंगे कि नहीं, सुंदर कहने से कोई मतलब नहीं होता। सुंदर है। जब पहला मन का विषयों में गमन शुरू होता है, तो अति सूक्ष्म है। वह ऐसे ही शुरू होता है : सुंदर है, असुंदर है, प्रीतिकर है, अप्रीतिकर है, अच्छा लगता है, बुरा लगता है। चाह जब पैदा होती है पहले, तो पसंद और नापसंद के रूप में झलकती है, फिर बढ़ती है। अभी बीज है, अभी पहचानना बहुत मुश्किल है। अभी कोई कृष्ण, कोई बुद्ध पहचान सकेगा। हम तो तब पहचानेंगे, जब वृक्ष हो जाएगा।

लेकिन बीज से मुक्त हुआ जा सकता है, वृक्ष से मुक्त होना अति कठिन है। जितनी बढ़ जाएगी वासना भीतर गहरी और गहरी और जड़ों को फैला देगी, उतना ही उससे छूटना कठिन होता जाएगा। जब अभी वासना सिर्फ बीज है, जब उसमें कोई जड़ें नहीं हैं अभी, अभी जब उसने चित्त की भूमि में कहीं जड़ों को फैलाकर भूमि को पकड़कर कस नहीं लिया है, तब तक बहुत आसान है। बीज फेंके जा सकते हैं, वृक्षों को काटना और उखाड़ना पड़ता है।

और मजा यह है कि वृक्ष काटने से भी कटते हों, ऐसा नहीं है। अक्सर तो काटने से सिर्फ कलम होती है। एक शाखा कटती है और चार शाखाएं निकल आती हैं। जड़ों तक काट डालने से भी जडें नए अंकुर और नई कोंपलें छोड़ जाती हैं और एक वृक्ष के अनेक वृक्ष भी हो जाते हैं। और जड़ों को उखाड़ना बहुत कठिन है, क्योंकि जड़ें मनुष्य के मन के अचेतन गर्भों में फैल जाती हैं। उन तक पहुंचना भी मुश्किल हो जाता है।

इसलिए कृष्ण का यह सूत्र साधक के लिए बहुत समझ लेने जैसा है। इस पर पूरा ही, मन के रूपांतरण की पूरी काजेलिटी, पूरा कारण, उसका राज छिपा है।

तथ्य तभी तक तथ्य है, जब तक आपने व्याख्या नहीं की है। बुद्ध ने कहा, निकला कोई जरूर। यह व्याख्या नहीं है, निकला है ,.' कोई। युवक था कि युवती, कहना कठिन है। क्योंकि—बुद्ध ने। कहा —जब तक मेरे भीतर पुरुष बहुत लालायित था, तब तक बाहर खोज चलती थी, कौन स्त्री, कौन पुरुष!

स्त्री और पुरुष भी, तथ्य होते हुए भी, हमारी व्याख्या के कारण ही वह तथ्य दिखाई पड़ता है। अब यह बड़े मजे की बात है। हम जिंदगी में सब भूल जाते हैं। एक आदमी मुझे आज मिले। मैं भूल जाता हूं कि उसका नाम क्या है दस साल बाद, भूल जाता हूं जाति क्या है, धर्म क्या है, चेहरा कैसा था, आंखें कैसी थीं, कितना पढ़ा—लिखा था—सब भूल जाता हूं। एक बात नहीं भूल पाता कि स्त्री था कि पुरुष था।

यह बड़े मजे की बात है। कभी आप भूले हैं किसी के बाबत कि मुझे पक्का याद नहीं आता कि वह जो मिला था, स्त्री थी या पुरुष था? सब भूल जाते हैं—नाम, शकल, चेहरा, जाति, धर्म—कई बार यह भी शक होता है कि वह मिला था कि नहीं मिला था, यह भी भूल सकते हैं। लेकिन वह स्त्री थी या पुरुष, यह नहीं भूल सकते हैं। जरूर और सब पहचान से यह स्त्री और पुरुष की पहचान आपके किसी गहरे मन ने की है, जहां से भूल नहीं होती। अगर एक हवाई जहाज आपके गांव में गिर पड़े, समझें कोई अंतरिक्ष यान गिर पड़े, कोई दूसरे ग्रह के यात्री का जहाज आपके गांव में गिर पड़े, उसमें से पायलट को आप बाहर निकालें, तो जो पहली जिज्ञासा उठेगी, वह यह कि वह स्त्री है या पुरुष! पहली जिज्ञासा कि वह स्त्री है या पुरुष! फिर दूसरी जिज्ञासाएं उठेंगी।

निश्चित ही, स्त्री और पुरुष होना एक बायोलाजिकल फैक्ट है, एक जैविक तथ्य है। स्त्री और पुरुष के शरीर में फर्क है। लेकिन यह फर्क इतना प्रगाढ़, होकर दिखाई पड़े, इसकी अनिवार्यता उसमें नहीं है। इसकी अनिवार्यता हमारे मन की चाह में है।

रास्ते से आप निकलते हैं, वृक्ष लगे हैं। आपने शायद ही कभी देखा हो कि सभी वृक्ष एक जैसे हरे नहीं हैं। हरेपन में भी हजार तरह के हरेपन हैं। हरा कोई एक रंग नहीं है, हरा भी हजार रंग है। लेकिन आपको नहीं दिखाई पड़ेंगे। एक चित्रकार निकले, तो उसे दिखाई पड़ेगा, हजार रंग के हरे रंग हैं। दो हरे रंग एक—से हरे रंग नहीं हैं। ये सामने दस वृक्ष हैं, दस तरह के हरे हैं। आपको नहीं दिखाई पड़ेगा। इन वृक्षों के नीचे से आप रोज निकलते हैं। इनका दस तरह का हरा होना प्राकृतिक तथ्य है। लेकिन आपके भीतर चित्रकार चाहिए, तब वह दिखाई पड़ेगा। उसकी खोज भी आपके भीतर कोई ' चीज खोजती हो, तो ही दिखाई पड़ेगी, अन्यथा दिखाई नहीं पड़ेगी। चित्रकार को दिखाई पड़ेगा कि रंग ही रंग हैं, हरे रंग भी कई रंग हैं।

स्त्री और पुरुष जैविक तथ्य है। लेकिन आपको इतना प्रगाढ़ होकर दिखाई पड़ता है, यह जैविक तथ्य नहीं है, यह मानसिक तथ्य है, यह साइकोलाजिकल तथ्य है। इसमें कुछ न कुछ आपने जोड़ना शुरू कर दिया। इसमें आपने कुछ डालना शुरू कर दिया। थोड़ा—सा आप भी इसमें प्रवेश कर गए; फिर चिंतन शुरू होगा।

यह तो हैपनिग हुई, रास्ते पर स्त्री दिखी, पुरुष दिखा। फिर आपने कहा, सुंदर है, फिर आपकी यात्रा शुरू हुई चित्त की, अब चिंतन होगा। सुंदर है, तो पीछे से चाह, पीछे से चाह चली आएगी। चाह आएगी, तो भोग—कामना में ही, मन में ही, स्वप्न में ही प्रतिमाएं निर्मित होनी शुरू हो जाएंगी।

अगर किसी दिन हम आदमी की खोपड़ी में विंडो बना सके—बना सकेंगे, अब तो सर्जन्स कहते हैं, बहुत कठिनाई नहीं है; मनोवैज्ञानिक भी कहते हैं, बहुत कठिनाई नहीं है — अगर हम आदमी की खोपडी में एक कांच की खिड़की बना सके, जो कि हम बना ही लेंगे, तब आपको मुसीबत पता चलेगी। अगर बाहर से भी आपकी खोपड़ी में झांका जा सके कि भीतर क्या—क्या हो रहा है! एक स्त्री जा रही है, तत्काल आपके मन के भीतर बहुत कुछ आपको ही पता चलता है। बहुत मौकों पर तो आपको भी पता नहीं चलता। बहुत मौकों पर तो यह इतना अचेतन होता है कि आपको भी पता नहीं चलता। दूसरों को तो पता चलता ही नहीं, खुद आप भी चूक जाते हैं। यह भीतर चलता रहता है और आप कहीं और चलते रहते हैं। लेकिन कैसे यह शुरू हो रहा है?

तथ्य हैं जगत में, फिक्शंस वहां नहीं हैं, फैक्ट्स हैं। कल्पनाएं मनुष्य डालता है। सुंदर है—यात्रा शुरू हुई। सुंदर है, तो चाह है। चाह है, तो भोग है। अब चिंतन शुरू हुआ। अब वासना चिंतन बनेगी। चिंतन को कहें, काल्पनिक संग पैदा हुआ। जब काल्पनिक संग पैदा होगा, तो क्रिया भी आएगी, काम भी आएगा। और कृष्ण कहते हैं, काम आएगा, तो क्रोध भी आएगा। क्यों? काम आएगा, तो क्रोध क्यों आ जाएगा?

असल में जो कामी नहीं है, वह क्रोधी नहीं हो सकता। क्रोध काम का ही एक और ऊपर गया चरण है। क्रोध क्यों आता है? क्रोध का क्या गहरा रूप है? क्रोध आता ही तब है, जब काम में बाधा पड़ती है, अन्यथा क्रोध नहीं आता। जब भी आपकी चाह में कोई बाधा डालता है—जो आप चाहते हैं, उसमें बाधा डालता है—तभी क्रोध आता है। जो आप चाहते हैं, अगर वह होता चला जाए, तो क्रोध कभी नहीं आएगा।

समझें आप कल्पवृक्ष के नीचे बैठे हैं, तो कल्पवृक्ष के नीचे क्रोध नहीं आ सकता, अगर कल्पवृक्ष नकली न हो। कल्पवृक्ष असली है, तो क्रोध नहीं आ सकता। क्योंकि क्रोध का उपाय नहीं है। आपने चाहा कि यह सुंदर स्त्री मिले, मिल गई। आपने चाहा, यह मकान मिले, मिल गया। आपने चाहा, यह धन मिले, मिल गया। आपने चाहा, सिंहासन मिले, मिल गया। आपने चाहा नहीं कि मिला नहीं, तो क्रोध के लिए जगह कहा है!

क्रोध आता है, चाहा और नहीं मिले के बीच में जो गैप है, उस गैप का नाम, उस अंतराल का नाम क्रोध है। चाहा और नहीं मिला, अटक गई चाह, रुक गई चाह, हिन्डर्ड डिजायर, चाह के बीच में अड़ गया पत्थर, चाह के बीच में पड़ गई बाधा, क्रोध के वर्तुल को पैदा कर जाती है।

नदी भाग रही है सागर की तरफ, आ गया एक पत्थर बीच में, तो सब खड़बड़ हो जाता है। आवाज हो जाती है। पत्थर न हो तो नदी में आवाज नहीं होती। नदी आवाज नहीं करती, पत्थर के साथ टकराकर आवाज हो जाती है।

अगर काम की नदी बहती रहे और कोई बाधा न हो, तो क्रोध कभी पैदा न होगा। लेकिन काम की नदी बहती है और बाधाओं के पत्थर चारों ओर खड़े हैं। वे खड़े ही हैं। कोई आपके काम को रोकने के लिए नहीं खड़े हैं वे, वे खड़े ही थे। आपके काम ने वहां से बहना शुरू किया।

अब एक स्त्री सुंदर मुझे दिखाई पडी; मैंने उसे चाहना शुरू किया। अब हजार पत्थर हैं। उस स्त्री का पति भी है, वह भी पत्थर है। उस स्त्री का पिता भी है, वह भी पत्थर है। उस स्त्री का भाई भी है, वह भी पत्थर है। कानून भी है, अदालत भी है, पुलिस भी है—वे भी पत्थर हैं। और ये कोई भी न हों, तो कम से कम वह स्त्री भी तो है। मैंने चाहा इसलिए वह चाहे, यह तो जरूरी नहीं है। मेरी चाह कोई उसके लिए नियम और कानून तो नहीं है। वह स्त्री तो है ही, इस जगत में हम सारे पत्थर हटा दें, तो भी वह स्त्री तो है ही। और फिर अगर वह स्त्री भी राजी हो, तो भी पत्थर नहीं रहेंगे, ऐसा नहीं है। यहां थोडे और गहरे उतरना पड़ेगा।

अगर ऐसा भी हम कर लें जैसा कि समाजशास्त्री सोचते हैं, जैसा कि समाजवादी सोचते हैं कि सारे पत्थर अलग कर दें, जैसा कि हिप्पी और बीटनिक और प्रवोस सोचते हैं कि सारे पत्थर अलग कर दो—कानून अलग करो, पुलिस अलग करो—जहा, —जहा पत्थर है, वह अलग कर दो, क्योंकि व्यर्थ ही उनसे क्रोध पैदा होता है और मनुष्य दुखी होता है। सब पत्थर अलग कर दो। तो भी एक स्त्री को पचीस पुरुष नहीं चाह लेंगे, एक पुरुष को पचीस स्त्रिया नहीं चाह लेंगी, इसका क्या उपाय है?

असल में कानून और व्यवस्था इसीलिए बनानी पड़ी कि अव्यवस्था इससे भी बदतर हो जाएगी। यह बदतर है काफी, लेकिन अव्यवस्था इससे भी बदतर हो जाएगी। यह चुनाव रिलेटिव है। यह बदतर है काफी कि हर जगह चाह के बीच में उपद्रव खड़ा है, लेकिन अगर सारे उपद्रव हटा लो, तो महाउपद्रव खड़ा हो जाएगा। अभी एक ही पति है उसका खड़ा। पति की व्यवस्था को हटा दो, तो हजार पति नहीं खड़े हो जाएंगे, इसका क्या उपाय है रोकने का? अभी एक ही पत्नी उस पति के ऊपर पहरा दे रही है। हटा दो उसे, तो हजार पत्नियां नहीं पहरा देंगी, इसकी क्या गारंटी है?

फिर हम कल्पना भी कर लें कि सब हटा दिया जाए और ऐसा भी कुछ हो जाए कि बाहर से कोई बाधा नहीं आती, तो भीतरी बाधाएं हैं, जो और भी बडी बाधाएं हैं। क्योंकि जिस स्त्री को आप चाहते हैं, जो स्त्री आपको चाहती है, बीच में और कोई बाधा नहीं है, तो भी आप दो हैं और दो होना भी काफी बड़ी बाधा है। और क्रोध रोज—रोज जन्मेगा; जरा—जरा सी बात में जन्मेगा।

आप सुबह पांच बजे उठना चाहते हैं और आपकी स्त्री सुबह छ: बजे उठना चाहती है। बस, इतना भी काफी है। कोई पुलिस, अदालत, कानून और राज्य की जरूरत नहीं है क्रोध के लिए, इतनी ही बाधा काफी है। छोटी—छोटी अड़चनें

चाह में खड़ी होती हैं और बाधा खड़ी हो जाती है। वह दूसरा व्यक्ति भी व्यक्ति है, मशीन नहीं है। उसकी भी अपनी चितना है, अपना सोचना है, अपना ढंग है। और दो चिंतन एकदम पैरेलल नहीं हो पाते, हो नहीं सकते। सिर्फ दो मशीनें समानांतर हो सकती हैं, दो व्यक्ति कभी समानांतर नहीं हो सकते।

असल में दो व्यक्तियों का साथ रहना उपद्रव है। न रहना भी उपद्रव है, क्योंकि चाह है। साथ न रहें, तो पूरी नहीं हो सकती। साथ रहें, तो भी पूरी नहीं हो पाती है।

तो वे जितनी अड़चनें हैं, वे सब काम में अडचनें, पत्थर बन जाती हैं और क्रोध को जन्माती हैं। कामी क्रोधी हो जाता है।

अगर कृष्ण ने कहा है कि स्थितप्रज्ञ को क्रोध नहीं होता, तो उसका कारण यही है कि स्थितप्रज्ञ को काम नहीं होता, वह निष्काम है। ये नेसेसरी स्टेप्स हैं, ये अनिवार्य सीढ़िया हैं, जो एक के पीछे चली आती हैं। और एक को लाएं, तो दूसरे को लाना पड़ता है। वह दूसरा उससे इतना बंधा है कि वह एक को लाते वक्त ही उसके साथ छाया की तरह भीतर प्रवेश कर जाता है। आपको मैंने निमंत्रण दिया, आपकी छाया भी मेरे घर में आ जाती है। आपकी छाया को मैंने कभी निमंत्रण नहीं दिया था, पर वह आपके साथ ही है, वह भीतर चली आती है।

काम के पीछे आता है क्रोध। अगर चित्त में क्रोध हो, तो जरा भीतर खोजने से पता चलेगा, कहीं काम है। अटका हुआ काम क्रोध है। रुका हुआ काम क्रोध है। बाधा डाला गया काम क्रोध है। क्रोध का सांप फुफकारता तभी है, तभी वह फन फैलाता है, जब मार्ग में कोई अड़चन आ जाती है और द्वार नहीं मिलता है। जब कोई रोकता है, कोई अटकाता है।

फिर हम अकेले नहीं हैं इस जगत में। विराट यह जगत है। सभी की कामनाएं एक—दूसरे की कामनाओं को क्रिस—क्रास कर जाती हैं; तो सब जगह अटकाव हो जाता है। मैं कुछ चाहता हूं, लेकिन साढ़े तीन अरब लोग और हैं पृथ्वी पर, वे कुछ चाहते हैं। फिर अदृश्य परमात्मा है, फिर अदृश्य जीव—जंतु हैं,? फिर अदृश्य देवी—देवता हैं, फिर अदृश्य वृक्ष, पशु —पक्षी सब हैं, उन सब की चाहें हैं। अगर हम अपने ऊपर देख सकें, तो हमें पता चले कि पूरा आकाश, पूरा व्योम अनंत चाहो से क्रिस—क्रास है। अनंत चाहें एक—दूसरे को काट रही हैं। एक —एक चाह पर करोड़—करोड़ चाहो का कटाव है। वह कटाव क्रोध पैदा करता है; करेगा ही। जहा भी वासना कटी कि पीडा हुई। जैसे किसी ने रग काट दी हो और खून बहने लगे। वासना की रग कटती है, तो क्रोध का खून बहता है। कृष्ण कहते हैं, काम से क्रोध पैदा होता है।

क्रोध, क्रोध बहुत ही.। मनुष्य के अस्तित्व में, जैसा मनुष्य है, बड़ी गहरी आधारशिलाएं उसकी रखी हैं। है क्या क्रोध, अपने में रू शक्ति, एनर्जी! तृप्ति के लिए काम के मार्ग से जाती थी, लेकिन मार्ग अवरुद्ध पाकर शक्ति उद्विग्न हो गई है। चाहा था कुछ, उस चाह की पगडंडी से प्राणों की ऊर्जा बहनी थी, आ गया है पत्थर, अटक गया सब। शक्ति अपने पर लौट पड़ी है। सब भीतर क्रुद्ध हो गया है। लौटा हुआ काम, काम के मार्ग से जाती हुई ऊर्जा अवरुद्ध होकर विद्रोह से भर गई है, विक्षिप्त हो गई है, इनसेन हो गई है। इसलिए क्रोध है।

जैसे —जैसे क्रोध बढ़ता है, वैसे—वैसे मोह बढ़ता है। क्यों? जिसे।_ हम चाहते हैं और नहीं पा पाते, उसके प्रति मोह और गहरा हो जाता! है। मिल जाए, तो मोह कम हो जाता है। न मिले, तो मोह बढ़ जाता 1 है। जो नहीं मिलता, उसी के प्रति मोह होता है, जो मिलता है, !, उसके प्रति मोह नहीं रह जाता। क्रोध मोह को जन्म दे जाता है। मोह र का मतलब क्या है?

मैंने सुना है कि नादिरशाह ने एक दफे एक बहुत गहरा मजाक किया। गहरा कहना चाहिए। और कभी—कभी पाप में गहरे गए लोगों की बुद्धि भी पुण्य में गहरे गए लोगों की बुद्धि जैसी ही गहरी हो जाती है—उलटी होती है, लेकिन गहरी हो जाती है।

नादिरशाह किसी स्त्री के प्रति लोलुप है, लेकिन वह स्त्री उसके प्रति बिलकुल ही अनासक्त है, पर नादिरशाह के एक सैनिक के प्रति पागल है। स्वभावतः, नादिर के लिए बर्दाश्त करना मुश्किल हो गया। पकड़वा भिजवाया दोनों को। पूछा अपने वजीरों से कि कोई नई सजा खोजो, जो कभी न दी गई हो।

ऐसी कोई सजा है, जो कभी न दी गई हो! सब सजाएं चुक गई हैं। वजीर बड़ी मुश्किल में पड़े। नई—नई सजाएं खोजकर लाते, लेकिन नादिर कहता कि यह हो चुका; यह कई बार दी जा चुकी है। हम ही दे चुके हैं। दूसरे दे चुके हैं। नई चाहिए! और सच में ही एक बूढ़े वजीर ने नई सजा खोज ली। आप भी न सोच सकेंगे कि नई सजा क्या हो सकती थी!

नई सजा यह थी कि दोनों को नग्न करके, एक—दूसरे के चेहरों को आमने—सामने करके, दोनों को एक खंभे से बांध दिया गया। कभी सोचा भी नहीं होगा किसी ने! एक दिन, दो दिन, एक—दूसरे के शरीर से बास आने लगी, मल—मूत्र छूटने लगा। तीन दिन, एक—दूसरे के चेहरे को देखने की भी इच्छा न रही। चार दिन, एक—दूसरे पर भारी घृणा पैदा होने लगी। पांच दिन, नींद नहीं, मल—मूत्र, गंदगी, और बंधे हैं दोनों एक साथ—यही चाहते थे! पंद्रह दिन, दोनों पागल हो गए कि एक—दूसरे की गर्दन काट दें।

और नादिर रोज आकर देखता कि कहो प्रेमियो, इच्छा पूरी कर दी न! मिला दिया न दोनों को! और ऐसा मिलाया है कि छूट भी नहीं सकते। जंजीरें बंधी हैं। पंद्रह दिन बाद जब उन दोनों को छोड़ा, तो कथा है कि उन्होंने लौटकर एक—दूसरे को जिंदगी में न दुबारा देखा और न बोले। जो भागे एक—दूसरे से, तो फिर लौटकर कभी नहीं देखा!

क्या हुआ? मोह पैदा होने का उपाय न रहा। अमोह पैदा हो गया। करीब—करीब जिसको हम विवाह कहते हैं, वह भी नादिरशाह का बहुत छोटे पैमाने पर प्रयोग है—बड़े छोटे पैमाने पर। किसी बहुत होशियार आदमी ने कोई गहरी ईजाद की है। मैरिज मोह को नहीं जमने देती, मोह को मार डालती है। असल में मोह, जो नहीं मिलता, उसके लिए पैदा होता है।

इसलिए कृष्ण की इनसाइट, उनकी अंतर्दृष्टि गहरी है। वे कहते हैं, क्रोध से मोह पैदा होता है अर्जुन! क्योंकि क्रोध का मतलब ही यह है कि जिसे चाहा था, वह नहीं मिल सका, इसलिए क्रोध आया। नहीं मिल सका, इसलिए मिलने की और आकांक्षा आएगी। नहीं मिल सका, इसलिए पाने का और पागलपन आएगा। नहीं मिल सका, इसलिए मन और—और विक्षिप्त हो जाएगा और मांग करेगा।

जापान में वेश्याओं का एक वर्ग है—गेसा गर्ल्स। उनकी जो ट्रेनिंग है, उस ट्रेनिंग का एक हिस्सा है—दुनिया में सभी वेश्याओं की ट्रेनिंग का हिस्सा है। वेश्याएं पत्नियों से ज्यादा होशियार हैं। गेसा गर्ल्स को सिखाया जाता है कि कभी इतनी मत मिल जाना किसी को कि अमोह पैदा हो जाए। बस, मिलना और न मिलना, इनके बीच सदा खेल को चलाते रहना। पास बुलाना किसी को और दूर हो जाना। कोई निकट आ पाए कि सरक जाना। बुलाना भर, मिल ही मत जाना, क्योंकि मिल ही गए कि मोह नष्ट हो जाता है। वेश्याएं भी जानती हैं कृष्ण के राज को; उनको भी पता है।

अब यह बड़े मजे की बात है। खयाल में आती है, आपसे कहता हूं। स्त्रियां थीं पृथ्वी की घूंघट में दबी, अंधेरे में छिपी। पति भी नहीं देख पाता था सूरज की रोशनी में। कभी खुले में बात भी नहीं कर पाता था। अपनी पत्नी से भी बात चोरी से ही होती थी, रात के अंधेरे में, वह भी खुसुर—फुसुर। क्योंकि सारा बड़ा परिवार होता था, कोई सुन न ले! आकर्षण गहरा था, मोह जिंदगीभर चलता था।

स्त्री उघड़ी, परदा गया—अच्छा हुआ, स्त्री के लिए बहुत अच्छा हुआ—सूरज की रोशनी आई। लेकिन साथ ही मोह क्षीण हुआ। स्त्री और पुरुष आज कम मोहग्रस्त हैं। आज स्त्री उतनी आकर्षक नहीं है, जितनी सदा थी। और यूरोप और अमेरिका में और भी अनाकर्षक हो गई है, क्योंकि चेहरा ही नहीं उघड़ा, पूरा शरीर भी उघड़ा। आज यूरोप और अमेरिका के समुद्र—तट पर स्त्री करीब—करीब नग्न है, पास से चलने वाला रुककर भी तो नहीं देखता, पास से गुजरने वाला ठहरकर भी तो नहीं देखता कि नग्न स्त्री है।

कभी आपने देखा, बुरके में ढकी औरत जाती हो, तो पूरी सड़क उत्सुक हो जाती है। ढके का आकर्षण है, क्योंकि ढके में बाधा है। जहां बाधा है, वहां मोह है। जहां बाधा नहीं है, वहां मोह नहीं है। स्त्री और पुरुष का आकर्षण जितना सेक्यूअल है, जितना कामुक है, उससे ज्यादा सोशल है, कल्वरल है। जितना ज्यादा काम से पैदा हुआ है, उतना काम में डाली गई सामाजिक बाधाओं से पैदा हुआ है।

अब मैं मानता हूं कि आज नहीं कल, पचास साल के भीतर, सारी दुनिया में घूंघट वापस लौट सकता है। आज कहना बहुत मुश्किल मालूम पड़ता है, यह भविष्यवाणी करता हूं पचास साल में घूंघट वापस लौट आएगा। क्योंकि स्त्री—पुरुष इतनी अनाकर्षक हालत में जी न सकेंगे। वे आकर्षण फिर पैदा करना चाहेंगे। आने वाले पचास वर्षों में स्त्रियों के वस्त्र फिर बड़े होंगे, फिर उनका शरीर ढकेगा।

बर्ट्रेड रसेल ने लिखा है कि जब वह बच्चा था, तो विक्टोरियन युग समाप्त हो रहा था। और स्त्रियों के पैर का अंगूठा भी देखना मुश्किल था। घाघरा ऐसा होता था, जो जमीन छूता था। तो बर्ट्रेड रसेल ने लिखा है कि अगर किसी स्त्री के पैर का अंगूठा भी दिख जाता था, तो चित्त में बिजली कौंध जाती थी। और उसने लिखा है कि अब कल्पना करने को भी कुछ नहीं बचा है। स्त्री पूरी दिखाई पड़ जाती है और चित्त में कोई बिजली नहीं कौंधती।

नग्न स्त्री उतनी आकर्षक नहीं है, नग्न पुरुष उतना आकर्षक नहीं है। और स्त्रियां पुरुषों से ज्यादा होशियार हैं, इसलिए कोई स्त्री नग्न पुरुष में कभी उत्सुकता नहीं लेती। गहरे से गहरे प्रेम के क्षण में स्त्रियां आंख बंद कर लेती हैं कि पुरुष दिखाई ही न पड़े। स्त्रियां ज्यादा होशियार हैं, शायद इंसटिक्टिवली वे प्रकृति के ज्यादा करीब हैं और राजों से परिचित हैं।

कृष्ण कहते हैं, क्रोध से मोह पैदा होता है। क्योंकि क्रोध से बाधा पैदा होती है। जहां भी बाधा है, वहां आकर्षण खड़ा हो जाता है। अब यह बड़े मजे की बात है कि जिन लोगों ने बाधाएं खड़ी की हैं, वे ही आकर्षण के लिए जिम्मेदार हैं। ईसाइयत ने पाप को इतना आकर्षक बना दिया, क्योंकि पाप के लिए इतनी बाधाएं खड़ी कीं। धर्मों ने सेक्स को बहुत आकर्षक बना दिया, क्योंकि उसके लिए बहुत बाधाएं खड़ी कीं।

आमतौर से लोग समझते हैं कि फिल्में हैं, नग्न—चित्र हैं, नग्न— अश्लील तस्वीरें हैं —ये लोगों को कामुक बना रही हैं। कृष्ण यह नहीं कह सकते कि कामुक बना रही हैं। कृष्ण कहेंगे कि यह लोगों का तो सारा मोह खराब कर देंगी। क्योंकि लोगों के लिए अनाकर्षक हो जाएगी, जो चीज परिचित हो जाती है। जिसमें बाधा नहीं है, वह अनाकर्षक हो जाती है।

अगर कृष्ण से हम पूछें मनोविज्ञान का सत्य, तो वह यह है कि अगर दुनिया में स्त्री—पुरुष के आकर्षण को बढ़ाना हो, तो नग्न तस्वीरें बंद करो, अश्लील तस्वीरें बंद करो, स्त्री को नग्न मत करो। ढांको, बाधाएं खड़ी करो, स्त्री—पुरुष को एकदम मिल जाने की सुविधा मत बनाओ, असुविधाएं खड़ी करो—अगर मोह पैदा करना है।

अगर कृष्ण से हम पूछें, तो कृष्ण वह जवाब नहीं देंगे, जो हिंदुस्तान के सब साधु दे रहे हैं। वे कह रहे हैं कि फिल्मों में चुंबन न हो। चुंबन हुआ, तो लोग कामुक हो जाएंगे। गलत हैं! उन्हें बिलकुल मनोविशान का कोई भी पता नहीं। कृष्ण को ज्यादा पता है। वह कृष्ण कह रहे हैं कि अगर बाधा बिलकुल नहीं है, तो मोह बिलकुल गिर जाएगा। अगर चीजें बिलकुल साफ हैं, तो आकर्षण खो देती हैं। निषेध में निमंत्रण है। जहां ढका है, वहां उघाड़ने का मन है। जहां बाधा है!

अब मेरी अपनी समझ यही है कि पुरानी मनुष्य की संस्कृति स्त्री और पुरुष के बीच ज्यादा आकर्षण को जन्माती थी। पुरानी संस्कृति में तलाक मुश्किल था। आकर्षण भारी था। अपनी ही पत्नी से मिलना कहा हो पाता था! कितनी बाधाएं थीं! संयुक्त परिवार बड़ी बाधा का काम करता था। आकर्षण जीवनभर खिंचता था। जीवनभर ही नहीं, स्त्री और पुरुष चाहते थे कि मरकर भी यही स्त्री, यही पुरुष मिल जाए। तलाक जन्म के साथ भी करने का मन नहीं था। जन्मों—जन्मों तक एक को ही पा लेने का आकर्षण था। राज कहां है? राज इसी सूत्र में है, बाधाएं बहुत थीं।

क्रोध सबसे बड़ी बाधा है। असल में क्रोध बाधा से ही पैदा हुआ चित्त—विकार है। तो मोह पैदा हो जाता है। और जहां मोह पैदा होता है, वहां स्मृति भ्रष्ट हो जाती है। स्मृति मोह से भ्रष्ट

क्यों हो जाती है? आमतौर से हम सोचते होंगे, काम से भ्रष्ट होनी चाहिए स्मृति। काम से भ्रष्ट नहीं होती, क्योंकि काम प्राकृतिक तथ्य है। आमतौर से हमें सोचना चाहिए, क्रोध से भ्रष्ट हो जाती है स्मृति। लेकिन क्रोध से भी नहीं होती। क्योंकि क्रोध सिर्फ काम के मार्ग में पड़ी अड़चन से पैदा होता है। क्रोध प्रोजेक्टिव नहीं है। यह समझना पड़ेगा। क्रोध का कोई सम्मोहन नहीं है। क्रोध केवल प्रतिकार है, प्रक्षेप नहीं। क्रोध किसी दूसरे का प्रतिकार है, किसी बाधा को हटाने की चेष्टा है। बाधा हट जाए, क्रोध खो जाएगा।

मोह क्रोध से भी सबल है। मोह प्रोजेक्टिव है; मोह अंधा कर देता है। क्रोध पागल करता है, मोह अंधा कर देता है। मोह कहता है, कुछ भी हो! सब बाधाओं को भूलकर मोह पागल होकर जिसे पाना चाहता है, उसके पीछे दौड़ पड़ता है। क्रोध बाधाओं को अलग करने की कोशिश करता है, काफी रिअलिस्टिक है; क्रोध बहुत यथार्थ है। लेकिन मोह कहता है, बाधाएं! कोई बाधाएं नहीं हैं, छलांग लगाएंगे, दौड़कर निकल जाएंगे।

मोह अंधा कर देता है। और जब चित्त अंधा होता है, तभी स्मृति क्षीण होती है। हा, मोह तक आने के लिए काम और क्रोध जरूरी हैं। लेकिन मोह कहना चाहिए परिपाक है। मोह हमारे चित्त के विकार की सौ डिग्री अवस्था है, जहां से भाप बनना शुरू होता है। निन्यानबे डिग्री तक भी पानी भाप नहीं बनता, गरम ही रहता है। और गरम रहने में एक खूबी है कि अभी चाहे, नीचे से अगर ईंधन निकाल लिया जाए, तो फिर ठंडा हो सकता है। लेकिन सौ डिग्री पर पहुंचकर भाप बन जाएगा। फिर आप ईंधन निकालो या कुछ करो, भाप सिर्फ ईंधन निकालने से फिर ठंडी नहीं हो सकती। पानी ने नई अवस्था पा ली।

क्रोध तक सिर्फ मन गरम है, मोह पर भाप बन जाता है। नई अवस्था शुरू हो गई मन की, ए न्यू स्टेट, क्यालिटेटिव चेंज हो गया, गुणात्मक अंतर हो गया। क्रोध तक गुणात्मक अंतर नहीं है, परिमाणात्मक अंतर है, क्वांटिटेटिव चेंज हो रहा है सिर्फ। इसलिए क्रोध से वापस लौट जाना आसान है, मोह से वापस लौट जाना बहुत मुश्किल हो जाता है।

इसलिए मोह को कृष्ण कहते हैं कि उससे स्मृति भ्रष्ट हो जाती है। क्योंकि चित्त भाप— भाप हो जाता है। लौटना बहुत कठिन है। अब उसको ठंडा करना बहुत कठिन है। अब ईंधन हटाने से कुछ न होगा। और फिर मोह के तत्व को ठीक से समझें, तो पता चलेगा कि स्मृति क्यों मोह नष्ट करता है।

मनुष्य के मन में स्मृति का जो काम है, मोह का उससे विपरीत काम है। स्मृति तथ्यगत है। स्मृति का मतलब ही यही है कि जो जाना, उसे वैसा ही याद रखना जैसा जाना। मेमोरी का मतलब ही इतना है। राइट मेमोरी, ठीक स्मृति का मतलब इतना ही है कि हम अपनी तरफ से कुछ नहीं जोड़ते, जो है, उसको ही स्मरण रखते हैं। उसमें हमारा कोई जोड़ नहीं होता।

मोह कहना चाहिए क्रिएटिव है, सृजनात्मक है। वह वही नहीं देखता, जो है, वह वह प्रोजेक्ट करता है, निर्माण करता है, जो चाहता है कि हो। मोह स्वप्न—निर्माता है। मोह सम्मोहक है, हिप्नोटिक है। मोह अपने हिप्नोटिज्य का जाल फैला देता है। वह बिलकुल अंधा होकर वही देखने लगता है, जो देखना चाहता है।

इसलिए अक्सर हम कहते हैं कि जब कोई मोहग्रस्त होता है, कोई प्रेम में पागल हो जाता है, तो फिर उसे तथ्य दिखाई नहीं पड़ते। वह आग में चल सकता है, वह पहाड़ों से कूद सकता है। उसे फिर कुछ दिखाई नहीं पड़ता। फिर वह रिअलिस्ट नहीं रह जाता, वह सोम्नाबुलिस्ट हो जाता है, वह नींद में चलने लगता है। उसका चलना फिर नींद में चलना है।

इसलिए प्रेमी को मनुष्य हमेशा से पागल कहता रहा है। और प्रेम को सदा से अंधा कहता रहा है। ठीक होगा कि प्रेम की जगह हम मोह का उपयोग करें। ठीक शब्द मोह है। मोह अंधा है, ब्लाइंड है। प्रेम बड़ी और बात है। प्रेम को मोह के साथ एक कर लेने से गहरा, भारी नुकसान हुआ है। प्रेम एक बहुत ही और बात है। प्रेम तो उसी के जीवन में घटित होता है, जिसके जीवन में मोह नहीं होता। लेकिन हम प्रेम को ही मोह और मोह को प्रेम कहते रहे हैं।

प्रेम तो बुद्ध और कृष्ण जैसे लोगों के जीवन में होता है। हमारे जीवन में प्रेम होता ही नहीं है। जिनके जीवन में मोह है, उनके जीवन में प्रेम नहीं हो सकता। क्योंकि मोह मांगता है, प्रेम देता है। बिलकुल अलग अवस्थाएं हैं। उनकी हम आगे थोड़ी बात कर सकेंगे। लेकिन मोह को समझने के लिए उपयोगी है।

प्रेम उस चित्त में फलित होता है, जिसमें कोई काम नहीं रह जाता, जिसमें कोई वासना नहीं रह जाती। क्योंकि दे वही सकता है, जो मांगता नहीं। वासना मांगती है। वासना कहती है, मिलना चाहिए, यह मिलना चाहिए, यह मिलना चाहिए। प्रेम कहता है, अब कोई मांग न रही, हम कोई भिखारी नहीं हैं। वासना भिखारी है, प्रेम सम्राट है। प्रेम कहता है, जो हमारे पास है, ले जाओ। जो हमारे पास है, ले जाओ, अब हमें तो कोई जरूरत न रही, अब हमारी कोई मांग न रही। अब तुम्हें जो भी लेना है, ले जाओ। प्रेम दान है। वासना भिक्षावृत्ति है, मांग है।

इसलिए वासना में कलह है, प्रेम में कोई कलह नहीं है। ले जाओ तो ठीक, न ले जाओ तो ठीक। लेकिन मांगने वाला यह नहीं कह सकता कि दे दो तो ठीक, न दो तो ठीक। देने वाला कह सकता है कि ले जाओ तो ठीक, न ले जाओ तो ठीक। क्योंकि देने में कोई अंतर ही नहीं पड़ता, नहीं ले जाते, तो मत ले जाओ। मांग में अंतर पड़ता है। नहीं दोगे, तो प्राण छटपटाते हैं। क्योंकि फिर अधूरा रह जाएगा भीतर कुछ, पूरा नहीं हो पाएगा।

मोह पैदा होता है वासना की अंतिम कड़ी में, और प्रेम पैदा होता है निर्वासना की अंतिम कड़ी में। कहना चाहिए, जिस तरह मोह से स्मृति नष्ट होती है, उसी तरह से प्रेम से स्मृति पुष्ट होती है। पर उसकी अलग बात करेंगे। अभी उससे कोई लेना—देना नहीं है।

मोह सीढ़ियों का नीचे उतरा हुआ सोपान है, पायदान है, जहां आदमी पागल होने के करीब पहुंचता है। प्रेम सीढ़ियों का ऊपरी पायदान है, जहां आदमी विमुक्त होने के करीब पहुंचता है। विक्षिप्त होने के करीब और विमुक्त होने के करीब। मोह के बाद विक्षिप्तता है, प्रेम के बाद विमुक्ति है।

यह जो मोह पैदा हुआ, यह स्मृति को नष्ट कर देता है। क्यों? क्योंकि स्मृति अब रिकार्ड नहीं कर पाती कि क्या है। स्मृति का काम सिर्फ रिकार्डिंग का है कि वह वही रिकार्ड कर ले, जो है; तथ्य को अंकित कर ले। लेकिन मोह के कारण तथ्य दिखाई नहीं पड़ता। मोह के कारण हम एक जाल अपनी तरफ से प्रोजेक्ट कहते है।

प्रोजेक्टर आपने देखा होगा। सिनेमागृह में परदा होता है। परदे पर चित्र होते हैं। लेकिन आपकी पीठ के पीछे दीवाल के उस पार छिपा हुआ प्रोजेक्टर होता है, मशीन होती है, जो चित्रों को परदे पर फेंकती है। चित्र उस मशीन में छिपे होते हैं, परदे पर नहीं होते हैं। परदे पर चित्रों का सिर्फ भ्रम पैदा होता है। चित्र होते हैं मशीन में छिपे, प्रोजेक्टर में, फेंकने वाले में। और वहा से चित्र फेंके जाते हैं, लेकिन दिखाई पड़ते हैं परदे पर। होते हैं प्रोजेक्टर में, दिखाई पड़ते हैं परदे पर।

मोह प्रोजेक्टर है। होता है हमारे भीतर, दिखाई पड़ता है परदे पर। जब मैं किसी स्त्री के प्रेम में पड़ जाता हूं, तो जो चेहरा मुझे दिखाई पड़ता है, वह उस स्त्री का नहीं होता, वह मेरे प्रोजेक्टर का होता है। वह होता है मेरे भीतर, दिखाई पड़ता है वहां। स्त्री सिर्फ परदा होती है। क्योंकि जिनको उस स्त्री से मोह नहीं है, उनको वहां वैसा चेहरा नहीं दिखाई पड़ता, जैसा मुझे दिखाई पड़ता है। मुझे उसके पसीने में भी सुगंध आने लगती है, उसके पसीने में भी गुलाब खिलने लगते हैं। किसी को नहीं खिलते। कुछ दिन बाद मुझे भी नहीं खिलेंगे—जब मोह गिरेगा और प्रोजेक्टर बंद हो जाएगा और परदा दिखाई पड़ेगा। तब मैं कहूंगा, अरे! क्या हुआ? गुलाब के फूल कही गए? वे गुलाब के फूल विदा हो जाएंगे। वे गुलाब के फूल वहां थे ही नहीं। वे गुलाब के फूल मैंने आरोपित किए थे, प्रोजेक्ट किए थे, वह मेरा प्रक्षेप था।

धन में धन के पागल को जो दिखाई पड़ता है, वह धन में होता नहीं, प्रोजेक्टेड होता है। धन में क्या होगा! लेकिन धन के पागल को देखा है आपने। वह रुपए को किस मोह से पकड़ता है, जैसे किसी जीवंत चीज को पकड़ रहा हो! वह रुपए को किस प्रेम से सम्हालता है, जैसे उसका हृदय हो! वह तिजोरी को कैसे आहिस्ता से खोलता है! वह तिजोरी को कैसे देखता है, जैसे उसकी आत्मा वहां बंद है! वह रात सोता भी है, तो तिजोरी का ही चिंतन घूमता है। रात सपने भी आते हैं, तो रुपयों के ही ढेर बढ़ते चले जाते हैं। वह जिस जगत में जी रहा है, उसका हमें कुछ भी पता नहीं है कि उसका प्रोजेक्यान क्या हो रहा है! वह क्या प्रोजेक्ट कर रहा है!

मैंने सुना है, एक आदमी एक गांव में बहुत धनपति है। फिर गांव में लोग मरने लगे, अकाल पडा। तो लोगों ने उससे कहा, इतना धन है तुम्हारे पास, इतना धान्य है तुम्हारे पास, लोग मर रहे हैं, ऐसे क्षण पर रोको मत—बांटो। तो उस आदमी ने कहा, जिसे तुम बांटने के लिए कह रहे हो, वह अगर बंट जाए तो मैं मर जाऊं।

तो लोग मर रहे हैं माना, लेकिन मैं मरना नहीं चाहता! यह तुम भी जानो। और लोग मर रहे हैं, तो दूसरे पैदा हो जाएंगे। लेकिन जो धन मैंने इकट्ठा किया है, वह दूसरा कहा से आ सकता है? लोग बड़े चकित हुए। कभी न सोचा था!

लेकिन उन्हें पता नहीं कि लोग उस आदमी के लिए छायाओं की तरह झूठे हैं, धन आत्मा की तरह सच्चा है। लोग हैं ही नहीं उसकी जीवन—परिधि में। उसके मन के घेरे में लोगों का कोई अस्तित्व नहीं है। वे प्रतिबिंब हैं। आते हैं, जाते हैं। धन बहुत वास्तविक है।

फिर उसकी पत्नी भी बीमार पड़ गई। गांवभर में लोग मर रहे हैं, बीमारियां फैल गईं। उसकी पत्नी बीमार पड़ गई, तो लोगों ने कहा, कम से कम अपनी पत्नी को दिखाने के लिए वैद्य को बुला लो! उसने कहा, पत्नी फिर भी मिल सकती है। लेकिन धन फिर भी मिलेगा, इसका आश्वासन है?

जिसके मन में धन का मोह है, हम नहीं समझ पाते उसकी भाषा। जैसे अर्जुन पूछ रहा है कि स्थितधी कैसी भाषा बोलता है? ऐसे ही मोहग्रस्त कैसी भाषा बोलता है, वह भी हम नहीं समझ सकते। मोहग्रस्त कैसे उठता, कैसे बैठता, हमारी पकड़ में नहीं आता। ही, अपने— अपने मोह को देखेंगे, तो पकड़ में आ सकता है। सबके मोह हैं। दूसरे का मोह हमारी समझ में नहीं आता, हमारा मोह ही हमारी समझ में आता है।

उसने कहा, पत्नी दूसरी मिल जाएगी। पत्नी मर गई। फिर तो वह खुद भी मरने के करीब आ गया। बीमारियां उसे भी पकड़ लीं। लोगों ने कहा, अब तो कम से कम अपने पर कृपा करो। अब तो तुम्हीं मरने के करीब हो! उसने कहा, धन न बचे और मैं बच जाऊं, ऐसे बचने से तो मर जाना ही बेहतर है। वह तो बड़ा दुखद है, वह तो बड़ा भयप्रद है कि धन न बचे और मैं बच जाऊं। कल्पना ही नहीं कर सकता धन के बिना मेरे होने की। ही, मेरे न होने की कल्पना कर सकता हूं। लेकिन धन के बिना मेरे होने की कल्पना नहीं कर सकता।

मोहग्रस्त आदमी ऐसी ही भाषा बोलता है। वह कहता है, यह स्त्री मुझे न मिली, तो मैं मर जाऊंगा। इस स्त्री के बिना होने की मैं कल्पना नहीं कर सकता। ही, अपने न होने की कल्पना कर सकता हूं। वही मोह, वह कहता है, ऐसा नहीं होगा. अगर मंत्री पद नहीं मिला, तो मर जाऊंगा। मंत्री पद के बिना अपने होने की कल्पना नहीं कर सकता। ही, अपने न होने की कल्पना कर सकता हूं। मोहग्रस्त की यही भाषा है।

फिर लोगों ने कहा, लेकिन तुम मर जाओगे, तो यह धन पड़ा रह जाएगा। इतने दिन बचाया है, फिर इसका क्या होगा? उसने कहा कि क्या तुम सोचते हो, मैं धन को पड़ा रहने दूंगा! मैं साथ ले जाऊंगा। लोगों ने कहा, अब तक सुना नहीं कि कोई धन को साथ ले गया हो! उसने कहा, सुन लेना, जब मैं ले जाऊंगा, तब तुम्हें पता चल जाएगा।

मोहग्रस्त मन की स्मृति खो जाती है, सोच—विचार खो जाता है; सहज विवेक खो जाता है। वह कह रहा है, मैं धन को भी साथ ले जाऊंगा! मोहग्रस्त आदमी कहता है, छोडूंगा ही नहीं, प्राण में समा लूंगा। अपना— अपना मोह!

एक मुख्यमंत्री को मैं जानता हूं एक प्रदेश के। जो मरने के एक साल पहले मुझसे ही कहे कि अब एक ही इच्छा है कि मुख्यमंत्री रहते हुए मरूं। मौत करीब दिखने लगी थी। बहुत बीमार थे। कहा कि बस अब एक ही इच्छा है कि मुख्यमंत्री रहते हुए मरूं। मैंने कहा, मरने का उतना भय नहीं, जितना मुख्यमंत्री पद के छूटने का भय है। मरते हुए भी कम से कम मुख्यमंत्री पद तो साथ चला जाए! मरे तो मुख्यमंत्री थे, साथ ले गए!

उस आदमी ने कहा, ले जाऊंगा साथ। और सच में एक रात उसने कोशिश की। मोहग्रस्त आदमी कोई भी कोशिश कर सकता है। उसकी स्मृति खो जाती है, उसका विवेक खो जाता है। रात उसने देखा कि शायद सुबह नहीं होगी। तो आधी रात वह उठा। उसने अपने सारे हीरे—जवाहरात, जो भी कीमती था, वह एक बोरी में बंद किया। लेकर नदी के किनारे पहुंचा। उसने सोचा कि अपने बोरे को कमर से बांधकर नदी में कूद जाऊं। आखिरी चेष्टा कि साथ ले जाऊं!

लेकिन नदी गहरी है और अगर किनारे कूद पड़े, तो लाश तो किनारे लगी रह जाएगी। वह हीरे—जवाहरातों से भरा हुआ बोरा किनारे रह जाएगा। न मालूम कोई उसे उठा ले!

तो उसने नाविकों को जगाया। कहता हूं नाविकों को, एक नाविक के जगाने से काम चल जाता। पर नाविकों को जगाया, क्योंकि वह आदमी ठहराए बिना नहीं कर सकता था काम, उसे जाना था बीच नदी में। उसने मांझियों को जगाया और कहा कि सबसे कम में कौन ले जा सकता है? सबसे कम में! और वह आदमी मरने जा रहा है। यह सब धन लेकर डूब जाने वाला है। तो सबसे कम में कौन ले जा सकता है! ठहराया उसने। सबसे कम, छोटी से छोटी अशर्फी में जो राजी था, उस मल्लाह के साथ वह नदी में उतरा।

और आखिर जब बीच मझधार में पहुंच गया, तो उसने उस मल्लाह से कहा कि क्या एक मरते हुए आदमी की आखिरी इच्छा पूरी न करोगे? उसने कहा, क्या मतलब? कैसी आखिरी इच्छा? तो उसने कहा कि अगर तुम वह अशर्फी न मांगो, तो मैं शांति से मर जाऊं। पर एक मरते हुए आदमी की आखिरी इच्छा! इतनी दुष्टता करोगे कि एक मरते हुए आदमी की आखिरी इच्छा पूरी न करो?

गरीब मल्लाह उस मरते हुए आदमी की आखिरी इच्छा पूरी किया। वह धनपति शांति से कूद गया। ऐसे ही हम सब कूद जाते हैं, अपने— अपने मोह से भरी हुई मृत्यु में। मोह स्मृति को नष्ट कर देता है, विचार को छुड़ा देता है।

जहा स्मृति नष्ट होती है, कृष्ण कहते हैं, वहा बुद्धि भी नष्ट हो ' जाती है।

स्मृति और बुद्धि में फर्क है। स्मृति बुद्धि नहीं है, स्मृति बुद्धि की एक फैकल्टी है। स्मृति केवल बुद्धि का, कहना चाहिए, कोषागार है। स्मृति, कहना चाहिए, बुद्धि का संग्रहालय है, रिजर्वायर है। कहना चाहिए, स्मृति बुद्धि का अतीत है। बुद्धि ने जो—जो जाना है,। वह स्मृति में संगृहीत कर दिया है। बुद्धि का अतीत है स्मृति, बुद्धि नहीं। स्मृति का अर्थ ही है, दि पास्ट, बीता हुआ।

लेकिन पहले अतीत भ्रष्ट होता है, तब वर्तमान भ्रष्ट होता है, तब भविष्य भ्रष्ट होता है। पहले उसका बोध क्षीण होता है, जो था। फिर उसका बोध क्षीण होता है, जो है। फिर उसका बोध क्षीण हो जाता है, जो होगा। स्वाभाविक। क्योंकि अतीत सबसे ज्यादा स्पष्ट है। जो हो चुका है, वह सबसे ज्यादा स्पष्ट है। जो हो रहा है, अभी। धूमिल है। जो नहीं हुआ, अनिश्चित है। बुद्धि की पकड़ सबसे ज्यादा अतीत पर साफ होती है।

जो हो चुका, वह साफ होगा ही। सब रेखाएं पूरी हो गईं। घटनाएं घट चुकीं। जो होना था, उसने पूरा रूप ले लिया, वह आकृति बन गया। जो हो रहा है, अभी निराकार से आकार में आ रहा है। जो होगा, वह अभी निराकार है। जो भविष्य है, वह अव्यक्त है। जो वर्तमान है, वह व्यक्त होने की प्रक्रिया में है। जो अतीत है, वह व्यक्त हो गया है।

इसलिए जब पहला हमला होगा, तो स्मृति पर होगा। क्योंकि वही सबसे स्पष्ट है। सबसे पहले स्पष्ट डांवाडोल हो जाएगा। और जब स्पष्ट ही डांवाडोल हो जाएगा, तो अस्पष्ट के डांवाडोल होने में कितनी देर लगेगी! और जब अस्पष्ट ही डावाडोल हो जाएगा, तो जो अभी निराकार है, उस पर तो सारी ही समझ छूट जाएगा। पहले अतीत नष्ट हो जाएगा, फिर वर्तमान, फिर भविष्य। पहले इतिहास विकृत हो जाएगा, फिर जीवन, और फिर संभावना।

कृष्ण एक—एक कदम, ठीक वैज्ञानिक कदम की बात कर रहे हैं, स्मृति नष्ट हो जाती है अर्जुन, फिर बुद्धि का नाश हो जाता है।

बुद्धि क्या है? और कृष्ण जिन अर्थों में बुद्धि का उपयोग करते हैं, वह क्या है? कृष्ण इंटलेक्ट के अर्थों में बुद्धि का उपयोग नहीं करते। इंटेलिजेंस के अर्थों में बुद्धि का उपयोग करते हैं। इसमें आपको भाषाकोश में तो दोनों शब्दों का एक ही मतलब है। आप कहेंगे, बुद्धि, इंटलेक्ट और इंटेलिजेंस में क्या फर्क है?

बुद्धि का वह रूप जो एक्यूअलाइज हो गया है, इंटलेक्ट है। बुद्धि का वह रूप जो वास्तविक हो गया है, जिसका आप प्रयोग कर चुके, जो सक्रिय हो गया है, वह इंटलेक्ट है। कहें, बुद्धिमानी है। जो बुद्धि का रूप अभी भी निक्तिय पड़ा है, जो अभी सक्रिय नहीं हुआ, जो अभी पोटेंशियल में पड़ा है, बीज में पड़ा है, अभी रूपाकृत नहीं हुआ, रूपायित नहीं हुआ, जो अभी साकार नहीं हुआ, जो अभी वास्तविक नहीं हुआ—केवल संभावना है—बुद्धि में, इंटेलिजेंस में वह भी सम्मिलित है। दि एक्यूअलाइब्द इंटेलिजेंस इज इंटलेक्ट। जो वास्तविक बन गई है बुद्धि, वह बुद्धिमानी है। और जो अभी वास्तविक नहीं बनी, वह भी बुद्धि के हिस्से में है।

तो आपकी बुद्धिमानी ही आपकी बुद्धि नहीं है, आपकी बुद्धि आपकी बुद्धिमानी से बड़ी चीज है। अगर आपकी बुद्धिमानी ही आपकी बुद्धि है, तो फिर आपमें विकास का कोई उपाय न बचेगा। बात खतम हो गई। बुद्धि का वर्तुल बड़ा है। बुद्धिमानी का वर्तुल बुद्धि के बड़े वर्तुल में छोटा है। वह बुद्धिमानी का वर्तुल बड़ा होता जाए, बडा होता जाए और किसी दिन बुद्धि के पूरे वर्तुल को छू ले, तो आदमी स्थितप्रज्ञ हो जाता है।

कृष्ण कहते हैं, बुद्धि विकृत हो जाती है।

बुद्धिमानी तो विकृत हो जाती है स्मृति के साथ ही। क्योंकि बुद्धिमानी यानी स्मृति; नालेज यानी मेमोरी। नोइंग यानी बुद्धि, जानने की क्षमता यानी बुद्धि। जानने की क्षमता जितनी सक्रिय हो गई, यानी बुद्धिमानी। जो जान लिया, वह बुद्धिमानी; और जो जानने की शक्ति है भीतर, वह बुद्धि। बुद्धि सदा जानने की शक्ति से बड़ी है। जानने की वास्तविकता से बड़ी क्षमता है।

स्मृति पहले विकृत हो जाती है। स्मृति अर्थात इंटलेक्ट विकृत हो गई। और फिर, कृष्ण कहते हैं, वह जो अव्यक्त में पड़ी बुद्धि है, उस तक भी डांवाडोल भंवर पहुंचने लगते हैं। वह जो गहरे में छिपी प्रज्ञा है, वह भी कंपित होने लगती है। क्योंकि जब स्मृति की आधारशिलाए गिर जाती हैं, तो उसके ऊपर अव्यक्त का जो भवन है, शिखर है, वे भी कंपने लगते हैं। वह अंतिम पतन है। और जब बुद्धि—नाश हो जाता है, तो सब खो जाता है।

कृष्ण कहते हैं, अर्जुन, जब बुद्धि—नाश हो जाता है, तो सब खो जाता है। फिर कुछ भी बचता नहीं। वह आदमी की परम दीनता है, बैंक्रप्सी, दिवालियापन है। वहां आदमी बिलकुल दिवालिया हो। जाता है—धन खोकर नहीं, स्वयं को ही खो देता है। फिर उसके ' पास कुछ बचता ही नहीं। वह बिलकुल ही नकार हो जाता है। ' ना—कुछ हो जाता है। उसका सब ही खो जाता है। यही दीनता है, यही दरिद्रता है। अगर अध्यात्म के अर्थों में समझें, तो ऐसी स्थिति स्प्रिचुअल पावर्टी है, ऐसी स्थिति आध्यात्मिक दारिद्रध है।

लेकिन हम भौतिक दारिद्रध से बहुत डरते हैं, आध्यात्मिक दारिद्रध से जरा भी नहीं डरते। हम बहुत डरते हैं कि एक पैसा न खो जाए। आत्मा खो जाए—हम नहीं डरते। हम बहुत डरते हैं कि कोट न खो जाए, कमीज न खो जाए। लेकिन जिसने कोट और कमीज पहना है, वह खो जाए—हमें जरा भी फिक्र नहीं। कोट और कमीज बच जाए, बस बहुत है। वस्तुओं को बचा लेते हैं, स्वयं को खो देते हैं।

खोने की जो प्रक्रिया कृष्ण ने कही, वह बहुत ही मनोवैज्ञानिक है। अभी पश्चिम का मनोविज्ञान या आधुनिक मनोविज्ञान इतने गहरे नहीं जा सका है। जाएगा, कदम उठने शुरू हो गए हैं, लेकिन इतने गहरे नहीं जा सका है। अभी पश्चिम का मनोविज्ञान काम के आस—पास ही भटक रहा है, सेक्स के आस—पास ही भटक रहा है। अभी पश्चिम का चाहे फ्रायड हो और चाहे कोई और हो, अभी पहले वर्तुल पर ही भटक रहे हैं, जहां काम है। अभी उन्हें पता नहीं है कि काम के बाद और गहरे में क्रोध है, क्रोध के बाद और गहरे में मोह है, मोह के और गहरे में स्मृति—नाश है, स्मृति—नाश के और गहरे में बुद्धि का दिवालियापन है, बुद्धि के दिवालियापन के और गहरे में स्वयं का पूर्णतया नकार हो जाना है।

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन् ।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमीधगच्छति ।।64 ।।

परंतु, स्वाधीन अंतःकरण वाला पुरूष राग—द्वेष से रहित अपने वश में की हुई इंद्रियों द्वारा विषयों को भोगता हुआ प्रसाद अर्थात अंतःकरण की प्रसन्नता को प्राप्त होता है।

ठीक इसके विपरीत—पतन की जो कहानी थी, ठीक इसके विपरीत—राग—द्वेष से मुक्त, कामना के पार, स्वयं में ठहरा, स्वायत्त। स्वयं को खो चुका; और स्वयं में ठहरा। अभी जो कहानी हमने समझी, अभी जो कथा हमने समझी, अभी जो यात्रा हमने देखी, वह स्वयं को खोने की। और स्वयं को कैसे खोता है सीढ़ी—सीढ़ी आदमी, वह हमने देखा। स्वयं से कैसे रिक्त और शून्य हो जाता है। स्वयं से कैसे बाहर, और बाहर, और दूर हो जाता है। कैसे स्वयं को खोकर पर में ही आयत्त हो जाता है, पर में ही ठहर जाता है।

जिसको मैंने कहा, आध्यात्मिक दिवालियापन, स्प्रिचुअल बैंक्रप्सी, उसका मतलब है, पर में आयत्त हुआ पुरुष। यह जो पूरी की पूरी यात्रा थी, पर में आयत्त होने से शुरू हुई थी। देखा था राह पर किसी स्त्री को, देखा था किसी भवन को, देखा था किसी पुरुष को, देखा था चमकता हुआ सोना, देखा था सूरज में झलकता हुआ हीरा—पर, दि अदर, कहीं पर में आकर्षित चित्त पर की खोज पर निकला था। चिंतन किया था, चाह की थी, बाधाएं पाई थीं, क्रोधित हुआ था, मोहग्रस्त बना था, स्मृति को खोया था, बुद्धि के नाश को उपलब्ध हुआ था। पर—आयत्त, दूसरे में—दि अदर ओरिएंटेड। मनोविज्ञान जो शब्द उपयोग करेगा, वह है, दि अदर ओरिएंटेड। तो बड़ी मजे की बात है कि कृष्ण ने स्वायत्त, सेल्फ ओरिएंटेड शब्द का उपयोग किया है। पर— आयत्त, दूसरे की तरफ बहता हुआ पुरुष, दूसरे को केंद्र मानकर जीता हुआ पुरुष। इस पुरुष शब्द को थोड़ा समझें, तो इस पर—आयत्त और स्वायत्त होने को समझा जा सकता है।

शायद कभी खयाल न किया हो कि यह पुरुष शब्द क्या है! सांख्य का शब्द है पुरुष। गांव को हम कहते हैं पुर— नागपुर, कानपुर—गांव को हम कहते हैं पुर। सांख्य कहता है, पुर के भीतर जो छिपा है, वह पुरुष, पुर में रहने वाला। शरीर है पुर। कहेंगे, इतना छोटा—सा शरीर पुर! बहुत बड़ा है, छोटा नहीं है। बहुत बड़ा है। कानपुर की कितनी आबादी है? पांच लाख, छः लाख, सात लाख होगी। शरीर की कितनी आबादी है? सात करोड़। सात करोड़ जीवाणु रहते हैं शरीर में। छोटा पुर नहीं है, सात करोड जीवित सेल हैं शरीर में। अभी तक दुनिया में कोई पुर इतना बड़ा। नहीं है। लंदन की आबादी एक करोड़, टोकियो की सवा करोड़, कलकत्ता की अस्सी लाख, बंबई की साठ।

अभी मनुष्य के शरीर के बराबर पुर पृथ्वी पर बना नहीं है। सात करोड़! क्या इससे कोई फर्क पड़ता है कि छोटे-छोटे प्राणी रहते हैं। छोटा कौन है? बड़ा कौन है? सब रिलेटिव मामला है। आदमी कोई बहुत बड़ा प्राणी है? हाथी से पूछें, ऊंट से पूछें, तो बहुत छोटा ' प्राणी है। तो ये ऊंट या हाथी क्या कोई बहुत बड़े प्राणी हैं? पृथ्वी से पूछें, हिमालय से पूछें।

सोचते होंगे शायद, हिमालय में कोई प्राण नहीं हैं। तो गलत सोचते हैं। हिमालय अभी भी बढ़ रहा है, अभी भी ग्रोथ है, अभी भी बड़ा हो रहा है। हिमालय अभी भी जवान है। सतपुड़ा और! विंध्याचल बूढ़े हैं, अब बढ़ते नहीं हैं। अब सिर्फ थकते हैं और झुक, रहे हैं। हिमालय अभी भी बढ़ रहा है। हिमालय की उम्र भी बहुत। कम है, सबसे नया पहाड़ है। सब पुराने पहाड़ हैं। विंध्या सबसे ज्यादा पुराना पहाड़ है। सबसे पहले पृथ्वी पर विंध्या पैदा हुआ। के से बूढ़ा पर्वत है। अब उसकी ग्रोथ बिलकुल रुक गई है। अब वह बढ़ता नहीं है। अब वह थक रहा है, टूट रहा है, झुक रहा है, कमर उसकी आड़ी हो गई है। हमारे पास कहानी है, उसकी कमर के आड़े होने की।

अगस्त्य की कथा है, कि मुनि गए हैं दक्षिण और कह गए है कि झुका रहना, जब तक मैं लौटूं न। फिर वे नहीं लौटे। कर्म आदमी के हाथ में है, फल आदमी के हाथ में नहीं है। लौटना मुनि का नहीं हो सका। फिर वह बेचारा झुका है। पर यह जियोलाजिकल फैक्ट भी है, यह पुराण कथा ही नहीं है। विंध्या झुक गया है और अब उसमें विकास नहीं है; का है। हिमालय बच्चा है।

हिमालय से पूछें, ऊंट, हाथी! वह कहेगा, बहुत छोटे प्राणी हैं। खुर्दबीन से देखूं तब दिखाई पड़ते हैं, नहीं तो नहीं दिखाई पड़ते। पृथ्वी से पूछें कि हिमालय की कुछ खबर है! वह कहेगी, ऐसे कई हिमालय पैदा हुए, आए और गए। सब मेरे बेटे हैं, मुझ में आते हैं, समा जाते हैं। धरित्री-वह मां है। लेकिन पृथ्वी कोई बहुत बड़ा प्राण रखती है! तो सूरज से पूछें। सूरज साठ लाख गुना बड़ा है पृथ्वी से। उसे दिखाई भी नहीं पड़ती होगी पृथ्वी। साठ लाख गुने बड़े को कैसे दिखाई पड़ेगी?

पर सूरज कोई बहुत बड़ा है? मत इस खयाल में पड़ना। बहुत मीडियाकर स्टार है, बहुत मध्यमवर्गीय है। उससे बहुत बड़े—स्टार हैं, उससे करोड़ और अरब गुने बड़े सूर्य हैं। ये जो रात को तारे दिखाई पड़ते हैं, ये सब सूर्य हैं। छोटे-छोटे दिखाई पड़ते हैं, क्योंकि बहुत दूर हैं। ये छोटे होने की वजह से छोटे नहीं दिखाई पड़ते। ये बहुत दूर है, इसलिए छोटे दिखाई पड़ते हैं। बहुत बड़े-बड़े महासूर्य हैं, जिनसे पूछें कि हमारा भी एक सूर्य है! तो वे कहेंगे कि है, पर बहुत गरीब है, छोटा है। किसी गिनती में नहीं आता। कोई वी. आई. पी. नहीं है!

लेकिन वे महासूर्य, जो इस सूर्य से भी अरबों गुने बड़े हैं, वे भी क्या बहुत बड़े हैं? तो पूरे जगत से पूछें। तो अब तक वैज्ञानिक कहते हैं कि चार अरब सूर्यों का हमें पता चला है। मगर वह अंत नहीं है। उसके पार भी, उसके पार भी, बियांड एंड बियांड-कुछ अंत नहीं है। यहां कौन छोटा, कौन बड़ा! सब छोटा-बड़ा रिलेटिव है।

आपके शरीर में जो जीवाणु हैं, वे भी छोटे नहीं हैं, आप भी बड़े नहीं हैं। सात करोड़ की एक शरीर में बसी हुई बस्ती! और आप सोचते हों कि इन सात करोड़ जीवाणुओं को आपका कोई भी पता है, इनका आपको कोई भी पता है-तो नहीं है। आपको इनका पता नहीं है, इनको आपका पता नहीं है। उनको भी आपका पता नहीं है कि आप हैं। आप जब नहीं होंगे इस शरीर में, तब भी उनमें से बहुत-से जीवाणु जीए चले जाएंगे। मर जाने के बाद भी! आप मरते हैं, वे नहीं मरते। उनमें जो अमीबा हैं, बहुत छोटे हैं, वे तो मरते ही नहीं। उनकी लाखों साल की उम्र है। अगर उम्र के हिसाब से सोचें, तो आप छोटे हैं, वे बड़े हैं।

कब्रिस्तान में दबे हुए आदमी के भी नाखून और बाल बढ़ते रहते हैं। क्योंकि बाल और नाखून बनाने वाले जो जीवाणु हैं, वे आपके साथ नहीं मरते। वे अपना काम जारी रखते हैं। उनको पता ही नहीं पड़ता कि आप मर गए। वे नाखून और बाल को बढ़ाए चले जाते हैं। और जब आप मरते हैं, तो सात करोड़ कीटाणुओं की संख्या में कमी नहीं होती है और बढ़ती हो जाती है। आपके मरने से जगह खाली हो जाती है और हजारों कीटाणु प्रवेश कर जाते हैं। जिसको आप सड़ना कहते हैं, डिटेरियोरेशन, वह आपके लिए होगा; नए कीटाणुओं के लिए तो जीवन है।

यह पुर, इसमें जो बीच में बसा है इस नगर के, वह पुरुष। यह पुरुष दो तरह से हो सकता है : पर-आयत्त हो सकता है, स्वायत्त हो सकता है। जब यह वासनाग्रस्त होता है, तो यह दूसरे को केंद्र बनाकर घूमने लगता है। सैटेलाइट हो जाता है।

जैसे चांद है। चांद सैटेलाइट है। वह जमीन को केंद्र बनाकर घूमता है। जमीन भी सैटेलाइट है, वह सूर्य को केंद्र बनाकर घूमती है। सूर्य भी सैटेलाइट है, वह किसी महासूर्य को केंद्र बनाकर घूमता है। सब अदर ओरिएंटेड हैं।

लेकिन उन्हें माफ किया जा सकता है, क्योंकि उनकी चेतना इतनी नहीं कि वे जान सकें कि क्या अदर और क्या सेल्फ; क्या स्वयं और क्या पर। आदमी को माफ नहीं किया जा सकता, वह जानता है। पति पत्नी का सैटेलाइट है, पत्नी के आस—पास घूम रहा है। कभी छोटा वर्तुल बनाता है, कभी बड़ा वर्तुल बनाता है, लेकिन पत्नी के आस—पास घूम रहा है। पत्नी पति की सैटेलाइट है। वह उसके आस—पास घूम रही है। कोई धन के आस—पास घूम रहा है, कोई काम के आस—पास घूम रहा है, कोई पद के आस—पास घूम रहा है—सैटेलाइट, पर— आयत्त। दूसरा केंद्र है, हम तो सिर्फ परिधि पर घूम रहे हैं—यही दिवालियापन है।

लेकिन हम अपने केंद्र स्वयं हैं, किसी के आस—पास नहीं घूम रहे हैं, तो आदमी स्वायत्त है। यही सम्राट होना है। यही स्प्रिचुअल रिचनेस है। जिसको जीसस ने किंगडम आफ गाड, परमात्मा का साम्राज्य कहा, उसको कृष्ण कह रहे हैं, स्वायत्त हुआ पुरुष परम आनंद को उपलब्ध हो जाता है। क्योंकि पर—आयत्त हुआ पुरुष। परम दुख को उपलब्ध हो जाता है। दुख यानी पर— आयत्त होना, आनंद यानी स्वायत्त होना।

ये सब समाधिस्थ व्यक्ति की तरफ ही वे इशारे करते जा रहे हैं अर्जुन को। सब दिशाओं से, अनेक—अनेक जगहों से वे इशारे कर रहे हैं कि समाधिस्थ पुरुष यानी क्या। वह जो सवाल पूछ लिया था अर्जुन ने, हो सकता है, वह खुद भी भूल गया हो कि उसने क्या सवाल पूछा था। लेकिन कृष्ण उसके सवाल को समस्त दिशाओं से ले रहे हैं। कहीं से भी उसकी समझ में आ जाए।

तो वे यह कह रहे हैं कि जो स्वयं ही अपना केंद्र बन गया, जिसका अब कोई पर केंद्र नहीं है, ऐसा पुरुष परम ज्ञान को, परम शांति को, परम आनंद को उपलब्ध हो जाता है।

अभी इतना। फिर शेष सांझ हम बात करेंगे।

प्रवचन 18 : विषाद की खाई से ब्राह्मी-स्थिति के शिखर तक

ओशो – गीता-दर्शन – भाग एक

अध्याय—1-2 – प्रवचन 18 : विषाद की खाई से ब्राह्मी-स्थिति के शिखर तक

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते ।
प्रमन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः यर्यवीतष्ठते।।65 ।।

उस निर्मलता के होने पर इसके संपूर्ण दुखों का अभाव हो जाता है और उस प्रसन्नचित्त वाले पुरुष की बुद्धि शीघ्र ही अच्छी प्रकार स्थिर हो जाती है।

विक्षेपरहित चित्त में शुद्ध अंतःकरण फलित होता है? या शुद्ध अंतःकरण विक्षेपरहित चित्त बन जाता है? कृष्ण जो कह रहे हैं, वह हमारी साधारण साधना की समझ के बिलकुल विपरीत है। साधारणत: हम सोचते हैं कि विक्षेप अलग हों, तो अंतःकरण शुद्ध होगा। कृष्ण कह रहे हैं, अंतःकरण शुद्ध हो, तो विक्षेप अलग हो जाते हैं।

यह बात ठीक से न समझी जाए, तो बड़ी भ्रांतियां जन्मों—जन्मों के व्यर्थ के चक्कर में ले जा सकती हैं। ठीक से काज और इफेक्ट, क्या कारण बनता है और क्या परिणाम, इसे समझ लेना ही विज्ञान है। बाहर के जगत में भी, भीतर के जगत में भी। जो कार्य—कारण की व्यवस्था को ठीक से नहीं समझ पाता और कार्यों को कारण समझ लेता है और कारणों को कार्य बना लेता है, वह अपने हाथ से ही, अपने हाथ से ही अपने को गलत करता है। वह अपने हाथ से ही अपने को अनबन करता है।

किसान गेहूं बोता है, तो फसल आती है। गेहूं के साथ भूसा भी आता है। लेकिन भूसे को अगर बो दिया जाए, तो भूसे के साथ गेहूं नहीं आता। ऐसे किसान सोच सकता है कि जब गेहूं के साथ भूसा आता है, तो उलटा क्यों नहीं हो सकता है! भूसे को बो दें, तो गेहूं साथ आ जाए—वाइस—वरसा क्यों नहीं हो सकता? लेकिन भूसा बोने से सिर्फ भूसा सड़ जाएगा, गेहूं तो आएगा ही नहीं, हाथ का भूसा भी जाएगा। भूसा आता है गेहूं के साथ, गेहूं भूसे के साथ नहीं आता है।

अंतःकरण शुद्ध हो, तो चित्त के विक्षेप सब खो जाते हैं, विक्षिप्तता खो जाती है। लेकिन चित्त की विक्षिप्तता को कोई खोने में लग जाए, तो अंतःकरण तो शुद्ध होता नहीं, चित्त की विक्षिप्तता और बढ़ जाती है।

जो आदमी अशात है, अगर वह शात होने की चेष्टा में और लग जाए, तो अशांति सिर्फ दुगुनी हो जाती है। अशांति तो होती ही है, अब शांत न होने की अशांति भी पीड़ा देती है। लेकिन अंतःकरण कैसे शुद्ध हो जाए? पूछा जा सकता है कि अंतःकरण शुद्ध कैसे हो जाएगा? जब तक विचार आ रहे, विक्षेप आ रहे, विक्षिप्तता आ रही, विकृतियां आ रहीं, तब तक अंतःकरण शुद्ध कैसे हो जाएगा? कृष्ण अंतःकरण शुद्ध होने को पहले रखते हैं, पर वह होगा कैसे?

यहां सांख्य का जो गहरा से गहरा सूत्र है, वह आपको स्मरण दिलाना जरूरी है। सांख्य का गहरा से गहरा सूत्र यह है कि अंतःकरण शुद्ध है ही। कैसे हो जाएगा, यह पूछता ही वह है, जिसे अंतःकरण का पता नहीं है। जो पूछता है, कैसे हो जाएगा शुद्ध? उसने एक बात तो मान ली कि अंतःकरण अशुद्ध है।

आपने अंतःकरण को कभी जाना है? बिना जाने मान रहे हैं कि अंतःकरण अशुद्ध है और उसको शुद्ध करने में लगे हैं। अगर अंतःकरण अशुद्ध नहीं है, तो आपके शुद्ध करने की सारी चेष्टा व्यर्थ ही हो रही है। और यह चेष्टा जितनी असफल होगी—सफल तो हो नहीं सकती, क्योंकि जो शुद्ध है, वह शुद्ध किया नहीं जा सकता, लेकिन जो शुद्ध है, उसे शुद्ध करने की चेष्टा असफल होगी—असफलता दुख लाएगी, असफलता विषाद लाएगी, असफलता दीनता—हीनता लाएगी, असफलता हारापन, फ्रस्ट्रेशन लाएगी। और बार—बार असफल होकर आप यह कहेंगे, अंतःकरण शुद्ध नहीं होता, अशुद्धि बहुत गहरी है। आप जो निष्कर्ष निकालेंगे, निष्पत्ति निकालेंगे, वह बिलकुल ही उलटी होगी।

एक घर में अंधेरा है। तलवारें लेकर हम घर में घुस जाएं और अंधेरे को बाहर निकालने की कोशिश करें। तलवारें चलाए, अंधेरे को काटें—पीटें। अंधेरा बाहर नहीं निकलेगा। थक जाएंगे, हार जाएंगे, जिंदगी गंवा देंगे, अंधेरा बाहर नहीं निकलेगा। क्यों? तो शायद सारी मेहनत करने के बाद हम बैठकर सोचें कि अंधेरा बहुत शक्तिशाली है, इसलिए बाहर नहीं निकलता।

तर्क अनेक बार ऐसे गलत निष्कर्षों में ले जाता है, जो ठीक दिखाई पड़ते हैं; यही उनका खतरा है। अब यह बिलकुल ठीक दिखाई पड़ता है कि इतनी मेहनत की और अंधेरा नहीं निकला, तो इसका मतलब साफ है कि मेहनत कम पड़ रही है, अंधेरा ज्यादा शक्तिशाली है। सचाई उलटी है। अगर अंधेरा शक्तिशाली हो, तब तो किसी तरह उसे निकाला जा सकता है। शक्ति को निकालने के लिए बड़ी शक्ति ईजाद की जा सकती है।

अंधेरा है ही नहीं, यही उसकी शक्ति है। वह है ही नहीं, इसलिए आप उसको शक्ति से निकाल नहीं सकते। वह नान—एक्झिस्टेंशियल है, उसका कोई अस्तित्व ही नहीं है। और जिसका अस्तित्व नहीं है, उसे तलवार से न काटा जा सकता है, न धक्के से निकाला जा सकता है। असल में अंधेरा सिर्फ एब्सेंस है किसी चीज की, अंधेरा अपने में कुछ भी नहीं है। अंधेरा सिर्फ अनुपस्थिति है प्रकाश की, बस।

इसलिए आप अंधेरे के साथ सीधा कुछ भी नहीं कर सकते हैं। और अंधेरे के साथ कुछ भी करना हो, तो प्रकाश के साथ कुछ करना पड़ता है। प्रकाश जलाएं, तो अंधेरा नहीं होता। प्रकाश बुझाए, तो अंधेरा हो जाता है। सीधा अंधेरे के साथ कुछ भी नहीं किया जा सकता है, क्योंकि अंधेरा नहीं है। और जो नहीं है, उसके साथ जो सीधा कुछ करने में लग जाएगा, वह अपने जीवन को ऐसे उलझाव में डाल देता है, जिसके बाहर कोई भी मार्ग नहीं होता। वह एकर्डिटी में पड़ जाता है।

अंतःकरण अगर शुद्ध है, तो अंतःकरण को शुद्ध करने की सब चेष्टा खतरनाक है, अंधेरे को निकालने जैसी चेष्टा है। क्योंकि जो नहीं है अशुद्धि, उसे निकालेंगे कैसे? सांख्य कहता है, अंतःकरण अशुद्ध नहीं है। और अगर अंतःकरण भी अशुद्ध हो सकता है, तो इस जगत में फिर शुद्धि का कोई उपाय नहीं है। फिर शुद्ध कौन करेगा? क्योंकि जो शुद्ध कर सकता था, वह अशुद्ध हो गया है। अंतःकरण अशुद्ध नहीं है। अगर ठीक से समझें, तो अंतःकरण ही शुद्धि है—दि वेरी प्योरीफिकेशन, दि वेरी प्योरिटी। अंतःकरण शुद्ध ही है। लेकिन अंतःकरण का हमें कोई पता नहीं है कि क्या है। आप किस चीज को अंतःकरण जानते हैं?

अंग्रेजी में एक शब्द है, कांशिएंस। और गीता के जिन्होंने भी अनुवाद किए हैं, उन्होंने अंतःकरण का अर्थ कांशिएंस किया है। उससे गलत कोई अनुवाद नहीं हो सकता। कांशिएंस अंतःकरण नहीं है। काशिएंस अंतःकरण का धोखा है। इसे थोड़ा समझ लेना जरूरी होगा, क्योंकि वह बहुत गहरे, रूट्स में बैठ गई भ्रांति है सारे जगत में।

जहा भी गीता पढ़ी जाती है, वहां अंतःकरण का अर्थ कांशिएंस कर लिया जाता है। हम भी अंतःकरण से जो मतलब लेते हैं, वह क्या है? आप चोरी करने जा रहे हैं। भीतर से कोई कहता है, चोरी मत करो, चोरी बुरी है। आप कहते हैं, अंतःकरण बोल रहा है। यह कांशिएंस है, अंतःकरण नहीं। यह सिर्फ समाज के द्वारा डाली गई धारणा है, अंतःकरण नहीं। क्योंकि अगर समाज चोरों का हो, तो ऐसा नहीं होगा। ऐसे समाज हैं।

जाट हैं। तो जाट लड़के की शादी नहीं होती, जब तक वह दो—चार चोरियां न कर ले। जाट का लड़का जब चोरी करने जाता है, तो कभी उसके मन में नहीं आता कि बुरा कर रहा है। अंतःकरण उसके पास भी है, आपके पास ही नहीं है। लेकिन सोशल जो बिल्ट—इन आपके भीतर डाली गई धारणा है, वह उसके पास नहीं है।

मेरे एक मित्र पख्तून इलाके में घूमने गए थे। तो पेशावर में उन्हें मित्रों ने कहा कि पख्ुतून इलाके में जा रहे हैं, जरा सम्हलकर बैठना। जीप तो ले जा रहे हैं, लेकिन होशियारी रखना। उन्होंने कहा, क्या, खतरा क्या है? हमारे पास कुछ है नहीं लूटने को। उन्होंने कहा कि नहीं, यह खतरा नहीं है। खतरा यह है कि पख्तून लड़के अक्सर सड्कों पर निशाना सीखने के लिए लोगों को गोली मार देते हैं—निशाना सीखने के लिए; दुश्मन को नहीं! पख्तून लड़के निशाना सीखने के लिए सड़क के किनारे से चलती हुई कार में गोली मारकर देखते हैं कि निशाना लगा कि नहीं। मित्र तो बहुत घबड़ा गए। उन्होंने कहा कि आप क्या कहते हैं, निशाना लगाने के लिए! तो क्या उनके पास कोई अंतःकरण नहीं है?

अंतःकरण तो पख्तून के पास भी है। अंतःकरण किसी की बपौती नहीं है। लेकिन पख्तून के पास, जिसको हिंसा—अहिंसा का सामाजिक बोध कहते हैं, उसे डालने का कोई बचपन से प्रयास नहीं किया गया है।

एक हिंदू को कहें कि चचेरी बहन से शादी कर ले, तो उसका। अंतःकरण इनकार करता है, मुसलमान का नहीं करता। कारण यह नहीं है कि मुसलमान के पास अंतःकरण नहीं है। सिर्फ चचेरी बहन से शादी करने की धारणा का भेद है। वह समाज देता है। वह अंतःकरण नहीं है।

समाज ने एक इंतजाम किया है, बाहर अदालत बनाई है और भीतर भी एक अदालत बनाई है। समाज ने पुख्ता इंतजाम किया है कि बाहर से वह कहता है कि चोरी करना बुरा है; वहा पुलिस है, अदालत है। लेकिन इतना काफी नहीं है, क्योंकि भीतर भी एक पुलिसवाला होना चाहिए, जो पूरे वक्त कहता रहे कि चोरी करना बुरा है। क्योंकि बाहर के पुलिसवाले को धोखा दिया जा सकता है। उस हालत में भीतर का पुलिसवाला काम पड़ सकता है।

काशिएंस अंग्रेजी का जो शब्द है, उसको हमें कहना चाहिए अंतस—चेतन, अंतःकरण नहीं। सांख्य का अंतःकरण, बात ही और है। अंतःकरण को अगर अंग्रेजी में अनुवादित करना हो, तो कांशिएंस शब्द नहीं है। अंग्रेजी में कोई शब्द नहीं है ठीक। क्योंकि अंतःकरण का मतलब होता है, दि इनरमोस्ट इंस्ट्रूमेंट, अंतरतम उपकरण, अंतरतम—जहां तक अंतस में जाया जा सकता है भीतर—वह जो आखिरी है भीतर, वही अंतःकरण है। इसका मतलब क्या हुआ? इसका मतलब आत्मा नहीं।

अब यह बड़े मजे की बात है, अंतःकरण का मतलब आत्मा नहीं है। क्योंकि आत्मा तो वह है, जो बाहर और भीतर दोनों में नहीं है, दोनों के बाहर है। अंतःकरण वह है, आत्मा के निकटतम जो उपकरण है, जिसके द्वारा हम बाहर से जुड़ते हैं।

समझ लें कि आत्मा के पास एक दर्पण है, जिसमें आत्मा प्रतिफलित होती है, वह अंतःकरण है, निकटतम। आत्मा में पहुंचने। के लिए अंतःकरण आखिरी सीढ़ी है। और अंतःकरण आत्मा के इतने निकट है कि अशुद्ध नहीं हो सकता। आत्मा की यह निकटता ही उसकी शुद्धि है।

यह अंतःकरण कांशिएंस नहीं है, जो हमारे भीतर, जब हम सड़क पर चलते हैं और बाएं न चलकर दाएं चल रहे हों, तो भीतर से कोई कहता है कि दाएं चलना ठीक नहीं है, बाएं चलना ठीक है। यह अंतःकरण नहीं है। यह केवल सामाजिक आंतरिक व्यवस्था है। यह अंतस—चेतन है, जो समाज ने इंतजाम किया है, ताकि आपको व्यवस्था और अनुशासन दिया जा सके।

समाज अलग होते हैं, व्यवस्था अलग हो जाती है। अमेरिका में चलते हैं, तो बाएं चलने की जरूरत नहीं है। वहां अंतःकरण— जिसको हम अंतःकरण कहते हैं—वह कहता है, दाएं चलो, बाएं मत चलना। क्योंकि नियम बाएं चलने का नहीं है, दाएं चलने का है। सामाजिक व्यवस्था की जो आंतरिक धारणाएं हैं, वे अंतःकरण नहीं हैं।

तो अंतःकरण का हमें पता ही नहीं है, इसका मतलब यह हुआ। हम जिसे अंतःकरण समझ रहे हैं, वह बिलकुल ही भ्रांत है। अंतःकरण नैतिक धारणा का नाम नहीं है, अंतःकरण मारैलिटी नहीं है। क्योंकि मारैलिटी हजार तरह की होती हैं, अंतःकरण एक ही तरह का होता है। हिंदू की नैतिकता अलग है, मुसलमान की नैतिकता अलग, जैन की नैतिकता अलग, ईसाई की नैतिकता अलग, अफ्रीकन की अलग, चीनी की अलग। नैतिकताए हजार हैं, अंतःकरण एक है।

अंतःकरण शुद्ध ही है। आत्मा के इतने निकट रहकर कोई चीज अशुद्ध नहीं हो सकती। जितनी दूर होती है आत्मा से, उतनी अशुद्ध की संभावना बढ़ती है। अगर ठीक से समझें, मोर दि डिस्टेंस मोर दि इंप्योरिटी। जैसे एक दीया जल रहा है यहां, दीए की बत्ती जल रही है। बत्ती के बिलकुल पास रोशनी का वर्तुल है, वह शुद्धतम है। फिर बत्ती की रोशनी आगे गई; फिर धूल है, हवा है, और रोशनी अशुद्ध हुई। फिर और दूर गई, फिर और अशुद्ध हुई; फिर और दूर गई, फिर और अशुद्ध हुई। और थोड़ी दूर जाकर हम देखते हैं कि रोशनी नहीं है, अंधेरा है। एक—एक कदम रोशनी जा रही है और अंधेरे में डूबती जा रही है।

शरीर तक आते—आते सब चीजें अशुद्ध हो जाती हैं, आत्मा तक जाते—जाते सब शुद्ध हो जाती हैं। शरीर के निकटतम इंद्रियां हैं। इंद्रियों के निकटतम अंतस—इंद्रियां हैं। अंतस—इंद्रियों के निकटतम स्मृति है। स्मृति के

निकटतम बुद्धि है—प्रायोगिक। प्रायोगिक, एप्लाइड इंटलेक्ट के निकटतम अप्रायोगिक बुद्धि है। अप्रायोगिक बुद्धि के नीचे अंतःकरण है। अंतःकरण के नीचे आत्मा है। आत्मा के नीचे परमात्मा है।

ऐसा अगर खयाल में आ जाए, तो सांख्य कहता है कि अंतःकरण शुद्ध ही है। वह कभी अशुद्ध हुआ नहीं। लेकिन हमने अंतःकरण को जाना नहीं है, इसलिए लोग पूछते, अंतःकरण कैसे शुद्ध हो? अंतःकरण शुद्ध नहीं किया जा सकता। करेगा कौन? और जो शुद्ध है ही, वह शुद्ध कैसे किया जा सकता है? पर जाना जा सकता है कि शुद्ध है। कैसे जाना जा सकता है?

एक ही रास्ता है—पीछे हटें, पीछे हटें, अपने को पीछे हटाएं, अपनी चेतना को सिकोड़े, जैसे कछुआ अपने अंगों को सिकोड़ लेता है। शरीर को भूलें, इंद्रियों को भूलें। छोड़े बाहर की परिधि को, और भीतर चलें। अंतस—इंद्रियों को छोड़े, और भीतर चलें। स्मृति को छोड़े, और भीतर चलें। भीतर याद आ रही है, शब्द आ रहे हैं, विचार आ रहे हैं, स्मृति आ रही है। छोड़े, कहें कि यह भी मैं नहीं हूं। कहें कि नेति—नेति, यह भी मैं नहीं हूं। हैं भी नहीं क्योंकि जो देख रहा है भीतर कि यह स्मृति से विचार आ रहा है वह अन्य है, वह भिन्न है, वह पृथक है। जानें कि यह मैं नहीं हूं। आप मुझे दिखाई पड़ रहे हैं। निश्चित ही, आप मुझे दिखाई पड़ रहे हैं, पक्का हो गया कि मैं आप नहीं हूं। नहीं तो देखेगा कौन आपको? देखने वाला और दिखाई पड़ने वाला भिन्न हैं, दृश्य और द्रष्टा भिन्न हैं।

यह सांख्य का मौलिक साधना—सूत्र है, दृश्य और द्रष्टा भिन्न हैं। फिर सांख्य की सारी साधना इसी भिन्नता के ऊपर गहरे उतरती है। फिर सांख्य कहता है, जो भी चीज दिखाई पड़ने लगे, समझना कि इससे भिन्न हूं। भीतर से देखें, शरीर दिखाई पडता है। और भीतर देखें, हृदय की धडकन सुनाई पड़ती है। आप भिन्न हैं। और भीतर देखें, विचार दिखाई पड़ते हैं। आप भिन्न है,। और भीतर देखें और भीतर देखें, समाज की धारणाएं हैं, चित्त पर बहुत सी परतें हैं—वे सब दिखाई पड़ती हैं। और उतरते जाएं। आखिर में उस जगह पहुंच जाते हैं, जहां अंतःकरण है, सब शुद्धतम है। लेकिन शुद्धतम, वह भी भिन्न है; वह भी अलग है। इसीलिए उसको आत्मा नहीं कहा, उसको भी अंतःकरण कहा। क्योंकि आत्मा उस शुद्धतम के भी पार है। शुद्धतम का अनुभव कैसे होगा? आपको अशुद्धतम का अनुभव कैसे होता है?

कोई मुझसे आकर पूछता है, शुद्ध का हम अनुभव कैसे करेंगे? तो उसको मैं कहता हूं कि तुम बगीचे की तरफ चले। अभी बगीचा नहीं आया, लेकिन ठंडी हवा मालूम होने लगी। तुम्हें कैसे पता चल।? जाता है कि ठीक चल रहे हैं? क्योंकि ठंडी हवा मालूम होने लगी। फिर तुम और बढ़ते हो; सुगंध भी आने लगी; तब तुम जानते हो कि और निकट है बगीचा। अभी बगीचा आ नहीं गया है। शायद अभी दिखाई भी नहीं पड़ रहा हो। और निकट बढ़ते हो, अब हरियाली दिखाई भी पड़ने लगी। अब बगीचा और निकट आ गया है। अभी फिर भी हम बगीचे में नहीं पहुंच गए हैं। फिर हम बगीचे के बिलकुल द्वार पर खड़े हो गए। सुगंध है, शीतलता है, हरियाली है, चारों तरफ शांति और सन्नाटा और एक वेल बीइंग, एक स्वास्थ्य का भाव घेर लेता है।

ऐसे ही जब कोई भीतर जाता है, तो आत्मा के जितने निकट पहुंचता है, उतना ही शात, उतना ही मौन, उतना ही प्रफुल्लित, उतना ही प्रसन्न, उतना ही शीतल होने लगता है। जैसे —जैसे भीतर चलता है, उतना ही प्रकाशित, उतना ही आलोक से भरने लगता है। जैसे—जैसे भीतर चलने लगता है, कदम—कदम भीतर सरकता है, कहता है, यह भी नहीं, यह भी नहीं, यह भी नहीं। पहचानता है, रिकग्नाइज करता है—यह भी नहीं। यह दृश्य हो गया, तो मैं नहीं हूं। मैं तो वहां तक चलूंगा, जहां सिर्फ द्रष्टा रह जाए। तो द्रष्टा जब अंत में रह जाए, उसके पहले जो मिलता है, वह अंतःकरण है। अंतःकरण जो है, वह अंतर्यात्रा का आखिरी पड़ाव है। आखिरी पड़ाव, मंजिल नहीं। मंजिल उसके बाद है।

यह अंतःकरण शुद्ध ही है, इसीलिए सांख्य की बात कठिन है। कोई हमें समझाए कि शुद्ध कैसे हो, तो समझ में आता है। सांख्य कहता है, तुम शुद्ध हो ही। तुम कभी गए ही नहीं वहां तक जानने, जहां शुद्धि है। तुम बाहर ही बाहर घूम रहे हो घर के। तुम कभी घर के भीतर गए ही नहीं। घर के गर्भ में परम शुद्धि का वास है। उस परम शुद्धि के बीच आत्मा और उस आत्मा के भी बीच परमात्मा है। पर वहा गए ही नहीं हम कभी। घर के बाहर घूम रहे हैं। और। घर के बाहर की गंदगी है।

एक आदमी घर के बाहर घूम रहा है और सड़क पर गंदगी पड़ी है। वह कहता है इस गंदगी को देखकर कि मेरे घर के अंदर भी सब गंदा होगा, उसको मैं कैसे शुद्ध करूं? हम उसे कहते हैं, यह गंदगी घर के बाहर है। तुम घर के भीतर चलो; वहां कोई गंदगी नहीं है। तुम इस गंदगी से आब्सेस्ट मत हो जाओ। यह घर के बाहर होने की वजह से है। यहां तक वह शुद्धि की धारा नहीं पहुंच पाती है, माध्यमों में विकृत हो जाती है, अनेक माध्यमों में विकृत हो जाती। है। अंदर चलो, भीतर चलो, गो बैक, वापस लौटो।

तो कृष्ण कह रहे हैं, अंतःकरण शुद्ध होता है, ऐसा जिस दिन। जाना जाता है, उसी दिन चित्त के सब विक्षेप, चित्त की सारी ‘ विक्षिप्तता खो जाती है—खोनी नहीं पड़ती।

इसे ऐसा समझें, एक पहाड़ के किनारे एक खाई में हम बसे हैं। अंधेरा है बहुत। सीलन है। सब गंदा है। पहाड़ को घेरे हुए बादल घूमते हैं। वे वादी को, खाई को ढक लेते हैं। उनकी वजह से उनपर का सूर्य भी दिखाई नहीं पड़ता। उनकी काली छायाएं डोलती हैं घाटी में और बड़ी भयानक मालूम होती हैं।

एक आदमी शिखर पर खड़ा है, वह कहता है, तुम पहाड़ चढ़ो। लेकिन हम नीचे से पूछते हैं कि इन बादलों ‘से छुटकारा कैसे होगा? ये काली छायाएं सारी घाटी को घेरे हुए हैं, इनसे मुक्ति कैसे होगी? वह आदमी कहता है, तुम इनकी फिक्र छोड़ो, तुम पहाड़ चढ़ो। तुम उस जगह आ जाओगे, जहां तुम पाओगे कि बदलिया : नीचे रह गई हैं और तुम ऊपर हो गए हो। और जिस दिन तुम पाओगे कि बदलिया नीचे रह गई हैं और तुम ऊपर हो गए हो, उस दिन बदलिया तुम पर कोई छाया नहीं डालतीं।

बदलिया सिर्फ उन्हीं पर छायाएं डालती हैं, जो बदलियों के नीचे है। बदलिया उन पर छाया नहीं डालतीं, जो बदलियों के ऊपर हैं। अगर कभी हवाई जहाज में आप उड़े हैं, तो बदलिया फिर आप पर छाया नहीं डालतीं। बदलियों का वितान नीचे रह जाता है, आप ऊपर हो जाते हैं। लेकिन पृथ्वी पर बदलिया बहुत छाया डालती हैं।

मन के जो विक्षेप हैं, विक्षिप्तताएं हैं, विकार हैं, वे बदलियों की तरह हैं। और हम पर छाया डालते हैं, क्योंकि हम घाटियों में जीते हैं।

कृष्ण कहते हैं, चलो अंतःकरण की शुद्धि की यात्रा पर। जब तुम अंतःकरण पर पहुंचोगे, तब तुम हसोगे कि ये बदलिया, जो बड़ी पीड़ित करती थीं, अब ये नीचे छूट गई हैं। अब इनका कोई खयाल भी नहीं आता, अब ये कोई छाया भी नहीं डालतीं। अब इनसे कोई संबंध ही नहीं है। अब सूरज आमने—सामने है। अब बीच में कोई बदलियों का वितान नहीं है, कोई जाल नहीं है।

विचार घाटियों के ऊपर बादलों की भांति हैं। जो अंतःकरण तक पहुंचता है, वह शिखर पर पहुंच जाता है। वहां सूर्य का प्रकट प्रकाश है। यह यात्रा है, यह शुद्धि नहीं है। यह यात्रा है, शुद्धि फल है। पता चलता है कि शुद्ध है।

कृष्ण कह रहे हैं, अंतःकरण शुद्ध है, वहा चित्त का कोई विक्षेप नहीं है।

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना ।
न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम् ।।66।।
अयुक्त पुरूष के अंतःकरण में श्रेष्ठ बुद्धि नहीं होती है और उसके अंतःकरण में भावना भी नहीं होती है और बिना भावना वाले पुरूष को शांति भी नहीं होती है। फिर। शांति रहित पुरूष को सुख कैसे हो सकता है?
अयुक्त पुरुष को शाति नहीं। युक्त पुरुष को शाति है। अयुक्त पुरुष क्या? युक्त पुरुष क्या? अयुक्त पुरुष को भावना नहीं, शांति नहीं, आनंद नहीं। यह युक्त और अयुक्त का क्या अर्थ है?

अयुक्त का अर्थ है, अपने से ही अलग, अपने होने से ही दूर पड़ गया, अपने से ही बाहर पड़ गया, अपने से ही टूट गया—स्पिलट।

लेकिन अपने से कोई कैसे टूट सकता है? अपने से कोई कैसे अयुक्त हो सकता है? अपने से टूटना तो असंभव है। अगर हम अपने से ही टूट जाएं, इससे बड़ी असंभव बात कैसे हो सकती है! क्योंकि अपने का मतलब ही यह होता है कि अगर मैं अपने से ही टूट जाऊं,तो मेरे दो अपने हो गए—एक जिससे मैं टूट गया, और एक जो मैं टूटकर हूं। अपने से टूटना हो नहीं सकता।

और अपने से जुड़ने का भी क्या मतलब, अपने से युक्त होने का भी क्या मतलब, जब टूट ही नहीं सकता हूं! तो फिर बात कहां है? सच में कोई अपने से टूटता नहीं, लेकिन अपने से टूटता है, ऐसा सोच सकता है, ऐसा विचार सकता है। ऐसे भाव, ऐसे सम्मोहन से भर सकता है कि मैं अपने से टूट गया हूं।

आप रात सोए। सपना देखा कि अहमदाबाद में नहीं, कलकत्ते में हूं। कलकत्ते में चले नहीं गए। ऐसे सोए—सोए कलकत्ता जाने का अभी तक कोई उपाय नहीं है। अपनी खाट पर अहमदाबाद में ही पड़े हैं। लेकिन स्वप्न देख रहे हैं कि कलकत्ता पहुंच गए। सुबह जल्दी काम है अहमदाबाद में। अब चित्त बड़ा घबड़ाया, यह तो कलकत्ता आ गए! सुबह काम है। अब वापस अहमदाबाद जाना है! अब सपने में लोगों से पूछ रहे हैं कि अहमदाबाद कैसे जाएं! ट्रेन पकड़े, हवाई जहाज पकड़े, बैलगाड़ी से जाएं। जल्दी पहुंचना है, सुबह काम है और यह रात गुजरी जाती है।

आपकी घबड़ाहट उचित है, अनुचित तो नहीं। अहमदाबाद में काम है, कलकत्ते में हैं। बीच में फासला बड़ा है। सुबह करीब आती जाती है। वाहन खोज रहे हैं। लेकिन क्या अहमदाबाद आने के लिए वाहन की जरूरत पड़ेगी? क्योंकि अहमदाबाद से आप गए नहीं हैं क्षणभर को भी, इंचभर को भी। न भी मिले वाहन, तो जैसे ही नींद टूटेगी, पाएंगे कि लौट आए। मिल जाए, तो भी पाएंगे कि लौट आए। असल में गए ही नहीं हैं, लौट आना शब्द ठीक नहीं है। सिर्फ गए के भ्रम में थे।

तो जब कृष्ण कहते हैं, अयुक्त और युक्त, तो वास्तविक फर्क नहीं है। कोई डयुक्त तो होता नहीं कभी, सिर्फ अयुक्त होने के भ्रम में होता है, स्वप्न में होता है। सिर्फ एक ड्रीम क्रिएशन है, एक स्वप्न का भाव है कि अपने से अलग हो गया हूं। युक्त पुरुष वह है, जो इस स्वप्न से जाग गया और उसने देखा कि मैं तो अपने से कभी भी अलग नहीं हुआ हूं।

अयुक्त पुरुष में भावना नहीं होती। क्यों नहीं होती? भावना से मतलब आप मत समझ लेना आपकी भावना, क्योंकि हम सब अयुक्त पुरुष हैं, हममें भावना बहुत है। इसलिए कृष्ण इस भावना की बात नहीं कर रहे होंगे, जो हममें है।

एक आदमी कहता है कि भावना बहुत है। पत्नी मर गई है, रो रहा है। बेटा बीमार पडा है, आंसू गिरा रहा है। कहता है, भावना बहुत है। यह भावना नहीं है, यह फीलिंग नहीं है, यह सिर्फ सेंटिमैन्टलटी है। फर्क क्या है? अगर यह भावना नहीं है, सिर्फ भावना का धोखा है, तो फर्क क्या है?

एक आदमी रो रहा है अपने बेटे के पास बैठा हुआ—मेरा बेटा बीमार है और चिकित्सक कहते हैं, बचेगा नहीं, मर जाएगा। रो रहा है, छाती पीट रहा है। उसके प्राणों पर बडा संकट है। तभी हवा का एक झोंका आता है और टेबल से एक कागज उड़कर उसके पैरों पर नीचे गिर जाता है। वह उसे यूं ही उठाकर देख लेता है। पाता है कि उसकी पत्नी को लिखा किसी का प्रेम—पत्र है। पता चलता है पत्र को पढ़कर कि बेटा अपना नहीं है, किसी और से पैदा हुआ है। सब भावना विदा हो गई। कोई भावना न रही। दवाई की बोतलें हटा देता है। जहर की बोतलें रख देता है। रात एकांत में गरदन दबा देता है। वही आदमी जो उसे बचाने के लिए कह रहा था, वही आदमी गरदन दबा देता है।

भावना का क्या हुआ? यह कैसी भावना थी? यह भावना नहीं। थी। यह मेरे के लिए भावना का मिथ्या भ्रम था। मेरा नहीं, तो बात समाप्त हो गई।

टाल्सटाय ने एक कहानी लिखी है। लिखा है कि एक आदमी का बेटा बहुत दिन से घर के बाहर चला गया। बाप ही क्रोधित हुआ था, इसलिए चला गया था। फिर बाप का होने लगा। बहुत परेशान था। अखबारों में खबर निकाली, संदेशवाहक भेजे। फिर उस बेटे का पत्र आ गया कि मैं आ रहा हूं। आपने बुलाया, तो मैं आता हूं। मैं फला—फलां दिन, फलां —फलां ट्रेन से आ जाऊंगा।

स्टेशन दूर है, देहात में रहता है बाप। अपनी बग्घी कसकर वह उसे लेने आया। मालगुजार है, जमींदार है। लेकिन उसके आने पर पता चला कि ट्रेन आ चुकी है। वह सोचता था चार बजे आएगी, वह दो बजे आ गई। तो धर्मशाला में ठहरा जाकर। अब अपने बेटे की तलाश करे कि वह कहां गया!

धर्मशाला में कोई जगह खाली नहीं है। धर्मशाला के मैनेजर को उसने कहा कि कोई भी जगह तो खाली करवाओ ही। वह जमींदार है। तो उसने कहा कि अभी एक कोई भिखमंगा—सा आदमी आकर ठहरा है इस कमरे में—उसको निकाल बाहर कर दें? उसने कहा कि निकाल बाहर करो। उसे पता नहीं कि वह उसका बेटा है। उसे निकाल बाहर कर दिया गया। वह अपने कमरे में आराम से...। उसने आदमी भेजे कि गांव में खोजो।

वह बेटा बाहर सीढ़ियों पर बैठा है। सर्द रात उतरने लगी। उस गरीब लड़के ने बार—बार कहा कि मुझे भीतर आ जाने दें, बर्फ पड़ रही है और मुझे बहुत दर्द है पेट में। पर उसने कहा कि यहां गड़बड़ मत करो; भाग जाओ यहां से, रात मेरी नींद हराम मत कर देना। फिर रात पेट की तकलीफ से वह लड़का चीखने लगा। तो उसने नौकरों से उसे उठवाकर सड़क पर फिंकवा दिया।

फिर सुबह वह मर गया। सुबह जब वह जमींदार उठा, तो वह लडका मरा हुआ पड़ा था। लोगों की भीड़ इकट्ठी थी। लोग कह रहे थे, कौन है, क्या है, कुछ पता लगाओ। किसी ने उसके खीसे मे, खोज—बीन की तो चिट्ठी मिल गई। तब तो उन्होंने कहा कि अरे, वह जमींदार जिसको खोज रहा है, यह वही है। यह जमींदार को लिखी गई चिट्ठी—पत्री, यह अखबारों की कटिंग! यह उसका लड़का है।

वह जमींदार बाहर बैठकर अपना हुक्का पी रहा है। जैसे ही उसने सुना कि मेरा लड़का है, एकदम भावना आ गई। अब वह छाती पीट रहा है, अब वह रो रहा है। अब उस लड़के को—मरे को—कमरे के अंदर ले गया है। जिंदा को रात नहीं ले गया। मरे को दिन में कमरे के अंदर ले गया। अब उसकी सफाई की जा रही है—मरे पर। मरे को नए कपड़े पहनाए जा रहे हैं! वह जमींदार का बेटा है। अब उसको घर ले जाने की तैयारी चल रही है। और रात उसने कई बार प्रार्थना की, मुझे भीतर आने दो, तो उसको नौकरों से सड़क पर फिंकवा दिया। यह भावना है?

नहीं, यह भावना का धोखा है। भावना मेरे —तेरे से बंधी नहीं होती, भावना भीतर का सहज भाव है। अगर भावना होती, तो उसे कमरे के बाहर निकालना मुश्किल होता। अगर भावना होती, तो ! रात उसके पेट में दर्द है, सर्द रात है, बर्फ पड़ती है, उसे बाहर बिठाना मुश्किल होता। यह सवाल नहीं है कि वह कौन है। सवाल यह है कि भाव है भीतर!

ध्यान रहे, भावना स्वयं की स्फुरणा है। दूसरे का सवाल नहीं कि वह कौन है। मर रहा है एक आदमी, नौकरों से फिंकवा दिया उसको उठवाकर!

टाल्सटाय ने जब यह कहानी लिखी, तो उसने अपने संस्मरणों में लिखा है कि यह कहानी मेरी एक अर्थों में आटोबायोग्राफी भी है। यह मेरा आत्मस्मरण भी है। क्योंकि खुद टाल्सटाय शाही परिवार का था।

उसने लिखा है, मेरी मां मैं समझता था बहुत भावनाशील है। लेकिन यह तो मुझे बाद में उदघाटन हुआ कि उसमें भावना जैसी कोई चीज ही नहीं है। क्यों समझता था कि भावना थी? क्योंकि थिएटर में उसके चार—चार रूमाल भीग जाते थे आंसुओ से। जब नाटक चलता और कोई दुख, ट्रेजेडी होती, तो वह ऐसी धुआंधार रोती थी कि नौकर रूमाल लिए खड़े रहते—शाही घर की लड़की थी—तत्काल रूमाल बदलने पड़ते थे। चार—चार, छह—छह, आठ— आठ रूमाल एक नाटक, एक थिएटर में भीग जाते। तो टाल्सटाय ने लिखा है कि मैं उसके बगल में बैठकर देखा करता था, मेरी मां कितनी भावनाशील!

लेकिन जब मैं बड़ा हुआ तब मुझे पता चला कि उसकी बग्घी बाहर छह घोडों में जुती खड़ी रहती थी और आशा थी कि कोचवान बग्घी पर ही बैठा रहे। क्योंकि कब उसका मन हो जाए थिएटर से जाने का, तो ऐसा न हो कि एक क्षण को भी कोचवान ढूंढना पड़े। बाहर बर्फ पड़ती रहती और अक्सर ऐसा होता कि वह थिएटर में नाटक देखती, तब तक एक—दो कोचवान मर जाते। उनको फेंक दिया जाता, दूसरा कोचवान तत्काल बिठाकर बग्घी चला दी जाती।

वह औरत बाहर आकर देखती कि मुरदे कोचवान को हटाया जा रहा है और जिंदा आदमी को बिठाया जा रहा है। और वह थिएटर के लिए रोती रहती, वह थिएटर में जो ट्रेजेडी हो गई!

तो टाल्सटाय ने लिखा है कि एक अर्थ में यह कहानी मेरी आटोबायोग्राफिकल भी है, आत्म—कथ्यात्मक भी है। ऐसा मैंने अपनी आंख से देखा है। तब मुझे पता चला कि भावना कोई और चीज होगी। फिर यह चीज भावना नहीं है।

जिसको हम भावना कहते हैं, कृष्ण उसको भावना नहीं कह रहे। भावना उठती ही उस व्यक्ति में है, जो अपने से संयुक्त है, जो अपने में युक्त है। युक्त यानी योग को उपलब्ध, युक्त यानी जुड़ गया जो, संयुक्त। अयुक्त अर्थात वियुक्त—जो अपने से जुड़ा हुआ नहीं है। वियुक्त सदा दूसरों से जुड़ा रहता है। युक्त सदा अपने से जुड़ा रहता है।

वियुक्त सदा दूसरों से जुड़ा रहता है। उसके सब लिंक दूसरों से होते हैं। वह किसी का पिता है, किसी का पति है, किसी का मित्र है, किसी का शत्रु है, किसी का बेटा है, किसी का भाई है, किसी की बहन है, किसी की पत्नी है। लेकिन खुद कौन है, इसका उसे कोई पता नहीं होता। उसकी अपने बाबत सब जानकारी दूसरा के बाबत जानकारी होता है। पिता है, अर्थात बेटे से कुछ संबंध है। पति है, यानी पत्नी से कोई संबंध है। उसकी अपने संबंध में सारी खबर दूसरों से जुड़े होने की होती है।

अगर हम उससे पूछें कि नहीं, तू पिता नहीं, भाई नहीं, मित्र नहीं—तू कौन है? हू आर यू? तो वह कहेगा, कैसा फिजूल सवाल पूछते हैं! मैं तो पिता हूं मैं तो पति हूं मैं तो क्लर्क हूं, मैं तो मालिक हूं। लेकिन ये सब फंक्यास हैं। यह सब दूसरों से जुड़े होना है।

अयुक्त व्यक्ति दूसरों से जुड़ा होता है। जो दूसरों से जुड़ा होता है, उसमें भावना कभी पैदा नहीं होती। क्योंकि भावना तभी पैदा होती है, जब कोई अपने से जुड़ता है। जब अपने भीतर के झरनों से कोई जुड़ता है, तब भावना का स्फुरण होता है। जो दूसरों से जुड़ता है, उसमें भावना नहीं होती—एक। जो दूसरों से जुड़ा होता है, वह सदा अशांत होता है—दो। क्योंकि शाति का अर्थ ही अपने भीतर जो संगीत की अनंत धारा बह रही है, उससे संयुक्त हो जाने के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।

शाति का अर्थ है, इनर हार्मनी, शाति का अर्थ है, मैं अपने भीतर तृप्त हूं? संतुष्ट हूं। अगर सब भी चला जाए, चांद—तारे मिट जाए, आकाश गिर जाए, पृथ्वी चली जाए, शरीर गिर जाए, मन न रहे, फिर भी मैं जो हूं, काफी हूं —मोर दैन इनफ—जरूरत से ज्यादा, काफी हूं।

पाम्पेई नगर में, पाम्पेई का जब विस्फोट हुआ, ज्वालामुखी फूटा, तो सारा गांव भागा। आधी रात थी। गांव में एक फकीर भी था। कोई अपनी सोने की तिजोरी, कोई अपनी अशर्फियों का बंडल, कोई फर्नीचर, कोई कुछ, कोई कुछ, जो जो बचा सकता है, लोग लेकर भागे। फकीर भी चला भीड़ में, चला, भागा नहीं। भागने के लिए या तो पीछे कुछ होना चाहिए या आगे कुछ होना चाहिए। भागने के लिए या तो पीछे कुछ होना चाहिए, जिससे भागो, या आगे कुछ होना चाहिए, जिसके लिए भागो।

सारा गाव भाग रहा है, फकीर चल रहा है। लोगों ने उसे धक्के भी दिए और कहा कि यह कोई चलने का वक्त है! भागों। पर उसने कहा, किससे भाग और किसके लिए भागूं? लोगों ने कहा, पागल हो गए हो! यह कोई वक्त चलने का है। कोई टहल रहे हो तुम! यह कोई तफरीह हो रही है!

उस आदमी ने कहा, लेकिन मैं किससे भाग! मेरे पीछे कुछ नहीं, मेरे आगे कुछ नहीं। लोगों ने उसे नीचे से ऊपर तक देखा और उससे कहा कि कुछ बचाकर नहीं लाए! उसने कहा, मेरे सिवाय मेरे पास कुछ भी नहीं है। मैंने कभी कोई चीज बचाई नहीं, इसलिए खोने का उपाय नहीं है। मैं अकेला काफी हूं।

कोई रो रहा है कि मेरी तिजोरी छूट गई। कोई रो रहा है कि मेरा यह छूट गया। कोई रो रहा है कि मेरा वह छूट गया। सिर्फ एक आदमी भीड़ में हंस रहा है। लोग उससे पूछते हैं, तुम हंस क्यों रहे हो? क्या तुम्हारा कुछ छूटा नहीं? वह कहता है कि मैं जितना था, उतना यहां भी हूं। मेरा कुछ भी नहीं छूटा है।

उस अशांत भीड़ में अकेला वही आदमी है, जिसके पास कुछ भी नहीं है। बाकी सब कुछ न कुछ बचाकर लाए हैं, फिर भी अशात हैं। और वह आदमी कुछ भी बचाकर नहीं लाया और फिर भी शांत है। बात क्या है?

युक्त पुरुष शांत हो जाता है, अयुक्त पुरुष अशात होता है। ज्ञानी युक्त होकर शाति को उपलब्ध हो जाता है।

इंद्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनु विधीयते ।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि ।।67 ।।।
तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य गा प्रतिष्ठित ।।68 ।।

क्योंकि, जल में वायु नाव को जैसे कंपित कर देता है, वैसे ही विषयों में विचरती हुई इंद्रियों के बीच में जिस इंद्रिय के साथ मन रहता है वह एक ही इंद्रिय इस अयुक्त पुरूष की प्रज्ञा का हरण कर लेती है। इससे हे महाबाहो, जिस पुरूष की इंद्रियां सब प्रकार इंद्रियों के विषयों से वश में की हुई होती है, उसकी प्रज्ञा स्थिर होती है।

जैसे नाव चलती हो और हवा की आंधियों के झोंके उस नाव को डांवाडोल कर देते हैं, आंधिया तेज हों, तो नाव डूब भी जाती है, ऐसे ही कृष्ण कहते हैं, अर्जुन, जिसके चित्त की शक्ति विषयों की तरफ विक्षिप्त होकर भागती है, उसका मन आधी बन जाता है, उसका मन तूफान बन जाता है। उस आधी और तूफान में शाति की, समाधि की, स्वयं की नाव डूब जाती है। लेकिन अगर आंधिया न चलें, तो नाव डगमगाती भी नहीं। अगर आंधिया बिलकुल न चलें, तो नाव के डूबने का उपाय ही नहीं रह जाता।

ठीक ऐसे ही मनुष्य का चित्त जितने ही झंझावात से भर जाता है वासनाओं के, जितने ही जोर से चित्त की ऊर्जा और शक्ति विषयों की तरफ दौड़ने लगती है, वैसे ही जीवन की नाव डगमगाने लगती। है और डूबने लगती है।

ज्ञानी पुरुष इस सत्य को देखकर, इस सत्य को पहचानकर यह चित्त की वासना की आंधियों को नहीं दौड़ाता। क्या मतलब है? रोक लेता है? लेकिन आंधिया अगर रोकी जाएंगी, तो भी आंधिया ही रहेंगी। और दौड़ रही आंधिया शायद कम संघातक हों, रोकी गई आंधिया शायद और भी संघातक हो जाएं। तो क्या तानी पुरुष आंधियों को रोक लेता है, रिस्ट्रेन करता है? अगर रोकेगा, तो भी आंधिया आंधिया ही रहेंगी और रुकी आंधियों का वेग और भी बढ़ जाएगा। तो क्या करता है इतनी पुरुष? यह बहुत मजे की और समझने की बात है कि आंधिया रोकनी नहीं पड़ती, सिर्फ चलानी पड़ती हैं। रोकनी नहीं पड़ती, सिर्फ चलानी पड़ती हैं। आप न चलाएं, तो रुक जाती हैं। क्योंकि आंधिया कहीं बाहर से नहीं आ रही हैं, आपके ही सहयोग, कोआपरेशन से आ रही हैं।

मैं इस हाथ को हिला रहा हूं। इस हाथ को हिलने से मुझे रोकना नहीं पड़ता। जब रोकता हूं, तो उसका कुल मतलब इतना होता है कि अब नहीं हिलाता हूं। कोई हाथ अगर बाहर से हिलाया जा रहा हो, तो मुझे रोकना पड़े। मैं ही हिला रहा हूं, तो रोकने का क्या मतलब होता है! शब्द में रोकना क्रिया बनती है, उससे भ्रांति पैदा होती है। यथार्थ में, वस्तुत: रोकना नहीं पड़ता, सिर्फ चलाता नहीं हूं कि हाथ रुक जाता है।

एक झेन फकीर हुआ, उसका नाम था रिझाई। एक आदमी उसके पास गया और उसने कहा कि मैं कैसे रोकू? उस फकीर ने कहा, गलत सवाल मेरे पास पूछा तो ठीक नहीं होगा। यह डंडा देखा है! रिंझाई एक डंडा पास रखता था। और वह दुनिया बहुत कमजोर है, जहां फकीर के पास डंडा नहीं होता। कृष्ण कुछ कम डंडे की बात नहीं करते!

एक मित्र कल मुझसे कह रहे थे कि मेरी हालत भी अर्जुन जैसी है। आप मुझे सम्हालना! मेरे मन में हुआ कि उनसे कहूं कि अगर कृष्ण जैसा एक दफा तुमसे कह दूर महामूर्ख! तुम दुबारा लौटकर न आओगे। तुम आओगे ही नहीं।

अर्जुन होना भी आसान नहीं है। वह कृष्ण उसको डंडे पर डंडे दिए चले जाते हैं। भागता नहीं है। संदेह है, लेकिन निष्ठा में भी कोई कमी नहीं है। संदेह है, तो सवाल उठाता है। निष्ठा में भी कोई कमी नहीं है, इसलिए भागता भी नहीं है। रिंझाई ने कहा कि देखा है यह डंडा! झूठे गलत सवाल पूछेगा, हो सिर तोड़ दूंगा।

उस आदमी ने कहा, क्या कहते हैं आप! सिर मेरा वैसे ही अपनी वासनाओं से टूटा जा रहा है। आप मुझे कोई तरकीब रोकने की बताएं। रिंझाई ने कहा, रोकने की बात नहीं है, मैं तुझसे यह पूछता हूं किस तरकीब से वासनाओं को चलाता है? क्योंकि तू ही चलाने वाला है, तो रोकने की तरकीब पूछनी पड़ेगी!

एक आदमी दौड़ रहा है और हमसे पूछता है, कैसे रुके? रुकना पड़ता है! सिर्फ नहीं दौड़ना पड़ता है। रुकना नहीं पड़ता है, सिर्फ नहीं दौड़ना पड़ता है।

हां, कोई उसको घसीट रहा हो, कोई उसकी गरदन में बैल की तरह रस्सी बांधकर खींच रहा हो, तब भी कोई सवाल है। कोई। उसके पीछे से उसको धक्के दे रहा हो, तब भी कोई सवाल है। न! उसे कोई घसीट रहा है, न कोई पीछे से धक्के दे रहा है, वह आदमी दौड़ रहा है। और कहता है, मैं कैसे रुकूं? तो उसे इतना ही कहना पड़ेगा, तू गलत ही सवाल पूछ रहा है। दौड़ भी तू ही रहा है, कैसे रुकने की बात भी तू ही पूछ रहा है। निश्चित ही तू रुकना नहीं चाहता, इसीलिए पूछ रहा है।

जो लोग रुकना नहीं चाहते, वे यही पूछते रहते हैं, कैसे रुके? इसी में समय गंवाते रहते हैं। वे पूछते हैं, हाऊ टु डू इट? करना नहीं चाहते हैं। क्योंकि मजा यह है कि वासना को कैसे चलाएं, इसे पूछने आप कभी किसी के पास नहीं गए, बड़े मजे से चला रहे हैं। तो कृष्ण कह रहे हैं कि जो इन आंधियों को नहीं चलाता है—रोक लेता है नहीं—नहीं चलाता है।

हमारा कोआपरेशन मांगती है वासना। आपने कोई ऐसी वासना देखी है, जो आपके बिना सहयोग के इंचभर सरक जाए! कभी बिना आपके सहयोग के आपके भीतर कोई भी वासना सरकी है इंचभर! तो फिर जरा लौटकर देखना। जब वासना सरके, तो खड़े हो जाना और कहना कि मेरा सहयोग नहीं, अब तू चल। और आप पाएंगे, वहीं गिर गई—वही—इंचभर भी नहीं जा सकती। आपका कोआपरेशन चाहिए।

एक मेरे मित्र हैं, उनको बड़ा क्रोध आता है। बड़े मंत्र पढ़ते हैं, बड़ी प्रार्थनाएं करते हैं, मंदिर जाते हैं और वहा से और क्रोधी होकर लौटते हैं। क्रोध नहीं जाता। बस, उनकी वही परेशानी है कि क्रोध! पर मैंने उनसे कहा कि तुम ही क्रोध करते हो कि कोई और करता है? उन्होंने कहा कि मैं ही करता हूं, लेकिन फिर भी जाता नहीं। कैसे जाए?

मैंने कहा कि अब यह सब छोड़ो। यह कागज मैं तुम्हें लिखकर देता हूं। कागज लिखकर उन्हें दे दिया। उसमें मैंने बड़े—बड़े अक्षरों में लिख दिया कि अब मुझे क्रोध आ रहा है। मैंने कहा, इसे खीसे में रखो और जब भी क्रोध आए, तो इसे देखकर पढ़ना और फिर खीसे में रखना, और कुछ मत करना। उन्होंने कहा, इससे क्या होगा? मैं बड़े —बड़े ताबीज भी बांध चुका! मैंने कहा, छोड़ो ताबीज तुम। तुम इसको खीसे में रखो।

पंद्रह दिन बाद मेरे पास आना। पंद्रह दिन बाद नहीं, वे पांच ही दिन बाद आ गए। और कहने लगे कि क्या जादू है? क्योंकि जैसे ही मैं इसको पढ़ता हूं कि अब मुझे क्रोध आ रहा है, पता नहीं भीतर क्या होता है—गया! कोआपरेशन नहीं मिल पाता। एक सेकेंड को कोआपरेशन चूक जाए—गया।

फिर तो वे कहने लगे, अब तो खीसे तक अंदर हाथ भी नहीं लगाना पड़ता। इधर हाथ गया कि अक्षर खयाल आए कि अब क्रोध आ रहा है; बस कोई चीज एकदम से बीच में जैसे फ्लाप! कोई चीज एकदम से गिर जाती है।

वासना सहयोग मांगती है आपका। निर्वासना सिर्फ असहयोग मांगती है। निर्वासना के लिए कुछ करना नहीं है, वासना के लिए जो किया जा रहा है, वही भर नहीं करना है।

तो रिंझाई ने मुट्ठी बांध ली उस आदमी के सामने और कहा कि देख, यह मुट्ठी बंधी है, अब मुझे मुट्ठी को खोलना है। मैं क्या करूं? उस आदमी ने कहा कि क्या फिजूल की बातें पूछते हैं! बांधिए मत, मुट्ठी खुल जाएगी। बांधिए मत! क्योंकि बांधना पड़ता है, बांधना एक काम है। खोलना काम नहीं है। बांधने में शक्ति लग रही है, खोलने में कोई शक्ति नहीं लगती। न बांधिए तो मुट्ठी खुली रहती है, बांधिए तो बंधती है।

वासना शक्ति मांगती है, न दीजिए शक्ति, तो निर्वासना फलित हो जाती है।

ऐसा झंझावात से मुक्त हुआ चित्त स्वयं में प्रतिष्ठित हो जाता है। कृष्ण कहते हैं, हे महाबाहो, जो स्वयं में प्रतिष्ठित हो जाता है, वह सब कुछ पा लेता है।

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ।।69।।

और हे अर्जुन, संपूर्ण भूत प्राणियों के लिए जो रात्रि है, उसमें भगवन्ता को प्राप्त हुआ संयमी पुरुष जागता है। और जिस नाशवान, क्षणभंगुर सांसारिक सुख में सब भूत प्राणी जागते है, तत्व को जानने वाले मुनि के लिए वह रात्रि है।

जो सबके लिए अंधेरी रात है, वह भी ज्ञानी के लिए, संयमी के लिए जागरण का क्षण है। जो निद्रा है सबके लिए, वह भी ज्ञानी के लिए जागृति है। यह महावाक्य। है। यह साधारण वक्तव्य नहीं है। यह महावक्तव्य है। इसके बहुआयामी अर्थ हैं। दो —तीन आयाम समझ लेना जरूरी है। एक तो बिलकुल सीधा, जिसको कहना चाहिए लिटरल जो। अर्थ है, वह भी इसका अर्थ है। आमतौर से गीता पर किए गए! वार्त्तिक उसके तथ्यगत अर्थ को कभी भी नहीं लेते हैं। जो कि बड़ी। ही गलत बात है। वे सदा ही उसको मेटाफर बना लेते हैं। वह सिर्फ मेटाफर नहीं है। जब यह बात कही जा रही है कि जो सबके लिए निद्रा है, वह भी संयमी और ज्ञानी के लिए जागरण है, तो इसका पहला अर्थ बिलकुल शाब्दिक है। जब आप रात सोते हैं, तब भी संयमी नहीं सोता है।

इसे पहले समझ लेना जरूरी है, क्योंकि इसे कहने की हिम्मत नहीं जुटाई जा सकी है आज तक। सदा उसका अर्थ मोहरूपी निशा और और सब रूपी बातें कही गई हैं। इसका पहला अर्थ बिलकुल ही तथ्यगत है।

जब आप रात सोते हैं, तब भी ज्ञानी नहीं सोता है। इसका क्या मतलब है? बिस्तर पर नहीं लेटता है! इसका क्या मतलब है? आंख बंद नहीं करता है! इसका क्या मतलब है? रात विश्राम को उपलब्ध नहीं होता है! नहीं, यह सब करता है, फिर भी नहीं सोता है। दों—तीन उदाहरण से इस बात को समझें। : बुद्ध ने आनंद को दीक्षा दी। वह उनका चचेरा भाई था और बड़ा भाई था। तो दीक्षा लेते वक्त आनंद ने कहा कि दीक्षा के बाद तो तुम गुरु और मैं शिष्य हो जाऊंगा, तो मैं तुमसे फिर कुछ कह न सकूंगा। अभी मैं तुम्हें आता दे सकता हूं, मैं तुम्हारा बड़ा भाई हूं। दीक्षा लेने के पहले मैं तुम्हें दो —तीन आशाएं देता हूं, जो तुम्हें छोटे भाई की तरह माननी पड़ेगी। बुद्ध ने कहा, कहो।

आनंद ने कहा, एक तो यह कि मैं चौबीस घंटे तुम्हारे साथ रहूंगा। रात तुम सोओगे जहा, वहीं मैं भी सोऊंगा। दूसरा यह कि जब भी मैं कोई सवाल पूछूं, तुम्हें उसी वक्त उत्तर देना पड़ेगा, टाल न सकोगे। तीसरा यह कि मैं अंधेरी आधी रात में भी किसी को मिलाने ले आऊं, तो मिलना पड़ेगा, इनकार न कर सकोगे। तो ये तीन आज्ञाएं देता हूं बड़े भाई की हैसियत से। फिर दीक्षा के बाद तो मैं कुछ कह न सकूंगा। तुम्हारी आशा मेरे सिर पर होगी।

बुद्ध ने ये वचन दे दिए। फिर आनंद बुद्ध के कमरे में ही सोता। दों—चार—दस दिन में ही बहुत हैरान हुआ। क्योंकि बुद्ध जिस करवट सोते हैं—जहां हाथ रखते हैं, जहा पैर रखते हैं—रात में इंचभर भी हिलाते नहीं। कभी करवट भी नहीं बदलते। हाथ जहा रखा है, वहीं रखा रहता है पूरी रात। पैर जहां रखा है, वहीं रखा रहता है पूरी रात। तो आनंद ने कहा कि यह क्या मामला है! यह कैसी नींद है!

दो—चार—दस दिन, रात में कई बार उठकर उसने देखा। देखा कि वही—वही मुद्रा है, वही आसन है, वही व्यवस्था है—सब वही है। दसवें दिन उसने पूछा कि एक सवाल उठ गया है। रात में सोते ! हो या क्या करते हो? बुद्ध ने कहा, जब से अज्ञान टूटा, तब से सिर्फ शरीर सोता है, मैं नहीं सोता हूं। तो अगर करवट, तो मुझे बदलनी पड़े, मेरे बिना सहयोग के शरीर नहीं बदल सकता। कोई जरूरत नहीं बदलने की। एक ही करवट से काम चल जाता है। तो फकीर आदमी को जितने से काम चल जाए, उससे ज्यादा के उपद्रव में नहीं पड़ना चाहिए। ऐसे ही चल जाता है काम। हाथ जहा रखता हूं वहीं रखे रहता हूं। हाथ सो जाता है, मैं नहीं सोता हूं।

कृष्ण कहते हैं, जो सबके लिए अंधेरी निद्रा है, वह भी ज्ञानी के लिए जागरण है।

आप भी पूरे नहीं सोते हैं। क्योंकि ज्ञान का कोई न कोई कोना तो आप में भी जागा रहता है। यहां हम इतने लोग बैठे हैं, सब सो जाएं, रात कोई आदमी आकर चिल्लाए राम! सबको सुनाई पड़ेगा, लेकिन सबको सुनाई नहीं पड़ेगा। जिसका नाम राम है, वह कहेगा, कौन बुला रहा है? कान सबके हैं, सब सोए हैं। राम शब्द गूंजा है, तो सबको सुनाई पड़ा है। लेकिन जो राम है, वह कहता है, कौन बुला रहा है? रात में कौन गड़बड़ करता है? सोने नहीं देता!

क्या हुआ! जरूर इसके भीतर चेतना का एक कोना इस रात में भी जागा है, पहरा दे रहा है। पहचानता है कि राम नाम है अपना।।

मां सोई है रात, तूफान आ जाप बाहर, आधी आ जाए, बादल गरजे, बिजली चमके, उसकी नींद नहीं टूटती। उसका बच्चा जरा—सा कुनकुन करे, वह फौरन हाथ रख लेती। भीतर कोई हिस्सा जागा हुआ है मां का, वह देख रहा है कि बच्चे को कोई गड़बड़ न हो जाए। और बच्चे की गड़बड़ इतनी धीमी है कि मां के एक हिस्से को जागा ही रहना होगा।

आकाश में बिजली चमकती है, बादल गरजते हैं, पानी बरस रहा है, उसका कुछ सुनाई नहीं पड़ता उसे। लेकिन बच्चे की जरा—सी आवाज, उसका जरा—सा करवट लेना, उसकी धीमी—सी पुकार उसे तत्काल जगा देती है। एक हिस्सा उसका भी जागा हुआ है। पर एक हिस्सा! जरूरत के वक्त, इमरजेंसी मेजर है वह हमारा। साधारणतः हमारी पूरी चेतना डूबी रहती है अंधेरे में।

कृष्य कहते हैं, ज्ञानी पुरुष नींद में भी जागा रहता है। पहला अर्थ, पहले आयाम का अर्थ, वास्तविक निद्रा में भी जागरण है। और मैं आपसे कहता हूं कि यह बहुत कठिन नहीं है। जो आदमी दिन के जागते हिस्से में बारह घंटे जागा हुआ जीएगा, वह रात में जागा हुआ सोता है। आप रास्ते पर चल रहे हैं, जागकर चलें। आप खाना खा रहे हैं, जागकर खाएं। आप किसी से बात कर रहे हैं, जागकर बोलें। सुन रहे हैं, जागकर सुनें। यह नींद—नींद, स्लीपी—स्लीपी न हो। यह सब ऐसे ही चल रहा है।

एक आदमी खाना खा रहा है। हमें लगता है कि नींद में कैसे खाना खा सकता है! लेकिन मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि सब लोग नींद में खाना खा रहे हैं।

इमरसन एक बड़ा विचारक हुआ। सुबह बैठा है। उसकी नौकरानी नाश्ता रख गई। किताब में उलझा है, तो नौकरानी ने बाधा नहीं दी। किताब से छूटेगा, तो नाश्ता कर लेगा।

उसका एक मित्र मिलने आया है। वह किताब में डूबा है। नाश्ता पास है। मित्र ने सोचा, इससे बात पीछे कर लेंगे, पहले नाश्ता कर लें। मित्र ने नाश्ता कर लिया, प्लेट खाली करके बगल में सरका दी। फिर इमरसन ने कहा, अरे कब आए? मित्र को देखा, खाली प्लेट को देखा और कहा कि जरा देर से आए, मैं नाश्ता कर चुका हूं।

इस आदमी ने कभी जागकर नाश्ता किया होगा? नहीं, हमने भी नहीं किया है। एक रूटीन है, जिसको हम नींद में भी कर लेते हैं। आदमी साइकिल चलाता है। पैर साइकिल चलाते रहते हैं, आदमी भीतर कुछ और चलाता रहता है। चलता चला जाता है। नींद है।

सड़क के किनारे खड़े हो जाएं, लोगों को जरा चलते देखें। कोई बातचीत करता दिखाई पड़ेगा किसी से, जो मौजूद नहीं है। किसी के ओंठ हिल रहे हैं। कोई हाथ से किसी को झिड़क रहा है। कोई इशारा कर रहा है। आप बहुत हैरान होंगे कि किससे हो रहा है यह सब! नींद, नींद में चल रहे हैं। जब हम जागे हुए भी सोए हैं, तो सोए हुए जागना बहुत मुश्किल है।

इसलिए मैं कहता हूं कि जिन लोगों ने गीता के इस महावाक्य पर वक्तव्य दिए हैं, उनको खुद का कोई अनुभव नहीं है। अन्यथा यह पहला वक्तव्य चूक नहीं सकता था। उनको साफ पता नहीं है कि नींद में जागा हुआ हुआ जा सकता है। लेकिन जागे हुए ही सोए हुए आदमियों को नींद में जागने का खयाल भी नहीं उठ सकता है! तो वे इसका मेटाफोरिकल अर्थ करते हैं। वह अर्थ ठीक नहीं है। जो आदमी दिन में जागकर चलेगा, उठेगा, बैठेगा, वह रात में भी जागा हुआ सोएगा।

महावीर ने कहा है—अजीब बात कही है—महावीर ने कहा है, साधुओ! जागकर चलना, जागकर उठना, जागकर बैठना। सब ठीक है। लेकिन आखिर में महावीर कहते हैं, जागकर सोना। पागलपन की बातें कर रहे हैं! तो फिर सोएंगे काहे के लिए! जागकर सोना, जागते रहना और देखना कि नींद कब आई।

आप कितनी दफे सोए हैं, कभी नींद को आते देखा? जिंदगीभर सोए, रोज सोए। आदमी साठ साल जीता है, तो बीस साल सोता है। आठ घंटे सोए अगर, तो बीस साल सोने में चले जाते हैं। जिंदगी का एक तिहाई सोते हैं। बीस साल सोकर भी कभी आपको पता है, नींद कब आती है? कैसे आती है? नींद क्या है?

कैसा अदभुत है यह मामला! बीस साल जिस अनुभव से गुजरते हैं, उस अनुभव की कोई भी पहचान नहीं है! रोज सोते हैं। लेकिन कोई आपसे पूछे कि नींद क्या है? व्हाट इज दि स्लीप? कैसे आती है? आते वक्त क्या उसकी शकल है, क्या उसका रूप है? कैसे उतरती है? जैसे सांझ उतरती है अंधकार की, सूरज डूबता है, आपके भीतर क्या उतरता है नींद में?

आप कहेंगे कि कुछ पता नहीं है। क्योंकि जब तक जागे रहते हैं, तब तक नींद नहीं आती। जब नींद आ जाती है, उसके पहले तो सो गए होते हैं।

सुबह उठते हैं रोज। कभी देखा है कि नींद का टूटना क्या है, फिनामिनल? नींद कैसे टूटती है? क्या होता है नींद के टूटने में? आप कहते हैं, कुछ पता नहीं। जब तक नींद नहीं टूटती, तब तक हम नहीं होते। जब नींद टूट जाती है, तब टूट ही चुकी होती है। कोई हमें पता नहीं।

कृष्ण कह रहे हैं, ज्ञानी जागकर सोता है।

और जिस व्यक्ति ने अपनी नींद को जागकर देख लिया, वही व्यक्ति अपनी मृत्यु को भी जागकर देख सकता है, अन्यथा नहीं देख सकता है। इसलिए इस सूत्र को मैं महावाक्य कहता हूं।

मौत तो कल आएगी, नींद तो आज ही आएगी। रात नींद को देखते हुए सोए। आज, कल, महीना, दो महीना, तीन महीना— रोज सोते वक्त एक ही प्रार्थना मन में, एक ही भाव मन में आए कि उसे मैं देखूं। जागे रहें, जागे रहें, जागे रहें। देखते रहें, देखते रहें। आज चूकेंगे, कल चूकेंगे, परसों चूकेंगे। महीना, दो महीना, तीन महीना—अचानक किसी दिन आप पाएंगे कि नींद उतर रही है और आप देख रहे हैं। और जिस दिन आप नींद को उतरते देख लेंगे, उस दिन कृष्ण का यह महावाक्य समझ में आएगा; उसके पहले समझ में नहीं आ सकता है। यह इसका वास्तविक अर्थ है।

इसका जो मेटाफोरिकल अर्थ है, वह भी आपसे कहूं। वह भी है, लेकिन वह नंबर दो का मूल्य है उसका। नंबर एक का मूल्य इसी का है। वह भी है। लेकिन वह तो और बहुत—सी बातों में भी कह दिया गया है। उसको कहने के लिए इस वाक्य को कहने की कोई भी जरूरत न थी। वह दूसरा जो मोह—निशा, उसकी तो बहुत चर्चा हो गई। वह जो विषयों की नींद है, वह जो वासना की नींद है, तो उसकी तो काफी चर्चा हो गई है।

और कृष्ण जैसे लोग एक शब्द भी व्यर्थ नहीं बोलते हैं। एक शब्द पुनरुक्त नहीं करते हैं। अगर पुनरुक्ति दिखती हो, तो आपकी समझ में भूल और गलती होती है। कृष्ण जैसे लोग, दे नेवर रिपीट। क्योंकि रिपीट का कोई सवाल नहीं है। दोहराने की कोई जरूरत नहीं है।

क्या आपको पता है कि कौन लोग दोहराते हैं! सिर्फ वे ही लोग दोहराते हैं, जिनमें आत्मविश्वास की कमी होती है। दूसरा आदमी नहीं दोहराता। जिसने एक बात पूरे विश्वास से कह दी पूरी तरह जानकर, बात खत्म हो गई।

तो कृष्ण दोहरा नहीं सकते। इसलिए मैं कहता है कि जो आम व्याख्या की गई है कि जहा कामी आदमी कामवासना में, मोह—निद्रा में, विषयों की नींद में, अंधेरे में डूबा रहता है, वहां संयमी आदमी जागा रहता है। इसको दोहराने के लिए इस वाक्य की बहुत जरूरत नहीं है। लेकिन वह अर्थ करें, तो बुरा नहीं है। लेकिन पहला अर्थ पहले समझ लें।

ही, दूसरा अर्थ है। एक तंद्रा का घेरा, कहना चाहिए एक हिम्मोटिक ऑस, हमारे व्यक्तित्व में अटका हुआ है। जब आप चलते हैं, तो आपके चारों तरफ नींद का एक घेरा चलता है। जब जागा हुआ पुरुष चलता है, तब उसके पास भी चारों तरफ एक जागरण का एक घेरा चलता है। यह जो हमने फकीरों—नानक और कबीर और राम और कृष्ण और बुद्ध और महावीर के आस—पास, उनके चेहरे के पास एक गोल घेरा बनाया है, यह फोटोग्राफिक ट्रिक नहीं है। यह सिर्फ एक मिथ नहीं है। जागे हुए व्यक्ति के आस—पास प्रकाश का एक उज्ज्वल घेरा चलता है।

और जो लोग भी अपने भीतर के प्रकाश को देखने में समर्थ होते हैं, वे दूसरे के ऑस को भी देखने में समर्थ हो जाते हैं। जिन लोगों को भीतर अपने प्रकाश दिखाई पड़ने लगता है, वे उस आदमी के चेहरे के आस—पास प्रकाश के गोल घेरे को तत्काल देख लेते हैं। ही, आपको नहीं दिखता, क्योंकि आपको उस तरह के सूक्ष्म प्रकाश का कोई भी अनुभव नहीं है।

तो जैसे महावीर और बुद्ध और कृष्ण के चेहरे के आस—पास एक गोल वर्तुल चलता है जागरण का, रोशनी का, ऐसे ही हम सब सोए हुए आदमियों के आस—पास एक गोल वर्तुल चलता है अंधकार का, निद्रा का। वह भी आपको दिखाई नहीं पड़ेगा। क्योंकि उसका पता भी तब चलेगा, जब प्रकाश दिखाई पड़े। तब आपको पता चलेगा कि जिंदगीभर एक अंधेरे का गोल घेरा भी आपके पास चलता था। पता तो पहले प्रकाश का चलेगा, तभी अंधकार का बोध होगा। उसके साथ ही हम पैदा होते हैं। उससे इतने निकट और परिचित होते हैं कि वह दिखाई नहीं पड़ता।

लेकिन मैं देखता हूं कि रास्ते पर दो आदमी चल रहे हों, तो दोनों के पास का चलने वाला घेरा अलग होता है। रंगों—रंगों के फर्क होते हैं, शेड के फर्क होते हैं। अंधेरे और सफेदी के बीच में बहुत से ग्रे कलर होते हैं।

लेकिन साधारणत: सोए आदमी के पास, सौ में से निन्यानबे आदमियों के पास नींद का एक वर्तुल चलता है, एक स्लीपी वर्तुल चलता है। वैसा आदमी जहां जाता है, उसके साथ उसकी नींद भी जाती है। वह जो भी छूता है, उसे नींद में छूता है। वह जो भी करता है, उसे नींद में करता है। वह जो भी बोलता है, नींद में बोलता है। कभी आपने सोचा है कि आप अपने वक्तव्यों के लिए कितनी बार नहीं पछताए हैं! पछताए हैं। लेकिन कभी आपको पता है कि आपने ही बोला था—होश में!

पति घर आया है और एक शब्द पत्नी बोल गई है और कलह शुरू हो गई है। और वह जानती है कि यह शब्द रोका जा सकता था। क्योंकि यह शब्द पचीस दफे, बोला जा चुका है और इस शब्द के आस—पास इसी तरह की कलह पचीस बार हो चुकी है। फिर यह आज क्यों बोला गया? नींद में बोल गई, फिर बोल गई। कल फिर बोलेगी, परसों फिर बोलेगी। वह नींद चलेगी। वह रोज वही बोलेगी और रोज वही होगा। पति भी रोज वही उत्तर देगा।

अगर एक पति-पत्नी को सात दिन ठीक से देख लिया जाए, तो उनकी पिछली जिंदगी और आगे की सारी जिंदगी की कथा लिखी जा सकती है कि पीछे क्या हुआ और आगे क्या होगा। क्योंकि यही होगा। इसकी पुनरुक्ति होती रहेगी।

ये नींद में चलते हुए लोग-वही क्रोध, वही काम, वही सब, वही दुख, वही पीड़ा, वही चिंता-सब वही। रोज उठते हैं और वही दोहराते हैं। जैसे सब तय है, बंधी हुई मशीन की तरह। बस, रोज अपनी मशीन पर जम जाते हैं और फिर दोहराते हैं।

यह नींद है। यह कृष्ण का दूसरा अर्थ है। जागा हुआ पुरुष जो भी करता है, वह नींद में करने वाले आदमी जैसा उसका व्यवहार नहीं है।

क्या फर्क पड़ेगा उसके व्यवहार में? तो उन्होंने इंगित दिए हैं कि नींद से भरा हुआ आदमी मैं के और अहंकार के आस-पास जीएगा। उसका सब कुछ अहंकार से भरा होगा।

कभी आपने खयाल किया है, आईने के सामने खड़े होकर जो तैयारी आप कर रहे हैं, वह आपकी तैयारी है कि अहंकार की तैयारी है! किसकी तैयारी कर रहे हैं? अहंकार की तैयारी कर रहे हैं। बाहर निकलते हैं, तो झाड़-ब्लू के साफ, रीढ़ सीधी कर लेते हैं। आंखें तेज हो जाती हैं। या तो सुरक्षा में लग जाते हैं या आक्रमण में लग जाते हैं। चल

पड़े, नींद वाला आदमी निकला घर से बाहर, उपद्रव संभावित है, कि कुछ होगा अब। अब यह कुछ न कुछ करेगा। और सारे लोग अपने घरों के बाहर निकल रहे हैं। ये कुछ न कुछ करेंगे।

अमेरिका में अभी कार के एक्सिडेंट्स का जो सर्वे हुआ है, उससे पता चला है कि पचहत्तर प्रतिशत कार की दुर्घटनाएं भौतिक नही, मानसिक घटनाएं हैं। पागलपन की बात मालूम होती है न! कार की दुर्घटना और मानसिक! कार का भी कोई माइंड है, कार का भी कोई मन है कि कार भी कोई मन से दुर्घटना करती है! कार का नहीं है, ड्राइवर का है, वह जो सारथी बैठे रहते हैं भीतर।

कभी आपको पता है कि जब आप क्रोध में होते हैं, तो कार का एक्सेलेरेटर जोर से दबता है-नींद में, होश में नहीं। जल्दी आपको कहीं पहुंचना नहीं है। लेकिन चित्त क्रोध से भरा है। किसी चीज को दबाना चाहता है। इसकी फिक्र नहीं कि किसको दबा रहे, हैं। एक्सेलेरेटर को ही दबा रहे हैं। अब एक्सेलेरेटर से कोई झगड़ा नहीं है। अब एक्सेलेरेटर को दबाइएगा क्रोध में, तो खतरा पक्का है। क्योंकि एक तो नींद में दबाया जा रहा है। आपको पता ही नहीं है कि क्यों दबा रहे हैं एक्सेलेरेटर को। पता होना चाहिए कि क्यों दबा रहे हैं, कहां दबा रहे हैं, कितनी भीड़ है, कितने लोग हैं, कितनी कारें दौड़ रही हैं। आपको कुछ पता नहीं है।

आप एक्सेलेरेटर को नहीं दबा रहे हैं। कोई अपनी पत्नी के सिर पर पैर दबा रहा है, कोई अपने बेटे के, कोई अपने बाप के, कोई अपने मालिक के। पता नहीं वह एक्सेलेरेटर किन-किन के लिए काम कर रहा है। पता नहीं कौन एक्सेलेरेटर उस वक्त बना हुआ है। दबाए जा रहे हैं। अब यह आदमी जो नींद में एक्सेलेरेटर दबा रहा है, इस आदमी को सड़क दिखाई पड़ रही होगी!

इसकी हालत ठीक वैसी है, मैंने सुना है, वर्षा हो रही है और एक आदमी अपनी कार चला रहा है। जोर से वर्षा हो रही है, लेकिन वह आदमी वाइपर नहीं चला रहा है कार के। तो उसकी पत्नी उससे कहती है, क्या कर रहे हो! जैसा कि पत्नियां आमतौर से ड्राइवर को गाइड करती रहती हैं। पति चलाता है, पत्नियां चलवाती हैं। वे पूरे वक्त बताती रहती हैं कि यह करो, यह करो।

पूछा, क्यों नहीं चला रहे हैं वाइपर? तो उसने कहा, कोई फायदा नहीं है, क्योंकि चश्मा तो मैं घर ही भूल आया हूं। वैसे ही नहीं दिखाई पड़ रहा है कुछ। पानी गिर रहा है कि नहीं गिर रहा है, इससे क्या मतलब है!

अब यह जो आदमी है, वह जो एक्सेलेरेटर को क्रोध में दबा रहा है, वह भी अंधा है। उसको भी कुछ नहीं दिखाई पड़ रहा है कि बाहर क्या हो रहा है। पचहत्तर प्रतिशत दुर्घटनाएं मानसिक घटनाएं हैं। यह नींद है।

इस नींद में हम उलटा भी करते हैं। वह तीसरा आयाम है। फिर हम आगे बढ़े।

एक तीसरा अर्थ भी है; नींद का कृत्य हमेशा, जो आप करते हैं और जो होता है, उसका आपको कोई खयाल नहीं होता। जो आप करते हैं, उससे ही होता है। लेकिन जब होता है, तब आप पछताते हैं कि यह कैसे हो गया! क्योंकि हमने तो यह कभी न किया था।

एक स्त्री सज रही है, आईने के सामने सज रही है। अब उसे पता नहीं है कि सजकर वह क्या कर रही है। मैं सज रही हूं और कुछ भी नहीं कर रही! लेकिन वह सज-धजकर सड़क पर आ गई है। उसने चुस्त कपड़े पहन रखे हैं। अब उसको पता नहीं कि वह धक्का निमंत्रित कर रही है। कोई आदमी धक्का मारेगा। जब वह धक्का मारेगा, तब वह कहेगी कि बहुत ज्यादती हो रही है। वह स्त्री कहेगी, बहुत ज्यादती हो रही है, अन्याय हो रहा है, अनीति हो रही है। लेकिन सब तैयारी करके आई है वह। पर वह तैयारी नींद में की गई थी, उसे कोई काज—इफेक्ट दिखाई नहीं पड़ता कि ये इतने चुस्त कपड़े, इतने बेढंगे कपड़े, इतनी सजावट किसी को भी धक्का मारने के लिए निमंत्रण है।

और बड़े मजे की बात है, अगर उसको कोई धक्का न दे और कोई न देखे, तो भी दुखी लौटेगी कि बेकार गई, सब मेहनत बेकार गई। किसी ने देखा ही नहीं! सड़क पर कोई इसे न देखे, कोई इसको ले ही न, कोई अटेंशन न दे, तो यह ज्यादा दुखी लौटेगी। धक्क दे, तो भी दुखी लौटेगी। क्या हो रहा है यह!

मैंने सुना है कि एक बच्चे ने अपने बाप को खबर दी कि मैंने पांच मक्खियां मार डाली हैं। उसके बाप ने कहा, अरे! और उसने कहा कि तीन नर थे, दो मादाएं थीं। उसके बाप ने कहा कि हद कर रहा है, तूने कैसे पता लगाया? तो उसने कहा कि दो मक्खियां आईने—आईने पर ही बैठती थीं। समझ गया कि स्त्रिया होनी चाहिए!

यह जो नींद में सब चल रहा है, इसमें हम ही कारण होते हैं और जब कार्य आता है, तब हम चौंककर खड़े हो जाते हैं कि यह मैंने नहीं किया! अगर हम नींद में न हों, तो हम फौरन समझ जाएंगे, यह मेरा किया हुआ है। यह धक्का मेरा बुलाया हुआ है। यह धक्का ऐसे ही नहीं आ गया है। इस जगत में कुछ भी आकस्मिक नहीं है, एक्सिडेंटल नहीं है। सब चीजों की हम व्यवस्था करते हैं। लेकिन फिर व्यवस्था जब पूरी हो जाती है, तब पछताते हैं कि यह क्या हो गया! यह क्या हो रहा है?

यह भी नींद का अर्थ है। संयमी, ज्ञानी इस भांति कभी नहीं सोता, जागा ही रहता है। स्वभावत:, जागकर वह वैसा व्यवहार नहीं करता, जैसा सोया आदमी करता है। उसका मैं कभी केंद्र में नहीं होता। मैं सदा नींद के ही केंद्र में होता है। समझ लें कि नींद का केंद्र मैं है। न—मैं, ईगोलेसनेस, निरअहंकार भाव, जागरण का केंद्र है।

यह बड़े मजे की बात है। इसको अगर हम ऐसा कहें तो बिलकुल कह सकते हैं कि सोया हुआ आदमी ही होता है, जागा हुआ आदमी होता नहीं। यह बड़ा उलटा वक्तव्य लगेगा। सोया हुआ आदमी ही होता है—मैं। जागा हुआ आदमी नहीं होता है—न—मैं। जागरण आदमी के अहंकार का विसर्जन है। निंद्र आदमी के अहंकार का संग्रहण है, कनसनट्रेशन है, केंद्रीकरण है।

आयूर्यमाणमचल्छीतष्ठं सम्पुमापः प्रविशन्ति यूद्वत् ।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्तिमाप्नोति न काक्कामी ।।70 ।।
और जैसे सब ओर से परिपूर्ण अचल प्रतिष्ठा वाले समुद्र में नाना नदियों के जल उसको चलायमान न कने हुए ही समा जाता है, वैसे ही जिस स्थितपज्ञ पुरूष के प्रति संपूर्ण भोग किसी प्रकार का विकार उत्पन्न किए बिना ही समा जाते है, वह पुरुष परमशांति को प्राप्त होता है। न कि भोगों को चाहने वाला।
विहाय कामान्यः सर्वान्युमांश्चरीत निस्पृहः ।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति ।।71 ।।
क्योंकि, जो पुरूष संपूर्ण कामनाओं को त्यागकर ममतारहित और अहंकररहित, स्पृहारहित हुआ बर्तता है, वह शांति को प्राप्त होता है।
एषा ब्रह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति ।
स्थित्वास्यामन्तकालेउपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ।।72 ।।
हे अर्जुन, यह ब्रह्म को प्राप्त हुए पुरूष की ब्रह्मी—स्थिति है। इसको प्राप्त होकर वह मोहित नहीं होता है और अंतकाल में भी हल निष्ठा में स्थिर होकर बह्म—निर्वाण को प्राप्त हो जाता है।
हे पार्थ! जैसे महासागर अनंत— अनंत नदियों को भी अपने में समाकर जरा भी मर्यादा नहीं खोता, इंचभर भी परिवर्तित नहीं होता, जैसे कुछ समाया ही नहीं उसमें, ऐसा ही होता है। जैसा पहले था हजारों नदियों के गिरने के, ऐसा ही बाद में होता है। ऐसे ही जो व्यक्ति जीवन के समस्त भोग अपरिवर्तित रूप से, भोगने के पहले जैसा था, भोगने के बाद भी वैसा ही होता है। जैसे कि भोगा ही न हो, अर्थात जो भोगते हुए भी न—भोगा बना रहता है, जो भोगते हुए भी भोक्ता नहीं बनता है, जिसमें कोई भी अंतर नहीं आता है, जो जैसा था वैसा ही है; नहीं होता, तो जैसा होता, होकर भी वैसा ही है। ऐसा व्यक्ति मुक्ति को, ब्राह्मी—स्थिति को उपलब्ध हो जाता है।

कृष्ण कहते हैं, हे पार्थ! तेरी मुक्ति की जिज्ञासा।

बड़ी मजे की बात कहते हैं। क्योंकि अर्जुन ने जिज्ञासा मुक्ति की नहीं की थी। अर्जुन ने जिज्ञासा मुक्ति की नहीं की थी, अर्जुन ने जिज्ञासा सिर्फ युद्ध से बचने की की थी। लेकिन कृष्ण कहते हैं, हे पार्थ! तेरी मुक्ति की जिज्ञासा, तेरे मोक्ष की खोज के लिए तुझे यह बताता हूं।

अर्जुन ने नहीं की थी मुक्ति की जिज्ञासा, लेकिन अर्जुन ने भी जिज्ञासा की थी, कृष्ण ने उसे इस बीच मुक्ति की जिज्ञासा में रूपांतरित किया है। इस पूरी यात्रा में कृष्ण ने अर्जुन की जिज्ञासा को भी रूपांतरित किया है। धीरे—धीरे

युद्ध गौण हो गया है। धीरे— धीरे युद्ध रहा ही नहीं है। बहुत देर हो गई, जब से युद्ध की बात समाप्त हो गई है। बहुत देर हो गई, जब से अर्जुन भी और हो गया है।

अर्जुन शब्द का अर्थ होता है, दैट व्हिच इज नाट स्ट्रेट। ऋजु से बनता है वह शब्द। ऋजु का मतलब होता है, सीधा—सरल। ***अर्जुन का मतलब होता है, तिरछा—इरछा। अर्जुन का मतलब होता है, आड़ा—तिरछा। अर्जुन सीधा—सादा नहीं है, बहुत आड़ा—तिरछा है। विचार करने वाले सभी लोग आड़े—तिरछे होते हैं। निर्विचार ही सीधा होता है।***
अर्जुन की जिज्ञासा को कृष्ण ने बहुत रूपातरित किया है, ट्रांसफार्म किया है। और ध्यान रहे, साधारणत: मनुष्य धर्म की जिज्ञासा शुरू नहीं करता, साधारणत: मनुष्य जिज्ञासा तो संसार की ही शुरू करता है। लेकिन उसकी जिज्ञासा को संसार से मुक्ति और मोक्ष की तरफ रूपांतरित किया जा सकता है। क्यों? इसलिए नहीं कि कृष्ण कर सकते हैं, बल्कि इसलिए कि संसार की जिज्ञासा करने वाला मनुष्य भी जानता नहीं कि क्या कर रहा है। उसकी गहरी और मौलिक जिज्ञासा सदा ही मुक्ति की होती है।

जब कोई धन खोजता है, तब भी बहुत गहरे में वैसा व्यक्ति आंतरिक दरिद्रता को मिटाने की चेष्टा में रत होता है—गलत चीज से, लेकिन चेष्टा उसकी यही होती है कि दरिद्र न रह जाऊं, दिवालिया न रह जाऊं। जब कोई आदमी पद खोजता है, तब भी उसकी भीतरी कोशिश, आत्महीनता न रह जाए, उसी की होती है—गलत जगह खोजता है। जब कोई आदमी युद्ध से भागना चाहता है, तब भी वह युद्ध से नहीं भागना चाहता, बहुत गहरे में संताप से, एंग्विश से, चिंता से ऊपर उठना चाहता है। लेकिन फिर भी वह ठीक दिशा में नहीं पहुंचता।

इस बात को कहकर कृष्ण बहुत गहरा इंगित दे रहे हैं। वे कह रहे हैं, हे अर्जुन, तेरी मुक्ति की जिज्ञासा के लिए मैंने यह सब कहा। अगर तू महासागर जैसा हो जाए जहा सब आए और सब जाए, लेकिन तुझे छुए भी नहीं, स्पर्श भी न करे, अनटच्ड, अस्पर्शित, तू पीछे वैसा ही रह जाए जैसा था, तो तू ब्राह्मी—स्थिति को उपलब्ध हो जाता है। ब्राह्मी—स्थिति अर्थात तब तू नहीं रह जाता और ब्रह्म जो ही रह जाता है।

और जहां मैं नहीं रह जाता, ब्रह्म ही रह जाता है, वहां फिर कोई चिंता नहीं, क्योंकि सभी चिंताएं मैं के साथ हैं। जहां मैं नहीं रह जाता और ब्रह्म ही रह जाता है, वहां कोई दुख नहीं है, क्योंकि सब दुख मैं की उत्पत्तियां हैं। और जहां मैं नहीं रह जाता और ब्रह्म ही रह जाता है, वहा कोई मृत्यु नहीं, क्योंकि मैं ही मरता है, जन्म लेता है। ब्रह्म की न कोई मृत्यु है, न कोई जन्म है। वह है।

ऐसा कृष्ण ने इस दूसरे अध्याय की चर्चा में, जिसे गीताकार सांख्ययोग कह रहा है, पहले अध्याय को कहा था विषादयोग, दूसरे अध्याय को कह रहा है सांख्ययोग। विषाद के बाद एकदम सांख्य! कहां विषाद से घिरा चित्त अर्जुन का और कहां ब्राह्मी—स्थिति अनंत आनंद से भरी हुई! इस संबंध में एक बात, फिर मैं अपनी बात पूरी करूं।

धन्य हैं वे, जो अर्जुन के विषाद को उपलब्ध हो जाएं। क्योंकि उतने विषाद में से ही ब्राह्मी—स्थिति तक के शिखर तक उठने की चुनौती उत्पन्न होती है। कृष्ण ने अर्जुन के विषाद को ठीक से पकड़ लिया।

अगर अर्जुन किसी मनोवैज्ञानिक के पास गया होता, तो मनोवैज्ञानिक क्या करता! चूंकि मैंने यह कहा कि कृष्ण का यह पूरा शास्त्र एक साइकोलाजी है, इसलिए मैं यह भी अंत में आपसे कह दूं, अगर मनोवैज्ञानिक के पास अर्जुन गया होता, तो मनोवैज्ञानिक क्या करता! मनोवैज्ञानिक अर्जुन को एडजस्ट करता। मनोवैज्ञानिक कहता कि समायोजित हो जा। ऐसा तो युद्ध में होता ही है, सभी को ऐसी चिंता पैदा होती है। यह बिलकुल स्वाभाविक है। तू नाहक की एबनार्मल बातों में पड़ रहा है। तू व्यर्थ की विक्षिप्त बातों में पड़ रहा है। ऐसे पागल हो जाएगा, न्यूरोसिस हो जाएगी। अर्जुन नहीं मानता, तो वह कहता कि तू फिर इलेक्ट्रिक शॉक ले ले; इंसुलिन के इंजेक्यान ले ले।

लेकिन कृष्ण ने उसके विषाद का क्रिएटिव उपयोग किया। उसके विषाद को स्वीकार किया कि ठीक है। अब इस विषाद को हम ऊपर ले चलते हैं। हम तुझे विषाद के लिए राजी न करेंगे। हम विषाद का ही उपयोग करके तुझे ऊपर ले जाएंगे।

असल में ज्ञान सदा ही अभिशाप को वरदान बना लेता है। अभिशाप को वरदान न बनाया जा सके, तो वह ज्ञान नहीं। अर्जुन के लिए जो अभिशाप जैसा फलित हुआ था, कृष्ण ने उसे वरदान बनाने की पूरी चेष्टा की है। उसके दुख का भी सृजनात्मक उपयोग किया है।

इसलिए मैं यह कहता हूं कि भविष्य का जो मनोविज्ञान होगा, वह सिर्फ मरीज को किसी तरह मरीजों के समाज में रहने योग्य नहीं बनाएगा, बल्कि मरीज की यह जो बेचैन स्थिति है, इस बेचैन स्थिति को मरीज की पूरी आत्मा के रूपांतरण के लिए उपयोग करेगा। वह क्रिएटिव साइकोलाजी होगी।

इसलिए कृष्ण का मनोविज्ञान साधारण मनोविज्ञान नहीं, सृजनात्मक मनोविज्ञान है। यहां हम कोयले को हीरा बनाने की कोशिश करते हैं; यह अल्केमी है। जैसा अल्केमिस्ट कहते रहे हैं कि हम लोअर बेस मेटल को—सस्ती और साधारण धातुओं कों—सोना बनाते हैं। पता नहीं उन्होंने कभी बनाया या नहीं बनाया। लेकिन यहां अर्जुन बड़े बेस मेटल की तरह कृष्ण के हाथ में आया था, कोयले की तरह, उस कोयले को हीरा बनाने की उन्होंने बड़ी कोशिश की।

धन्य हैं वे, जो अर्जुन के विषाद को उपलब्ध होते हैं। क्योंकि उनकी ही धन्यता ब्राह्मी—स्थिति तक पहुंचने की भी हो सकती है। मेरी बातों को इतने प्रेम और आनंद से सुना, इससे बहुत अनुगृहीत हूं और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं।

मेरे प्रणाम स्वीकार करें।